ॐ

परमात्मने नमः

प्रवचन नवनीत

(भाग-४)

(४७ शक्ति पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के खास प्रवचन)

प्रकाशक

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट

भावनगर

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान :

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
५८०, जूनी माणेकवाड़ी,
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग,
भावनगर-३६४००१
फोन : (०२७८) २५१५००५

श्री कुन्दकुन्दकहान परमागम प्रवचन ट्रस्ट
१७३/१७५, मुंबादेवी रोड़, मुंबई-४०० ००२

पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट
कहान नगर, लाम रोड़
देवलाली-४२२ ४०१

श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट
`विमलांचल' हरिनगर
अलीगढ़
फोन : (०५७१) ४१००१०/११/१२

प्रथमावृत्ति प्रत : १००० (पूज्य भाईश्री शशीभाई की ७४वीं जन्मजयंती)
पृष्ठ संख्या : ८ + ५७६ = ५८४
लागत मूल्य : ११५/-
विक्री मूल्य : २०/-

टाईप सेटिंग :
पू□ा इम्प्रेशन्स
प्लोट नं. १९२४-बी,
६, शांतिनाथ बंगलोझ,
शशीप्रभु मार्ग, रूपाणी सर्कल,
भावनगर-३६४००१
फोन : (०२७८) २५६१७४९

मुद्रक :
□ागवती ऑफसेट
१५/सी, बंसीधर मिल कंपाउन्ड
बारडोलपूरा,
अहमदाबाद
फोन : ९८२५३२६२०२

प्रकाशकीय

प्रत्यक्ष परम उपकारी, मुमुक्षुओं के तारणहार, निष्कारण करुणामूति। स्वानुभवविभूषित, अध्यात्मयुगसृष्टा, अध्यात्मसंत, महाप्रतापी, युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने ४६ वर्ष तक जैन धर्म के आध्यात्मिक सिद्धांतों का विवेचन अति स्पष्टरूप से, सरल और लोकभोग्य भाषा और शैली में करके अपूर्व भवान्तकारी प्रवचन-गंगा बहायी। दिगम्बर जैन आचार्य रचित परमागम और स्वानुभवी सत्पुरुषों के द्वारा रचित अनेक आध्यात्मिक ग्रन्थों पर अनेक विशद् प्रवचन किये हैं। परम पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों के प्रत्यक्ष-श्रवण का अहोभाग्य अनेक भव्य जीवों को मिला है और उनकी वाणी में रहे अतिशय का अनुभव सभी को हुआ है।

परम पूज्य गुरुदेवश्री की ऐसी सातिशय वाणी का वर्णन करना वास्तव में तो अपनी शक्ति मर्यादा की बाहर की बात है। उनको `श्रुत की लब्धि थी' ऐसा अनुभव परम पूज्य बहिनश्री चंपाबहन को हुआ है और वचनामृत में कहा है वह यथार्थ ही है। उनके निर्मल भावश्रुत ज्ञान में अध्यात्म के अनेक गूढ़ रहस्य भास्यमान होकर वचनरूप में प्रकाशित हुए हैं। सादी भाषा में भी स्पष्टीकरण करने की विशद् शैली में अध्यात्म की अनेकविध सूक्ष्मता, पुरुषार्थप्रेरक तीक्ष्णता, स्वानुभव की अभेदता इत्यादि अनेक गुणों से विभूषित ऐसी उनकी वाणी में लौकिक वक्तृत्वकला की कृत्रिमता नहीं होनेपर भी विद्वान में विद्वान श्रोता और अनपढ़ में अनपढ़ श्रोताओं को भी ऐसा कोई अवर्णनीय प्रभावित असर होता था कि हजारों श्रोता प्रवचन में मानों मंत्रमुग्ध होकर डूब जाते थे ! उनके श्रोतागण में जैन एवम् जैनेतर का विशाल समुदाय है, उसमें सभी को अपने योग्य कुछ न कुछ मिल जाता और इसीलिए सोनगढ़ जैसे सौराष्ट्र के एक कोने में आये हुए इस गाँव में भी पूरे देश के कोने-कोने से उनके प्रवचन-श्रवण के लाभार्थ हजारों मुमुक्षु आते थे, ऐसा क्रम पूज्य गुरुदेवश्री की विद्यमानता में बना रहा।

ऐसे अनहद उपकारी, महाप्रतापी, करुणासागर, युगपुरुष परम पूज्य गुरुदेवश्री ने परमागमों की कुछ खास गाथाओं और सत्पुरुष के वचनों पर अत्यंत करुणा करके खास १४३ मंगलकारी प्रवचन किये हैं। इन प्रवचनों के दौरान अनेक बार वे प्रमोद से कहते थे कि, **`ये प्रवचन बहुत सूक्ष्म हैं !! यह बारह अंग का सार है !!! टेप पर से सभी प्रवचन प्रकाशित होंगे।'**

परम पूज्य गुरुदेवश्री की उपरोक्त भावना उनके जीवनकाल में तो साकार नहीं हो पाई किन्तु उनके महाप्रयाण बाद करीब और भी दस साल तक ये प्रवचन प्रकाशित नहीं हुए, ऐसा देखकर परम पूज्य गुरुदेवश्री के उक्त निष्कारण करुणासभर विकल्प को साकार करने के लिये और वर्तमान एवम् भावि मुमुक्षुजगत को अध्यात्म के सारभूत विषयों के अभ्यासार्थ

अमूल्य साधन सुलभ करवाने का शुभ संकल्प - वीतराग देव-शास्त्र-गुरु तथा धर्म और धर्मात्माओं के प्रति अनन्य निष्ठावान, सिद्धांतनिष्ठ, अध्यात्मरसिक, स्वानुभव विभूषित, पूज्य भाईश्री शशीभाई शेठ की प्रशस्त प्रेरणा से किया गया।

प्रवचन नवनीत भाग-१ से चार गुजराती में तो प्रकाशित हो चुके हैं। तत्पश्चात् हिन्दी में भी प्रवचन नवनीत भाग-१ से तीन प्रकाशित हो चुके हैं। अब प्रवचन नवनीत का चौथा भाग पूज्य भाईश्री शशीभाई की ७४वीं जन्मजयंती पर प्रकाशित करते करते हुए हमें अत्यंत हर्ष हो रहा है। इस ग्रन्थ में ४७ शक्ति पर प्रवचन हैं। पूज्य गुरुदेवश्री ने ये प्रवचन हिन्दी में किये थे। प्रवचन नवनीत भाग-४ जो गुजराती में प्रकाशित हुआ था, उसमें सिर्फ लिपी गुजराती रखी थी लेकिन पढ़ने की भाषा हिन्दी थी। अब इन प्रवचनों को हिन्दी लिपी में ही प्रकाशित किये जा रहे हैं।

सर्व प्रथम, सभी प्रवचन अक्षरशः लिखे जातें हैं, तत्पश्चात् दूसरी व्यक्ति द्वारा उसे जाँच लिये जाते हैं। प्रवचन संकलन दरमियान पूज्य गुरुदेवश्री जिस क्रम में बोले हों उसी क्रम में रखने का शक्यतः प्रयास किया है, जिससे कोई भाव में गलती न हो जाय। साहित्य में कई जगह संक्षेप को गुण और पुनरक्ति को दोषरूप में गिना जाता है, जबकि अध्यात्म में तो विस्तार और पुनरक्ति का स्थान भावना में रसवृद्धि स्वरूप है। इन प्रवचनों में बहुत से वाक्य को पूर्ण करने के लिए आशयानुसार कोष्ठक भरे हैं और यथोचित स्पष्टीकरण के लिये भी कोष्ठक भरे हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी यथावत तरल लगे उसी प्रकार से एवं मानो जैसे प्रत्यक्ष गुरुदेवश्री ही प्रवचन दे रहे हों, इस तरह से संकलन करने की नीति रखी है। संक्षेप में पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी का मूल स्वरूप यथावत रखने का पूरा प्रयत्न किया गया है। फिर भी यदि उसमें कोई क्षति ज्ञात हो तो हमें सूचित करने की कृपा करें, ऐसी पाठकवर्ग से विनती है, जो कि हमें द्वितीयावृत्ति प्रकाशित करने में मददरूप हों।

'समयसार' परमागम के मूल सूत्र-प्रणेता श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव, टीकाकार महामुनिराज परिशिष्ट रचयिता श्रीमद् 'अमृतचंद्राचार्यदेव' द्वारा रचित ४७ शक्ति पर पूज्य गुरुदेवश्री ने प्रवचन किये, ऐसे उन भगवंतों को एवं प्रवचन में जिन महात्माओं के वचनों को उद्धरण किया, ऐसे स्वानभुव विभूषित पूज्य बहिनश्री चंपाबहन, पुरुषार्थमूर्ति पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी, परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी, परम पूज्य दीपचंदजी कासलीवाल, परम पूज्य धर्मदासजी क्षुल्लक, इत्यादि सर्व संपूज्य महात्माओं को उपकृत हृदय से कोटि-कोटि वंदन करते हैं।

परम पूज्य गुरुदेवश्री के अंतर में आविर्भूत भावना को अपनी भावना का विषय बनाया और ऐसे उत्कृष्ट और महान कार्य को हाथ में लेने का संकल्प कर, परम पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति की अपने हृदय में रही अत्यंत भक्ति को व्यक्त कर, हम सभी को पूज्य गुरुदेवश्री

का वास्तविक अंतरंग परिचय करवाने का जिनका अविस्मरणीय उपकार है और जिनके ज्ञानीपुरुष प्रति के भक्तिभावों को देखकर हमें लाभ हुआ, इसलिये उनका गुणग्राम करने में हम असमर्थ हैं, ऐसे पूज्य भाईश्री के चरणकमल में उपकृत हृदय से कोटि-कोटि वंदन करते हैं।

इन प्रवचनों के प्रकाशनार्थ जिन जिन मुमुक्षुओं का सहयोग मिला है उनके हम आभारी हैं। टाईप सेटिंग के लिये 'पूजा इम्प्रेशन्स' का और सुंदर मुद्रण कार्य के लिये 'भगवती ऑफसेट' के आभारी हैं। पुस्तक प्रकाशनार्थ प्राप्त दानराशि अन्यत्र दी गई है।

अंततः जो कुछ सुन्दर है वह सब कुछ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रताप से है। फिर एक बार निम्न पंक्तिओं से वन्दन कर, हम सब आत्महित को साधें, ऐसी भावना।

'सतत दृष्टिधारा बरसाते चैतन्य के प्रदेश-प्रदेश सहज महान दीपोत्सव की क्षणे क्षणे वृद्धि करते श्री गुरुदेव को अत्यंत भक्ति से नमस्कार !' (-पूज्य श्री सोगानीजी)

सत्पुरुषों का प्रत्यक्ष योग जयवंत वर्तो ! त्रिकाल जयवंत वर्तो !

भावनगर
कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा, दि-०५-११-२००६
(श्रीमद् राजचंद्र जन्मजयंती दिन)

ट्रस्टीगण
वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
भावनगर

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का मुमुक्षु समाज अधिक लाभ लेवें इस हेतु से एक मुमुक्षु परिवार, मुंबई की ओर से विशेष आर्थिक सहयोग प्राप्त होने से इस ग्रंथ की कीमत कम रखी गई है।

प्रवचन नवनीत भाग-४ के प्रकाशनार्थ प्राप्त दानराशि

श्रीमती चंद्रिकाबहन शशीकान्तभाई शेठ, भावनगर	११,०००/-

प्रवचन अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रम	विषय	दिनांक	पृष्ठ
०१.	शक्ति-१	११-०८-१९७७	००१
०२.	शक्ति-१	१२-०८-१९७७	०१४
०३.	शक्ति-१/२	१३-०८-१९७७	०२९
०४.	शक्ति-२/३	१४-०८-१९७७	०४३
०५.	शक्ति-३/४/५	१५-०८-१९७७	०५८
०६.	शक्ति-५/६	१६-०८-१९७७	०७१
०७.	शक्ति-६	१७-०८-१९७७	०८६
०८.	शक्ति-६/७	१८-०८-१९७७	१००
०९.	शक्ति-८	१९-०८-१९७७	११४
१०.	शक्ति-८/९	२०-०८-१९७७	१२७
११.	शक्ति-९/१०	२१-०८-१९७७	१४१
१२.	शक्ति-१०/११	२२-०८-१९७७	१५४
१३.	शक्ति-११/१२	२३-०८-१९७७	१६८
१४.	शक्ति-१२/१३	२४-०८-१९७७	१८१
१५.	शक्ति-१४/१५	२५-०८-१९७७	१९३
१६.	शक्ति-१५/१६	२६-०८-१९७७	२०५
१७.	शक्ति-१६/१७/१८	२७-०८-१९७७	२१८
१८.	शक्ति-१८/१९	२८-०८-१९७७	२३२
१९.	शक्ति-१९/२०/२१	२९-०८-१९७७	२४५
२०.	शक्ति-२१/२२	३०-०८-१९७७	२६१
२१.	शक्ति-२३	३१-०८-१९७७	२७४
२२.	शक्ति-२४	०१-०९-१९७७	२८५
२३.	शक्ति-२४/२५/२६	०२-०९-१९७७	२९८
२४.	शक्ति-२७/२८	०३-०९-१९७७	३१२
२५.	शक्ति-२९	०४-०९-१९७७	३२७
२६.	शक्ति-२९/३०	०५-०९-१९७७	३४०
२७.	शक्ति३१/३२/३३	०६-०९-१९७७	३५४
२८.	शक्ति-३३	०७-०९-१९७७	३६६

प्रवचन क्रम	विषय	दिनांक	पृष्ठ
२९.	शक्ति-३४-३५	०८-०९-१९७७	३८०
३०.	शक्ति-३५-३६	०९-०९-१९७७	३९३
३१.	शक्ति-३६	१०-०९-१९७७	४०७
३२.	शक्ति-३३ से ३७	११-०९-१९७७	४२१
३३.	शक्ति-३८	१२-०९-१९७७	४३६
३४.	शक्ति-३९/४०	१३-०९-१९७७	४५०
३५.	शक्ति-३९/४०/४१	१४-०९-१९७७	४६४
३६.	शक्ति-४१	१५-०९-१९७७	४७७
३७.	शक्ति-४१/४२	१६-०९-१९७७	४९१
३८.	शक्ति-४३	१७-०९-१९७७	५०३
३९.	शक्ति-४४	१८-०९-१९७७	५१७
४०.	शक्ति-४५	१९-०९-१९७७	५३०
४१.	शक्ति-४६	२०-०९-१९७७	५४४
४२.	शक्ति-४७	२१-०९-१९७७	५५७

श्री सर्वज्ञवीतरागाय नमः

शास्त्र स्वाध्याय का प्रारम्भिक मंगलाचरण

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमोनमः।।१।।
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलङ्का।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान्।।२।।
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रुगुरुवे नमः।।३।।

।। श्रीपरमगुरुवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः।।

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनःप्रतिबोधकारक्, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री समयसारनामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्यश्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचितं, श्रोतारः सावधानतया श्रृणवन्तु।।

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलंम्।।१।।
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम्।।२।।

❁ ❁ ❁

ॐ

परमात्मने नमः।

प्रवचन नं. १
शक्ति-१ दि. ११-०८-१९७७
आत्मद्रव्यहेतुभूतचैतन्यमात्रभावधारणलक्षणा जीवत्वशक्तिः।।१।।

समयसार, परिशिष्ट अधिकार है। सूक्ष्म तत्त्व है। अपूर्व बात है (लेकिन) कभी सुनी नहीं। रुचि से सुनी नहीं। वैसे तो अनंत बार सुनी है, आहाहा ! समझ में आया ? क्या कहते हैं ? जो यह आत्मा वस्तु है न ? आत्मा वस्तु - पदार्थ - द्रव्य, वह तो शक्तिवान है। उसमें शक्तियाँ - गुण अनंत हैं। भगवान आत्मा ये शक्तिवान - स्वभाववान (है) और उसकी शक्तियाँ - स्वभाव अनंत हैं। उसमें से ४७ शक्ति का वर्णन चलेगा। चार और सात। है तो अनंत। (शक्ति) सूक्ष्म है भगवान ! उसमें आत्मद्रव्य में दृष्टि करना वह सम्यग्दर्शन है। तो कहते हैं कि, आत्मद्रव्य है कैसा ? आत्मद्रव्य में अनंत शक्ति जीवतर (जैसे कि) शक्ति, चिति, दशि, ज्ञान, आनंद, सुख आदि अनंत शक्तियाँ हैं। संख्या में अनंत (शक्ति) हैं, वस्तु एक है। परंतु शक्ति अनंत हैं। समझ में आया ?

कितनी शक्ति है ? शक्ति है, भगवान ! परंतु आत्मा की खबर नहीं। आहाहा ! आत्मा क्या चीज़ है ? ये तो जड़ - मिट्टी - धूल, रागादि, पुण्यादि तो पर वस्तु है, आहाहा ! जिसको सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो तो ये आत्म द्रव्य का विषय - (लक्ष किये बिना), ध्येय बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। धर्म की पहली सीढ़ी (सम्यग्दर्शन है)। छः ढाला में आता है न ? 'मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी' सूक्ष्म बात है भगवान ! उसने अनंत बार मुनिपना लिया, पंचमहाव्रत अनंत बार लिया, २८ मूलगुण अनंत बार किया, वह तो सब राग की क्रिया है। ये कोई आत्मा की शक्ति या आत्मा के गुण की क्रिया नहीं, आहाहा !

(यहाँ) कहते हैं कि, आत्मद्रव्य जो वस्तु है, वह अनंत अक्रम गुण से भरी है, क्या कहा ? एक साथ अक्रम अनंत शक्तियाँ अंदर हैं और शक्ति का क्रमवर्ती परिणमन होता है। यहाँ (शुद्ध) परिणमन लेना है, विकार नहीं। यह भगवान आत्मा एकरूप वस्तु,

उसके दरबार में अनंत शक्तियाँ हैं। संख्या से अनंत शक्तियाँ (हैं) कितनी ? कि आकाश का प्रदेश है न ? जीव जो है, जीव जो अनंत है, उससे अनंतगुनी संख्या परमाणु की है। यह एक चीज़ नहीं। यह तो टुकड़ा - एक-एक परमाणु - परम अणु - सूक्ष्म अणु-टुकड़ा करते-करते, करते आखिर के टुकड़े को परमाणु कहते हैं। तो इस जगत में जीव की संख्या अनंत हैं, (और) उससे अनंतगुना परमाणु हैं। और परमाणु की संख्या से तीन काल का समय अनंतगुना है, आहाहा ! एक `क...' बोलने में असंख्य समय जाता है। काल का असंख्य समय (है)। उसके खण्ड करते-करते आखिर का समय रहे, ऐसा एक समय (है)। (ऐसा) `क...' बोलने में असंख्य समय जाता है। तो ये त्रिकाल का जो समय है, वह परमाणु की संख्या से अनंतगुना है। सूक्ष्म है भगवान ! अंदर तेरी चीज़ महान है (उसकी) खबर नहीं। और ये तीन काल के समय से आकाश नाम का एक पदार्थ है यह जगत में - चौदह ब्रह्मांड में तो है। और खाली भाग - अलोक है, वहाँ भी आकाश है। तो ये आकाश का कोई अंत नहीं। यहाँ कहते हैं कि आकाश नाम का एक अरूपी पदार्थ है। वह जगत- लोक और अलोक, सब में एक पदार्थ व्यापक है। और उस आकाश का कहीं अंत नहीं। अनंत... अनंत... अनंत... अनंत... अनंत... अनंत... तो आकाश का कहीं अंत नहीं। अंत हो तो पीछे क्या ? आहाहा ! Logic से न्याय समझना चाहिए ना ? समझ में आया ? ये आकाश नाम का जो पदार्थ है वह लोक-जगत, चौदह ब्रह्मांड और अलोक खाली (भाग), वह सब में व्यापक है। अनंत... अनंत... अनंत दसों दिशाओं में कहीं अंत नहीं। (ऐसे) आकाश नाम के पदार्थ में एक परमाणु जो Point है - (वह) जितने में रुके उतनी ज़गह को प्रदेश कहने में आता है। ऐसे आकाश के प्रदेश अनंत हैं। किससे अनंत है ? कि तीनकाल के समय से भी आकाश का प्रदेश अनंतगुना है। यह तो भगवान की वकालत है, आहाहा !

उसने आत्मा क्या चीज़ है, ये समझने का कभी प्रयत्न किया ही नहीं। ऐसा किया, ऐसा किया। एक तो संसार में पाप किया। धंधा-पानी, स्त्री - कुटुंब - परिवार, धंधा अकेला पाप का धंधा और धर्म के नाम से आया तो दया, दान, व्रत, भक्ति पूजा ये (सब) पुण्य का धंधा (है) - यह आत्मा का धंधा नहीं, आहाहा ! (यहाँ) कहते हैं कि आकाश नाम का पदार्थ अमाप... अमाप... है। अनंत जीव और अनंत परमाणु उसका क्षेत्र तो असंख्य योजन में है। परंतु पीछे क्या है ? आकाश नाम का पदार्थ है उसका अंत कहाँ ? उसका विचार कर पहले। नास्तिक हो तो पहले विचार कर। ये चीज़ आकाश का अंत कहाँ ? है अंत ? तो अंत कहाँ ? ऐसी चीज़ तर्क से नहीं समझने में आती - स्वभाव की दृष्टि से समझने में आती है। जो क्षेत्र है वह अंत बिना का है। उसका

प्रदेश अनंत है और उससे अनंतगुनी शक्तियाँ एक जीव में हैं। आहाहा ! अरे...! भगवान तुझे खबर नहीं तेरे अंदर में अनंती शक्तियाँ भरी पड़ी हैं, आहाहा !

परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव दिव्यध्वनि द्वारा जगत को कहते थे। उनकी तो (बोलने की) इच्छा है नहीं। वे तो सर्वज्ञ वीतराग हैं। इच्छा बिना ॐ ध्वनि निकलती थी और वर्तमान महाविदेह क्षेत्र में निकलती है। ये दिव्यध्वनि में ऐसा आया, प्रभु ! तू एकबार सुन तो सही। तू एक द्रव्य-वस्तु है लेकिन तेरी ज्ञान, दर्शन, आनंद ऐसी अनंत शक्तियाँ हैं और कितनी अनंत हैं ? कि आकाश का अंत नहीं इतने प्रदेश से भी अनंतगुनी शक्तियाँ तेरे में हैं। सुख आदि उसका गुण है। (ऐसे) अनंत गुण हैं।

यहाँ कहते हैं कि, आत्मद्रव्य जो वस्तु है, उसमें अनंतगुण अक्रमी है। अक्रम माने एक साथ अनंतगुण है। जैसे शक्कर में (मिसरी में) मीठास, सफेदाई एक साथ है, ऐसे आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनंद आदि अनंत शक्तियाँ एकसाथ हैं। तो उसको अक्रम कहते हैं। अक्रम नाम एक के पीछे एक, ऐसा नहीं। (लेकिन) एक साथ अनंत शक्तियाँ हैं, आहाहा ! और उसकी पर्याय जो होती है - अवस्था - वह क्रमवर्ती (है)। अनंत गुण की एक समय में एक-एक गुण की एक-एक पर्याय - दशा - हालत ऐसी अनंत गुण की एक समय में क्रम से होनेवाली अनंती पर्याय है। ऐसा कठिन है बापू ! कहीं सुना भी नहीं हो। जैन में जन्म हुआ हो, जे नारायण... (करके चला जाये)। आहाहा !

परमेश्वर, जिनेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं कि, प्रभु ! एक बार सुन तो सही। तेरे घर में क्या है ? समझ में आया ? तेरे घर में तो अनंत शक्तियाँ हैं। एक-एक शक्ति भी अनंत सामर्थ्यवाली है और एक-एक शक्ति की पर्याय अनंत हैं, आहाहा ! पर्याय समझते हो ? अवस्था - हालत - दशा। जैसा सोना है, सुवर्ण है, वह द्रव्य है और उसमें पीलापन, चीकनापन, वजन है वह उसकी शक्ति-गुण है। उसकी अंगुठी, कड़े, कुंडल होते हैं वह उसकी अवस्था है। समझ में आया ? ऐसे भगवान आत्मा, एक समय में द्रव्य है। ये सांकली है, सांकली होती है न सांकली ? चेन : (chain) हजार मकोड़े होते हैं न उसमें ? मकोड़े को क्या कहते हैं ? कड़ी, कड़ी कहते हैं। हजार कड़ी के एक समुदाय की एक सांकली। ऐसे आत्मा, `असंख्य प्रदेशी इति आत्मा।' एक परमाणु (आकाश की जितनी ज़गह) रोके उसका नाम प्रदेश (है)। ऐसा असंख्य प्रदेशी भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी है और ये असंख्य प्रदेश में, एक-एक (प्रदेश में) अनंत गुण सर्व व्यापक है। समझ में आया ?

इन शक्तियों में पहली जीवत्व शक्ति लेंगे। पहले थोड़ा सा विचार आया था। (लोग) सुने तो सही। अरे ! सुन तेरी चीज़ क्या है, भैया ? तुझे खबर नहीं और धर्म

हो जाये (ऐसा कहाँ से होगा ?)। प्रभु ! जैन धर्म कोई अलौकिक चीज़ है। आहाहा ! ये कोई संप्रदाय नहीं है। यह तो वस्तु का स्वरूप है।

(यहाँ) कहते हैं, आत्म द्रव्य - जैसे सांकली है न ? चेन कहते हैं चेन। ऐसे हज़ार मकोड़े की कड़ी। ऐसे सांकली समान आत्मा और कड़ी समान उसमें असंख्य प्रदेश हैं और जैसे एक कड़ी में सोना-चीकनापन आदि है, ये उसके गुण है और उसमें अँगुठी - कड़े आदि का, जो परिवर्तन होता है वह पर्याय है। ऐसे भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी है। सर्वज्ञ परमेश्वर के अलावा किसी ने देखा नहीं है। सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव - उन्होंने आत्मा को असंख्य प्रदेशी देखा है। यानी ? अर्थात् अंदर में यहाँ जो अंश है, वह यहाँ नहीं, यहाँ जो (अंश) है, वह यहाँ नहीं। यह (शरीर) तो जड़ है। परंतु आत्मा असंख्य प्रदेशी है। जैसे एक हज़ार कड़ी है, वैसे असंख्य प्रदेश हैं। (असंख्य प्रदेश) वह उसका क्षेत्र है। द्रव्य की / वस्तु की क्षेत्र-भूमि है और उसमें ज्ञान आदि गुण है वह शक्ति है। यह शक्ति अनंत हैं और अनंत शक्ति की समय-समय में अवस्था पलटती रहती है; कूटस्थ नहीं - पर्याय पलटती है। द्रव्य - गुण कूटस्थ है। द्रव्य और शक्तियाँ कूटस्थ हैं। पर्याय पलटती है तो पर्याय पलटती है उसको क्रमवर्ती कहते हैं। क्रमे-क्रमे वर्तनेवाली दशा को क्रमवर्ती कहते हैं और एक साथ रहनेवाले गुण को अक्रम कहते हैं। ये अक्रमवर्ती और क्रमवर्ती (गुण) - पर्याय के समुदाय को आत्मा कहते हैं। भैया ! सूक्ष्म बात है। समझ में आया ?

(यहाँ) कहते हैं कि, क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती जो द्रव्य / वस्तु है, इसमें एक साथ रहनेवाली शक्तियाँ और समय-समय में बदलती दशा (एक साथ है)। जब आत्मा का भान नहीं था तो अज्ञान था और भान हुआ तो ज्ञानदशा हुई। यह अवस्था पलट गई। आत्मा का भान नहीं था तब दुःख दशा थी और आत्मा का भान हुआ तो मैं सच्चिदानंद प्रभु पूर्ण आनंद परमात्म स्वरूप हूँ। आहाहा ! ऐसी दृष्टि जब हुई तो दुःख की दशा पलटकर आनंद की दशा हुई, आहाहा ! समझ में आया ? तो यह दशा पलटती है उसको पर्याय कहते हैं।

यहाँ यह कहते हैं कि, अक्रमवर्ती शक्तियाँ और क्रमवर्ती पर्याय उसका समुदाय वह आत्मा है। (सभी बातें) न्याय से हैं। न्याय समझते हो न ? न्याय में 'नी' धातु है। 'नी' नाम ज्ञानस्वरूप जैसी चीज़ है उस ओर ले जाना उसका नाम न्याय। न्याय में 'नी' धातु है। तुम्हारी वकालत के न्याय नहीं हाँ ! यह तो भगवान के घर का (न्याय है)।

जैसी चीज़ है उस ओर 'नी' धातु नाम ज्ञान को ले जाना, उसका नाम न्याय

(है)। तो यहाँ न्याय से ये बात सिद्ध करते हैं। भगवान ! तेरी चीज़ को एकबार सुन तो सही। आहाहा ! उस चीज़ की दृष्टि कभी तुझे हुई नहीं। क्योंकि जाने बिना दृष्टि कैसे हो ? जो चीज़ कैसी है वह ज्ञान में आये बिना दृष्टि कहाँ से हो ? समझ में आया ? तो यह चीज़ में अक्रमवर्ती और क्रमवर्ती - पर्याय क्रमे-क्रमे होनेवाली और शक्ति एक साथ रहनेवाली - ये दो का समुदाय यह आत्मा है। समझ में आया ? भाषा तो सादी है भगवान ! भाव तो जो है वह है। यह तो तीन लोक के नाथ की बात है। पहले उसको ज्ञान में सत्यता का निर्णय तो करना पड़ेगा कि नहीं ? तो ये कहते हैं। देखो ! ``**आत्मद्रव्य**'' - ये इतनी व्याख्या की। ``**आत्मद्रव्य...**'' आत्मद्रव्य क्या ? कि अनंत गुण और अनंत पर्याय का पिण्ड वह द्रव्य। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भगवान ! ऐसी बात है।

अरेरे...! ऐसा मनुष्यपना और उसमें जैन धर्म में अवतार (मिला)। और ये चीज़ न समझे तो भव (भ्रमण) का अंत नहीं आयेगा, आहाहा ! चौरासी के अवतार करके (मर जायेगा)। अपनी चीज़ की महत्ता और क़ीमत का ख्याल नहीं करके, पर चीज़ की क़ीमत और राग की क़ीमत और एक समय की पर्याय की क़ीमत करके, मिथ्यादृष्टि चार गति में घूमते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! समझ में आता है न भैया ? भाषा बहुत (सादी है)। हिन्दी में थोड़ा फेरफार आ जाये। तुम्हारी जैसी हिन्दी है, वैसी नहीं है।

``**आत्मद्रव्य...**'' पहले ये आत्मद्रव्य की व्याख्या की। `**आत्मद्रव्य**' शब्द पड़ा है न ? तो ये भगवान आत्मा वह द्रव्य। द्रव्य क्यों कहा ? कि जैसे जल में तरंग उठती है, वैसे भगवान आत्मा में (पर्याय उठती है)। `द्रवति इति द्रव्यम्' पर्याय `द्रवति' - पर्याय अंदर से निकलती है, अंदर नज़र करनी पड़े। ये वीतराग का मार्ग संप्रदाय में पड़े हैं, उनको सुनने (नहीं मिले)। आहाहा ! बापू ! ये वस्तु क्या है ? अरिहंत कौन हैं ? और उन्होंने तत्त्व कैसा जाना ? और कैसा कहा ? ये सब समझे बिना जैनपना है नहीं। जैन कोई संप्रदाय नहीं (है)। जैसी चीज़ अनंत गुण और पर्याय का पिण्ड है, ऐसी अंतर में दृष्टि करने से मिथ्यात्व का नाश होता है और सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है। उसका नाम जैन कहने में आता है। आहाहा ! समझ में आया ? ``**आत्मद्रव्य...**'' - ये एक शब्द का इतना अर्थ हुआ। क्रम - अक्रम गुण और पर्याय के पिण्ड को आत्मद्रव्य कहते हैं। समझ में आया ?

वस्तु अंदर भगवान आत्मा (चैतन्य स्वरूपी है)। यह (शरीर) तो मिट्टी - धूल - जड़ है। अंदर कर्म भी जड़ है और अंदर में पुण्य - पाप का भाव होता है - कृत्रिम - एक क्षण की अवस्था (होती है) वह भी परमार्थ से तो अचेतन है, यह चेतन की जात

नहीं, आहाहा ! और चेतन जो है वह तो पुण्य - पाप के परिणाम से रहित, अनंत शक्ति का संग्रहालय (है) संग्रहालय (अर्थात्) अनंत शक्ति का संग्रह + आलय - संग्रह का स्थान है, स्थान को आलय कहते हैं न ? आहाहा ! भगवान आत्मा तो.... आहाहा ! अनंत शक्ति का संग्रहालय (है)। समझ में आया ? एक शक्ति नहीं अनंत शक्तियों हैं। प्रभु ! और एक-एक शक्ति में भी अनंत ताकात है, आहाहा !

एक-एक शक्ति - गुण में अनंत गुण का रूप है। थोड़ी सूक्ष्म बात आयी, आहाहा ! क्या कहा ? कि, जैसे आत्मा ज्ञानस्वरूप है और उसमें एक अस्तित्व नाम का - सत्ता - होनेपना का एक गुण है। अस्तित्व - `है' न ? (है) न ? `है' इसकी एक शक्ति है और एक ज्ञान शक्ति है। ऐसी अनंत शक्तियाँ (हैं)। एक ज्ञान शक्ति है, उसमें (आत्मा में) अस्तित्व गुण है ये अस्तित्व गुण उसमें (ज्ञान में) नहीं। एक शक्ति में दूसरा गुण नहीं परंतु एक शक्ति में दूसरी शक्ति का रूप है। अर्थात् भगवान आत्मा ज्ञान है। यहाँ जीवतर शक्ति कहेंगे। जीवतर शक्ति में तो अनंत आनंद, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य यह लेंगे। ऐसी जो आत्मा की जीवत्व शक्ति है, यह शक्ति में अस्तित्व नाम का एक दूसरा गुण है। (उसका रूप है)। यह गुण है तो वह आनंद प्राण, ज्ञान प्राण में (अस्तित्व) गुण नहीं आता, परंतु गुण का रूप आता है। अर्थात् ये आत्मा ज्ञान `है', आनंद `है', तो यह `है' नाम की शक्ति का रूप अपनी वज़ह से अंदर में आया। आहाहा ! सत्ता का गुण भिन्न रहा। वह तो निमित्त है। एक गुण में दूसरा गुण तो निमित्त है, सूक्ष्म बात है, भगवान !

यह तो तीन लोक के, नाथ जिनेश्वर का पंथ - मार्ग है, भाई ! समझ में आया ? यहाँ एक जीवतर शक्ति कहेंगे जिसमें ज्ञान - दर्शन - आनंद और वीर्य यह शक्ति से, जीवतर - जीव जीता है। अपने जीव का टिकना - रहना (इस शक्ति से होता है)। जीवत्वशक्ति पहले क्यों ली ? कि समयसार की दूसरी गाथा में आया, `**जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो**' पहली जीवतर शक्ति वहाँ से ली है। पहली गाथा वह है `**वंदित्तु सव्वसिद्धे ध्रुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते, वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं**' १. कुंदकुंद आचार्य कहते हैं कि, मैं आत्मा की बात कहूँगा - `**सुदकेवलीभणिदं**' श्रुतकेवली और केवलियों ने कही हुई बात हम तुम को कहेंगे। जिन भगवान को तीन काल का ज्ञान है, उन्होंने आत्मा क्या कहा ? वह तुमको कहेंगे, आहाहा ! और (वैसा ही) कहते हैं। ऐसा कहा कि, हम भी हमारी पर्याय में पूर्ण सिद्ध भगवान जो अशरीरी हुए, इन अनंत सिद्धों को हम अपनी पर्याय में स्थापन करते हैं और तुम्हारी - श्रोता की पर्याय में भी अनंत सिद्धों को स्थापन करके हम समयसार कहेंगे, आहाहा ! सूक्ष्म बात है प्रभु ! क्या हो सकता

है ? मार्ग तो अभी गुम हो गया है, और कुछ का कुछ मान लिया है, आहाहा !

भगवान आत्मा ! जीवतर शक्ति कहते हैं न ? जीवन माने टिकना। किससे (टिकना) ? अपने ज्ञान प्राण, आनंद प्राण, दर्शन प्राण, वीर्य प्राण - ये अंदर शक्तियाँ हैं। यह शक्ति के प्राण से जीवन जीता है। यह शरीर से जीता है, कि राग से जीता है, ऐसा नहीं। यहाँ कहते हैं कि, जीवतर शक्ति में चार प्राण - भावप्राण हैं। अंदर में ज्ञान प्राण आया तो ज्ञान में अस्तित्वगुण है। यह गुण आया नहीं। परंतु ज्ञान `है' ऐसा आया, यह अस्तित्व (का) रूप उसका है।

श्रोता : रूप यानी निमित्त आया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, रूप यानी अपनी शक्ति का स्वरूप आया। अस्तित्व नाम का ज्ञान में स्वरूप है। आहाहा ! एकबार सुने तो सही, प्रभु ! यह बात कोई साधारण नहीं। ये कहीं सुनने में आती नहीं। तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव आत्मा को ऐसा फरमाते हैं और ऐसा है कि, जिसमें अनंत शक्तियाँ हैं। यह एक शक्ति दूसरी शक्ति रूप होती नहीं। नहीं तो अनंत संख्या रह सकती नहीं। परंतु एक शक्ति का रूप प्रत्येक में आता है। जीवतर शक्ति (यानी) जीवन। आत्मा का जीवन ज्ञान, दर्शन, आनंद से है, आहाहा ! समझ में आया ? उसका टिकना (वह) अपने ज्ञान - दर्शन - आनंद से टिक रहा है। बाहर से टिक रहा है, शरीर में रहने की योग्यता से टिक रहा है, ऐसा है नहीं। ये टिक रहा है अपने ज्ञान, दर्शन, आनंद, सत्ता, वीर्य उससे वह टिक रहा है। जीव की जीवन शक्ति से (टिक रहा है)। जीव की जीवन शक्ति - गुण - स्वभाव है। इस शक्ति में चार प्राण (हैं)। ज्ञान, दर्शन, आनंद, वीर्य - उसके जीवन का ये प्राण है। इसमें एक ज्ञान प्राण है। सब कहते हैं न ? कि दस प्राण से आत्मा जीता है। पाँच इन्द्रिय मन - वचन- काया ये तो जड़ का प्राण है। यह तो मिट्टी के प्राण है, प्रभु ! और तेरी अशुद्ध पर्याय में दस प्राण से जीवन है, वह भी तेरा वास्तविक जीवन नहीं। अशुद्ध क्या (है) ? पाँच इन्द्रिय की योग्यता से, आयुष्य में रहने की योग्यता से, श्वास की योग्यता से जो रहा है, वह अशुद्ध प्राण की पर्याय है - वह तेरी चीज़ नहीं, आहाहा ! तेरी चीज़ में वह गुण (भी) नहीं और तेरी चीज़ में उसकी पर्याय भी नहीं। आहाहा ! यह तो बाल की खाल (उतारने जैसा है)। बात तो ऐसी है, बापू ! आहाहा !

(यहाँ) कहते हैं कि, एकबार सुन तो (सही) प्रभु ! तू कैसा है ? कहाँ है ? किस प्रकार से है ? समझ में आया ? ऐसा जाने बिना उसमें (स्वरूप में) दृष्टि होगी नहीं और दृष्टि हुए बिना सम्यग्दर्शन - सत्य दर्शन - जैसी सत्य वस्तु है, जैसा सत् है, वैसा दर्शन कभी होगा नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ दूसरा कहना है कि, ``**आत्मद्रव्य के कारणभूत**'' आत्मद्रव्य के कारणभूत, है ? ``**ऐसे चैतन्यमात्र भाव का धारण जिसका (लक्षण)...**'' वह चैतन्य मात्र चेतना... चेतना... जानना - देखना, चैतनमात्र, ऐसा जो अपना भाव का धारण जिसका (लक्षण) है। आहाहा ! यह तो भाई अध्यात्म शब्द है। ये कोई कथा-वार्ता नहीं है। यह तो एक-एक शब्द में कितनी गंभीरता है (उसकी) खबर नहीं, आहाहा !

कहते हैं कि ``**आत्मद्रव्य...**'' वस्तु - भगवान, उसका कारणभूत। आत्मद्रव्य को टिकनेका - जीवतर - जीवन का, ``**...कारणभूत ऐसे चैतन्मयमात्र भाव का धारण (जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है)**'' चैतन - जाणन - देखन स्वभाव, ऐसे भाव का (धारण करनेवाला है)। आत्मा भाववान है और चेतनमात्र उसका भाव है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है, बापू ! कभी समझी नहीं, सुनी नहीं, आहाहा ! अरेरे...! जिंदगी चली जाती है और देह छूटते ही कहाँ भवाब्धि - चौरासी के अवतार में चला जायेगा, भाई ! वहाँ तेरी दया करनेवाला कोई नहीं है। वहाँ कोई पांजरापोळ (पिंजरापोल = गौशाला) नहीं है (कि, तेरी दया करे)। तेरी चीज़ तेरे शरण में है उसकी तो तुझे खबर नहीं। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं प्रभु ! एकबार सुन तो सही। यहाँ तो भगवान कहकर बुलाते हैं। आचार्य महाराज दिगंबर संत, अमृतचंद्र आचार्य ७२ गाथा में भगवान आत्मा (कहकर बुलाते हैं)। अरे...! उसे कैसे बैठे ? आहाहा ! पामरता में पड़े हुए को प्रभुता कहने में (उसको) प्रभुता कैसे बैठे ? आहाहा ! आगे आयेगा आत्मा में प्रभुत्व नाम की शक्ति है। सातवीं प्रभुत्व नाम की शक्ति है। यह पहली शक्ति का वर्णन है।

(यहाँ) कहते हैं कि, जीवन शक्ति से आत्मा जीता है, टिकता है। तो जीवन शक्ति का आत्मद्रव्य का कारण कौन ? चैतन्यमात्रभाव (कारण) है। आहाहा ! उसका कारण - चैतन्यमात्र आत्मद्रव्य का कारण-उसका धारण (चैतन्यमात्र भाव) जिसका लक्षण है। ये तो वीतरागी बातें हैं। बापू ! क्या कहा ? ``**आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भाव का धारण जिसका लक्षण है**'' (अर्थात्) चैतनमात्र धारण करना जिसका लक्षण है। समझ में आया ? अरे...! ऐसे तो ११ अंग और ९ पूर्व के शास्त्र पढ़ लिये, उसमें क्या हुआ ? आहाहा !

भगवान आत्मा - आत्म द्रव्य वस्तु उसका टिकने का कारण, ऐसा चैतनमात्र भाव उसका धारण (किया हुआ है)। - आत्मा ने चैतनमात्र भाव को धारण किया है। उसने कभी राग और शरीर को धारण किया ही नहीं। समझ में आया ? समझ में आये उतना समझना, प्रभु ! यह तो भगवान की बात है, आहाहा ! जिनेश्वरदेव की यह बात और

कहीं नहीं है। जिनेश्वर, त्रिलोकनाथ परमात्मा महाविदेह में तो बिराजते हैं, समझ में आया ? यह आत्म विज्ञान है। लोग कहते हैं, यह विज्ञान नहीं। यह तो विज्ञान का विज्ञान है, प्रभु ! तुमने कभी किया नहीं, तेरे खयाल में कभी आया नहीं। भगवान आत्मा अनंत शक्ति का पिण्ड है, वह तुझे खयाल में कभी आया नहीं। तेरी क़ीमत तुमने की नहीं। समझ में आया ?

``**आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भाव...**'' जब कि चिति शक्ति बाद में कहेंगे। परंतु जीवन शक्ति का चिति शक्ति लक्षण है। बाद में दूसरी चिति शक्ति में कहेंगे समझ में आया ? परमार्थ से तो जीवनशक्ति ज्ञान, दर्शन, आनंद प्राण है। प्राण नाम उसकी शक्ति है। त्रिकाल भगवान आत्मा ज्ञान से, आनंद से, वीर्य से (टिका हुआ है)। अंदर वीर्य नाम शक्ति आत्मबल - जो स्वरूप की रचना करे। ऐसा आत्मा में बल है। ऐसा ज्ञान, दर्शन, आनंद और बल उसका धारण, आत्मद्रव्य का कारण, (ऐसा) चैतनमात्र (का) धारण (है)। आहाहा ! अरे...! प्रभु ! ऐसी बात सुनने न मिले। और कहाँ जायेगा ? और (क्या) होगा ? और दया करो, व्रत करो, उपवास करो, भक्ति करो, पूजा करो, (उसमें धर्म मान लिया)। भाई ! यह तो सब राग की क्रिया है। ये धर्म नहीं - भगवान ! तुझे खबर नहीं, आहाहा !

यह भगवान आत्मा तो चैतनमात्र का धारण जिसका स्वरूप - लक्षण का अर्थ (स्वरूप) किया। आत्म पदार्थ, उसका कारण चैतन्यमात्र जिसका धारण (है)। चैतनमात्र जिसका स्वरूप (है)। (उसने) इसको धारण किया है। साधारण में उपदेश चलता है, उससे अलग चीज़ है। समझ में आया ? यह जीवतर शक्ति की बात चलती है।

हमको समयसार तो ७८ की साल से मिला है। ५५ वर्ष हुए। हमें छोटी उम्र में धंधा का विचार था नहीं, पिताजी की दुकान थी, हम तो दुकान पर भी शास्त्र पढ़ते थे। कहते हैं कि, तेरे घर में क्या है प्रभु ? कि तेरे घर में तो जीवत्वशक्ति पड़ी है, आहाहा ! समझ में आया ? यह शक्ति कैसी है ? कि चैतन्य लक्षण जिसका धारण है ऐसा स्वरूप, ऐसी जीवत्वशक्ति (है)। देखो ! और यह शक्तिवान जो शक्ति को धरनेवाला, ऐसी अनंत शक्ति को धरनेवाला द्रव्य - वस्तु जो है, उस पर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। शक्ति (के भेद) ऊपर से भी (सम्यग्दर्शन) नहीं (होता)। शक्ति तो गुण है। तो गुणी के गुण के भेददृष्टि से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता, आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बात है, भाई !

ये जीवत्वशक्ति ``(**आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भाव रूपी...**)'' वस्तु भाववान है और शक्ति है वह भाव (है) शक्कर (मिसरी) है वह भाववान और मीठास और सफेदाई

है उसका भाव (है)। ऐसे भगवान आत्मा द्रव्य है वह भाववान और जीवत्वशक्ति - ज्ञान - दर्शन प्राण उसका भाव (है)। अभी पर्याय की बात नहीं।

``**आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भावरूपी भावप्राण का धारण करना**'' भाषा देखो ! (चैतनमात्र भाव) भावप्राण (है)। जड़ पाँच इन्द्रिय, मन-वचन-काया, आयुष्य और श्वास ये दस, (जड़ प्राण है)। वह तो जड़ की दशा है। अपनी पर्याय में पाँच इन्द्रिय क्षयोपशमपने हो। वह भी अशुद्ध निश्चयनय से पर्याय में है। उसके द्रव्य में - गुण में है नहीं, आहाहा ! और वह जीवत्वशक्ति चैतन्य भावप्राण - आनंद और ज्ञान में धरनेवाला, ऐसा शक्ति का धरनेवाला भगवान ! उस पर दृष्टि करने से चेतन भावप्राण की परिणति - क्रमवर्ती दशा होती है, आहाहा ! समझ में आया ? फिर से (लेते हैं)।

वस्तु जो चैतन शक्तिवान है, उसकी चैतन्य शक्ति है। चैतन यह द्रव्य है। उसकी शक्ति - चैतन्य शक्ति वह भाव है और इस भाव को धरनेवाला भगवान ऊपर दृष्टि देने से पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय होती है। ये क्रमवर्ती (पर्याय) होती है, आहाहा ! उसकी भी तकरार, क्रमवर्ती की भी तकरार।

आज (पेपर में) आया है। (एक आर्जिका कहती है) कि `एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का नहीं करता है ?! क्या है ? एकांत है।' अरे...! भगवान ! `क्या कर्म बिना आत्मा में विकार होता है ? और तुम चार गति में रखड़ते हो तो क्या कर्म बिना रखड़ते हो ?' (ऐसा उनको लगता है)। आहाहा ! अपनी भ्रांति और विकार से चार गति में रखड़ता है। `कर्म बेचारे कौन ?' वह तो धूल - मिट्टी - जड़ - पर है। `अपने को आप भूल के हैरान हो गया' अपनी चीज़ आनंदकंद प्रभु, सच्चिदानंद, आनंदस्वरूप (है)। सत् नाम शाश्वत आनंदस्वरूप, चिदानंद ज्ञान - आनंद का भान बिना, उसकी कीमत किये बिना मिथ्याभ्रम में `राग आदि मेरा है'। `शरीर मेरा है'। `पर्याय जितना मैं हूँ' ऐसा मान कर, भ्रांति से चार गति में रखड़ता है, समझ में आया ?

कहते हैं कि, ज्ञानमात्र भाव आत्मा में भावप्राण का धारण करना कि, ज्ञान - जानना, दर्शन - देखना, आनंद - सुखरूप दशा - सुखरूप शक्ति और वीर्य - बल शक्ति उसका - भावप्राण का धारण करना (वह) जीवत्व शक्ति का स्वरूप है। ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है - कुछ समझ में नहीं आये ऐसा नहीं है। ऐसी कोई चीज़ नहीं है, आहाहा ! यह तो परमेश्वर (का) वीतराग का मार्ग (है) बापू !

यह सब शरीर और वाणी धूल-धाणी है। यह पैसा, स्त्री, पुत्र कुटुंब सब मसान की शान है। मसान का भपका। मसान समझते हों ? स्मशान में जो हड्डी होती है न ? उसमें फासफुस (फोस्फरस) होता है। चमक-चमक होता है। छोटे बच्चे स्मशान में जाये

तो उसे कहे कि, भूत लगता है। (वह) भूत नहीं - हड्डी में फासफुस होती है (उसकी चमक होती है)। ऐसे जगत में आत्मा के सिवा जगत की ये सभी (चीज़) फासफुस है, समझ में आया ? आहाहा ! ये पैसे, और बड़े बंगले धूल में तेरी चीज़ है क्या ? उसकी कीमत करता है, प्रभु ! ये अनंत लक्ष्मी का पिण्ड प्रभु ! अनंत-अनंत लक्ष्मी का - शक्ति का पिण्ड प्रभु ! उसकी तो प्रतीति नहीं - कीमत नहीं और अज्ञानी को इस धूल की कीमत (है)। आहाहा ! ये पैसेवाले हैं, और ये सेठ हैं। सेठ हैं कि हेठ हैं सब ? धूल में भी सेठ नहीं, कौन कहता है सेठ ?

यहाँ तो अनंत आनंद का नाथ, अनंत शक्ति का भंडार उसकी जिसको प्रतीति और अनुभव हो वह श्रेष्ठ और सेठ है। यहाँ तो ऐसी बात है, बापू ! दुनिया से दूसरी जात है। बहुत आदमी बाहर से आये हैं, सेंकड़ों गाउ (गाम से) दूर से आये हैं। थोड़ा सुने तो सही ! यहाँ इतनी अनुकूलता - प्रतिकूलता हो। घर जैसी अनुकूलता यहाँ कहाँ से हो ? तो भी बाहर से आये हैं न ? सुने तो सही कि प्रभु ! तेरी चीज़ क्या है ? तुने कभी सुना भी नहीं और तेरी चीज़ की कीमत तुझे आयी नहीं। क्योंकि नज़र में वह चीज़ ली नहीं। वर्तमान नज़र में इन्द्रिय का विषय लक्ष में लिया, समझ में आया ? और भगवान आदि पर द्रव्य है उसे लक्ष में लिया। वह भी इन्द्रिय का विषय है।

समयसार की ३१ गाथा है उसमें ऐसा लिया है, थोड़ी सूक्ष्म बात है। '**जो इन्दिये जिणित्ता**' जो इन्द्रिय को जितते हैं वह अनिन्द्रिय की कीमत करते हैं। अनिन्द्रिय भगवान आत्मा अनंत शक्ति का पिण्ड प्रभु ! (है)। इन्द्रिय के तीन प्रकार (हैं)। (१) जड़ इन्द्रियाँ। (२) और अंदर भाव इन्द्रिय जो ज्ञान से पर जानने में आता है ये भाव इन्द्रियाँ। (३) और (इन्द्रिय-विषय) ज्ञान में इन्द्रिय में जानने में आते हैं भगवान, स्त्री, कुटुंब ये सब इन्द्रिय हैं। तीन (प्रकार की) इन्द्रियाँ (हैं) आहाहा ! क्योंकि (ये सब) इन्द्रिय का विषय है। भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा वह भी इन्द्रिय का विषय है। अपना स्वरूप (है) यह अनिन्द्रिय का विषय है, समझ में आया ? तो ३१ गाथा में ऐसा कहा ''**जो इन्दिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं**'' जिसने द्रव्य इन्द्रिय, भाव इन्द्रिय और इन्द्रिय का विषय, तीन का लक्ष छोड़कर, ज्ञान स्वभाव को अधिक - भिन्न किया है। भगवान आत्मा ज्ञान स्वभाव से पर से अधिक - भिन्न पड़ा है, उसका अनुभव करे। (उसने) इन्द्रिय को जीत लिया (कहते हैं)। और उसका नाम सम्यक्दृष्टि है। आहाहा ! यहाँ ये कहते हैं। देखो !

''**भावप्राण का धारण करना जिसका लक्षण है...**'' जीवत्व शक्ति का भाव - ज्ञान, दर्शन, आनंद ये प्राण है। प्राणी आत्मा का ये प्राण है। आहाहा ! भगवान आत्मा प्राणी, उसका आनंद, ज्ञान, दर्शन आदि प्राण है। (इस) प्राण से उसका जीवन है, आहाहा !

ऐसे प्राण से जीता है, प्राण से जी रहा है और जीयेगा, आहाहा ! ऐसी बातें हैं ! समझ में आया ?

जीवतर शक्ति जो है वह अनंत शक्ति में व्यापक है। क्या कहा समझे ? अनंत शक्तियाँ गुण हैं। शक्तियाँ कहो, गुण कहो, स्वभाव कहो, भाव कहो (सब एकार्थ है) तो एक भाव सर्व में व्यापक है। अनंत में व्यापक है। आहाहा ! वढ़वाण में किसीने एक मुमुक्षु को पूछा था कि, `निमित्त से कुछ होता नहीं ऐसा मानते हो तो सोनगढ़ क्यों जाते हो ?' तो उन्होंने ज़वाब दिया कि, `निमित्त से होता नहीं ये दृढ़ करने को जाते हैं।'

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा ! प्राप्त होता है वह निमित्त से नहीं, ऐसा कहते हैं, आहाहा ! भगवान की वाणी से भी प्राप्त नहीं होता। ऐसा परमात्मप्रकाश में है। दिव्यध्वनि से भी प्राप्त नहीं होता। (क्यों) कि दिव्यध्वनि पर है। उसका लक्ष छोड़कर अपने में लक्ष करता है, तब प्राप्त होता है। ऐसी बातें हैं, बापू ! आहाहा ! भाग्यवान को तो सुनने मिले ऐसी चीज़ है। ये पैसेवाले भाग्यवान वह तो सब ठीक है। वे तो सब भांगशाली है, आहाहा ! भाग्यशाली नहीं - भांगशाली (है)। वीतराग की बात - अंतर के तत्त्व की सूक्ष्मता जिसे सुनने मिले - वह भाग्यशाली जीव है।

यहाँ कहते हैं कि ``**चैतन्यमात्रभावरूपी भावप्राण का धारण करना जिसका लक्षण है ऐसी जीवत्व नामक शक्ति ज्ञानमात्र भाव में - आत्मा में उछलती है**''। ये क्या कहते हैं ? पहले से (आचार्य भगवान) ऐसा कहते आये हैं कि, आत्मा `ज्ञानमात्र' है। ऐसा कहते आये हैं। `ज्ञानमात्र' कहते हैं तो एकांत हो जायेगा। तो अनंत शक्ति है न ? भाई ! सुन तो सही प्रभु ! ज्ञानमात्र के साथ में - यह जीव ज्ञान स्वरूप है, ऐसी ज्ञान की पर्याय जब होती है तो उस पर्याय में साथ में अनंत शक्तियाँ उछलती हैं। अनंत शक्ति की पर्याय उसमें परिणमती है। समझ में आया ? ऐसा मार्ग है, प्रभु !

``**चैतन्यमात्र भावरूपी भावप्राण का धारण करना जिसका लक्षण है ऐसी जीवत्व नामक शक्ति ज्ञानमात्र भाव में - आत्मा में उछलती है।**'' देखो ! क्या कहा ? जीवत्व शक्ति है (और) ज्ञान, दर्शन, आनंद, बल प्राण, ऐसी अनंत शक्तियाँ (हैं)। हमने `ज्ञानमात्र' आत्मा कहा तो आचार्य कहते हैं कि, उसमें `ज्ञानमात्र' अकेला नहीं - परंतु ज्ञानमात्र का जहाँ भान हुआ तो ज्ञान की परिणति में - पर्याय में आनंद आया। तो (इस) पर्याय में - ज्ञान की पर्याय में अनंती शक्ति की पर्याय उछलती है। अनंत शक्ति की पर्याय साथ में आती है। समझ में आया ? समझ में आये उतना समझो प्रभु ! आहाहा !

`सहेजे समुद्र उल्लस्यो, जेमां रतन तणांणा जाय। भाग्यवान कर वावरे, एनी मोतीए

मुठीयुँ भराय' आहाहा ! समुद्र उल्लस्यो छे, भगवान ! और अंदर तेरा अनंत गुण का समुद्र उमड़ पड़ा है। इसमें `ज्ञानमात्र' कहा था तो ज्ञानमात्र में एकांत हो जाता है, ऐसा तुझे लगे तो ऐसा है नहीं। आत्मा ज्ञानमात्र है, ऐसी दृष्टि - अनुभव हुआ तो ज्ञान की पर्याय के साथ अनंत गुण की पर्याय साथ में उछलती है। आहाहा !

श्रोता : शक्तियाँ जानने में आती हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने में आती है और परिणमन में आती है। जानने में तो परिणमन है इतना है। अनंत गुण की पर्याय ज्ञानमात्र की पर्याय के साथ में है, समझ में आया ?

यह तो शक्ति का वर्णन है ना ? तो द्रव्यस्वरूप, उसकी शक्तियाँ उसकी पर्याय में निर्मळपणे परिणमे उसे यहाँ पर्याय गिनने में आया है - मलिनपणे परिणमे यह बात यहाँ नहीं है। यह क्या कहा ? कि शक्ति है यह शुद्ध है और भगवान भी शुद्धता धरनेवाला शुद्ध है, तो उसकी दृष्टि करने से पर्याय भी शुद्ध होती है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पवित्र पर्याय को यहाँ क्रमवर्ती पर्याय में गिना है। राग होता है उसको क्रमवर्ती पर्याय में नहीं लिया है। विशेष कहेंगे....

उपयोग नामक लक्षण बतलाया सो किसका लक्षण है ? - कि, जीव का - आत्मा का। अब यदि आत्मा का लक्षण निमित्त के अवलंबन से हो तो लक्षण ही नहीं है। भाई ! यह तो धीरज से समझने की बात है। आत्मा का लक्षण तो उपयोग है, लक्ष्य आत्मद्रव्य है। अब इस उपयोग नामक लक्षण द्वारा लक्ष्य को जाने और वही लक्षण यदि अवलंबनपूर्वक परज्ञेय को जाने तो वह जीव का उपयोग ही नहीं। (परमागमसार - ५१५)

प्रवचन नं. २
शक्ति-१ दि. १२-०८-१९७७
आत्मद्रव्यहेतुभूतचैतन्यमात्रभावधारणलक्षणा जीवत्वशक्तिः ।।१।।

यह समयसार चलता है। उसमें शक्ति का अधिकार है। शक्ति का अर्थ क्या? आत्मा जो वस्तु है, आत्म पदार्थ है उसमें गुण है। जैसे शक्कर (मिसरी) पदार्थ है, उसमें मीठास - सफेदाई शक्ति है। ऐसे आत्मद्रव्य है वह वस्तु है और इसमें जीवत्व आदि शक्तियाँ ये गुण हैं। प्रश्न तो यह चलता है कि, अभी तक ऐसा कहा कि, आत्मा ज्ञानमात्र है, ऐसा कहते आये हैं। समझ में आया ? वह शरीर नहीं, वाणी नहीं, मन नहीं, पुण्य-पापरूप भी नहीं और एक समय की पर्यायमात्र भी नहीं। सूक्ष्म बात (है)। समझ में आया? भगवान आत्मा सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव जैसा देखा है, जैसा है वैसा कहते हैं। तो कहते हैं कि `ज्ञानमात्र' आत्मा ऐसा कहते आये (हैं) तो इसमें एकांत नहीं हो जाता ? क्या कहा? तो दूसरे गुण है नहीं, ऐसा हो जाये। तुम तो ज्ञानमात्र भगवान आत्मा उसकी दृष्टि करो तुम्हें आनंद आयेगा और उसका नाम धर्म है। ऐसा आपने कहा। तो उसमें तो ज्ञानमात्र एक ही गुण आया। एक ही गुण आया (और) अनंत गुण तो आये नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? तो उसमें तो एकांत हो जाता है। (यहाँ) अनेकांत की चर्चा करते हुए आचार्य भगवान शक्ति का वर्णन करते हैं। बात तो ऐसी है, भगवान ! क्या करें? अभी इस बात (में) ऐसा फेरफार हो गया। `चोर कोटवाल को दंड़ते हैं' ऐसी बात हो गयी। आहाहा ! क्या करें? उसे ये चीज़ ख्याल में आयी नहीं।

यहाँ कहते हैं, आया न ? ``**आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भाव का धारण जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है ऐसी जीवत्व शक्ति**'' आत्मा में है। आत्मा में जीवत्व शक्ति है तो इसका चार बोल मुख्यरूप से लिया। ज्ञानप्राण, दर्शनप्राण, आनंदप्राण (और) वीर्यप्राण, (सब) त्रिकाली (हैं)। ये त्रिकाली जीवन शक्ति में भावप्राण धारण करने की शक्ति

है। आहाहा ! समझ में आया ? ये पुण्य-पाप का धारण करना उसकी शक्ति में नहीं है। आहाहा ! दया, दान, व्रत, भक्ति आदि शुभभाव हो परंतु वह (विभाव) शक्ति का (-स्वभाव का) धारण करना उसका स्वभाव नहीं। आहाहा ! सूक्ष्म बात भगवान ! यह तो परमात्मा जिनेश्वर की वाणी है।

(यहाँ) कहते हैं कि, हमने ज्ञानमात्र आत्मा जो कहा - तो द्रव्य स्वभाव में ज्ञानमात्र के कारण दृष्टि ज्ञान ऊपर गई। वर्तमान पर्याय जो पर को देखती है, वह तो विपरीत दशा है। ये ज्ञान की पर्याय अपने (स्वयं को) देखने में जाती है। आहाहा !

भगवान आत्मा ! द्रव्य - वस्तु (और) जीवत्व शक्ति ये गुण - वस्तु और उस द्रव्य पर दृष्टि पड़ती है, द्रव्य की दृष्टि जब होती है, तो पर्याय में ये जीवत्व शक्ति का परिणमन आता है। जीवत्व शक्ति है (यह) त्रिकाल ज्ञान, दर्शन, आनंद प्राण को धरनेवाली शक्ति यह गुण है। द्रव्य त्रिकाली है, उसकी शक्ति (त्रिकाली) है और वह वर्तमान पर्याय त्रिकाली द्रव्य को जब पकड़ती है, तब जीवत्व शक्ति का तीन रूप हो जाता है। सूक्ष्म बात है, भगवान ! ये जीवत्व शक्ति द्रव्य में भी व्यापक है, गुण में भी व्यापक है और पर्याय में भी व्यापक हो जाती है। धीरे से समझने की चीज़ है, बापू ! ये वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर का कथन बहुत सूक्ष्म (है) और अपूर्व बात है। कभी उसने किया ही नहीं।

जो ज्ञान की वर्तमान दशा है, (वह) जिसकी है उसको देखती नहीं और जो पर्याय जिसकी नहीं उसको देखती है। वह तो विपरीत दृष्टि है, आहाहा ! समझ में आया ? तो कहते हैं कि जब ज्ञान की पर्याय - अवस्था जीवत्व शक्ति को धरनेवाला जीव - आत्मा, उस पर जब दृष्टि पड़ती है, तो जीवत्व शक्ति तीन रूप परिणमन करती है। समझ में आया ? (शक्ति) द्रव्य में रहती है, गुण में रहती है और पर्याय में (रहती है)। क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती गुण - पर्याय का पिण्ड वह आत्मा, ऐसा कहना है। सब बात सूक्ष्म है, भगवान !

एक भजन में आता है। `नंदलाल नहि रे आवुं रे घरकाम छे' अन्यमती में ऐसा आता है। श्रीकृष्ण को नंदलाल कहते हैं। श्रीकृष्ण की जो सखी थी वह ऐसा कहती थी कि, `नंदलाल नहीं रे तेरे पास नहीं आवुं, घर में काम है' वैसे ये `नंदलाल नहीं रे आवुं रे, घरकाम छे' पर्याय में ऐसी मान्यता अनादि से है कि घर में (स्व में) नहीं जाकर पर में जाती है।

`अध्यात्म पंचसंग्रह' है न ? उसमें बहुत लिया है, दीपचंदजी का किया हुआ (है)। उसमें `ज्ञानदर्पण' है। उसमें ये बात बहुत ली है।, बहुत ली है। शक्ति का वर्णन जो

विशेष हुआ तो एक दीपचंदजी ने किया है, थोड़ा समयसार नाटक में आता है। किन्तु उन्होंने स्पष्ट किया है। `ज्ञानदर्पण' में आखिर में एक सवैया है। `पंचसंग्रह' नाम का एक ग्रंथ है। इसमें पाँच ग्रंथ हैं। उसमें ऐसा लिया है। शक्ति का वर्णन बहुत किया है, दूसरा कोई ऐसा किया नहीं। `चिद्विलास' में और `पंचसंग्रह' में जीवत्व नाम की शक्ति का वर्णन भी बहुत किया है। दीपचंदजी समकिती थे, आत्मज्ञानी थे। शुरू-शुरू में ऐसा कहा है कि `मैं साधर्मी हूँ' दीपचंदजी साधर्मीकृत ऐसा मैं कहता हूँ। भगवान ! तुम्हारा तो मैं साधर्मी हूँ। ऐसा लिखा है। तुम्हारा द्रव्यस्वभाव यह मेरा साधर्मी है। पर्याय में भूल है उसे एक ओर रखो, ऐसा कहते हैं। तुम्हारा द्रव्य जो है वस्तु भगवान परिपूर्ण आनंदस्वरूप उस अपेक्षा से मैं भी द्रव्य हूँ और तुम भी द्रव्य हो, तो तुम मेरे साधर्मी हो। समझ में आया ?

जीवन शक्ति का वर्णन करते (हैं)। इसमें ऐसा लिया कि जीवन शक्ति जो पहली है वह सारे जगत को सुख देनेवाली है, समझ में आया ? ये जीवन शक्ति ज्ञान, दर्शन, आनंद, बल के प्राण को धरनेवाली - ऐसी शक्ति और शक्तिवान ऐसा भेद भी छोड़कर, आहाहा ! ये जीवन शक्ति और जीवद्रव्य शक्तिवान - ऐसा शक्ति और शक्तिवान की भेददृष्टि भी छोड़कर - ये भगवान पूर्णानंद जीवन शक्ति आदि अनंत शक्ति का धरनेवाला एकरूप ज्ञायक है। इस ज्ञायक पर दृष्टि देने से - ज्ञान भाव की परिणति जब होती है, (तो सब गुण की पर्याय साथ में उछलती है)। हमने कहा कि ज्ञानमात्र आत्मा है, तो ज्ञानमात्र की सम्यक्ज्ञान पर्याय आनंद सहित हुई। तो इस ज्ञान की पर्याय में - उत्पत्ति में अनंत गुण की पर्याय साथ में उछलती है। देखो है अंदर ?

``**आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भावरूपी भावप्राण का धारण करना जिसका लक्षण है।**'' यह तो अध्यात्मवार्ता है भगवान ! कोई कथा-वार्ता नहीं है। यहाँ तो वीतरागी संतों, दिगंबर मुनियों, वीतरागी मुनियों अतीन्द्रिय आनंद में झुलनेवाले, उनको विकल्प आया, तो ये शास्त्र बन गया। आहाहा ! उन्हें कोई दुनिया की पड़ी नहीं थी। परंतु ऐसा टीका करने का विकल्प बारबार आता है।

नियमसार में पद्मप्रभमलधारीदेव कहते हैं कि, मुझे वारंवार विकल्प आता है तो टीका लिखी है। मेरे मन में ऐसा आता है कि, नियमसार की स्पष्टता करना, ऐसा विकल्प आता है तो शास्त्र बन जाता है। समझ में आया ? (मुनिराज) ये विकल्प के भी स्वामी नहीं। जीवत्व शक्ति का धरनेवाला भगवान ! आहाहा ! उस पर दृष्टि देने से जीवन शक्ति का पर्याय में / उत्पाद-व्यय में परिणमन होता है, तो ज्ञान, आनंद, शांति, बल उसके परिणाम में - पर्याय में ज्ञानमात्र की पर्याय (के) साथ उछलती है। उछलती का

अर्थ उसमें उत्पन्न होती है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है।

एक शक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्यापती है। कैसे ? कि, जो जीवत्व शक्ति है ज्ञान, दर्शन, आनंद - अतीन्द्रिय आनंद और वीर्य प्राण जिसका - ऐसी शक्ति का धरनेवाला आत्मा (है)। आहाहा ! उस पर दृष्टि पड़ने से ज्ञान की पर्याय अपनी चीज़ को ज्ञेय बनाकर (परिणमन करती है)। आहाहा ! पर्याय में - ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय बनाकर (परिणमती है तो द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्याप्त हो जाती है)। भगवान ! मार्ग बहुत सूक्ष्म है।

अपनी ज्ञान की पर्याय व्यक्त - प्रगट है। निश्चय से तो ऐसा स्वभाव है - समयसार की १७-१८ गाथा में भगवान कहते हैं, पर्याय में द्रव्य ही जानने में आता है। पर्याय का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है। अज्ञानी की पर्याय में भी स्वपरप्रकाशक स्वभाव है। तो पर्याय में द्रव्य ही ज्ञेयरूप ज्ञान आता है, आहाहा ! सूक्ष्म बात, बापू ! मार्ग बहुत अलग भाई !

ये चौरासी के अवतारमें से निकलना (आसान नहीं है)। आहाहा ! बाहर में तो दुःख, दुःख (है)। आहाहा ! शरीर पर देखो तो मिट्टी - धूल है, पैसा देखो तो मिट्टी - धूल है। उसको देखने जाते हैं तो सामान्यरूप से अशुद्धता उत्पन्न होती है और अपने को अपनी पर्याय देखने जाती है तो शुद्धता उत्पन्न होती है, समझ में आया ? वर्तमान में तो बहुत गड़बड़ हो गई है। इसलिये ऐसा लगे कि, ये क्या कहते हैं ? अरेरे... ! भाई ! मार्ग तो ऐसा है, समझ में आया ?

श्रोता : यहाँ नया धर्म निकाल दिया न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ये नया धर्म नहीं, अनादि का (मार्ग) है। बिल्ली का बच्चा आसपास के बच्चे के परिचय में आ जाता है, तो बिल्ली सात दिन में बच्चे को बदल देती है। दूसरे स्थान में ले जाती है। बच्चा तो दूसरे स्थान में है। (कहने का) हेतु तो ये है कि बच्चे की आँखें सात दिन तक खुलती नहीं है। बिल्ली सात दिन सात तरफ की दिशा बदलती है और तब उसकी ऐसे आँख खुलती है। आँख खुलती है तब देखे, ओहो ! ये जगत है ? तो जब तुम देखता नहीं था तब भी जगत तो था।

छोटी उम्र में सब देखा है। उमराला-छोटा गाँव - पांच हज़ार की बस्ती। वहाँ १३ वर्ष रहे और ९ वर्ष पालेज दुकान पर रहे। भरुच के पास पालेज (है)। भरुच और वडोदरा के बीच में है। दुकान ५ वर्ष चलाई। वह सब धूल - धाणी, सारा पाप का धंधा (है)।

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि, तेरी चीज़ में जीवन नाम की शक्ति नाम गुण नाम सत् का सत्त्व, सत् द्रव्य का कस है। जीवत्व शक्ति ये कस है। आहाहा !

उस पर तेरी दृष्टि (कर)। शक्ति और शक्तिवान - उसका भी भेद छोड़कर, शक्तिवान जो आत्मा है - ज्ञायक - (उस) पर दृष्टि करने से जीवनशक्ति तीन में व्यापक हो जाती है। द्रव्य में जीवनशक्ति, गुण में जीवनशक्ति और पर्याय में जीवनशक्ति प्राप्त होती है। तो उसमें प्राप्त क्या होता है ? आनंद, ज्ञान, शांति आदि अनंत गुण की पर्याय की प्राप्ति (होती) है। (उस) जीवनशक्ति की पर्याय के साथ अनंत गुण की पर्याय उत्पन्न होती है, समझ में आया ? भाषा तो सादी है, भगवान ! भाषा आकरी (कठिन) नहीं है। भाव तो वीतराग का (है)। ऐसी चीज़ तो कहीं है नहीं। जैन परमात्मा (के) सिवा ऐसा मार्ग कहीं है नहीं, आहाहा ! वेदांत आदि ने (कुछ ज़गह में) आत्मा की बात की है। उपनिषद में बहुत की है, परंतु ये चीज़ नहीं। समझ में आया ? श्वेतांबर ने बात की है, परंतु ये चीज़ नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है, भगवान ! हमने तो करोड़ों श्लोक देखे हैं। श्वेतांबर में ४५ वर्ष निकाले हैं न ! ४३ वर्ष यहाँ हुए। ४५ और ४३, ८८ वर्ष हुए। करोड़ों श्लोक देखे हैं परंतु ये चीज़ नहीं। ये चीज़ तो दिगंबर संतों के सिवा और कहीं है नहीं। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि, जीवनशक्ति को धरनेवाला भगवान (है)। यहाँ तो आत्मा को भगवान कहते हैं। क्योंकि भग नाम लक्ष्मी, ज्ञान और आनंद की लक्ष्मी। वान नाम (ज्ञान और आनंद की) लक्ष्मी का स्वरूप उसका है। समझ में आया ? जीवनशक्ति भी उसकी लक्ष्मी है। (जीवनशक्ति) यह आत्मा का स्वरूप है। ये जीवनशक्ति का धरनेवाला भगवान उस पर पर्याय की दृष्टि वहाँ जाती है, तो पर्याय में आनंद की, ज्ञान की, शांति की पर्याय उत्पन्न होती है और वह पर्याय द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्याप्त हुई है। आहाहा ! और जीवनशक्ति में ध्रुव उपादान और क्षणिक उपादान दोनों आ जाते हैं। त्रिकाली जीवनशक्ति ध्रुव उपादान है और पर्याय में परिणमन हुआ - सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रादि पर्याय हुई (वह) क्षणिक उपादान है और अपने में उस क्षणिक उपादान का परिणमन, निर्मल पर्याय हुई तो उसमें व्यवहार का अभाव है। यह अनेकांत है। आहाहा ! इस शक्ति के परिणमन में व्यवहार का भाव आता ही नहीं। सूक्ष्म (बात) है, भगवान ! जो आत्मा की जीवन शक्ति है - गुण स्वभाव - उसका द्रव्य पर दृष्टि होने से जब परिणमन होता है, तो पर्याय में निर्मल ज्ञान, निर्मल दर्शन, निर्मल आनंद, शांति, प्रभुता, स्वच्छता ऐसी अनंत गुण की पर्याय की निर्मलता प्रगट होती है। उसका नाम धर्म और उसका नाम मोक्ष का मार्ग। उस मार्ग में व्यवहार का अभाव है, वह अनेकांत है। शक्ति के परिणमन में अशुद्धता आती नहीं। क्योंकि शक्ति पवित्र और शुद्ध है तो शक्ति का परिणमन शुद्ध होता है - अशुद्ध नहीं। अशुद्ध(ता) तो पर्यायदृष्टि के लक्ष से होती है। वह दृष्टि तो छूट गयी,

आहाहा ! समझ में आया ? थोड़ा समझो, आहाहा ! मार्ग ऐसा है।

ज्ञायकभाव एक वस्तु - ज्ञान का परिणमन - ज्ञानभाव ऐसा आत्मा को कहा; तो ज्ञानभाव के साथ में अनंत शक्ति है। एक ज्ञान ही है, ऐसा नहीं। उसका नाम अनेकांत है और उसकी जीवत्वशक्ति की ज्ञान परिणति जब होती है, तब निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि अनंत गुण की निर्मल पर्याय साथ में उत्पन्न होती है। राग का उसमें अभाव है, व्यवहार का उसमें अभाव है, उसका नाम अनेकांत है। व्यवहार से निश्चय होता है वह बात तो वस्तु में तीन काल में है नहीं। कठिन बात है। भगवान ! आहाहा ! क्या कहते हैं ?

पहले जब शक्ति पढ़ी थी (तब) २१ बोल उतारे थे। एक-एक शक्ति पर २१ बोल। एक शक्ति पर २१ बोल (उतारे थे)। देखना है ? (देखो !) अनेकांत को अब विशेष चर्चते हैं।

(१) क्रमरूप और अक्रमरूप अनंत धर्मसमूह जो कुछ जितना लक्षित होता है, वह सब वास्तव में एक आत्मा है। क्या कहते हैं ? आत्मा में जो अनंत गुण अक्रम है, (अर्थात्) एक साथ रहनेवाले (हैं)। और पर्याय क्रमे-क्रमे होती है, ये क्रम और अक्रम का समुदाय यह आत्मा है। समझ में आया ?

(२) ज्ञानमात्र एक भाव की अन्तःपातिनी अनंत शक्तियाँ उछलती हैं। जहाँ आत्मा का ज्ञानमात्र ऐसा अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ - त्रिकाली पर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन - ज्ञान जहाँ हुआ तो उसके साथ अनंत शक्ति की पर्याय भी परिणमन (करती है) - उछलती है। समझ में आया ? आहाहा ! ज्ञानमात्र भले ही हमने कहा। लेकिन जहाँ द्रव्य पर दृष्टि होने से ज्ञानमात्र की पर्याय हुई, तो उसमें अनंत शक्ति उछलती है। अनंत शक्ति एक समय में पर्याय में उत्पन्न होती है।

(३) क्रमवर्ती और अक्रमवर्तीरूप वर्तन जिसका लक्षण है। द्रव्य का लक्षण यह है। अक्रमवर्ती अनंत गुण और क्रमवर्ती उसकी पर्याय (है)।

(४) एक-एक शक्ति अनंत (शक्ति में) व्यापक है। एक-एक शक्ति अनंत(शक्ति में) प्रसरी है। एक शक्ति(का) क्षेत्र भिन्न है और दूसरी शक्ति का क्षेत्र भिन्न है, ऐसा है नहीं। आहाहा !

श्रोता : एक शक्ति अनंत में है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यापक है, पहले तो अभी व्यापक है - प्रसरी है, इतना कहना है। रूप है वह बाद में आयेगा।

(५) एक शक्ति अनंत में निमित्त है। एक-एक शक्ति दूसरे गुण को निमित्त है।

दूसरा गुण कारण है और एक गुण कार्य है, ऐसा भी कहने में आता है। निमित्त से कहने में आता है। समझ में आया ? ऐसा है। एक गुण कारण - दूसरा गुण कार्य। वही गुण कारण - वही गुण कार्य। सूक्ष्म बात, भाई ! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म (है)।

लोगों को बाह्य क्रियाकांड में रुचि और मूल चीज़ रह गई। पंच महाव्रत और मुनिपना अनंत बार लिया। उसमें आया न ? `मुनिव्रत धार अनंतबैर ग्रैवेयक उपजायो' ऐसी तो द्रव्यलिंगी की क्रिया अनंतबार की। वह तो पर की क्रिया है। राग की क्रिया है, - इसमें धर्म नहीं। वह तो शुभभाव है। धर्म से विरुद्ध भाव है। और मीठी भाषा में कहें तो शुभभाव अधर्म है।

जब अपने में एक शक्ति का परिणमन अनंत के साथ में हुआ, तो इसमें अनंत शक्ति साथ में परिणमती है और एक शक्ति दूसरे में निमित्त कहने में आती है। निमित्त का अर्थ कि, एक स्थिति है, दूसरे गुण में दूसरा गुण (निमित्त है)। एक-एक गुण में (गुण के परिणमन में) दूसरा गुण निमित्त कहने में आता है। उपादान तो अपना गुण है। सूक्ष्म है।

(६) एक शक्ति द्रव्य - गुण - पर्याय में व्यापती है। अभी कहा वह।

(७) एक शक्ति में ध्रुव उपादान और क्षणिक उपादान है। आहाहा ! यह तो दरिया है, प्रभु ! आत्मा में जीवत्वशक्ति है। त्रिकाली (स्वरूप) है वह ध्रुव उपादान है और उसका शुद्ध परिणमन होता है। द्रव्य पर दृष्टि होने से सम्यग्दर्शन आदि जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह पर्याय में क्षणिक उपादान है। राग का क्षणिक उपादान यहाँ है नहीं। यहाँ तो शक्ति शुद्ध है, उसका वर्णन है तो उसका परिणमन (भी) शुद्ध ही है। आहाहा !

प्रवचनसार में जहाँ ४७ नय चले हैं, वहाँ लिया है। क्योंकि वहाँ ज्ञान प्रधान कथन है। आत्मा में सम्यग्दर्शन, ज्ञान की परिणति हुई, इतनी तो शुद्धता है। और जितना राग रहा और राग का परिणमन है, इतना वहाँ कर्तापना है। करने लायक है उस अपेक्षा से (कर्तापना) नहीं। परंतु राग का परिणमन है, तो कर्ता है। ऐसा ४७ नय में लिया है। गंभीर बातें हैं, बापू !

यहाँ तो कहते हैं कि, आत्मा में आनंदस्वरूप है और जीवनशक्ति का अवलंबन लेनेवाली (पर्याय की) द्रव्य (पर) जब दृष्टि होती है, तो आनंद की पर्याय उत्पन्न होती है, उसमें दुःख की पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा है नहीं। आहाहा ! ऐसी बातें (हैं), भाई !

यहाँ दृष्टि का विषय लिया है। शक्ति है यह तो स्वभाव है। स्वभाव का धरनेवाला स्वभाववान है। ये इसकी अपेक्षा से (कथन) है, और जहाँ ज्ञानप्रधान कथन (होता है वहाँ

ऐसा कहते हैं कि) दृष्टि के साथ ज्ञान हुआ (उस) पर्याय में जितना राग है उसका कर्ता वह पर्याय है, भोक्ता भी पर्याय है। ऐसा लेते हैं। आहाहा !

श्रोता : यह मानना या वह मानना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों मानना। क्यों दोनों मानना ? कि, यहाँ समयसार में शक्ति की प्रधानता से वर्णन है। तो यह द्रव्य के गुण की प्रधानता से वर्णन है; गुण (तो) परिणमन करता है, वह अशुद्ध होता ही नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई ! परंतु जब (तक) उसकी परिणति - साधक है, तब तक बाधक राग का परिणमन तो है। मुनि को भी है। यह ज्ञान जानता है क्योंकि ज्ञान(का) स्वपरप्रकाशक स्वभाव है और दृष्टि का स्वभाव तो निर्विकल्पदृष्टि है, तो उसका विषय निर्विकल्प एक ही चीज़ है। क्या कहा ? समझ में आया ? सम्यग्दर्शन है वह निर्विकल्प वस्तु है और उसका विषय (भी) अभेद और निर्विकल्प है और ज्ञान का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है, तो राग (का) जितना परिणमन होता है वह मेरे से हुआ, मेरे में हुआ ऐसा ज्ञान जानता है। ये सब सीखने कहाँ जाये ? बहुत बात है, यहाँ तो सैकड़ों बातें हो गई हैं। ये समयसार तो १८ वीं बार चलता है। १७ बार तो एक-एक अक्षर का पूरी सभा में व्याख्यान हो गया (है)। यह १८ वीं बार चलता है। शक्ति का (वर्णन) तो १९ वीं बार चलता है। आहाहा ! यह तो भगवान का (मार्ग है) !

श्रीमद् राजचंद्र कहते हैं कि,

``जे स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दुःख अनंत;
समजाव्युं ते पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवंत।''
``रे गुणवंता रे ज्ञानी, अमृत वरस्या रे पंचमकाळमां''

आहाहा ! ``**जे स्वरूप समज्या विना**'' समझे बिना अनंत काल गया। जो स्वरूप समझे बिना काल गया अनंत। वह स्वरूप समजा आहाहा ! ``**समजाव्युं ते पद नमुं**'' ऐसी चीज़ की अनुभवदृष्टि हुई। ``**गुणवंता रे ज्ञानी, अमृत वरस्या रे पंचमकाळमां**'' यह तो बात दूसरी है। दुनिया की सब जानते हैं।

यहाँ तो १८ वर्ष की उम्र से शास्त्र पढ़ते हैं। शास्त्र का बहुत अभ्यास (किया)। ७० साल पहले की बात है। यह तो ८८ हुआ। दुकान पर हम बहुत शास्त्र पढ़ते थे। हमको सब भगत कहते थे। श्वेतांबर के सब शास्त्र देखे हैं। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारंग, सुयगडांग, अध्यात्म कल्पद्रुम, ऐसे पुस्तक पहले से बहुत देखे हैं। आहाहा ! लेकिन जब ७८ की साल में `समयसार' हाथा आया और पूर्व का संस्कार था, समझ

में आया ? ऐसा हो गया और बाहर में ऐसा कहा `**भगवंत ! समयसार तो अशरीरी होने का पुस्तक है**' जिसको सिद्ध होना है (उसके लिये) यह पुस्तक है। बाकी चार गति में रखड़ना, स्वर्ग आदि भव करना, ऐसा उसमें है नहीं। समझ में आया ? यहाँ ये कहते हैं, आया न ?

(८) एक-एक शक्ति में व्यवहार का अभाव है। यह अनेकांत (है)। ये क्या कहते हैं ? बहुत गंभीर (है) ! जीवनशक्ति को धरनेवाला द्रव्य - वस्तु - उसकी जब दृष्टि हुई तो जीवनशक्ति का परिणमन हुआ, वह निर्मल (परिणमन) हुआ। उसमें व्यवहार का - मलिनता का अभाव है। यह अनेकांत है। व्यवहार से निश्चय परिणति हुई, ऐसा नहीं। समझ में आया ? ऐसे `सूंठ ना गांगडे गांधी न थवाय' (गुजराती में कहावत है)। ऐसा यहाँ नहीं है। हम लोग ऐसा नहीं कहते ? सूंठ होती है न सूंठ ? एक हलदी का गांठीया और सूंठ का गांठीया - इससे गांधी (यानी पंसारी) हो जाता है क्या ? गांधी को तो बहुत चीज़ें चाहिए। ऐसे (शास्त्र के) दो-चार-पच्चीस बोल की धारणा कर ली तो हो गये ज्ञानी, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? क्या कहा ?

(शक्ति के परिणमन में) व्यवहार का अभाव (है)। जीवनशक्ति, आनंद शक्ति आदि भगवान आत्मा में है। तो इस आनंद शक्ति का धरनेवाला भगवान - द्रव्य, उस पर दृष्टि का स्वीकार हुआ तो पर्याय में निर्मल परिणति हुई, इसमें व्यवहार परिणति का अभाव है। उसका नाम अनेकांत है। यह निर्मल परिणति हुई ये व्यवहार से हुई (है), ऐसा है नहीं। आहाहा ! यह बड़ी गड़बड़ अभी करते हैं न ? (कहते हैं) व्यवहार कारण है, निश्चय कार्य है। व्यवहार से कार्य होता है। (यह सब मिथ्या मान्यता है)। लहसुन खाते-खाते कस्तुरी का डकार (नहीं) आता है, समझ में आया ? पहले के तो पंडित भी बहुत (समर्थ थे)। टोडरमल, बनारसीदास, भागचंदजी छाबड़ा की बात अलौकिक है ! पंडितों की २०० वर्ष पहले की बात अलौकिक थी ! आचार्य कहते थे, वही (बात) अनुभव से कहते थे। समझ में आया ? निमित्त से हुआ नहीं। ऐसा उसका अर्थ है। समझ में आया ? क्योंकि निश्चय शुद्ध चैतन्य आत्मा भगवान (का) (अर्थात्) अपना शुद्ध चैतन्य का जहाँ स्वीकार हुआ तो शुद्ध परिणमन हुआ। उसमें राग का उस क्षण में अभाव है। समझ में आया ?

द्रव्यसंग्रह की ४७ गाथा में व्यवहार से होता है, ऐसा आया है। नेमिचंद सिद्धांत चक्रवर्ती की गाथा है। `**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' अर्थात् ये ज्ञायक स्वरूप पूर्णानंद है उसकी दृष्टि करने में, ध्यान में दृष्टि आती है। अंदर में ध्यान लगाते हैं तब वह दृष्टि होती है। ध्यान में द्रव्य का ध्यान जहाँ हुआ, इतनी तो पर्याय निर्मल हुई, इतना तो निश्चय मोक्षमार्ग हुआ। `**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी**

णियमा' ऐसा पाठ है। ध्यान में निश्चय मोक्षमार्ग और व्यवहार मोक्षमार्ग साथ में है। उसका अर्थ यह हुआ कि, जितना अपना स्वभाव के आश्रय से निर्मलता हुई वह निश्चय है और राग बाकी रहा उसको आरोप देकर व्यवहार कहा। आरोप देकर व्यवहार कहा। व्यवहार मोक्षमार्ग (है) यह, (मोक्षमार्ग) है ही नहीं, है तो बंध का कारण। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है।

क्या हो प्रभु ? दुःखी है न ? तत्त्व की समझ बिना सब दुःखी हैं। पैसेवाले सब दुःखी हैं। बेचारे - भिखारी। शास्त्र में `वरांका' शब्द प्रयोग किया है। वरांका समझे ? शास्त्र में वरांका शब्द पड़ा है, वरांका - भिखारी है। अपनी चीज़ की खबर नहीं (है) और `पर (पदार्थ) लाव', `पर (पदार्थ) लाव' (करते हैं)। मांगण - भिखमंगा भिखारी है। मुनि को कहाँ किसी को `माखण चोपडना' है ! (अर्थात् खुशामत करनी है)। वह खुश हो तो ठीक, (ऐसा भाव नहीं होता)। समझ में आया ? एकबार तो भावनगर के महाराज को कहा था। राजन् ! एक महीने में एक लाख की कमाई मांगता है वह छोटा भिखारी है। पांच लाख की कमाई मांगता है वह बड़ा भिखारी है। करोड़ की कमाई मांगता है वह भिखारी का भिखारी है। हमें उसके पास कहाँ पैसे लेने थे ! करोड़ मांगते हैं तो बड़ा भिखारी है। लाव...लाव...लाव...लाव...लाव... (करते हैं) अग्नि का लावा होता है ऐसे लाव...लाव...लाव...लाव... (होता है)। अंतर की लक्ष्मी की खबर नहीं कि, मैं आनंद का नाथ हूँ, आहाहा ! मेरी खान में तो अकेला आनंद और शांति पड़ी है। उस खान की ओर तो नज़र नहीं और जिसमें ज्ञान, आनंद है नहीं ऐसे राग और पुण्य के परिणाम पर नज़र है। वह सब भिखारी - रांका है। आहाहा ! यहाँ तो यह बात है, भगवान !

अनेकांत स्याद्वाद किया है। अपना स्वरूप अपने से प्राप्त होता है (पर से नहीं होता)। शक्ति पारिणामिक भाव (स्वरूप) है। जीवन शक्ति जो त्रिकाल है - ज्ञान, दर्शन, आनंद का प्राण वह शक्ति पारिणामिकभाव से है। पारिणामिक का अर्थ ? उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, पारिणामिक ये पाँच भाव हैं। पर्याय में चार भाव होते हैं। उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक। परंतु वस्तु जो है वह पारिणामिकभाव - सहजभाव है।

क्या कहते हैं ? सूक्ष्म है भाई ! एक शक्ति में मिलान करने को ये सब बोल निकाले थे। भगवान आत्मा अनंत आनंद का खजाना है। ऐसा अनंत ज्ञान का खजाना है। महानिधान है ऐसा निधान का धरनेवाला भगवान ! उस पर दृष्टि (करने से, उसका) स्वीकार करने से, आदर करने से, राग को हेय करने से, स्वभाव का आदर करने से, पर्याय में जो निर्मल दशा उत्पन्न होती है, उसमें व्यवहार का अभाव है, उसका नाम अनेकांत है। यह अनेकांत की चर्चा करते हैं। ऊपर में लिखा है। अभी ``**अनेकांत के**

संबंध में विशेष चर्चा करते हैं।" उसमें है। आहाहा ! अरेरे...! ऐसी बात सुनने में ना आये वह सब समझे और कब रुचि करे ? आहाहा ! चीज़ बड़ी दुर्लभ हो गई। समझ में आया ? यह अनेकांत और स्याद्वाद है। अपनी निर्मल परिणति अपने से हुई है - व्यवहार से नहीं, उसका नाम स्याद्वाद है। स्याद्वाद ऐसा नहीं है कि, व्यवहार से भी होता है और निश्चय से भी होता है। वह तो एकांतवाद है, आहाहा !

(९) कर्ता आदि छ कारक अभिन्न हैं और निरपेक्ष हैं। क्या कहते हैं ? जो वस्तु है - चैतन्य भगवान, इसमें शक्ति है। जीवत्व आदि एक-एक शक्ति (है)। एक-एक शक्ति के परिणमन में - शक्ति है उसमें षट्कारक का रूप है। षट्कारक भी दूसरी शक्ति है। आत्मा है उसमें शक्ति है - जीवत्व शक्ति, आनंद शक्ति, कोई भी शक्ति (लो), तो यह शक्ति में षट्कारक की शक्ति भिन्न है। षट्कारक की शक्ति भिन्न है। वह षट्कारक(रूप) गुण - शक्ति उसमें नहीं। परंतु षट्कारक का एक-एक शक्ति में रूप है। अर्थात् ज्ञान में कर्ता का रूप है, कर्ता शक्ति भिन्न है। परंतु ज्ञान अपने से कर्ता है - तो शक्ति का रूप उसमें है। और कर्म शक्ति भिन्न है। कर्म नाम कार्य - परंतु उसमें कर्म शक्ति का रूप है। ज्ञान कर्ता होकर अपना परिणमन कर्म करता है, वह उसका रूप है। सूक्ष्म बात है, भाई ! आहाहा ! समझना पड़ेगा, भाई ! अनंतकाल में सत् कुछ समझे नहीं, आहाहा ! इस शक्ति में षट्कारक का रूप तो है परंतु परिणति में - पर्याय में षट्कारक का रूप आ गया, ऐसा कहते हैं। जो जीवत्वशक्ति है, उसका धरनेवाला भगवान आत्मा उसके साथ अनंत शक्ति है। अनंत शक्ति के (साथ) जीवन शक्ति का जैसे निर्मल परिणमन हुआ - ऐसी अनंत शक्ति का पर्याय में निर्मल (परिणमन) हुआ। तो उस शक्ति में षट्कारक शक्ति भिन्न है। फिर भी एक-एक शक्ति में षट्कारक का रूप है और उसके परिणमन में भी षट्कारक की पर्याय हो जाती है, आहाहा ! धीरे-धीरे समझना बापू ! यह तो वीतराग मार्ग - सर्वज्ञ परमेश्वर किसे कहें ? लोग साधारण मानते हैं 'णमो अरिहंताणं', बापू ! वह परमेश्वर कौन ? आहाहा ! जिसकी एक गुण की एक समय की एक पर्याय में सारे द्रव्य जानने में आता है, सारा गुण जानने में आता हैं, अनंती पर्याय जानने में आती है और त्रिकाल पर चीज़ के भी द्रव्य, गुण, पर्याय जानने में आते हैं, आहाहा ! परमेश्वर किसको कहे !! बापू ! आहाहा ! देवाधिदेव अरिहंत - ऐसे बोले 'णमो अरिहंताणं' बापू ! उस अरिहंत के पद को जानकर नमस्कार करना वह कोई अलौकिक चीज़ है, समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि, द्रव्य में अनंत शक्ति है। एक शक्ति में दूसरी शक्ति नहीं किन्तु एक शक्ति में दूसरी शक्ति का रूप है अर्थात् जैसे जीवनशक्ति है तो जीवनशक्ति

में कर्तापना का रूप है। जीवन शक्ति अपने से कर्ता होकर निर्मल पर्याय का कार्य करती है। अरेरे...! ऐसा है। कोई ऐसा कहता था कि, यह थोड़ा सूक्ष्म पड़ेगा। आहाहा ! सूक्ष्म है ऐसा भले माने परंतु थोड़ा ख्याल में तो आवे।

(यहाँ) कहते हैं कि, द्रव्य में जो जीवनशक्ति है, उस द्रव्य का अनुभव करने से, शक्ति में भी षट्कारक का रूप है और परिणमन में भी - षट्कारक की पर्याय का - एक-एक पर्याय में षट्कारक का परिणमन है। ऐसी बात है। क्या कहा ? कि अपने में आनंद है, तो आनंद शक्ति - गुण है उसको धरनेवाला भगवान गुणी है। तो द्रव्य पर दृष्टि होने से पर्याय में द्रव्य को ज्ञेय बनाकर और पर्याय में द्रव्य जानने में आया। फिर भी उस पर्याय में द्रव्य आया नहीं। क्या कहा ? द्रव्य तो भिन्न है, आहाहा! इस पर्याय में एक-एक गुण की पर्याय का षट्कारक (का) परिणमन है। समझ में आया? द्रव्य स्वभाव की दृष्टि करने से एक आनंद की पर्याय उत्पन्न हुई। अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव हुआ। उस अतीन्द्रिय आनंद की एक समय की पर्याय में षट्कारक का परिणमन है। यह आनंद की पर्याय कर्ता, आनंद की पर्याय कर्म - कार्य, आनंद की पर्याय करण - साधन, आनंद की पर्याय अपादान (अर्थात्) उससे हुई, और आनंद की पर्याय संप्रदान - पर्याय रखकर, पर्याय रखी। आनंद की पर्याय का अधिकरण आनंद की पर्याय। (ऐसे) षट्कारक का परिणमन एक पर्याय में है। आहाहा ! ऐसा मार्ग कहाँ है ? बापू ! यह तो समझ में आये ऐसी बात है। भाषा तो सादी है, बापू ! मार्ग तो ये है भाई ! लोग कुछ भी बोले। (लोग कहते हैं) `निश्चयाभासी हैं, व्यवहार का लोप करते हैं।' अरे प्रभु ! सुन तो सही, भाई !

यहाँ तो कहते हैं कि, निर्मल पर्याय हुई उसमें व्यवहार का तो अभाव है। (निर्मल पर्याय) व्यवहार से हुई (है क्या) ? हुई तो अपने द्रव्य ऊपर लक्ष देने से अनंत गुण की निर्मल पर्याय हुई। निर्मल पर्याय में से हुई। वहाँ साथ में राग बाकी है तो उसमें राग का अभाव है।

`**दविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' ऐसे भगवान नेमिचंदजी सिद्धांत चक्रवर्ती के द्रव्य संग्रह की गाथा है। आहाहा ! पाठशाळा में द्रव्य संग्रह तो बहुत चलता है। परंतु अर्थ की खबर नहीं (है)। छः ढाळा भी बहुत चलती है परंतु अर्थ क्या है? (उसकी खबर नहीं)। निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग एक समय में साथ में है। उसका अर्थ क्या हुआ ? व्यवहार से निश्चय हुआ ऐसा आया ? साथ में है ना ? आहाहा ! श्रीमद् ने ऐसा कहा - ``**नय निश्चय एकांत थी, आमां नथी कहेल, एकांते व्यवहार नहि बन्ने साथ रहेल**'' (`आत्मसिद्धि' गाथा - १३२) यह गुजराती भाषा है। निश्चयनय एकांत

एक ही नहीं। व्यवहारनय भी साथ में है। परंतु व्यवहार में निश्चय नहीं और निश्चय में व्यवहार नहीं। आहाहा !

ऐसा मनुष्यभव मिला उसमें जैन संप्रदाय में जन्म हुआ और जैन क्या कहते हैं, वह समझ में न आये तो प्रभु ! वह तो निरर्थक होगा। समझ में आया ?

कर्ता आदि छ कारक तो अभिन्न हैं, निरपेक्ष हैं। राग कर्ता और निर्मल परिणति कार्य, ऐसा स्वरूप में है नहीं। आहाहा ! एक-एक शक्ति में अनंत शक्ति का रूप है। ऐसा आगे आ गया है। रूप (मतलब) क्या समझे ? अंदर में ज्ञान है ना ज्ञान, तो (ऐसे) एक अस्तित्व गुण भी है, सत्ता - अस्तित्व। तो अस्तित्वगुण है वह ज्ञानगुण में नहीं। गुणाश्रय से गुण नहीं। वह आता है न उमास्वामी में ? गुणाश्रये गुण नहीं। द्रव्याश्रया गुणा। जो गुण हैं वे सब द्रव्य के आश्रय से हैं। गुण के आश्रये गुण नहीं। क्या है कि, एक शक्ति में दूसरा गुण का रूप (आया तो) ये आश्रय आया कि नहीं ? तो कहा नहीं। गुण तो भिन्न रह गये। परंतु उसमें ज्ञान `है'। `है' ऐसा अपना अस्तित्व अपने गुण में अपने से है। अस्तित्व गुण के कारण से ज्ञान का अस्तित्व है। (ऐसा नहीं है) ऐसा है भाई ! आहाहा !

गणधर - संतों ने वाणी की रचना की है, आहाहा ! वह वाणी कितनी गंभीर होगी ? और यह वाणी सुनने को इन्द्रों आते हैं। वर्तमान में भगवान के पास इन्द्र आते हैं। शकरेन्द्र एक भवतारी है। वर्तमान में शकरेन्द्र सौधर्म देवलोक का इन्द्र है। ३२ लाख विमान हैं। एक-एक विमान में असंख्य देव हैं। वह उसका स्वामी बाहर से कहने में आता है। (उसका) स्वामी नहीं। वे तो समकित के स्वामी हैं। वह समकिती है। उसकी स्त्री - पट्टराणी है वह भी समकिती है। सिद्धांत में (उन) दोनों को एक भवतारी कहा है। वहाँ से निकलकर दोनों मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा ! ३२ लाख विमान ! और एक-एक विमान में असंख्य देव ! और करोड़ों अप्सरा (होती हैं) ! `वह मैं नहीं', `वह मैं नहीं', `मैं तो आनंद स्वरूप हूँ' मेरी चीज़ में तो इसका अभाव है। (अंदर में ऐसी दृष्टि है)। आहाहा !

भरत चक्रवर्ती आत्मज्ञानी, अनुभवदृष्टि समकिती थे। `राग मेरे में नहीं', `राग मैं नहीं' (ऐसा अनुभवज्ञान था)। जिसके हीरे के पलंग में इन्द्र मित्र तरीके आकर के बैठते थे। भरत चक्रवर्ती - ९६ हज़ार स्त्रियाँ, ९६ करोड़ पायदळ, ४८ हज़ार नगर, ७२ हज़ार पाटण, उसका स्वामी, वे ऐसा कहते हैं कि `ये मैं नहीं', `ये मैं नहीं' आहाहा ! राग आता है - वह भी मैं नहीं। `मैं तो आनंद और ज्ञानस्वरूप हूँ' आहाहा ! इन्द्र जैसा मित्र है। तो (कहते हैं) `नहीं, इन्द्र मेरा मित्र नहीं', आहाहा ! समझ में आया ? दृष्टि

का विषय और दृष्टि कोई अलौकिक चीज़ है ! साधारण लोग मान ले कि, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नौ तत्त्व की श्रद्धा समकिती (है)। (लेकिन) बापू ! ऐसा नहीं है, भाई ! आहाहा ! सर्वज्ञ परमात्मा - अनंत गुण का पिण्ड प्रभु ! जिसकी प्रतीति में ज्ञेय होकर, (अनुभव में आया, वह समकित है)। अज्ञानी को भी पर्याय में द्रव्य का ज्ञान होता ही है। परंतु उसकी दृष्टि वहाँ नहीं। दृष्टि पर्याय और राग पर है। इसलिये द्रव्य पर्याय में जानने में आता है - वह बात उसको प्रतीति में न आयी।

(समयसार) १७-१८ गाथा (में आता है)। अज्ञानी को भी ज्ञान की पर्याय में सारा ज्ञेय अखंडानंद पूर्ण स्वरूपी (का) ज्ञान होता है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय स्वपर प्रकाशक सामर्थ्यवाली है। तो अज्ञान की पर्याय में भी स्वपर प्रकाशक सामर्थ्य है तो पर्याय में स्व का प्रकाश तो है। परंतु दृष्टि उस पर नहीं। दृष्टि पर्याय और राग पर है। तो उसको जानने में नहीं आता है। आहाहा ! ऐसा मार्ग है। फिर तो लोग ऐसा ही कहे न ? `सोनगढ़ में एकांत है।'

अरेरे...! देखो न ! वह सम्यग्ज्ञान दीपिका की बात चली न ! फलटन में - ललितपुर में बात चलाई थी न ! सम्यग्ज्ञान दीपिका - अरे...! वह तो क्षुल्लक ब्रह्मचारी की बात है, भगवान ! यहाँ की बात नहीं है। अरे...! प्रभु ! क्या करते हो भाई ! तुझे नुकसान होगा नाथ ! उसके परिणाम में (फल में) दुःख - वेदन होगा, बापू ! कठिन पड़ेगा, भाई ! (ब्रह्मचारी) क्षुल्लक ने तो ऐसा कहा कि, जिसके सर पर पति है, तो कदाचित् उसे कोई दोष लग जाये तो बाहर में प्रसिद्धि में नहीं आता, आहाहा ! ऐसे जिसके सर पर आत्मा है, उसमें कोई राग आदि अशुद्धि आ जाये तो बाहर प्रसिद्धि में नहीं आता। आहाहा ! इसका मतलब ऐसे भोग का भाव सुखरूप है और वह करने लायक है, ऐसा है उसमें? अरेरे...! जहाँ एक दया, दान का विकल्प भी दुःखरूप है, वहाँ भोग का भाव, स्वस्त्री हो या परस्त्री हो, महापाप है, प्रभु ! समझ में आया ? उसने लांछन लगा दिया, कोई पूछता नहीं कि ये क्या करते हो ? और क्या है ?

यहाँ कहते हैं कि, एक-एक शक्ति में अनंत शक्ति का रूप है।

(१०) जन्म क्षण वही नाश क्षण है। (ये क्या कहते हैं ?) आत्मा में जीवन शक्ति है, आत्मा ने इसका जहाँ स्वीकार किया, तो पर्याय में आनंद की अनंत पर्याय उत्पन्न हुई। वह पर्याय उत्पन्न होने का जन्म क्षण ही था। ये उत्पत्ति का काल ही था। और उस वक्त पूर्व की पर्याय का नाश का काल है। आहाहा ! थोड़ा सूक्ष्म है भगवान ! परंतु ये तेरी ऋद्धि तो देख ! यह बाहर की धूल - धाणी और पैसे - करोड़ों और अरबों उस धूल में कुछ नहीं है। आहाहा ! मिट्टी - धूल है। यह शरीर की सुंदरता

- वह मसाण की (स्माशान की) हड्डी - फोसफरस है। भगवान अंदर अनंतरूप का धनी प्रभु ! आत्मा ! इसका रूप देखना या ये रूप देखना ?! अंदर तेरा स्वरूप तो ध्रुव - ज्ञायक परमात्म स्वरूपी है। वह रूप देखने के लायक है। यह बाहर का रूप (तो) - धूल - राख - क्षण में नाश हो जाये (ऐसा है)। सुंदर शरीर हो और एक क्षण में हार्ट फेईल हो जाता है। यह तो मिट्टी है, बापू ! तेरा रूप तो शाश्वत अंदर है। ज्ञान, दर्शन, आनंद आदि तेरा शाश्वतरूप है। ऐसे द्रव्य की जब दृष्टि हुई। शक्तिवान और शक्ति का भेद निकालकर, द्रव्य शक्तिवान है ऐसी दृष्टि हुई तो कहते हैं उस क्षण में निर्विकल्प दशा उत्पन्न (होने) का ये काल था - जन्म क्षण है और पूर्व की पर्याय का नाश करने का काल था। विशेष कहेंगे....

जैसे किसीने संगित-शास्त्रादिका अध्ययन किया हो या न किया हो परन्तु यदि वह स्वरादिके स्वरूपको पहचानता है, तो भी वह चतुर है। वैसे ही किसीने शास्त्राभ्यास किया हो या न किया हो पर यदि उसे जीवके भावका भासन है तो वह सम्यग्दृष्टि है। पुण्य-पाप दुःखदायक है, अधर्म है; रागरहित-परिणाम शान्तिदायक है। मैं शुद्ध ज्ञायक हूँ तथा शरीर, कर्म आदि अजीव हैं - जिसे इस प्रकार भाव-भासन हो वही सम्यग्दृष्टि है। कदाचित् वर्तमानमें शास्त्रका बहुत अभ्यास न हो तो भी वह सम्यग्दृष्टि ही है। (परमागमसार - ९५३)

प्रवचन नं. ३
शक्ति-१, २ दि. १३-०८-१९७७
आत्मद्रव्यहेतुभूतचैतन्यमात्रभावधारणलक्षणा जीवत्वशक्तिः।।१।।
अजडत्वात्मिका चितिशक्तिः।।२।।

यह समयसार, शक्ति का अधिकार है। थोड़ा सूक्ष्म है, ध्यान रखना। अनंतकाल से आत्मा आनंदस्वरूप और अनंत शक्तिस्वरूप भंडार(से) भरा है। यह सुख का सागर है। आनंद का समुद्र है, आहाहा ! उसमें अनंत शक्तियाँ हैं। यहाँ अपने तो पहली जीवत्वशक्ति चलती है न ? ये सूक्ष्म बात है। बहुत सूक्ष्म है। यह आत्म वस्तु जो है - आत्मा, ये द्रव्य है, वस्तु है, अस्ति पदार्थ है। अनादि अनंत चीज़ शाश्वतधाम है। इस ``**आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भाव का धारण जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है**'' आहाहा ! जो जीवतर शक्ति है पहले उसे (समयसार में) दूसरी गाथा है (वहाँ ली है) न ? ``**जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो**'' वहाँ से जीव की जीवत्व शक्ति ली है।

अमृतचंद्र आचार्य कहते हैं कि, भगवान आत्मा ! शरीर, वाणी, मन तो पर है - वह तो उसमें है नहीं। पुण्य और पाप का भाव - दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोधभाव वह तो उसमें है ही नहीं। परंतु उसमें एक समय की पर्याय जितनी शक्ति नहीं, आहाहा ! जो त्रिकाल शक्ति है (वह) एक समय की पर्याय जितनी नहीं। समझ में न आये तो यहाँ विशेष कहते हैं। जो आत्मद्रव्य वस्तु है उसमें ये जीवत्व शक्ति (है)। ऐसी अनंत शक्ति है। ये शक्तियाँ ध्रुव हैं। वर्तमान पर्याय इसमें प्रगट है, (वह) ध्रुव में नहीं। सूक्ष्म बात है, भगवान ! वीतराग का मार्ग सूक्ष्म है। अभी तो झगड़े में चढ़ गई बात। व्यवहार करो, व्यवहार करो, उससे (धर्म) होगा। अरे भगवान ! सुन तो सही प्रभु ! व्यवहार - शुभराग दया, दान, व्रत आदि हो, वह तो पुण्य बंध का कारण है। वह कोई आत्मा की शक्ति या, आत्मा की निर्मल पर्याय है नहीं, आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो परमात्मा सर्वज्ञदेव, जिनेश्वरदेव ऐसा कहते हैं कि, प्रभु ! तुम वस्तु है कि नहीं ? आहाहा ! तो पदार्थ का कारण जीवन शक्ति है, (ऐसा कहते हैं)। आहाहा ! जीवन शक्ति नाम की गुण - शक्ति है, उस कारण से जीव टिक रहा है, आहाहा ! जीवत्व शक्ति नाम का उसमें गुण है। पहले यह बोल लिया है। और ये जीवत्वशक्ति चैतन्यमात्र द्रव्य जो वस्तु भगवान ! उसका कारणभूत है, आहाहा ! द्रव्य के कारणभूत - निमित्तरूप परमात्मा या पुण्य और पाप के भाव, आत्मद्रव्य में कारणभूत - वह चीज़ नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म है भगवान ! भगवान तो अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप उसकी ये जीवनशक्ति है। यह जीवनशक्ति में चार भावप्राण लिया। ज्ञान, आनंद, दर्शन, बल मुख्यरूप से चार (लिया)। जीवनशक्ति में अनंत चतुष्टय शक्तिरूप - चार चतुष्टय शक्ति पड़ी है, आहाहा ! यह जीवनशक्ति जीव - आत्मद्रव्य वस्तु जो है, उसका वह कारण है। उसका जीवन में टिकना यह जीवत्वशक्ति के कारण है, आहाहा ! समझ में आया ? मार्ग बहुत सक्ष्म है, भगवान ! आहाहा !

जब हम दुकान पर पढ़ते थे न ? तो हमारे (पढ़ने में) एक श्लोक आया था। ये तो ६५-६६ की बात है। बहुत वर्ष हो गये। श्वेतांबर में चार सज्जायमाला है। एक-एक सज्जायमाला में २५०-२५० सज्जाय है। एक-एक सज्जायमें १०-१५-२० आदि श्लोक है। ऐसी चार सज्जायमाला (है)। हम तो दुकान में थे। निवृत्ति थी न ! हमारे पिताजी की घर की दुकान (थी)। उसमें एक ऐसा आया था। `सहजानंदि रे आत्मा' तुम सहज आनंद स्वरूप भगवान है न! आहाहा ! तेरा आनंद कहीं बाहर में है नहीं और तेरा आनंद कोई अपूर्ण और विकृत नहीं है। आहाहा ! `सहजानंदि रे आतमा, सुतो कांई निश्चिंत रे' आहाहा ! है गुजराती भाषा। अरे ! तुम निश्चिंत क्यों सो रहे हो ? राग और पुण्य आदि का परिणाम मेरा, उसमें तेरा जीवन चला जा रहा है, आहाहा ! समझ में आया ? `सुतो कांई निश्चिंत'। (अर्थात्) मैं अंदर कौन हूँ ? (उसकी) चिंता है नहीं, आहाहा ! `सुतो कांई निश्चिंत, मोह तणा रणिया भमे' अरे प्रभु ! `राग और पुण्य का परिणाम मेरा' ये तो महा मिथ्यात्व का देणा सर पर है। देणा समझते हो न ? कर्जा। आहाहा ! `मोह तणा रे रणिया भमे, जाग जाग रे मतिवंत रे' चेतन आनंद का नाथ ये तेरा जागृत (होने का) का काल (है)। अब जाग रे जाग ! ये राग और पुण्य के परिणाम से तेरी चीज़ अंदर में भिन्न पड़ी है। इस निज निधान को नज़र में ले। तेरी नज़र में ये पर चीज़ जानने में देखने में आती है। परंतु नज़र की पर्याय - नज़र निधान में डाल। आहाहा ! यहाँ तो मुंबई - मोहमयी से दूसरी बात है। आहाहा ! `मोह तणा रणिया भमे, जाग, जाग रे मतिवंत रे, ए लूटे जगतना जंत रे' ये कुटुंब - कबिला (कहता

है) मेरा रक्षण करो, मेरी शादी करो,' ऐसा करके तुझे लूटते हैं। आहाहा ! `लूटे जगतना जंत रे, नाखी वांक अनंत रे' हमसे क्यों शादी की ? हमारा पुत्र क्यों हुआ ? हम तुम्हारा पुत्र क्यों हुआ ? ऐसा करके तेरी चीज़ लूट लेते हैं, आहाहा ! समझ में आया ? `कोई विरला उगरंत रे' (अर्थात्) कोई विरल (ऐसा) उगता है। (वह ऐसी दृष्टि कर लेता है कि) `(मैं) आनंदकंद सच्चिदानंद प्रभु हूँ' आहाहा ! `मेरी चीज़ तो सुखसागर से भरी है' आहाहा ! और `पुण्य और पाप का भाव - विकल्प से तो मैं खाली हूँ।'

मैं तो शून्य हूँ। प्रवचनसार में सप्तभंगी में आता है न ? भाई ! कि स्व से अशून्य हूँ - पर से शून्य हूँ। क्या कहा ? कि मैं मेरे से शून्य हूँ। (यानी) मैं मेरे भाव से भरा पड़ा पूर्ण हूँ। (और) राग आदि पर भाव से मैं शून्य हूँ। सप्तभंगी चली है। स्व से अस्ति और पर से नास्ति। ऐसा पहले कहकर बाद में ये लिया है कि, मैं अशून्य हूँ यानी शून्य नहीं। मैं तो आनंद और ज्ञानस्वभाव से परिपूर्ण भरा हुआ मैं परमात्मा स्वरूप हूँ और शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप का भाव जो विकल्प - राग है, उससे मैं शून्य हूँ। बापू ! मेरे में ये चीज़ है नहीं, भाई ! आहाहा ! समझ में आया ? यह तो ७० साल पहले की बात ! है। दुकान पर पढ़ते थे न ? (तब की बात है) ! आहाहा !

प्रभु तू कौन है ? अभी तो ऐसा कहते हैं कि, शुभभाव - दया, दान, व्रत आदि हो, उससे तेरा कल्याण होगा और करते-करते तुझे चैतन्य का अनुभव होगा, बापू ! ऐसा है नहीं, भगवान ! ये पुण्य और पाप का भाव प्रभु ! वह तो दुःखरूप है और तू तो आनंद स्वरूप - सुखरूप है, आहाहा ! इस सुखरूप के सागर पर नज़र करने से उसमें एक जीवत्व नाम की शक्ति है। इस शक्ति के कारण जीव टिक रहा है। ऐसा कहते हैं। और यह शक्ति और शक्तिवान की दृष्टि होनेसे, उसकी पर्याय में जीवत्व शक्ति का परिणमन होता है, आहाहा ! सूक्ष्म बात भाई ! ऐसी बात कहीं है नहीं। ये उपनिषद में कहीं है नहीं। आहाहा ! वहाँ कहीं पर्याय, द्रव्य, गुण है नहीं। आहाहा ! ये तो अलौकिक बात है, बापू !

कहते हैं कि, यह जीवत्वशक्ति का भाव क्या ? कि ज्ञान, दर्शन, आनंद और बल ये उसका ध्रुवस्वभाव जीवनशक्ति का कारण (है)। और यह जीव शक्ति द्रव्यत्व का कारण (है)। आहाहा ! समझ में आया ? बापू ! मार्ग सूक्ष्म (है), भाई ! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ! ये प्रभु सर्वज्ञ स्वरूपी ही आत्मा है। क्या कहा वह ? सभी भगवान सर्वज्ञ शक्ति से भरा पड़ा है। आहाहा ! देह का लक्ष छोड़ दे, वाणी का लक्ष छोड़ दे, कर्म का (लक्ष) छोड़ दे, पुण्य-पाप का लक्ष छोड़ दे, एक समय की प्रगट अवस्था का भी लक्ष छोड़ दे, आहाहा ! भगवान आत्मा ! अतीन्द्रिय आनंद से - आनंद की शांति से

भरा पड़ा पदार्थ है, आहाहा ! उसकी दृष्टि करने से तुझे सम्यग्दर्शन होगा और उसकी दृष्टि करने से तेरी पर्याय में जीवत्व शक्ति के ज्ञान, दर्शन, आनंद के प्राण की पर्याय की उत्पत्ति होगी।

ये `उछलती है' (का) प्रश्न सेठ ने किया था। `उछलती है' (का मतलब) क्या ? आत्मा में (अनंत शक्तियाँ) उछलती हैं, आहाहा ! दरिया में - समुद्र में पानी की भरती और बाढ़ आती है। समुद्र के किनारे बाढ़ आती है। ऐसे भगवान आत्मा ! जीवत्व शक्ति का धरनेवाला आत्मा - ऐसी अंतर में दृष्टि होने से, वर्तमान पर्याय में - प्रगट दशा में आनंद की भरती आती है। ये कहते हैं, आहाहा ! ये पूरी दुनिया से अलग बात है। आहाहा ! समझ में आया ? इसमें जीवत्वशक्ति उछलती है। उछलती का अर्थ ? उत्पाद्पने (उत्पाद्रूप से) परिणमति है। जो ध्रुवपने है, और ध्रुवपने शक्ति जो द्रव्य का कारण है - ऐसी दृष्टि जब हुई तो जीवत्वशक्ति पर्याय में - ज्ञान, दर्शन, आनंद(रूप का) पर्याय में उत्पाद होता है। ये `उछलती है' उसका अर्थ यह है। आहाहा ! ऐसी बातें (हैं)।

``**आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भावरूपी भावप्राण का धारण करना जिसका लक्षण है ऐसी जीवत्व नामक शक्ति ज्ञानमात्र भाव में - आत्म में - उछलती है**'' आहाहा ! और जब यह ज्ञानमात्र वस्तु ऐसी दृष्टि हुई तो, ये जीवत्व शक्ति की निर्मल पर्याय (के साथ) उसमें आनंद की पर्याय प्रगट हुई, शांति, स्वछता, चारित्र की पर्याय प्रगट हुई और उसमें अकारणकार्य शक्ति की पर्याय प्रगट हुई। वह क्या (कहा) ? भगवान ! यह वीतराग का मार्ग तो सूक्ष्म (है) प्रभु ! अभी तो लोप हो गया। बाहर में तो सत्य बात को गुम कर दिया है। `ये नहीं, ये नहीं, ये सब करो, ये करो,' (ऐसा कहते हैं)। आहाहा !

भगवान ! तेरी चीज़ में जब अनंत शक्ति पड़ी है, तो उसमें एक अकार्यकारण नाम की भी शक्ति पड़ी है। ये सब विवाद (चल रहा) है न अभी ? जैसे जीवत्व शक्ति है (तो) उसके साथ अविनाभाव से एक अकारणकार्य नाम की शक्ति (भी) है। तो कहते हैं कि, जब जीवत्व शक्ति को धरनेवाला (द्रव्य) उस पर दृष्टि करने से पर्याय में जैसे जीवत्व शक्ति - ज्ञान, दर्शन (आदि) शक्ति है, वैसे अकारणकार्य शक्ति की पर्याय में उत्पत्ति (होती है)। उछलती है। अर्थात् अकारणकार्य शक्ति पर्याय में उत्पन्न होती है। ये व्यवहार रत्नत्रय का - राग का कार्य नहीं और राग का कारण नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? अभी ये विवाद बहुत चलता है न ! कि व्यवहार करो, व्यवहार करो, व्रत करो, तप करो, उपवास करो आहाहा ! भगवान ! ये हो, राग मंद हो तो हो परंतु वह कोई चीज़ नहीं। ये वस्तु का द्रव्य नहीं, वस्तु का गुण नहीं और वस्तु की पर्याय

नहीं, समझ में आया? ऐसा मार्ग है, प्रभु !

अरे ! भरतक्षेत्र में परमात्मा का विरह हुआ और इनकी बात रह गई, भगवान कुंदकुंद आचार्य वहाँ गये और वहाँ से ये संदेश लाये, प्रभु ! तुम जीवन शक्ति के कारणरूप भरा पड़ा है न ! आहाहा! और यह जीवनशक्ति में - अकार्यकारण नाम की शक्ति दूसरी है - तो जीवत्व शक्ति में अकार्यकारण शक्ति का रूप ही पड़ा है। भाषा सादी है, भाव सूक्ष्म है। आहाहा ! यह तो भगवान के घर की वकालत है। आहाहा ! क्या कहते हैं ?

भगवान आत्मा ! पुण्य-पाप और शरीर से तो शून्य है और अपनी अनंत शक्ति से अशून्य नाम पूर्ण है; ऐसे पूर्णानंद के नाथ पर दृष्टि करने से उस द्रव्य की भी श्रद्धा हुई, गुण की - शक्ति की श्रद्धा हुई और उसकी परिणति निर्मल हुई। इसमें जीवन शक्ति की पर्याय की परिणति भी आयी और उसमें अकारणकार्य शक्ति की परिणति भी आयी - साथ में अकारणकार्य शक्ति की पर्याय उछलती है, आहाहा ! ऐसी बात है। जब द्रव्य ऊपर रुचि होने से पर्याय में जीवन शक्ति का परिणमन - उत्पाद-व्ययरूप से हुआ, ऐसा अकारणकार्य शक्ति का भी पर्याय में उत्पाद हुआ कि, जो शक्ति ऐसी है कि, राग के कारण से निर्मल पर्याय होती है, ऐसा है नहीं। व्यवहार रत्नत्रय से निश्चय होता है, ऐसी बात है नहीं। ऐसा है भगवान ! आहाहा ! तेरी महिमा का पार नहीं नाथ ! तेरे साथ में तो अंदर आनंद आदि है न ! आहाहा ! तो पर्यायरूप से परिणमन करती (है)। उसका अर्थ `उछलती है' ऐसा कहने में आता है। सर्वज्ञ के सिवा ये चीज़ कहीं है नहीं। द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों में जीवनशक्ति व्यापक है, आहाहा ! वह तो कल कह गये, समझ में आया ? ये सब शब्द नये हैं। ?

ऐसा प्रभु का मार्ग (है)। नाथ ! तुझे खबर नहीं, प्रभु ! तेरी शक्ति में प्रभुता पड़ी है। इस जीवन शक्ति के परिणमन में प्रभुत्व शक्ति का भी परिणमन (साथ में है)। ईश्वर शक्ति का परिणमन भी उत्पादरूप (साथ में होता है)। आहाहा ! समझ में आया? ऐसा चैतन्य हीरा (है)। और हीरे के जैसे पहलू होते हैं न ? वैसे भगवान में अनंत पहलू - अनंत शक्ति हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि, जीवन शक्ति - उसका धरनेवाला भगवान आत्मा ! उस आत्मा की नज़र जब हुई, तो जीवन शक्ति के परिणमन में अकारणकार्य शक्ति का परिणमन भी साथ में उछलता है। ये सब अलग जात है। कहो समझ में आया कुछ ? आहाहा ! क्या कहते हैं ? चैतन्यमात्र भावरूपी भावप्राण का धारण करना, उसमें - आत्मा में शक्ति उछलती है, आहाहा ! भगवान आत्मा आनंद से भरा है। इस द्रव्य स्वभाव पर दृष्टि

करने से पर्याय में - अवस्था में - हालत में; जैसे दरिया के - समुद्र के किनारे बाढ़ आती है, वैसे पर्याय में आनंद की बाढ़ आती है। उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। समझ में आया ? अरे...! ये शरीर तो मिट्टी - धूल है, आहाहा ! यह तो उसमें है नहीं, तो `उसकी क्रिया मैं करता हूँ' (ये) मिथ्यात्वभाव है, आहाहा !

यहाँ तो पुण्य और पाप का भाव - दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा इस भाव से भी भगवान तो शून्य है, आहाहा ! पर्याय में भी शून्य है, आहाहा ! पर्याय में जैसे जीवत्व शक्ति का परिणमन हुआ तो अकार्यकारण नाम की शक्ति भी साथ में है, उसका भी परिणमन है और जीवत्व शक्ति में अकार्यकारण शक्ति का रूप है तो उसमें उसका भी अकार्यकारणरूप से परिणमन होता है। आहाहा ! ऐसी बातें, भाई ! कभी सुने तो सही - मार्ग तो ऐसा है भाई ! अरे...! ये मनुष्यपना मिला, उसमें जैन संप्रदाय में जन्म हुआ और उसकी चीज़ न समझे तो जीवन चला जाता है, आहाहा ! ऐसे जीवन की कोई कीमत नहीं। समझ में आया ? फिर भले ही करोड़, पांच करोड़, दस करोड़ मिल जाये (सब) जड़ - धूल है। मरकर नरक में चला जायेगा। आहाहा ! यहाँ तो ऐसा है, बापू !

यहाँ यह कहा, आत्मा में (अनंत शक्ति) उछलती है। रात्रि में सेठने प्रश्न किया था। `उछलती है' (का मतलब) क्या ? उछलती नाम गुण की परिणति होती है। जो द्रव्य - वस्तु है, उसमें जो अनंत शक्तियाँ हैं, उसमें एक शक्तिरूप परिणमन जब होता है, तो अनंत शक्ति की परिणति एक साथ उत्पन्न होती है, उसका नाम `उछलती है' कहने में आता है। आहाहा ! ऐसा मार्ग - लोगों को बेचारे को ऐसा लगे कि, ये सोनगढ़वालों ने तो ऐसा कर दिया। अरे...! बापू ! ये सोनगढ़ की बात है कि स्वरूप की बात है ? आहाहा ! भगवान तेरे हित की बात है नाथ ! तुझे अहित लगता है। आहाहा ! ये शुभ भाव हो परंतु वह तो पुण्य तत्त्व है। पुण्य तत्त्व बंध का कारण है। भगवान आत्मा अबंध स्वरूप है, आहाहा !

(समयसार की) १५ गाथा में आया न ? जो कोई आत्मा को अबद्धस्पृष्ट देखता है वह जैन शासन देखता है। क्या कहा ? १५ गाथा - ``**जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं। अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं**'' - १५ - उसमें दो बात हैं। जैन शासन की जो वाणी - द्रव्य सूत्र है उसमें भी यह कहा है। `**अपदेससंतमज्झं**' जितना जैन शास्त्र है उस शास्त्र में `**अपदेस**' उसमें आत्मा अबद्ध है (ऐसा कहा है)। समझ में आया ? आया न ? `**अपदेससंतमज्झं**' उसका अर्थ द्रव्य सूत्र है। आहाहा ! द्रव्य सूत्र में भी भगवान की वाणी में - द्रव्य शास्त्र में भी आत्मा को अबद्ध और पुण्य - पाप के भाव से रहित, ऐसे आत्मा को देखे तो उसने जैन शासन देखा। पुण्य-पाप को देखे

उसने जैन शासन देखा, ऐसा नहीं कहा है, आहाहा !

श्रोता : अरिहंत - सिद्ध तो अबद्धस्पृष्ट ही है ना ?

पूज्य गुरुदेव : आत्मा अनादि का अबद्धस्पृष्ट है। अरिहंत - सिद्ध तो पर्याय में (अबद्धस्पृष्ट) हो गये। आहाहा !

भगवान आत्मा ! ये आत्मद्रव्य जो कहा न ? ये अबद्धस्पृष्ट है। राग आदि का संबंधरूपी बंध है नहीं, आहाहा ! त्रिकाली ज्ञायक मूर्ति प्रभु ! उसमें राग का संबंध - बंध कहाँ से आया ? भगवान तो अबंधस्वरूप प्रभु है। आहाहा ! और जिसने भगवान आत्मा अबद्धस्वरूपी देखा - विशेषपना छोड़कर सामान्यरूप से देखा, विषय - कषाय का परिणाम - पुण्य का - पाप का (परिणाम) छोड़कर निर्विकारीपने देखा, उसने जैन शासन देखा, आहाहा ! ऐसी बात है। अब क्या करें ? ये लोग ऐसा कहते थे कि, 'व्यवहार करते - करते होता है।' (लेकिन) व्यवहार यह जैन शासन है ही नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! अगम - निगम की ऐसी बातें हैं। आहाहा ! अरे बापू ! अनंतकाल से परिभ्रमण करता है। उसका नाश करने का उपाय तो कोई अपूर्व होता है। आहाहा !

(यहाँ) कहते हैं कि 'उछलती है' - एक समय में आनंद की पर्याय उछलती है और एक समय में अकारणकार्य की शक्ति की भी परिणति उछलती है। कि जो पर्याय है वह द्रव्य का कोई कारण नहीं, गुण का कारण नहीं, पर्याय का कोई कारण नहीं, आहाहा ! राग आदि व्यवहार आदि कर्ता-कारण और यह निर्मल पर्याय कार्य, ऐसा है नहीं। और निर्मल पर्याय कारण और राग उसका कार्य, ऐसा है नहीं। यह पर्याय में ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। द्रव्य-गुण में तो है ही नहीं, आहाहा ! मार्ग तो ऐसा है भगवान ! अरे...! ऐसी वास्तविक तत्त्व की बात सुनने मिले, वह भाग्य है तो मिलती है, ऐसी चीज़ है, आहाहा ! जीवत्व शक्ति द्रव्य - गुण और पर्याय तीनों में व्यापक है। अभी पर्याय किसको कहते हैं ? गुण - द्रव्य की उसकी तो खबर नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? ये एक शक्ति के वर्णन में ढ़ाई घंटे हुए।

श्रोता : हम शक्ति का वर्णन सुनने नहीं आये। हम तो मोक्षमार्ग की बात सुनने आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्ति और शक्तिवान की प्रतीति करते हैं तो पर्याय में मोक्षमार्ग उत्पन्न होता है, आहाहा ! अबद्धस्पृष्ट - जिस राग का तो भाव नहीं (लेकिन) पर्याय का विशेष भी नहीं। आहाहा ! आया न ? अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियतम्, अविशेषम् - (अर्थात्) विशेष जो पर्याय वह भी नहीं, आहाहा ! गज़ब बात है, प्रभु ! आहाहा ! समझ में आया ?

यह स्त्री का, नपुंसक का देह भिन्न है। इस देह को न देखो ! प्रभु ! अंदर

भगवान आत्मा बिराजते हैं, परमात्मस्वरूप है, उसको देखो ! यह तो मिट्टी है उसको न देखो कि, यह पुरुष है, यह स्त्री है और यह तिर्यंच है और यह मनुष्य है। वह आत्मा है ही नहीं। आत्मा तो अंदर आनंद का नाथ प्रभु ! (है)। आहाहा ! अपने आत्मा (में) जीवत्व शक्ति के साथ अनंत शक्ति का रूप है, ऐसे आत्मा को जब देखा तो अबद्धस्पृष्ट ही आत्मा देखा। ये अबद्धस्पृष्ट देखा तो प्रतीति (में) - पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र हुआ। उसका नाम मोक्षमार्ग है, आहाहा ! सेठ ने ऐसा कहा न ? कि 'हम तो मोक्षमार्ग सुनने को आये हैं' तो मोक्षमार्ग यह है। आहाहा !

देखो ! मोक्ष - ऐसा कहने में आता है। वह तो एक दुःख के अभाव और विकार के अभाव को सूचित करता है। 'मोक्ख' - ऐसा है न ? मोक्ख - माने मुकना (छूटना)। ये तो नास्ति से कथन है परंतु मोक्ष की पर्याय अस्ति है। वह तो आनंदरूप और मुक्तरूप पर्याय है। अस्तिरूप है, ऐसा है। दुःख और विकार की नास्ति है और आनंद और अपनी शांति की अस्ति से अस्ति है।

Logic से तो कहते हैं, भैया ! परंतु पकड़ना - समझना तो उसकी बात है। आहाहा ! यहाँ तो अकार्यकारण पर विशेष बात है। लोगों में बहुत तकरार है न ? अरे ! भगवान सुन तो सही प्रभु ! छः ढाळा में आया था। यह लोक अकृत्रिम है। किसी ने किया नहीं। ''**किनहू न करौ न धरै को, षट्द्रव्यमयी न हरै को**'' (पाँचवीं ढाळ - गाथा - १२) उसका अर्थ क्या ? कि, उसमें जो द्रव्य है वह भी किसी ने किया हुआ नहीं। उसका गुण है वह किसी का किया हुआ नहीं, उसकी पर्याय भी किसी ने की नहीं, आहाहा ! उसका (ऐसा अर्थ है)। सारा लोक का कर्ता कोई नहीं तो लोक का जो एक द्रव्य है उसका कोई कर्ता नहीं, तो द्रव्य का गुण है उसका भी कोई कर्ता नहीं। हाँ, गुण का कर्ता द्रव्य कहो, परंतु दूसरा कोई कर्ता है, ऐसा है नहीं, आहाहा ! और उसकी पर्याय का कर्ता गुण - द्रव्य कहो वह भी व्यवहार है। निश्चयनय से पर्याय कर्ता, पर्याय कर्म और पर्याय का कारण पर्याय में अपने कारण से है। पर्याय भी द्रव्य - गुण के कारण से नहीं और पर के कारण से तो नहीं, नहीं और नहीं।

श्रोता : तीन बार नहीं, नहीं क्यों कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दर्शन, ज्ञान और चारित्र, आहाहा ! एक शक्ति वहाँ तक रखें।

अब दूसरी (शक्ति)। ''**अजड़त्वस्वरूप चितिशक्ति**'' चिति शक्ति का अर्थ ऐसा है कि, जो जीवत्व शक्ति है उसका चिति शक्ति लक्षण है। परंतु चिति शक्ति भिन्न बताने का कारण ये अजड़त्व है अर्थात् उसमें राग और पुण्य-पाप का (भाव) जड़ है (वह) उसमें है नहीं, आहाहा ! समझ में आया ?

श्रोता : पलट-पलटकर वही बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुलाट खाती है बात।

उसमें तो फर्क इतना आया था कि, अस्तिपणे परिणमन (है)। अब यहाँ तो कहते हैं कि, इसमें चिति शक्ति नाम की एक भिन्न शक्ति है। ये चिति शक्ति का रूप जीवत्व शक्ति में है अथवा जीवत्वशक्ति का लक्षण यह चितिशक्ति है। आहाहा ! यह अजड़त्व चितिशक्ति है। उसमें जड़पना नहीं। स्पष्ट करते हैं, आहाहा ! जड़पना का अर्थ ? शरीर, वाणी, मन तो जड़ है, कर्म जड़ है, वह तो चिति शक्ति में है ही नहीं। क्योंकि अजड़त्व चिति शक्ति है। जड़ बिना की चिति शक्ति (है)। ज्ञानस्वरूप भगवान (है, उसमें) - चिति में दो लेना है - ज्ञान और दर्शन। समझ में आया ? चैतन्यशक्ति यह जीवत्वशक्ति से भिन्न चेतनशक्ति (है)। ऐसे एक द्रव्य में संख्या से अनंत शक्तियाँ हैं, आहाहा ! वह तो कहा था न ?

आकाश का प्रदेश है इस आकाश के प्रदेश का अंत नहीं। यह लोक है वह तो असंख्य योजन में है। जगत संग्रहात्मक (है)। छः द्रव्य का संग्रहात्मक स्थान तो असंख्य योजन में है। पीछे खाली भाग - अनंत...अनंत...अनंत...अनंत...अनंत... नज़र करें तो कहाँ आकाश नहीं है ? आकाश के पीछे क्या ? पीछे क्या ? पीछे क्या ? पीछे क्या ? परंतु पीछे क्या - (कुछ) है ही नहीं। कहा था न ? एक बार (किसी को) कहा था, सुनो एक बात ! ये आकाश चीज़ है ऐसी ऐसे...ऐसे...ऐसे... चली जाती है (उसका) कहाँ अंत आयेगा ? इस चीज़ का तो अंत आयेगा परंतु पीछे कोई क्षेत्र का अंत है ? तो क्षेत्र का अंत नहीं तो क्षेत्र को जाननेवाला क्षेत्र-ज्ञान का - भाव का अंत नहीं, आहाहा ! ९१ की साल की मागशर मास (की) बात है। हमारे तो बहुत बीत गई है न ! आहाहा ! ये क्षेत्र जो है ऐसे...ऐसे...ऐसे...ऐसे... वह तो असंख्य योजन में (है)। ऐसे अनंत... अनंत...अनंत...अनंत...अनंत... योजन का है। तो १४ ब्रह्मांड के पीछे जो खाली जगह है, तो खाली ज़गह को क्या कहना ? उसे आकाश (कहना)। तो आकाश का अंत कहाँ ? कि आकाश खलास हो गया ? आहाहा !

यह क्षेत्र का अंत नहीं। यह क्षेत्र'ज्ञ' भगवान आत्मा - क्षेत्र का जाननेवाला है। उसके भाव का - ज्ञान का भी अंत नहीं। जैसे इस क्षेत्र का अंत नहीं उसके अस्तित्व की अगर तुझे प्रतीति हो तो यह क्षेत्र का जाननेवाला ज्ञान भी अंदर अपरिमीत - अपार पड़ा है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई !

यहाँ ये कहते हैं, ``**अजड़त्व चितिशक्ति**'' तो चिति नाम चेतना। यहाँ दर्शन और ज्ञान दोनों साथ में लेना है। बाद में भिन्न करेंगे। चेतनाशक्ति - जानना और देखना

ये दो रूप एक चेतनशक्ति - वह अजड़त्व है। आहाहा ! तो इस जीवत्व शक्ति में भी चेतन शक्ति का रूप है। उसमें भी अजड़त्व है। जीवत्व शक्ति का परिणमन हुआ तो उसमें यह पुण्य - पाप का जड़पना का अभाव है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी सूक्ष्म बात है।

यह बात सूक्ष्म है। लोग नहीं कहते ? कि `लोढु कापे छीणी'। (ऐसी गुजराती में कहावत है)। यह लोहे की छीनी होती है वह छीनी - लोहे को काटे। लकड़ा काटे ? लकड़ा लोहे को काटे ? लोहे की छीनी सूक्ष्म हो वह लोहे का फड़ाक करके दो भाग कर दे। वैसे यहाँ सूक्ष्म ज्ञान है, वह राग से भिन्न करके (आत्मा का अनुभव करे) - जिसको प्रज्ञाछीनी कहते हैं। भगवान ! एक बार सुन तो सही, आहाहा ! ये राग और पुण्य - पाप का - दया, दान का भाव - उसमें तो चैतन्य का अभाव (है)। चैतन्य के भाव से वह शून्य है। तो भगवान आत्मा यह अचेतनभाव से शून्य है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा मार्ग है। लोगों को सूक्ष्म पड़े ना ! और वह स्थूलरूप से पकड़ा दिया कि - करो दया, करो व्रत, भक्ति, पूजा, दान में दो - ५-१० लाख खर्च कर दो, जाओ धर्म होगा। यहाँ कहते हैं कि, धूल में भी (धर्म) नहीं होगा। तेरा करोड़ दे देना ! कदाचित् राग मंद किया हो तो पुण्य है - धर्म नहीं। इस पुण्यभाव का चेतन शक्ति में अभाव है। आहाहा !

श्रोता : पहले मालूम होता तो भाई - भाई को कोई पैसा नहीं देते।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन देता है, कौन लेता है ?

जिसको सत् का आदर नहीं, वह असत् का आदर करनेवाला तो सत् का अनादर ही करेगा। उसमें कोई नवीन चीज़ नहीं। आहाहा ! नाथ तेरा मार्ग अलग प्रभु ! जहाँ तुम हो वहाँ तो पुण्य - पाप भी नहीं। तुम जहाँ हो तो वहाँ तो अपार अपरिमित शक्ति का भंडार है ! आहाहा !

आहाहा ! आचार्य महाराज ने गज़ब का काम किया है ! अमृतचंद्र आचार्य (ने) समयसारमें से ४७ शक्तियाँ निकाली। (वैसे तो) अनंत शक्तियाँ हैं, परंतु कथन में अनंत करने जाये तो अनंत समय जाये। आहाहा !

श्रोता : उसका रहस्य हमारे सामने आपने बताया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है और समझ में आये ऐसी है। भाषा सादी (है) कोई संस्कृत व्याकरण जैसी चीज़ नहीं। आहाहा ! यह तो सादी भाषा है। सत्य सादा है, सत् सरल है।

श्रीमद् कहते हैं, सत् सरल है, सत् सर्वत्र है, सत् का पाना - मिलना, सत् पाने

का गुरु मिलना वह महा दुर्लभ है, ऐसा कहते हैं। श्रीमद् वहाँ कहते हैं। पत्र में लिखा है। आहाहा ! गुरु मिला कब कहने में आता है ? कि जब अपना आत्मा का अनुभव करे तब गुरु मिला ऐसा कहने में आता है। आहाहा !

भगवान आत्मा का आनंद का अनुभव वह धर्म है। आहाहा ! ``**अनुभव रत्न चिंतामणी, अनुभव है रसकूप, अनुभव मार्ग मोक्षनो, अनुभव मोक्ष स्वरूप**'' अनुभव मोक्ष का मार्ग (है)। आनंद के नाथ का स्वसन्मुख होकर अनु नाम स्वभाव का अनुसरण करके भव नाम होना - आनंदरूप होना, ये अनुभव मोक्ष का मार्ग है। बाकी व्यवहार रत्नत्रय आदि सब बंध का कारण है, समझ में आया ?

यह चितिशक्ति भी अकारणकार्य से भरी पड़ी है। यह चितिशक्ति साथ में उछलती है। जीवतर शक्ति के साथ में चिति शक्ति की पर्याय उछलती है - उत्पत्ति होती है। ये चिति शक्ति की ज्ञान, दर्शन की पर्याय जब उत्पन्न होती है - उसमें कोई राग का कारण नहीं और चिति शक्ति की पर्याय जो परिणमती है यह राग का कारण नहीं। राग का कारण नहीं और राग कारण और चिति शक्ति की पर्याय कार्य नहीं, आहाहा ! ऐसी बातें (हैं)। पर्याय की मुदत एक समय की है। भगवान आत्मा में द्रव्य, गुण त्रिकाल है। द्रव्य और गुण त्रिकाल है और पर्याय की मुद्दत एक समय की है। आहाहा ! दूसरे समय में दूसरी, तीसरे समय में तीसरी। पर्याय का समय तो एक समय है। एक समय की पर्याय में चिति शक्ति परिणमती है। त्रिकाली ज्ञायकभाव में चिति शक्ति पड़ी है तो ज्ञायकभाव शक्ति और शक्तिवान का भेद भी दृष्टि में न लेने से, यह शक्ति और शक्तिवान दो भेद नहीं करके शक्तिवान है - (ऐसे) ज्ञायक पर दृष्टि करने से (सम्यग्दर्शन होता है)। क्योंकि ज्ञायकभाव चिति शक्ति से पूरा भरा है। आहाहा ! यह पर्याय में जब चितिशक्ति का - शक्तिवान का अंदर जहाँ आदर आया और व्यवहार का आदर छोड़ दिया (तो निश्चय धर्म प्रगट हुआ)। आहाहा ! अभी तो ऐसा कहते हैं कि, प्ररूपण भी ये करते हैं कि, व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। अरे...! वह श्रद्धा ही मिथ्यात्व है। आहाहा ! क्या हो (सकता है)? समझ में आया ?

चितिशक्ति की पर्याय उछलती है उसमें अकारणकार्य की पर्याय भी आती है। यह ज्ञान, दर्शन की पर्याय जो उत्पन्न होती है उसका कारण द्रव्य - गुण व्यवहार से कहने में आता है और परिणमन हुआ उसका कारण-कार्य परिणमन में है। आहाहा ! द्रव्य - गुण भी कारण नहीं है।

कलश टीका में यह अपने आ गया है कि, अपना परिणाम कार्य और द्रव्य - गुण कारण - यह उपचारमात्र से है। गज़ब बात है, भाई ! निर्मल पर्याय का अनुभव

हुआ इस अनुभव में अनुभवरूपी कार्य - कर्म, कर्म कहो, कार्य कहो, दशा कहो (सब एकार्थ हैं)। उसका कारण द्रव्य-गुण है, यह उपचार से है - व्यवहार से है। आहाहा ! पर का कारण - कार्य तो है ही नहीं। यह बात सबेरे चलती है न ?

७४ की साल से व्याख्यान चलता है। ५९ वर्ष हुए। संप्रदाय में भी हमारी बहुत प्रतिष्ठा थी न ! पुण्य दिखे, शरीर भी सुंदर दिखता है। बाहर में तो हज़ारों लोग सुनने आते थे। समझ में आया ? तो ७१ (की) साल में उस (वक्त) भी हमने कहा था। कितने वर्ष हुए ? ६२ (वर्ष हुए)। दोपहर को एक घंटा वाचन देते थे, तो सभा में कहा `अपनी पर्याय में जो विकार होता है (वह) कर्म से बिलकुल नहीं (होता)। गुरु सुनते थे। (गुरु) भद्रिक थे। गुरु पीछे बैठे थे। व्याख्यान चलता था, आहाहा ! अपने में जितना विकार होता है - मिथ्यात्व हो या राग-द्वेष हो - उसमें निमित्त कारण कर्म से हुआ, यह बिलकुल है नहीं। और विकार का नाश करने में कोई पर का कारण नहीं है। अपना स्वभाव का पुरुषार्थ करते (हैं, तो) सब विकार का नाश हो जाता है। कर्म का नाश हो तो विकार का नाश होता है, ऐसी चीज़ है नहीं। यह तो ७१ की साल (में कहा था)। कितनों का तो जन्म भी नहीं हुआ होगा। आहाहा ! हलचल मच गई। संप्रदाय में खलबली हो गई। ये कहाँ से लाये ? आहाहा ! दामोदर सेठ कहते थे, ये `वगर दोरा की पड़ाई' चलती है। दोरा समझे ना ? धागा। क्योंकि हमारे गुरु ने कहा नहीं और हमने कभी सुना ही नहीं और ये बात कहाँ से निकाली ? आहाहा ! बापू ! मार्ग तो ऐसा है, भाई ! विकार अपनी पर्याय में (होता है वह कर्म से नहीं होता)।

२० वर्ष पहले वही बात वर्णीजी के साथ हुई। पंचास्तिकाय की ६२ (वीं) गाथा (का आधार दिया) कि, परमाणु में कर्म की पर्याय जो होती है वह भी षट्कारक परिणमन जड़ से होती है। आत्मा में विकार होता है वह भी अपने षट्कारक से पर्याय में होता है - द्रव्य-गुण से नहीं, पर से नहीं। पर के कारण से इसमें विकार होता नहीं। सब में यह गड़बड़ चलती है। आहाहा !

एक आर्जिका ऐसा कहती है, `विकार कर्म से न हो तो एकांत है। निश्चयनय से एकांत है, व्यवहारनय से मानना पड़ेगा'। परंतु व्यवहारनय का अर्थ क्या ? निमित्त है -इतना व्यवहार है। परंतु उससे विकार होता है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है।

``**अजड़त्वस्वरूप चिति शक्ति**'' आहाहा ! इस जीवत्व शक्ति में दूसरी शक्ति निकाली कैसे ? चितिशक्ति तो वास्तव में जीवत्व शक्ति का ही लक्षण है परंतु भिन्न बताने को ये अजड़त्व स्वरूपे भिन्न बताने को दूसरी बताया (है)। समझ में आया ? भगवान आत्मा

में चिति शक्ति दर्शन - ज्ञान चेतना स्वरूप चेतना शक्ति है। यह शाश्वत है। द्रव्य जैसे शाश्वत है वैसे चिति शक्ति शाश्वत है। (इस) शाश्वत शक्ति में अकार्यकारण शक्ति भी साथ में पड़ी है। ये चितिशक्ति की द्रव्य स्वभाव पर दृष्टि होने से, ज्ञान - दर्शन की पर्याय जैसे उत्पन्न होती है, उछलती है, उत्पन्न होती है तो उसके साथ अकार्यकारण की पर्याय भी (हुई)। ज्ञान की पर्याय हुई, उसका कोई कारण नहीं और ज्ञान की पर्याय राग का कारण नहीं। आहाहा ! ऐसी बातें। एक घंटे में कितना याद रखना ? आहाहा ! बहुत तरह की बात है। पत्नी सुनने न आयी हो और घर जाकर पूछे कि, क्या सुनकर आये ? तो कहे ऐसा...ऐसा कुछ कहते थे। आहाहा ! मार्ग तो देखो ऐसा है, भाई ! यह तो अपूर्व मार्ग (है)। अनंतकाल से रखड़ते-रखड़ते पूर्व में कभी किया नहीं। आहाहा !

चितिशक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय में व्यापक होती है। चिति शक्ति गुण है। परंतु द्रव्य पर दृष्टि होने से, शक्ति और शक्तिवान का भेद छोड़कर, शक्तिवान आत्मा ऐसी दृष्टि करने से, यह चितिशक्ति का पर्याय में परिणमन होता है। ज्ञान और दर्शन, देखने - जानने की पर्याय अपने से होती है। यह पर्याय का कारण पर नहीं, भगवान की वाणी सुनी तो पर्याय हुई, ऐसा नहीं, समझ में आया ? ऐसा सूक्ष्म है।

ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है और दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है तो भगवान की वाणी सुनने से उत्पन्न होती है कि नहीं ? और यहाँ देखो - पहले ज्ञान नहीं था। ऐसा सुनने में ज्ञान आया - तो अंदर में ये सुनने के कारण से ज्ञान उत्पन्न होता है कि नहीं ? यहाँ ना कहते हैं। ऐसा है नहीं। आहाहा ! ये सुनने में आया है तो ज्ञान की पर्याय उत्पन्न (हुई) ये ज्ञान की पर्याय भी अपने से होती है। और सुनना तो निमित्त है। परंतु निमित्त से होती नहीं। एक बात। और ज्ञान की पर्याय जो अपने से हुई है वह वास्तविक ज्ञान नहीं। द्रव्य स्वभाव पर दृष्टि देने से जो ज्ञान पर्याय होती है वह वास्तविक ज्ञान है। ऐसी बात है।

श्रोता : उपयोग के तो १२ भेद हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अंदर एक ही भेद है।

धर्मदास क्षुल्लक ने लिखा है कि, आत्मा एक और २२ परीषह कहाँ से आया ? आहाहा ! आत्मा एक और १० प्रकार के धर्म कहाँ से आये ? वह तो भेद से कथन है। वीतराग स्वभाव यही दस लक्षण पर्व और वीतराग स्वभाव वही धर्म है। उसका १० प्रकार से कथन है। धर्मदास क्षुल्लक ने सम्यग्ज्ञान दीपिका में लिखा है कि, आत्मा एक और १२ प्रकार का तप ! २२ प्रकार का परीषह ! (ऐसा) कहाँ से आया ? ऐसा मार्ग है भगवान ! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का पंथ - प्रभु का पंथ यह है। बाकी सब

पामर के पंथ यह है, आहाहा ! कुछ समझ में आया ?

बहुतों को तो अभी पर्याय क्या है उसकी खबर - ज्ञान नहीं (है)। वहाँ धर्म कहाँ से आया ? धर्म तो पर्याय है। धर्मी और धर्मी का धर्म (स्वभाव) वह ध्रुव है। द्रव्य - उसका ज्ञान - दर्शन, धर्म - स्वभाव। वह शाश्वत है। परंतु वह परिणति - पर्याय जो हुई वह तो एक समय की पर्याय है। यह शाश्वत नहीं। शाश्वत के आश्रय से (पर्याय) होती है तो भी पर्याय अशाश्वत है।

अनित्य से नित्य जानने में आता है। यह क्या कहा ? आहाहा ! पर्याय अनित्य है। अनित्य से नित्य जानने में आता है। ये सब बातें तुम्हारे हिसाब - किताब में नहीं मिलेगी। क्या कहा ? अंत में क्या कहा ? नित्य से नित्य जानने में नहीं आता। नित्य तो कूटस्थ - ध्रुव है। और कार्य होता है पर्याय में। तो पर्याय से नित्य जानने में आता है। अनित्य से नित्य जानने में आता है। आहाहा ! ऐसी बातें हैं। आहाहा ! अरे ! लोग विरोध करे, प्रभु ! बापू ! तू नुकसान करता है। सत् का विरोध करना (और) सत् की खबर नहीं। आहाहा ! अंदर सच्चिदानंद प्रभु ! सत् नाम शाश्वत द्रव्य और गुण। और पर्याय अशाश्वत - अनित्य (है)। आहाहा ! नित्यानित्य स्वरूप वह आत्मा है, समझ में आया ?

एकबार राजकोट में ९९ की साल में एक साधु आया था। वेदांती साधु था। उसने कहा जैन में अध्यात्म की बात और आत्मा की बात करनेवाले साधु कौन हैं ये ? जैन का नाम बाहर में ऐसा है कि, क्रिया करनी, व्यवहार करना, पुण्य करना और दया करनी वह जैन। वह सुनने आया। सुनने के लिये चर्चा में आया था। हमने कहा कि `आत्मा अनित्य है' (यह) सुनते ही भाग गया। आहाहा ! अरे...! सुन तो सही प्रभु ! तुझे खबर नहीं। ये `आत्मा है' ऐसा निर्णय किया तो द्रव्य ने किया ? ध्रुव तो कूटस्थ है। कूटस्थ समझे ? शिखर (को कूट कहते हैं)। पर्याय पलटती है उसमें कार्य होता है। आत्मा की पर्याय अनित्य है और द्रव्य नित्य है। पर्याय अनित्य है। दो मिलकर आत्मा है। तो अनित्य से नित्य जानने में आता है। विशेष कहेंगे...

प्रवचन नं. ४
शक्ति-२, ३ दि. १४-०८-१९७७
अजडत्वात्मिका चितिशक्तिः।।२।।
अनाकारोपयोगमयी दशिशक्तिः।।३।।

यह समयसार। परिशिष्ट अधिकार (चल रहा) है। शक्ति का अधिकार है। थोड़ा सूक्ष्म लगे लेकिन वस्तु की स्थिति (ऐसी है)। क्या कहते हैं ? कि, अभी तक इसमें ऐसा लिया कि आत्मा ज्ञानमात्र स्वरूप है। उसमें कोई शरीर, वाणी, कर्म और पुण्य-पाप का भाव नहीं है। तो शिष्य ने प्रश्न किया कि, (आत्मा) ज्ञानमात्र भाव है, तो एकांत हो जाता है। ज्ञानमात्र कहा तो अकेला ज्ञानस्वरूप तो एकांत हो गया और उसमें अनंत गुण नहीं आये। और है तो अनंत गुण। तो प्रभु ! आपने ऐसा एकांत क्यों कहा ? तो आचार्य कहते हैं कि, एकबार सुन तो सही। ज्ञानमात्र प्रभु का अनुभव करने से उसमें वर्तमान ज्ञान की परिणति उत्पन्न (होती है), उछलती है, उसमें अनंत गुण की पर्याय साथ में उत्पन्न नाम उछलती है, आहाहा !

यह आत्मा ज्ञानस्वरूप (है ऐसा) कहते (आये) हैं। तो शिष्य का प्रश्न है कि, ज्ञानस्वरूपी एक ही गुण हुआ, वह तो एकांत हो गया। उसमें अनंत गुण नहीं आये। भैया ! सुन तो सही प्रभु ! ये ज्ञानगुण आत्मा का (है)। आत्मा - गुणी का ये गुण (है)। ऐसे गुणी (अर्थात्) भगवान आत्मा - ज्ञायक परमात्मा उसकी जब दृष्टि होती है, (जब) उसके स्वभाव का स्वीकार हुआ, तो पर्याय में उत्पाद् - व्ययपने ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, (तो) उसके साथ आनंद की पर्याय भी उत्पन्न होती है, उसके साथ श्रद्धा की पर्याय उत्पन्न होती है, चारित्र की पर्याय अपनी सर्व ऋद्धि को सेवे, ऐसी चारित्र पर्याय भी साथ में उत्पन्न होती है। `उछलती है' शब्द पड़ा है न ? आहाहा !

भगवान ! समुद्रमें से जैसे बाढ़ आती है (तो) किनारे पर पानी उछलता है। ऐसे भगवान आत्मा, एक समय में ज्ञानगुण मात्र कहा - परंतु ज्ञान `है' - `है' - ऐसा अस्तित्वगुण भी साथ में आया। समझ में आया ? ज्ञान `है', तो अस्तित्व गुण भी साथ में `है', तो है तो दूसरा अस्तित्व गुण भी साथ में आया। अस्तित्व समझते हो ? अस्तित्वगुण का रूप भी ज्ञान `है' - ज्ञान `है' तो ज्ञान में भी `है' पना आया। यह अस्तित्वगुण का रूप उसमें है। ऐसा मार्ग ज़रा सूक्ष्म है। प्रभु ! अंदर में बिराजमान है नाथ !

आत्मा अनंत-अनंत शक्ति का गुण का संग्रहालय, अनंत गुण का गोदाम है। गोदाममें से माल निकालते हैं ना ? ऐसे भगवान आत्मा एक समय में अनंत शक्ति कहो, या गुण कहो, या सत् का सत्व कहो, या भाववान का भाव कहो (सब एकार्थ हैं)। समझ में आया ? आहाहा ! (आत्मा) अनंत गुण का समुदाय - गोदाम है। आहाहा ! इसमें विकार का वेदन का गोदाम नहीं। जो राग और दया, दान, व्रत आदि का व्यवहार है, वह तो कृत्रिम (है)। पर्याय में पर्यायदृष्टि से उत्पन्न होता है - वस्तु में नहीं। सूक्ष्म बातें बहुत भाई ! पर्याय में पर्याय अंश पर दृष्टि - लक्ष जाता है, तो विकृत निमित्त पर लक्ष जाता है, तो वहाँ विकार उत्पन्न होता है, समझ में आया ? भगवान आत्मा ! एक सेंकड़ के असंख्य भाग में अनंतगुण - शक्ति, शुद्ध चैतन्य का पिण्ड है, आहाहा ! और उस द्रव्य पर दृष्टि आने से, निमित्त पर से लक्ष छोड़कर, शुभ रागादि है उसका भी लक्ष छोड़कर और राग के काल में - राग को जानने की पर्याय जो व्यक्त - प्रगट है, उसका भी लक्ष छोड़कर और राग के काल में - राग को जानने की पर्याय जो व्यक्त - प्रगट है, उसका भी लक्ष छोड़कर (स्वभाव का आश्रय करने से पर्याय में अनंत शक्तियाँ उछलती हैं)। आहाहा ! एक तो क्षणिक पर्याय है, (दूसरा) राग विकृत है, (तीसरा) निमित्त - पर है, तो तीनोंमें से लक्ष छोड़कर (स्वभाव का आश्रय करना है)। आहाहा ! भगवान आत्मा ! अनंत शक्ति का संग्रहालय है। अनंत शक्ति का संग्रह का आलय (अर्थात्) संग्रह का स्थान है। और अनंत स्वभाव का सागर है, प्रभु ! (आत्मा) शक्ति का संग्रहालय, गुण का गोदाम, स्वभाव का सागर (है)। आहाहा ! क्या कहा ?

श्रोता : यह सत्य नारायण की कथा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (लोग) सत्य नारायण कहते हैं, वह नहीं। यह तो सत् नारायण है। आहाहा ! नरमें से नारायण होने की लायकात उसमें है। परमात्मा होने की लायकात उसमें है, आहाहा ! ऐसी चीज़ (अंदर में है)। अनंत गुणों का गोदाम, अनंत शक्ति का संग्रहालय और अनंत स्वभाव का सागर एकरूप प्रभु ! आहाहा ! उसका आश्रय करने से जितनी अनंत शक्तियाँ हैं, सबका पर्याय में उत्पाद् (होता है) - उछलता है। ऐसी

बातें हैं। ऐसा धर्म तो भारी भाई ! साधारण मनुष्य ने बेचारे ने सुना भी न हो।

यहाँ इस शक्ति के वर्णन में अनेकांत आया। (आत्मा को) अकेला ज्ञानमात्र जो कहने में आया था तो वह ज्ञान (अस्तित्वरूप) है, ज्ञान वस्तुत्व है, ज्ञान प्रमेयत्व है, इस ज्ञान में भी अनंत गुण का रूप है और अनंत गुण भिन्न है। आहाहा ! समझ में आया ? भाई ! यह तो वीतराग मार्ग है, बापू ! यह साधारण मनुष्य को पता लग जाये ऐसी चीज़ नहीं, यह तो महान पुरुषार्थ है। स्वरूप की ओर का महा (पुरुषार्थ है)। पर्याय पर अनादि का लक्ष है। साधु हुआ, दिगंबर मुनि हुआ, पंच महाव्रत का पालन किया, २८ मूलगुण लिये परंतु दृष्टि पर्याय ऊपर (रही)। एक समय की ज्ञान की पर्याय में (खेल रहा है)। भगवान ! पर्याय के पीछे बादशाह पड़ा है। सारा परमात्मा (पड़ा है)। आहाहा ! उसकी दृष्टि का तो अभाव (है)। उस कारण से पंच महाव्रत आदि शुभ क्रियाकांड करे तो उसे देवादि का (भव) मिले। (परंतु) भव का अभाव न हो, आहाहा ! भगवान आत्मा ज्ञान स्वरूप है, ऐसा अनंत शक्तिस्वरूप है। ऐसी अनंत दृष्टि करने से भव का अभाव (होता है और उस समय) आनंद का अनुभव आता है और शांति का स्वाद आता है। शांति शब्द से चारित्र (कहना) है। आनंद शब्द से सुख (कहना) है। समझ में आया ? और वीर्यगुण से, वीर्य अनंत गुण की पर्याय की रचना करता है। अंतर (में) जो वीर्य है (अर्थात्) आत्मबल (है)। इस ज्ञान के परिणमन के साथ वीर्य अनंत गुण की निर्मल परिणति की रचना करता है। राग की रचना करे यह वीर्य नहीं, आहाहा ! दया, दान, व्रत, भक्ति, पुण्य की रचना करे वह नपुंसक है, हिजड़ा है। हिजड़े को जैसे वीर्य नहीं (होता है तो) पुत्र नहीं (होता)। भैया ! बात तो ऐसी है, भगवान ! वैसे शुभभाव में नपुंसकता है। तो उसमें (से) धर्म की पर्याय की प्रजा उत्पन्न हो (ऐसा) शुभभाव में नहीं, आहाहा ! महाराज भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा जिसमें अनंत गुण (के साथ) वीर्य गुण भी है तो गुण के धरनेवाले भगवान का स्वीकार जहाँ हुआ (तो) शुद्धस्वभाव की पर्याय की उत्पत्ति (होती है)। (भगवान) है तो सही, परंतु `है' तो उसका स्वीकार जिसे आता है, उसके लिये `है'। `है' तो `है'। `है' लेकिन उसके लिये है कहाँ आया ? समझ में आया ?

श्रोता : हम तो हाँ कहते हैं, हमको तो स्वीकार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा स्वीकार नहीं, भगवान ! आहाहा ! भगवान के सामने देखकर स्वीकार होना वह (स्वीकार) है।

दो शक्ति चली है। जीवत्व शक्ति, चिति शक्ति। चिति शक्ति साधारण चली है। परंतु आज दशि शक्ति थोड़ी लें। आत्मा में अनादि से जीवत्वशक्ति है। यह द्रव्य जो आत्म द्रव्य है, उसका कारणरूप जीवत्वशक्ति। और जीवत्व शक्तिरूप ज्ञान, दर्शन, आनंद

और बलरूप उस शक्ति का भेद है। भावप्राणरूप उसका शक्ति का भेद है। अनादि से भावप्राण से भगवान आत्मा जीता आया है। जी रहा है और जीयेगा। लोग ऐसा कहते हैं - हमारी इस विषय में टीका भी हुई है कि, (हम ऐसा कहते हैं कि) `जीओ और जीने दो' (ऐसा जो कहते हैं) यह भगवान की वाणी नहीं। सभी लोग रथयात्रा निकलती है तब (बोले कि) `महावीर का संदेश - जीओ और जीने दो' (लेकिन) ऐसा है नहीं। ऐसा जीओ और जीने दो, ये कहाँ है ? दस प्राण से (आत्मा) जीता है ? ये पांच इन्द्रिय का प्राण, श्वास, आयुष्य, मन, वचन, और काया, (ऐसे) दस (प्राण)। उससे जीओ और जीने दो - ये भगवान की वाणी नहीं है। वह तो (ख्रिस्ती के) अंग्रेजों के बाइबल की वाणी है।

यहाँ तो जीवतरशक्ति - जो ज्ञान, आनंद, दर्शन, बल से भरी है, उससे जीवन का जीवन जीओ और दूसरे को जीवन जीने दो, आहाहा ! समझ में आाया ? कल ये कहा था, (समयसार में) दूसरी गाथा है न - `**जीवो**' शब्द लिया है न ? पहली गाथा में तो `**वंदित्तु सव्वसिद्धे**' कहा (और) दूसरी गाथा में `**जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो**' इसमें `**जीवो**' में से जीवत्व नाम की शक्ति निकाली। पहली जीवत्व शक्ति निकाली। आहाहा ! समझ में आया ? और इस जीवत्व शक्ति में अनंत शक्ति का रूप है। अनंत शक्ति के - गुण के आश्रय - गुण नहीं - गुण के आश्रय से गुण नहीं। परंतु गुण में अनंत गुण का रूप है। आहाहा ! ऐसी बात है, समझ में आया ? ऐसे जीवतर शक्ति में क्रम-अक्रम (रूप) प्रवृत्ति जो है - क्रम से निर्मल पर्याय होती है और गुण अक्रम से है। वह सब क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती गुण और पर्याय के समुदाय को आत्मा कहते हैं। समझ में आया ? ध्रुव को आत्मा कहते हैं वह बात अभी नहीं है।

नियमसार शुद्धभाव अधिकार (में) आता है न ? भाई ? - वहाँ तो आत्मा किसको कहते हैं ? कि पर्याय बिना की नित्यानंद ध्रुव वस्तु - उसको आत्मा कहते हैं, समझ में आया ? नियमसार - ३८ गाथा में लिया है। यहाँ तो ये लेना है - ध्रुव शब्द आया न ? ``**ध्रुव धाम के ध्येय के ध्यान की धधकती धुणी धैर्य से धखाने से...**'' हमारे गुजराती में ऐसा कहते हैं कि `धीरज थी धखाववी।' ध्रुवधाम भगवान आत्मा जिसका स्थल ध्रुव है। और जिसमें अनंत अपार शक्ति ध्रुवरूप है। इस ध्रुव धाम के ध्येय के ध्यान से धधकती धुणी - शांति और आनंद की (धुणी)। आनंद...आनंद...आनंद... सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय आनंद आदि की धधकती धुणी को धैर्य से - धीरज से धखाना। फागुन मास में गुजराती में बनाया था। ये शब्द तो अभी बनाये थे। ये धर्म के धारक धर्मी धन्य हैं। सब ध...ध... हैं।

यहाँ कहते हैं, यह जीवत्वशक्ति बहुत चली। दो - ढ़ाई घंटे चली। अब चिति शक्ति थोड़ी लें। इस चिति शक्ति (को) भिन्न शक्ति कही (है) परंतु निश्चय से तो (यह) जीवत्वशक्ति का ही लक्षण है। समझ में आया ? भाई ! बहुत सूक्ष्म बात है, बापू ! यह तो भगवान के दरबार का खजाना खोलने की बात है। आहाहा ! जीवत्व शक्ति है इसमें चिति शक्ति है वह भिन्न-भिन्न है। जीवत्व शक्ति का चिति शक्ति लक्षण है। चिति में दो साथ में आया - दर्शन और ज्ञान। दर्शन - ज्ञान साथ में आया तो चिति शक्ति का धरनेवाला द्रव्य, उसको दृष्टि में लेने से पर्याय में चिति शक्ति का (अर्थात्) दर्शन - ज्ञान का परिणमन - चेतना का परिणमन एक साथ होना, उसके साथ अनंत गुण की पर्याय उछलती है। समझ में आया ? आज तो अब हम तीसरी (शक्ति) लें।

दशिशक्ति लेते हैं। क्योंकि इसका तो पार नहीं है। शास्त्र में तो एक-एक शक्ति को गृहस्थपने उतारी है, ब्रह्मचर्यपने उतारी है। वानप्रस्थपने उतारी है, साधुपने उतारी है, यतिपने उतारी है, ऋषिपने उतारी है, मुनिपने उतारी है। जैसे यह एक दशिशक्ति है - जो देखने की शक्ति और देखती है, (वह) आत्म द्रव्य को देखती है, अपने को देखती है, पर्याय को देखती है और सबको देखती है। देखने में भेद नहीं। यह पर द्रव्य है (और) यह स्व द्रव्य है। ऐसा भेद नहीं। आया ? देखो ! ``**अनाकार उपयोगमयी दशिशक्ति**'' सूक्ष्म बात है भगवान ! अनाकार उपयोगमय। ये तो वस्तु अलौकिक (है) बापू ! आहाहा ! जो दर्शन शक्ति है उसमें आकार नहीं। आकार नहीं अर्थात् यह चीज़ आत्मा है और यह चीज़ जड़ है, ऐसा भेदरूपी आकार नहीं। आहाहा ! ऐसी बातें (हैं) !

भाई ! तेरी समुद्धि ऐसी है परंतु तूने निधान (की ओर) नज़र कभी नहीं की। आहाहा ! ये दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति, तप करने से धर्म होगा (ऐसा मानकर) अनादि काल से तू मर गया। यह चेतन महाराज भगवान का तूने अनादर किया और विकृतभाव (जो) उसमें नहीं (है) उसका आदर किया। जो देखनेवाला है - उसको देखने की शक्ति से देखा नहीं।

श्रोता : अभी तक किसी ने दिखाया नहीं तो देखे कैसे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : देखने की दरकार नहीं की, भगवान !

एक प्रश्न हुआ था। (किसी ने) पूछा था। ``महाराज ! तुम ऐसा कहते हो कि, आत्मा कारण परमात्मा है - कारणस्वरूप परमात्मा है। इस द्रव्य को कारण परमात्मा कहते हैं और केवलज्ञान की पर्याय को कार्य परमात्मा (कहते हैं)। उसको तो इतना प्रश्न था - यह भगवान आत्मा - ध्रुव, यह कारण परमात्मा है - तो कारण है तो कार्य आना चाहिये'' ऐसा प्रश्न किया। (हमने कहा) कारण है तो सही। परंतु `है' ऐसी दृष्टि

में आस्था नहीं आयी (तो) उसके लिये `है' (ऐसा) कहाँ से आया ? समझ में आया ? ऐसा प्रतीति में आया हो तो कारण परमात्मा है, समझ में आया ? वस्तु तो भगवान पूर्णानंद बिराजमान है। चेतन भगवान परमात्मा ये कारण परमात्मा उसको परमात्मा कहते हैं। और केवलज्ञानी परमात्मा को कार्य परमात्मा कहते हैं। पर्यायरूप कार्य पूर्ण हुआ न ! इसलिये कार्य परमात्मा (कहते हैं)। परंतु कहते हैं कि, कारण परमात्मा है, कारण है तो कार्य आना चाहिए। तो कारण परमात्मा तो अनादि से है, तो कार्य क्यों नहीं आया ? आहाहा !

भगवान ! ये कारण परमात्मा एक समय में अनंत-अनंत शक्ति संपन्न प्रभु ! (है)। एक-एक शक्ति की अनंत शक्ति, एक-एक शक्ति की अनंत पर्याय, आहाहा ! एक शक्ति की अनंत शक्ति और एक-एक शक्ति को (अनंत शक्ति का) रूप (है)। परंतु सामर्थ्य - शक्ति अनंत है। एक दशि शक्ति लो, इस दशि शक्ति में अनंत सामर्थ्य है और दशि शक्ति की देखने की पर्याय भी अनंती है। देखने की शक्ति का धरनेवाला ऐसा परमात्मा है। परंतु `है' ऐसा ज्ञान में आये बिना `है' कहाँ से आया ? आहाहा ! भगवान ! थोड़ी सूक्ष्म बात आ गई है।

अपनी ज्ञान की वर्तमान पर्याय में ये ज्ञेय बना नहीं, तो उसको `है' कहाँ से आया ? सूक्ष्म बातें हैं, बापू ! ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय सारा द्रव्य जानने में आया तब उसको वर्तमान श्रद्धा की पर्याय (में) `है' ऐसा स्वीकार हुआ। इसके बिना ज्ञान की पर्याय में पूर्णानंद प्रभु ज्ञेयरूप न हुआ। पर्याय में त्रिकाली ज्ञेय आता नहीं, परंतु पर्याय में त्रिकाली ज्ञेय का ज्ञान आता है, आहाहा ! समझ में आया ? सम्यग्दर्शन की पर्याय में त्रिकाली वस्तु की श्रद्धा आती है। परंतु त्रिकाली चीज़ पर्याय में नहीं आती, आहाहा ! समझ में आया ? तो (उसकी ज्ञान) पर्याय में `त्रिकाली चिदानंद भगवान हूँ' ऐसा ज्ञेय बनाकर ज्ञान न हुआ, श्रद्धा का विषय बनाकर श्रद्धा न हुई - तब तक कारण परमात्मा उसके लिये नहीं है। आहाहा ! ऐसी बातें हैं। और जब स्वीकार हुआ (तो पर्याय में कार्य प्रगट हुआ)। ऐसी बात है। भगवान आत्मा ! पूर्णानंद प्रभु ! अनंत शक्ति का एकरूप पिण्ड, शक्ति और शक्तिवान का भेद भी जिसमें नहीं (है)। सम्यग्दर्शन का विषय अभेद है। ये शक्ति और शक्तिवान का भेद भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं, आहाहा ! जब (ऐसा) अभेद (स्वरूप) दृष्टि का विषय हुआ, तब कारण परमात्मा पूर्णानंद (स्वरूप) है (ऐसा) उसकी प्रतीति में आया। वस्तु (पर्याय में) आयी नहीं। वस्तु तो वस्तु में रही। पर्याय में इतना सामर्थ्यवाला तत्त्व है, ऐसी श्रद्धा की पर्याय में उसके सामर्थ्य की श्रद्धा आयी। परंतु ये चीज़ पर्याय में नहीं आती। चीज़ तो चीज़ में रहती है, आहाहा ! यह तो तो अलौकिक बातें हैं ! आहाहा !

पर्याय समझते हो ना ? वर्तमान (दशा को पर्याय कहते हैं)। ये उछलती दशा जो कहते हैं - ये (पर्याय है)। श्रद्धा की दशा उत्पन्न होती है, ज्ञान की (दशा) उत्पन्न होती है, आनंद की (दशा) उत्पन्न होती है। ऐसी पर्याय में ये पर्यायवान की प्रतीति और ज्ञान आया, तब ये कारण परमात्मा का `है' ऐसा स्वीकार आया। चीज़ को देखे बिना देखना कहाँ ?

यह दशिशक्ति है न ? तो कहते हैं कि, दशिशक्ति धरनेवाले को देखे नहीं तो दशिशक्ति की और दशिशक्ति के विषय की प्रतीति कहाँ से आयी ? समझ में आया ? ऐसा है भाई ! दशिशक्ति जो है, यह सबको देखती है तो अदृश्यपना रहा नहीं - देखे बिना रहा नहीं, एक बात। - तो दशि शक्ति सबको देखती है, तो `ये नहीं है', ऐसा रहा नहीं। कौन नहीं है ? (तो कहते हैं) वस्तु। ये दशि में देखने की चीज़ नहीं है, ऐसा नहीं रहा। अदृश्य न रहा, अदृश्यपना नहीं रहा, आहाहा ! समझ में आया ? भाई ! मार्ग सूक्ष्म है। ऐसे व्रत लिया, मुनिपना लिया, महाव्रत ले लिया - यह सब सम्यग्दर्शन बिना बेकार है, संसार है। मोक्ष का मार्ग कोई दूसरा है। आहाहा ! समझ में आया ?

(यहाँ) कहते हैं - अनाकार (माने) उसमें आकार नहीं। यानी क्या ? कि ये आत्मा है, मैं दर्शन हूँ - ऐसा भेद नहीं। अनाकार उपयोगरूपी दर्शन शक्ति में भेद नहीं कि, ये आत्मा है, ये जड़ है, ये गुण है, पर्याय है, ऐसा भेद नहीं। सामान्य - जिसका अनाकार (अर्थात्) आकार बिना माने विशेष भाव बिना। आहाहा !

``**अनाकार उपयोगमयी**'' जानना - देखना (इसमें) देखने(रूप) उपयोगमयी, आहाहा ! देखने की शक्ति तो कायम है। आहाहा ! ``**अनाकार उपयोगमयी दशिशक्ति। (जिसमें ज्ञेयरूप आकार अर्थात् विशेष नहीं है...)**'' बारीक है। दर्शनशक्ति - ज्ञानशक्ति से बारीक है। क्यों बारीक है ? कि ये दशि(शक्ति) है और देखने जाती है और भेद होते हैं, तो दशि(शक्ति) न रही। थोड़ा सूक्ष्म है। दशिशक्ति (में) ये ज्ञान है और ये आत्मा है, ऐसा जानने में आये तो दशिशक्ति रहती नहीं है। वह ज्ञान (शक्ति) हो गई। दशिशक्ति - ये शक्तिवान और ये शक्ति की पर्याय का परिणमन (ऐसा भेद नहीं देखती)। यह दशिशक्ति तो गुण है। और (उसे) धरनेवाला गुणी है। और जब गुणी का स्वीकार हुआ तो दशिशक्ति का परिणमन पर्याय में - देखनेरूपी पर्याय हुई। देखनेरूप ध्रुवपना था वह पर्यायपने आया। समझ में आया ? यह तो ऐसी वकालत है।

दिगंबर जैन में जन्म हुआ (तो) भी खबर नहीं। आहाहा ! दिगंबर धर्म ये तो वस्तु का स्वरूप है। दिगंबर नाम अंतर में आत्मा अनंत शक्ति का पिण्ड, विकल्प से रहित नग्न (स्वरूप) है। मुनिपना जब होता है तब पंच महाव्रत और नग्नपना निमित्तपने

(होता) है, उसका नाम दिगंबर। यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। ये कोई पक्ष से संप्रदाय खड़ा किया है, ऐसा नहीं (है)। समझ में आया ? आहाहा !

``**अनाकार उपयोगमयी दशि शक्ति, (जिसमें ज्ञेयरूप आकार अर्थात् विशेष नहीं...)**'' ज्ञेयरूपभाव आता है - दिखने में आता है परंतु विशेषता नहीं (दिखती)। समझ में आया ? भेद नहीं (दिखते)। द्रव्य है, गुण है, पर्याय है, इसके अलावा अनंत द्रव्य, गुण, पर्याय है उसको देखने की पर्याय देखती है। अपने को देखती है, पर को देखती है। परंतु ये आत्मा और ये पर, ऐसा भेद उसमें नहीं। दशिशक्ति में ऐसा आकार नहीं। आकार नाम विशेषता नहीं। ये विशेषता बिना की उपयोगमयी दशिशक्ति (है)। आहाहा ! अभी तो पकड़ में आना मुश्किल है।

``**जिसमें ज्ञेयरूप आकार अर्थात् विशेष नहीं है ऐसी दर्शनोपयोगमयी - सत्तामात्र...**'' (अर्थात्) अस्तित्वपने (है)। आत्मा में दशिशक्ति अस्तित्वपने / सत्तापने है - अभावपने नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? ``**सत्तामात्र पदार्थ में उपयुक्त होनेरूप - दशिशक्ति अर्थात् दर्शनक्रियारूप शक्ति**'' भाषा ली है। देखा ? दर्शनक्रियारूप (लिया है)। शक्ति तो त्रिकाल है परंतु उसका जब परिणमन होता है तो उसकी क्रिया में दर्शन - देखने की परिणति - पर्याय उत्पन्न होती (है)। इसमें अनंत गुण की पर्याय साथ में उत्पन्न (होती है)। उसको दशिशक्ति का परिणमन कहते हैं। इस दशिशक्ति का परिणमन क्रम से होता है और दशि शक्ति आदि अक्रम है। सब गुण अक्रम है और पर्याय क्रमवर्ती है। यहाँ विकार की बात लिये ही नहीं। क्योंकि विकार (होना यह) कोई शक्ति का कार्य नहीं। ये तो पर्यायबुद्धि में परलक्ष से विकार होता है तो ये स्वरूप में नहीं। विकार का तो यहाँ अभाव ही है। दशिशक्ति को देखने से इस दशि(शक्ति) का निर्मल परिणमन होता है तो उसके साथ अनंत गुण की निर्मल पर्याय की उत्पत्ति होती है।

अब एक साथ अनंत (गुण का परिणमन) हुआ तो अनेकांत हुआ। अब दूसरी (बात)। ये दशिशक्ति के परिणमन में (हुआ)। देखने की पर्याय (के) साथ अनंत गुण की पर्याय का परिणमन (हुआ)। उसमें राग आदि व्यवहार का अभाव (है)। यह अनेकांत है। अनेकांत दो प्रकार का (है)। समझ में आया ? ये तो लोग ऐसा कहते हैं न ? कि व्यवहार से निश्चय होता है - इसकी यहाँ ना कहते हैं। आहाहा ! अरे...! समझ में तो ले। ज्ञान में तो ले कि बात क्या है ? बाद में अंतर्मुख प्रयोग करना वह तो अलौकिक बात है ! समझ में आया ?

यह दशिशक्ति जो है इसके परिणमन की पर्याय में अनंत गुण की पर्याय साथ में हुई। ये सब क्रमवर्ती पर्याय हैं। उसमें क्रमबद्ध हो गया। क्रमबद्ध की ना कहते थे

न ? कि क्रमबद्ध नहीं। यहाँ क्रमबद्ध है। जिस समय दशि का परिणमन उत्पन्न होता है, वह अपना निज क्षण है। निज क्षण / जन्म क्षण है। दशिशक्ति और शक्ति का धरनेवाला भगवान, उसकी दृष्टि करने से दशि शक्ति का परिणमन जो होता है, ये उसकी उत्पत्ति का एक जन्म क्षण है। उसी काल में उत्पन्न होनेवाला क्षण है। आहाहा ! समझ में आया ?

प्रवचनसार में १०२ गाथा (में) कहा। प्रवचनसार में ज्ञेय अधिकार लिया (है) (कि), ज्ञेय का स्वभाव ऐसा है और उस ज्ञेय अधिकार में जयसेन आचार्य ने ऐसा लिया है कि, ज्ञेय अधिकार कहो कि समकित अधिकार कहो (एक ही बात है)। ऐसा लिया है। पहले ९२ गाथा (पर्यंत) ज्ञान अधिकार है। बाद में ९३ से १०८ (गाथा) तक ज्ञेय अधिकार है। और बाद में चरणानुयोग (का अधिकार है)। तीन अधिकार है। तो ज्ञेय का स्वभाव (कहो या) छः द्रव्य का स्वभाव (कहो एक ही बात है)। ज्ञेय में छः द्रव्य आये ना ? तो छओं द्रव्यों का स्वभाव (ऐसा है कि) उसकी (पर्याय होती है उस) पर्याय का (वह) जन्म क्षण है। जिस समय उत्पन्न होनी है उसी समय में उत्पन्न होगी। आहाहा ! दूसरे समय में जो उत्पन्न होनी है, वही होगी। तीसरे समय में जो उत्पन्न होनी है, वही होगी। ऐसी जो क्रमवर्ती पर्याय है, और अक्रमवर्ती गुण है, उस पर्याय और गुण के समुदाय को आत्मा कहते हैं। ऐसी बातें हैं।

भाई ! तुम ये सुनने को बहुत दूर से आये (हो)। सैकड़ों गाउ (दूर से) आये, आहाहा ! और यहाँ तो आपके घर अनुकूलता होती है इतनी अनुकूलता तो यहाँ है नहीं। फिर भी भटकते-भटकते कष्ट लेकर सैकड़ों कोस से आये हैं, तो इसमें नवीन चीज़ क्या है ? भगवान का पंथ क्या है ? उसका ख्याल तो आना चाहिए ना ? आहाहा !

श्रोता : यहाँ तो आत्मानंद की वर्षा होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है, भैया ! अब हमें तो यह लेना है कि, कल दशि शक्ति का पत्र लिया था न ? एक शक्ति (के) ऊपर इतने (२१) बोल उतारे (हैं)। क्या है पहला बोल ? अनेकांत के संबंध में विशेष चर्चा करते हैं।

(१) क्रम और अक्रमरूप अनंत धर्मसमूह का जो कुछ जितना लक्षित होता है वह सब वास्तव में एक आत्मा है। एक बोल।

(२) ज्ञानमात्र एक भाव की अंतःपातिनी अनंत शक्तियाँ उछलती हैं। भगवान ने (आत्मा को) ज्ञानमात्र कहा तो द्रव्य के आश्रय से ज्ञान की पर्याय जब आनंद के साथ उत्पन्न होती है, तो उस पर्याय में अनंत पर्याय उछलती - उत्पन्न होती हैं। दो बात।

(३) क्रमवर्तीरूप - अक्रमवर्तीरूप वर्तन जिसका लक्षण है। ये आत्मा का लक्षण

ही ऐसा है। क्रम से पर्याय क्रमबद्ध होनी और अक्रम (माने) एक साथ व्यापक गुण तिरछा रहना, तिरछा - तिरछा समझे ? अनंत गुण एक साथ ऐसे तिरछे एक साथ में है। एक साथ में अर्थात् ऐसे नहीं है कि एक गुणी है, उसमें दूसरा गुणी, (उसमें) तीसरा गुणी, ऐसे नहीं। गुणी में जैसे चावल एक है, चावल की सफेदाई, मीठास स्वभाव सब एक साथ है। ऐसे आत्मा में अनंत गुण एक साथ हैं। एक गुण ऐसे है और बाद में ऐसा है और बाद में ऐसा है, ऐसे नहीं। आहाहा ! अनंत गुण एक साथ है, उसको अक्रम कहते हैं, समझ में आया ?

(४) एक-एक शक्ति अनंत में व्यापक है। एक शक्ति-दशिशक्ति है वह अनंत गुण में व्यापक / प्रसरती है। आहाहा !

(५) एक-एक शक्ति अनंत में निमित्त है। वस्तु स्थिति ऐसी है, आहाहा !

(६) एक शक्ति द्रव्य - गुण - पर्याय में व्यापती है। क्या कहा ? भगवान आत्मा (में) जो शक्ति है, (मानो) दशिशक्ति है (तो) वह दशिशक्ति - देखने की शक्ति द्रव्य में है, गुण में है और पर्याय में है। तीनों में व्यापती है।

(७) एक शक्ति में ध्रुव उपादान (और) क्षणिक उपादान है। ये दशिशक्ति जो है - देखने की शक्ति भगवान को देखे, अपने को देखे, पर्याय को देखे - भेद बिना, अनाकार / विशेष उपयोग बिना (देखे)। ऐसा दशिशक्ति में त्रिकाली ध्रुव उपादान है। और वर्तमान क्रमसर जो पर्याय उत्पन्न होती है, यह क्षणिक उपादान है। समझ में आया ?

(८) एक-एक शक्ति में व्यवहार का अभाव है। यह अनेकांत (है)। दशिशक्ति अपने स्वभाव से परिणमन करती है, तो निर्मलपने परिणमन (करती) है। उसमें राग का अभाव है। ये व्यवहार का अभाव - यह अनेकांत और स्याद्वाद है। व्यवहार से भी दशिशक्ति प्रगट होती है और निश्चय से भी प्रगट होती है, ऐसा है नहीं। अभी तो यह सब गड़बड़ है न ? यहाँ का विरोध करते हैं न ! करते तो है खुद का विरोध। हम क्या है ? कैसे है ? उसने देखा है ? कि, हमारा विरोध करे। समझ में आया ? तत्त्व की खबर नहीं है तो अपना विरोध करते हैं। यहाँ कहते हैं - एक-एक शक्ति में व्यवहार का अभाव है। यह स्याद्वाद है। यही अनेकांत और स्याद्वाद् है। अनेकांत का (अर्थ) ऐसा नहीं कि, व्यवहार से भी निर्मल पर्याय होती है और द्रव्य-गुण से भी निर्मल पर्याय होती है। समझ में आया ? कितना झेलना ? एक घंटे की सब बातें नई लगे।

यह तो वीतराग मार्ग - चैतन रत्न हीरा (है)। आहाहा ! एक साधारण हीरा एक करोड़ या एक अबज़ का हो तो उसकी क़ीमत करनेवाला कोई जौहरी होना चाहिए। यह तो चैतन हीरा (है)। यह हीरा है, उसके अस्तित्व की श्रद्धा करनेवाला तो आत्मा

है। हीरा को मालूम नहीं है - मैं हीरा हूँ। आहाहा ! ऐसा चेतन हीरला भगवान ! द्रव्य - गुण - पर्याय में व्यापते हैं। ये बात कहीं है नहीं। दूसरे कोई स्थान में, कोई धर्म में कोई ठिकाने (है नहीं)। ऐसा कहे कि `आत्मा एक है - (उसका) अनुभव करो'। ऐसा कहते हैं। परंतु अनुभव करो, वह क्या चीज़ है ? अनुभव तो पर्याय हुई, समझ में आया ? आहाहा ! अनुभव में आनंद आता है, (ऐसा कहते हैं)। आनंद आता है वह तो पर्याय हुई। पर्याय के नाम का तो ठिकाना नहीं और अनुभव करो - अनुभव (करो)। (कहते हैं, लेकिन) क्या अनुभव करे ? समझ में आया ?

यह वस्तु है - यह द्रव्य है। शक्ति द्रव्य में है, गुण में है - शक्ति-शक्ति में है, और शक्ति का पर्याय में परिणमन हुआ तो तीनों में व्यापक है। समझ में आया ? ये शक्ति का वेदन हुआ। (यह) पर्याय में वेदन होता है। कल थोड़ी बात कही थी कि, अनित्य से नित्य जानने में आता है। नित्य से नित्य जानने में नहीं आता। आहाहा ! समझ में आया ?

राजकोट में चर्चा हुई। (एक परमहंस वेदांती आये थे) (हमने) कहा कि, तुम पर्याय (को) मानते नहीं। हम कहते हैं कि अनुभव करना। भूल है तो उपदेश करते हैं कि भूल (को) टालो। तो ये भूल क्या चीज़ है ? भूल कोई द्रव्य है, गुण है, कि पर्याय (है) ? मालूम है कुछ ? क्योंकि भूल है वह नाश होती है और उसके स्थान में अभूल (अर्थात्) निर्मल परिणति होती है। तो वह तो पर्याय है। तो पर्याय की तो तुम्हें खबर नहीं और हमको अनुभव (है)। तो तुम कहाँ से अनुभव लाये ? समझ में आया ? और बाद में कबूल किया कि, हाँ..हाँ..हाँ.. (बात बराबर है)।

वेदांत ऐसा तो कहता है न ? कि, आत्यंतिक दुःख से मुक्त हो और आनंद का अनुभव हो। तो उसमें क्या आया ? पर्याय में दुःख था, अवस्था में दुःख था। द्रव्य - गुण में नहीं। अवस्था में दुःख था, इस दुःख का अभाव हुआ और आनंद की नई अवस्था उत्पन्न हुई। तो यह तो पर्याय हुई और पर्याय की तो खबर नहीं और हमें अनुभव (है) (ऐसा कहते हैं)। कहाँ से आया तेरा (अनुभव) ? समझ में आया ? यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर के सिवा यह मार्ग कहीं है नहीं, समझ में आया ? यहाँ कहते हैं,...

(९) (शक्ति) द्रव्य, गुण, पर्याय में व्यापक है। आया न ?

(१०) शक्ति पारिणामिकभाव से है। क्या कहते हैं ? आत्मा दृश्यमान (है)। आत्मा भाववान और दशिशक्ति भाव (है)। यह शक्ति है वह पारिणामिकभाव है पारिणामिकभाव अर्थात् उसकी पर्याय में जो भाव होता है वह दूसरी चीज़ (है)। यह तो सहज स्वभाव है। उत्पन्न हुआ नहीं, अभाव हुआ नहीं, नया भाव उत्पन्न हुआ नहीं। ऐसी पारिणामिक

स्वभाव शक्ति है।

३२० गाथा में ऐसा आया था कि, क्रमसर जो पर्याय है, वह नई-नई उत्पन्न होती है। समझ में आया ? नई-नई उत्पन्न होती है तो (वह) पर्याय हुई। ज्ञान गुण उत्पन्न होता है ? दर्शन शक्ति उत्पन्न होती है ? दशिशक्ति तो त्रिकाल है। समझ में आया ? यह Logic तो बहुत सूक्ष्म है, भगवान ! जैन दर्शन कोई अलौकिक चीज़ है ! उसका पता लग जाये तो जन्म-मरण का अंत आ जाये। इसके बिना जन्म-मरण (का अंत नहीं आयेगा)। क्रियाकांड करके दया, दान, व्रत, तप करके मर जाये (तो भी भव का अंत नहीं आयेगा)। ये व्रत और उपवास बंध का कारण है। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि, (शक्ति) पारिणामिकभाव है। ३२० गाथा में आया है कि, मोक्ष किस भाव से होता है ? वहाँ आया है कि (पाँच भाव में) चार भाव तो पर्याय के हैं, एक भाव गुण का है। त्रिकाली द्रव्य और गुण ये पारिणामिकभाव है और पर्याय में चार भाव है। एक रागादि उदयभाव, उसका ठरना उपशमभाव, कुछ-कुछ उदय और कुछ-कुछ (उपशम) ये क्षयोपशमभाव और क्षायिकभाव - ये चार भाव पर्याय में हैं। गुण और द्रव्य पारिणामिकभाव है। अब इस चार भाव में मोक्ष किस भाव से होता है ? तो वहाँ कहा कि, उदयभाव से मोक्ष नहीं होता। उदयभाव तो बंध का कारण है। वहाँ संस्कृत टीका में पाठ लिया है कि ``**बंध कारणा उदयभावाः**'' अब तीन भाव रहे - उपशम, क्षयोपशम (और क्षायिक) ये मोक्ष का कारण है। पर्याय मोक्ष का कारण है। मोक्ष का मार्ग है न ? मार्ग (है) ये पर्याय है और मोक्ष भी पर्याय है। आहाहा ! ये मोक्ष का मार्ग जो है यह उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक तीन भाव से है, समझ में आया ? चौथे गुणस्थान में क्षायिक समकित होता है। वह भी क्षायिकभाव है, पर्याय है। समझ में आया ?

श्रेणिक राजा बौद्ध थे। उन्हें मुनिपना का संयोग हुआ तो समकित हुआ - आत्मज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन (हुआ)। बाद में समवसरण में गये और उसमें क्षायिक समकित हुआ। वह तो अपने से हुआ है, भगवान से हुआ नहीं। क्षायिक समकित !! ओहोहो ! हज़ारों देश और हज़ारों राजा जिन्हें चामर ढाले और जिनके इन्द्र जैसे मित्र (हैं)। समझ में आया ? ``मैं तो पूर्णानंदस्वरूप शुद्ध (हूँ)'' ऐसी क्षायिक समकित दशा हुई कि, जो दशा फिर पलटे नहीं। पलटे नहीं नाम अभाव नहीं हो। पर्याय है तो पलटे सही परंतु उसका अभाव हो जाये और मिथ्यात्व हो जाये, ऐसा है नहीं। आहाहा ! वे क्षायिक समकिती (थे)। परंतु नरक का आयुष्य का बंध हो गया था। तो नरक में गये वहाँ भी है तो क्षायिक समकित। श्रेणिक राजा ! आहाहा ! समझ में आया ? परंतु वहाँ नरक में भी समय-समय में तीर्थंकर गोत्र बांधते हैं। इतना तो वहाँ शील है। आठ पाहुड में, शील

पाहुड़ में आया है कि नरक में भी शील है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और स्वरूपाचरणरूपी शील तो वहाँ भी है। और यहाँ से निकल करके तीर्थंकर होंगे ये शील का प्रताप है, ऐसा कहते हैं। शील यानी (स्वरूप स्थिरता)। पंचम गुणस्थान - छट्ठे गुणस्थान में शील है। वह तो विशेष है (परंतु) यह तो चौथे गुणस्थान में शील है। स्वरूप आचरण की दृष्टि हुई, स्वरूप की प्रतीति हुई, स्वरूप का अनुभव हुआ, और जितना अनंतानुबंधी गया इतनी स्वरूप में लीनता भी हुई। आहाहा ! नारकी में भी शील है। शील यानी ब्रह्मचर्य ऐसा नहीं। समझ में आया ? और नवमी ग्रैवेयक में (गया) `मुनिव्रत धार अनंत बैर, ग्रैवेयक उपजायो' तो उसके पास शील नहीं था। आहाहा ! पंच महाव्रत और राग वह तो अशील भाव है, आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ कहते हैं कि,

(११) कर्ता आदि छ कारक अभिन्न हैं। क्या कहते हैं ? ये दशिशक्ति है, यह गुण है और दृष्टिवान जो आत्मा है, उस पर जब दृष्टि हुई तो अनुभव में दशिशक्ति की पर्याय में षट्कारक परिणमन अपने से होता है। देखने की पर्याय का कर्ता देखने की पर्याय, देखने की पर्याय कर्म, देखने की पर्याय करण, देखने की पर्याय संप्रदान, पर्याय करके पर्याय रखी, पर्यायमें से पर्याय हुई, पर्याय के आधार से पर्याय हुई, आहाहा ! ऐसी बात है। अंधी दुनिया (संसार में) कुदकर पड़ी है और संसार में रखड़ते हैं। आहाहा ! कहते हैं कि एक-एक शक्ति में षट्कारक अभिन्न है। उसमें पर की अपेक्षा नहीं।

(१२) एक-एक शक्ति में अनंत शक्ति का रूप है। ज्ञान `है' अस्तिगुण है यह गुण तो भिन्न है। परंतु ज्ञान `है। ऐसा अस्तित्व भी ज्ञान में है। इसे अस्तित्वगुण का रूप कहने में आता है। गुण के आश्रय से गुण नहीं। एक शक्ति के आश्रय से दूसरी शक्ति नहीं (है)। द्रव्य के आश्रय से शक्ति है। फिर भी अस्तित्वगुण के आश्रय से ज्ञान है, ऐसा नहीं। ज्ञान अपने से है, ऐसा अस्तित्वगुण का रूप अपने से अपने में है। अरे...! ऐसी बातें (हैं)। मार्ग ही ऐसा है, भगवान ! आहाहा !

जन्म-मरण के चौरासी के अवतार, स्वर्ग का भव कर-कर के मर गया। स्वर्ग में भी पराधीनता और दुःख है। ये राजा - सेठ लोग तो सब दुःखी हैं। परंतु इन्द्रों, देवों भी जो समकित बिना के हैं, वे सब दुःखी हैं। आहाहा ! राग के भाव में लीन है। चाहे तो अशुभ हो के शुभ हो। ये सब दुःख में ही लीन हैं, आहाहा ! आनंद का नाथ भगवान ! (उसमें सुख है)।

यहाँ तो कहते हैं, एक-एक शक्ति में अनंत शक्ति का रूप है।

(१३) जन्म क्षण वह नाश क्षण है। क्या कहते हैं ? दशि शक्ति को धारण करनेवाला आत्मा (उस) द्रव्य पर जब दृष्टि हुई तो दशिशक्ति की पर्याय में देखने की पर्याय उत्पन्न

हुई। ये उसकी उत्पत्ति का जन्म क्षण है और उसी क्षण में पूर्व की पर्याय का नाश का क्षण है। समय तो एक ही है। आहाहा ! (सब) अपने-अपने से होता है। दूसरी बात है, ये दशिशक्ति जो है, उसका धरनेवाला भगवान आत्मा, पुण्य-पाप और विकल्प से लक्ष छोड़कर, चैतन्य पर दृष्टि पड़ती है तो उस क्षण में दशिशक्ति की उत्पत्ति हुई। ये उत्पाद के कारण से उत्पन्न हुई - यह ध्रुव के कारण से नहीं और उसकी पूर्व (पर्याय के) नाश के कारण से नहीं। इसमें अभ्यास करना पड़ेगा। नौकरी में पैसा मिले पाँच-पचास हज़ार तो ओहो ! हो जाये। वह तो धूल है। बारह महीने में दो-पाँच-दस लाख की कमाई हो, वह कमाई है या नुकसान है ? यहाँ तो कहते हैं कि, (सभी पर्याय) अपने-अपने आश्रय से होती है।

यहाँ अपनी दशिशक्ति। ``**अनाकार उपयोगमयी दशिशक्ति**'' ज्ञानमय आत्मा कहा। तो ज्ञान की पर्याय जो आनंद के साथ हुई, तो दशिशक्ति की पर्याय साथ में उत्पन्न हो गयी, आहाहा ! समझ में आया ?

दुनिया के अभ्यास के लिये L.L.B. और B.A के नाम के लिये १०-१०, १५-१५ वर्ष अभ्यास किया। अकेला पाप का अभ्यास किया। इस अभ्यास के लिये फुरसत नहीं मिलती। आहाहा !

श्रोता : इसमें तो पैसा मिलेगा - इसमें क्या मिलेगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें आनंद मिलेगा। उसमें दुःख का निमित्त मिलेगा; दुःख मिलेगा, ऐसा नहीं कहा।

श्रोता : रुपये से रोटी मिलेगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : रोटी किसकी है ? रोटी जड़ है। वह आता है ना ? खानेवाले का दाने-दाने पर नाम है। आता है ? उसका क्या अर्थ ? जो रजकण जिसके पास आनेवाला है वह आयेगा ही और नहीं आनेवाला, नहीं आयेगा। प्रयत्न करता है इसलिये आयेगा और नहीं करे तो नहीं आयेगा, ऐसा है नहीं। अपने में ऐसी कहावत है कि ``खानेवाले का दाने-दाने पर नाम है'' हिन्दी में क्या कहते हैं ?

श्रोता : दाने-दाने पर लिखा है खानेवाले का नाम।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम लिखा है वहाँ ? परंतु जो रजकण और जो परमाणु दाल, चावल, रोटी, पैसा आदि का जिसके पास आनेवाला है वह आयेगा, आयेगा और आयेगा ही। उसके प्रयत्न से नहीं, समझ में आया ?

यहाँ तो दशिशक्ति की बात चलती है ना ! आहाहा ! अनाकार उपयोगमय परिणमन जो हुआ तो साथ में आनंद का अनुभव है। अतीन्द्रिय आनंद के वेदन की पर्याय के

साथ अनाकार उपयोग की परिणति होती है। ये क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमगुण के समुदाय को आत्मा कहते हैं। दृष्टि में (ऐसा) आत्मा लेना ये इसका सार है। सारे कथन का सार - ज्ञायक भाव पर दृष्टि करना, ये उसका सार है। (विशेष लेंगे)...

`समयसार' - अर्थात् सर्वज्ञ की दिव्य ध्वनि का वर्तमान पूर्णरूप। बारह अंग और चौदह पूर्व का दोहन ही `समयसार' है और संपूर्ण समयसार का दोहन ४७ शक्तियाँ हैं। (आचार्यदेव ने) **शक्तियों का वर्णन करके आत्मा के परमात्म-स्वरूप को उजागर कर दिया है। इन शक्तियों के वर्णन में तो केवली का हार्द है। `समयसार' तो भरतक्षेत्र का अद्वितीय शास्त्र है।** (परमागमसार - २९८)

जीव लकड़ी का, लोहे का, अग्नि का, जल का, बिजली के स्वभाव का विश्वास करता है, दवा की गोली का विश्वास करता है; यद्यपि इनसे पर में कुछ भी होनेवाला नहीं है, फिर भी जीव इनका विश्वास करता है। तो जिसमें आश्चर्यजनक एक ज्ञानशक्ति है, ऐसी ऐसी अनंत शक्तियों में व्याप्त भगवान आत्मा अचिंत्य शक्तिमय और सामर्थ्यवान है - इसका भरोसा करे तो भवभ्रमण छूट जाए। (परमागमसार - ३२३)

प्रवचन नं. ५
शक्ति-३,४,५ दि. १५-०८-१९७७
अनाकारोपयोगमयी दशिशक्तिः ।।३ ।।
साकारोपयोगमयी ज्ञानशक्तिः ।।४ ।।
अनाकुलत्वलक्षणा सुखशक्तिः ।।५ ।।

समयसार। शक्ति का अधिकार (चलता है)। थोड़ा सूक्ष्म है, भगवान ! शांति से सुनना। यह तो आत्मा की अंतर की बात है। आत्मा का (हित) करने की बात है। दुनिया समझे कि न समझे, दुनिया ना-ना करे उसके साथ कोई संबंध नहीं। दशिशक्ति। ``**अनाकार उपयोगमयी दशिशक्ति**'' कल चली तो है। थोड़ा फिर से लेना है। क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा में एक दशि शक्ति है - दर्शन शक्ति। यहाँ श्रद्धा शक्ति की बात नहीं (है)। यह ज्ञान - दर्शन जो आता है, उसमें दशि (शक्ति की बात है)। शक्ति का पर्याय में उपयोग - देखना। यह दशिशक्ति है। दशिशक्ति को धरनेवाला द्रव्य जो है, उस दशिशक्ति से अपने द्रव्य को, गुण को देखना, पर्याय में देखना, तो पर्याय में अनंत गुण (प्रगट होते हैं)। और अपनी दशिशक्ति और द्रव्य, ये पर्याय में / उपयोग में देखने में आता है। परंतु इस उपयोग में द्रव्य-गुण-पर्याय आते नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है। भगवान ! आत्मा में दृश्य नाम की शक्ति है। ये शक्ति को देखना इसमें आनंद है। आहाहा ! समझ में आया ?

यह दशिशक्ति गुणरूप है और इस दशि शक्ति को देखने जाती है तब वह दशिशक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्याप्य हो जाती है। सूक्ष्म है, भगवान ! इस दशिशक्ति की पर्याय में दशि गुण और द्रव्य, और दशिशक्ति की पर्याय में अनंती पर्याय को देखना,

गुण को देखना, द्रव्य को देखना, अनंत द्रव्य, गुण पर्याय को देखना और निराकारपने देखना (ऐसा होता है)। आहाहा ! समझ में आया ? पर को देखने से दर्शन उपयोग में साकार(पना) हो जाना है, ऐसा नहीं है। देखने की पर्याय की ताकत ही इतनी है ! आहाहा ! समझ में आया ? यह तो अपने घर की बात है, भाई ! ऐसी बात है।

पुण्य - पाप का विकार भी दशिशक्ति में अभेद(रूप) देखने में आता है - भेद से नहीं। ऐसी दशिशक्ति की पर्याय में इतनी ताकात है कि, दशिशक्ति और उसके साथ अनंत गुण और एकरूप द्रव्य (यह) सब दशिशक्ति में देखने में आता है। फिर भी इस देखने की पर्याय में यह द्रव्य, गुण, पर्याय आते नहीं। थोड़ी सूक्ष्म बात है। पहले से ही कहा था न ? आहाहा ! ऐसी बात ! ऐसा मनुष्यपना कब मिले ? और अंतर चीज़ कब देखे ? इस दशिशक्ति को देखने से द्रव्य देखने में आता है, पर्याय भी देखने में आती है। और अनंत द्रव्य, गुण, पर्याय भी भेद से नहीं परंतु अभेद से देखने में आता है। आहाहा ! अर्थात् ``**अनाकार उपयोगमयी**'' ऐसा कहा न ? उसमें आकार नाम विशेष (नहीं)। ये द्रव्य है, गुण है और पर्याय है। ऐसा विशेष नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? वस्तु ऐसी ही है, भैया ! बहुत सूक्ष्म भाई ! दशिशक्ति को देखनेवाली (पर्याय) द्रव्य को देखती है। अनंत गुण को देखती है, तो इसमें आनंद को भी देखती है। यह तो अपने (को) देखने की बात है। भाई ! पर को देखना होता है, परंतु विशेषरूप (देखना) नहीं (होता)। सामान्यरूप निराकार उपयोग में स्व (और) पर का निराकारपने, दशि की पर्याय में अनाकार उपयोगमय दशा हो जाती है।

ऐसी बात है, भाई ! अंतर की चीज़ को पहुँचना यह बड़ी बात है। बापू ! यह कोई साधारण (बात) नहीं (है)। ११ अंग का जानपना कर लिया (इसलिये) देखने में आता है, ऐसी ये चीज़ नहीं है। समझ में आया ?

``**अनाकार उपयोगमयी (दशिशक्ति)**'' आहाहा ! उपयोग तो त्रिकाल है। लेकिन जब अनाकार उपयोग का पर्याय से देखना हुआ। पर्याय से देखने में आता है ना ? कि द्रव्य - गुण से देखने में आता है ? द्रव्य - गुण तो ध्रुव है। आहाहा ! यह अनाकार उपयोगमय पर्याय में अनंता द्रव्य, गुण (अर्थात्) सर्व द्रव्य - गुण की दृश्य पर्याय (और) अदृश्य नाम दृश्य नहीं उसमें ऐसी सब शक्ति हैं। आहाहा ! उसको भी दशिशक्ति अनाकार उपयोग में देखती है। तो उसके साथ अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद भी साथ में आता है। उसका रूप आता है, लक्षण नहीं आता। क्या कहा ? दर्शन उपयोग में अनंत गुण का रूप है, वह ख्याल में आ जाता है। परंतु उसके गुण का लक्षण है, वह दशि शक्ति के उपयोग में आता नहीं। उसका लक्षण नहीं आता, आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसा अनाकार उपयोगमयी - ``**जिसमें ज्ञेयरूप अर्थात् आकार विशेष नहीं है।**'' (सब) जानने में आता है परंतु आकार / विशेष नहीं है। यह निर्विकल्प / निराकार (दशिशक्ति) जो है, ये सविकल्प ज्ञान को देखती है, तो ज्ञानाकार / सविकल्प हो जाती है, ऐसा नहीं है। आहाहा ! ज्ञान स्वरूप तो सविकल्प है, स्व - पर को जानने की शक्ति रखता है। ज्ञान को, अनंत गुण को और द्रव्य को इस दशि उपयोग में देखने में आता है। इसलिये ये दशि शक्ति का उपयोग साकार हो जाये, ऐसा है नहीं। ऐसी बातें हैं, समझ में आया ?

``**दर्शनोपयोगमयी - सत्तामात्र पदार्थ में...**'' दर्शन उपयोगमयी सत्ता (माने) मौजूदगीपना - ऐसे पदार्थ में - `**...उपयुक्त होनेरूप - दशिशक्ति अर्थात् दर्शनक्रियारूप शक्ति...**'' आहाहा ! (यहाँ) क्रिया को दर्शनक्रिया शक्ति कहा, उसका परिणमन - क्रिया होती है परंतु दशि शक्ति को ही क्रियारूप कहा। समझ में आया ? भाई ! यह तो अपने गुण के खजाने की बात है। आहाहा !

श्रोता : ख्याल पर्याय में आता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ख्याल पर्याय में आता है परंतु पर्याय में ख्याल आने पर भी पर्याय निराकार है. साकार नहीं / विशेष नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

श्रोता : शक्ति को क्रियारूप क्यों कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रिया गुण है न इसलिये क्रियारूप कहा। परिणमन में उसकी परिणति होती है तो उसको क्रियारूप कहा। (शक्ति) है तो ध्रुव। परंतु परिणमन उसका ऐसा है कि, यह एक दशि शक्ति की क्रिया है, स्वरूप ऐसा है, आहाहा ! बहुत भारी बात। यह कोई धारणा में लेकर दूसरे को कहना है और दूसरे को विस्मयता कराने की बात नहीं है, बापू ! यहाँ ये बात नहीं है, प्रभु ! स्वयं को अंदर में विस्मित कराने की बात है। आहाहा ! ऐसी अद्‌भुत आश्रय भूत शक्ति यह अकेले पर को देखती है, यह दशि शक्ति का रूप ही नहीं। दशि शक्ति का सकल पर सहित सारा पूर्ण सत्ता का निराकार पने पर्याय में भास होता है, उसका नाम दशि शक्ति का पर्याय / परिणमन कहने में आता है। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बात है। अरेरे...! आहाहा ! अनंतकाल से वह रखड़ता है। कुछ-कुछ अटकने के स्थान में रहकर पड़ा है। यह तीसरी शक्ति हुई।

अब चौथी शक्ति। ``**साकार उपयोगमयी ज्ञानशक्ति**'' देखो ! ओहोहोहो...!! अध्यात्म पंच संग्रह है न ? इसमें ऐसा लिया है कि, ओहोहो ! एक समय की पर्याय में दशि शक्ति का उपयोग कोई भी भेद किये बिना पूर्ण देखे और इस दशि शक्ति के परिणमन (के) साथ में ज्ञानशक्ति का जो परिणमन है, ये परिणमन एक-एक द्रव्य भिन्न, गुण भिन्न,

पर्याय भिन्न, पर द्रव्य (भिन्न), एक पर्याय में अनंत अविभाग प्रतिच्छेद भिन्न ऐसी एक समय की ज्ञान की पर्याय सारा भिन्न को देखे और उसी समय दशि का उपयोग अभेदता को देखे। ऐसी कोई (अद्भुतता है)। उसमें ऐसा लिया है। अद्भुत रस में ऐसा लिया है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बातें हैं, बापू ! पुण्य - पाप की क्रिया तो कहीं रह गयी और दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा, उपदेश देना और उपदेश सुनना उसमें लाभ है, वह बात कहीं रह गयी। वह तो विकल्प है, राग है, भाई ! आहाहा !

यहाँ तो जो साकार उपयोगमयी ज्ञान है, वह जिस समय में दशिशक्ति है, उसी समय साथ में ज्ञानशक्ति है। ज्ञानशक्ति में अनंत शक्ति का रूप है। अनंत शक्ति का लक्षण नहीं, समझ में आया ? आहाहा ! परंतु ज्ञान शक्ति के अंदर (अनंत गुण का) रूप है। साकार उपयोग यह साकार उपयोग जब अपने को देखता - जानता है, तो अनंत गुण और द्रव्य त्रिकाली वस्तु को (जानता है)। भले श्रुतज्ञान का उपयोग हो, तो भी पर्याय का (अर्थात्) श्रुतज्ञान की पर्याय का धर्म नाम सामर्थ्य इतना है कि, अपना त्रिकाली द्रव्य, त्रिकाली गुण अपनी अनंत पर्याय और अनंत द्रव्य, गुण, पर्याय पर (के), ज्ञान की पर्याय सबको एक समय में जानती है। ऐसी उसकी ताकात है। समझ में आया ? ऐसी बात है, बापू ! आहाहा !

``**साकार उपयोगमयी ज्ञानशक्ति**'' समयसार-१७-१८ गाथा में (ऐसा लिया है कि), ज्ञान की पर्याय जो वर्तमान में है (उस) ज्ञान की पर्याय में स्वज्ञेय-पूर्ण आनंद का नाथ (ही) पर्याय में ज्ञेयरूप जानने में आता है। क्या कहा ? कि, ज्ञान की एक समय की पर्याय में ज्ञानशक्ति में (सब जानना होता है)। जैसे दशि शक्ति की पर्याय में द्रव्य, गुण और सबका देखना होता है, परन्तु इस दशि शक्ति में साकारपना नहीं आता है। ऐसे ज्ञान तो ऐसी चीज है कि, पूर्ण स्व द्रव्य, त्रिकाली गुण और अपनी पर्याय और इसके सिवा अनंती पर्याय और अनंता सब द्रव्य, गुण, पर्याय एक समय में साकार नाम विशेषरूप से परिणमन करना ये साकार उपयोगमयी शक्ति का कार्य है। मार्ग, बापू ! सूक्ष्म भाई ! समझ में आया ? अभी तो बहुत गड़बड़ हो गई है, आहाहा !

भगवान आत्मा ! एक सेकंड के असंख्यवे भाग में अनंत गुण संपन्न द्रव्य जो है, उसको ज्ञान की शक्ति का परिणमन (लक्ष करता है), शक्ति तो ध्रुवरूप है। परन्तु ध्रुवरूप का लक्ष करने से द्रव्य, गुण में तो ज्ञानशक्ति व्यापक है। परन्तु उसका लक्ष करने से पर्याय में भी ज्ञान शक्ति की व्यापक पर्याय हो गई, आहाहा ! एक बात, अभवी को ज्ञान परिणति नहीं है। ज्ञान का क्षयोपशम का अंश है। समझ में आया ? परन्तु मिथ्यादृष्टि है (इसलिये) ज्ञान की परिणति नहीं है। ज्ञान की परिणति तो सम्यक्दृष्टि

को ही होती है। आहाहा ! समझ में आता है ? अज्ञानी की ज्ञान की पर्याय में सारा ज्ञेय - द्रव्य जानने में आता है, ऐसा कहा है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय का (ऐसा स्वभाव है)। गुण तो ध्रुव है। ध्रुव जानने की शक्ति रखता है। परन्तु उसमें जानने का कार्य नहीं। जानने का कार्य जो होता है वह पर्याय में होता है। आहाहा ! समझ में आया ? उस पर्याय का जानने का कार्य - अज्ञानी को भी (ज्ञान की) पर्याय में स्व द्रव्य ही जानने में आता है। ऐसा आचार्य (भगवान) कहते हैं। परन्तु अज्ञानी की दृष्टि पर्याय, पर (पदार्थ) और राग पर है। वर्तमान क्षयोपशमज्ञान जो हुआ, उस पर उसकी दृष्टि है। उस कारण से पर्याय में (स्व) ज्ञेय-ज्ञायक पूर्ण जानने में आने पर भी उसको जानने का ख्याल नहीं (है)। समझ में आया ? आहाहा !

'**साकार उपयोगमयी...**' उपयोगमयी, ऐसा पाठ लिया है, हाँ ! उपयोग स्वरूप ऐसा भेद भी नहीं। (दशिशक्ति में) अनाकार उपयोगमयी (ऐसे) अभेद लेना है, आहाहा ! भगवान आत्मा वस्तु है, उसमें एक साकार उपयोगमयी शक्ति अभेद है। शक्ति और शक्तिवान कोई भिन्न-भिन्न नहीं है। उसके प्रदेश भिन्न नहीं। शक्ति और द्रव्य - जो शक्तिवान, उसके प्रदेश भिन्न नहीं, आहाहा ! ज्ञान की पर्याय में उसका जो उपयोग होता है, यह ज्ञान की पर्याय स्वद्रव्य को पूर्ण जानती है। फिर भी इस पर्याय में वह द्रव्य आया नहीं। परन्तु जानने की ताकात (की प्रतीति) आ गई और ये पर्याय के प्रदेश भी द्रव्य-गुण से भिन्न हैं। समझ में आया ?

शक्ति का अधिकार बहुत सूक्ष्म है, भाई ! आहाहा ! यह तो अपने हित के लिये बात है। समझ में आया ? ऐसा कहते हैं, अपना हित तो तब होगा - जब ज्ञान की पर्याय ज्ञान को और द्रव्य को (स्व) सन्मुख होकर जाने और उसका स्वभाव भी ऐसा है अज्ञानी को भी ज्ञान की पर्याय में द्रव्य ही जानने में आता है। परन्तु लक्ष वहाँ नहीं (है)। समझ में आया ? लक्ष पर्याय ऊपर और राग ऊपर है। इसलिये पर्याय में सारा द्रव्य जानने में आता होने पर भी उसके ज्ञान में आया नहीं और ज्ञान जब अपने को जानता है, तब तो पर्याय में अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? ज्ञान की पर्याय साकार उपयोगमयी (है)। साकार नाम विशेषरूप से सब द्रव्य-गुण के भेद से, दूसरे द्रव्य-गुण के भी भेद से, अपनी एक-एक पर्याय के भेद से, साकार नाम विशेषरूप से जानने का ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है, आहाहा !

यह ज्ञान की पर्याय जब अपने को जानती है, तो इस पर्याय में द्रव्य, गुण का सामर्थ्य कितना है - इतना पर्याय में (प्रतीति) में आया। पर्याय में द्रव्य (और) गुण आया नहीं। परन्तु द्रव्य-गुण की कितनी ताकत है ! ये सब ज्ञान की पर्याय में आ गया।

ऐसी पर्याय में तो अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है। उसका नाम सम्यक्ज्ञान और ज्ञान की पर्याय में अपने को देखा-जाना, ऐसा कहने में आता है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई ! क्या हो (सकता है) ? आहाहा ! समझ में आया ?

`**साकार उपयोगमयी ज्ञानशक्ति - (जो ज्ञेय पदार्थों के विशेषरूप...)**' विशेषरूप (अर्थात्) भेद से स्व-पर दोनों (भेद से)। `**(...आकारों में उपयुक्त होती है ऐसी ज्ञानोपयोगमयी ज्ञानशक्ति।)**' आहाहा ! ज्ञानशक्ति भी क्रमरूप परिणमती है। ये पर्याय (हुई)। अक्रमरूप रहते हैं वे गुण, और गुण और पर्याय का समुदाय, अक्रम और क्रम का समुदाय वह आत्मा (है)। समझ में आया ? और यह ज्ञानशक्ति है वह पारिणामिकभाव है, सहज स्वभावभाव है। आहाहा ! परन्तु ये पारिणामिकभाव है उसकी सत्ता का पर्याय में स्वीकार हुआ तो पारिणामिकभाव है ऐसा भान हुआ। है तो सही, परन्तु `है' उसका परिणमन में भास आया तो ये है उसका ख्याल आया; नहीं तो नहीं। आहाहा ! समझ में आया कुछ ? यहाँ तो ऐसी बातें हैं। बाल की खाल उतारने जैसा है, भाई ! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। उसका स्वरूप ही ऐसा है।

ज्ञान की पर्याय द्रव्य-गुण को जाने, फिर भी वह पर्याय द्रव्य-गुणरूप होवे नहीं, इतनी जिसमें ताकत है, आहाहा ! उस ताकत्को देखे-जाने और द्रव्य-गुण को जाने, उसको अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव हुए बिना रहे नहीं। ये अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आना उसका नाम धर्म और सम्यग्दर्शन है। मार्ग ऐसा है। लोग `एकांत है...एकांत है...' ऐसा (कहते हैं)। अरे...प्रभु ! सुन तो सही। एकबार आठ-दस दिन सुन तो सही नाथ ! तो तुझे मालूम पड़े, आहाहा ! भाग्य बिना सुनने में आता नहीं, आहाहा !

यह ज्ञान शक्ति अनंत गुण में निमित्त है और ज्ञानशक्ति अनंत गुण में व्यापक है और ज्ञान शक्ति ध्रुव उपादान सहित है। त्रिकाली शक्ति ध्रुव है और परिणमन में उसका ख्याल आया ये क्षणिक उपादान है। क्षणिक उपादान में ख्याल आता है। कल-परसों कहा था न ? अनित्य से नित्य का ज्ञान होता है। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो भगवान की - केवलज्ञान की कॉर्ट है, प्रभु ! यह तो केवलज्ञान की कॉलेज है, तो कॉलेज में तो समझना थोड़ा सूक्ष्म पड़ेगा ना ? थोड़ा समझ में आया हो तो उसकी समझ में आता है। ऐसी बात है, भैया !

ज्ञान शक्ति अपने द्रव्य को जानती है तो पर्याय में व्यवहार का अभाव होता है। जिसको लोग व्यवहार रत्नत्रय कहे उसका (अभाव होता है)। ज्ञानशक्ति का भान हुआ और ज्ञान ने अपने द्रव्य को देखा, गुण को जाना और अपनी पर्याय को जाना तो उस समय में आनंद की पर्याय उत्पन्न हुई, उसमें राग का अभाव है। उसमें व्यवहार रत्नत्रय

का अभाव है, वह अनेकांत और स्याद्वाद है, आहाहा !

लोग तो स्याद्वाद के नाम पर बहुत कुछ करते हैं। आहाहा ! व्यवहार से भी धर्म होता है और निश्चय से भी धर्म होता है, तो यह अनेकांत है। अभी सब ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? भाई ! क्या करे बापू ! यहाँ तो शक्ति का वर्णन है। तो शक्ति उसका गुण है और गुण को धरनेवाला गुणी है। उस गुणी पर दृष्टि हो तो शक्ति विकाररूप परिणमे ऐसा है ही नहीं। व्यवहार रत्नत्रयरूप परिणमे ऐसा शक्ति का कार्य नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? ये व्यवहार का विकल्प है (उसका अभाव होता है)। यह ज्ञान शक्ति धरनेवाले भगवान (की) पर्याय जाननेवाले को जानती है - जाननेवाले की पर्याय जाननेवाले को जानती है, आहाहा ! तब आनंद की पर्याय में व्यवहार रत्नत्रय का / राग का अभाव (होता है)। उसका नाम अनेकांत कहने में आता है। ऐसा मार्ग है, भाई ! वह भी दिगंबर संतों ने जो स्पष्टता की, ऐसी बात कहीं है नहीं, समझ में आया ? आहाहा !

इसमें आत्मा ख्याल करे तो समझ में आता है ऐसी चीज़ है। और आचार्य कहते हैं तो समझने को कहते हैं कि नहीं समझ में आये उसके लिये कहते हैं ? तुम जान सकते हो, भगवान ! ध्यान रखो ! आहाहा ! पानी की तृषा लगी हो तो, घर में घोड़ा हो, बैल हो उसको कहते हैं ? कि पानी लाव। उसको ख्याल है कि, उसे पानी लाने का मालूम नहीं पड़ेगा। और आठ साल की लड़की हो (उसको कहते हैं कि) बेटा पानी लाव। वह जानता है कि, मैं कहता हूँ (तो) वह समझेगी। आहाहा ! वैसे आचार्य कहते हैं कि, मैं जो कहता हूँ वह समझेगा, और उसको कहते हैं। हम शरीर को और राग को नहीं कहते हैं, जाननेवाला भगवान है उसको हम कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

साकार उपयोगमयी (ज्ञानशक्ति)। इसमें कितना भर दिया है, आहाहा ! ज्ञान की पर्याय जब ज्ञाता को जानती है तब ज्ञान की पर्याय में कर्ता-कर्म षट्कारक का परिणमन अपने से होता है और ज्ञान की शक्ति में भी कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण ये षट्कारक का ज्ञानशक्ति में रूप है। समझ में आया ? परंतु ज्ञान शक्ति में ये षट्कारक शक्ति है - यह शक्ति उसमें नहीं। परंतु ज्ञान स्वतंत्र कर्ता होकर (परिणमे ऐसी) शक्ति उसमें है और कर्म नाम ज्ञान की परिणति करता है यह इसका स्वतंत्र कर्म है। ये कर्ता और कर्म शक्ति होने की शक्ति अपने में है। कर्ता और क्रिया शक्ति है उसके कारण से नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है। समझ में आया ?

ज्ञान गुण है, ऐसी स्व सन्मुख की पर्याय जब होती है, तब द्रव्य और गुण है,

ऐसा ख्याल आया। है तो है ही । भैया ! सूक्ष्म बात है। है तो है ही, (लेकिन) ख्याल में आया तब `है', (ऐसा कहने में आता है)। समझ में आया ? यह ज्ञान शक्ति स्वपरप्रकाशक प्रधान शक्ति है। आहाहा ! अनंत गुण में ये असाधारण शक्ति (है) कि जो शक्ति के कारण - यह उपयोगमयी शक्ति, यह जीव है। चिति और दशि साथ में लेना और इस शक्ति की अपेक्षा से दूसरी शक्ति है वह अचेतन है। क्योंकि श्रद्धा, चारित्र, आनंद की शक्ति स्वंय है, ये उसको जानते नहीं हैं। ये शक्ति अपने को जानती नहीं। समझ में आया ? मार्ग ऐसा है, भाई ! समझ में आये ऐसी बात है। भाषा तो सादी है, भगवान ! अनंत काल में कभी स्व सन्मुख हुआ नहीं और पर्याय का यथार्थ ज्ञान किया नहीं, आहाहा ! समझ में आया ?

ज्ञान उपयोगमयी - उपयोग तो त्रिकाल है। परंतु यह ज्ञान उपयोगमयी शक्ति है, उसको जब पर्याय में जानने में आया, तो ये पर्याय में ज्ञानगुण, द्रव्य-गुण अनंत गुण का साकार पर्याय रूप से / विशेष रूप से पर्याय में जानने का उपयोग हो गया। आहाहा ! तो उसी समय उसको अनंत आनंद आता है। आहाहा ! सुख सागर अमृत का सागर (उछलता है)। जब ज्ञानशक्ति की पर्याय उछलती है, उसमें आनंद आदि अनंत शक्ति की पर्याय साथ में उछलती है। आहाहा ! समझ में आया ? मार्ग तो ऐसा है, भैया ! अभी तो मार्ग में फेरफार हो गया। यहाँ तो अस्ति है और व्यवहार से नास्ति है, आहाहा !

शक्ति चलती है न ! तो अनेकांत चर्चते हैं। ऊपर क्या कहते हैं ? अनेकांत अभी विशेष चर्चते हैं। तो उसका अर्थ यह है कि, अपनी ज्ञान शक्ति द्वारा - पर्याय द्वारा, शक्ति है - द्रव्य है, ऐसा ज्ञान की पर्याय में उसे ज्ञेय बनाया तब `है' ऐसा ज्ञान हुआ। `है' ऐसा ज्ञान होने से अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद भी उसी समय पर्याय में साथ में उछलता है, आहाहा ! समझ में आया ?

ये तुम्हारे पैसे की आड़ में सुनने मिले ऐसा है नहीं। यहाँ पैसा की कोई क़ीमत नहीं। यहाँ तो अकेले क्षयोपशम आदि ज्ञान की भी क़ीमत नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? और वह भी (जब) ज्ञान की पर्याय अपने को जानती है, उस समय ज्ञान की पर्याय की उत्पत्ति हुई, यह उसका जन्मक्षण है। ये पर्याय में उत्पन्न होने का काल ही था। समझ में आया ? और ये (पर्याय का) उत्पाद जो हुआ, ज्ञान के जानने से जो पर्याय में उत्पाद हुआ, वह पूर्व की पर्याय के व्यय की भी अपेक्षा नहीं रखती है और उत्पन्न हुई पर्याय वह ध्रुव की अपेक्षा नहीं रखती है। ध्रुव को जाने सही परंतु उसको ध्रुव की अपेक्षा नहीं। समझ में आया ? ज्ञान की पर्याय (ही) कारण और ज्ञान की पर्याय वह कार्य, आहाहा ! ऐसा मार्ग है प्रभु का। यह ``**साकार उपयोगमयी ज्ञानशक्ति** (**जो**

ज्ञेय पदार्थों के विशेषरूप आकारों में उपयुक्त होती है ऐसी ज्ञानोपयोगमयी ज्ञानशक्ति)'' ये चार (शक्ति) हुई।

अब आयी आनंद (शक्ति)। ``**अनाकुलता जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है ऐसी सुखशक्ति**'' आहाहा ! क्या कहते हैं ? आत्मा में एक अनाकुल आनंद शक्ति पड़ी है। आहाहा ! सत् चिदानंद प्रभु ! सत् नाम शाश्वत चित् और आनंद शक्ति उसमें पड़ी है। अतीन्द्रिय आनंद (शक्ति) त्रिकाल पड़ी है। द्रव्य जैसे त्रिकाल है, वैसे अंतर में अतीन्द्रिय आनंद की शक्ति ध्रुव - त्रिकाल है, आहाहा ! परंतु त्रिकाल आनंद और त्रिकाल द्रव्य है। ऐसी आनंद की पर्याय प्रगट करती है, तो इसमें `ये आनंद पूर्ण है', ऐसा ज्ञान आता है। समझ में आया? आहाहा !

सम्यग्दर्शन होता है, तब श्रद्धा तो श्रद्धा है। (ऐसा) क्यों आया ? सुख है न ! इस ४७ शक्ति में समकित और चारित्र शक्ति भिन्न नहीं ली है। क्या कहते हैं वह समझो। ४७ शक्ति में समकित शक्ति और चारित्र शक्ति भिन्न ली ही नहीं। वह सुख शक्ति में समा दी है। समकित और चारित्र में सुख है तो दोनों उसमें समा दिया।

फिर से, यह ४७ शक्ति के जो नाम है उसमें समकित शक्ति और चारित्र शक्ति आयी नहीं। क्योंकि दर्शन शक्ति जो त्रिकाली है, सम्यग्दर्शन शक्ति (की बात है) सम्यग्दर्शन पर्याय भिन्न (है)। त्रिकाली जो सम्यग्दर्शन शक्ति है उस शक्ति की पर्याय स्व को और शक्ति को पर्याय में प्रतीति करती है। प्रतीति करती है ये पर्याय है। किसको प्रतीति करती है ? ये शक्ति और शक्तिवान इसको (प्रतीत करती है)। (जो पर्याय) प्रतीत करती है इसमें द्रव्य, गुण आते नहीं, परंतु प्रतीत में द्रव्य, गुण का सामर्थ्य कितना है वह सब प्रतीत में आ गया है। इस समकित के साथ आनंद साथ में है। इस कारण से सुख में समकित शक्ति और चारित्र शक्ति मिला दी है। आहाहा ! समझ में आया ? नहीं तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तो मूल चीज़ है। उसका इसमें नाम तो आया नहीं। तो (इस तरह) उसमें वह आ गया। क्योंकि सम्यग्दर्शन शक्ति है, वह त्रिकाली को पर्याय में प्रतीत करती है। तो पर्याय में जब त्रिकाली को प्रतीत करती है तो साथ में आनंद आता है, तो आनंद आता है वह सुख शक्ति का परिणमन है। श्रद्धाशक्ति का परिणमन सम्यक् पर्याय (है)। परंतु आनंद शक्ति का परिणमन - साथ में आनंद आया वह आनंद शक्ति का परिणमन है। आहाहा !

यह कुछ समझना नहीं और करो व्रत, करो पडीमा, ले लो महाव्रत (तो हो जायेगा धर्म !) आहाहा ! सारा दिन स्त्रीमें से फुरसत मिले नहीं। ऐसा कब समझने मिलनेवाला है ? आहाहा ! भाई ! चारित्र जब होता है तब चारित्र के साथ आनंद आता है। इसलिये

यह सुख में दोनों शक्ति समा दी हैं। चारित्र कोई ऐसा (दुःखदायी) नहीं। छ ढाला में आता है ना ? ``आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखै आपकूं कष्टदान'' (दूसरी ढाल - गाथा - ६) अंदर में राग का अभाव और वीतरागता का (सद्भाव) (उसे) लोग दुःखदायी मानते हैं। छ ढाला में आता है।

यहाँ तो कहते हैं कि, प्रभु ! एक बार सुन तो सही। तीन लोक का नाथ, चिदानंद भगवान, अनंत गुण का सागर, अनंत शक्ति का भंडार, जिसकी एक-एक शक्ति में अनंत शक्ति का रूप, एक-एक शक्ति में अनंत-अनंत शक्ति व्यापक हैं। ऐसे भगवान को जब शक्ति देखती है, स्पर्शती है और उसमें रमण करती है, तो आनंद आता है। तो आनंद में दोनों शक्ति समा दी हैं। आहाहा ! सम्यग्दर्शन हुआ और आनंद नहीं आया, ऐसी चीज़ है नहीं, ऐसा कहते हैं। (कोई ऐसा कहते हैं), हमें समकित तो है परंतु आनंद नहीं आया। वह बात ही झूठी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

कोई ऐसा कहते थे, दिगंबर जैन में जन्मे वह समकिती तो है ही। अब उसको चारित्र अंगीकार करना। हमारे (संप्रदाय के) गुरु भाई भी ८० की साल में ऐसा कहते थे। हम तो वांचन करते थे ना ! हम उसकी बात करते थे, तो उनको रुचि नहीं। हम संप्रदाय में आ गये, इसलिये संप्रदाय की दृष्टि यहाँ है नहीं। तत्त्व क्या है ? वह हमारी दृष्टि है। चातुर्मास के बाद उन्होंने सबको कहा, `देखो भैया ! हम लोगों को सम्यग्दर्शन तो गणधर जैसा मिला है। अब हम लोगों को अहिंसा आदि व्रत का चारित्र लेना वह विशेष कार्य है,' अरे...! भगवान बापू ! आहाहा ! ऐसी चीज़ नहीं है। बापू ! समकित ऐसी चीज़ नहीं (है)।

समकित की पर्याय पूर्णानंद के नाथ को प्रतीत में लेती है। फिर भी पूर्णानंद प्रभु श्रद्धा की पर्याय में आता नहीं। उसका सामर्थ्य कितना है - वह पर्याय में - श्रद्धा में आता है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बात है, भाई ! क्लास में (आये हुए) आदमी एकबार सुने तो सही क्या चीज़ है ? समझ में आया ? शोभालाल तो यह आत्मा है। सम्यग्दर्शन से पूरे पूर्णात्मा को प्रतीत करते हैं, यह उसकी शोभा है। समझ में आया ? और अकेले सम्यग्दर्शन से कोई मुक्ति नहीं होती। समझ में आया ? जब कि उसको मोक्षमार्ग कहा है। छ ढाला में आया है। तीनों शीवमगचारी (हैं)। चौथे, पाँचवें और छठे गुणस्थान में सम्यक्दृष्टि है वह शीवमगचारी है। फिर भी शीवमगचारी में छठे गुणस्थान में चारित्र है। वहाँ पूर्णता है। वैसे तो चारित्र की पूर्णता चौदहवें (गुणस्थान में) आखिर में होती है। परंतु स्वरूप की दृष्टि / अनुभव हुआ और आनंद का वेदन हुआ, उसके साथ चारित्र की रमणता हुई, तो छठे - सातवें (गुणस्थान में) चारित्र गिनने में आता

है। मोक्षमार्ग तो दर्शन - ज्ञान - चारित्र तीनों होकर होता है। अकेले सम्यग्दर्शन - ज्ञान से मुक्ति होती है, ऐसा नहीं। चारित्र तो साथ में है, न ले सके वह दूसरी बात है। आहाहा !

श्रेणिक महाराजा जैसे क्षायिक समकिती चारित्र न ले सके। परंतु प्रतीत में तो ऐसा था कि, स्वरूप की रमणता - चारित्र होगा तब मुक्ति होगी। समझ में आया ?

अरे...! ऋषभदेव भगवान (का दृष्टांत) लो। तिरासी (८३) लाख पूर्व गृहस्थाश्रम में रहे। चारित्र नहीं था। तीर्थंकर - क्षायिक समकित, तीन ज्ञान लेकर आये (थे)। तो भी चारित्र बिना तिरासी लाख पूर्व (गृहस्थाश्रम में) रहे। चारित्र नहीं था। एक पूर्व में ७० लाख करोड़ और ५६ हज़ार करोड़ वर्ष जाते हैं। ऐसा-ऐसा तिरासी लाख पूर्व चारित्र नहीं था। शास्त्र में इतना लिया है कि आठ वर्ष की उम्र में १२ व्रत लेते हैं। उत्तर पुराण में आता है कि, जितने तीर्थंकर हो, सब समकित लेकर आते हैं, परंतु आठ वर्ष की उम्र में वे १२ व्रत धारण करते हैं, ऐसा आता है। फिर भी करोड़ों वर्ष - अरबों वर्ष वहाँ रहे (लेकिन) चारित्र नहीं था। वहाँ (चारित्र का) अंश है। चौथे गुणस्थान का, पाँचवें गुणस्थान का स्वरूपाचरण (चारित्र) था। परंतु जो चारित्र छठे - सातवें (गुणस्थान का) चाहिए वह नहीं था। उसमें तो महान-महान पुरुषार्थ (होता है)। सम्यग्दर्शन से भी चारित्र का तो महान पुरुषार्थ है। नग्न हो जाना और पंच महाव्रत धारण कर लेना, वह कोई चारित्र नहीं (है)। स्वरूप आनंद के नाथ (की) रमणता में रममाण हो जाना, आहाहा ! आनंद के नाथ में / आनंद में मशगूल - तन्मय हो जाना, उसका नाम चारित्र है। पंच महाव्रत आदि तो अचारित्र है। आहाहा !

यहाँ तो अभी पंच महाव्रत का भी ठीकाना नहीं है और मानते हैं कि चारित्र है। जब नववीं ग्रैवेयक गये थे - ``मुनिव्रत धार अनंत बैर, ग्रैवेयक उपजायो, पण आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो'' - ११ अंग पढ़े थे, पंच महाव्रत धारण किये थे, २८ मूलगुण साफ-साफ पालते थे, प्राण जाय तो भी उसके लिये आहार / भोजन करे (बनावे) तो लेते नहीं थे। ऐसे क्रियाकांड के शुक्ल लेश्या के भाव थे। परंतु आतमज्ञान बिन लेश सुख न पाया; ये सब दुःख था। पाँच महाव्रत का परिणाम यह राग है, दुःख है और आस्त्रव है। वह चारित्र नहीं। व्यवहार आता है परंतु है दुःख, है जग पंथ, इतना संसार है। पंचसंग्रह में आया है कि, अज्ञानी को भी जितना राग आता है, (वह) सब संसार है। समयसार नाटक में मोक्ष अधिकार में आता है। ४० वाँ बोल है। यहाँ तो ये कहते हैं कि, सम्यग्दर्शन की खबर नहीं कि सम्यग्दर्शन कैसे उत्पन्न होता है ? और हो तो कैसी दशा हो ? उसकी खबर नहीं है। और व्रत इत्यादि अपनी कल्पना से लेकर नववीं

ग्रैवेयक गया। तो यहाँ तो ऐसे व्रत भी नहीं और माने कि हमें चारित्र है, पंचम गुणस्थान है, छठा गुणस्थान है, मानो बापू ! आहाहा !

स्वरूप की दृष्टि हुई और स्वरूप का ज्ञान हुआ, स्वरूप में लीनता - रम जाना, इस आनंद में अंदर घुस जाना, आनंद की उग्र पर्याय होना - उसका नाम चारित्र है। समझ में आया ? तो ऐसे चारित्र बिना मुक्ति कभी नहीं होती। अकेले सम्यग्दर्शन - ज्ञान से मुक्ति नहीं होती। भले ही शीवमगचारी, ऐसा कहने में आता है। (लेकिन) आत्मा में चारित्र की रमणता (हुए बिना मुक्ति नहीं होती)। आहाहा ! कोई नग्नपना ले लिया और पंच महाव्रत ले लिया इसलिये चारित्र हो गया, ऐसा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? अंतर में आत्मा का दर्शनपूर्वक, आनंदपूर्वक, ज्ञानपूर्वक स्वसंवेदन होकर, आनंद का रमण (होना वह चारित्र है)। जिसके सुख के स्वाद के आगे इन्द्र के, इन्द्राणी के करोड़ों के सुख भी ज़हर जैसे दिखे - ये तो सम्यक्‌दृष्टि को ऐसा है, समझ में आया ? आता है ना ? ``चक्रवर्ती की संपदा, इन्द्र सरीखा भोग, कागवीट सम मानते सम्यक्‌दृष्टि लोक'' आहाहा ! इन्दौर में काच का मंदिर है उसमें लिखा है। बताया था, देखो ! क्या लिखा है ?

सम्यक्‌दृष्टि अपने आनंद के स्वाद में आया (तो उसकी दृष्टि में) ``चक्रवर्ती की संपदा, इन्द्र सरीखा भोग कागवीट'' (समान लगती है)। मनुष्य की विष्टा तो खाद में भी काम आती है। परंतु काग की विष्टा खाद में भी काम आती नहीं है। सुखी विष्टा नुकसान करती है। आहाहा ! लोग कहते हैं कि पुण्य को विष्टा क्यों कहते हो ? परंतु भगवान ने तो ज़हर कहा है। विष्टा तो अभी सादी भाषा है - तो यहाँ तो विष्टा कहा। पुण्य के फल को कागवीट सम मानते हैं। जिसके फल को कागविष्टा सम माने, उसके कारण को विष्टा ही मानते हैं, ज़हर ही मानते हैं, आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, ज्ञान उपयोग प्रधान चीज़ है। क्योंकि ज्ञान अपने को जाने, ज्ञान दूसरे गुण को जाने, ज्ञान द्रव्य को जाने, ज्ञान पर को जाने, ज्ञान जड़ आदि के अस्तित्व को जाने। जड़ के अस्तित्व की जड़ को खबर नहीं। दूसरी बात, ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा आहाहा ! ज्ञान - ज्ञान को जब जानता है तब तो अतीन्द्रिय आनंद आता है। समझ में आया ? यह आनंद की भूमिका में चारित्र में राग आदि आता है परंतु यह दुःखरूप है। व्यवहार हेयबुद्धि से आता है। समकिती को भी व्यवहार आता तो है परंतु हेयबुद्धि से आता है, ऐसी बात है और जिसे हेयबुद्धि नहीं (वह) आत्मा (को) हेय मानता है और जिसने आत्मा उपादेय माना है, वह राग को हेय माने बिना रहे नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है, बापू !

``**अनाकुलता जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है ऐसी सुखशक्ति**'' आहाहा ! सुख में आकुलता ज़रा भी नहीं है। राग और पुण्य के परिणाम में तो आकुलता है। ये सुख शक्ति का परिणमन नहीं। वह तो दुःखरूप दशा है। आहाहा ! दुनिया सुख के लिये तरसती है न ! सुख की अभिलाषा है, परंतु सुख है कहाँ ? पैसे में कोई सुख नहीं। सुख तो अपनी पर्याय में ज्ञान का क्षयोपशम है उसमें भी नहीं। ज्ञान का क्षयोपशम हुआ, परलक्षी ज्ञान (में) ११ अंग - ९ पूर्व पढ़े, तो भी (ऐसी परलक्षी) ज्ञान की पर्याय में सुख नहीं है, आहाहा ! सुख तो अंदर भगवान आत्मा में है। जिसके साथ सम्यक्‌दर्शन और चारित्र भी साथ में है, आहाहा ! समझ में आया ?

एक शक्ति में दो शक्ति समा दी हैं। बहुत प्रश्न आते थे कि, इसमें समकितदर्शन (और) चारित्र गुण क्यों नहीं आया ? परंतु इस प्रकार से आये। सिद्ध में आठ गुण दिये हैं, उसमें चारित्र गुण नहीं आया - सुख आता है, समझ में आया ? सिद्ध में चारित्र नहीं है, ऐसा नहीं, चारित्र तो है। तो (चारित्र) क्या ? स्वरूप की पूर्ण रमणता वह चारित्र (है)। इसे सुख गुण में समा दिया है। सिद्ध के आठ गुण में समा दिया है। ऐसा यहाँ लेना। (वहाँ सिद्ध में) सम्यग्दर्शन (और) चारित्र (को) सुख में समा दिया है। समझ में आया ? वैसे यहाँ भी सुख में दो गुण समा दिये हैं, वैसे ले लेना। यह तो सिद्धांत का आधार दिया। ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य (ये) चार (गुण घाती कर्म के अभाव से प्रगट) हुए और (अव्याबाध, अवगाह, अगुरुलघु और सूक्ष्मत्व - यह) चार गुण अघाती के (अभाव से प्रगट हुए)। आहाहा !

ऐसे यहाँ सुखशक्ति की जहाँ सँभाल हुई, वहाँ प्रतीत और चारित्र की (पर्याय) साथ में हुई, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? और सुख की परिणति / आनंद जो आया, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का फल जो आनंद है, वह साथ में है। आहाहा ! चारित्र उसको नहीं कहते हैं कि, पंच महाव्रत के परिणाम और नग्न हो जाये, ११ पडीमाधारी हो जाये, सात पडीमा, आठ पडीमा, दस पडीमा आती है न ? पंद्रह पडीमा हो तो पंद्रह पडीमा ले लेवे। आहाहा ! वह पडीमा नहीं, भाई ! तुझे खबर नहीं है, आहाहा ! स्वरूप तो आनंदमय, सम्यग्दर्शन और चारित्रमय आत्मा है। इसकी प्रतीति, ज्ञान, रमणता और सुख एक समय में होता है। उसको यहाँ सुख शक्ति का परिणमन कहने में आता है। दूसरी रीत से कहें तो ये सुख शक्ति द्रव्य - गुण - पर्याय में व्यापती है। तब सुख गुण की प्रतीति आयी। पर्याय में सुख आया नहीं और सुख की प्रतीति आती है, ऐसा है नहीं। विशेष कहेंगे...

प्रवचन नं. ६
शक्ति-५, ६ दि. १६-०८-१९७७
अनाकुलत्वलक्षणा सुखशक्तिः ।।५।।
स्वरूपनिर्वर्तनसामर्थ्यरूपा वीर्यशक्तिः ।।६।।

(समयसार शक्ति का अधिकार चलता है)। आत्मा जो पदार्थ है; आत्म वस्तु वह तो शक्तिवान है, स्वभाववान है। उसका स्वभाव, उसकी शक्ति को - गुण को यहाँ शक्ति कहते हैं। द्रव्य भी त्रिकाल शाश्वत है और अनंत गुण भी एक समय में तिरछा - एक साथ में अक्रम (रूप से) वर्तते हैं।

क्या कहा ? अपना असंख्य प्रदेश - भूमिका - अपना देश - क्षेत्र उसमें अनंत गुण ज्ञान, दर्शन, आनंद ऐसा तिरछा अनंत गुण एक समय में ऐसे व्यापक है। तिरछा समझते हो ? तिरछे को क्या कहते हैं ? टेढ़ा - कहते हैं। आहाहा !

भगवान आत्मा के देश में - देश नाम असंख्य प्रदेश के क्षेत्र में अनंत शक्तियाँ रहती हैं। यह अनंती शक्ति एक समय में (एक) साथ में है और पीछे पर्याय जो होती है, वह क्रमसर होती है। आयत समुदाय ऐसी (पर्याय) जिस समय में अनंत गुण की अनंती पर्याय हुई, (वह) उसी समय में होनेवाली हुई। दूसरे समय में वही होनेवाली हुई, ऐसे क्रमसर - आयत लंबाई में अनंत पर्याय उत्पन्न होती हैं। उसको आयत समुदाय कहते हैं। और एक आत्मा उसके असंख्य प्रदेश में एक-एक प्रदेश में अनंत गुण (है)। सारे असंख्य प्रदेश में अनंत गुण व्यापक है। एक प्रदेश में पूर्ण गुण (व्यापक) नहीं। असंख्य प्रदेश में पूर्ण गुण व्यापक हुआ है - रहा है। आहाहा ! ऐसे स्वदेश की सेवा किये बिना स्वतंत्रता प्रगट नहीं होगी। आहाहा ! समझ में आया ? कल १५ अगस्त थी ना ? स्वराज-स्वतंत्र (हुआ), धूल में भी स्वतंत्र नहीं है।

आतमराजा - ऐसा (समयसार की) १७-१८ गाथा में आया है। आतम राजा (कहा है)। आहाहा ! जैसे बाहर का राजा है वह छत्र-चामर आदि से जानने में आता है कि, यह राजा है और उसके शरीर की ऋद्धि - समृद्धि ऐसी दिखने में आती है कि, यह राजा है। समझ में आया ? ऐसे आतमराजा। ऐसा समयसार १७-१८ गाथा में पाठ है। आहाहा ! भगवान आत्मा ! राजा नाम 'रज्जते - शुभते इति राजा'। अपनी शक्ति और सुख आदि गुण से शोभते हैं, इसलिये उसको राजा कहने में आता है। विकार के परिणाम से - संयोग से शोभता है, वह आत्मा नहीं। क्या कहा ? यह संयोग - चक्रवर्ती का राज हो या इन्द्र पद हो, उससे आत्मा शोभे वह राजा - आत्मा नहीं; और पुण्य - पाप के भाव से आत्मा शोभे, वह आत्मा नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? आत्मा तो अपनी अनंत शक्ति से अंदर शोभायमान है। आहाहा ! जिसका सुख शणगार है।

अपना सुख स्वभाव है। पाँचवीं शक्ति चलती है न ? आहाहा ! तो अपने स्वभाव में जैसे ज्ञान, दर्शन, आनंद आदि शक्ति है, ऐसी सुख शक्ति - आनंद शक्ति है। इस आनंद शक्ति की अनंत शक्ति है और इस आनंद शक्ति में अनंत गुण का रूप है। तो क्या कहते हैं ? आहाहा ! जब यह ज्ञान शक्ति का भंडार भगवान आत्मा ! उस पर दृष्टि का स्वीकार होने से अर्थात् सम्यग्दर्शन होने से, अर्थात् सम्यक् - सत्य पूर्ण आनंद स्वरूप उसको देखना - दर्शन होना - प्रतीत होना, उसमें अनंत गुण के सुख का स्वाद आता है, ऐसा कहते हैं। क्या कहा वह ? ये सुख स्वरूप शक्ति है। तो सुख का रहनेवाला सागर - भगवान आत्मा ! उस पर दृष्टि करने से (सुख प्रगट होता है)। आहाहा ! समझ में आया ?

आज तो दोपहर में दिमाग में ऐसी बात चली थी कि, मुनिराज - आत्मज्ञानी, आत्मध्यानी है। आनंद का अनुभव लेनेवाले हैं। उन्हें देह की स्थिति पूरी होने का ख्याल आ जाय कि, अब देह की स्थिति नहीं रहेगी, समझ में आया ? (तो ऐसी भावना भाते हैं) वह भक्ति हिन्दी में भी है. ('**चलो सखी वहाँ जाइए, जहाँ अपना न कोई, कलेवर भखे जनावरा, मुआ न रोए कोई**') ऐसा आता है। ('**माटी भखे जनावरा**') - तुम्हारी हिन्दी भाषा में होगा। हम तो बहुत बार कहते हैं, ('**चलो सखी वहाँ जाइए**') मुनिराज ! अपनी शुद्ध परिणति को (ऐसा) कहते हैं। आहाहा ! ('**चलो सखी वहाँ जाइए, जहाँ अपना न कोई**') मुझे कोई पिछाने नहीं। अपना कोई नहीं है, वहाँ हम जंगल में - गुफा में चले जायें। जहाँ आनंद सागर भगवान है, उसकी लीनता में हम चले जावे। आहाहा ! ('**माटी भखे जनावरा**') हमारे यहाँ (गुजराती में) ('**कलेवर भखे जनावरा**') - (ऐसा आता है)। कलेवर (माने) शरीर - मृतक कलेवर। वह कलेवर शियाळ (जानवर) भखे (खाये)। और ('**मुआ**

न रोये कोई') देह छूटे तो कोई रोनार नहीं। रोनार समझे ? रोनेवाला कोई नहीं। आहाहा ! क्योंकि आनंद का सागर मेरा आत्मा (उसके) आनंद में लीन होने को - मैं गिरि गुफा में (अर्थात्) अंदर में चला जाता हूँ। आहाहा ! समझ में आया ? समयसार की ४९ गाथा में `गिरि गुफा' (आता है)। भगवान निश्चय से तो गिरि गुफा तो उसको कहते हैं, कि भगवान आत्मा जिसमें अनंत गुण है - वहाँ जाना उसको उसे गिरि गुफा में जाना कहते हैं। आहाहा ! बाहर की गिरि गुफा तो व्यवहार का - निमित्त का कथन है। समझ में आया ? जहाँ अपना भगवान आत्मा है (वह गिरि गुफा है), आहाहा !

प्रवचनसार चरणानुयोग (अधिकार में) एक बात चली है। जब (कोई सम्यक्दृष्टि राजा) अपने आनंद में लीन होने को दीक्षित होता है, तो स्त्री को कहते हैं कि, `हे स्त्री ! तू शरीर को रमाडनेवाली (काम क्रीडा करनेवाली) स्त्री है, मुझे नहीं। मेरी तो अनादि - अनंत अनुभूति अंदर पड़ी है, वह मेरी स्त्री है। मैं तो उसमें रमने को जाता हूँ' आहाहा ! समझ में आया ? `हे स्त्री ! रजा दे। मेरे आनंद स्वरूप में जाने को (रजा दे)' आनंद स्वरूप ऐसी मेरी अनुभूति अनादि की (है)। आहाहा ! अनादि की अनुभूति की (बात) कहते हैं, पर्याय की नहीं। यह तो उसका स्वरूप त्रिकाल (है, उसकी बात है)।

समयसार की ७३ गाथा में भी आता है। वहाँ आता है कि, आत्मा की पर्याय में राग आदि तो नहीं परंतु राग आदि से भिन्न परिणति, राग रहित परिणति (जो) पर्याय में षट्कारक की होती है, वह भी मेरी (त्रिकाल) अनुभूति में नहीं। मैं तो राग से भिन्न हूँ, पर से तो भिन्न हूँ परंतु मेरी परिणति में निर्मल शुद्ध षट्कारक की परिणति (होती है, उससे भी मैं भिन्न हूँ)। पर्याय में षट्कारक रूपी दशा होती है। पर्याय की कर्ता पर्याय, पर्याय का कर्म पर्याय, पर्याय का साधन पर्याय, पर्याय का संप्रदान पर्याय, अपनी पर्याय होकर (अपने में रखी) - पर्याय से पर्याय हुई, पर्याय का आधार पर्याय, ऐसे षट्कारक की निर्मल परिणति जो है, उससे भी मेरी अनुभूति तो भिन्न है। आहाहा ! अनुभूति नाम त्रिकाल स्वभाव। यह अनुभूति पर्याय नहीं। ७३ गाथा में है, समझ में आया ? आहाहा !

मैं जहाँ हूँ वहाँ मेरी अनुभूति मेरे में है। `हे स्त्री ! मुझे छोड़ दे ! नहीं छोड़ेगी तो भी आज्ञा माँगूगा (कि) अब रजा दे !' बाद में तो घर छोड़ के चले जाते हैं। रजा दे तो चले जाना, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

माता को कहते हैं, `जनेता ! तू शरीर की जनक - जनेता है। मेरी जनेता तू नहीं। मैं तो आत्मा हूँ। माता ! एकबार माता रजा दे ! मैं मेरी आनंदरूपी माता (है) वहाँ मैं जाना चाहता हूँ। मेरे अंदर शुद्ध आनंद की दशा - माता, उसके पास मैं जाना

चाहता हूँ। वही मेरी माता है। उसमें से आनंद की दशा उत्पन्न होती है।' समझ में आया ? माता ! जनेता कहते हैं न जनेता ? तू शरीर की जनेता हो, मेरे आत्मा की नहीं। माता ! एकबार रोना हो तो रो ले। मैं २५ वर्ष की युवान अवस्था में हज़ारों रानियाँ छोड़कर चला जाता हूँ। माता ! मेरा आनंद स्वभाव का स्वाद लेने मैं जंगल में चला जाता हूँ। माता ! एकबार रोना हो तो रो ले, माँ ! मैं कोल करार करता हूँ, माता ! फिर दूसरी माता नहीं करूँगा। मैं दूसरी माता नहीं करूँगा।' आहाहा !

हम संप्रदाय में थे तब भी कहते थे। श्वेतांबर का उत्तराध्ययन है, उसमें १४ वाँ अध्ययन है। उसमें ब्राह्मण का लड़का दीक्षित होता है तो माता के पास आज्ञा माँगता है। तो उस समय ६० वर्ष पहले हम तो कहते थे। उत्तराध्ययन सूत्र है उसमें श्लोक है। ६ हज़ार श्लोक कंठस्थ थे। ७०-७१ की साल में श्वेतांबर के ६ हज़ार श्लोक कंठस्थ थे। उसमें यह एक श्लोक आया था।

`अजैव धम्मम् पडिवज्जयामो, जहिं पुवणान पुनमभवामो;

अणागयेण एव य स्थितिंचि, श्रद्धाखमम्एव विण ए तुणागम'

उत्तराध्ययन के श्वेतांबर का ऐसा श्लोक है। अब उसका अर्थ करेंगे। उसमें भी हम कहते थे। `अजैव धम्मम् पडिवज्जयामो' `हे माता ! जनेता ! मेरे आनंद स्वरूप को अंगीकार करने को मैं जंगल में जाता हूँ।' `अजैव धम्मम्' आज ही, `धम्मम् पडिवज्जयामो, जहिं पुवणान पुनमभवामो;' `माता ! मैं अंदर में धर्म अंगीकार करने जाता हूँ' और हम कहते हैं, `जहिं पुवन्नान पुनमभवामो' `माता ! दूसरा भव हम नहीं करेंगे। हम तो आनंद के नाथ में रमणता करने को चले जाते हैं' आहाहा ! अंदर सुख का भंडार भगवान है, आहाहा ! मैं वहाँ जाता हूँ. `अणागयेण एव य स्थितिंचि' `माता ! इस जगत में नहीं प्राप्त हुई ऐसी कौनसी चीज़ रह गई है ? सब मिला (है)। स्वर्ग मिला, माता, कुटुंब, राज मिला, सब मिला।' प्रभु ! कोई `अणागयेण' - भूतकाल में नहीं प्राप्त हुई कोई चीज़ रही नहीं। सब चीज़ें प्राप्त हुई हैं। एक आत्मा मैंने प्राप्त नहीं किया। आहाहा **`अणागयेण एव य स्थितिंचि'** उस समय यह श्लोक आता था। उस वक्त सभा डोल उठती ती। ६० साल पहले की (बात है)। **`जहिं पुवणान पुनमभवामो अणागयेण एव य स्थितिंचि'** `हे माता ! जगत का कोई भी संयोग - चीज़ मिले बिना नहीं रही। सब संयोग अनंत बार मिला' `श्रद्धाखमम्एव' `हे माता ! एकबार श्रद्धा नक्की कर और हमें क्षमा करके रजा दे दे' `श्रद्धाखमम्एव विण ए तुणागम' `माता ! जनेता ! हमारे प्रति - शरीर प्रति राग छोड़कर हमको रजा दे दे,' आहाहा !

यहाँ कहते हैं सुख शक्ति जो आत्मा में है, इस सुख शक्ति में ज्ञान का सुख,

दर्शन का सुख, चारित्र का सुख, सुख का सुख, वीर्य का सुख, अस्तित्व का सुख, वस्तुत्व का सुख, कर्ता शक्ति का सुख, कर्म शक्ति का सुख, (ऐसी) अनंत शक्ति का सुख मेरी सुख शक्ति में आता है, समझ में आया ? जैसे यहाँ कहते हैं न ? हमारी स्त्री सुख का कारण है, लड़का सुख का कारण है, पैसा सुख का कारण है, धूल में भी (सुख का कारण) नहीं है। आहाहा ! अज्ञान में हैरान हो गया।

यहाँ तो कहते हैं मेरे सुख में मेरे ज्ञान का सुख है, दर्शन का सुख है, ऐसे अनंत गुण का सुख मेरे सुख में है। ये तुम्हारे पैसे, सेठ तो कहीं रह गये। आहाहा ! सराफ का धंधा तो अंदर में है। ये शक्ति कही न ? अपने पाँचवीं शक्ति चलती है न ? `**अनाकुलता जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है ऐसी सुखशक्ति**' ये शब्द बहुत थोड़े हैं, परंतु भाव बहुत भरा है। आहाहा !

भगवंत ! तेरे आत्मा में अनाकुल जिसका स्वरूप (है) ऐसी सुख शक्ति से तुम भरा पड़ा है, प्रभु ! आहाहा ! हिरन की नाभि में कस्तूरी (है लेकिन हिरन को) कस्तूरी की क़ीमत नहीं। वैसे अपनी शक्ति में आनंद है उसकी खबर नहीं। (इसलिये) पर में आनंद ढूंढ़ने जाता है, आहाहा ! समझ में आया ? यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है, भाई ! प्रभु ! वीतराग मार्ग ऐसा बताते हैं। आहाहा ! मैं मेरे मार्ग में जाता हूँ, आहाहा !

गजसुकुमार थे न ? श्रीकृष्ण के भाई (थे)। जब श्रीकृष्ण नेमिनाथ भगवान के दर्शन करने जाते हैं, तो हाथी पर बैठकर जाते हैं। गजसुकुमार तो छोटा कुमार था। भाई की गोद में बैठे हैं। गोद में बैठकर हाथी पर जा रहे थे। नेमिनाथ भगवान पधारे थे तो हाथी पर बैठकर दर्शन करने जा रहे थे। (श्रीकृष्ण) वासुदेव थे ना ? तो हाथी पर (बैठकर जा रहे थे)। वहाँ एक सोनी की कन्या थी। वह कन्या सोने के गेंद से खेल रही थी। बहुत सुंदर थी। श्री कृष्ण को ऐसी इच्छा हुई कि, उस सोनी की कन्या को अंतःपुर में ले जावे। गजसुकुमार की शादी करेंगे, आहाहा !

ध्यान रखो ! क्या कहते हैं ? उस (कन्या को) अंतःपुर में ले गये। गजसुकुमार, श्री कृष्ण आदि भगवान के पास गये और भगवान की वाणी सुनी, और वाणी सुनकर ही अंदरमें से वीर्य उल्लसीत हुआ (और कहा) `नाथ ! मैं मुनिपना लेना चाहता हूँ, मैं मेरी माता के पास आज्ञा लेने जाऊँ।' देवकी माता (थी)। (माता को कहा) `माता ! मुझे मुनिपना (लेना है)। मेरे आनंद के नाथ की सँभाल करने को जा रहा हूँ। मेरा आनंद स्वरूप, सुख स्वरूप उसकी सँभाल और उसकी रक्षा करने को जा रहा हूँ। मेरे परिणाम में - पर्याय में जो दुःख है, वह मेरे आनंद (और) सुख की परिणति में दुःख का अभाव है'। आहाहा !

क्या कहा ? मेरे आत्मा में आनंद नाम का सुख है और वह द्रव्य - गुण - पर्याय तीनों में व्याप्त है। जब द्रव्य पर दृष्टि पड़ती है तो ये सुख गुण द्रव्य में, गुण में और पर्याय में तीनों में व्याप्त होता है। और सुख की व्याप्ति जब पर्याय में हुई तो उस समय व्यवहार मोक्षमार्ग जिसको कहे (ऐसा) राग - विकल्प उसका उसमें अभाव है। आहाहा ! ऐसी बात है, प्रभु ! आहाहा ! अभी तो बहुत गड़बड़ हो गई है, आहाहा ! बात तो ऐसी है।

(समयसार में) पहला श्लोक कहा न ?

``**नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।**

चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावांतरच्छिदे।।१।।''

यह समयसार का पहला कलश (है)। आत्मख्याति - प्रसिद्धि का पहला कलश (है)।

`**नमः समयसाराय**' - मैं आनंद और ज्ञान का स्वरूप से भरा प्रभु (हूँ)। मेरा आनंद उस ओर झुकता है; राग और पर की ओर झुकना छोड़कर मेरा समयसार आनंद का सागर उस ओर मेरा नमन - विनय झुकता है, आहाहा ! `**नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते**' - मेरा आनंद का नाथ मेरी अनुभूति से प्रगट होता है। कोई विकार या दया - दान के व्यवहार से प्रगट नहीं होता है, ऐसा कहते हैं। `**स्वानुभूत्या चकासते**' - अपने आनंद की परिणति के कारण से वह प्रगट होता है, आहाहा ! `**चित्स्वभावाय भावाय**' - मैं भावाय नाम आत्म पदार्थ हूँ और मेरा ज्ञान आदि गुण चिद् स्वभाव नाम का गुण है। और स्वानुभूति से मेरी पर्याय में आत्मा प्रसिद्ध होता है, आहाहा ! पहले श्लोक में आता है ना ? `**सर्वभावांतरच्छिदे**' - यह चौथा बोल है। मैं तीन काल, तीन लोक के पदार्थ को अपनी ज्ञान शक्ति में जो सर्वज्ञ शक्ति गर्भित पड़ी है, (उससे जानता हूँ), आहाहा ! पहली ज्ञान शक्ति आ गई न ? उसमें आगे १० वीं शक्ति में सर्वज्ञ शक्ति लेंगे। परंतु वह ज्ञान शक्ति आई उसमें सर्वज्ञ शक्ति गर्भित पड़ी है, आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बातें हैं, भाई ! मार्ग तो सूक्ष्म है ना ?

चिद्‌विलास में ऐसा लिया है, आत्मा में एक सूक्ष्म नाम का गुण है। तो ज्ञान सूक्ष्म, दर्शन सूक्ष्म, आनंद सूक्ष्म, स्वच्छत्व सूक्ष्म, कर्ता सूक्ष्म, सर्व गुण सूक्ष्म है। समझ में आया ? पुण्य - पाप के विकल्प में यह सूक्ष्म गुण आता नहीं, आहाहा ! मैं सूक्ष्म गुण से भरा (हूँ)। ज्ञान सूक्ष्म, दर्शन सूक्ष्म, अनंत अतीन्द्रिय आनंद सूक्ष्म रूप से है। ये लोग कहते हैं कि (यह विषय) सूक्ष्म पड़ता है। भगवान ! तू सूक्ष्म ही है, आहाहा !

ऐसा आत्मा `**सर्वभावांतरच्छिदे**' - एक समय में तीन काल, तीन लोक को जाने।

`**सर्वभावांतरच्छिदे**' - (अर्थात्) जाने। यह तो अस्ति से बात ली है, वहाँ नास्ति की बात नहीं ली। पुण्य - पाप का भाव उसमें नहीं है, ऐसा भी नहीं लिया है। `**चित्स्वभावाय भावाय**' - आत्मा भावाय - पदार्थ है। `**चित्स्वभावाय**' - चिद् ज्ञानानंद गुण है और अनुभूति से प्रगट होता है। अस्ति से द्रव्य - गुण - पर्याय तीनों लिये और पूर्ण पर्याय में सर्वज्ञ लिये। चारों अस्ति से लिये। वहाँ अजीव नहीं है, पुण्य नहीं है, पाप नहीं है, यह बात ली ही नहीं है, आहाहा ! ये लोग चिल्लाते हैं न कि, व्यवहार का निषेध करते हैं। भाई ! हम निषेध नहीं करते हैं, परंतु वस्तु का स्वरूप ऐसा है। भगवान ! तुझे खबर नहीं है, भाई ! आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि आत्मा में अनाकुलता लक्षण (अर्थात्) स्वरूप ऐसी सुख शक्ति है, सुख स्वभाव है, आहाहा ! वीणा होती है न ? (उसके) तार में ऐसे झनझनाहट करते हैं तो तार में झनझनाहट होती है। ऐसे सुख शक्ति से भरे हुए भगवान में एकाग्र होता है तो पर्याय में सुख की झनझनाहट आती है। वहाँ सुख की वीणा बजती है। आहाहा ! यहाँ तो भगवान ऐसी बात है, प्रभु ! तुम सब तो भगवान है न, प्रभु ! आहाहा ! तेरी शक्ति का माहात्म्य तुझे नहीं और तेरे में नहीं (ऐसे) पुण्य - पाप (और) पुण्य-पाप का फल उसका तुझे माहात्म्य आया और तेरी चीज़ का माहात्म्य खो दिया। आहाहा ! तेरे स्वरूप में तो प्रभु सुख शक्ति पड़ी है न ! सुख का स्वभाव सामर्थ्य पड़ा है न ! आहाहा ! इस सुख शक्ति में अनंत शक्ति है। दूसरा (भी) सुख है, ज्ञान का सुख, दर्शन का सुख वह दूसरी बात (है)। परंतु यह सुख की शक्ति (स्वयं) अनंत सामर्थ्यवाली है। यहाँ तो ऐसी बातें हैं, भगवान !

अरेरे...! अनादि से निजपद को सँभाले बिना परपद में गोथा खाते हैं। आहाहा ! पुण्य - पाप और पुण्य - पाप का फल, वह निजपद नहीं, प्रभु ! निजपद में तो आनंद पड़ा है ना प्रभु ! आहाहा ! उस निधान पर एकबार नज़र तो दे। ``मारी नज़र ने आळसे रे, में निरख्या न नयणे हरि'' - अन्यमत में आता है। अन्यमत में ऐसा आता है - `मारी नज़र ने आळसे रे, में निरख्या न नयणे हरि' आहाहा ! हरि माने आत्मा, हों !

पंचाध्यायी में लिया है, भाई ! यह आत्मा हरि (है)। क्यों हरि (कहा) ? `हरते इति हरि'। पुण्य-पाप और मिथ्यात्व का भाव हरता है - नाश करता है। इसलिये हरि कहने में आता है। पंचाध्यायी में पाठ है - `हरते इति हरि' क्या हरता है ? भगवान आनंद स्वरूप की दृष्टि करने से और उसमें लीन होने से - मिथ्यात्व और राग-द्वेष का नाश करता है, इसलिये भगवान आत्मा को हरि कहने में आता है, आहाहा ! समझ में आया ?

`मारी नज़र ने आळसे रे, में निरख्या न नयणे हरि' मेरी नज़र की आलस में मैं राग, पुण्य, परवस्तु, पुण्य का फल इन सबको देखने में मेरी नज़र गई। परंतु मेरी नज़र की आलस से `नयणे न निरख्या हरि' - मेरे ज्ञान की पर्याय की नज़र में मेरे हरि को मैंने देखा नहीं। कर्म के कारण से अटका है, ऐसी बात यहाँ है नहीं। समझ में आया ?

(यहाँ) कहते हैं, ``**अनाकुलता जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है ऐसी सुखशक्ति।**'' ओहोहो ! गजसुकुमार ने (दिव्यध्वनि) सुनी और माता के पास (गये) और वैराग्य हुआ। अब प्रभु के पास आये (और कहा), `प्रभु ! हम मुनिपना अंगीकार करना चाहते हैं' आहाहा ! और उसी समय ऐसा कहा। `नाथ ! आपकी आज्ञा हो। मैं द्वारिका की स्मशान भूमि में चला जाऊँ' आहाहा ! वहाँ श्वेतांबर में ऐसा शब्द है।

गजसुकुमार राजकुमार (है)। गज नाम हाथी की खोपड़ी जैसे सुकोमल होती है। हाथी की खोपड़ी होती है ना ? लाल-लाल सुंदर होती है। ऐसा लाल-लाल सुंदर शरीर था। इसलिये उसका नाम गजसुकुमार (रखा था)। सुकुमार माता के पास आज्ञा लेकर भगवान के पास जाते हैं (और) मुनिपना लेते हैं, आहाहा ! मेरे आनंद का खजाना मैंने देखा है। अब उस खजाने को खोलने को मैं स्मशान में जाता हूँ। जगत के प्राणी मुर्दे होकर (उसे) सर पर ले जाते हैं। मैं चलके स्मशान में जाता हूँ, ऐसी बात है। भगवान ! क्या करे ? आहाहा !

इसकी क़ीमत क्या कहें ? एक-एक गुण की क्या क़ीमत और अनंत गुण की क्या क़ीमत ? आहाहा ! अनंत गुण को धरनेवाला द्रव्यस्वभाव परमात्मा ! यह आत्मा परमात्मा ही है। उसकी क्या क़ीमत कहें ? वह अमूल्य चीज़ है। जिसका मूल्य नहीं।

ऐसा भगवान आत्मा ! सुखसागर में वीर्य शक्ति भी पड़ी है। क्या कहते हैं ? सुख में शक्ति भी पड़ी है (अर्थात्) वीर्य का रूप (है)। वीर्य शक्ति (सुख में) नहीं। क्या कहा ? आहाहा ! सुख शक्ति में बल की शक्ति का रूप है। सुख में ही बल है। अपने रूप में परिणमन करना (ऐसा) सुख में ही बल है। अपने रूप में परिणमन करना वह सुख में बल है। वीर्यगुण भिन्न है। वीर्यगुण वहाँ नहीं जाता। वीर्य का लक्षण सुख में नहीं जाता। परंतु वीर्य की जो शक्ति है वह शक्ति इसमें है। सुख गुण में वीर्य शक्ति अपने से है। वीर्य शक्ति के कारण से नहीं। आहाहा ! ऐसी बातें (हैं) ! आहाहा ! ऐसा शक्तिवंत परमात्मा अनाकुल आनंद का सागर मैं हूँ और उस पर मेरी नज़र जाती है तो अनाकुल आनंद की पर्याय (होती है)। द्रव्य में - गुण में तो अनाकुलता थी। द्रव्य माने वस्तु और गुण माने शक्ति। इसमें तो अनाकुलता शक्ति थी परंतु उसका स्वीकार

करने के लिये जहाँ अंदर में जाता हूँ तो पर्याय में आनंद आता है। पर्याय जब द्रव्य-गुण में आयी (तो) उस पर्याय में आनंद गुण की परिणति आती है। समझ में आया ?

इस आनंद की परिणति जब हुई तो दया, दान का विकल्प जो व्यवहार (है) वह दुःख है। उस दुःख का उसमें अभाव है। यह अनेकांत है। उस राग की क्रिया से आनंद की पर्याय प्रगट होती है कि मोक्षमार्ग प्रगट होता है, ऐसा नहीं। आनंद की पर्याय कहो कि मोक्षमार्ग कहो (एक ही बात है)। समझ में आया ? आहाहा ऐसी बात है। आहाहा ! वचनातीत, विकल्पातीत, शरीरातीत, भेद से अतीत - ऐसा तेरा अभेद स्वरूप अंदर पड़ा है, नाथ ! ऐसी अनाकुल शक्ति - उसका स्वरूप ऐसी पाँचवीं शक्ति हुई, आहाहा ! कल चली थी। आज थोड़ी दूसरी रीत से चली, आहाहा !

गजसुकुमार स्मशान में जाते हैं तो सोनी की लड़की थी ना ? उसे अंतःपुर में ले गये। उसके पिताजी को ख्याल आया कि अरेरे...! (कन्या को) अंतःपुर में ले गये और (गजसुकुमार) तो साधु हो गये, (अब) कन्या को कौन लेगा ? और उसके पिताजी वहाँ (स्मशान में) गये। स्वाध्यायमंदिर में फोटो रखा है। (गजसुकुमार) आनंद के धाम में मस्त हैं। मरे हुए लोगों की स्मशान में राख होती है ना ? उस राख की सर के ऊपर पाल बांधकर अग्नि जलायी। परंतु (गजसुकुमार) अंदर ध्यान की अग्नि में - (आत्मा की) जळहळ ज्योति में पड़े हैं तो अग्नि की खबर नहीं पड़ती। ऐसी सुखशक्ति का भंडार (भोगनेवाले की) ऐसी दशा होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा !

यहाँ पाँच पांडव भगवान के दर्शन करने को निकले थे। मुनि थे और महान आनंद को भोगनेवाले थे, आहाहा ! जब पालीताणा आये तो खबर पड़ी कि, प्रभु ! तो मोक्ष पधारे हैं। नेमीनाथ भगवान मोक्ष पधारे हैं। अरे...! हम दर्शन करने को जाते हैं (और भगवान का) विरह पड़ गया। एक महीने का उपवास था। पैरों से शेत्रुंजय चढ़ गये। अतीन्द्रिय आनंद के वेदन में पाँच पांडव खड़े हुए। इनमें तीन जो थे धर्मराजा, भीम और अर्जुन वे तो केवलज्ञान पाकर मुक्त हो गये। सहदेव और नकुल - दो भाई थे उनको ज़रा विकल्प आया। तीनों बड़े भाई थे ना ? सहोदर थे ना ? सहोदर माने एक उदर में साथ में जन्म (हुआ हो वह)। आहाहा ! अरे...! धर्मराजा को क्या होता होगा ? क्योंकि दुर्योधन के भांजे ने आकर लोहे के गहने बनाकर पैरों में लोहे के जूते, हाथ में लोहे की धगधगती हुई अग्नि और सर पर लोहे की अग्नि का मुकुट पहनाया था। सहदेव - नकुल को ऐसा विकल्प आया 'अरे...! भैया को क्या (होता होगा) ?' देखो ! एक विकल्प आया तो दो भव हो गये ! और (दूसरे तीन) विकल्प बिना ध्यान में रहे तो केवलज्ञान हो गया। एक विकल्प आया तो सर्वार्थसिद्धि में ३३ सागर में गये।

इतना केवलज्ञान दूर हो गया। साधर्मी का - मुनि के लिये विकल्प आया वह संसार है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? इतना विकल्प आया। शुभ विकल्प है कि अशुभ है ? परंतु मुनि के लिये (विकल्प आया) न ? एक तो सहोदर है और साधर्मी है। सहोदर है - एक उदर में उत्पन्न हुए और साधर्मी हैं और बड़े भाई हैं। उसको क्या होता होगा ? ऐसा एक विकल्प आया तो - केवल(ज्ञान अटका)। (लोग कहते हैं) शुभभाव से लाभ होता है। क्या लाभ होता है ? शुभ तो दुःख है, ऐसा कहना है न ? पर्याय में जब आनंद की परिणति हुई तो उसमें दुःख का तो अभाव है, उसमें राग का तो अभाव है, विकल्प का तो अभाव है। ऐसी चीज़ है। विकल्प आया और सर्वार्थसिद्धि में चले गये। आहाहा ! केवलज्ञान ३३ सागर दूर हो गया। एक साधर्मि के, सहोदर के, संत के उपसर्ग में एक विकल्प आया तो ये शुभ (विकल्प से) ३३ सागर संसार हो गया ? अरे...! लोग (ऐसी बात) कहाँ माने ? क्या करें ? शुभभाव से धर्म होता है, अरे... प्रभु ! सुन तो सही नाथ ! तेरी समृद्धि में शुभभाव का तो अभाव है न नाथ ! तेरी संपदा आनंद से भरी है। उसमें दुःख का तो अभाव है। आहाहा ! और वह राग उत्पन्न हुआ तो दो भव हुए, एक सर्वार्थसिद्धि और मनुष्य होंगे, उसमें भी आठ वर्ष तक तो उनको केवलज्ञान नहीं होगा। आहाहा ! समझ में आया ?

अपने आनंद स्वरूप की परिणति से विरुद्ध वह विकल्प है। आहाहा ! उस विकल्पमात्र का तो स्वरूप में अभाव है। परंतु वह बीच में आया तो उसे व्यवहार मोक्षमार्ग कहने में आया। परंतु व्यवहार मोक्षमार्ग से तो संसार बंध हुआ, आहाहा ! ऐसी बातें हैं, भाई ! आहाहा ! एक इतना विकल्प आया उतने में तो ३३ सागर संसार !! राग संसार है। इसका फल संसार है, आहाहा ! अरेरे...! उसे कुछ खबर नहीं है।

मेरा स्वरूप तो अतीन्द्रिय आनंद (स्वरूप है) और उसका स्वीकार करने से पर्याय में आनंद आता है, अनंत गुण का आनंद आता है। समझ में आया ? ऐसा मैं हूँ (ऐसी प्रतीति हुई) तो द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों में आनंद व्याप्त हो गया, आहाहा ! अनादि से द्रव्य और गुण में आनंद था। समझ में आया ? यह सत्ता अनादि से है। आनंद की सत्ता और सत्तावान तो अनादि से है। परंतु जब उस ओर दृष्टि गई और स्वीकार हुआ, अपने ज्ञान की पर्याय में उसको ज्ञेय बनाकर जहाँ ज्ञान हुआ तो पर्याय में भी आनंद आ गया। द्रव्य, गुण में - शक्ति में था वह व्यक्त में आ गया। आहाहा ! समझ में आया ? अरे...! ऐसी बातें (हैं) !

यहाँ दुनिया (के लोग) स्त्री, पुत्र और कुटुंब सुख के निमित्त हैं (ऐसा मानते हैं)। आहाहा ! वह सब तो दुःख के निमित्त हैं। दुःख (है) न ? स्त्री, कुटुंब, परिवार, पैसा

वह दुःख नहीं परंतु दुःख का निमित्त (है)। निमित्त दुःख को करता नहीं। समझ में आया? आहाहा ! यह बात सुननी भी मुश्किल पड़े। अरे... प्रभु ! तेरी चीज़ तो ऐसी है ना? और उसको ऐसा (लगता) है - `एकांत है, एकांत है। कानजीस्वामी एकांत करते हैं' अरे प्रभु ! सुन तो सही, नाथ ! तेरे घर की बात है, भाई ! तेरा हित हो उसकी बात है। सम्यक् एकांत की बात है। अनेकांत की बात है। राग उसमें नहीं है - यह अनेकांत है। स्वरूप की ओर का झुकाव वह सम्यक् एकांत है और राग का अभाव वह अनेकांत है। समझ में आया ? राग से भी लाभ होगा और स्वभाव की एकता से निर्मल परिणति का भी लाभ होगा, ऐसी बात है नहीं। आहाहा ! यह पाँचवीं शक्ति हुई।

यह तो गंभीर है। चाहे इतना निकल सकता है। दरिया भरा है। प्रभु ! सुख का सागर - समुद्र (है)। आहाहा ! क्षेत्र भले ही शरीर प्रमाण हो और प्रदेश असंख्य हो परंतु गुण तो अनंत है। समझ में आया ? पानी का लोटा होता है न लोटा ? इसमें पानी भरा है तो लोटे के आकार के अनुसार पानी है परंतु पानी का आकार लोटे के कारण से नहीं। पानी का आकार पानी के कारण और लोटे का आकार लोटे के कारण (है)। उस जड़ का आकार जड़ में है और शरीर प्रमाण से आत्मा है तो शरीर के आकार के कारण से उस अनुसार आत्मा का आकार है, ऐसा है नहीं, समझ में आया? आहाहा ! यह मकान और घर तो कहीं दूर रह गये। आहाहा !

श्वेतांबर में अंतरिक्ष होता ही नहीं। श्वेतांबर में भगवान ५०० धनुष ऊँचे हैं, ऐसी बात है ही नहीं। अंतरिक्ष तो दिगंबर में ही है। यह अंतरिक्ष है, वह दिगंबर का ही क्षेत्र है। लेकिन क्या करें ? अरे... प्रभु ! मार्ग अलग है। किसी को मारने का भाव दुःखरूप (है)। मुनि को (सहदेव और नकुल को) कल्पना आयी कि, `मुनि को क्या है?' ऐसा भाव (भी) दुःखरूप (है) तो पर को मारने का अशुभभाव वह तो (कहाँ रह गया)?

यहाँ छठी शक्ति कहते हैं, आहाहा ! ``**स्वरूप की (- आत्मस्वरूप की) रचना की सामर्थ्यरूप वीर्यशक्ति।**'' देखो अब उसमें क्या भरा है ! अंदर वीर्य नाम का गुण है। जिससे पुत्र होता है, शरीर का वीर्य है वह तो जड़-मिट्टी-धूल (है)। यह तो आत्मा में वीर्य नाम की एक शक्ति - बल (ऐसा) गुण है। आत्मा में बल नाम की एक शक्ति है। वह बलवान शक्तिवान से बलवान है। आहाहा ! समझ में आया ? इसमें वीर्यशक्ति है। बल शक्ति है तो इस बल शक्ति में अनंत गुण की शक्ति आती है, आहाहा ! और अनंत गुण में भी वीर्यशक्ति अंदर में है। यह वीर्य शक्ति नहीं बल्कि उस वीर्य का रूप प्रत्येक गुण में है।

यहाँ कहते हैं, सुनिये ! बहुत अच्छी बात है। वीर्य - स्वरूप की रचना करे

यह सामर्थ्य (है)। बल का सामर्थ्य तो यह है कि, अपने आनंद, शांति और वीतराग स्वरूप की रचना करे, यह वीर्य है। आहाहा ! (अपनी) पर्याय में स्वरूप का सम्यक्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र, सम्यक्वीर्य, अनुभूति (रूप) आनंद - ऐसे अपने स्वरूप की पर्याय में रचना करे, वह वीर्य है। (पर्याय में) आत्मवीर्य प्रकाशित करे। समझ में आया ? (प्रत्येक) शक्ति में जो बल है (वह) आत्मा के वीर्य के कारण से शक्ति में बल है, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! वीर्य (अर्थात्) स्वरूप की रचना का सामर्थ्य। इस बल का सामर्थ्य तो यह है कि, अपने आनंद, शांति और वीतराग स्वरूप की रचना करे, वह वीर्य है।

पंचम आरा के मुनि १००० वर्ष पहले हुए। यहाँ (परमागम मंदिर में) तीन फोटो रखे हैं। भगवान कुंदुकंदआचार्य, अमृतचंद्रआचार्य और नियमसार के कर्ता पद्मप्रभु भगवान। दिगंबर संतों... ओहोहो ! जगत में शांति प्राप्त कराये (उसे) सुसंत कहिए। अपने स्वरूप की दृष्टि कराये उसे संत कहिए। समझ में आया ?

(यहाँ) कहते हैं कि, वीर्य का स्वभाव क्या ? कि आत्मस्वरूप की रचना (करे यह वीर्य का स्वभाव है)। आहाहा ! आत्मा का स्वरूप क्या ? कि ज्ञान, दर्शन, आनंद आदि अनंत गुण उसका स्वरूप है और स्वरूपवान आत्मा है, आहाहा ! सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक्वीर्य, अद्भुत आनंद - ऐसे अपने स्वरूप की पर्याय में रचना करे वह वीर्य है। वीर्य शक्ति स्वरूप की रचना करे। विकार की रचना करे या पर की (रचना) करे, वह तो प्रश्न है ही नहीं। आत्म वीर्य पर का कुछ करे (ऐसा है ही नहीं)। समझ में आया ? शक्ति में जो बल है (वह) आत्मा के वीर्य के कारण से शक्ति में बल है, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! उसकी (जड़ की) शक्ति जड़ में (है)। परमाणु की शक्ति परमाणु में है, आहाहा !

नेमिनाथ भगवान की बड़ी सभा भरी हुई थी। वीरों की, शूरवीरों की (सभा भरी थी)। इसमें चर्चा चली - कोई कहे कि पांडवों में बहुत बल है। कोई कहे धर्मराजा में इतना बल है। एक जन ने कहा कि, देखो ! नेमिनाथ भगवान बैठे हैं। गृहस्थाश्रम में तीन ज्ञान के धनी (हैं)। उनके शरीर का बल है ऐसा बल और किसी का नहीं है। सभा में ऐसी चर्चा चली। तो कहा 'बल तपासो !' नेमिनाथ भगवान गृहस्थाश्रम में छद्मस्थ है ना ? (उनको) विकल्प उठा। पैर नीचे रखे। (और सभी को कहा) 'पैर को ऊपर करो।' टूटकर के मर गये लेकिन उनका पैर ऊपर नहीं कर सके। देह की शक्ति का (इतना) सामर्थ्य ! (लेकिन वह) आत्मा के कारण नहीं। समझ में आया ?

परमाणु में भी वीर्य नाम की शक्ति है। आहाहा ! पंचाध्यायी में (कहा) है। जड़ में भी वीर्य शक्ति है। आहाहा ! यह (जड़ शरीर का) वीर्य नहीं हो ! (यह आत्म) शक्तिरूप

वीर्य (है)। आहाहा ! (मात्र) आत्मा में ही वीर्य है (ऐसा नहीं)। परमाणु में भी वीर्य शक्ति है। यह वस्तु तो अनंत जड़ परमाणु का दल है।

(नेमिनाथ) भगवान ने पैर को नीचे रखा। श्रीकृष्ण ने आकर ऊपर करके मोड़ दिया फिर भी ऊपर नहीं हुआ। ऐसी शक्ति तो भगवान के शरीर के परमाणु में थी। समझ में आया ? यह शक्ति तो आत्मा की बात है। आत्मा का वीर्य शरीर के वीर्य में काम करता है, ऐसा है नहीं। और आत्म वीर्य पुण्य - पाप की रचना करे, वह वीर्य नहीं। आहाहा !

वह तो पहले एकबार कहा था कि, पुण्य-पाप की जो रचना होती है वह वीर्य नहीं - वह आत्मा का वीर्य नहीं। थोड़ी कठिन बात है। वह नपुंसक का वीर्य है, हिजड़ा का वीर्य है। हिजड़ा होता है कि नहीं ? उसको वीर्य नहीं होता। उसको पुत्र-पुत्री नहीं होते। वैसे पुण्य - पाप को रचनेवाला नपुंसक है; उसमें से धर्म की प्रजा उत्पन्न नहीं होती। ऐसी भिन्न-भिन्न बातें हैं। अनादि से बहुभाग ऐसा ही है। समयसार में तीन पाठ में आया है। एक ३९ से ४३ गाथा में आया और एक पुण्य-पाप के अधिकार में आया। क्लीव शब्द आया। क्लीव (अर्थात्) नपुंसक, राग को अपना मानता है, राग की रचना करता है (वह) नपुंसक, हिजड़ा, पावैया है। तुझे पुरुष की खबर नहीं कि आत्म पुरुष क्या है ? आहाहा ! कठिन बात है।

यहाँ कहते हैं कि, पुण्य और पुण्य के परिणाम से - व्यवहार से निश्चय होता है। (ऐसी) नपुंसकता से (आत्म) वीर्य होता है (वह मिथ्या मान्यता है)। आहाहा ! भगवान ! तुझे खबर नहीं। (तुझे) खबर नहीं (और कभी) सुना नहीं। संतों के पास, सर्वज्ञ से यह क्या चीज़ है ? यह सुना नहीं। यह तो गुरुगम और संतों के पास सुने बिना समझ में नहीं आये ऐसी चीज़ है, भगवान ! समझ में आया ? आहाहा !

(यहाँ) कहते हैं कि, राग आदि जो व्यवहार रत्नत्रय कहते हैं, (वह) राग कथनमात्र मोक्षमार्ग कहने में आया है। (परंतु) वह मोक्षमार्ग नहीं है। वह तो दुःख मार्ग है, बंध मार्ग है। (राग) आता है। मुनि को भी, समकिती को भी विकल्प आता है परंतु वह हेयबुद्धि से (आता है)। (वह) बंध मार्ग है, आहाहा ! समझ में आया ? क्यों ? कि वीर्य नाम की शक्ति है यह शक्ति अनादि से द्रव्य - गुण में तो व्याप्त है (ही)। परंतु इस वीर्य को धरनेवाले भगवान आत्मा के ऊपर दृष्टि और रुचि जाती है, तो वीर्य की परिणति स्वरूप की रचना करने में आती है।

यहाँ (ऐसी) बात है। अरे...! एक घंटा भी प्रवचन कहाँ (सुनने मिलता) है ? बापू ! कोई करोड़ों रुपया (दे और) व्याख्यान मिले, ऐसी चीज़ है नहीं। आहाहा ! बापू ! यह

तो वीतराग परमात्मा के घर की बात है। आहाहा ! (भरतक्षेत्र में) परमात्मा का विरह है। भगवान तो वहाँ (महाविदेह में) बिराजते हैं। समझ में आया ? परमात्मा की बात तो यह है। भगवान का संदेश तो यह है।

प्रभु ! तुम वीर्यशक्ति को धरनेवाले हो न ! आहाहा ! इस वीर्य शक्ति में तो अनंत गुण की शक्ति आती है। प्रत्येक गुण में शक्ति है - यह वीर्य शक्ति (उसमें) निमित्त है। अंदर (स्वयं की) उपादान शक्ति है। ज्ञान में भी उपादान शक्ति है। वीर्य शक्ति तो निमित्त है, आहाहा ! समझ में आता है ?

एक-एक गुण में अपने से शक्ति है, हों ! उसमें वीर्य गुण तो निमित्त है। उपादान तो ज्ञान गुण में ताकत की शक्ति अपने से - उपादान से होती है। आहाहा ! ऐसी बातें (हैं) ! यह तो परमात्मा का मार्ग है, भाई ! आहाहा !

लड़के की माता उसको गाना गाकर सुलाती है। गाली देगी तो नहीं सोता (है)। सब लोग ध्यान रखो ! बालक को `मारा रोया' ऐसा कहोगे तो नहीं सोयेगा। परंतु `मारो दिकरो डाह्यो अने पाटले बेसी नाह्यो, मामाने घेर गयो अने गुंजामा खारेक अने टोपरा लाव्यो।' गुजराती में ऐसा आता है। ऐसा बोले तो वह सो जाता है। उसकी माता उसके अव्यक्तरूप से गुण गाकर सुलाती है। (यहाँ) परमात्मा उसके गुण गाकर जगाते हैं। जाग रे जाग, नाथ ! समझ में आया ?

एक बात याद आ गई है। ६४ की साल की बात है। पालेज में हमारी दुकान थी। हम माल लेने गये थे। उस वक्त तो १८ वर्ष की उम्र थी। मुंबई, वडोदरा माल लेने तो हम जाते थे। एकबार माल लेने गये तो रात को निवृत्ति थी। हम नाटक देखने गये। अनसुया का नाटक था। भरूच के पास नर्मदा (नदी) है न ? नर्मदा और अनसुया दो बहनें थीं। हम सब नाटक देखने गये। नाटक में वहाँ पुस्तक भी लिया। तुम क्या बोलते हो ? यह समझे बिना हम ऐसे ही नहीं बैठते। १२ आने की टिकट और १२ आने की किताब ली। वैरागी नाटक था। अनसुया थी वह शादी किये बिना स्वर्ग में जा रही थी। उसे कहा कि `अपुत्र गति नास्ति' ऐसा वेद में आता है। पुत्र न हो उसे (स्वर्ग) गति नहीं मिलेगी। तो उसने पूछा `क्या करना ?' तो कहा `जाओ नीचे, (और) नीचे जाकर शादी करो। नीचे (एक) अंध ब्राह्मण था। उससे शादी की और उसे बालक आया। उसको (बालक को) झुलाती थी। उस वक्त नाटक में (ऐसा आता था)। `**उदासीनोसि, शुद्धोसि, बेटा ! तुम तो शुद्ध हो। तू निर्विकल्प आत्मा है।**' कितने वर्ष हुए ? ७० (वर्ष हुए)। आहाहा ! समझ में आया ? उस वक्त तो नाटक ऐसा था। अभी तो अनीति और दिखाव खराब (हो गये)। उस वक्त नाटक ऐसा आता था, भैया ! `उदासीनोसि, बेटा !

तू उदास है। शुद्धोसि, निर्विकल्पोसि (है)।' आहाहा ! ऐसे तीन (शब्द) याद रह गये हैं। बाकी तो बहुत था लेकिन बहुत वर्ष हो गये न ? (इसलिये याद नहीं है)।

अपने बंध अधिकार में आता है। बंध अधिकार में आखिर में आता है, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में आखिर में आता है और परमात्म प्रकाश में आखिर में आता है। ऐसे तीनों में यह आता है। `उदासिनो, निर्विकल्पो, शुद्धो' आदि बहुत शब्द आते हैं। त्रिकाल - लोकालोक में जीव है। सब पूर्णानंद से आनंद से भरा भगवान है। सर्व जीवादि सर्व काल में भगवान स्वरूप है, ऐसी भावना कर। ऐसे लिखा है। विशेष आयेगा...

बाल चुराने की तो क्या बात ! पर यह तो परमाणु को चुराने की बात है। परमाणु भी क्या, पर उसकी अनंत पर्यायों को चुराने की बात है। एक पर्याय को दूसरी पर्याय की सहायता नहीं है। आत्मा के अनंतगुणों की पर्याय में एक पर्याय को दूसरी पर्याय सहायक नहीं है। पर्याय पर्याय की योग्यता से षट्कारक से स्वतंत्र परिणमित होती है। अहो ! यह तो जैन-दर्शन के हार्द की - स्वतंत्रता की मूल बात है।

(परमागमसार - ३२६)

प्रवचन नं. ७
शक्ति-६ दि. १७-०८-१९७७
स्वरूपनिर्वर्तनसामर्थ्यरूपा वीर्यशक्तिः ।।६ ।।

(समयसार, शक्ति का अधिकार चलता है)। जिसको आत्मज्ञान करना हो उसको आत्मा क्या चीज है ? और उसमें कितनी और कैसी शक्ति है ? उसको जानना पड़ेगा। आत्मा तो (पर से) भिन्न एक वस्तु है। प्रत्येक आत्मा भिन्न है। परन्तु एक स्वरूप में अनंत शक्ति हैं और एक-एक शक्ति में भी अनंत शक्ति है। और एक-एक शक्ति (का धारक) शक्तिवान जो आत्मा, चैतन्य प्रकाश का पुर ! वह तो चैतन्य प्रकाश का पुर-नूर-तेज है। इस चैतन्य प्रकाश को कभी निहारा नहीं - देखा नहीं।

चैतन्य प्रकाश का पुर प्रभु ! (है), उसने अपने को भूलकर अंधकार को देखा। अंधेरा अर्थात् पुण्य-पाप का भाव वह अंधेरा है। और पुण्य-पाप (भाव) का बंधन - जड़ कर्म, वह भी अंधेरा है। और उसका फल ऐसी यह बाहर की लक्ष्मी आदि सब अंधेरा (है)। (चैतन्य) प्रकाश का उसमें अभाव है। आहाहा ! चैतन्य प्रकाश का पूर्ण पुंज (है)। उसने चैतन्य प्रकाश को कभी देखा नहीं। चैतन्य प्रकाश का पुंज प्रभु ! वह द्रव्य है। इस द्रव्य पर कभी दृष्टि दिया नहीं और पर्याय में राग, द्वेष, पुण्य-पाप, शरीर, कर्म उसको देखा। अंधेरे को देखा परन्तु उजाले को देखा नहीं। आहाहा ! ऐसी सूक्ष्म बात (है)।

यहाँ तो वीर्य शक्ति चलती है। आत्मा में एक वीर्य नाम की शक्ति है। वीर्य नाम बल। आत्मा में एक वीर्य नाम बल नाम की शक्ति है। ज्ञानशक्ति में भी बल शक्ति पड़ी है। यह वीर्यशक्ति उस ज्ञान शक्ति में नहीं। परन्तु अंदर ज्ञान शक्ति में भी वीर्य शक्ति यानी बल शक्ति है। आहाहा ! ज्ञान स्वरूपी प्रकाश प्रभु ! चैतन्य प्रकाश का

पुंज प्रभु ! उसमें बल नाम की शक्ति है। यह बल नाम की शक्ति है वह तो भिन्न है। परन्तु ज्ञान प्रकाश में भी अपने से जानने की ताकत-बल है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई ! क्या कहा ?

वस्तु अंदर चैतन्य प्रकाश का नूर का पुर है। चैतन्य का तेज स्वरूप भगवान है। उस चैतन्य प्रकाश का नूर का लक्ष नहीं कर के अनादि से राग, द्वेष, पुण्य, पाप, दया, दान (किया)। सम्यग्दर्शन बिना स्वरूप का प्रकाश का अनुभव बिना यह सब दया, दान, व्रत, तप सब अंधेरा है। आहाहा ! यह सूक्ष्म बात है। समझ में आया ? इस अंधेरे को ज्ञान की पर्याय में देखा परन्तु जिसकी पर्याय है, ऐसे चैतन्य प्रकाश पर उसकी नजर नहीं गई, आहाहा ! भाषा सादी है (परन्तु) भाव सूक्ष्म है। समझ में आया ?

ज्ञान में बल नाम का रूप है। वीर्य शक्ति है वह भिन्न है, परन्तु ज्ञान शक्ति में शक्तिरूप से बल है। यह बल भी द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों में व्यापक हो जाता है। अनादि से वैसे तो द्रव्य और गुण में ज्ञान और आनन्द का शक्तिरूप भाव है। परन्तु उस शक्ति का अंदर में जब स्वीकार हो (तब पर्याय में भी ज्ञान और आनंद प्रगट होता है)। यह वस्तु (है) उसमें अनंत शक्ति (है)। उसमें ज्ञान और आनंद शक्ति (है) तो ऐसी शक्ति का जब स्वसन्मुख होकर (और) पर से विमुख होकर स्वीकार हो, तब उसकी पर्याय में भी ज्ञान और आनंद की पर्याय व्याप्त होती है। क्या कहा समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, प्रभु !

चैतन्य प्रकाश स्वरूप उसका जब पर्याय ने स्वीकार किया; जिसकी पर्याय है उसको पर्याय ने स्वीकार किया (तब पर्याय में भी ज्ञान और आनंद प्रगट होता है)। मैं चैतन्य प्रकाश पूर्णानंद का नाथ हूँ। उसमें सर्वज्ञ शक्ति पड़ी है। चैतन्य प्रकाश में सर्वज्ञ शक्ति (अर्थात्) सर्व को जानने की ताकत रखती है। ऐसी सर्वज्ञ शक्ति का प्रकाश का पुंज प्रभु है। आहाहा ! समझ में आया ? ज्ञान शक्ति आ गई है। (इस) ज्ञान शक्ति में अंदर सर्वज्ञ शक्ति गर्भपने पड़ी है। जैसे पेट में गर्भ हो तो प्रसव होता है। वैसे ज्ञान में सर्वज्ञ शक्ति गर्भपने पड़ी है। उस तरफ का आश्रय करते हैं तो पर्याय में सर्वज्ञ का जन्म होता है। आहाहा ! ऐसी बात है।

अंदर दर्शन शक्ति जो है, वह पहले आ गई। थोड़ा-थोड़ा कहते हैं, पूरा तो कोई कह सकता नहीं। हमारी इतनी शक्ति भी नहीं (है)। आहाहा ! जितना दिगंबर संतों कहे (उतना नहीं कह सकते)। उनकी क्षयोपशम शक्ति भी अलौकिक है, आहाहा ! कहते हैं कि, एकबार सुन तो सही, प्रभु ! तेरी दशि शक्ति जो है (इस) दर्शन शक्ति में अंदर सर्वदर्शी शक्ति गर्भ में पड़ी है। इस सर्वदर्शी शक्ति पर जब दृष्टि जाती है अर्थात् शक्ति

और शक्तिवान का भेद भी छोड़कर, सर्वदर्शी शक्तिवान भगवान आत्मा है, ऐसा पर्याय में जब स्वीकार होता है, तब सर्वदर्शी शक्ति में ज्ञान की, दशि की शक्ति का परिणमन होता है। भले सर्वदर्शीपना अभी आया नहीं परन्तु सर्वदर्शीपना 'है', ऐसा ज्ञान हो गया। आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई !

अनंतकाल से (चैतन्य) प्रकाश का नूर है, प्रभु ! इसकी कभी नजर की नहीं और प्रकाश की वर्तमान पर्याय है उसमें अंधेरा (विभावभावरूप अंधेरा) है (ऐसा) दिखा। राग, पुण्य, दया, दान, व्रत और भक्ति सब अंधेरा है, आहाहा ! भगवान आत्मा ! यहाँ कहते हैं कि, सर्वदर्शीशक्ति में भी बल का रूप पड़ा है। वीर्यशक्ति भिन्न है परन्तु सर्वदर्शी शक्ति में भी बल है। वह अपने से प्रगट होता है। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ अपने वीर्य शक्ति चलती है। क्या ? '**स्वरूप की (-आत्मस्वरूप की) रचना की सामर्थ्यरूप वीर्य शक्ति।**' आहाहा ! संतों ने तो गजब काम किये हैं !! अमृतचंद्रआचार्य महाराज - दिगंबर संत, वीतरागी पर्याय के झूले में झूलनेवाले, अतीन्द्रिय आनंद के झूले में झूलनेवाले। आहाहा ! (उनको) यह विकल्प आया और शास्त्र की रचना हो गई। आहाहा ! तो कहते हैं कि, एकबार तेरी बात सुन तो सही, प्रभु ! प्रभुता शक्ति बाद में आयेगी। यह तो वीर्यशक्ति चलती है। वीर्य के बाद प्रभुता आयेगी।

वीर्य (शक्ति) आत्मस्वरूप की रचना (करे)। आहाहा ! जो आत्मा में वीर्य शक्ति है (वह) सारा आत्मा में व्यापक है। (आत्मा) चैतन्य प्रकाश का पुंज है। ज्ञान सारा असंख्य प्रदेश में व्यापक है। ऐसे वीर्यशक्ति भी असंख्यप्रदेश में व्यापक है। आहाहा ! अपने देश में वीर्यशक्ति व्यापक है। अपना देश असंख्य प्रदेशी - अपना देश - स्वदेश (है)। राग और पुण्य-पाप वह सब परदेश (है)। आहाहा ! समझ में आया ? भगवान आत्मा का असंख्य प्रदेशी क्षेत्र है। (इस) क्षेत्र का स्वभाव (क्या) ? जैसे नरक के क्षेत्र का स्वभाव दुःखरूप है, स्वर्ग के क्षेत्र का स्वभाव लौकिक सुखरूप है। भगवान आत्मा का क्षेत्र-स्वभाव अतीन्द्रिय आनंद का स्वभाव क्षेत्र है। इस क्षेत्रमें से तो अतीन्द्रिय आनंद (रूपी) पाक होता है।

कलथी होती है न ? कलथी समझे ? लाल होती है। साधारण जमीन में कलथी होती है। ऊँची जमीन में चावल होते हैं। साधारण जमीन में चावल नहीं होता। चावल है वह ऊँची जमीन में होता है। वैसे इस भगवान का क्षेत्र असंख्य प्रदेशी (है)। इसमें आनंद का क्षेत्र (है)। इसमें से आनंद और आनंद के वीर्य की उत्पत्ति होती है। परन्तु कब (उत्पत्ति होती है) ? उसका स्वीकार होवे तब, कि यह 'है'। उसकी ज्ञान की पर्याय प्रगटपने है। उसमें पूर्ण ज्ञान, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सुखरूप यह पूरी चीज है।, व्यापक (है), ऐसे पर्याय अंतर में जब सारे द्रव्य में व्याप्ती है, तभी पर्याय में आनंद और ज्ञान का

पाक आता है, आहाहा ! समझ में आया ? असंख्य प्रदेश में विकार उत्पन्न हो, ऐसा यह प्रदेश नहीं। समझ में आया ? भगवान आत्मा का असंख्य प्रदेश है न ? जैसे सोना की चेन होती है न ? चेन में एक हज़ार मकोड़ा-कड़ी होती हैं। सारी कड़ी का पिंड वह चेन है। कड़ी है वह प्रदेश है (और) सांकली है वह द्रव्य है। और कड़ी में जितना सोने का पीलापन, चीकनापन, वजन है वह उसके गुण-शक्ति है। समझ में आया ? यह तो दृष्टांत हुआ। वैसे भगवान आत्मा जैसे हज़ार कड़ी की सांकली होती है, वैसे असंख्य प्रदेश का आत्मा है। इतना उसके क्षेत्र का विस्तार है।

एक पोईन्ट-परमाणु (जितना क्षेत्र रोके उसको प्रदेश कहते हैं)। यह अंगुली एक चीज़ नहीं है। टुकड़ा करते-करते.... आखिर का परमाणु (अर्थात्) परम अणु, सूक्ष्म अणु रहता है, उसको परमाणु कहते हैं। वह परमाणु जितनी जगह रोके उसका नाम प्रदेश। वैसे आत्मा असंख्य परमाणु रोके ऐसा असंख्य प्रदेशी है। एक परमाणु के गज से (माप से) नापने से आत्मा असंख्य प्रदेशी है। अंदर असंख्य प्रदेश में अनंत आनंद, अनंत ज्ञान और अनंत वीर्य व्यापकरूप से पड़ा है। आहाहा ! समझ में आया ?

यह वीर्य शक्ति द्रव्य, गुण में अनादि से है। (लेकिन) अनादि से पर्याय में प्रगट नहीं है। क्योंकि अनादि से पुण्य-पाप के भाव की रचना करता है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि के भाव की रचना करे, वह आत्मा का वीर्य नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? आत्मा का वीर्य तो इसको कहते हैं कि सारे स्वरूप में जो अनंत गुण आदि हैं उसकी पर्याय में रचना करे, उत्पन्न करे, प्रगट करे उसका नाम वीर्य है। आहाहा !

परसों थोड़ा कहा था कि, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा और काम, क्रोध, मान, लोभ, राग यह शरीर की सँभाल करना, कुटुंब की सँभाल करना वह सब विकार (हैं)। समझ में आया ? विकार की रचना यह वीर्य गुण की (रचना) नहीं, ऐसा कहते हैं। विकार अंधा है। उसको ज्ञान देखता है परंतु ज्ञान ज्ञान को देखता नहीं। जो वीर्य स्वरूप की रचना करे उस वीर्य को धरनेवाला जो आत्मा उसको देखता नहीं और पुण्य-पाप की रचना हुई उसको देखता है, वह मिथ्यादृष्टि-अज्ञानी है। चाहे तो पंच महाव्रत धारण किया हो, बारह व्रत धारण किये हो, वह सब राग, दुःख और अचेतन है। समझ में आया ? भगवान ! जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बंधता है ना ? वह राग (भी) अचेतन है। क्योंकि वह राग अपने को जानता नहीं, राग चैतन्य को जानता नहीं और राग चैतन्य द्वारा जानने में आता है। इस कारण से राग अचेतन है, आहाहा !

इतना तो उसको ख्याल में आना चाहिये ना कि, पर्याय में जो ज्ञान का प्रकाश है वह पर्याय किसकी है ? पूर्ण ज्ञानस्वरूप है उस पर्याय के पीछे कोई पूर्ण (स्वरूप)

है कि नहीं ? पहले अनुमान से ख्याल आना चाहिये ना ! एक पर्याय में - अंश में - एक समय की मुद्दत में ज्ञान की पर्याय जो जानने में आती है, वह तो बदलती चीज़ है। उत्पाद-व्ययवाली चीज़ है, तो यह चीज़ किसकी ? ध्रुव की है। तो सामने ध्रुव क्या है ? जो नहीं बदलता है, वह चीज़ क्या है अंदर ? आहाहा ! ऐसा प्रभु का मार्ग (है)। आहाहा ! दिगंबर संतों इतना स्पष्ट करके गये हैं ! ओहोहो...! सूर्य की भाँति प्रकाश कर दिया है। परंतु देखे उसके लिये ना !

यहाँ कहते हैं कि, वीर्य किसको कहिये ? कि अपने स्वरूप की रचना करे। स्वरूप की अर्थात् अपना स्व जो ज्ञान, दर्शन, आनंद, शांति, स्वच्छता, प्रभुता आदि जो शक्तियाँ हैं, उसकी पर्याय में (रचना करे), वह वीर्य शक्ति है। आनंद और अनंत गुण की शुद्ध पर्याय की रचना करे उसको वीर्य कहते हैं। अशुद्ध (पर्याय) की रचना करे वह वीर्य नपुंसक-हिजड़ा है।

यहाँ तो भगवान कहते हैं, वह बात हो गई। पुण्य-पाप अधिकार में ४० से ४३ गाथा में नपुंसक-क्लीव (कहा) है। आहाहा ! राग और पुण्य के परिणाम को अपना माने वह नपुंसक, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! जैसे नपुंसक को वीर्य होता नहीं तो प्रजा (बालक) होती नहीं, वैसे पुण्य परिणाम और पाप परिणाम नपुंसक हैं, उसमें से धर्म प्रजा उत्पन्न नहीं होती। आहाहा ! बात तो ऐसी है, भगवान ! क्या करें ? उसे (ऐसी) चीज़ सुनने न मिले वह कब विचार करे, कब रुचि करे और (कब) परिणमे ? ऐसी चीज़ है, भाई ! आहाहा !

अरे...! वह चौरासी के अवतार में दुःखी है। पंच महाव्रत पालता है वह (भी) दुःखी है। क्योंकि व्रत का विकल्प है वह राग है, आस्त्रव है और दुःख है। आहाहा ! जो भगवान के स्वभाव में द्रव्य - गुण - पर्याय में नहीं है। उसकी तो निर्मल पर्याय हो, उसको पर्याय कहते हैं। आहाहा !

आत्म द्रव्य अनंत शक्ति(वान) है। ज्ञान, दर्शन (आदि) अनंत शक्ति का असंख्य प्रदेश में पुंज (है)। जो ज्ञान का पुंज - प्रकाश का पुंज है उस पर दृष्टि करने से वीर्य शक्ति भी साथ में आई। वीर्य शक्ति अनंत गुण की निर्मल अवस्था की रचना करे, उसका नाम वीर्य है। समझ में आये ऐसा है, भाई ! सादी भाषा है, यह कोई कड़क भाषा नहीं है, आहाहा !

अरे भगवान ! भगवान हो न तुम ! यह स्त्री और पुरुष वह तो मिट्टी का - हड्डी का शरीर है। वह तो हड्डी है। वह थोड़ी ना आत्मा है ? आहाहा ! अंदर पुण्य - पाप का भाव वह भी आत्मा कहाँ है ? वह तो अचेतन तत्त्व है, जड़ तत्त्व है, आहाहा !

जो प्रकाश का पुंज प्रभु (है) और वीर्य द्वारा उस प्रकाश के पुंज की पर्याय में रचना हो (उसे वीर्य कहते हैं)। द्रव्य - गुण में तो (शक्तियाँ) है ही। द्रव्य - गुण में तो शुद्धता, परिपूर्णता, आनंद, वीर्य, ज्ञान, शांति, स्वच्छता, प्रभुता, ईश्वरता ऐसी अनंत शक्तियाँ हैं ही। परंतु उसकी पर्याय में जब (प्रगट) हो तब उसे वीर्य की रचना कहने में आती है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है, प्रभु ! आहाहा ! अरे...! भगवान है और पामर होकर रखड़ता रहा है, आहाहा !

तीन लोक का नाथ चैतन्य स्वरूप ! जिसके गर्भ में सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनंत आनंद जिसके पेट में पड़ा है। आहाहा ! उसका प्रसव नहीं करके पुण्य और पाप का प्रसव करे, उसे यहाँ प्रभु वीर्य कहते नहीं। समझ में आया कुछ ? आहाहा !

ऐसा सुना है किसी स्त्री के पेटमें से सर्प निकलता है। कोई ऐसा सर्प गर्भ में हो जाता है तो सर्प का जन्म होता है। सुना है, बहुत सुना है। ८८ वर्ष हुए हैं। हम तो निवृत्ति में थे। पांच वर्ष दुकान चलाई थी। बाकी तो सारी जिंदगी निवृत्ति है। बहुत सुना है कि, स्त्री को पेट में कभी ऐसा रह जाता है (तो) सर्प हो जाता है (और) पेटमें से सर्प निकलता है। आहाहा ! और शास्त्र तो ऐसा कहते हैं कि, किसी को १२ वर्ष तक (बालक) गर्भ में रहता है। भगवान ने उसकी स्थिति गिनी है। कि, बारह वर्ष तक गर्भ में रहे। वही बालक वहाँ से मरकर फिर (बारह वर्ष गर्भ में रहकर) २४ वर्ष में जन्म ले। भगवान, सर्वज्ञ परमेश्वर ने गर्भ में रहने की २४ वर्ष की कायस्थिति गिनी है। आहाहा ! ऐसा अनंतबार २४ वर्ष की स्थिति गर्भ में (हुई है)। एकबार नहीं किन्तु अनंतबार ऐसे किया है। समझ में आया ? (जीव तो) अनादिकाल का है। आहाहा ! यहाँ कहते हैं कि उसको २४ वर्ष के बाद प्रसव होता है। यहाँ आत्मा के गर्भ में तो अनंत ज्ञान और दर्शन पड़ा है। अनंतकाल में जब अपनी पर्याय उस पर जाती है तब आनंद का प्रसव होता है। वह २४ वर्ष की काय स्थिति, यह अनादि शांत स्थिति, आहाहा !

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर की अलौकिक बातें हैं, भगवान ! लोगों को सत्य सुनने मिलता नहीं। क्या करें ? अरेरे...! आहाहा ! जिसमें ज्ञान का अंश नहीं, प्रकाश का जिसमें प्रकाश नहीं, उस चीज़ को अपनी मानना (वह) मिथ्यात्व - अंधेरा है। राग, दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम भी अपना है, ऐसा मानना वह अंधकार को अपना प्रकाश माने (उसके जैसा है)। आहाहा ! वस्तु ऐसी है, भगवान ! बाहर की धूल में क्या है? करोड़पति और अरबपति हो (वह) मरकर कहाँ चला जाता है ! आहाहा !

यह तो अनंत लक्ष्मी का भंडार (है)। जिसके पेट में नाम असंख्य प्रदेश में अनंत ज्ञान, अनंत आनंद, अनंत शांति, अनंत स्वच्छता, अनंत प्रभुता, अपनी परिणति को करे

ऐसा अनंत कर्ता, अनंत कर्म (अर्थात्) अपनी पर्याय में आनंद का कार्य करे, ऐसा अनंत कर्मरूपी (कार्यरूपी) शक्ति अंदर पड़ी है। आहाहा ! कर्म चार प्रकार के हैं। एक जड़ कर्म - यह परमाणु की पर्याय, दूसरा भाव कर्म - पुण्य-पाप का परिणाम, तीसरा निर्मल परिणति उत्पन्न होती है, वह भी कर्म (और) चौथा कर्म शक्तिरूप है वह कर्म। ऐसा मार्ग (है) बापू ! आहाहा ! क्या कहा वह ?

फिर से कहते हैं। कर्म नाम कार्य। एक तो कर्म की जड़ पर्याय होती है। उसको कर्म कहते हैं। वह जड़ कर्म का कार्य है। एक तो आत्मा में पुण्य और पाप का भाव (होता है) वह अचेतन कार्य। वह जड़ कार्य - जड़ कर्म (है)। वह जड़ रूपी कर्म और यह जड़ अरूपी कर्म। भाई ! और तीसरा कार्य - कर्म जो आत्माशुद्ध चैतन्यघन भगवान ! उसमें वीर्य पड़ा है और उसमें कर्म शक्ति पड़ी है। कर्म शक्ति नाम कार्य होने की शक्ति। जब आत्मा में आनंद स्वरूप का - प्रकाश का पुंज प्रभु ! उस प्रकाश का (अर्थात्) प्रकाश की सत्ता का स्वीकार किया, उस समय पर्याय में जो निर्मल परिणति उत्पन्न होती है - वह कर्म। और शक्तिरूप कर्म है वह ध्रुव गुण। कर्म के चार प्रकार (हैं)। आहाहा !

वकालत में कभी ऐसी बात सुनी नहीं। अभी तो धर्म का नाम भी कहाँ है ? व्रत करो, अपवास करो, पडीमा ले लो, धूल में भी उसमें (धर्म) नहीं, सुन तो सही। अरे...! भगवान ! तेरी चीज़ क्या है ? उसके अनुभव में आया नहीं; उसके बिना स्थिरता कहाँ से आयेगी ?

श्रोता : कर दिया तो कर दिया, (अब) छोड़ देंगे सब।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने किया और कौन छोड़े ? किया ही कहाँ है ? आहाहा ! यहाँ तो कार्य यानी कर्म। कर्म यानी कार्य। उसके चार प्रकार का वर्णन किया। एक जड़ का कार्य - कर्म की पर्याय वह जड़ का (कार्य), वह रूपी कार्य। विकार कार्य - वह अरूपी विकार का कार्य है। कार्य कहो कि कर्म कहो। और निर्मल परिणति का कार्य वह निर्मल वीतरागी कार्य। और एक गुण रूपी कर्म वह शक्ति है, उसको भी कर्म कहते हैं। ऐसी बात है। ऐसी यह चीज़ है। तीन लोक का नाथ अंदर पड़ा है, आहाहा ! जिसके गर्भ में केवलज्ञान, केवलदर्शन, आनंद प्रगट हो (ऐसी शक्तियाँ हैं)।

अभी एक लेख आया है. अरेरेरे...! ऐसे लेख लिखते हैं कि, सर्वज्ञ तो एक वर्तमान दशा को ही देखे। भूत - भविष्य को नहीं (देखे)। अररर...! गज़ब करे छे ! क्या करता है प्रभु ? आज लेख आया है कि, 'श्रीमद् भी कहते हैं कि वर्तमान पर्याय वर्तती है उसको जाने'। परंतु वह तो वर्तती है उसको जाने, ऐसा कहा है। परंतु भूत - भविष्य को नहीं जानते, ऐसा उसमें कहा ही नहीं है। वर्ततीरूप एक समय है। भूत - भविष्य

की (पर्याय) वर्तमान वर्तती नहीं। परंतु उस समय वर्तेगी और वर्तती होगी। उसको भगवान एक समय में प्रत्यक्ष जानते हैं, आहाहा ! अरे...! सर्वज्ञ को भी दूसरी रीत से माने उसको आत्मा की प्रतीति कब हो ? आहाहा !

आत्मा में सर्वज्ञ शक्ति पड़ी है और उसके साथ शक्ति में बल भी है। वीर्य शक्ति भिन्न है। ऐसा आत्मा अपनी पर्याय में - ज्ञान की वर्तमान दशा में द्रव्य को ज्ञेय बनाकर द्रव्य का ज्ञान करती है। अपने ज्ञान की वर्तमान दशा में द्रव्य को ज्ञेय बनाकर पर्याय में द्रव्य का ज्ञान करते हैं, तो उस पर्याय में द्रव्य आता नहीं परंतु द्रव्य का सामर्थ्य - शक्ति पर्याय में - ज्ञान में आ जाता है। समझ में आया ? ऐसी बातें हैं। द्रव्य तो द्रव्य है। द्रव्य का पूर्ण ज्ञान आया। जैसा पूर्ण स्वरूप है ऐसी पूर्ण प्रतीति पर्याय में आई। पूर्ण ज्ञान आया। वह चीज़ (पर्याय में) आई नहीं, वह चीज़ तो चीज़ में रही। आहाहा ! अभी उसको सर्वज्ञ शक्ति है, उसकी प्रतीति नहीं और (माने ऐसे कि) सर्वज्ञ यानी वह की जो (मात्र) वर्तमान देखे।

तीस वर्ष पहले तीसरी साल में ३३ पंडित आये थे। उसमें एक पंडित थे। ललितपुर में मेरे साथ बहुत चर्चा हुई थी। वहाँ वे ऐसा कहते थे `एक समय में तीनकाल तीनलोक देखे तो सर्वज्ञ नहीं। (किन्तु) वर्तमान में सब से ऊँची शक्ति का विकास वह सर्वज्ञ' अरे भगवान ! दिगंबर जैन में जन्म हुआ (और ऐसी विपरीत मान्यता !)। आहाहा ! अरे...! भगवान बापू ! तुम चैतन्य के प्रकाश का पूर्ण पुर है।

शरीर भिन्न है, राग भिन्न है और इतने आकार के प्रमाण में चैतन्य प्रकाश का पुंज, ज्ञान परिपूर्ण पुंज है। परिपूर्ण वस्तु है। अंदर उपयोग में स्वपर प्रकाशक शक्ति भरी पड़ी है। आहाहा ! (यह) निश्चय उपयोग (की बात है)। पर्याय उपयोग वह दूसरी बात है। उपयोग के दो प्रकार हैं। एक अंदर ध्रुवरूप उपयोग (और) एक परिणतिरूप उपयोग। ऐसी बात है।

यहाँ कहते हैं कि, स्वरूप की रचना (करे वह वीर्य)। आहाहा ! गज़ब शब्द रखा है ना !! अमृतचंद्र आचार्य ने तो काम किया है !! अपना स्वरूप ज्ञान, आनंद, शांति (ऐसी - ऐसी) अनंत शक्ति का स्वरूप (है)। स्व + रूप भाषा सादी है, भाई ! आहाहा ! ``**आत्मस्वरूप की...**'' (ऐसी) भाषा है ना ? देखो ! स्वरूप यानी आत्मा के स्वरूप की रचना। आहाहा ! भगवान आत्मा में तो बेहद अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आनंद, अनंत स्वच्छता, अनंत प्रभुता ऐसी अनंत शक्तियों का संग्रहालय, अनंत शक्तियों का गोदाम, गुणों का गोदाम यह आत्मा है। आहाहा ! अंदर में (ऐसे स्वरूप पर) दृष्टि करने से वीर्य शक्ति के कारण अनंत गुण की निर्मल पर्याय की रचना होती है। उसे आत्म स्वरूप

की रचना कहने में आती है। ऐसी बात है। भाई ! प्रभु का मार्ग तो ऐसा है। परंतु लोगों को अभ्यास नहीं और मिलती है बाहर की दूसरी चीज़। ये करो, ये करो, व्रत करो, अपवास करो, तपस्या करो... जाओ... (हो जायेगा धर्म)। आहाहा ! वह सब तो विकल्प की क्रिया, क्लेश की क्रिया है। वह दुःख की क्रिया है, आहाहा !

वह तो छ ढाला में कहा नहीं ? 'मुनिव्रत धार अनंत बैर, ग्रैवेयक उपजायो, पर आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' तो उसका अर्थ क्या हुआ ? पंच महाव्रत, बारह व्रत यह सब शुभभाव दुःखरूप है। आहाहा ! दुःख की रचना करे वह वीर्य नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? वह आत्मबल नहीं, आहाहा !

आत्मवीर्य तो वह है कि, अपना त्रिकाली अनंत गुण का पिण्ड प्रभु ! उस पर लक्ष जाता है तो वीर्य में - वर्तमान परिणति में अनंत गुण की शुद्ध पर्याय प्रगट करे - रचना करे, उसका नाम वीर्य कहते हैं। ऐसी बात है, भगवान ! आहाहा ! और स्वरूप की रचना करे वह वीर्य अर्थात् उस समय में वीर्य ने अपने अनंत गुण की परिणति में रचना की। द्रव्य-गुण में तो रचना करनी है नहीं। वह तो (अनादि से) है ही। द्रव्य-गुण तो ध्रुव है। उसकी तो क्या रचना करनी है ? रचना तो नहीं हो तो (उसकी रचना) करने का (आता) है। पर्याय में जो आनंद आदि नहीं है (उसकी रचना करनी होती है)। आहाहा ! ऐसा उपदेश तो किस प्रकार का है ? जैन धर्म का ऐसा उपदेश ?

९९ की साल में एक साधु मिला था। (उसे ऐसा लगा) कि, जैन के साधु आत्मा की ऐसी बात करे वह कहाँ से आया ? क्योंकि जैन की छाप ऐसी है कि, वह तो क्रिया करे। दया, व्रत और तप करे, उसका नाम जैन। राजकोट की बात है। वह राजकोट आया था। आज ही आया था कि, अहमदाबाद में कोई वेदांत के साधु है। यहाँ का बहुत सुना है ना ? कि, यहाँ आत्मा की अध्यात्म की बात है। उसकी ओर से दो पुस्तकें आयी हैं। यहाँ की प्रसिद्धि आत्मा की है न ? (बाहर में) जैन धर्म की तो किस प्रकार से प्रसिद्धि है ? कि क्रिया (करो), यह व्रत करना, चोवीयार करना, कंदमूल नहीं खाना, फलाना करना, दया पालना वह सब जैन धर्म, बाहर में ऐसी छाप है। राग की रचना को लोगों ने जैन धर्म मान लिया है। इसलिये आत्मा की बात सुनकर अन्यमती को भी ऐसा हो जाता है कि, जैन में ऐसा कहाँ से आया ? आज दो पुस्तकें आयी हैं। देखे, लेकिन कोई ठिकाना नहीं है। (ऐसा लिखा है कि) ईश्वर भक्ति करो, आत्म चिंतवन करो। परंतु कौन सा ईश्वर ?

काशी से किताब आई है उसमें सर्वज्ञ का निषेध किया है कि, सर्वज्ञ एक समय की पर्याय को जाने। (और उसमें) श्रीमद् का आधार दिया है कि, वह वर्तमान वर्तती

(पर्याय) को जाने, ऐसा (श्रीमद्‌जी ने) कहा है। एक समय (की वर्तमान) वर्तती (पर्याय को) जाने। पूर्व की (और) भविष्य की (पर्याय) वर्तमान में वर्तती है ऐसा (जाने) नहीं। किन्तु उसने ऐसा निकाला कि, वर्तमान वर्तती है उसे जाने और भूत-भविष्य को नहीं जाने। आहाहा ! क्या करते हो ? और वैसे पंडित नाम धराते हैं। श्रीमद् में ऐसा आया है - सर्वज्ञ भी अनंत द्रव्य की वर्तमान वर्तती एक समय की अवस्था को जाने। भूत-भविष्य की (वर्तमान में) वर्तती नहीं। (उसे) जाने नहीं, ऐसा नहीं (कहा है)। समझ में आया ? ऐसा दृष्टांत दिया है। जैन के नाम से यह क्या करते हैं ? जैन के नाम से विपरीत (मान्यता रखते हैं)। परमेश्वर, त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ आहाहा ! उन्होंने कहा हुआ मार्ग अलौकिक है, भाई ! सर्वज्ञ शक्ति है उसके साथ अंदर में बल भी है। वीर्य शक्ति भिन्न है और अंदर सर्वज्ञ शक्ति में भी बल है, तो वह अपने बल से सर्वज्ञ (पर्याय) प्रगट होती है। शक्ति में है - गर्भ में है तो प्रसव होता है। प्रसव (माने) उत्पत्ति।

श्रोता : (अंदर में) ना हो तो कहाँ से आये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ से आये ? प्राप्त की प्राप्ति है कि अप्राप्त की प्राप्ति है ? है उसमें से आता है। आहाहा ! सागर भरा है, प्रभु ! तुझे खबर नहीं, आहाहा ! अनंत ज्ञान, अनंत आनंद, अनंत वीर्य, अनंत स्वच्छता ऐसी अनंत शक्तियों का सागर है, प्रभु ! शरीर प्रमाण से भले ही क्षेत्र छोटा हो परंतु उसके भाव में तो दरिया पड़ा है।

यहाँ क्या कहा ? स्वरूप की रचना करे, (उसे वीर्य कहते हैं)। अब दूसरी एक बात कि, जब वीर्य का कार्य यह है कि अनंत गुण की निर्मल परिणति प्रगट करे। तब उसमें व्यवहार का तो अभाव आया। व्यवहार की रचना करे, ऐसा नहीं आया। व्यवहार है उसको जानते हैं। वीर्य ने जहाँ शुद्ध परिणति प्रगट की तो (साथ में) ज्ञान की शुद्ध पर्याय प्रगट की, श्रद्धा की (पर्याय) प्रगट की, दर्शन की पर्याय प्रगट की। राग है उसको जाने। परंतु राग को जानता है वह कहना भी व्यवहार है। परंतु उस समय में स्व और पर प्रकाशक ज्ञान की पर्याय राग है तो जानती है, ऐसा भी नहीं। अपने स्व - पर को (जाननेवाली) पर्याय ही इतनी ताकतवाली है कि (वह) अपने से ही प्रगट होती है। आहाहा ! समझ में आया ? उसमें राग का तो अभाव है।

लोग ऐसा कहते हैं न कि व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। शुभ जोग करो बाद में शुद्ध होगा। वह तद्दन मिथ्यादृष्टि-मूढ़ है। उसको आत्मा की श्रद्धा नहीं। आत्मा के गुण की श्रद्धा नहीं। उसकी परिणति कैसी हो ? उसकी खबर नहीं। आहाहा ! ऐसी बातें हैं। बापू ! वीतराग मार्ग (कोई अलौकिक है)। आहाहा ! इस भरत(क्षेत्र में) सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की मौजूदगी नहीं है। महाविदेह में तो भगवान बिराजते हैं। साक्षात्

परमात्मा बिराजते हैं। करोड़ पूर्व का आयुष्य है। एक पूर्व में ७० लाख करोड़ ५६ हज़ार करोड़ वर्ष जाय, ऐसा करोड़ पूर्व का भगवान का आयुष्य है।

यह भगवान के मुख में से निकली हुई वाणी कुंदकुंदआचार्य वहाँ से लाये। समझ में आया ? दिगंबर संत, नग्न मुनि, मोरपींछी, कमंडल (जिनके पास होता है)। वे भगवान के पास गये थे। आठ दिन रहे थे। वहाँ से सुनकर आये बाद में समयसार पहली गाथा में कहा `**केवली श्रुतकेवली ने जो कहा है वह मैं कहूँगा**',

``**वंदित्तु सव्वसिद्धे ध्रुवमचलमणोवमं गइं पत्ते।**

वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं।।१।।''

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि, श्रुतकेवली ने जो कहा (वह मैं कहूँगा)। (परंतु) अमृतचंद्रआचार्य ने दो अर्थ किये हैं। श्रुतकेवली और केवली (ऐसे) दो अर्थ किये हैं। केवली ने कहा है वह हम कहेंगे, ऐसा कहते हैं। और नियमसार की गाथा में तो स्पष्ट शब्द लिखा है। समझ में आया ? इसमें तो श्रुतकेवली (लिखा) है।

कुंदकुंद आचार्य भगवंत (नियमसार - गाथा - १ में) कहते हैं,

``**णमिऊण जिणं वीरं अणंतवरणाणदंसणसहावं।**

वोच्छामि णियमसारं केवलिसुदकेवलीभणिदं।।१।।''

केवली और श्रुतकेवली ने कही हुई बात मैं कहूँगा। समयसार गाथा में (भी) ऐसा है। परंतु कुछ लोग अर्थ करनेवाले गलत अर्थ करते हैं। वह तो श्रुतकेवली ने कहा हुआ - ऐसे शब्द है (ऐसा कुछ लोग कहते हैं)। परंतु अमृतचंद्रआचार्य ने `**सुदकेवली**' के दो अर्थ निकाले हैं। एक श्रुतकेवली और केवली। और यहाँ (नियमसार में) `**केवलिसुदकेवलीभणिदं**' (ऐसा कहा)। आहाहा ! समझ में आया ? मैं नियमसार कहूँगा परंतु यह नियमसार कैसा है ? कि केवली परमात्मा ने साक्षात् कहा और श्रुतकेवली के पास चर्चा की, इन्होंने (जो) कहा वह मैं कहूँगा। दो बात हुई। वहाँ महाविदेह में केवली के पास सुना और श्रुतकेवली के पास सुना। समझ में आया ? बात तो बहुत गंभीर है, भगवान !

श्रोता : कुंदकुंदआचार्य की गाथा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसकी गाथा है ? कहा है न ? उसमें से तो निकाला, भगवान ! `**केवलिसुदकेवलीभणिदं**' - सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ मैं कहूँगा, आहाहा ! वह तो मुनियों स्वयं कहे तो भी सत्य है। परंतु आधार देकर कहते हैं कि, भगवान ने (जो कहा वह मैं कहूँगा)। कोई कहते हैं कि, महाविदेह में भगवान के पास गये थे कि नहीं (गये थे), उस बात की श्रद्धा नहीं, ऐसा कहते हैं। किसी को शंका है कि,

महाविदेह में गये वह किसी शास्त्र में नहीं है। अरे...! पाठ में लेख मिलते हैं। पंचास्तिकाय की टीका में लेख है और दर्शनसार में लेख है। दर्शनसार देवसेन आचार्य का लिखा है। अरे...! भगवान कुंदकुंदआचार्य महाविदेह में न गये होते तो हम मुनियों ऐसा धर्म कैसे प्राप्त करते ? ऐसा पाठ है। अपने समयसार में ड़ाला है। आहाहा ! अभी भी शंका करते हैं। अभी आया था (उसमें) लिखा है - कुंदकुंदआचार्य वहाँ गये हैं वह कौन कहता है ? कौन माने ? अरे...! भगवान ! आहाहा ! बस ! यहाँ जो कहते हैं उसका विरोध करना है।

यहाँ नाम आया वह क्या है ? '**केवलिसुदकेवलीभणिदं**' कुंदकुंदआचार्य यहाँ थे तो (उस समय यहाँ) केवली तो नहीं थे। केवली ने कहा वह कहूँगा, ऐसा कहते हैं और श्रुतकेवली ने कहा है वह मैं कहूँगा। समझ में आया ? बहुत अधिकार है। पंचास्तिकाय में जयसेन आचार्य की टीका है। महाविदेह में गये थे बाद में आकर के शिवकुमार के लिये शास्त्र बनाया और दर्शनपाहुड में है, समयसार में है। देखो !

'**जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण।**
ण विवोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति।।' (दर्शनसार)।

देवसेन आचार्य दिगंबर मुनि थे। वे कहते हैं, अहो ! ``(**महाविदेह क्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकरदेव**) **श्री सीमंधरस्वामी से प्राप्त हुए दिव्यज्ञान द्वारा श्री पद्मनंदिनाथ ने** (**श्री कुंदकुंद आचार्यदेव ने**) **बोध न दिया होता तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते ?**'' देखो ! मुनि कहते हैं। साक्षात् भगवान के पास गये और यह लाये। वे न लाये होते तो हम सच्चा धर्म कैसे प्राप्त करते ? समझ में आया ? इसमें किसी दूसरे मुनि का अनादर होता है ?

यहाँ तो कहते हैं, अपनी जो वीर्यशक्ति है, बल (शक्ति जो है) वह अपने स्वरूप की रचना करती है। श्रद्धा, ज्ञान, शांति, वीतरागता (आदि की रचना करती है)। उस समय जो क्रमवर्ती पर्याय है वह निर्मल है। क्रमवर्ती पर्याय निर्मल है। अक्रमवर्ती वह गुण है। क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती गुण का समुदाय यह आत्मा है। उसमें राग की पर्याय का समुदाय आत्मा है, ऐसा नहीं कहा है। आहाहा ! समझ में आया ? यह पहले आ गया है। पहले कहा था। क्रमरूप और अक्रमरूप अनंत धर्म समूह जो कुछ जितना लक्षित होता है वह सब वास्तव में एक आत्मा है।

क्रमे-क्रमे जो निर्मल पर्याय प्रगट होती है (और अक्रमरूप जो गुण है, उसका समुदाय वह आत्मा है)। राग की बात तो यहाँ है ही नहीं। क्योंकि राग का समुदाय वह आत्मा है नहीं, आहाहा ! राग तो विकार जड़, अचेतन अजीव में ड़ाला है। आहाहा !

समझ में आया ? यहाँ तो भगवान आत्मा में अनंत गुण निर्मल, शुद्ध है। द्रव्य शुद्ध है और अनंत शक्ति संख्या से शुद्ध है और उनकी जो परिणति होती है, वह भी शुद्ध है। परिणति - पर्याय होती है वह क्रमबद्ध - क्रमसर होती है। तो क्रमवर्ती कहा। क्रमवर्ती (अर्थात्) क्रम से वर्तनेवाली और गुण एक साथ रहनेवाले हैं। इसलिये अक्रमवर्ती - अक्रम से (एक साथ) रहनेवाले (कहा)। निर्मल पर्याय का क्रम और अक्रम गुण उसका समुदाय वह आत्मा है। उसमें राग या व्यवहार आया नहीं। समझ में आया ? ऐसी बात है, भाई ! आहाहा !

कुंदकुंदआचार्य पोकार करते हैं। आहाहा ! टीका अमृतचंद्र आचार्य ने की है। कुंदकुंद आचार्य की गाथा के भाव थे, उसका स्पष्टीकरण किया है। जैसे गाय और भैंस के आव (आँचल) में दूध है तो बाई (उसमें से) निचोड़ के (दूध) निकालती है। समझ में आया? वैसे पाठ में भाव भरे हैं, उसकी अमृतचंद्र आचार्य ने टीका करके स्पष्टीकरण किया है।

जब गाय-भैंस को दुहते हैं (वह) ऐसे-ऐसे नहीं दुहते हैं। (हमने) प्रत्यक्ष देखा है। हमारी बहन थी उसके वहाँ भैंस थी। यह तो छोटी उम्र की बात है। ५९ की साल (की बात है)। बहन दुहती थी परंतु ऐसे नहीं, ऐसे (दुहे) तो घाव पड़ जाये और आव में भी घाव हो जाये। कोई भी बात नक्की तो की है ना ? ऐसे ही नहीं कहते हैं। वैसे शास्त्र के पाठ में भाव भरा है, आव में भाव भरा है (उसको) अमृतचंद्रआचार्य टीका करके बाहर निकालते हैं, आहाहा !

वीर्य गुण में एक अकारणकार्य नाम की शक्ति है (उसका रूप है)। क्या कहा? जैसे आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनंद आदि शक्तियाँ है वैसे एक अकारणकार्य नाम की शक्ति है। उसका कार्य क्या ? कि वीर्य जो है (वह) अपने (स्वरूप की) रचना करता है। उस कार्य की रचना में राग कारण है और स्वरूप की रचना कार्य है, ऐसा है नहीं। अकारणकार्य शक्ति अभी आयेगी। जो वीर्य स्वरूप की रचना करता है उसके कार्य में व्यवहार रत्नत्रय का राग जो है वह कारण है और स्वरूप की रचना कार्य है, ऐसा है नहीं। एक बात। दूसरी बात - स्वरूप की रचना करता है वह कारण है (और) राग उसका कार्य है, (ऐसा भी नहीं है)। भाई ! आहाहा ! वर्तमान में गड़बड़ ऐसे करते हैं। 'व्यवहार से निश्चय होता है' अरे प्रभु ! सुन तो सही नाथ ! राग तो पामर है उससे प्रभुता प्रगट होती है ? आहाहा ! आत्मस्वरूप की रचना (करे वह वीर्य)। आहाहा ! गज़ब बात की है !

पहले के शराफ होते थे। वे सच्चा रुपया आये तो ले ले। झूठा रुपया आये

तो वापिस नहीं देते थे। खोटा रुपया साहूकार की दुकान पर आये तो वापिस नहीं देवे। और पैसे में गिनती भी नहीं करे। सो रुपये में एक (खोटा रुपया) आया हो तो ९९ गिने और वह रुपया वापिस नहीं देवे। अपनी दहलीज में (उंबरो) गाड़ दे। सामनेवाले से ना नहीं हो सकती। साहूकार की दुकान पर झूठा रुपया आये तो चलाने नहीं देते। वैसे यह तो भगवान की दुकान है। झूठा चलने न दे। झूठा हो तो वहीं का वहीं गाड़ दे। व्यवहार से निश्चय होता है - (यह) तेरा झूठा रुपया है। पहले ऐसा था। आहाहा ! अभी तो झूठा हो तो वापिस ले लेते हैं। पहले तो साहूकार के पास झूठा रुपया आये तो चलने नहीं दे। गाड़ देगा। बेंक में जावे तो गिने नहीं, आहाहा !

यहाँ परमात्मा, संतों ऐसा कहते हैं - परमात्मा की बातें ही संतों आढ़तिया होकर कहते हैं। समझ में आया ? भगवान तेरे में एक वीर्य नाम का गुण है न प्रभु ! तो इस वीर्य का रूप तो अनंत गुण में है। वीर्य जैसे अनंत गुण की परिणति प्रगट करता है, उसमें वह रागादि की रचना प्रगट नहीं करता है। रागादि का तो उसमें अभाव है। आहाहा ! (निर्मल परिणति प्रगट हुई) वह राग का कार्य भी नहीं। स्वरूप की रचना जो निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान की हुई वह राग का कार्य नहीं और राग का (कार्य) स्वरूप रचने की परिणति कारण भी नहीं। आहाहा ! अरे...! शांति से सुने तो मालूम पड़े कि यह क्या है। सुनने मिले नहीं। भगवान त्रिलोकीनाथ की वाणी को संतों ने अंतर में उतारी और जगत के पास ज़ाहिर करते हैं, प्रभु !

(स्वरूप में) जितनी शुद्ध चैतन्य की शक्तियाँ हैं, (जो) सब गुण रूप थी, वह जब दृष्टि अंदर स्वीकार करने में गई तो पर्याय में अनंत निर्मल पर्याय का कार्य होता है। निर्मल पर्याय कहो या मोक्ष का मार्ग कहो (दोनों एक ही बात है)। आहाहा ! मोक्षमार्ग की पर्याय की रचना वीर्य गुण करता है और उस काल में जो व्यवहार - राग है उसका अभाव है। मोक्षमार्ग की रचना वह राग का कार्य नहीं। वैसे ही मोक्षमार्ग की रचना वह कारण और राग कार्य है, ऐसा (भी) नहीं। एक घंटा चला। विशेष कहेंगे....

प्रवचन नं. ८
शक्ति-६, ७ दि. १८-०८-१९७७
स्वरूपनिर्वर्तनसामर्थ्यरूपा वीर्यशक्तिः।।६।।
अखण्डितप्रतापस्वातंत्र्यशालित्वलक्षणा प्रभुत्वशक्तिः।।७।।

समयसार शक्ति का अधिकार चलता है। वीर्यशक्ति का अधिकार चला। वीर्यशक्ति का बहुत वर्णन आया। चिद्‌विलास में बहुत वर्णन आया है। द्रव्यवीर्य, क्षेत्रवीर्य, कालवीर्य, भाववीर्य, द्रव्यवीर्य, गुणवीर्य, पर्यायवीर्य (ऐसे) बहुत विस्तार किया है। यह तो भंडार है। चिद्‌विलास है उसमें वीर्यशक्ति (का बहुत वर्णन आया है)। कल एक घंटा चल तो गई। पार नहीं इतनी शक्तियाँ हैं।

वीर्यशक्ति है यह द्रव्य में वीर्यपना है। द्रव्य द्रव्य से शक्तिवान है, गुण गुण से शक्तिवान है (और) पर्याय पर्याय से शक्तिवान है।

जीव द्रव्य का जो असंख्य प्रदेशी क्षेत्र है वह क्षेत्र वीर्य है। क्षेत्र, क्षेत्र से अपने से रहा है (अन्य के कारण से नहीं रहा है)। आहाहा ! जैसे नरक का और स्वर्ग का क्षेत्र (है उसमें) नरक का (क्षेत्र) दुःख का क्षेत्र है परंतु (वह) संयोग से कथन है। स्वर्ग में लौकिक सुख इसका क्षेत्र है। यह संयोग से कथन है (बल्कि वहाँ भी) है तो दुःख। भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी जो देश है वह उसका प्रदेश क्षेत्र है। वह प्रदेश क्षेत्र उसका वीर्य है। असंख्य प्रदेश में वीर्यशक्ति है। उसके कारण से उस असंख्य प्रदेश में बसने से आनंद आता है। समझ में आया ? जैसे मकान में वास्तु लेते हैं न ? २-५ लाख का मकान बनाया हो तो (गृह) प्रवेश का वास्तु लेते हैं। ऐसे भगवान आत्मा ! असंख्य प्रदेश में निवास करता है, यह इसका वास्तु है। समझ में आया ? आहाहा !

असंख्य प्रदेश में अनंत क्षेत्रवीर्य है। नरक का, स्वर्ग का क्षेत्रवीर्य (है)। (नरक का क्षेत्र) दुःख का निमित्त (है)। (यह) संयोग से कथन है। यहाँ तो अंतर में असंख्य

प्रदेशी वीर्य वह सुख का स्वरूप है। असंख्य प्रदेश में वीर्य से आनंद का पाक (फसल) होता है। सूक्ष्म बात है, भाई ! समझ में आया ? अपने असंख्य प्रदेश में वीर्य शक्ति से असंख्य प्रदेश अपने से अपनी ताकत से रहा है। इसमें जिसका निवास है। आहाहा ! अपने स्वदेश में जिसका निवास है, उसको अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव होता है। राग और पुण्य-पाप में जिसका निवास है, उसको दुःख का वेदन है। समझ में आया ? भाई ! बहुत सूक्ष्म मार्ग है, भाई ! प्रभु खुद सूक्ष्म है ना ? नाम कर्म के अभाव से सूक्ष्म (गुण प्रगट होता है)। (ऐसा) आता है न ? सूक्ष्म गुण है तो प्रत्येक गुण (सूक्ष्म है)। ज्ञान सूक्ष्म, दर्शन सूक्ष्म, आनंद सूक्ष्म, वीर्य सूक्ष्म, आहाहा !

जैसे वीर्य है वह द्रव्य का वीर्य (अर्थात्) द्रव्य-वस्तु जो है उसकी शक्ति। क्षेत्र का वीर्य (अर्थात्) असंख्य प्रदेश का वीर्य। काल का वीर्य (अर्थात्) एक समय की पर्याय का वीर्य और क्षेत्र में अनंत भाव रहा वह भाव वीर्य। ऐसा मार्ग है। अरे...! सुनने को मिले नहीं। उसके घर की (खबर नहीं)। उसे घर में कैसे बसना ? उसकी खबर नहीं।

चिद्विलास में वीर्य में बहुत विस्तार लिया है। बहुत (वर्णन) किया है. द्रव्यवीर्य, क्षेत्रवीर्य, भाववीर्य, गुणवीर्य, द्रव्यवीर्य, पर्यायवीर्य (ऐसे) बहुत लिया (है)। अपार वस्तु है। दीपचंदजी, साधर्मी हुए हैं न ? जिसने अनुभव प्रकाश किया है। चिद्विलास किया है, उसमें शक्ति का वर्णन उन्होंने किया है। ऐसा दूसरे में विशेष बहुत नहीं है। समयसार नाटक में साधारण रूप में (शक्ति का) नाम है। परंतु उसने शक्ति का जो विस्तार किया है, बहुत (किया है)। दिपचंदजी गृहस्थ साधर्मी थे। गृहस्थ थे - वह बात आई थी। गृहस्थ तो वास्तव में उसको कहते हैं - गृह नाम अपने घर में स्थ। उसका नाम गृहस्थ कहिये। उसे गृहस्थ कहिए। तुम्हारे पैसेवाले को गृहस्थ कहते हैं, ऐसा गृहस्थ (यहाँ) नहीं है, आहाहा ! गृहस्थ - गृह नाम अपने घर में स्थ (नाम) रहनेवाला। वीर्य भी अपने घर में रहनेवाला वीर्य है। यह वीर्य पुण्य-पाप में नहीं जाता, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

यह वीर्य जो है वह अपने द्रव्य, गुण, पर्याय में और अपने क्षेत्र में काम करता है। थोड़ा सूक्ष्म है। निर्मल पर्याय है। निश्चय से तो निर्मल पर्याय, जो मोक्षमार्ग की पर्याय द्रव्य के आलंबन से (प्रगट होती है उसका क्षेत्र भिन्न है)। सूक्ष्म है, भगवान ! मार्ग ऐसा है। आहाहा ! इस समय तो सब लोप हो गया है। सत्यार्थ भगवान को पकड़ करके जो अनुभव हुआ, यह अनुभव की जो पर्याय है उस पर्याय का क्षेत्र और द्रव्य, गुण का क्षेत्र वह दोनों भिन्न है। अरे... ऐसी बात (हैं) ! समझ में आया ? भेदविज्ञान की बात बहुत सूक्ष्म है, भाई !

पर्याय का क्षेत्र (भिन्न है)। संवर अधिकार में आया है। विकार वस्तु भिन्न है (और) उसका क्षेत्र भी भिन्न है। आहाहा ! ऐसी भगवान की बात ! सर्वज्ञ परमेश्वर ! उनके संतों, दिगंबर मुनियों आढ़तिया होकर सर्वज्ञ का माल देते हैं। समझ में आया ? कहते हैं कि, अपनी वस्तु, सत्यार्थ, भूतार्थ, ज्ञायक स्वभाव जो है, उसके आश्रय से - उसमें स्थित रहने से आनंद के अनुभव की, अनंत गुण की पर्याय एक समय में उछलती है। वह आया न ? एक समय में अनंत गुण की पर्याय उछलती है नाम उत्पन्न होती है। वह पर्याय उत्पन्न होती है उसका क्षेत्र और द्रव्य, गुण का क्षेत्र दोनों भिन्न गिनने में आया है। आहाहा ! पर्याय का क्षेत्र पर्याय है, पर्याय की शक्ति पर्याय है, पर्याय पर्याय के कारण से है - द्रव्य, गुण से भी नहीं। भेदज्ञान सूक्ष्म (है), बापू ! सर्वज्ञ परमेश्वर के अलावा यह बात किसी ने देखी नहीं और कल्पित बातें सब बनाई। आहाहा ! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर ने, वीतराग देव ने जो आत्मा देखा (वह कहते हैं)।

एकबार कहा था न ? 'प्रभु तुम जाणग रीति, सौ जग देखता हो लाल' 'प्रभु तुम जाणग रीति' केवलज्ञानी को कहते हैं, 'प्रभु तुम जाणग रीति, सौ जग देखता हो लाल, निज सत्ता से शुद्ध सौने पेखता हो लाल' हे नाथ ! हे सर्वज्ञदेव ! हे परमेश्वर, परमात्मा ! आप तीनकाल तीनलोक को देखते हो, तो हमारी निज सत्ता शुद्ध पवित्र है, ऐसा आप देखते हैं। विकार अपनी सत्ता नहीं, आहाहा ! मार्ग बहुत सूक्ष्म (है), भगवान ! आहाहा ! 'निज सत्ता से शुद्ध सौने पेखता - देखता' हमारी निज सत्ता शुद्ध चैतन्यघन है, जो पुण्य - पाप के तत्त्व से भिन्न है। उसको आप देखते हैं। जैसे भगवान निज सत्ता शुद्ध देखते हैं वैसे छद्मस्थ प्राणी भी अपनी पर्याय में द्रव्य, गुण शुद्ध (है ऐसा) अगर देखें, (तो) उसको सम्यग्दर्शन होता है। ऐसी बात है, भाई ! आहाहा ! समझ में आया? एक बात। दूसरी बात, यहाँ भव मिले ये बात है नहीं। प्रभु ! क्योंकि भव है यह संसार है, आहाहा ! और उसका कारण जो रागादि, पुण्य आदि दया, दान आदि वह भी संसार है। समझ में आया? संसार से चार गति (रूप) संसार मिलता है। यहाँ तो परमात्मा भव के अभाव की बात करते हैं, भाई ! वह कभी किया नहीं। आहाहा ! समझ में आया?

भगवान ऐसा कहते हैं, ये पुण्य-भाव है वह वर्तमान दुःखरूप है। वह आत्मस्वरूप नहीं। और उस दुःख का फल (जो संयोग मिले) वह भी दुःखरूप है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! (समयसार) कर्ताकर्म (अधिकार की) ७४ गाथा है। (उसमें) दुःख, दुःखफल - ऐसा पाठ है। शुभभाव है वह दुःखरूप है और उसका फल दुःख है। स्वर्ग गति (मिले) वह भी दुःख है। यहाँ तो ऐसा कहते हैं, आहाहा ! समझ में आया ? भगवान ! थोड़ी सूक्ष्म बात है। जो शुभभाव किया था वह दुःखरूप है और पुण्य का जो बंधन हुआ और

उससे भगवान की वाणी और भगवान मिले, वह दुःख का कारण है। पर द्रव्य है न? समझ में आया? पर द्रव्य मिला तो उस पर लक्ष जायेगा तो राग होगा। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बात है, बापू ! यह कर्ताकर्म की ७४ गाथा में है। आहाहा ! `दुःख, दुःख फल' शुभभाव है वह वर्तमान दुःखरूप है और उस पुण्य के कारण बंध (होगा) और (उसके फल में) भगवान की वाणी का संयोग मिलेगा। परंतु उस संयोगी चीज़ पर लक्ष जायेगा तो राग ही होगा, दुःख ही होगा। गज़ब बात है !! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, अपने क्षेत्र का वीर्य, भाव का वीर्य है। भाव माने शक्ति। उसका भाव भाव से रहा है, पर्याय पर्याय के वीर्य से रही है, द्रव्य द्रव्य के वीर्य से रहा है। आहाहा ! गज़ब बात है, भाई ! भगवान की एक-एक शक्ति का वर्णन अलौकिक है। यह वीर्य शक्ति हो गई। आज प्रभुत्व शक्ति लेनी है।

सातवीं शक्ति है ना ? ``**जिसका प्रताप अखण्डित है...**'' यह तो अध्यात्मवाणी (है)। प्रभु ! बापू ! यह तो अलौकिक बात है। यह कोई वार्ता - कथा नहीं । यह तो भागवत् कथा है। नियमसार में लिखा है। नियमसार में आखिर की गाथा में (लिखा है)। यह नियमसार भागवत् शास्त्र है। वे लोग जो भागवत् कहते हैं वह सब समझने (जैसी बात है)। वह तो सूक्ष्म बात है। कलश टीका में तो रामायण और भागवत को राग का कारण कहा है। यह तो वीतराग की रामायण है। भागवत् कथा (अर्थात्) जिसमें वीतरागता उत्पन्न हो, वह भागवत् कथा है। समझ में आया ? आहाहा !

(यहाँ) कहते हैं कि, ``**जिसका प्रताप अखण्डित है...**'' किसका (प्रताप अखण्डित है)? (आत्म) द्रव्य का (प्रताप अखण्डित है)। जो आत्म द्रव्य है इसमें प्रभुत्व शक्ति है। ईश्वर शक्ति है। समझ में आया ? ईश्वर शक्ति कहो या प्रभुत्व शक्ति कहो कि परमेश्वर शक्ति कहो (सब एक ही बात है)। आहाहा ! अपना परमेश्वर ऐसा आया न ? भाई ! (परमेश्वर को) भूल गया है। वहाँ टीका में आया है। अपने परमेश्वर को भूल गया (और) दूसरे परमेश्वर को याद करता है। परंतु अपने परमेश्वर को भूल गया। सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा सच्चे परमेश्वर परमात्मा है, फिर भी इसका स्मरण करने से राग आता है, (ऐसा) कहते हैं। आहाहा ! पर द्रव्य है न (इसलिये)।

(समयसार की) ३८ गाथा में है। जीव (अधिकार की) अंतिम गाथा है। (कोई) मंजन करते है न ? तो दांत में सोना रखते हैं। तो (मंजन के) समय थोड़ी देर (सोने को) मुट्ठी में रखता है। (रखने के बाद) भूल गया कि कहाँ गया सोना ? (मुट्ठी खोलकर देखा तो) मुट्ठी में (ही) है। वैसे भगवान आत्मा परमेश्वर स्वरूप को अनादि से भूल गया और पुण्य-पाप और उसके फल की यादगिरी में (रुक) गया। और अपना परमेश्वर अंदर

चिदानंद भगवान (उसको भूल गया)। आहाहा !

(यहाँ) कहते हैं कि, द्रव्य जो वस्तु है इसमें प्रभुत्व है। जो गुण है, उस प्रत्येक गुण में प्रभुत्व है, आहाहा ! ज्ञान में प्रभुत्व है, दर्शन में प्रभुत्व है, आनंद में प्रभुत्व है, अस्तित्व में प्रभुत्व है। कर्ता (कर्म) नाम की षट्कारक शक्ति है। उस प्रत्येक शक्ति में प्रभुत्व है, आहाहा !

श्रोता : अनंत प्रभुत्व है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनंत प्रभुत्व है। आहाहा ! अरे... यह बात (कहाँ सुनने को मिले) ? आत्मा क्या चीज़ है उसकी कहाँ खबर है। और उसके ज्ञान में उसका ज्ञेय आये बिना, सब फोगट - निरर्थक है, नाथ ! चार गति में (रखड़ने की) बात है। चाहे तो वह दया, दान, व्रत, तप, अपवास, भक्ति, पूजा (करे) और मंदिर बनाये, वह शुभ भाव है (और) संसार है। गज़ब बात है ! भाई ! ऐसी बात है।

यहाँ कहते हैं द्रव्य में प्रभुत्व शक्ति (है)। (यह शक्ति) द्रव्य में, गुण में और पर्याय में तीनों में व्याप्ती है। एक बात। अनंत गुण में प्रभुत्व का रूप है। प्रभुत्व शक्ति अनंत गुण में नहीं परंतु (अनंत गुण में) प्रभुत्व का रूप है। ज्ञान में सामर्थ्यता, दर्शन में सामर्थ्यता, चारित्र में सामर्थ्यता, अस्तित्व में सामर्थ्यता, कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अधिकरण में (सामर्थ्यता), पर्याय में सामर्थ्यता, गुण में सामर्थ्यता, द्रव्य में सामर्थ्यता (इस प्रकार प्रभुत्व शक्ति का रूप है)। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी एक प्रभुत्व नाम की शक्ति है। उसमें क्या कहा ? इस शक्ति का स्वरूप कैसा ? कि ``**जिसका प्रताप अखण्डित है...**'' आहाहा !

द्रव्य में और अनंत गुणो में जो प्रभुत्व है, उसका प्रताप अखण्ड है। उसका प्रताप कोई तोड़ सके, ऐसी कोई चीज़ जगत में है नहीं। समझ में आया ? कठिन कर्म उदय में आये तो आत्मा को लूट लेते हैं, वह बिलकुल झूठी बात है। आहाहा ! जिसका अखण्डित प्रताप है, वस्तु भगवान आत्मा उसका प्रताप अखण्ड है। आहाहा ! अखण्ड प्रताप से खण्डित न हो, ऐसा स्वतंत्रशाली - स्वतंत्र सुख से शोभायमान द्रव्य है, वह प्रभुत्व शक्ति के कारण से है। आहाहा ! जिसकी ईश्वरता द्रव्य में है, गुण में है और पर्याय में है और प्रत्येक गुण में उस ईश्वरता का रूप है, प्रभुता का रूप है, आहाहा !

हमारी पढ़ाई के समय दलपतराम कवि थे। बहुत होशियार कवि थे। (उनका पूरा नाम) दलपतराम डाह्याभाई। स्कूल में उन्होंने एकबार ऐसी कड़ी बनाई थी। `प्रभुता प्रभु तारी तो खरी, मुजरो मुझ रोग ले हरि' यह तो स्कूल में (आया) था। `प्रभुता प्रभु तारी तो खरी' गुजराती समझे ? तारी यानी तुम्हारी। मुजरो यानी मेरी बिनती। `मुजरो मुझ

रोग ले हरि' वैसे यह तेरी प्रभुता ऐसी है कि अज्ञान और राग-द्वेष को हरनेवाली प्रभुता है, समझ में आया ?

द्रव्य की प्रभुता अखण्ड प्रताप से शोभायमान, गुण की प्रभुता अखण्ड प्रताप से शोभायमान (और) पर्याय की प्रताप शक्ति अखण्ड प्रताप से शोभायमान (है)। और द्रव्य की स्वतंत्र शोभा (अर्थात्) अपने द्रव्य से अपनी शोभा अपने में है। गुण की शोभा (अर्थात् अपनी) स्वतंत्रता से (गुण की) शोभा है। और एक समय की पर्याय है (उसकी प्रभुता उसमें है)। यहाँ निर्मल (पर्याय की) बात करनी है। यहाँ मलिन (पर्याय की) बात नहीं है। अपने स्वद्रव्य के आश्रय से निर्मल पर्याय, जो सम्यग्दर्शन(रूप) धर्म पर्याय होती है उसकी प्रभुता उसमें है। उसकी प्रभुता को कोई खण्ड कर सके (ऐसी कोई चीज़ नहीं है)। आहाहा ! कहते हैं न ? कि ऐसे कठिन कर्म (उदय में) आये (तो लूट जाये)। भाई ! (ऐसा माननेवाला) महा मूढ़ है। कर्म तो जड़ है, पर है। पर का तो तुझे स्पर्श भी नहीं (होता)। (तेरा) पर को स्पर्श नहीं और पर तुझे स्पर्श करता नहीं। तेरे में तेरा गुण - पर्याय का स्पर्श है। आहाहा !

यहाँ शुद्ध (पर्याय की) बात करनी है। अशुद्ध (पर्याय को) तो यहाँ गिनने में आया ही नहीं। अशुद्धता का तो अभाव (है)। शुद्धता की पर्याय में द्रव्य, गुण, पर्याय की प्रभुता प्रगट हुई (उसमें) अशुद्धता का अभाव - वह नास्ति है। यह अनेकांत है। अशुद्धता से प्रभुता की पर्याय प्रगट होती है, ऐसा नहीं। आहाहा !

सम्यग्दर्शन की पर्याय में प्रभुता है। सम्यग्दर्शन यह पर्याय है। इसमें प्रभुता है और त्रिकाली में श्रद्धा गुण है। इसमें (भी) प्रभुता है। द्रव्य में श्रद्धा शक्ति पड़ी है। द्रव्य में व्यापक होने से प्रभुता है, आहाहा ! एक श्रद्धा शक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्यापक है। और प्रभुत्व शक्ति अनंत गुण में व्यापक है। यह तो भाई बहुत ध्यान रखे तो पकड़ में आये ऐसी चीज़ है। आहाहा !

अंदर अनंत-अनंत गुण का विस्तार पड़ा है। आहाहा ! और पर्याय में परिणमन होता है तो वह (पर्याय) अपनी प्रभुता से - अखण्ड प्रताप से - स्वतंत्रपने से शोभित होती है। क्या कहते हैं ? कि द्रव्य, गुण तो अखण्ड प्रताप से स्वतंत्र शोभित है ही। परंतु जिसने द्रव्य ऊपर दृष्टि करके जो सम्यग्दर्शन आदि पर्याय प्रगट की, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की जो पर्याय है, वह अखण्ड प्रताप से शोभित है, उसको कोई खण्ड करे, ऐसी कोई ताकत जगत में है नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? अखण्ड प्रताप से शोभित है और स्वतंत्रता से स्वतंत्रशाली है। वह स्वतंत्रता से शोभित है। पर्याय अपनी स्वतंत्रता से शोभित है। राग है और व्यवहार है तो वह पर्याय प्रगट हुई, ऐसा है नहीं।

समझ में आया ? ऐसी बातें हैं। यह तो शक्ति का खज़ाना है। आहाहा !

तेरी पर्याय की प्रभुता अखण्ड प्रताप से और स्वतंत्रता से शोभित है। आहाहा ! तेरी पर्याय उसको कहते हैं कि, जो त्रिकाली शुद्ध द्रव्य है और त्रिकाली शुद्ध गुण है, उसके अवलंबन से जो पर्याय प्रगट हुई, वह उसकी पर्याय कहने में आती है। आहाहा ! समझ में आया ? उसके अवलंबन बिना जो निमित्त के अवलंबन से पर्याय होती है, वह तो अशुद्धता और विकार है। वह बेकार है। आत्मा के लिये वह लाभदायक है नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा ! अरेरे...! (उसे) मालूम भी नहीं कि मैं कौन हूँ ? प्रभु ! तेरी एक-एक शक्ति प्रभुता के अखण्ड प्रताप से और स्वतंत्रता से शोभित है। वह उसका शणगार (श्रृंगार) है। आहाहा ! शरीर में गहने पहनते हैं कि नहीं ? वह धूल का शणगार है, मुरदे का शणगार है। यह (शरीर) तो मुर्दा है, मुर्दा। आहाहा ! अमृतचंद्रआचार्य ने ९६ गाथा की (टीका में) कहा है।

शास्त्र में ऐसा है - भावलिंगी सच्चे मुनि हो। वे भिक्षा के लिये जाये और कोई रुदन करे तो वापिस आ जाते हैं। हम तो मोक्षमार्ग में निकले हैं तो यह रुदन कैसा ? आहाहा ! (आहारदान के) अंतराय में ऐसा (होता) है। हम तो आनंद की मौज में चलते हैं ! और आनंद का स्वाद लेते हैं तो (बीचमें) यह क्या ? कोई बालक रोये तो (वापिस) चले जाये, भिक्षा न ले। यहाँ हमारे आनंद की लहर में रुदन क्या ? आहाहा ! वैसे यहाँ भगवान आत्मा ! अमृतरस का भंडार जहाँ खुलता है वहाँ दुःख और रुदन क्या ? भाई ! आहाहा !

यहाँ कहते हैं, किसी चीज़ का कर्ता होकर, निमित्त होकर लाभ हो, ऐसी यह चीज़ है नहीं। आहाहा ! ऐसा कहाँ मिले ? ऐसा भगवान बिराज रहा है, भाई ! तुझे खबर नहीं। तेरी क़ीमत तुझे आती नहीं। आहाहा ! अनुभव प्रकाश में कठियारा का (लकड़हारा) दृष्टांत दिया है न ? कठियारा समझे ? लकड़ीवाला। उसको कहीं से कोई चकचकाट करता हुआ रत्न मिल गया। घर आकर स्त्री को कहे 'हम लोगों को अभी मिट्टी का तेल जलाना मिट जायेगा। इस रत्न के प्रकाश में रोटी करना।' (उसे) हीरे की क़ीमत नहीं। आहाहा ! उसके प्रकाश में अपना मिट्टी का तेल बच जायेगा (ऐसा मानता है)। उतने में उसके घर एक जौहरी आ गया। उसने देखा (और पूछा) 'यह क्या है भैया ?' (उसने ज़वाब दिया) ''कोई प्रकाश की चीज़ है, उससे हमारा मिट्टी का तेल बचता है।' (जौहरी ने कहा) 'अरे प्रभु ! तुम क्या कहते हो ? यह हीरा मुझे दे दो। (मेरे पास) हज़ार गोदाम पड़ा है। एक-एक गोदाम में लाखों सोनामहोर (है)। ऐसे हज़ार गोदाम

हम तुमको देंगे। यह हीरा हमको दो।' (लकड़ीवाले को लगा) 'अरे ! ऐसी चीज़ की मुझे खबर नहीं थी।' आहाहा ! अनुभव प्रकाश में ऐसा दृष्टांत आता है।

ऐसे अंदर भगवान चैतन्य हीरला ! आहाहा ! जिसके प्रकाश में लोकालोक जानने में (आये) ऐसा कहना भी असद्भुत व्यवहार है। अपनी पर्याय अपने से जानती है, आहाहा ! ऐसे अखण्ड प्रताप से ज्ञान की पर्याय (शोभायमान) है। गुण, द्रव्य तो अखण्ड प्रताप से ध्रुवरूप है। परंतु यहाँ तो जो परिणमन हुआ (उसमें) ज्ञान की पर्याय अपने अखण्ड प्रताप से स्वतंत्रपने प्रगट हुई है। उसको स्वतंत्रपना की शोभा है। ऐसे समकित की पर्याय उत्पन्न होती है, उस पर्याय में भी अखण्ड प्रताप, स्वतंत्र स्वभाव से उत्पन्न होती है। आहाहा ! दर्शनमोह गया, मिथ्यात्व गया तो समकित हुआ, ऐसी अपेक्षा है नहीं। समझ में आया ? ऐसे आनंद की पर्याय उत्पन्न होती है (वह अपनी स्वतंत्रता से उत्पन्न होती है)। अतीन्द्रिय आनंद का खज़ाना भगवान है। यह आनंद द्रव्य में, गुण में, पर्याय में जैसे प्रसरा तो आनंद की पर्याय में अखण्ड प्रताप से प्रभुत्व स्वतंत्रपने शोभायमान है। आनंद की पर्याय की प्रभुता को कोई लूटे, खण्ड करे, ऐसा है नहीं। आहाहा ! ऐसा है। यह तो शक्तियों का वर्णन है।

क्लास (शिबिर) आ रहा है तो शक्तियों का वर्णन करना। (ऐसा किसी ने कहा) तो मुझे थोड़ा विचार आ गया कि, यह सुने तो सही। यहाँ ४३ वर्ष हुए। आहाहा ! भले सूक्ष्म पड़े परंतु बापू ! ऐसा कुछ है। मार्ग में पद्धति कोई अलग जाति की है। ऐसा ख्याल में तो आवे ना ? आहाहा !

श्रोता : बहुत बढ़िया बात है। बहुत-बहुत बढ़िया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले नंबर की बहुत बढ़िया (बात) है। एम. ए. के नंबर की नहीं। यहाँ तो पहले सम्यग्दर्शन हुआ (ऐसे) एक ही नंबर की बात है। आहाहा ! अरे ! लोगों को कहाँ फुरसद है ? आहाहा !

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि, पर जो रागादि व्यवहार रत्नत्रय है, उसके कारण से सम्यग्दर्शन पर्याय प्रगट हुई, ऐसा है ही नहीं। सम्यग्दर्शन की पर्याय स्वतंत्रपने अखण्ड प्रताप से शोभायमान होकर प्रगट हुई है। आहाहा ! ऐसे अपने में चारित्र गुण की पर्याय (प्रगट होती है)। एक चारित्र शक्ति है। पर्याय का चारित्र भिन्न है। चारित्र नाम की एक शक्ति है। अकषाय स्वभाव, वीतराग स्वभाव या चारित्र स्वभाव कहो (सब एकार्थ है)। यह चारित्र गुण भी द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्यापक है। व्यापक कब (कहा जाये) ? जब सम्यग्दर्शन हुआ तो (व्यापक है)। समझ में आया ? द्रव्य, गुण में (चारित्र) था परंतु पर्याय में नहीं था। यहाँ तो वस्तु स्थिति ऐसी है कि अनंत चारित्र का पिंड

भगवान शक्तिरूप (है) उसका जहाँ आश्रय हुआ तो पर्याय में चारित्र (प्रगट हुआ)। आनंद... आनंद वैभव, अपने निज वैभव की सेवना करनेवाला चारित्र, अनंत गुण का अनुभव करनेवाला चारित्र, ये चारित्र की पर्याय अपने अखण्ड प्रताप से स्वतंत्रपने शोभे यह (चारित्र की) पर्याय है। अरेरे...! अभी तो लोग पंच महाव्रत के विकल्प को ही चारित्र गिनते हैं। अभी (चारित्र की) खबर तक नहीं।

श्रोता : राग ने चारित्र मनावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग की भी खबर नहीं। नवमी ग्रैवेयक गया वह भी राग है। वह राग भी कहाँ है ? `मुनिव्रत धार अनंत बैर ग्रैवेयक उपजायो' भाई ! यह तो वस्तु की चीज़ है। लोग ऐसा समझते हैं, अरे ! हमारे साधुपने की निंदा करते हैं। प्रभु ! तू सुन तो सही भाई ! साधुपना किसको कहे ? उसकी निंदा (कैसे हो) ? आहाहा ! यह तो धन्य परमेश्वरपद है। साधु पद तो पंच परमेष्ठीपद है। आहाहा !

वह तो पहले कहा नहीं ? पहले अंदर में बोलते हैं कि, `णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं' पहले बोलते हैं न अंदर में ? `णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आयरियाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उवज्जयाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहुणं' आहाहा ! जो वर्तमान में साधु है नहीं और उसका कोई जीव नरक में भी हो, परंतु भविष्य में साधु होंगे, तो कहते हैं कि हम तो त्रिकालवर्ती साधु को नमस्कार करते हैं। समझ में आया ?

चारित्र की पर्याय जो है वह वीतरागी आनंद लेकर प्रगट होती है। आहाहा ! धन्य अवतार, बापू ! चारित्र माने क्या ? समझ में आया ? चारित्र की पर्याय द्रव्य, गुण में तो शक्तिरूप है परंतु जहाँ स्वभाव का अवलंबन लेकर सम्यग्दर्शन हुआ और उग्र आश्रय लिया तब चारित्र हुआ। समझ में आया ? वह तो परमेश्वरपद (है) प्रभु ! आहाहा ! अरेरे...! भाई ! चारित्र की पर्याय में अपना अखण्ड प्रताप (रूप) प्रभुत्व शक्तिपना का रूप है। चारित्र की पर्याय में प्रभुत्व शक्ति का रूप है। आहाहा ! वीतरागी पर्याय अखण्ड प्रताप से शोभायमान, स्वतंत्रता से शोभायमान है। शाली कहा है न उसमें ? शाली कहा है। स्वतंत्रशाली (कहा है)।

पहले प्रश्न किया था कि यह स्वतंत्रशाली शब्द लिया है और यहाँ शोभायमान कहा है। और पंचास्तिकाय में चैतन्यशाली आता है। चैतन्यशाली है। वहाँ अर्थ नहीं किया। चैतन्यशाली का दो अर्थ होता है। चैतन्यवान और चैतन्य से शोभायमान। लोग ऐसा कहते हैं न कि, `यह पुण्यशाली है, भाग्यशाली है' तो यह पुण्यवान और भाग्यवान कहने में (आता है)। बस ! शोभायमान है, ऐसा कुछ है नहीं। ये धूल ५-५० लाख करोड़-दो

करोड़ मिले, यह कोई शोभा नहीं। वह शोभा नहीं है। वह तो अकेला पाप है। आहाहा!

योगसार में तो योगीन्द्रदेव ऐसा कहते हैं `पाप को पाप तो सौ कहे, पण अनुभवी जीव पुण्य को भी पाप कहे' आहाहा ! (ऐसा सुनकर) लोग तो चिल्लायेंगे न ? पुण्य - पाप में भेद जाने वह घोर संसारी प्राणी है। प्रवचनसार में आया है। पुण्य ठीक है और पाप अठीक है, ऐसा भेद करते हैं वह घोर संसार - चार गति में रखड़नेवाला है। आहाहा ! ऐसी बात है। समझ में आया ? पुण्य-पाप दोनों में पुण्य ठीक है, शुभभाव ठीक है (यह मिथ्या मान्यता है)। तो वहाँ कहा कि जो भाव कुशील है - संसार में प्रवेश करावे - वह भाव ठीक (है ऐसा) कैसे आया ? आहाहा ! शुभ भाव है वह संसार में प्रवेश कराता है। (उससे) भव मिलता है, आहाहा !

यहाँ तो सम्यग्दर्शन की बात चलती है। जिसमें भव का अभाव हो तब मुक्ति होती है। तो पहले से भव का अभाव स्वभाव स्वरूप और भव का कारण विकार का अभाव स्वभाव स्वरूप भगवान आत्मा है। समझ में आया ? उसका द्रव्य, गुण, पर्याय में प्रभुता, ईश्वरता व्यापक है, आहाहा ! वह दूसरे ईश्वर को ढूंढ़ता है, (जैसे) कोई दूसरा ईश्वर है। आहाहा ! तेरी पर्याय की ईश्वरता का द्रव्य, गुण कर्ता नहीं, तो तेरा कर्ता कोई दूसरा ईश्वर है (यह बात तो कहाँ रह गई) ? आहाहा ! समझ में आया ? बापू ! यह मार्ग तो अलग है।

एक शक्ति में कितना भरा है !! अपने द्रव्य, गुण में और उसके एक-एक गुण में अखण्ड प्रताप से स्वतंत्रपने वह गुण शोभायमान रहा है. और अपनी पर्याय में निर्मल पर्याय जो स्वद्रव्य के आश्रय से (प्रगट हुई) वही उसकी पर्याय है। यथार्थ में विकार उसकी पर्याय है ही नहीं। निश्चय से तो वह (विकारी) पर्याय पुद्गल की - जड़ की है। आहाहा ! व्यवहार रत्नत्रय, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भाव राग (है)। वह पुद्गल है। वह आत्मा की पर्याय में है नहीं, ऐसा बताना है, आहाहा ! अरे...! तेरा माहात्म्य ! तेरी पर्याय का माहात्म्य ! अलौकिक है ! प्रभुता से अखण्ड शोभायमान है, तो तेरे द्रव्य, गुण की प्रभुता की अखण्ड शोभा और स्वतंत्रता का क्या कहना ? आहाहा ! समझ में आया ? परंतु बात विश्वास में आना (बहुत कठिन है)। आहाहा !

उसका द्रव्य, गुण, पर्याय इतनी प्रभुता शक्ति से भरा है। एक-एक गुण प्रभुत्व से भरा है। ऐसा प्रतीति में आना (चाहिए)। इस प्रतीति में अखण्ड प्रताप से शोभायमान स्वतंत्र द्रव्य है (ऐसा आया)। तब उसने प्रभुत्व शक्ति को जाना और माना। यह तो पामरता (मान ली है) अरेरे...! हम ऐसे दीन हैं, हम तो गरीब इन्सान हैं। हमारा पुरुषार्थ बहुत कम है।(पुरुषार्थ) कम नहीं है, विरुद्ध है। स्वामी कार्तिकेय में आया है। कम पुरुषार्थ

तब कहा जाये कि, अपने स्वरूप का भान हुआ हो कि, मैं अनंत प्रभुत्व से बिराजमान हूँ। एक-एक शक्ति प्रभुत्व से (भरी है) और पर्याय में (भी) प्रभुत्व (है)। एक समय में अनंती पर्याय जो है वह प्रत्येक पर्याय अखण्ड प्रभुता से शोभायमान है। दूसरी पर्याय से शोभायमान है, ऐसा भी नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? वहाँ स्वामी कार्तिकेय में लिया है कि, (ऐसा) भान हुआ, सम्यग्दर्शन (हुआ) - ओहो ! मेरी पर्याय में पामरता है। किस अपेक्षा से ? केवलज्ञान की अपेक्षा से। स्वामी कार्तिकेय की बारह अनुप्रेक्षा में एक श्लोक है। सम्यक्‌दृष्टि जीव द्रव्य, गुण, पर्याय की प्रभुता मानते हैं। परंतु यह प्रभुता आत्मा की पूर्ण पर्याय के आगे पामर है। समझ में आया ? आहाहा ! एक बाजू से पर्याय की प्रभुता अखण्ड प्रताप से स्वतंत्र शोभायमान (है ऐसा) कहना और दूसरी बाजू से उस पर्याय को केवलज्ञान की अपेक्षा से पामर कहना। यह स्याद्‌वाद मार्ग है। अनेकांत स्वरूप आत्मा ऐसा है, आहाहा ! कहते हैं कि, पर्याय में जब परमात्मदशा की (प्रतीति) प्रगट हुई परंतु परमात्मपना की (पूर्ण) पर्याय प्रगट नहीं हुई है; तब तक पर्याय अखण्ड प्रताप से शोभायमान है, स्वतंत्र है (ऐसा कहते हैं)। फिर भी केवलज्ञान की अपेक्षा से उस पर्याय में पामरता है। अरे...! ऐसी बातें (है) ! आहाहा !

सम्यक्‌दृष्टि जीव को अपने स्वरूप का अनुभव हुआ, आनंद का स्वाद आया, पूर्ण आनंद की प्रतीति हुई तो भी जब तक चारित्र में (पूर्ण) वीतरागता नहीं है, तब तक मैं पामर हूँ (ऐसा जानते हैं)। ऐसा पाठ है। अपने को तृण समान मानते हैं। अपने को पर्याय में (तृण समान मानते हैं)। एक ओर पर्याय में प्रभुता है। (पर्याय) अखण्ड प्रताप से शोभायमान है। परंतु पूर्ण केवलज्ञान का अभाव है, उस अपेक्षा से अपने को तृण समान मानते हैं। मैं कहाँ ? (और) प्रभु कहाँ ? और चारित्रवंत मुनिराज की आनंद की रमणता और मेरी पर्याय कहाँ ?

श्रोता : आंशिक शुद्धि और पूर्ण शुद्धि का (भेद जानते हैं)।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर भी यहाँ तो आंशिक शुद्धि को अखण्ड प्रताप से स्वतंत्रता से शोभायमान कहा। समझ में आया ? आहाहा ! परंतु केवलज्ञान की अपेक्षा से , चारित्र की रमणता (की अपेक्षासे पर्याय में पामरता है)। आहाहा !

श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती (है)। जिनको तीर्थंकर गोत्र प्रगट हुआ है। आहाहा ! तो यह क्षायिक समकित की पर्याय अखण्ड प्रताप से शोभायमान है। वही क्षायिक समकित की पर्याय आगे जाकर केवलज्ञान लेगी। परंतु यह क्षायिक समकित की पर्याय अखण्ड प्रताप से शोभायमान होने पर भी अरेरे...! हमारी पर्याय पामर है। कहाँ चारित्रवंत संतों ! कहाँ केवलज्ञानी परमात्मा ! और कहाँ मैं ? आहाहा ! (इस प्रकार) अपने को तृण मानते

हैं। स्वामी कार्तिकेय में ऐसा पाठ है। किस अपेक्षा से ? यहाँ तो प्रभुता कहते हैं और मेरे में पूर्ण शुद्धि का अभाव है। (ऐसा भी कहते हैं)।

वहाँ धवल में तो ऐसा भी लिया है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की पर्याय अपने स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई, यह मतिज्ञान और श्रुतज्ञान केवलज्ञान को बुलाते हैं। ऐसा धवल में पाठ है। एक आदमी मार्ग भूल गया हो और दूसरे आदमी को बुलाये (और कहे) `ए भाई, ए भाई ! यहाँ आवो यहाँ आव। यह मार्ग कहाँ जाता है ? यह रास्ता बाड़ में से जाता है या बाहर खेतमें से जाता है ? हमको सिद्धपुर जाना है। तो सिद्धपुर मार्ग यहाँ बाड़में से जाता है कि यहाँ से जाता है ?' वैसे भगवान कहते हैं कि, जिसे मतिज्ञान में अखण्ड प्रताप से अनंत प्रभुता प्रगट हुई तो मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाते हैं, `प्रभु ! मुझे तेरा विरह है !' आहाहा ! ऐसा पाठ है। यह तो आचार्यों ने, संतों ने कमाल कर दिया !! एक-एक गाथा कमाल-कमाल कर दिया। आहाहा ! प्रभु ! एकबार सुन तो सही नाथ ! आहाहा ! नाथ क्यों कहा ? कि तेरे द्रव्य, गुण और पर्याय की रक्षा करनेवाला तुम (खुद) हो। योगक्षेम करनेवाले को नाथ कहते हैं। तेरी पर्याय की रक्षा करनेवाला तुम हो। और क्षेम (अर्थात्) नहीं मिली उसको मिलाने में भी तू नाथ स्वतंत्र है। समझ में आया ? नाथ नहीं कहते ? पति, पत्नी का पति नाथ है। क्यों ? कि पत्नी के पास जो संयोग है उसकी तो (वह) रक्षा करता है। और उसके पास नहीं है ऐसे गहने और कपड़े उसको लाकर देता है। इस प्रकार उसके पति को नाथ कहते हैं। वैसे यहाँ आत्मा को पर्याय में नाथ कहा। आहाहा !

निर्मल आनंद की जितनी पर्याय उत्पन्न हुई है उसकी तो रक्षा करता है और नहीं मिली हुई (ऐसी) केवलज्ञान और चारित्र की पर्याय का मिलान करता है। आवो...आवो...आवो...! धवल में ऐसा पाठ है। (केवलज्ञान को) बुलाते हैं, ऐसा पाठ है। आहाहा ! धवल है न ? यहाँ ४० पुस्तके हैं। धवल, जयधवल, महाधवल हज़ारों पुस्तके देखी हैं। उसमें ऐसा आया है। आहाहा ! धन्य अवतार ! मेरी ऋद्धि मुझे प्रगट हुई। परंतु पर्याय में पूर्ण ऋद्धि मुझे नहीं है। द्रव्य, गुण तो पूर्ण ऋद्धि से पड़ा ही है। आहाहा ! मेरा वैभव पूर्ण केवलज्ञान, अनंत आनंद (है)। मतिज्ञान पोकार करता है कि, `आवो पूर्ण, आवो पूर्ण (पर्याय) अब हम अपूर्ण में (अपूर्ण पर्याय में) रह सकते नहीं।' यह तो `बाल की खाल है' बात तो ऐसी है, भगवान ! आहाहा !

अब कोई लोग परतंत्र, परतंत्र... पराधीन... पराधीन का पोकार करते हैं। यहाँ तो कर्ता की व्याख्या ही यह है। `स्वतंत्रपने करे सो कर्ता' षट्कारक है न ? छ शक्ति - कर्ता शक्ति, कर्म शक्ति, करण शक्ति, संप्रदान शक्ति, अपादान शक्ति और अधिकरण।

कर्ता किसको कहे ? एकबार तो आर्य समाज है उसके पास कर्ता की व्याख्या (देखने के लिये) इतिहास मंगवाया था कि इतिहास क्या कहता है ? कमलाशंकर के व्याकरण में से ऐसा निकला कि, 'स्वतंत्रपने करे सो कर्ता' पर की अपेक्षा नहीं, पर का दास नहीं, पर की पराधीनता नहीं, आहाहा ! वैसे आत्मा की सम्यग्दर्शन पर्याय, सम्यक्ज्ञान पर्याय स्वतंत्रपने शोभायमान (है)। (वह) स्वतंत्र कर्ता होकर करती है। आहाहा !

हम चौथी (कक्षा में) पढ़ते थे तब छ कारक आते थे। यह तो ७० वर्ष पहले की बात है। कर्ता उसको कहिए कि स्वतंत्रपने करे। अखण्ड प्रताप से शोभायमान (ऐसी) मेरी पर्याय है। आहाहा ! समझ में आया ? मैं स्वतंत्रपने से यह पर्याय करता हूँ। मुझे राग या निमित्त की अपेक्षा है तो यह पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसी अपेक्षा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

नियमसार दूसरी गाथा में ऐसा कहा। चारों ओर से वस्तु ऐसी सिद्ध करते हैं, आहाहा ! निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र पर की अपेक्षा बिना निरपेक्षरूप से उत्पन्न होता है। परम निरपेक्ष (कहा है)। आहाहा ! अब ये लोग चीखते हैं कि, व्यवहार हो तो निश्चय होता है। अरे ! सुन तो सही प्रभु ! तू क्या करता है ? ये दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा और खूब तपस्या करे और राग (करे) तो निश्चय होता है। धूल में भी नहीं होगा। सुन तो सही, आहाहा !

यहाँ ऐसा कहा कि, (निर्मल पर्याय) परम निरपेक्षरूप से (होती है)। जिसमें व्यवहार रत्नत्रय की और भेद की भी अपेक्षा नहीं, ऐसा भगवान आत्मा ! अपनी शक्ति की अपार प्रभुता, उसकी प्रतीत, उसका ज्ञान और उसकी रमणता पर की अपेक्षा बिना निरपेक्षरूप से करता है। समझ में आया ? एक घंटे में कितनी बात हुई ? यह तो महाराज प्रभु ! चैतन्यराजा की बात है। १७-१८ गाथा में आता है न ? राजा की सेवा करे कि, यह राजा है। वैसे चैतन्य राजा अपनी अनंत शक्ति और अनंत परिणति से शोभायमान है। अपनी बात है। आहाहा !

पंच संग्रह में तो नव रस उतारा है। अपने में श्रृंगार रस है। अपना आनंद स्वरूप और अनंत शक्ति का परिणमन उसका श्रृंगार है। व्यवहार रत्नत्रय का श्रृंगार वह उसका श्रृंगार नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? आठों रस उतारे हैं। अद्भुत रस उतारा है। बहुत सरस (उतारा है) । दीपचंदजी साधर्मी - गृहस्थ थे परंतु आत्मा थे न ? (उसमें) गृहस्थ कहा और ब्रह्मचारी कहा। आत्मा का एक-एक गुण ब्रह्मचारी है, क्यों ? कि अपने गुण में ब्रह्म पड़ा है, उसमें दूसरा दोष आने नहीं देता। राग का अब्रह्म आने नहीं देता। आहाहा ! ऐसी बात है।

अरे भगवान ! यह तो तीनलोक के नाथ वीतराग परमेश्वर के कथन हैं। भाई ! यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। समझ में आया ? आहाहा ! इसको समझने के लिये समझनेवाले की भी योग्यता होनी चाहिए। आहाहा ! उसे कंटाला (अणगमा) नहीं आना चाहिए कि, `अरे ! ऐसा सूक्ष्म, ऐसा सूक्ष्म !' अरे ! सूक्ष्म नहीं (है), तू तो उससे भी सूक्ष्म है। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र यह पर्याय है, गुण नहीं। गुण तो त्रिकाल है। मोक्षमार्ग पर्याय है। संसार भी विकारी पर्याय है। मोक्षमार्ग निर्विकारी अपूर्ण पर्याय है और सिद्ध की पूर्ण शुद्ध पर्याय है। यह सब पर्याय के भेद हैं। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, मेरी सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय अखण्ड प्रभुत्व से - प्रताप से स्वतंत्र शोभायमान (है)। उसको पर की अपेक्षा है नहीं। व्यवहार रत्नत्रय की अपेक्षा है नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! भाई ! तेरा शणगार तो देख ! (पंच संग्रह में) एक अद्‌भुत रस लिया है। जिस समय, एक समय की (दर्शन) पर्याय लोकालोक को भेद किये बिना देखे, उसी एक समय में ज्ञान की पर्याय यह जीव, यह अजीव, यह गुण, यह पर्याय, यह पर्याय के अविभाग प्रतिच्छेद (ऐसे) सब को भिन्न करके देखे। उसी समय में दर्शन पर्याय (सब को) भिन्न (किये) बिना - यह मैं जीव हूँ, यह जड़ है - ऐसे भिन्न किये बिना (मात्र) सत्ता का दर्शन करे और ज्ञान की पर्याय एक-एक गुण का और पर्याय का भेद कर-करके जाने। एक समय में एक ही क्षेत्र में रही हुई दो पर्याय हैं। एक पर्याय सामान्य सत्ता को देखे और एक पर्याय उसी समय में द्रव्य, गुण, पर्याय (सब को) भिन्न-भिन्न करके त्रिकाल को देखे। यह भविष्य की पर्याय, यह भूतकाल की पर्याय, (यह) वर्तमान पर्याय (सब को) देखे। समझ में आया ? आत्मा में ऐसा अद्‌भुत रस है। समझ में आया ?

यह तो गज़ब बात है !! इसमें (कथन में) पूरा करे ऐसी शक्ति तो भगवान के पास है। आहाहा ! मुनिराज (स्वयं के) क्षयोपशम से बात करते हैं। आहाहा ! ``**जिसका प्रताप अखण्डित है**'' प्रत्येक गुण में जिसका प्रताप अखण्डित है। प्रत्येक पर्याय में भी जिसका प्रताप अखण्डित है। आहाहा ! वीर्य शक्ति का भी अखण्ड प्रताप शोभायमान है। एक वीर्य शक्ति अंदर में हैं। पुरुषार्थ... पुरुषार्थ... पुरुषार्थ... द्रव्य में पुरुषार्थ, गुण में पुरुषार्थ, पर्याय में पुरुषार्थ। आहाहा ! कोई ऐसा कहता है न ? तुम क्रमबद्ध को मानते हो तो पुरुषार्थ कहाँ रहा ?

श्रोता : उसका खुलासा तो करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : (खुलासा) करना ? टाईम हो गया है। कल बात (करेंगे)।

प्रवचन नं. ९
शक्ति-८ दि. १९-०८-१९७७
सर्वभावव्यापकैकभावरूपा विभुत्वशक्तिः।।८।।

समयसार शक्ति का अधिकार (चलता है)। (अब) आठवीं शक्ति है। सात शक्ति चली। सातवीं (शक्ति में) क्या आया ? कि यह आत्मा जो वस्तु है उसमें संख्या से अनंत शक्ति है। शक्ति का सामर्थ्य अनंत है, यह दूसरी बात है और १, २, ३, ४, ५, ६ (ऐसी) संख्या से अनंत शक्ति है (और) द्रव्य एक है। समझ में आया ? उसमें ऐसी एक प्रभुत्व नाम की शक्ति है। यह कल चला था। तुम्हारा क्रमबद्ध का थोड़ा रह गया है। कल प्रश्न आया था न भैया ? प्रभुत्व शक्ति का प्रताप अखण्डित है। जिस द्रव्य में, गुण में और पर्याय में जिसका प्रताप अखण्डित है। सूक्ष्म है, भगवान ! मार्ग वीतराग का बहुत सूक्ष्म, भाई ! अपूर्व बात है, भाई !

यहाँ कहते हैं कि, प्रभुता के अखण्ड प्रताप से पर्याय स्वतंत्र शोभायमान है। फिर भी प्रभुत्व शक्ति आगे-पीछे पर्याय कर सके, ऐसी ताकत नहीं। समझ में आया ? क्यों ? कि प्रभुत्व शक्ति जो है वह सत् द्रव्य उसका सत्व है, कस है, माल है। यह शक्ति अपने द्रव्य में, गुण में और पर्याय में व्यापक होकर व्याप्ती है। फिर भी प्रभुत्व शक्ति की पर्याय जिस समय जो होनेवाली है, ऐसी होगी। समझ में आया ?

४७ शक्ति में एक १८ वीं शक्ति है। ``**क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है...**'' क्या कहते हैं सुनो ! आज क्रमबद्ध लेना है ना ? तो ``**क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है....**'' आत्मा में एक उत्पाद, व्यय, ध्रुव नाम की शक्ति है। उमास्वामी के तत्त्वार्थ सूत्र में आया कि, `उत्पाद, व्यय, ध्रुव युक्तं सत्' और `सत् द्रव्य लक्षणं' ऐसा पाठ है। यहाँ कहते हैं कि, आत्मा में एक उत्पाद, व्यय, ध्रुव नाम

की शक्ति है कि जो शक्ति अनंत गुण में व्यापी (प्रसरी) है, तो प्रभुत्व शक्ति में भी उत्पाद, व्यय, ध्रुव का रूप है, आहाहा !

उसमें उत्पाद, व्यय, ध्रुव नाम की शक्ति है कि जिस समय जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है वह उत्पन्न होगी और पूर्व की पर्याय का व्यय होगा और ध्रुवरूप जो सदृश (है वह) कायम रहेगा। समझ में आया ? कोई ऐसा कहे कि, क्रमबद्ध (है तो) पर्याय में पुरुषार्थ कहाँ रहा ? यह प्रश्न है न भैया ? आहाहा ! तो कहते हैं कि उत्पाद, व्यय, ध्रुव नाम की शक्ति है यानी गुण है। वह अनंत शक्तियों में व्यापक है। अनंत शक्तियों में वर्तमान पर्याय में जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है (वही पर्याय उत्पन्न होगी)। अर्थात् क्रम से वर्तनेवाली। (ऐसी) भाषा है ? ``**क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है...**'' वर्तना जिसका लक्षण है। आहाहा ! क्या कहा ? सूक्ष्म है, भाई ! अपूर्व बात है, बापू ! आहाहा ! आत्मा में उत्पाद, व्यय, ध्रुव नाम की शक्ति है, यह गुण है, यह स्वभाव है कि जो अनंत शक्तियों में व्यापक है। अनंत शक्तियों में भी प्रत्येक शक्ति में क्रमवर्ती पर्याय होती है। क्रम से वर्तनेवाला वर्तन (जिसका लक्षण है)। आहाहा !

मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भैया ! क्रम से वर्तनेवाली अनंत गुण की अनंत पर्याय (प्रगट होती है)। अनंत गुण में उत्पाद, व्यय, ध्रुव शक्ति व्यापक है न ? (उसका) रूप है। अनंत शक्तियों में जिस समय उत्पाद होनेवाला है उस समय उत्पाद होगा और उसी समय व्यय का क्षण है। उत्पाद जन्मक्षण है और व्यय का भी वही क्षण है, आहाहा !

पर्याय जो है उसका उत्पाद का काल भी वही है (और व्यय का काल भी वही है)। आगे-पीछे नहीं, आहाहा ! ऐसी बात है। बापू ! भगवान का - वीतराग का मार्ग सूक्ष्म है। ऐसी चीज़ सर्वज्ञ के सिवा, वीतराग मार्ग के सिवा कहीं है नहीं, बापू ! उसे समझने के लिये तो बहुत प्रयत्न चाहिए। समझे ? संसार की पढ़ाई के लिये एल.एल.बी. और एम.ए. की डिग्री के लिये कितना पढ़ते हैं ? उस समय जो पढ़ने की पर्याय उत्पन्न हुई, वह उत्पादरूप होनेवाली थी वही हुई है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, अगर ऐसा है तो फिर पुरुषार्थ कहाँ रहा ? प्रश्न तो वह था न ? भाई ! स्वामी कार्तिकेय में प्रभु तो ऐसा कहते हैं कि, जिस समय में, जिस क्षेत्र में, जिस संयोग में, जिस प्रकार की पर्याय उत्पन्न होनेवाली है वही होगी। ऐसा माने वह सम्यक्दृष्टि है, ऐसा लिखा है; न माने वह कुदृष्टि - मिथ्यादृष्टि है, ऐसा लिखा है। उसका अर्थ क्या आया ? कि प्रत्येक गुण की जिस समय जो पर्याय उत्पाद, व्यय, ध्रुव गुण के कारण (होनेवाली है वही होगी)। उत्पाद, व्यय, ध्रुव तो गुण है। परंतु उसकी पर्याय उत्पाद, व्यय और ध्रुव तीनरूप से परिणमे, ऐसा उस शक्ति का रूप है। उस

समय अनंत गुण में उत्पाद, व्यय, ध्रुव (रूप परिणमन होता है)। लोगों को यह नियत लगता है, परंतु नियत ही है। समझ में आया ? परंतु नियत के साथ पुरुषार्थ आया। जिस समय जिस गुण की पर्याय होनेवाली है, ऐसा निर्णय करनेवाला पर्याय ऊपर लक्ष नहीं रखता। ज़रा सूक्ष्म बात है। बड़ी गड़बड़ हो गई न ?

क्रमबद्ध की तो बड़ी चर्चा हुई थी। १३ की साल में बनारस गये थे। एक दिगंबर गृहस्थ थे। वहाँ भोजन करने जाते थे। साथ में (दूसरे बड़े विद्वान भी) थे। उनको मैंने कहा कि, 'भैया ! प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमबद्ध है।' दूसरे विद्वान कुछ नहीं बोले। यह बात (उस समय में) बाहर नहीं थी। एक समय की क्रमे-क्रमे (पर्याय) हो तो - तो नियत हो जायेगा तो पुरुषार्थ कहाँ रहा ? अरे भगवान ! अनंत गुण की क्रमसर पर्याय जिस समय होनेवाली है वह होगी, उसका निर्णय तो द्रव्य स्वभाव पर दृष्टि करने से हुआ। समझ में आया ? आहाहा ! कहते हैं कि, जिस समय जो (पर्याय) होगी ऐसी पर्याय का निर्णय करनेवाले की दृष्टि द्रव्य पर जाती है। पर्याय का निर्णय पर्याय में रहकर नहीं होता, समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भगवान !

अरे प्रभु ! तेरी बात तो (गज़ब है) ! तेरी प्रभुता (अंदर) पड़ी है न नाथ ! तेरे द्रव्य में प्रभुता, गुण में प्रभुता (और) पर्याय में प्रभुता। फिर भी वह प्रभुता की पर्याय का काल है तब उत्पन्न होती है। प्रभुता की शक्ति भी पर्याय का फेरफार कर दे, (ऐसा नहीं है)। आहाहा ! परमेश्वर, ईश्वर, सर्वज्ञदेव भी जिस समय जो पर्याय होनेवाली है, उसका फेरफार करे, ऐसा द्रव्य का स्वभाव नहीं, आहाहा ! तो उसका पुरुषार्थ कहाँ रहा ? भगवान ! एकबार सुन तो सही, प्रभु !

पर्याय में क्रमवृत्तिपना जिसका वर्तन है, ऐसा पाठ है। क्रमवृत्ति जिसका वर्तन है। (अर्थात्) क्रम से वर्तना जिसका वर्तन है। उसका वर्तन ही यह है। आहाहा ! जिसका लक्षण ऐसा है, उसकी द्रव्य ऊपर (दृष्टि गये बिना) 'मैं ज्ञायकभाव चिदानंद हूँ' ऐसा दृष्टि में निर्णय हुए बिना क्रमबद्ध का निर्णय होता नहीं। (जब दृष्टि द्रव्य स्वभाव पर जाये) तब वह क्रमबद्ध का निर्णय सच्चा है। समझ में आया ? आहाहा ! यह बहुत अलौकिक बात है !! भगवान ! आहाहा !

उज्जैन में एक (साधु) थे। यहाँ का वाचन बहुत किया। हमको गजपंथा में मिले थे। (हमे मिलने आये तब) उठ-बेठ कर वंदन किया। परंतु रात्रि को आये थे इसलिये कुछ बोल सके नहीं। (दूसरे दिन) दोपहर को हमको गजपंथा से चले जाना था। वे आये नहीं तो मुझे ऐसा हुआ, उसका हृदय क्या है ? यह हमें जानना है। वे वाचन करके बात तो बहुत करें। बाद में हम वहाँ मेडी (छोटे मकान की ऊपर की मंजिल)

पर गये (और) बैठे। दरवाजा खोल दिया, (खुद) नीचे उतर गये, हम पाट के ऊपर बैठे, हमको वंदन किया। हमें तो उसका हृदय लेना था कि, ये बात करते हैं परंतु क्या है ? हमने पूछा `शास्त्र में ऐसा चला है। कालनय से मोक्ष और अकालनय से मोक्ष (होता है, ऐसी) दो बात चली हैं।' प्रवचनसार में ४७ नय में कालनय - काल पर भी मोक्ष होता है और अकाल में भी मोक्ष होता है, ऐसा पाठ है। तो फिर क्रमबद्ध में जिस काल में (मोक्ष) होनेवाला हो (उस समय में होगा) तो फिर अकाल में मोक्ष कहाँ से आया ? पाठ में अकाल में मोक्ष है। (ऐसा भी लिखा है)। ४७ नय में कालनय से भी मोक्ष और अकालनय से भी मोक्ष, ऐसा पाठ है। यह तो ४७ शक्ति है। प्रवचनसार में ४७ नय है। उसको ख्याल आ गया कि, ये महाराज मुझे कहीं पकड़ेगे। फिर तो (उन्होंने) कबूल कर लिया। नहीं (बाहर) तो हम जैसा कहते हैं, वैसा ही कहते थे कि, `जिस समय में जो होगा उस समय में वह होगा।' ऐसी बात करे। हमने कहा शास्त्र में अकालनय है न ? काल से मोक्ष और अकाल से मोक्ष, ऐसा पाठ है। तो कहा कि `मैंने विचार नहीं किया।' ऐसा कहकर छूट गये। उसका अर्थ तो ऐसा है कि, कालनय से तो जिस समय मोक्ष होना है उसी समय मोक्ष होता है। परंतु उस समय में अकालनय भी साथ में है। अकालनय का अर्थ ? आगे-पीछे (मोक्ष) होता है, ऐसा अर्थ नहीं। अकालनय का अर्थ पुरुषार्थ और स्वभाव को मिलाकर कहते हैं तो अकाल से (मोक्ष) हुआ। समझ में आया ? आहाहा !

सर्वज्ञ वीतराग त्रिलोकनाथ उनकी वाणी की अमृतधारा उसका क्या कहना !! आहाहा ! जिसकी समझ में आ जाये, वह तो निहाल हो जाये, आहाहा ! जन्म-मरण से रहित हो जाये, बापू ! (खुद) चार गति में दुःखी है।

अकालनय का अर्थ - जिस समय मोक्ष होगा उसी समय होगा। अकालनय में दूसरा समय आगे-पीछे है, ऐसा अर्थ है नहीं। अकाल का अर्थ क्या है ? कालनय में अकेला काल लिया था। अकाल में स्वभाव, पुरुषार्थ, भवितव्यता, काललब्धि आदि पाँच आये। मात्र काल नहीं परंतु साथ में पुरुषार्थ स्वभाव है, उसको अकालनय कहने में (आता है)। अकालनय का अर्थ आगे-पीछे काल है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? फिर से कहते हैं।

अकालनय का अर्थ यह है कि, काल में तो जिस समय केवलज्ञान और मोक्ष होगा उसी समय होगा। परंतु अकाल का अर्थ उस समय स्वभाव की ओर पुरुषार्थ गया, काल तो वही है। परंतु त्रिकाली स्वभाव की ओर पुरुषार्थ गया तो पुरुषार्थ और स्वभाव साथ में आया। उसे अकाल कहने में आता है। भाई ! समझ में आया ? यह तो क्रमबद्ध

का चलता है न ? आहाहा ! यहाँ तो पहले से खूब चर्चा चलती है न !

एक विद्वान आये थे। बहुत नरम थे। उन्होंने एक शास्त्र का अर्थ किया था उसमें भूल थी। उसमें क्या भूल थी ? हमने तो सब पुस्तके देखी हैं न ! उसमें ऐसा लिखा था कि छट्ठे गुणस्थान में जो मुनि हैं उन्हें बुद्धिपूर्वक का राग है और सप्तम गुणस्थान में अबुद्धिपूर्वक का राग है। ऐसा उन्होंने लिखा था। हमने कहा `आपकी भूल है' तो उन्होंने कहा `कहो महाराज !' (हमने कहा) `देखो भैया ! छठे गुणस्थान में भी बुद्धि और अबुद्धिपूर्वक दोनों राग है। बुद्धिपूर्वक अकेला राग है और अबुद्धिपूर्वक सातवें (गुणस्थान में) है, ऐसा नहीं। गोमट्टसार में व्यक्त-अव्यक्त का पाठ है। राग ख्याल में आता है इतना बुद्धिपूर्वक है और उसी समय ख्याल में नहीं आता वह अबुद्धिपूर्वक का (राग) है। छठे गुणस्थान में भी बुद्धिपूर्वक-अबुद्धिपूर्वक दोनों लागू पड़ते हैं। अकेला बुद्धिपूर्वक का (राग) है, ऐसा नहीं और सप्तम गुणस्थान में अकेला अबुद्धिपूर्वक का राग (है)।' समझ में आया ? यह बात ज़रा सूक्ष्म है परंतु (उन्होंने) कबूल किया (और) बोले `महाराज ! मेरी दूसरी कोई भूल हो तो मुझे बताइये' बहुत नरम थे। बाद में तो (कहने का) विचार किया था कि, तुम एक छ मास यहाँ रहो। एकबार हमारी बात सुनो फिर आपको जो प्रचार करना हो वह करो। परंतु एक बार सुने तो सही कि, बात क्या है ? उस समय यह बात चली। समयसार ३०८ गाथा है न ?

``**दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं।**

जह कडयादीहिं दु पज्जएहिं कणयं अणण्णमिंह।।३०८।।''

है ना ? देखो पीछे उसकी टीका है। ``**प्रथम तो जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ...**'' है ? प्रथम तो मुख्य (बात) यह कहनी है कि प्रथम नाम संस्कृत में `**तावत्**' शब्द पड़ा है। `**तावत्**' - हमें मुख्य ये कहना है कि। `**तावत्**' नाम प्रथम - मुख्य जो कहना है वह बात यह है कि.... (ऐसे)। संस्कृत टीका के एक-एक अक्षर देखे हैं। कितनी बार देखा है। समयसार ७८ की साल में मिला था। ५५ वर्ष हुए। पहला पुस्तक यह आया था। तो `**तावत्**' नाम ``**प्रथम तो जीव क्रमबद्ध ऐसे...**'' देखो ! आया। पाठ में क्या है ? संस्कृत पाठ में क्रमनियमित है। क्रम से नियम से होनेवाली पर्याय क्रमसर होती है। नीचे क्रमनियमित का अर्थ क्रमबद्ध लिखा है ? क्रमनियमित का अर्थ क्रमबद्ध है। यह क्रमबद्ध शब्द तो बहुत जगह आता है। अब तो बहुत जगह आता है। क्रमबद्ध की व्याख्या क्या ? आहाहा ! समझ में आया ? कि पहले जीव की बात है। ``**जीव क्रमबद्ध...**'' (अर्थात्) क्रमे-क्रमे जो समय जो (पर्याय) होनेवाली है वह बद्ध नाम नियमित(रूप से) उत्पन्न होगी। समझ में आया ?

एक विद्वान ने अर्थ किया था। क्रमबद्ध की व्याख्या की थी। उन्होंने इतना अर्थ खोला कि, पर्याय क्रमबद्ध एक के बाद एक है - ऐसी बंधी हुई नहीं है। ऐसा अर्थ किया था। परंतु बंधी हुई नहीं है इस बात का यहाँ काम नहीं है। एक के बाद यह पर्याय उसके साथ बद्ध है, ऐसे बद्ध की बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो एक पीछे (एक) होनेवाली है, उसको क्रमनियमित - बद्ध कहते हैं। आहाहा ! यह तो तत्त्व की मुख्य चीज़ है। आहाहा ! ऐसी बद्ध की व्याख्या है नहीं। क्रमबद्ध का अर्थ तो समय-समय नियमित होनेवाला है, वह क्रमबद्ध है। क्रमबद्ध का ऐसा अर्थ नहीं कि, इस पर्याय को बाद वाली पर्याय के साथ बंधन है - बंधी हुई है, ऐसा नहीं।

ऐसा आत्मावलोकन में चला है। मोक्षमार्ग की पर्याय है तो केवलज्ञान होगा, इसके ज़ोर से होगा, ऐसा है नहीं। क्या कहा ? शांति से समझना। यह सम्यग्दर्शन, ज्ञान की मोक्षमार्ग की पर्याय है ना ? तो इस पर्याय के पीछे केवलज्ञान-मोक्ष होता है; तो इस पर्याय के ज़ोर से वह पर्याय उत्पन्न होगी, यह पर्याय है तो यह पर्याय उत्पन्न होगी, ऐसा है नहीं। ऐसी बात है। आहाहा ! क्या समझ में आया भगवान ? कि यहाँ पहले जीव की बात कही। अजीव की बात बाद में लेंगे। आत्मा जो है... जीव कहो या आत्मा कहो (एक ही बात है)। सबेरे आया था। आत्मा शब्द आया था और बाद में जीव द्रव्य कहा था। कोई समझे कि, जीव अलग है। आत्मा अलग है, (तो) ऐसा नहीं है।

यह जीव जो है - आत्मा, उसके अनंत गुण जो हैं उसकी क्रमबद्ध - क्रमसर जिस समय जो पर्याय होनेवाली है (वह) क्रमनियमित - क्रम से निश्चय से वही होनेवाली है। समझ में आया ? देखो ! ``**अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ...**'' (अर्थात्) क्रमसर अपनी पर्याय से उत्पन्न होता हुआ। ``**अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है...**'' क्रमसर परिणाम जो उत्पन्न हुआ वह जीव ही है। आज सबेरे भी आया था। शुद्ध चेतना परिणाम और अशुद्ध चेतना परिणाम - यह जीव है। (वह) जड़ है और पर है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? मार्ग बहुत सूक्ष्म (है), बापू ! भाग्यशाली लोग यहाँ दूर से सुनने को आते हैं। दूर-दूर से आये हैं। मार्ग तो ऐसा है। नाथ ! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की अमृतवाणी का यह झरना है, नाथ ! आहाहा !

कहते हैं कि क्रमसर परिणाम उत्पन्न होते हैं वह जीव ही है। ऐसा (उस विद्वान को कहा)। (विद्वान) नरम आदमी थे। (उन्होंने कहा) `ओहो ! सिद्धांत में साधु को आगम चक्षु कहते हैं। यह बात यहाँ दिखती है।' कोई संत समागम - गुरुगम नहीं इसलिये अर्थ करने में जरा फेरफार हुआ। अर्थ का फेरफार करके सुधार दिया। (और कहा) `हमारी भूल हो तो बताइये।' (हमने) कहा `छट्ठे गुणस्थान में बुद्धि-अबुद्धिपूर्वक दोनों रोग

हैं। (छठे गुणस्थान में) अकेला बुद्धिपूर्वक का (राग) है और अबुद्धिपूर्वक (राग) सातवें (गुणस्थान में) है, ऐसा नहीं समझ में आया ? आहाहा !

अध्यात्मदृष्टि से जो राग बुद्धिपूर्वक ख्याल में आता है उसको असद्भूत उपचार कहते हैं। (समयसार) ११ वीं गाथा में आया था न ? सर्व व्यवहार अभूतार्थ (है)। अध्यात्म के चारों व्यवहार (अभूतार्थ हैं)। असद्भूत व्यवहार, सद्भूत व्यवहार। असद्भूत व्यवहार का दो प्रकार - उपचार और अनउपचार। सद्भूत व्यवहार का दो प्रकार - उपचार और अनउपचार। छट्ठे गुणस्थान में जो राग ख्याल में आता है उसे बुद्धिपूर्वक असद्भूत उपचार कहते हैं। और उपयोग स्थूल है तो ख्याल में नहीं आता है, इसमें अबुद्धिपूर्वक है। अबुद्धिपूर्वक को असद्भूत अनउपचार नय कहते हैं। ख्याल में आता है उसे असद्भूत उपचार कहते हैं। असद्भूत व्यवहार उपचार (कहते हैं)। और उसी समय जो ख्याल में न आवे (उसे) असद्भूत अनउपचार कहने में आता है। थोड़ी सूक्ष्म बात है, आहाहा !

अंदर नज़र करनी पड़ेगी। यह तो (रस) लेने की चीज़ है, भगवान ! करना तो यह है। बाकी (सब) थोथा है। आहाहा !

श्रोता : रस लेने के लिये यहाँ कितने दिन रहना चाहिए ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कमाने में गिनती करते हैं कि, मुझे कितने वर्ष कमाना ? वहाँ नहीं कहते। कहा न कि नौकरी में भी ५५ वर्ष हुआ तो निकाल देते हैं और व्यापार में तो उसका कोई ठिकाना नहीं। ७०-८० वर्ष तक मज़दूरी करते रहते हैं। वहाँ मुद्दत (समय) मांगते हैं ? कि इतने समय तक मुझे कमाना, बाद में छोड़ देना। वैसे समझने में इतने वर्ष - इतने दिन तक (समझना) इस प्रकार की मुद्दत होती नहीं। समझ में आया ?

फिर भी अमृतचंद्र आचार्य ने कलश में लिखा है, भैया ! छ महीने ध्यान रखकर इसका अभ्यास कर। तेरी चीज़ की प्राप्ति होगी कि नहीं होगी ? (तो कहते हैं) होगी ही होगी। भैया ! छ महीने अभ्यास कर। छ महीने (कहा है बल्कि) है तो जघन्य अंतर्मुहूर्त। जघन्य नाम अल्प काल में - अंतर्मुहूर्त में अनुभव हो जाता है और उत्कृष्ट हो तो अनंतकाल में भी नहीं होता है। तो मध्य में लिया। भगवान ! एकबार छ महीने लगनी तो लगा। मैं आनंदकंद शुद्ध चैतन्यघन हूँ। मैं राग (और) पर से रहित हूँ। ऐसा अभ्यास छ महीने लगा दे। तुझे आत्मप्राप्ति होगी, होगी और होगी। ऐसा बात है, भाई ! आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, क्रमसर होगा यह बात सुनकर वह विद्वान ऐसे बोले कि, `ओहोहो ! ऐसी बात तो हमने कभी सुनी नहीं। और महाराज ! हम सब पंडितों की पढ़ाई अभी तक तो निमित्त आधीन है। कोई अपवाद छोड़कर सब पंडितों की निमित्त आधीन दृष्टि है। पर्याय उपादान से - अपने से होती है, यह बात तो हमारी कोई पढ़ाई

में आई नहीं।' समझ में आया ? पढ़ाई में आया नहीं और पढ़ाई की नहीं, अनुभव तो बाद की बात है। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं ``(**जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ) जीव ही है।**'' जो क्रमसर परिणाम उत्पन्न हुआ वह जीव ही है। जीव से उत्पन्न हुआ और जो नियतकाल है, उस काल से उत्पन्न हुआ है। ``**अजीव नहीं...**'' (वह) पर से उत्पन्न हुआ नहीं। क्रम से (उत्पन्न) नहीं हुआ। आहाहा ! सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ तो कर्म के अभाव से नहीं। मिथ्यात्व उत्पन्न हुआ वह कर्म के उदय से नहीं, अजीव से उत्पन्न होता नहीं। समझ में आया ?

``**इसी प्रकार अजीव भी...**'' अब दूसरे पाँच अजीव लिये। छ द्रव्य में एक जीव (और बाकी) पाँच अजीव लिये। ``**क्रमबद्ध अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ अजीव ही है...**'' आहाहा ! रजकण (- पुद्‌गल), आकाश, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, (काल) आदि पाँचों जड़ हैं। भगवान ने छ द्रव्य देखें। (उसमें) जीव की एक बात कही (और) बाकी पाँच अजीव हैं। वह भी क्रमसर (जो) पर्याय जिस समय में होनेवाली है वह पाँच द्रव्य में भी होगी। समझ में आया ?

ध्यान रखना, भगवान ! ध्यान से (सुने तो) नहीं समझ में आये ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा ! अरे भगवान ! तेरी एक समय में केवलज्ञान लेने की ताकत है, नाथ ! उसे यह समझ में नहीं आये ? (यह कैसे हो सकता है ?) वह ऐसा मान लेता है कि, `यह सब सूक्ष्म है, यह मुझसे समझ नहीं जायेगा।' (ऐसा अभिप्राय) समझने नहीं देता है। आहाहा ! भगवान आत्मा को नहीं समझ में आये ऐसी बात कहाँ है ? प्रभु ! आहाहा ! वह बात तो कही थी न कि, वृद्ध आदमी को तृषा लगी हो तो घर में दो हज़ार का घोड़ा हो, बैल हो तो उसको कहेगा कि पानी लाव, जल लाव ? आठ साल की लड़की होगी तो उसे कहेगा कि, `बेना ! जल लाव, पानी लाव' क्योंकि मैं जो कहता हूँ वह समझेगी। घोड़ा और बैल नहीं समझेंगे। वैसे आचार्य कहते हैं कि, मैं कहता हूँ वह शरीर और राग को नहीं कहता हूँ। मैं आत्मा को कहता हूँ। जो समझे उसे मैं कहता हूँ। ऐसी बातें हैं, भगवान ! जो समझ सके उसको मैं समझाता हूँ। राग को, व्यवहार को और जड़ को नहीं कहते हैं। आहाहा ! ऐसे आचार्य कहते हैं कि तुम समझ पाओगे। आहाहा !

कुंदकुंद आचार्य ने समयसार पांचवीं गाथा में वहाँ तक कहा है, ``**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।**'' मैं मेरे निज वैभव से समयसार कहूँगा। यह सारा शास्त्र तो रहस्य से भरा है। मैं **एयत्तविहत्तं** - मेरे स्वभाव से एकत्व है और राग से विभक्त है,

ऐसी मैं बात कहूँगा, ऐसा लिया है। ``**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण। जदि दाएज्ज...**'' आहाहा ! यदि राग से पृथक और स्वभाव से अपृथक ऐसी बात तुमको दिखाऊँ तो. ``**जदि दाएज्ज पमाणं...**'' थोड़ी गंभीर भाषा है। प्रभु ! तुम अनुभव से प्रमाण करना, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! दो बार ``**दाएज्ज**'' आया है। एकबार ऐसा कहा है कि, ``**तं एयत्त विहत्तं दाएहं अप्पणो**'' अपने वैभव से दिखाऊँगा। प्रत्येक पद में बहुत गंभीर भाषा है। बाद में तीसरे पद में (कहा) ``**जदि दाएज्ज**'' यदि दिखानेवाली वाणी आदि आ गई (तो) प्रमाण करना, प्रभु ! प्रमाण माने अकेली `हाँ' नहीं. मेरी वाणी को अनुभव से प्रमाण करना। आहाहा ! समझ में आया ? दिगंबर संतों की वाणी रामबाण वाणी है। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, ``**अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ अजीव ही है, जीव नहीं। क्योंकि जैसे सुवर्ण का कंकण आदि परिणामों के साथ तादात्म्य है।**'' सोने की कुंडल, कड़ा आदि जो पर्याय होती है (उसमें) सोना उस पर्याय से तादात्म्य है। सोना कंकण आदि से तादात्म्य स्वरूप है. ऐसे भगवान आत्मा और जड़ में जो पर्याय क्रमसर उत्पन्न (होती है) उसके साथ वह द्रव्य तादात्म्य है। अग्नि जैसे उष्णता के साथ तादात्म्य है, वैसे (आत्मा की) पर्याय आत्मा के साथ तादात्म्य है, तत् स्वरूप है।

जीव की पर्याय क्रमसर होती है वह भी जीव के साथ तद्रूप और तन्मय है और अजीव की पर्याय जो उस समय में होती है, वह अजीव के साथ तन्मय-तद्रूप-तादात्म्य है। आहाहा ! समझ में आया ? इस (टीका में) तो बड़ी व्याख्या है। यहाँ तो अपने थोड़ा कहना था। गाथा की व्याख्या लंबी है। यहाँ तो थोड़ी क्रमबद्ध की व्याख्या कही। क्रम नियमित यहाँ निकाला है।

कोई एक शास्त्री हैं (वे कहते हैं) कि, क्रमबद्ध शब्द शास्त्र में नहीं है। ये तो सोनगढ़वालों ने निकाला है। लेकिन अब सुना है कि नरम हो गये हैं। आहाहा ! भूल अनादि से है। उसमें क्या ? भूल हो उसकी विशेषता नहीं। भूल का निकाल करना वह विस्मयता है। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, अपनी पर्याय में प्रभुता क्रमसर होती है। परंतु यह प्रभुता पर्याय को बदल दे, ऐसी शक्ति की प्रभुता नहीं। ईश्वरता है, प्रभुता है, बल है, सामर्थ्य है परन्तु अनंत गुण की जिस समय, जो पर्याय होती है उसकी वह प्रभुता है। आहाहा ! अपने में बल बहुत है, प्रभुता है तो पर्याय आगे-पीछे करूँ, ऐसा स्वरूप है ही नहीं। समझ में आया ? ऐसी बातें (हैं) !

यह तो वीतराग त्रिलोकनाथ (जिनेश्वरदेव की वाणी है)। (और) दिगंबर संतों ने

तो केवलियों के पेट खोलकर रख दिये हैं, भाई !

श्रोता :- तो फिर इसमें पुरुषार्थ क्या है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- कहा न कि, ऐसी क्रमबद्ध की पर्याय का निर्णय करते हैं तो पर्याय से पर्याय में निर्णय नहीं होता। पर्याय द्रव्य के सन्मुख होती है तब पुरुषार्थ होते ही स्वरूप का निर्णय होता है। यह तो पहले कहा था। समझ में आया ? बापू ! यह तो भगवान की वाणी-उपदेश ऐसा है। आहाहा ! दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो, पूजा करो - ऐसा तो कुंभार भी कहते हैं। कुंभार किस को कहते हैं, समझ में आया ?

हमारा जन्म गाँव उमराला है। यहाँ से ११ मील है। उस समय पाँच हजार की बस्ती थी। हम तो १३ वर्ष वहाँ रहे। हमारे गाँव में रिवाज था। श्रावण सुदी एकम आये तो सेठ लोग कुंभार, घांची के पास पाँच-पाँच सुपारी लेकर जाये। वे पाँच सुपारी लेकर जाये तो उनको ख्याल आ जाये कि, ये सेठ लोगों के पर्युषण आने की तैयारी है। वे पाँच सुपारी दे तो श्रावण सुद एकम से घाणी (तिलहन सरसों पेलने का यंत्र) बंद। मुसलमान घांची की घाणी बंद कर दे। कुम्हार निंभाडा (मटके बनाने का चक्का) (बंद कर दे)। समझ में आया ? ऐसा रिवाज था। ये तो कुम्हार भी छूट्टी रखते हैं। एक महीना और पाँच दिन निंभाडा नहीं करना, घाणी नहीं करना, और बाद में भी शर्त चलती थी कि, भादो सुदी पंचमी तक तो (धंधा शुरू) नहीं करे। बाद में कौन पहले शुरू करता है ? (ऐसा देखते थे)। (उसमें) छठ, सप्तमी, अष्टमी चली जाये। हमारे गाँव में ऐसा चलता था। अरे...! वैसी घाणी पेलना तो मुसलमान भी बंद कर दे और कुम्हार निंभाडा बंद कर दे। ये कोई नयी चीज़ है ? समझ में आया ? वैसा तो मुसलमान भी करते हैं। आहाहा !

यहाँ तो तीनलोक के नाथ की वाणी तो जिसको अंदर में आत्मा का ध्यान करना हो उसके लिये है। ये दया पालो, व्रत करो ऐसा नहीं। उसे ज्ञान में जानने में आता है, परंतु वह जानने के लिये आता है। वह चीज करने लायक है, इसलिये आता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया ?

(यहाँ) कहते हैं कि, प्रभुता की शक्ति अपने अखण्ड प्रताप से शोभित है, आहाहा ! उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम की शक्ति के सहारे, उसका रूप (होने से) अनंत गुण की प्रभुता में जिस समय में जो पर्याय स्वतंत्ररूप से उत्पन्न होती है, उससे वह शोभायमान है। उसका प्रताप कोई खण्ड कर सके, फेरफार कर सके और स्वतंत्रता को कोई परतंत्र कर दे, ऐसी किसी की ताकत जगत में है नहीं। ऐसी बात है, भाई !

श्रोता :- हम जल्दी मोक्ष में नहीं जा सकते ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- किसने कहा (जल्दी नहीं जा सकते) ? जल्दी, एक समय में जा सकते हैं। अपने स्वभाव सन्मुख का जोर दिया तो उस समय में केवलज्ञान होने के समय तो केवलज्ञान होगा ही। आहाहा !

श्रोता :- उसके लिये क्या शर्त है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- शर्त कही न ! अंदर पुरुषार्थ करे तो (होगा)। आहाहा ! ऐसा वीतराग का मार्ग, अरे...! सुनने को नहीं मिले। अरे...! वह क्या करे ? अरे...! दुःखी प्राणी चार गति में-घाणी में (तिलहन सरसों पेलने का यंत्र) तिल को पेलते हैं, वैसे अनादि से आत्मा राग-द्वेष में पेला जाता है। राग और द्वेष में आनंद को पेल देता है।

यहाँ कहते हैं कि, जहाँ क्रमबद्ध का निर्णय हुआ तो उसको आनंद की पर्याय उत्पन्न होती है उसका निर्णय द्रव्य पर जाता है। समझ में आया ? उसकी पर्याय में क्रमबद्ध के निश्चय के काल में द्रव्य स्वभाव पर दृष्टि होने से क्रमबद्ध में आनंद की पर्याय का क्रम है, आहाहा ! सूक्ष्म बातें हैं, समझ में आया ? भाषा तो बहुत सादी है। भाव भले सूक्ष्म हो, आहाहा ! प्रभुत्व शक्ति की ऐसी व्याख्या नहीं (है) कि, जो पर्याय होनेवाली है उसे न करे और दूसरी पर्याय उत्पन्न हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

पहले एकबार कहा था। हमारे सज्झाय आती थी। श्वेताम्बर में चार सज्झाय आती है। एक-एक सज्झाय की किताब में २००-२५० सज्झायमाला और एक-एक सज्झाय में ८-१०-१५-२० श्लोक (होते हैं)। ऐसी एक-एक करके चार सज्झायमाला है। हमको तो गृहस्थाश्रम में निवृत्ति थी ना। पिताजी की दुकान थी। बाद में मैं भी दुकान चलाता था। (लेकिन) निवृत्ति थी। तो चारों पुस्तके पढ़ीं। समझ में आया ? उसमें भी यह आया था। '**सहजानंदी रे आत्मा, सुतो कांई निश्चिंत रे,**' प्रभु ! तूने आत्मा की चिंता कैसे छोड़ दी ? और तू राग और पुण्य-पाप की चिंता में खो गया। आहाहा ! '**सहजानंदी रे आत्मा, सुतो कांई निश्चिंत रे, मोह तणा रणिया भमे**' राग और पुण्य-पाप मेरा है (ऐसा) मोह का रंग (वह) तेरा बड़ा कर्जा है। आहाहा ! '**मोह तणा रणिया भमे, जाग, जाग रे मतिवंत रे...**' अरे प्रभु ! जाग न अब ! अनादि से राग में सोया है। ''**जाग जाग रे मतिवंत रे, लूंटे जगतना जंत रे।**' स्त्री कहे कि, 'हमसे क्यों शादी की थी ? हम जवान औरत है और तुम (हमारा) भोग लेते नहीं हो। छोड़कर बैठे हो, तो (कोई) वृद्ध के साथ शादी करनी थी न!' ऐसा कहे। समझ में आया ? '**लूंटे जगतना जंत रे।**' सब लूटनेवाले इकट्ठे हुए हैं। नियमसार में पाठ है। धुतारे (ठग) की टोली तुझे मिली है। स्त्री, पुत्र, कुटुंब सब धुतारे की टोली मिली है। आजीविका के लिये धुतारे की टोली मिली है। (वे ऐसा

कहते हैं) हमारा कुछ साधन नहीं किया। हमें बराबर वस्त्र देना, गहने लाना (यह कुछ नहीं किया)। गहने समझे न ? ये गाय और घोड़े को गहने पहनाते हो और हमको कुछ नहीं ? ऐसा कहकर तुझे ताना मारकर लूटारे तुजे लूटेंगे। सारी दुनिया को देखा है, नाचे नहीं है परंतु नाचनेवाले को देखा तो है। आहाहा ! `**लूंटे जगतना जंत, विरला कोई उगरंत**' ऐसा शब्द उसमें है। कोई विरल उगरते (बचते) हैं (और) अपने स्वभाव के साधन में जाते हैं। `**सहजानंदी रे आतमा।**' आहाहा ! वाचन में एक यह बात आयी थी और एक दूसरी बात भी आयी थी। `केवळी आगळ रही गयो कोरो' कोरा समझे ? तुम समवसरण में केवलज्ञानी के पास गये थे फिर भी लुखा रह गया। शून्य-रिक्त आ गया। समझ में आया ?

हमारा तो श्वेताम्बर शास्त्र का अभ्यास था। घर की दुकान थी, निवृत्ति थी और घर में छोटी उम्र में (हमको) भगत कहते थे। हम दुकान पर बैठते थे। बाद में भागीदार दुकान पर आये तो हम शास्त्र पढ़ते थे। वहाँ यह पढ़ते थे। आहाहा ! अरे...! इस जगत के प्राणी तुझे लूट रहे हैं, भाई ! तेरी चीज की समझ के बिना तेरा माहात्म्य तुझे आता नहीं। अंदर आनंद का नाथ भरा है, वहाँ आनंद मानता नहीं और पर में - लूटारों में आनंद मानता है, आहाहा !

यहाँ कहते हैं, अपने तो आज वह लेना था कि, क्रमबद्ध में पुरुषार्थ कहाँ रहा ? जिस समय में जो (पर्याय) नियत क्रम से होगी और भगवान ने देखा वैसा होगा। भगवान तो ज्ञायक हैं, वे तेरी पर्याय के कर्ता नहीं हैं। वे तो निमित्त हैं। लोकालोक में केवलज्ञान निमित्त है और केवलज्ञान में लोकालोक निमित्त है। वहाँ केवलज्ञान की पर्याय को लोकालोक ने बनाया है ? और लोकालोक केवलज्ञान की पर्याय से बना है ? क्या (कहा) समझमें आया ? सर्वविशुद्ध (अधिकार में) यह बात है कि, केवलज्ञान की पर्याय लोकालोक को निमित्त है। निमित्त का अर्थ उपस्थिति थी परंतु केवलज्ञान की पर्याय ने लोकालोक उत्पन्न नहीं किया। वैसे लोकालोक केवलज्ञान की पर्याय में निमित्त है - तो लोकालोक ने केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न की है, ऐसा नहीं है। आहाहा ! निमित्त का अर्थ (संयोग में पदार्थ) है, इतनी सी बात है। इससे पर में कुछ होता है, (ऐसा नहीं है)।

यह भी थोड़ी गड़बड़ है ना अभी ? `निमित्त से होता है, कभी निमित्त से होता है' बिलकुल झूठ बात है। समझ में आया ? यह क्रमबद्ध की व्याख्या, निमित्त से होता है, व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसी पाँच बात में (विरोध) है। अब छठ्ठी बात अभी निकली है कि, पर्याय में अशुद्धता हो तो द्रव्य भी अशुद्ध हो जाता है। कहते हैं कि, `पर्याय में जब शुभाशुभ भाव आदि की अशुद्धता हो तो द्रव्य भी अशुद्ध हो जाता है।' तीन काल

में नहीं (होता)। द्रव्य तो तीन काल में शुद्ध परमात्मरूप बिराज रहा है। पर्याय में अशुद्धता हो तो वह क्षणिक पर्याय की है। द्रव्य में अशुद्धता कहाँ से घुस गई ? पंचाध्यायीमें से ऐसा अर्थ निकाला है। पंचाध्यायी में तो ऐसा एक श्लोक है कि, शुभभाव दुष्ट है। दुष्ट पुरुष की भाँति शुभभाव दुष्ट है। ऐसा श्लोक है। उसका अर्थ क्या है ? और कोई विद्वान ऐसा कहते हैं कि, शुभभाव हो तो मोक्ष का मार्ग है। ऐसा अभी आया है। कहो अभी ऐसा होता है क्या ? पंचाध्यायी में एक श्लोक ऐसा है कि, शुभभाव दुष्ट पुरुष की भाँति दुष्ट है। दुष्ट पुरुष का उपदेश जैसे दुष्ट है, वैसे शुभभाव दुष्ट है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, तेरी प्रभुता शक्ति को धरनेवाला भगवान पर जैसे ही दृष्टि पड़ती है तो क्रमसर केवलज्ञान आदि पर्याय जिस समय होनेवाली है, वह होगी ही। ये तेरा पुरुषार्थ है। समझ में आया ? विशेष कहेंगे....

भाई ! तुझे पता ही नहीं, तेरी वस्तु तो अंतर में अभेद ध्रुव...ध्रुव...ध्रुव सामान्य एकरूप चली आ रही है। चाहे जितनी पर्यायें आए, परंतु वस्तु तो सामान्य एकरूप ही चली आती है। ऐसे एकरूप की दृष्टि करने पर, उसमें रहे हुए गुणों के भेद का भी लक्ष्य छूट जाता है तथा भेद व गुण-विशेषता का लक्ष्य छूटने और अभेद पर दृष्टि पड़ने पर तुझे आनंद का आस्वादन होगा; तभी तुझे धर्म होगा।

(परमागमसार - ५९६)

प्रवचन नं. १०
शक्ति-८, ९ दि. २०-०८-१९७७
सर्वभावव्यापकैकभावरूपा विभुत्वशक्तिः।।८।।
विश्वविश्वसामान्यभावपरिणतात्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्वशक्तिः।।९।।

समयसार, शक्ति का अधिकार चलता है। सातवीं प्रभुत्व शक्ति आ गई। क्या कहते हैं ? जो यह आत्म पदार्थ है - आत्म वस्तु, वह तो कर्म, शरीर आदि से भिन्न चीज़ है। अनादि से भिन्न चीज़ है और अंदर में पुण्य-पाप का विकल्प जो राग है, उससे भी भिन्न है, परंतु अपनी अनंती शक्ति से अभिन्न है। आहाहा ! समझ में आया ? यह शक्ति का वर्णन है। आत्मद्रव्य है उसमें अनंत शक्तियाँ हैं। सात शक्ति तो आ गई। एक-एक शक्ति में अनंती शक्ति है और एक-एक शक्ति अनंत पर्यायरूप होती है। ऐसी (जो) अनंत शक्ति (है) इसमें आज विभु शक्ति आती है। सात तो हो गई। ये शक्तियों का पार नहीं, (ऐसी) अपार चीज़ है।

``**सर्व भावों में...**'' क्या कहते हैं ? देखो ! आत्म वस्तु है इसमें सर्व भाव नाम अनंत शक्तियाँ हैं। उसे भाव कहते हैं। ज्ञान, दर्शन, आनंद, जीवतर, चैतन्य ऐसी अनंत शक्ति को यहाँ भाव कहते हैं। आहाहा ! भाव में चार प्रकार हैं। द्रव्य को भाव कहते हैं, शक्ति को भाव कहते हैं, पर्याय को भाव कहते हैं और राग को भी भाव कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ त्रिकाली शक्ति को भाव कहते हैं। जैसे आत्मा त्रिकाल है वैसे ज्ञान, प्रभुत्व शक्ति आदि अनंत शक्तियों को यहाँ भाव कहते हैं। कहते हैं कि, ``**सर्व भावों में व्यापक...**'' अन्य (लोग) ऐसा कहते हैं कि, यह आत्मा सर्व व्यापक है। (लेकिन) ऐसा नहीं (है)। परंतु आत्मा अनंत शक्ति में व्यापक है, यह विभु है।

भक्तामर (स्तोत्र में) विभु आता है। यह प्रश्न एकबार चला था। (एक) वेदांत के

अभ्यासी थे। लगभग छट्ठी साल होगी, तो (उन्होंने कहा) यह आत्मा विभु है न ? (ऐसा) विभु का प्रश्न हुआ। विभु तो सर्व व्यापक है। (लेकिन) ऐसे नहीं। यह विभु तो भक्तामर में आया है वह विभु शक्ति की बात है।

अनंत शक्ति में ``**सर्व भावों में व्यापक ऐसे एक भावरूप...**'' सर्व भावों में व्यापक (है)। परंतु विभु शक्ति एकरूप है। सर्व में व्यापक है तो अनंत रूप नहीं हो गई। समझ में आया ? ``**जैसे, ज्ञानरूपी एक भाव सर्व भावों में व्याप्त होता है...**'' आहाहा ! ज्ञान शक्ति सर्व भाव में व्यापती है। ऐसे दर्शन शक्ति सर्व भाव में व्यापती है। ऐसे आनंद शक्ति सर्व भाव में व्यापती है, ऐसे वीर्य शक्ति सर्व भाव में व्यापती है। हाँ ज्ञान का दृष्टांत दिया है। ज्ञान सर्व भाव में व्यापता है। अनंत शक्तियाँ है उसमें ज्ञान सर्वांग तिरछा (है)। पर्याय है यह क्रमसर है और शक्ति है यह तिरछी - एक साथ है। ज्ञान सर्व भाव में वर्तमान में अनंत शक्ति में व्यापक है।

यहाँ बतलाना यह है कि, शक्ति है ऐसा ज्ञान कराना बाद में शक्तिवान और शक्ति का भेद निकालकर (अभेद की दृष्टि करना)। यह शक्तिवान आत्मा है, वह भी व्यवहार हुआ। निश्चय अकेला अभेद हुआ। सूक्ष्म बात है। `यह शक्तिवान आत्मा' ऐसा भेद हो गया। शक्ति बतलाते हैं (तो) उसकी शक्ति का - स्वभाव का सामर्थ्य बतलाते हैं। द्रव्य शक्तिवान (है और) गुण शक्ति (है)। शक्ति और शक्तिवान का भेद करना वह भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई !

सम्यग्दर्शन का विषय तो शक्तिवान जो अभेद अकेला है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। जिसको सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो उसको शक्तियाँ हैं ऐसे जानना, परंतु शक्ति और शक्तिवान ऐसा भेद भी दृष्टि में से छोड़ देना, आहाहा !

एक दूसरी बात कि, जो यह ज्ञान शक्ति है वह ज्ञान सर्व में व्यापक है। ज्ञान की क्रमबद्ध पर्याय होती है। ज्ञान में भी क्रमसर पर्याय होती है। एक के बाद एक, एक के बाद एक। तो सर्व गुण की पर्याय भी एक के बाद एक क्रमबद्ध होती है। कुछ लोग तो ऐसा कहते हैं, केवलज्ञान की अपेक्षा से नियत क्रमसर पर्याय है, वह बराबर है। केवलज्ञान है (उसकी अपेक्षा से) पर्याय क्रमसर उठती है, उस अपेक्षा से क्रमबद्ध बराबर है। परंतु श्रुतज्ञान की अपेक्षा से क्रमबद्ध बराबर नहीं, ऐसा प्रश्न था। खाणिया चर्चा में है। समझ में आयाा ?

यहाँ तो भावश्रुतज्ञान की बात चलती है। आहाहा ! शक्ति और शक्तिवान का भेद छोड़कर दृष्टि होती है तब उसको भावश्रुतज्ञान होता है। यह भावश्रुतज्ञान भी क्रमबद्ध को मानता है। क्योंकि भावश्रुतज्ञान केवलज्ञान के अनुसारी होता है। केवलज्ञान मानते हैं

कि (पर्याय) क्रमसर होती है और श्रुतज्ञान में ऐसा नहीं, ऐसा पंडित लोग कहते हैं। खाणिया चर्चा में ऐसा (प्रश्न) ऊठाया है।

यहाँ तो क्रमबद्ध की बात पहले से हो गई थी। उसकी चर्चा तो बाद में हुई। यह तो २० वर्ष पहले काशी में कहा था। भैया ! प्रत्येक द्रव्य की पर्याय जिस समय में होती है उसी समय में (वह होती है) और दूसरे समय में दूसरी (होती है)। क्रमबद्ध (पर्याय) है इसमें आगे-पीछे (नहीं होती)। आगे-पीछे की व्याख्या क्या ? समझ में आया ? जैसे मोती की माला में जहाँ-जहाँ मोती है, वहाँ-वहाँ है; वह आगे-पीछे होवे तो मोती का हार तूट जायेगा। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है ! (क्रमबद्ध की बात सुनकर) विद्वानों ने विरोध किया कि, क्रमबद्ध नहीं (है)। (पर्याय) एक के बाद एक होगी परंतु एक के बाद यही होगी और यही होगी, ऐसा नहीं। एक के बाद एक होनेवाली है वही होगी। समझ में आया ? क्षणिक उपादान की अवस्था क्रमसर जो पर्याय में होती है, वह होगी।

(आत्मा में) अनंत शक्तियाँ हैं, उसमें विभुत्व शक्ति व्याप्त है तो अनंत शक्तियाँ क्रमबद्ध परिणमन करती हैं, आहाहा ! फिर भी वह शक्ति और शक्तिवान (ऐसे भेद की) दृष्टि छोड़कर अभेद की दृष्टि करना। निश्चय से तो त्रिकाली शक्ति और शक्तिवान ऐसा ज्ञान की पर्याय में ज्ञेयरूप आया और प्रतीत में भी आया तो यह प्रतीत की पर्याय द्रव्य-गुण ने की, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? विभु शक्ति है यह सर्व गुण में व्यापक है तो ज्ञान भी विभु हुआ। और उसकी पर्याय में (जब) क्रमसर पर्याय होती है तो अनंत गुण की (पर्याय) साथ में क्रमसर होती है। (विभुत्व शक्ति) व्यापक है न ? विभुत्व पर्याय भी अनंत पर्याय में व्यापक है। आहाहा ! ऐसा मार्ग (है) ! द्रव्य, गुण और पर्याय तीन चीज़ है। (उसमें) द्रव्य जो है वह तो पूर्ण शक्तिवान है और गुण है, यह शक्ति है और उसका बदलना -पलटना - परिणमन होना यह पर्याय है। यहाँ तो कहते हैं कि, यह विभुत्व शक्ति सर्व गुण में व्यापक है तो पर्याय में भी जो अनंत पर्याय होती हैं, उसमें विभु शक्ति पर्याय भी व्यापक है।

कोई ऐसा कहे कि, क्रमबद्ध पर्याय में तो नियत हो जायेगा। तो (यहाँ) कहते हैं कि, नियत ही है। (लेकिन) किस अपेक्षा से ? जैसे द्रव्य, गुण नियत है कि नहीं ? निश्चय है कि व्यवहार है ? द्रव्य और शक्तियाँ यह निश्चय है और नियत है तो पर्याय भी नियत है। समझ में आया ? पर्याय भी नियत (अर्थात्) जिस समय जो होगी वह होगी। क्रमबद्ध का निर्णय करनेवाले की दृष्टि ज्ञायक ऊपर जाती है, आहाहा ! शुद्ध स्वरूप त्रिकाल भगवान उस पर दृष्टि जाये तब उसको क्रमबद्ध का निर्णय यथार्थ होता है। समझ में आया ?

यह पंडित लोग ऐसा कहते हैं कि, केवलज्ञान की अपेक्षा से तो नियत क्रम है, वह (बात) तो बराबर है। परंतु श्रुतज्ञान की अपेक्षा से नहीं। क्योंकि छद्मस्थ का श्रुतज्ञान है और अल्प ज्ञान है तो वह तो जिस समय पुरुषार्थ करेगा उस समय में होगी। क्रमसर होगी ऐसा उसमें नहीं। ऐसी बात झूठी है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है। अंदर पुरुषार्थ करना पड़ेगा, ऐसा नहीं चलता।

श्रोता : अमृतचंद्राचार्यदेव ने अनियतनय कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ४७ नय में अनियत का अर्थ क्या ? कालनय और अकालनय का (स्पष्टीकरण) कल किया था। कालनय से मोक्ष है और अकालनय से मोक्ष है, उसका अर्थ क्या ? नियत के साथ अनियत स्वभाव, पुरुषार्थ आदि (है) उसको अनियत कहते हैं। आगे-पीछे होता है, उसका प्रश्न है ही नहीं।

एक प्रश्न तो यह आया है। पंचास्तिकाय में १५५ गाथा है (उसमें) नियत-अनियत दो हैं, (ऐसा लिखा है)। पंडित लोग ऐसा कहते हैं कि, देखो ! `नियत भी है और अनियत भी है'। तो वहाँ ऐसा अर्थ नहीं है। वहाँ तो नियत नाम गुण की पर्याय जो होती है, वह नियत है। समझ में आया ? और दूसरी पर्याय जो अंदर नियत है (वह) तो नियत है परंतु स्वभाव की पर्याय, पुरुषार्थ की पर्याय अनियत है। अनियत नाम वह नियत नहीं। परंतु है तो नियत में। समझ में आया ?

पंचास्तिकाय में १५५ (गाथा) देखो।

``**जीवो सहावणियदो अणियदगुणपज्जओघ परसमओ।**

जदि कुणदि सगं समयं पब्भस्सदि कम्मबंधादो।।१५५।।''

``**निजभाव नियत अनियत गुणपर्याय...**'' ऐसा पाठ है। उसका अर्थ ऐसा करते हैं कि, पर्याय अनियत है और नियत भी है, दोनों हैं। ऐसा पाठ यहाँ है नहीं। यहाँ क्या है ? देखो ! ``**जीव, (द्रव्य अपेक्षा ए) स्वभावनियत होवा छतां...**'' अनियत गुण-पर्याय से अनियत है। यानी गुण से जो एकरूप वस्तु है उसकी पर्याय अनियत (है)। यानी विकारी पर्याय जो होती है उसको अनियत कहते हैं और निर्विकारी (पर्याय) और गुण उसको नियत कहते हैं। ऐसा अर्थ है। उसमें नियत - अनियत शब्द पड़ा है। नियत का अर्थ स्वभाविक पर्याय (और) अनियत का अर्थ विभाविक पर्याय। नियत - अनियत का अर्थ क्रम और अक्रम, ऐसा है नहीं।

``**संसारी जीव, (द्रव्य अपेक्षाए) ज्ञानदर्शन मां अवस्थित होवाने लीधे स्वभाव मां नियत (- निश्चलपणे रहेलो) होवा छतां,...**'' स्वभाव तो नियत है। ``**ज्यारे अनादि मोहनीय ना उदय ने अनुसरी ने परिणति करवाने लीधे उपरक्त उपयोगवाळो (- अशुद्ध उपयोगवाळो) होय**

छे त्यारे (पोते) भावो नुं विश्वरूपपणुं (- अनेकरूपपणुं) ग्रह्युं होवाने लीधे तेने जे अनियतगुणपर्यायपणुं होय छे ते परसमय अर्थात् परचारित्र छे।" उसे अनियत गुणपर्याय कहने में आता है। विकारी पर्याय को अनियत कहने में आता है। अनियत का अर्थ अक्रम, ऐसे नहीं। शास्त्र के अर्थ करने में बड़ी मुश्किल है। समझ में आया ? (इसका आधार देकर कहते हैं) देखो ! १५५ गाथा में अनियत (कहा) है। `अनियत यानी क्रम नही, अक्रम है। क्रम और अक्रम दोनों अनेकांत हैं', ऐसा अर्थ है ही नहीं।

अनियत नाम पानी का स्वभाव ठंडा है, यह नियत है। (पानी) उष्ण है - यह अनियत है। यहाँ ऐसी बात है। बहुत सूक्ष्म बात है, बापू ! यहाँ तो एक-एक श्लोक का अर्थ हो गया है। परंतु लोगों को (स्वयं के) पूर्व के आग्रह के (कारण) वह बात थी नहीं।

जैन तत्त्व मिमांसा में (सामनेवाले पक्ष ने दलिल की है), जब से प्रमुखपने क्रमबद्ध की बात बाहर आयी है, तब से केवलज्ञान को माननेवाले भी शंका करने लगे। और खाणिया चर्चा में भी (सामनेवाले पक्ष ने) ऐसा कहा कि, जिनवाणी और महापुरुष ने जो क्रमबद्ध का स्वतंत्रता का ढ़िंढ़ोरा पीटा है, तब से जगत में केवलज्ञान में भी शंका हो गयी कि, केवलज्ञान है वह जहाँ जो पर्याय होगी ऐसा देखते हैं। वह पर्याय उस समय होगी। तो उसमें तो क्रमबद्ध हो गया। और खाणिया चर्चा में पंडित ने तो कबूल किया है कि, केवलज्ञान के हिसाब से तो क्रमनियत है ही परंतु श्रुतज्ञान की अपेक्षा से (क्रमबद्ध) नहीं है। ऐसा कहते हैं।

(उसके सामने) प्रश्न है कि, श्रुतज्ञान केवलज्ञान के अनुसारी का है कि कल्पना का है ? समझ में आया ? अगर केवलज्ञान के अनुसारी का श्रुतज्ञान है तो केवलज्ञान मानता है ऐसा श्रुतज्ञान भी जानता - मानता है। आहाहा ! अरेरे...! मूल बात की खबर नहीं और धर्म...धर्म...धर्म... हो गया। बाहर में शुभ क्रिया कर ली (तो) धर्म हो गया। धूल में भी धर्म नहीं है, भाई ! आहाहा ! ऐसे शुभभाव तो अभवी ने भी अनंत बार किये हैं। वह तो बंध का कारण है। शक्ति और शक्तिवान जैसे नियत है वैसे पर्याय भी नियत है। ऐसा निर्णय करनेवाला - द्रव्य पर दृष्टि करने से ऐसा निर्णय होता है, आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है।

इसमें अभ्यास करना पड़ेगा, ऐसे अद्धर से (ऊपर-ऊपर से) नहीं चलता। आहाहा ! अरे...! ऐसा मनुष्यपना मिला (उसमें) सर्वज्ञ वीतराग जिनेश्वरदेव क्या आज्ञा करते हैं और कैसा वस्तु का स्वरूप है ? ऐसा निर्णय न करे तो उसका क्या होगा ?

श्रोता : अभ्यास का क्रम आयेगा तब पुरुषार्थ करेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभ्यास के क्रम का पुरुषार्थ करेगा तब क्रम आयेगा। समझ में आया ? काललब्धि है कि नहीं ? शास्त्र में काललब्धि है कि, जिस समय में (पर्याय) होगी वह काललब्धि है। स्वामी कार्तिकेय में ऐसा पाठ है। छओं द्रव्य की काललब्धि कही है। काललब्धि का अर्थ छओं द्रव्य की पर्याय जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है वह होगी। यह काललब्धि है। छओं द्रव्य की (बात है)। समझ में आया ? और प्रवचनसार में भी १०२ गाथा में ऐसा कहा कि, ज्ञेय की जिस समय, जो पर्याय होनेवाली (है) (वह उसका) जन्मक्षण (है)। उसकी उत्पत्ति का वह काल है और ९९ गाथा में ज्ञेय अधिकार में ज्ञेय का स्वभाव लिया। अपने-अपने अवसरे (काल में) पर्याय होगी। अपने अवसर (काल) सिवाय आगे-पीछे नहीं होगी, ऐसा वहाँ लिया है।

अब यहाँ दूसरी बात, कि जब ऐसी पर्याय में काललब्धि होती है तो काललब्धि का ज्ञान किसको होता है ? समझ में आया ? मोक्षमार्ग प्रकाश के नवमे अध्याय में पाठ आाया है। शिष्य ने प्रश्न किया है, 'महाराज ! प्रभु ! काललब्धि होगी तब होगी ? पुरुषार्थ से होगा ? स्वभाव से होगा ? कर्म का अभाव होगा तो होगा। इसमें क्या है ?' तो उत्तर ऐसा दिया है कि, काललब्धि में भवीतव्यता कोई वस्तु नहीं है। ऐसा कहा है।

ऐसी प्रश्न चर्चा तो ५० वर्ष पहले ८३ की साल में चली थी। दामनगर में एक सेठ थे। गृहस्थ थे। सेठ कहे कि, '(अपने) काल में होगी... (अपने) काल में होगी, अपने पुरुषार्थ क्या करें ?' ऐसा कहा। हमने कहा टोडरमलजी क्या कहते हैं ? कि काललब्धि कोई भिन्न वस्तु नहीं। जिस समय में होनेवाली होगी उसका नाम काललब्धि। भवितव्यता में जिस समय में भाव होनेवाला है वह भवितव्यता। परंतु वह कोई चीज़ नहीं है। जब आत्मा अपना स्वभाव सन्मुख पुरुषार्थ करके कार्य करता है तो काललब्धि का ज्ञान उसे होता है और उस समय में काल आया उसका ज्ञान उसे है। काललब्धि की धारणा करनी है ? न्याय समझ में आया, भाई ? सूक्ष्म है, भैया !

पंचास्तिकाय में १७२ गाथा में ऐसा लिया कि, चारों अनुयोग का तात्पर्य वीतरागता है। (आता) है ? तो वीतरागता कब होगी ? कि द्रव्य का आश्रय करें तो वीतरागता होगी। क्या कहा ? शांति से समझना, बापू ! यह वीतराग का मार्ग तो सूक्ष्म है। द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग, कथानुयोग चारों अनुयोग का सार तो १७२ गाथा में वीतरागता कहा। तो वीतरागता कैसे उत्पन्न होती है। राग के आश्रय से होती है ? पर्याय के आश्रय से होती है ? उसका अर्थ ही यह हो गया कि, स्व का आश्रय करे तो वीतरागता होगी। चारों अनुयोग में स्व का आश्रय करना, वह बात चलती है। समझ में आया ?

थोड़ी सूक्ष्म बात है। परंतु भाई ! यह समझना पड़ेगा, बापू ! यह समझे बिना सच्चा ज्ञान भी नहीं मिलेगा तो दृष्टि तो कहाँ से हो ? आहाहा ! व्यावहारिक ज्ञान जहाँ झूठा है (वहाँ श्रद्धान सच्चा कहाँ से होगा ?) पर से होता है, अक्रम से होता है, यह तो ज्ञान ही झूठा है। परलक्षी ज्ञान भी झूठा है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, पर्याय में जो अनियत कहा वह तो विकारी पर्याय की अपेक्षा से कहा। आगे-पीछे होता है, उस अपेक्षा से अनियत नहीं कहा। ५० वर्ष पहले बड़ी चर्चा हुई थी। दामनगर में नगरसेठ थे। वहाँ हमारा चातुर्मास रहता था। वहाँ दिगंबर पुस्तकें बहुत रखते थे। (लेकिन) श्रद्धा और दृष्टि विपरीत थी। उनके साथ बहुत चर्चा हुई कि, काललब्धि है न ? तब (कार्य) होगा। २४ तीर्थंकर उसके काल में होते हैं, चक्रवर्ती उसके काल में होते हैं। ऐसा प्रश्न आया । तो (हमने) कहा, भाई ! काललब्धि है तो काललब्धि का अर्थ क्या ? काललब्धि है उसका ज्ञान किसको होता है ? न्याय से समझना चाहिए ना ? कि जिसको ज्ञायक स्वरूप भगवान आत्मा (कि दृष्टि होती है, उसको काललब्धि का सच्चा ज्ञान होता है)।

१७२ गाथा में कहा न ? सारे शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है। सारा शास्त्र १२ अंग और १४ पूर्व का तात्पर्य वीतरागता है। तो वीतरागता होगी कब ? कि जब वीतराग स्वरूप भगवान आत्मा है (उसका आश्रय ले तब वीतरागता होगी)। आहाहा ! सबेरे कहा था न ? ``**शुद्धता विचारे ध्यावे, शुद्धता में केली करे, शुद्धता में मगन रहें, अमृतधारा वरसे**'' शुद्ध स्वरूप भगवान आत्मा ! उसका आश्रय ले तो वीतरागता उत्पन्न होगी। यह चारों अनुयोगों और सारे शास्त्रों का तात्पर्य द्रव्य स्वरूप का आश्रय लेना, यह तात्पर्य है। समझ में आया ? जब आत्मा अपने पुरुषार्थ से द्रव्य का आश्रय लेता है तब वीतरागता उत्पन्न हुई। सम्यग्दर्शन यह वीतराग पर्याय है। उसमें भी बहुत तकरार है।

सम्यग्दर्शन सराग समकित है, (ऐसा कहते हैं)। वह तो समकिती को चारित्र के दोष सहित कहा। समकित तो वीतराग पर्याय ही है। चारित्र में राग है तो उसको सराग समकित कहा। परंतु समकित, सराग है ही नहीं। समकित तो वीतराग पर्याय ही है। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि, काललब्धि के ज्ञान की धारणा कर ली परंतु यह काललब्धि का यथार्थ ज्ञान किसको होता है ? कि जिसने द्रव्य स्वभाव, शुद्ध चैतन्यघन उसका अवलंबन लिया तो (उसे) वीतरागता उत्पन्न होती है। सारे शास्त्रों का तात्पर्य तो स्व का अवलंबन लेना, स्व का आश्रय लेना यह मार्ग है। आहाहा ! जब अवलंबन लिया तब

पर्याय में वीतरागता, सम्यग्दर्शन आदि हुआ तो काललब्धि जानी कि इस समय में (पर्याय) होनेवाली थी, तो जान लिया। और भवितव्यता नाम सम्यग्दर्शन आदि के भाव हुए वह भवितव्यता है, भव है। यह भाव भी तब जानने में आया कि, इस समय में यही भाव होनेवाला था और इस समय में यही काललब्धि थी। स्वभाव की ओर पुरुषार्थ करनेवाले को उसका यथार्थ ज्ञान होता है। आहाहा !

अरे...भाई ! भगवान के चारों अनुयोगों में (और) १२ अंग और १४ पूर्व में यह कहते हैं। वीतरागता बतलाते हैं। तू वीतराग है न ? तो वीतरागता बतलाते हैं। शुरूआत से वीतरागता उत्पन्न कैसे हो ? ये बतलाते हैं। यह वीतरागता - राग रहित वीतरागता कहाँ से उत्पन्न होती है ? कि 'जिन सोहि है आत्मा, अन्य सोहि है कर्म, यही वचन से समझ ले, जिन प्रवचन का मर्म।' यहाँ तो अलग-अलग बात है। कभी सुनी न हो ऐसी बात है। दिगंबर वाडे में (संप्रदाय में) जन्म हुआ तो (फिर भी) कुछ खबर नहीं।

जयपुर में (एक) पंडित ऐसा कहते थे कि, दिगंबर में जन्म हुआ वह सम्यक्‌दृष्टि तो है ही। अब उसको चारित्र लेना, ऐसा कहते थे। अरे... भगवान ! प्रभु ! मोक्षमार्ग प्रकाशक में सातवें अधिकार में तो यह लिया है कि, जैन में जन्म हुआ, जैन में मानते हैं फिर भी सूक्ष्म मिथ्यात्व रह जाता है। पाँचवाँ अधिकार अन्यमत (निराकरण) का है। विशेषरूप से वेदांत, श्वेतांबर, स्थानकवासी सब अन्यमती हैं। जैनमत है ही नहीं। छट्ठे अधिकार में कुदेव, कुगुरु का, कुशास्त्र का लेख लिया। सातवें (अधिकार में) दिगंबर जैन में जन्म हुआ हो उसको भी मिथ्यात्व क्यों रहता है ? (यह बतलाते हैं)। समझ में आया ? आहाहा ! वाडे में (संप्रदाय में) जन्म हुआ तो क्या हुआ ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं, विभुत्व शक्ति के साथ में काललब्धि और क्रमबद्ध का ज्ञान होता है। समझ में आया ? क्योंकि विभु शक्ति अनंत गुण में व्यापक है। यह दृष्टांत दिया न ? ``**जैसे, ज्ञानरूपी एक भाव सर्व भावों में व्याप्त होता है।**'' तो पर्याय में अपना ज्ञान जब हुआ तो द्रव्य - गुण में - सब गुण में ज्ञान व्यापक है ही। (परंतु) पर्याय में भी व्यापक हुआ। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय के साथ ज्ञान व्यापक है। समझ में आया ? बात सूक्ष्म पड़े बापू ! (लेकिन) क्या करें ?

यह तो मिथ्यात्व जिसका मूल संसार है। मिथ्यात्व यही संसार है। बाद में राग-द्वेष और अविरतीभाव रहता है, वह तो अल्प संसार है। उसकी बात गिनने में नहीं आयी। आहाहा ! मिथ्यात्व संसार (है)। स्त्री, कुटुंब, परिवार, पैसा, लक्ष्मी यह संसार नहीं। वह तो बाहर की चीज़ है। संसार तो उसकी पर्याय में रहता है। भूल और अभूल, मोक्षमार्ग और भूल तो पर्याय में होती है। आहाहा ! (भूल और अभूल) पर में नहीं होती है, द्रव्य -

गुण में नहीं होती है। आहाहा ! अरे...! दिगंबर संतों ने बहुत स्पष्ट कर दिया है। परंतु अभ्यास नहीं और उस ओर की रुचि और झुकाव नहीं। बाहर में झुकाव है - यह किया और वह किया।

यहाँ कहते हैं कि, छओं द्रव्य की काललब्धि (होती है)। एक बात। प्रवचनसार में ज्ञेय अधिकार (है)। ज्ञेय शब्द यानी छ द्रव्य। ज्ञेय अधिकार में १०२ गाथा में ऐसा लिया, जिस समय जो पर्याय उत्पन्न होगी उसका जन्म क्षण - उत्पत्ति का वह काल है, आगे-पीछे नहीं, आहाहा ! ज्ञेय का ऐसा स्वभाव है। जयसेनआचार्य ने तो ऐसा लिया है कि, हम यह ज्ञेय अधिकार कहते हैं परंतु यह अधिकार समकित का है। आहाहा ! जिस समय जो पर्याय होगी वह उस समय में होगी, उसका वह जन्म क्षण है, ऐसा सम्यग्दृष्टि प्रतीत करते हैं। समझ में आया ? वैसे सम्यग्दर्शन का विषय भले ही अभेद (आत्मा) है। परंतु जब ज्ञान प्रधान समकित की व्याख्या हो तो प्रवचनसार में लिया है कि ज्ञान और ज्ञेय दोनों की यथार्थ प्रतीति उसका नाम सम्यग्दर्शन (है)। समझ में आया ? अकेले द्रव्य की अभेद दृष्टि - वह दृष्टि की अपेक्षा से बात है। परंतु जब ज्ञान प्रधान श्रद्धान कहना हो तो ज्ञान (अर्थात्) ज्ञायक और ज्ञेय दोनों की यथार्थ प्रतीति यह सम्यग्दर्शन है।

(प्रवचनसार में) चरणानुयोगसूचक चूलिका की २४२ गाथा है। ``**ज्ञेयतत्त्व अने ज्ञातृतत्त्व नी तथा प्रकारे (जेम छे तेम, यथार्थ) प्रतीति जेनुं लक्षण छे ते सम्यग्दर्शनपर्याय छे।**'' ज्ञान प्रधान श्रद्धान है ना ? दृष्टि प्रधान श्रद्धान में तो अकेले अभेद की दृष्टि (आती है)। समझ में आया ? प्रवचनसार में ज्ञान प्रधान (कथन) है। समयसार में दृष्टि प्रधान कथन है। तो कहते हैं कि, ज्ञेय तत्त्व - छ द्रव्य और ज्ञायक तत्त्व - ज्ञायक तत्त्व, उसकी तथा प्रकार से (अर्थात्), जैसे है वैसी यथार्थ प्रतीति जिसका लक्षण है यह सम्यग्दर्शन पर्याय है। आहाहा ! समझ में आया ? उसमें छओं द्रव्य के ज्ञेय स्वभाव में जिस समय जो पर्याय होगी, वह ज्ञेय का स्वभाव है। समझ में आया ? तो प्रवचनसार दूसरे अधिकार में आचार्य कहते हैं कि, हम समकित का अधिकार कहते हैं। समकित के अधिकार में ऐसा आया कि छः द्रव्य जो ज्ञेय हैं (उसकी) जिस समय जो (पर्याय) होगी सो होगी, ऐसा ज्ञेय का स्वभाव है। स्व और पर ज्ञेय की यथार्थ प्रतीति हो उसको सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा ! भैया ! बात ऐसी सूक्ष्म है। अभी तो बहुत गड़बड़ हो गई है। आहाहा ! और ``**ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृत्व नी तथा प्रकारे अनुभूति...**'' देखो ! यहाँ ज्ञान के अधिकार में अनुभूति ली है। समझ में आया ? पहले जो श्रीमद् में से लिया था वहाँ चारित्र की अनुभूति थी। `**अनुभव लक्ष प्रतीत**' तो लक्ष है यह ज्ञान की पर्याय, प्रतीत श्रद्धा की

पर्याय (और) अनुभव चारित्र की पर्याय।

यहाँ दूसरी (बात) है। यहाँ अनंत ज्ञेय तत्त्व और यह ज्ञायक तत्त्व। ``**तथा प्रकारे अनुभूति जेनुं लक्षण छे ते ज्ञानपर्याय छे।**'' ओहोहो ! उसका नाम सम्यक्ज्ञान की पर्याय - श्रुतज्ञान की पर्याय है। ज्ञेय में अपनी-अपनी पर्याय के काल में पर्याय होती है, ऐसा तो ज्ञेय का स्वभाव है और ऐसा स्वभाव नहीं माने तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? और ``**ज्ञेय अने ज्ञाता नी जे क्रियांतर थी निवृत्ति...**'' क्रियांतर यानी अनेरी क्रिया। (फूटनोट में) पहला बोल है - अन्य क्रिया। ज्ञेय और ज्ञाता अन्य क्रिया से निवृत्त हो उसके कारण होनेवाली जो दृष्टा-ज्ञाता आत्मतत्त्व में परिणति वह चारित्र पर्याय का लक्षण है। ज्ञान-दर्शन में रमणता वह चारित्र पर्याय है। महाव्रत, नग्नपणा वह कोई चारित्र नहीं। आहाहा ! है ? क्रियांतर - अनेरा राग (कि) जो विकार है, उससे निवृत्ति। शुभराग से भी निवृत्ति। क्रियांतर - अनेरी क्रिया से निवृत्ति। ऐसी स्वरूप में रमणता यह चारित्र है। आहाहा ! यह `**सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्राणी मोक्षमार्ग**' है। समझ में आया ?

श्रोता : सम्यग्दर्शन दो प्रकार का हुआ कि कथन दो प्रकार के हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, कथन दो प्रकार के हैं। ज्ञान प्रधान और श्रद्धा प्रधान। समझ में आया ? आहाहा ! यहाँ अपने ``**सर्वभावों में व्यापक ऐसे एक भावरूप विभुत्व शक्ति।**'' ये आठवीं शक्ति हुई। अब ९वीं (शक्ति)।

``**समस्त विश्व के सामान्यभाव को देखनेरूप से...**'' सर्वदर्शित्वशक्ति थोड़ी सूक्ष्म है। इसमें भी थोड़ा मर्म है कि, ``**समस्त विश्व के...**'' समस्त विश्व - सारा विश्व - सामान्यभाव (अर्थात्) सामान्यरूप से भेद किये बिना। यह जीव है और यह जड़ है, यह गुण है और (यह) गुणी है, पर्याय है, ऐसे भेद किये बिना। ``**समस्त विश्व के सामान्यभाव को देखनेरूप से (अर्थात् सर्व पदार्थों के समूहरूप लोकालोक को सत्तामात्र ग्रहण करनेरूप से) परिणमित ऐसे आत्मदर्शनमयी सर्वदर्शी शक्ति।**'' आहाहा ! क्या कहते हैं ? सामान्य जो पदार्थ (उसमें) `है' इतना (लेना है)। आत्मा है, गुण है, पर्याय है, `यह है' ऐसा भी नहीं। यहाँ तो समझ में `यह सत्ता है' ऐसा भी नहीं। ऐसा (भेद का) ज्ञान हो तो वह ज्ञान शक्ति हो गई। दर्शन से ऐसे (भेद) नहीं। (मात्र) `है' ऐसा दर्शन में होता (है)।

आत्मदर्शनमयी सर्वदर्शिशक्ति है न ? क्या कहते हैं ?कोई ऐसा कहते हैं ना कि, सर्व को देखना वह तो उपचार है. अपने सिवा पर को देखना वह सब उपचार है। यहाँ कहते हैं कि, ऐसा नहीं है। एक बात ऐसी है कि, अपनी दर्शनशक्ति का अपने में दर्शनरूप परिणमन हो तो उसमें सर्व सत्ता का देखना आता है। परंतु देखने में सर्व आया तो वह पर का उपचार हुआ - (कि) सर्व है, तो ऐसा नहीं है। सर्वदर्शन में आत्मदर्शनमयी

शक्ति है। थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई !

सर्व शब्द पड़ा है न ? सर्वदर्शित्व सब को देखे। सब को देखे तो पर को देखे, वह तो असद्भूत व्यवहारनय है। पर को देखे वह तो असद्भूतव्यवहारनय है। यहाँ सर्वदर्शित्व शक्ति को आत्मदर्शनमयी कहा। यहाँ पर की बात है नहीं। यहाँ तो आत्मदर्शन की सर्वदर्शित्व शक्ति है, ऐसा कहा है। देखो ! यह सर्व शब्द पड़ा है तो वहाँ पर की अपेक्षा नहीं। अपने में सर्वदर्शी शक्ति का स्वरूप है। वही परिणमित होता है। सर्व आया तो पर आया और पर की अपेक्षा आयी, ऐसा है नहीं। समझ में आया ?

फिर से (लेते हैं)। सर्वदर्शित्व ऐसा आया न ? सर्व (आया) तो सर्व में तो पर भी आया, पर आया तो पर को देखे वह तो उपचार है। परंतु यहाँ तो कहते हैं कि, सर्वदर्शी शक्ति का स्वरूप ही अपने से है। स्वयं को और पर को देखनेरूप परिणाम खुद आत्मदर्शनमयी सर्वदर्शी शक्ति है। पर को देखना, यह बात यहाँ है नहीं। समझ में आया ?

फिर से (लेते हैं)। सूक्ष्म बात (है), बापू ! वीतराग का मार्ग सूक्ष्म है। यहाँ कहते हैं कि, समस्त विश्व को सामान्यरूप से देखे, उसे सर्वदर्शित्व कहा। तो सर्व में पर आया। पर आया वह तो उपचार है; तो सर्वदर्शीपना उपचार से है, ऐसा कोई कहते हैं। (तो) ऐसे नहीं (है)। सर्वदर्शीपना का परिणमन अपने में हुआ, यह आत्मदर्शनमयी पर्याय है, वह पर दर्शनमयी पर्याय नहीं है। क्या कहते हैं ? समझ में आया ? क्या कहा देखो !

``**समस्त विश्व के...**'' (अर्थात्) सारा विश्व, समस्त अनंत द्रव्य, गुण, पर्याय, लोकालोक की त्रिकाल एकरूप सत्ता। ``**समस्त विश्व के सामान्यभाव...**'' (अर्थात्) भेदरूप नहीं। सामान्य यानी `है', महासत्ता है। महासत्ता का अर्थ - महासत्ता नाम की शक्ति भिन्न है, ऐसा नहीं परंतु सब `है', `है' सामान्य। उसे ``**देखनेरूप से...**'' (अर्थात्) सर्वभाव को देखनेरूप से। अरे...! सूक्ष्म बात (है), बापू ! आहाहा ! ``(**अर्थात् सर्व पदार्थों के समूहरूप लोकालोक को सत्तामात्र ग्रहण करनेरूप से...**'' (अर्थात्) लोकालोक की हयाति मात्र उसे देखनेरूप। ``(**ग्रहण करनेरूप से**) **परिणमित**'' यहाँ सर्वदर्शन में परिणमित लिया है। परिणमन शक्ति तो है परंतु सर्वदर्शित्व शक्ति है और शक्तिवान द्रव्य है; तो द्रव्य पर दृष्टि होनेसे सर्वदर्शित्व का परिणमन हुआ। सर्वदर्शित्व (शक्ति का) परिणमन हुआ वह आत्मदर्शनमयी है। सर्वदर्शनमयी यानी सर्व में पर आया, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? ऐसी बातें (हैं)। साधारण बेचारी औरतों को तो खाना पकाने से फुरसद नहीं होती। बच्चों को सँभालना होता है, उसमें ऐसी सब बातें होती हैं। आहाहा ! मार्ग प्रभु (सूक्ष्म है)।

यहाँ कहते हैं कि, तेरे में एक अनादि - अनंत सर्वदर्शित्व शक्ति है। जैसे ज्ञानशक्ति,

जीवतरशक्ति, दर्शनशक्ति आयी न ? दर्शन शक्ति में सर्वदर्शी शक्ति गर्भित है। दर्शि शक्ति पहले आ गई। दर्शन शक्ति में सर्वदर्शी शक्ति है, उस कारण से दूसरी (शक्ति) गिनने में आयी है। वहाँ दशि शक्ति इतना था। परंतु उसमें सर्वदर्शिपना नहीं था। दर्शि शक्ति में सर्वदर्शी शक्ति गर्भीत पड़ी है। सर्वदर्शी शक्ति को धरनेवाले द्रव्य पर दृष्टि करने से पर्याय में सर्वदर्शिपने की पर्याय प्रगट होती है। यह सर्वदर्शिपने की पर्याय हुई तो सर्व पर आया। वह तो उपचार हो गया। सर्व को और स्वयं को देखने की पर्याय अपने से अपने में अपने कारण से हुई है। यह लोकालोक है तो उत्पन्न हुई है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा ! ऐसी बात है। अपनी दर्शनमय ऐसी अपनी पर्याय, अपने से परिणमित हुई। लोकालोक के कारण से नहीं।

श्रोता : सम्यक्दृष्टि का श्रुतज्ञान उस पर्याय को जानता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जानता है। बराबर जानता है। सर्वदर्शिपना अपनी पर्याय में है।

श्रोता : श्रुतज्ञानी जानता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे जानता है। कहा नहीं ? पर संबंधी और अपने संबंधी पर्याय अपनी उत्पन्न हुई है, पर के कारण से नहीं। पर को देखना यह बात यहाँ नहीं है। आहाहा ! आत्मा में सर्वदर्शि शक्ति है तो उसका सर्वदर्शिपनारूप परिणमन हुआ तो वह सामान्य, सब चीज़ को देखते हैं। (उसमें) सर्व आया तो सर्व पर को देखते हैं। यह तो उपचार हुआ। यहाँ तो कहते हैं, आत्मदर्शनमयी सर्वदर्शि शक्ति है। क्या कहा ? ``**...सामान्यभाव को देखनेरूप से परिणमित ऐसे आत्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्व शक्ति।**'' वहाँ सर्वदर्शनमयी शब्द नहीं लिया। आहाहा ! सर्व को देखते हैं, यह अपनी दर्शन शक्ति अपने में है। सर्व को देखते हैं, यह प्रश्न यहाँ नहीं है। आहाहा !

फिर से (लेते हैं)। यहाँ जो सर्वदर्शीशक्ति है, (तो) परिणमन में (जब) सर्वदर्शिपना की पर्याय प्रगट हुई तो सर्वदर्शिपना है तो सर्व में पर आया कि नहीं ? (तो कहते हैं) कि नहीं। ये बात यहाँ है नहीं। सर्व में स्व और पर को देखनेरूप परिणमन करना इस पर्याय की इतनी ताकत है (कि) यह अपने से उत्पन्न हुई है। समझ में आया ? सूक्ष्म बातें (हैं), बापू ! क्या कहते हैं ? सर्वदर्शी शब्द आया न ? तो सर्वदर्शी में सर्व पर की अपेक्षा आयी कि नहीं ? (तो कहते हैं) ना, अपनी स्व - पर को (देखनेरूप) पर्याय अपने से अपने कारण से, अपनी पर्याय में आत्मदर्शनमयी सर्वदर्शीशक्ति कहने में आती है।

प्रभु ! तेरी ऋद्धि कितनी हैं ! ऐसा कहते हैं। तेरे में सर्वदर्शीशक्ति पड़ी है। प्रभु ! तेरी शक्ति में सर्वदर्शनपना पड़ा है। आहाहा ! यह सर्वदर्शीशक्ति का आश्रय -

आधार द्रव्य (है)। उस द्रव्य का आश्रय लेकर जब सर्वदर्शिपना का परिणमन हुआ, उसमें सर्वदर्शिपना की पर्याय उत्पन्न हुई। यह `सर्व' शब्द है तो पर लागू पड़ा तो सर्व है ? (तो कहते हैं) कि नहीं। यह सर्वदर्शी पर्याय आत्मदर्शनमयी शक्ति है, उसकी पर्याय है। समझ में आया ?

थोड़ा फर्क कहाँ पड़ा ? बहुत फ़र्क़ पड़ा। लोग ऐसा कहे कि, सर्व आया न ? तो सर्व में पर आया। यहाँ कहते हैं कि, नहीं। सर्व को जाने - देखे वह अपनी दर्शन की पर्याय सर्वदर्शनमयी आत्मदर्शनमयी है। आत्मदर्शनमयी है - पर दर्शनमयी नहीं। अपनी परिणति अपने में से हुई है। आहाहा ! शब्द में थोड़ा फ़र्क (लगे) परंतु उगमणा - आथमणा जितना फ़र्क है। उगमणा - आथमणा को (हिन्दी में) क्या कहते हैं ? पूर्व - पश्चिम।

यहाँ कहते हैं ? द्रव्य में सर्वदर्शीशक्ति व्यापक है, गुण में सर्वदर्शीशक्ति व्यापक है। यह सर्वदर्शीशक्ति अनंत गुण में व्यापक है और सर्वदर्शी शक्ति है यह पारिणामिकभावरूप है। लो ! यह दूसरी नयी बात आयी। अंदर जो सर्वदर्शी शक्ति है वह पारिणामिकभावरूप है। पारिणामिक नाम अपना सहज स्वरूप ही ऐसा है। उसमें कोई पर की अपेक्षा - निमित्त के (सद्भाव की) या निमित्त के अभाव की अपेक्षा नहीं। आहाहा ! यह सर्वदर्शीशक्ति आत्मा में है (और) आत्मा पारिणामिक स्वभावरूप सहज है। सवेरे सहज श्रुतज्ञानमय - स्वभाविक श्रुतज्ञानमय आया था। ऐसे स्वाभाविक - पारिणामिक स्वभावमयी आत्मा है। पारिणामिक नाम किसी की अपेक्षा नहीं। ऐसी सर्वदर्शीशक्ति पारिणामिक स्वभावरूप है - सहजभावरूप है। उसका आश्रय लेकर जो परिणमन में सर्वदर्शिपना आया; तो उस पर्याय में सर्व देखना - ऐसा आया। यह कथन तो व्यवहार से आया परंतु पर्याय में अपने को देखते हैं, यह आत्मदर्शनमयी शक्ति है। आहाहा !

(स्वद्रव्य के आश्रय से) पर्याय उत्पन्न हुई वह क्षयोपशम और क्षायिकभावरूप उत्पन्न हुई। आत्मा सहज स्वभाव - पारिणामिकभाव(रूप है)। सर्वदर्शीशक्ति पारिणामिकभाव (रूप है) और उसके आश्रय से जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय (प्रगट) हुई (वह उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभावरूप है)। सर्वदर्शिपना की पूर्ण पर्याय है वह क्षायिकभाव है और नीचे की जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय है वह क्षायिक, उपशम और क्षयोपशम तीन भावरूप हैं। पाँच भाव है कि नहीं ? वस्तु और वस्तु का स्वभाव यह पारिणामिकभावस्वरूप है और उसकी धर्म की पर्याय जो होती है, सर्वदर्शिपना की पूर्ण (पर्याय होती है) वह क्षायिकभावरूप है। और सर्वदर्शी शक्तिवान की प्रतीति, ज्ञान और स्थिरता हुई वह परिणति - पर्याय उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभावरूप है और राग उत्पन्न होता है, वह उदयभावस्वरूप है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बातें (हैं) !

(यहाँ) कहते हैं कि, जो पर्याय प्रगट हुई उसमें सर्वदर्शिपना आया। पहले प्रतीत में आया, श्रुतज्ञान में आया। यह प्रतीत और ज्ञान (की पर्याय) क्षयोपशम, क्षायिक और उपशमभाव है। ज्ञान क्षयोपशमभावरूप है। दर्शन - प्रतीत उपशम और क्षयोपशमभावरूप है और पूर्ण सर्वदर्शी का परिणमन हुआ, वह क्षायिकभावरूप है। समझ में आया ? यह क्षायिकभाव की पर्याय या क्षयोपशमभाव की पर्याय प्रगट हुई उसका कर्ता वास्तव में द्रव्य - गुण नहीं। विशेष आयेगा......

शक्तियों का वर्णन करने का हेतु तो यह है कि बाह्य में तेरे ज्ञान, आनंद, सुख-शांति नहीं है; अंतर में ही तेरी शक्तियों का निधान भरा पड़ा है - उस पर दृष्टि कर व बाहर से दृष्टि हटा ले। अंतरंग ज्ञान-दर्शन-आनंद-सुख-वीर्य-प्रभुता आदि शक्तियों द्वारा जीना ही धर्मी जीव का जीवन है। बाह्य देहादि से जीना सो धर्मी जीव का जीवन नहीं है। अंतर में अनंत शक्तियों का भण्डाररूप भगवान - सहजानंद मूर्ति बिराजमान - अवस्थित है -उसकी दृष्टि व विश्वास पूर्वक जीना ही यथार्थ जीवन है। (परमागमसार - ५५६)

प्रवचन नं. ११
शक्ति-९, १० दि. २१-०८-१९७७
विश्वविश्वसामान्यभावपरिणतात्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्वशक्तिः।।९।।
विश्वविश्वविशेषभावपरिणतात्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्वशक्तिः।।१०।।

(समयसार शक्ति का अधिकार चलता है)। व्यवहार शुभजोग धर्म है या धर्म का कारण है (यह) बड़ा शल्य (है)। मिथ्यात्व शल्य है। क्योंकि समयसार में पुण्य-पाप अधिकार में शुभजोग को स्थूल शुभभाव कहा है। भगवान उस अपेक्षा से सूक्ष्म है। और उसकी सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की परिणति वह भी सूक्ष्म है। समझ में आया ? ``समस्त विश्व के सामान्य भाव को देखनेरूप से (अर्थात् सर्व पदार्थों के समूहरूप लोकालोक को सत्तामात्र ग्रहण करनेरूप से) परिणमित ऐसे आत्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्व शक्ति।'' भाषा देखो ! क्योंकि यहाँ तो पहले से ऐसा लिया है। क्रम (रूप पर्याय) और अक्रम (रूप गुण) का समूह वह आत्मा। थोड़ा सूक्ष्म विषय है। यहाँ विकार का क्रम नहीं (है)। यहाँ तो शक्तियों का वर्णन है तो सभी शक्तियाँ शुद्ध हैं तो उसकी परिणति भी शुद्ध है। द्रव्य शुद्ध है, शक्ति शुद्ध है, उसकी परिणति (भी) शुद्ध है। शुद्ध परिणति है यह क्रमसर होती है और शक्ति है यह अक्रम रहती है। ये क्रमसर शक्ति की परिणति और अक्रम (शक्ति का) समुदाय, यह आत्मा है। ऐसा कहना है। आहाहा ! समझ में आया ?

आज तो विचार बहुत आये थे। यह परिणमित शब्द आया न ? यहाँ तो सारा दिन यही धंधा है, कुछ दूसरा तो है नहीं। थोड़ा सूक्ष्म आया है। आत्मा में सर्वदर्शीशक्ति है। अगर (यह शक्ति) न हो तो वस्तु अदृश्य होती। अदृश्य माने देखने में न आये इसलिये (उसका) अभाव होता। सर्व है ना ? सर्वदर्शीशक्ति जो है (उसका) यहाँ तो परिणमन लिया है। समझ में आया ?

अध्यात्म पंच संग्रह है, उसमें ऐसा लिया है कि, अभवी को ज्ञान है परंतु ज्ञान की परिणति नहीं (है)। भाई ! ध्यान रखना। अभवी को ११ अंग और ९ पूर्व की लब्धि होती है - परंतु वह ज्ञान परिणति नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? ज्ञान परिणति तो सम्यक्‌रूप से परिणमे और द्रव्य और गुण को ज्ञेय बनाकर परिणमे, उसे ज्ञान परिणति कहने में आता है। समझ में आया ? अभवी को ११ अंग और ९ पूर्व की लब्धि होती है। ११ अंग (अर्थात्) एक पद में ५१,००० श्लोक, ऐसा-ऐसा १८,००० पद। १८,००० पद का आचार अंग (है)। एक पद में ५१ करोड़ श्लोक। ऐसा-ऐसा ११ अंग का ज्ञान और ९ पूर्व का ज्ञान। फिर भी वह ज्ञान की परिणति नहीं। आहाहा ! क्योंकि जो ज्ञान स्वरूप भगवान आत्मा है, उसकी (वह) परिणति (नहीं है)। ज्ञान के (आश्रय से अर्थात्) स्व के आश्रय से ज्ञान की परिणति हो, उसे ज्ञान की परिणति कहने में आती है। आहाहा ! आत्मा ज्ञान स्वरूप है। ज्ञान आ गया न पहले ? आज तो अब हम सर्वदर्शी(शक्ति) थोड़ी लेकर सर्वज्ञत्व लेना है। ज्ञानस्वरूप जो भगवान आत्मा उसकी ज्ञान की परिणति के साथ आनंद का अनुभव (हो), उसे ज्ञान परिणति कहने में आती है। समझ में आया ? (आनंद का अनुभव हो) तो ज्ञान परिणति कहने में आती है। आहाहा ! अभवि को ज्ञान परिणति नहीं कहा है। इतना ११ अंग और ९ पूर्व का ज्ञान होने पर भी (वह) ज्ञान परिणति नहीं (है)। आहाहा ! जो ज्ञान परिणति होती है तो उसे (ज्ञान) परिणति के साथ आनंद का वेदन आता है, समझ में आया ?

अध्यात्म पंच संग्रह में दृष्टांत दिया है। रावण ने लक्ष्मण को शक्ति मारी थी। (और लक्ष्मण) बेशुद्ध हो गये। हम तो ६५-६६ की साल में दुकान पर बोलते थे। रामचंद्रजी लक्ष्मण को कहते हैं, ``आव्या हता त्यारे त्रण जणा अने जाशुं एकाएक'' यह तो ६५-६६ (की साल में) दुकान पर कंठस्थ किया था। लक्ष्मण को शक्ति लगी है ना ? वे असाध्य हो गये। रामचंद्रजी कहते हैं, ``आव्या हता त्यारे त्रण जणा अने जाशुं एकाएक, माताजी खबरुँ पूछशे तेने शा-शा उत्तर दईश ? लक्ष्मण ! जाग ने ओ जीव ! एकबार बोल दे। बोल दे एकबार, ज़वाब तो दे प्रभु ! तू सूई गयो'' आहाहा ! सीताजी को रावण ले गया। अब तू असाध्य हो गया। मैं माता के पास अकेला जाऊँगा। माता पूछेगी, `भाई ! अकेला क्यों आया ?' आहाहा ! ऐसा कहते थे। उतने में विशल्या आयी।

इसने प्रश्न पूछा था कि, इसका क्या करें ? तो किसी ने कहा कि, विशल्या नाम की एक कन्या है। (वह) लक्ष्मण की पत्नी होगी। उसके पास एक लब्धि है, शक्ति है। पूर्व में वह चक्रवर्ती की लड़की थी और उस लड़की को जंगल में कोई छोड़ गया था। जंगल में छोड़ दिया था तो अजगर उसे (निगल गया)। अजगर समझे ना ? गल

जाये। अजगर यानी गल जाये (निगल जाये)। जंगल में अजगर कन्या को निगल गया। इतना मुख बाहर रहा। उतने में उसके पिताजी आ गये, उन्हें लगा - अजगर को बाण मारूँ (तो) (लड़की का) जीव बच जाय। (लड़की ने कहा) पिताजी बाण नहीं मारना। मुझे आहार-पानी का आजीवन त्याग है। मैं बाहर निकलूंगी तो (भी) आहार नहीं (लूंगी)। (इसे) मारना नहीं। आहाहा ! (शरीर) अजगर के पेट में था। मुँह थोड़ा बाहर था। अजगर समझते हो ना ? अज नाम बोकडा और गर नाम गल जाये (निगल जाये) इसलिये अजगर (कहनेमें आता है)। अज नाम बड़े बकरे को पेट में गल जाये। इसलिये अजगर (कहने में आता है)। ऐसे मृत्यु हो गया (और दूसरे भव में) एक राज की कन्या हुई।

यहाँ प्रश्न हुआ कि, यह शक्ति खुले कैसे ? क्या करना ? कोई निमित्तज्ञान ने कहा कि भरत का राज है। रामचंद्रजी तो वनवास में थे। भरत को राज सौंपा था। भरत के राज में एक विशल्या (नाम की) राजकन्या है। भरत को बताओ। उस राजकन्या विशल्या को यहाँ लाओ ! कुंआरी कन्या है। उसके आते ही (रावण की) शक्ति का नाश होगा। ऐसी उसकी लब्धि है। समझ में आया ? यह तो दृष्टांत है। सिद्धांत कहाँ उतारेंगे ध्यान रखना ! विशल्या आती है। भरत को पता पड़ा कि, यह बड़े राजा की कन्या है तो (कहा), आपकी कन्या को लक्ष्मण के पास ले जाओ। (उन्हें जो शक्ति लगी है वह) शक्ति असाध्य है। यह (विशल्या) पंडाल में आती है तो वहाँ घायल (सिपाही) बहुत थे। घायल पड़े हुए शूरवीरों का घायलपना मिट जाता है और लक्ष्मण के पास आती है तो शक्ति छूट जाती है। शक्ति खुल जाती है। बाद में तो उसके साथ शादी करते हैं।

यहाँ कहते हैं कि, आत्मा में शुद्ध परिणति (रूप) नारी का संभोग करे तो वास्तव में वह शक्ति का कार्य, वह शक्ति खुल जाये। समझ में आया ? परिणमित शब्द पड़ा है ना ? भाई ! दो ठिकाने कहा है कि आप ज्ञान प्रमाण क्यों कहते हो ? उत्तर : ``**परस्पर भिन्न ऐसे अनंत धर्मों के समुदायरूप से परिणत एक ज्ञाप्ति मात्र भाव...**'' ऐसा शब्द है। यहाँ थोड़ा सूक्ष्म है। परंतु बात यथार्थ आ गई है। यह शक्ति है परंतु उसकी परिणति पर्याय में परिणमित होती है तब उस शक्ति का कार्य हुआ। तब इस शक्ति का अस्तित्व प्रतीत में आया। समझ में आया ? परिणति बिना यह शक्ति शक्तिरूप रही। (पर्याय में) खुली नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसे भगवान आत्मा में सर्वदर्शी, सर्वज्ञत्व शक्ति आदि है। यह शक्तिरूप है।

आचार्य (भगवान ने) ऐसा शब्द इस्तेमाल किया है। देखो ! पहले आगे परिणमित शब्द बोले थे। परंतु स्पष्टीकरण बहुत नहीं हुआ था। देखो ! ``**समस्त विश्व के सामान्य**

भाव को देखनेरूप से....'' एक (बात) तो यह कि, जगत में सारी चीज़ है उसको देखनेरूप। जो देखनेरूप न हो तो वह चीज़ अदृश्य (हो जायेगी)। नहीं है, ऐसा हो जाये। देखने की पर्याय है तो देखने में आयी चीज़ की हयाती ख्याल में आयी। समझ में आया ? सर्वदर्शी नाम की शक्ति है वह सर्व विश्व के सामान्यभाव को (देखती है)। यह भगवान की अध्यात्म वाणी तो बहुत सूक्ष्म है।

लोग कहते हैं, शुभभाव धर्म है। (सोनगढ़वाले) शुभ(भाव का) निषेध करते हैं। अरे...! भगवान सुन तो सही, प्रभु ! अरे...! शुभभाव तो अनंत बार हुए। अभी तो ऐसे शुभभाव है ही नहीं। नवमी ग्रैवेयक जाये उतना शुभभाव - शुक्ल लेश्या कि जिसको शुक्ल लेश्या (कहते हैं)। शुक्ल ध्यान अलग और शुक्ल लेश्या अलग (चीज़ है)। शुक्ल लेश्या तो अभवि को भी होती है। शुक्ल ध्यान तो सम्यक्‌दृष्टि को आठवें (गुणस्थान में) जाये तब शुक्ल ध्यान होता है। शुक्ल लेश्या अलग और शुक्ल ध्यान अलग (है)। शुक्ल लेश्या (के फल में) नवमी ग्रैवेयक पहुँचे। छट्ठे स्वर्ग में जाये तो (भी) शुक्ल लेश्या है। क्या कहते हैं ? शुक्ल लेश्या हो तो छट्ठे स्वर्ग में भी जाये और शुक्ल लेश्या से नवमी ग्रैवेयक भी जाये। शुक्ल लेश्या से छट्ठे देवलोक में भी जाय तो वह शुक्ल लेश्या भावों की होती है। शुक्ल भाव (अर्थात्) शुभभाव, बहुत ही उजले (भाव)। शुक्ल लेश्या (के फल में) तो अभवि या भवि छट्ठे स्वर्ग में जाते हैं। समकिती भी शुक्ल लेश्या से सातवें, आठवें, नववें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें और बाद में नवमी ग्रैवेयक (पर्यंत जाये)। नवमी ग्रैवेयक (तक) जाये वह शुक्ल लेश्या कैसी ? फिर भी वह धर्म नहीं - अधर्म है। आहाहा ! गज़ब बात है ! भाई ! (वह) कषाय परिणाम है, आकुलता है।

यहाँ तो कहते हैं कि, देखनेरूप सर्वदर्शीशक्ति है। दर्शीशक्ति - देखने की शक्ति का अर्थ यह कि, देखने की शक्ति ने वस्तु को देखा। अगर देखने की शक्ति न हो तो जो चीज़ देखने में आती है उस चीज़ का अभाव हो जाता है। समझ में आया ? दर्शीशक्ति का विषय पूर्ण तीन काल - तीन लोक (की) सब वस्तु है। आहाहा ! यहाँ कहते हैं कि, ``(**समस्त विश्व के**) **सामान्य भाव को देखनेरूप से** (**अर्थात् सर्व पदार्थों के समूहरूप लोकालोक को सत्तामात्र ग्रहण करनेरूप से**)'' ग्रहण करना नाम देखनेरूप। ``**परिणमित ऐसी**'' भाषा है। तेरहवें गुणस्थान में यह सर्वदर्शीशक्ति परिणमित हुई। आहाहा ! समझ में आया ? शक्ति का परिणमन हुआ तब शक्ति की और सत्ता की प्रतीति देखने में आयी। भगवान को पर्याय में सर्वदर्शिपने परिणमन हुआ तो जो चीज़ देखने में आती है उसकी सत्ता की प्रतीत तब हुई। यह देखने की चीज़ है। देखने के भाव से देखने की चीज़ को देखा। समझ में आया ? अरे...! ऐसी बात (है) ! सबको फिर कठिन

लगे (लेकिन) क्या हो ? प्रभु ! तेरा मार्ग बहुत अलग है। आहाहा ! समझ में आया ?

एकबार दलपतराम (कवि की कविता) कही थी। ``प्रभुता प्रभु तारी तो खरी'' हम गुजराती पढ़े थे। ४-५ वी कक्षा में (यह कविता आयी थी)। ७५ वर्ष पहले की बात है। वे तो प्रभु को कहते हैं। परंतु यहाँ तो ये प्रभु ! प्रभुत्व शक्ति आ गई न ? (उसे कहते हैं)। ``प्रभुता प्रभु तारी तो खरी'' प्रभुता तेरी कब खरी ? कि, ``मुझरो मुज रोग ले हरी'' प्रभुता की शक्ति अप्रभुता का नाश कर देती है। समझ में आया ?

दर्शन शक्ति है उसमें भी ऐसे उतारा है कि, सर्वदर्शीशक्ति यति है। अपने में जतन से (यत्न से) परिणमन किया तो अशुद्धता आने नहीं देता, ऐसा यति है। क्या कहा ? यति (अर्थात्) यत्न किया। अपने सर्वदर्शी(शक्ति की) परिणति हुई तो अल्पज्ञपना और अशुद्धता आने नहीं देता, यति ने ऐसी यत्ना की है। सर्वदर्शीशक्ति यति है। आहाहा ! ऐसी बातें ! ऐसा यहाँ परिणमित में से निकाला है। समझ में आया ?

सर्वदर्शीशक्ति परिणमित हुई है। वैसे अधिकार तो शक्ति का है कि, आत्मा में ऐसी अनंत शक्तियाँ हैं। ४७ शक्ति का वर्णन किया परंतु यहाँ शक्ति के वर्णन में यह लिया कि, शक्ति का परिणमन जब होता है, क्रमसर जो परिणमित होता है, वह क्रम(रूप) परिणमित (पर्याय) और अक्रम (रूप गुण का) समुदाय आता है। समझ में आया ? यहाँ परिणमित लिया है। अंदर में सर्वदर्शीशक्ति अकेली पड़ी है, ऐसे नहीं। जैसे विशल्या ने आकर लक्ष्मण की शक्ति को तोड़ दी (और शक्ति) खुल गयी, ऐसे सर्वदर्शीशक्ति जो अंदर पड़ी है उसे परिणति ने खोल दिया। पर्याय में सर्वदर्शिपना प्रगट हुआ, आहाहा ! ऐसी बातें (है), भाई ! प्रभु का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहाहा ! अभी तो बहुत गड़बड़ हो गई है। इस समय तो `चोर कोतवाल को दंडे' ऐसा हो गया है। बहुत चोर इकट्ठे हो जाये तो कोतवाल को (दंडे)। प्रभु ! यह तो सत्य है, भाई ! यह तो सत्य मार्ग है। समझ में आया कुछ ?

यहाँ कहते हैं, ``**....परिणमित ऐसे आत्मदर्शनमयी...**'' यहाँ वज़न है। आत्मदर्शन शक्ति तो गुण है, शक्ति है, सत् का सत्व है, आत्मा का स्वभाव है परंतु वह स्वभाव परिणमित हुआ, तब आत्मदर्शनमयी शक्ति कहने में आती है। आहाहा !

दूसरी एक बात है। श्रीमद् के पत्र में ऐसा आता है कि, चौथे गुणस्थान में श्रद्धापने केवलज्ञान प्रगट हुआ है। सम्यग्दर्शन बिना `केवलज्ञान है' ऐसी श्रद्धा पहले नहीं थी। सम्यग्दर्शन हुआ तो `यह केवलज्ञानमयी (स्वरूप) है' ऐसा परिणमन में प्रतीत हुआ। तब केवलज्ञान श्रद्धापने प्रगट हुआ, ऐसा कहा है। आहाहा ! चीज़ तो भले हो परंतु श्रद्धा में - परिणति में जब आया तब श्रद्धापने केवलज्ञान है, ऐसा श्रद्धापने प्रतीत हुआ। श्रद्धापने

केवलज्ञान हुआ। परिणमितपने केवलज्ञान तेरहवें (गुणस्थान में) होगा। समझ में आया ? ऐसी बातें (है), बापू ! चैतन्य में भंडार - खजाना इतना पड़ा है कि, यह खजाने की बात सुनना मुश्किल हो गया है।

इस निधान पर नज़र करके पर्याय में निर्मल परिणति होती है। यहाँ विकार की परिणति की बात - गंध भी नहीं है। शुद्ध परिणति है उसमें शुभभाव का अभाव है, ऐसा अनेकांत लिया है। (विभाव का) उसमें अभाव है। भावपने तो सर्वदर्शीशक्ति अपने से परिणमित हुई है। वह परिणमित हुई तो शक्ति खीली। शक्तिरूप था और (पर्याय में) परिणमित हुआ तो शक्ति खुल गयी । जैसे विशल्या आयी और (लक्ष्मण की) शक्ति खुल गई। वैसे यहाँ नारी अपनी परिणति (रूपी) स्त्री उसके साथ एकाग्र हुआ तो आनंद का अनुभव करके आनंद पुत्र उत्पन्न हुआ। समझ में आया ? ऐसी बात है, भाई ! कितनों को तो पहली बार सुनने मिले ऐसी बात है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, ``**...परिणमित ऐसी आत्मदर्शनमयी...**'' सर्वदर्शी है यानी सर्व को देखे इसलिये अंदर सर्व आया है, ऐसा नहीं। सर्व को और अपने को (देखे ऐसा) आत्मदर्शनमयी शक्ति का रूप है। आत्मदर्शन का परिणमन का शक्ति रूप ऐसा है, वह आत्मदर्शनमयी है। आहाहा ! समझ में आया ? क्या कहा ? कि सर्वदर्शिपना है तो कोई ऐसा कहे कि, अंदर पर को देखनेवाली पर्याय है, (लेकिन) पर को देखना, ऐसे नहीं। वह सर्व को देखे और स्व को देखे यह आत्मदर्शनमयी अपनी पर्याय में है। सर्व को देखना वह भाव यहाँ है नहीं। आहाहा ! क्या कहा ? परमात्मा जिनेश्वरदेव का मार्ग बहुत सूक्ष्म (है)। इस समय तो स्थूल हो गया। अभी तो शुभभाव से धर्म होता है (ऐसी विपरीत मान्यता में पड़े हैं)। आज एक पत्र आया है। सत्याग्रह करो कि, शुभभाव से धर्म होता है। परंतु उसका कुछ चले ऐसा नहीं है। मार्ग यह है। (ऐसा) श्रद्धा में तो नक्की करो ! आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, ``**...देखनेरूप से परिणमित ऐसे आत्मदर्शनमयी...**'' दो शब्द आये। एक तो आत्मदर्शन की परिणति और आत्मदर्शन पर्याय। यह आत्मदर्शन की पर्याय है वह सर्व को देखने की पर्याय नहीं। यह सर्वदर्शी अपनी आत्मदर्शनमयी शक्ति है, आहाहा ! समझ में आया ? आज हम सर्वज्ञ (शक्ति) लेते हैं।

``**समस्त विश्व के विशेष भावों को...**'' दर्शन शक्ति है इसमें तो भेद किये बिना सब है, सामान्यरूप से सब सत्ता है, सब का पूर्ण अस्तित्व है, ऐसा दर्शन शक्ति में देखने में आता है। उसमें ये आत्मा है, ये जड़ है, ये गुण है, ये पर्याय है, ऐसा भेद नहीं (दिखता)। समझ में आया ? सर्वदर्शी में ऐसा है।

अध्यात्मपंच संग्रह में लिया है। ओहोहो ! एक समय में सर्व अस्तित्व को भेद

किये बिना देखना - यह सर्वदर्शी का कार्य (है)। उसी समय में सर्वज्ञ की पर्याय में सब को भिन्न-भिन्न करके जानना यह सर्वज्ञ (शक्ति का कार्य है)। एक साथ दो पर्याय (हैं)। परंतु एक पर्याय ये है, और एक पर्याय ये है, यह अद्भुत रस है। (ऐसे-ऐसे) नव रस उतारे हैं। समझ में आया ? आहाहा ! एक अद्भुत रस है। साधारण मनुष्य को ख्याल में आना मुश्किल पड़े (ऐसा है)। सर्वदर्शी(शक्ति) बारीक चीज़ है। क्योंकि `ये शक्ति है' ऐसा (भेद करके) जानने में आया तो (वह तो) ज्ञान हो जाता है। समझ में आया ? सर्वदर्शि शक्ति सामान्य (रूप से) `सब है' (ऐसा देखती है)। लोकालोक, अपना द्रव्य, अपना गुण, अपनी अनंत पर्याय आदि सब को `है' उस रूप (देखने की) परिणमन करने की शक्ति है, बस ! और सर्वज्ञ शक्ति उसी समय में (विशेषरूप से देखती है)। देखो !

``**समस्त विश्व के विशेष भावों को...**'' उसमें (सर्वदर्शी में) सामान्य था। ``**समस्त विश्व के सामान्य भावों को...**'' ऐसे था। यहाँ ``(**समस्त**) **विश्व के विशेष भावों को...**'' सर्व विशेष भाव (लिया)। विशेष भाव में तो - द्रव्यभाव, गुणभाव, पर्यायभाव, एक समय की पर्याय में अनंत अविभाग प्रतिच्छेद (सब आ गया)। केवलज्ञान की पर्याय में तो अनंते केवली जानने में आते हैं। तीनों काल के केवली जानने में आते हैं, आहाहा ! अनंता केवली ने सब जाना, ऐसे अनंत केवली को केवलज्ञान पर्याय जाने। आहाहा ! उस पर्याय में कितनी ताकत आयी !! अविभाग प्रतिच्छेद (अर्थात्) पर्याय में छेद करके - भाग करते.. करते...करते... आखिर का (भाग) रहे उसे अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं। ऐसे अनंत अविभाग प्रतिच्छेद (है)। ऐसी एक केवलज्ञान की एक पर्याय में अनंत अविभाग प्रतिच्छेद है। अरे...! उसमें तो है परंतु निगोद का जीव जिसे अक्षर के अनंतवें भाग में विकास रहा, उस पर्याय में भी अनंत अविभाग प्रतिच्छेद हैं। आहाहा ! पर्याय है ना ? आहाहा ! निगोद का जीव हो ! जिसे अक्षर के अनंतवें भाग में विकास रहा। शक्ति तो सर्वज्ञ-सर्वदर्शी है ही। निगोद के जीव में भी सर्वज्ञ और सर्वदर्शीशक्ति तो है ही। परंतु परिणमन बिना, कार्य बिना कारण प्रतीत में आया नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

एकबार कहा था। `निज सत्ता ए शुद्ध...' प्रभु ! हमारी आत्मा की जो निजसत्ता है उसे तो आप शुद्ध देखते हो। पुण्य - पाप ये कोई आत्मा नहीं। `निज सत्ता ए शुद्ध सौने...' हे नाथ ! निगोद के जीव आदि सर्व जीवों को आपके ज्ञान में उसकी सत्ता, हयाती शुद्धपने आप देखते हो। आहाहा ! समझ में आया ? बात बहुत गंभीर है, भाई ! निगोद का जीव भी स्वभाव और शक्ति से तो शुद्ध ही है। पर्याय में अशुद्धि है वह तो एक समय की है। वह तो एक समय की अशुद्धता (है)। (एक) सेकंड के असंख्य

भाग में एक समय की अशुद्धता अथवा अक्षर के अनंतवें भाग में विकार यह एक समय की चीज़ है। अंतर वस्तु तो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, परिपूर्णपने पड़ी है। परंतु यहाँ तो कहते हैं कि, परिणमित किये बिना, अपनी परिणमित (रूपी) स्त्री की परिणति के साथ वेदन किये बिना यह सर्वज्ञ शक्ति प्रतीत में आती नहीं। नीचे भी (नीचे के गुणस्थान में) सर्वज्ञ शक्ति है, ऐसी प्रतीति आई, केवलज्ञान की प्रतीति हुई (परंतु) केवलज्ञान हुआ नहीं। पहले अल्पज्ञपने में - सम्यग्दर्शन में ऐसा माना था कि, मैं केवलज्ञानी हूँ। केवलज्ञान अर्थात् अकेला ज्ञान ऐसी केवलज्ञान की शक्ति की प्रतीत हुई तो श्रद्धा से केवलज्ञान प्रगट हुआ। श्रद्धा से केवलज्ञान प्रगट हुआ। क्या कहा ? जिस श्रद्धा में पूर्ण ज्ञान, आनंद है, ऐसी बात प्रतीत नहीं थी तब वह प्रगट नहीं हुआ। आहाहा ! मैं केवलज्ञान हूँ, ऐसा केवलज्ञान श्रद्धा से प्रगट हुआ। केवलज्ञान की परिणति की पूर्ण दशा तेरहवें (गुणस्थान में) होगी। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बातें हैं। यह तो कैसा उपदेश है ? इसमें दया पालनी, व्रत करने, उपवास करने ऐसा कुछ हो तो समझ में भी आये, भाई ! तेरा निधान तेरी नज़र में कभी आया नहीं और नज़र में आये बिना यह चीज़ है, ऐसा प्रतीत में भी आया नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, ``**परिणमित ऐसे आत्मज्ञानमयी...**'' आहाहा ! सर्वज्ञ शक्तिपने जो शक्ति है उसकी ज्ञान की पर्याय परिणमित हुई। आहाहा ! तेरी पर्याय में उसका परिणमन हुआ, यह परिणमन आत्मज्ञानमयी है। सर्वज्ञपने कहा परंतु यह परिणमन आत्मज्ञानमयी है। ये आत्मा का ज्ञान हुआ है। आहाहा ! समझ में आया ? पर को जानना ऐसा कहना वह तो असद्भुतव्यवहारनय का विषय है। क्योंकि पर में तन्मय होकर जानता नहीं। इसलिये पर को जानता है ऐसा कहना वह तो असद्भूत व्यवहार है। आहाहा ! परंतु अपनी पूर्ण पर्याय को तन्मय होकर जानते हैं। समझ में आया ? बात थोड़ी सूक्ष्म तो है, परंतु सुने तो सही। यह सब कहाँ (सुनने को मिले) ?

नियमसार में सिद्धांत तो ऐसा कहते हैं कि, कोई ऐसा कहे कि निश्चय से आत्मा लोकालोक को जानता नहीं तो उसे दोष क्यों दें ? (ऐसा) नियमसार में (आता) है कि, सर्वज्ञ लोकालोक को जानते नहीं यह बराबर है ? निश्चय से लोकालोक को नहीं जानते। निश्चय से तो अपनी पूर्ण पर्याय को ही जानते हैं, और व्यवहारनय से कोई ऐसा कहे कि, आत्मा पर को जानता है परंतु स्व को जानता नहीं। (ऐसे) दो बोल आये हैं। नियमसार में शुद्ध उपयोग अधिकार में आखिर में (आया है)। व्यवहार से अपने को जानते हैं यह तो निश्चय है। पर को व्यवहार से जानते हैं ऐसे ही स्व को व्यवहार से जानते हैं, ऐसा है नहीं। आहाहा ! ऐसी बात (है) ! वास्तव में तो लोकालोक को जानते ही नहीं। क्योंकि

लोकालोक में तन्मय हुआ नहीं। जो लोकालोक में तन्मय हो जाये तो नारकी के दुःख का वेदन आना चाहिए। समझ में आया ? लोकालोक में सातवीं नरक का नारकी महा दुःखी...दुःखी...दुःखी है।

महा चक्रवर्ती राजाओं नरक में पड़े हैं। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती चक्रवर्तीपद में थोड़े वर्ष रहे. परंतु जीवन ७०० वर्ष का था। मरकर सातवीं नरक में गया। (वहाँ) अभी ३३ सागर की आयु स्थिति है। एक साँस में ११ लाख ५६ हज़ार ७५ पल्योपम का एक साँस का दुःख (है)। यहाँ एक साँस ली उतने में उसकी जो जिंदगी गई (उसमें) इतना दुःख भोगते हैं। इतना एक साँस में ११ लाख ५६ हज़ार पल्योपम का दुःख (भोगते हैं)। समझ में नहीं आया ? फिर से लेते हैं। एक-(एक) साँस (लेकर) ७०० साल गये। एक साँस में संसार का कल्पना का सुख भोगा, उस एक साँस के फल में ११ लाख पल्योपम के दुःख आये। समझ में आया ? और वह भी छोटी उम्र में तो चक्रवर्ती पद नहीं था। बाद में (चक्रवर्ती) हुए। ७०० साल की साँस की संख्या तो (उसमें) वहाँ १ साँस के फलस्वरूप ११ लाख पल्योपम का दुःख है। आहाहा ! तो कोई ऐसा कहे कि, `ककड़ी के चोर को फाँसी की सजा' ! नहीं...नहीं...नहीं (ऐसा नहीं हो सकता)। इतने परिणाम तीव्र थे कि उस हिसाब से यहाँ ७०० साल कल्पना के - पाप के दुःख भोगे। यहाँ भी पाप का दुःख था पंरतु उसके फल में (इतना दुःख भोगते हैं)। एकबार हिसाब किया था। यहाँ तो सब बात है। ११ लाख ५६ हज़ार ९७५ पल्योपम। एक पल्य के असंख्यवें भाग में असंख्य अबज वर्ष जाय।

एक पल्य काल की उपमा है। एक पल्योपम के काल की मुद्दत में (एक पल्य के) असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष जाय। ऐसा १ पल्योपम। ऐसा १० क्रोडा-क्रोडी पल्योपम का १ सागरोपम, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती सातवीं नरक में ऐसे ३३ सागरोपम में पड़ा है। आहाहा ! `ककड़ी के चोर को फाँसी' नहीं है। बड़ा गुना किया (है)। आत्मा का अनादर करके तीव्र रौद्रध्यान किया। आहाहा ! भगवान अनंत आनंद और अनंत शक्ति का निधान प्रभु ! उसका अनादर करके यह (आत्मा का) सुख है नहीं, और यह (सुख) है, यह (सुख) है, विषय का सुख, भोग का सुख ये (सुख) है। (ऐसे) इसके अस्तित्व की कबूलात में भगवान अनंत आनंद के नाथ का अनादर किया। जिसके फल में ११ लाख पल्योपम आदि पल्योपम का मुद्दत के दुःख में गया। समझ में आया ? समझ में आता है कि नहीं ? आहाहा ! वह भी कल्पित सुख अरेरे...! भोग में दुःख है। आहाहा ! उसकी कुरुमति रानी थी। ९६ हज़ार (रानियों में) एक (कुरुमति) रानी थी। एक हज़ार देव सेवा करते थे। समझ में आया ? आहाहा ! उसको स्त्री रतन कहते हैं। स्त्री रतन

क्यों ? कि (उसका) बहुत कोमल और बहुत सुंदर शरीर (होता है)। हज़ार देव तो उस स्त्री की सेवा करे। स्त्री के भोग में इतना मशगूल हो गया कि मृत्यु के काल में ऐसा बोले कि, `कुरुमति...कुरुमति...' ! हीरा के पलंग में सोते थे। १६००० देव अंदर तैयार थे। आहाहा ! `ए कुरुमति...' कोई भोग न ले सके। मरके सातवीं नरक में गये। भाई ! आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, तेरा ज्ञानस्वभाव है, उसकी परिणति होवे तो अनंत आनंद तुझे आता है। साथ में आनंद(रूपी) पुत्र का जन्म होता है। सर्वज्ञ की परिणति के साथ आत्मा भोगवेदन करता है तो आनंद के पुत्र का जन्म होता है। उसमें (भोग में) दुःख उत्पन्न होता है। आहाहा ! यह तो भारी मार्ग भाई ! एक अंतर्मुहूर्त आत्मा का ध्यान करने से केवलज्ञान की झळहळती ज्योत प्रगट होती है और ये केवलज्ञान अनंत आनंद के साथ उत्पन्न होता है। यह अनंत आनंद और केवलज्ञान की पर्याय समय - समय में भिन्न - भिन्न होती है। जो पहले समय में केवलज्ञान हुआ वह दूसरे समय में नहीं रहेगा। जो पहले समय में अनंत आनंद आया वह दूसरे समय में नहीं (आयेगा)। दूसरे समय में ऐसा परंतु वह (आनंद) नहीं। समझ में आया ? और यह दुःख तो ओहोहो...! सातवीं नरक का अनंत भव किया भाई ! तुझे मालूम नहीं। भूल गया।

पेट में से बच्चा आये बाद में वह ऊँआ - ऊँआ करे। (उसका अर्थ यह है कि) तुम वहाँ और हम यहाँ। अब हमारा कोई संबंध नहीं। अव्यक्तपने ऐसा है। यह होला (पंडुक - एक पक्षी) होता है, वह भी `सोऽहम् - सोऽहम्' बोलता है। परंतु सोऽहम् का उसे भान कहाँ है ? (होला) कबूतर से छोटा होता है। पारेवा अलग होता है और होला अलग है। दोनों अलग - अलग हैं। हमारी भाषा में होला कहते हैं। वह होला भी होले के भव में भाषा तो ऐसी बोलता है, सोऽहम् (अर्थात्) स - परमात्मा ते हुँ। सो वह मैं। यह तो अभी भेद आया। सोऽहम् निकाल करके `अहम्' पूर्ण सर्वज्ञ, सर्वदर्शीशक्ति परिपूर्ण परमात्म स्वभाव (मैं हूँ)। आहाहा ! समझ में आया ? बाद में कौन पूछेगा ? जहाँ आत्मा का आनंद आया बाद में कौन कर्ता - कौन कर्म ? उसमें राग का कर्ता और क्रिया का रस ही नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ परिणमित लिया है। सर्वज्ञ शक्ति है, यह परिणमित हुई तो सर्वज्ञ शक्ति का यथार्थ वेदन हुआ। समझ में आया ? पहले कहा था न ? कि पहले ज्ञानमात्र आत्मा कहा था तो शिष्य ने प्रश्न किया था। `ज्ञानमात्र आत्मा में तो एकांत हो जाता है। (इसमें तो) एक ही गुण आया। अनेकांत नहीं रहा अनेक धर्म नहीं रहे।' (तो आचार्य भगवान कहते हैं) सुन तो सही। ज्ञानमात्र आत्मा कहने में अनंत धर्म आ गये। ज्ञान है तो ज्ञान

अस्तिपने है, ज्ञान वस्तुत्वपने है, ज्ञान प्रमेयपने है, ज्ञान ज्ञातापने है - ऐसी अनंत शक्तियाँ उसमें आ गई और ज्ञान के परिणमन में अनंत शक्ति उछलती है। आहाहा ! अर्थात् सम्यक्ज्ञान की परिणति जब हुई (तो साथ में आनंद आया)। ११ अंग का बोध यह कोई ज्ञान की परिणति नहीं। आहाहा ! अंदर स्वरूप को ज्ञेय बनाकर ज्ञान हुआ यह स्वरूप की परिणति (है)। समझ में आया ? यह यथार्थ परिणति जब हुई तो आनंद आया। जब कार्य हुआ तो उसने कारण को यथार्थ (रूप से) देखा और जाना। आहाहा ! समझ में आया ? बात थोड़ी है परंतु बात बहुत सत्य है। इस समय में चले नहीं इसलिये सभी को कठिन लगे। परंतु क्या हो सकता है ? भाई ! आहाहा !

यहाँ तो शक्ति का वर्णन है, प्रभु ! (उसमें) व्यवहार का तो अभाव की बात है। यहाँ अभाव की बात की नहीं। परंतु यहाँ निश्चय करने को चौथे गुणस्थान में सर्वज्ञ (स्वरूप की) परिणति जब हुई तो केवलज्ञान प्रगट हुआ। (केवलज्ञान स्वरूप) था तो था परंतु ज्ञान ज्ञेय बनकर प्रतीत हुई तब श्रद्धा में केवलज्ञान प्रगट हुआ। और तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान की परिणति प्रगट हुई। यह परिणति प्रगट हुई उसकी चौथे गुणस्थान में प्रतीत आयी। आहाहा ! भाई ! सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है (तुझे मालूम नहीं)। जिसने सारे पूर्ण सत्य को प्रतीत में (लिया)। सम्यक् (कहा) न ? (सम्यक् यानी) सत्य। सारा - पूर्ण सत्य की प्रतीति (हुई)। ज्ञान में ज्ञेय होकर प्रतीति हुई। जानने में आया बाद में प्रतीति (हुई)। जानने में नहीं आया तो प्रतीति किसकी ? समझ में आया ? आहाहा !

सर्वज्ञ शक्ति का परिणमन हो तो सर्वज्ञ शक्ति का कार्य आाया; तो कारण की प्रतीति है (ऐसा कहा जाये)। आहाहा ! चौथे गुणस्थान में तो सर्वज्ञ शक्ति की प्रतीति आयी। 'मैं केवलज्ञान हूँ' ऐसी केवलज्ञान की प्रतीत श्रद्धा में आयी। (केवलज्ञान) प्रगट में नहीं आया। प्रगट में १३ वे गुणस्थान में आता है। समझ में आया ?

एक बार वह बात कही थी। मति- श्रुतज्ञान में सारी पूर्ण वस्तु प्रतीति में आयी। इस मति - श्रुतज्ञान में केवलज्ञान श्रद्धा में प्रगट हुआ। नहीं माना था उसे माना। बाद में यह मति - श्रुतज्ञान हुआ वह केवलज्ञान को बुलाते हैं। (जैसे कोई किसी को पूछता है) 'भैया ! मुझे सिद्धपुर जाना है। उसका मार्ग कहाँ से निकलेगा ? थोर में से जाता है कि नदी के किनारे से जाता है ? भाई ! यहाँ आओ, मार्ग दिखाओ।' ऐसा कहते हैं ना ? यहाँ मति - श्रुतज्ञान में आत्मा की केवलज्ञान की पूर्ण प्रतीति ज्ञान में आयी तो यह प्रतीति, मति - श्रुतज्ञान की पर्याय केवलज्ञान को बुलाते हैं कि, 'आव परिणति आव, परिणति आव।' ऐसी बातें कभी सुनी न हो। आहाहा ! धवल में आता है। जयधवल, धवल (ऐसे) ४० पुस्तकें हैं। सब देखे हैं। आहाहा !

आत्मा में पूर्ण आनंद, सर्वज्ञ और सर्वदर्शीशक्ति की परिणति हो तब पूर्ण दशा है ऐसा प्रतीति में आया कि, यह शक्ति है। (पहले) उसकी श्रद्धा नहीं थी वह अनुभव में श्रद्धा हुई और पर्याय की प्रतीति हुई कि, यह पर्याय पूर्ण है, उसको केवलज्ञान कहते हैं, आहाहा !

इसलिये प्रवचनसार की ८० गाथा में लिया। ``**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं**'' जिसने अरिहंत की केवलज्ञान की पर्याय परिणतिरूप है, ऐसा माना वह विकल्प से माना है। यह केवलज्ञान की पर्याय है, ऐसा जाना वह विकल्प से (जाना) है। परंतु बाद में वह आत्मा में मिलान करता है कि, मेरे पास केवलज्ञान की पर्याय तो है नहीं। यहाँ शक्ति के रूप में तो केवल(ज्ञान) है, तो उसकी दृष्टि सर्वज्ञ शक्ति ऊपर पड़ने से (श्रद्धा में केवलज्ञान प्रगट हुआ)। प्रवचनसार में ज्ञान अधिकार में ऐसा कहा है कि, त्रिकाली ज्ञान को कारण बनाकर पर्याय में कार्य हुआ, आहाहा ! ऐसी बातें हैं। असाधारण ज्ञान को कारण बनाकर, ऐसा पाठ है। आहाहा !

प्रभु ज्ञान शक्ति से परिपूर्ण है। इस शक्ति को कारण बनाकर जब दृष्टि में सम्यग्दर्शन हुआ तब प्रतीत में भी आया कि, मेरी यह (पूर्णता की) परिणति अल्प काल में होगी। समझ में आया ? वर्तमान में केवलज्ञान है, ऐसी प्रतीति आयी (इसके पहले) केवलज्ञान नहीं है, ऐसी प्रतीति थी। `मैं एकेला पूर्ण ज्ञानस्वरूप शक्ति(रूप) हूँ।' ऐसी प्रतीति नहीं थी तो उसको केवलज्ञान नहीं था। समझ में आया ? आहाहा ! परंतु जब अंदर (स्वरूप को) ज्ञेय बनाकर ज्ञान में प्रतीत आयी तो श्रद्धा में केवलज्ञान प्रगट हुआ। उसे पूर्ण (पर्याय) प्रगट होने की तैयारी हो गयी। आहाहा ! ऐसी बात है।

लोग तो अभी बाहर की तकरार में पड़े हैं। `पुण्य है सो धर्म है, शुभभाव धर्म है। उसे धर्म नहीं माने तो उसके साथ सत्याग्रह करो' ऐसा आया है। अरे...प्रभु ! किसके साथ तू सत्याग्रह करता है ? अरे भाई ! शुभभाव तो स्वरूप में है नहीं। द्रव्य में है नहीं, गुण में है नहीं। यहाँ तो शक्ति के परिणमन में (भी) शुभभाव है नहीं। समझ में आया ? चाहे तो सम्यग्दर्शन का परिणमन हो परंतु उस परिणमन में शुभभाव है नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

परिणमित भाषा कहकर तो गज़ब काम किया है ! और ऊपर भी है। ``**...परिणत एक ज्ञप्तिमात्र भाव क्रिया...**'' ज्ञान के आश्रय से ज्ञान की पर्याय परिणमित हुई। ऐसे यह केवलज्ञान भी, ज्ञान शक्ति त्रिकाल है उसके आश्रय से पर्याय में केवलज्ञान की परिणति हुई। आहाहा ! ऐसे छद्मस्थ को केवलज्ञान प्रतीत में आया। एक ज्ञानमूर्ति भगवान आत्मा पूर्ण है। उसकी पूर्ण शक्ति है। उसका आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन हुआ (उस)

सम्यग्दर्शन की पर्याय में पूर्ण की प्रतीति है। विकार का अभाव है। समझ में आया ? शुभराग का भी जिसमें अभाव है। तब यथार्थ प्रतीति कहने में आती है। आहाहा !

त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव की परिणाम में प्रतीति हुई तो उस समय में जो ज्ञान पर्याय प्रगट हुई, वह राग जिस प्रकार का है (उसे जानती हुई) स्वपर प्रकाशक ज्ञान की पर्याय अपने में अपने कारण से प्रगट होती है। राग है तो पर को जानने की पर्याय प्रगट हुई, ऐसा भी नहीं। समझ में आया ? राग होता है, ज्ञानी को भी राग आता है। १२ वीं गाथा में कहा न ? जानने में आता हुआ प्रयोजनवान (है)। '**तदात्वे**' जानने में आता हुआ प्रयोजनवान उसका अर्थ यह है कि, राग के काल में अपने ज्ञानस्वरूप के लक्षण से स्वपर प्रकाशक पर्याय अपने कारण से, अपनी सत्ता में, अपनी सत्ता के सामर्थ्य से प्रगट होती है। उसमें राग का ज्ञान कहना यह व्यवहार है। राग संबंधी अपना ज्ञान और अपना ज्ञान दोनों अपने ज्ञान से उत्पन्न होते हैं, राग के कारण से नहीं। राग का तो अभाव है परंतु राग के कारण से ज्ञान भी नहीं, आहाहा ! गज़ब बात है ! समझ में आया ? १२ वीं गाथा में '**तदात्वे**' शब्द पड़ा है। उस समय में (अर्थात्) उस काल में जिस समय ज्ञान की अल्प पर्याय है और राग आदि है, तब उस समय ज्ञान उसे जानता है। वह जानने में आता हुआ प्रयोजनवान है। उसका अर्थ कि, वहाँ पर को जानता है, ऐसा भी व्यवहार कहा है। परंतु यहाँ तो उससे भी निकाल दिया कि अपनी परिणति को ही जानते हैं। बाकी राग को जानना कहना - वह तो असद्भूत उपचार है। आहाहा ! विशेष लेंगे....

अभेद के अनुभव में भेद नहीं दिखता और यदि भेद दिखे तो अभेद का अनुभव नहीं रहता। (परमागमसार - ६१८)

प्रवचन नं. १२
शक्ति-१०, ११ दि. २२-०८-१९७७
विश्वविश्वविशेषभावपरिणतात्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्वशक्तिः ।।१०।।
नीरूपात्मप्रदेशप्रकाशमानलोकालोकारमेचकोपयोगलक्षणा स्वच्छत्वशक्तिः ।।११।।

समयसार शक्ति का अधिकार चलता है। १० वीं शक्ति। ``**समस्त विश्व के विशेष भावों को...**'' सर्वज्ञशक्ति में बहुत गंभीरता है। सर्वज्ञ शक्ति है उसका परिणमन अपने से होता है। इसलिये कहा कि, ``**समस्त विश्व के विशेष भावों को जाननेरूप से परिणमित...**'' समझ में आया ? सूक्ष्म है।

सर्वज्ञ शक्ति जो त्रिकाल है वह सर्व भावों को जाननेरूप वर्तमान में परिणमित होती है। है ? ``**ऐसे आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्व शक्ति...**'' उसमें बहुत तकरार है ना ? वे कहते हैं कि, सर्वज्ञ शक्ति है, वह सर्व की अपेक्षा रखती है, इसलिये यह व्यवहार सर्वज्ञ है। (लेकिन) ऐसा नहीं (है)। आत्मा में सर्वज्ञ स्वभाव - शक्ति (है)। उसकी प्रतीति करने से, उसके सन्मुख होने से अथवा सर्वज्ञ शक्ति का धरनेवाला भगवान आत्मा ! उसका आश्रय करने से प्रथम सम्यग्दर्शन होता है। इस सम्यग्दर्शन में सर्वज्ञ शक्ति - केवलज्ञान श्रद्धा में उत्पन्न हुआ। क्या कहा ? श्रद्धापने केवलज्ञान हुआ। सूक्ष्म बात है। जो श्रद्धा में आत्मा अल्पज्ञ है अथवा सर्वज्ञ शक्ति नहीं, ऐसी जो दृष्टि थी, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! एक प्रश्न बहुत चला था न ? कि जगत में सर्वज्ञ है कि नहीं ? तो प्रश्न का ऐसा उत्तर दिया कि, ``सर्वज्ञ की सर्वज्ञ जाने'' अरे प्रभु ! क्या करे भाई ! आहाहा !

आत्मा पदार्थ है। उसमें सर्वज्ञ - `ज्ञ' स्वभाव कहो कि सर्वज्ञ स्वभाव कहो, उसका

यही स्वरूप है। सर्वज्ञ स्वभाव को धरनेवाला शक्तिवान आत्मा (है)। क्योंकि धर्म का मूल तो सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ से धर्म की स्थिति उत्पन्न हुई है। आहाहा ! तो सर्वज्ञ क्या है और सर्वज्ञ कैसे परिणमित होते हैं ? वह बात उसको जाननी पडेगी। आत्मा में सर्वज्ञ शक्ति - स्वभाव है।

उसमें भी दो मत हैं। श्वेतांबर कहते हैं कि, केवलज्ञान सत्तारूप है और दिगंबर कहते हैं कि, (केवलज्ञान) शक्तिरूप है। दोनों में फ़र्क है। (श्वेतांबर कहते हैं) केवलज्ञान है, (लेकिन) उस पर आवरण है, (लेकिन) ऐसा नहीं है। केवलज्ञान है वह शक्तिरूप है। उसके परिणमन में अल्पज्ञान है, यह उसका आवरण है। संप्रदाय में तो बहुत चर्चा चली थी न ! सत्ता है और आवरण है, ऐसा होता नहीं। शक्तिरूप है (दोनों में) फ़र्क है। सत्ता और शक्ति में बहुत फ़र्क है। वे लोग ऐसा कहते हैं, प्रगट है और आवरण है। यहाँ थोड़े फ़र्क में बहुत फ़र्क है। समझ में आया ?

यहाँ तो शक्तिरूप (है)। शक्ति नाम ताकत। उसकी सर्वज्ञ होने की ताकत - शक्ति है। इस सर्वज्ञ शक्ति की ताकत परिणमन में जब होवे तो सर्वज्ञ की परिणति आती है। आहाहा ! यह सर्वज्ञ शक्ति द्रव्य में भी है, गुण में भी है और उसका पर्याय में परिणमन होता है। इसलिये ऐसी भाषा है देखो ! ``**विशेष भावों को जाननेरूप से परिणमित...**'' आहाहा !

शक्ति का अधिकार चलता है। उसका (ऐसा) सामर्थ्य है। परंतु जिस समय, जिस काल में इस सामर्थ्य का परिणमन होता है, उसी काल में सर्वज्ञ शक्ति का परिणमन होकर उस काल में सर्वज्ञपना प्रगट होता है। आहाहा ! मार्ग बहुत अलौकिक है, भाई ! यह सर्वज्ञ शक्ति जाननेरूप से परिणमित (होती है)। आहाहा ! यहाँ पर को जानना ऐसा शब्द नहीं है। ``**विशेष भावों को जाननेरूप से परिणमित...**'' जो अनंत द्रव्य, अनंत गुण आदि भेदरूपभाव है, उस सब को सर्वज्ञ एक समय में जानने की शक्ति रखते हैं। समझ में आया ?

(प्रवचनसार ८० गाथा में) कहा कि, ``**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं**'' जिसने अरिहंत के द्रव्य, गुण और पर्याय को जाना, तो उस पर्याय में केवलज्ञान आया। जगत में केवलज्ञान की परिणति है उसको जाना। वह अपने आत्मा में मिलान करता है कि, मेरी पर्याय में सर्वज्ञपना क्यों नहीं ? समझ में आया ? क्योंकि उनमें सर्वज्ञ शक्ति थी, तो सर्वज्ञ शक्ति का परिणमन उनको हुआ। मेरे में सर्वज्ञ शक्ति है तो परिणमन क्यों नहीं ? समझ में आया ? आहाहा ! मेरी दृष्टि अंतर में गई नहीं (और) सर्वज्ञ शक्ति का स्वीकार नहीं (है)। इसलिये सर्वज्ञ की परिणति नहीं होती है। समझ में आया ? अरिहंत

की पर्याय को जाने तो वह अपने आत्मा को जाने और ``**मोहो खलु जादि तस्स लयं**'' उसको दर्शनमोह का नाश होता है।

सबेरे कहा था कि, मुख्य वृत्ति से केवलज्ञान वर्तता है, यह साधारण बात है। श्रीमद् राजचंद्र (आत्मज्ञान को) प्राप्त थे। समझ में आया ? तो कहते हैं कि, जिनके वचन के योग से, विचार करने से सर्वज्ञ शक्ति की प्रतीति हुई, ऐसे भगवान को हम नमस्कार करते हैं। परंतु यह सर्वज्ञ शक्ति की प्रतीति हुई - केवलज्ञान है, ऐसा जो ख्याल में नहीं था; (उसे) केवलज्ञान है, पूर्णज्ञान है, ऐसी प्रतीति हुई तो श्रद्धापने केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है !

``णमो अरिहंताणं'' वह तो क्या चीज़ है, बापू ! वैसे के वैसे भाषा तो अनंतबार रट ली। परंतु अरि नाम विकार का नाश करके जिन्होंने स्वआश्रय से सर्वज्ञ पर्याय प्रगट की। (उन्होंने) सर्वज्ञ पर्याय प्रगट की परंतु यहाँ अभी जिसने (सर्वज्ञ पर्याय) प्रगट नहीं की, उसे प्रतीति में आया कि, मैं सर्वज्ञ स्वरूप हूँ। तो प्रतीत में आनंद आया। प्रतीत में अतीन्द्रिय आनंद आया। इस आनंद के कारण से अंदर सारी चीज़ की प्रतीति उत्पन्न हुई। ओहोहो ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि, श्रद्धापने केवलज्ञान हुआ। सम्यग्दर्शन में श्रद्धापने केवलज्ञान हुआ। दूसरी बात - विचारदशा से केवलज्ञान हुआ। पहले दर्शन लिया, बाद में ज्ञान (लिया), बाद में चारित्र (लिया)। तीन बोल लेंगे। सुनो ! आत्मा वस्तु अकेले ज्ञान का पिंड, `ज्ञ' स्वभावी त्रिकाल `ज्ञ' स्वभाव (है)। त्रिकाल `ज्ञ' स्वभाव में सर्वज्ञ स्वभाव शक्तिरूप है। सम्यग्दर्शन में उसकी प्रतीति हुई। श्रद्धापने केवलज्ञान नहीं था (उसकी ज़गह) प्रतीत में केवलज्ञान है, ऐसी प्रतीत आयी तो श्रद्धापने केवलज्ञान प्रगट हुआ। सूक्ष्म बात है, भगवान ! आहाहा ! विचारदशा से केवलज्ञान प्रगट हुआ। क्योंकि ज्ञान की पर्याय में सारे ज्ञेय की प्रतीति आती है। तो ज्ञान की पर्याय में भी विचारदशा से केवलज्ञान आया। श्रद्धापने (केवलज्ञान) आया (और) विचारदशा से भी (केवलज्ञान) आया। आहाहा ! थोड़ी सूक्ष्म बात है। इच्छादशा से केवलज्ञान आया। तीन बोल लिये। पहले दर्शन लिया, बाद में ज्ञान, फिर इच्छा (लिया)। (इच्छा) यानी चारित्र। भाई ! सर्वज्ञपना मानना यह कोई अलौकिक चीज़ है। समझ में आया? आहाहा ! ऐसे - ऐसे (तो) (ऊपर - ऊपर से तो) सर्वज्ञ है, अरिहंत है ऐसा तो बहुत गोख लिया। गोख लिया समझे ? (अर्थात्) रट लिया। आहाहा !

भगवान आत्मा ! वर्तमान ज्ञान की पर्याय में यह सर्वज्ञ शक्ति स्वभावरूप है। ऐसा स्वाश्रय करके सर्वज्ञपना का परिणमन जिसको हुआ, उस परिणमन की प्रतीति पहले सम्यग्दर्शन

में होती है। समझ में आया ? श्रद्धापने केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। (पहले) प्रतीत में ज्ञानस्वरूपी पूर्ण नहीं था। 'मैं तो अल्पज्ञ और रागरूप हूँ' (ऐसा प्रतीति में था)। वर्तमान पर्यायबुद्धि में अल्पज्ञ और रागबुद्धि थी। सर्वज्ञ और केवलज्ञान (स्वरूप) है। ऐसी श्रद्धा नहीं थी। आहाहा ! ऐसा मार्ग ! भगवान आत्मा पूर्णानंद चैतन्यप्रकाश का तेज का पुंज है। आहाहा ! यह चैतन्यचंद्र, प्रकाश का पुंज, शीतलता, शांति और उपशमरस का कंद (है)। आहाहा ! ऐसा प्रतीत में जब आया तो कहते हैं कि, श्रद्धापने केवलज्ञान प्रगट हुआ। (केवलज्ञान को) नहीं माना था और (अब) माना तो (केवलज्ञान) प्रगट हुआ, (ऐसा कहते हैं)। सूक्ष्म बात है, भाई ! विचारदशा से केवलज्ञान हुआ। ज्ञान की पर्याय में सारे सर्वज्ञ स्वभाव की परिणति ऐसी है, उसकी प्रतीत आ गई। ज्ञान में भी आ गई।

रात को एक प्रश्न हुआ था। खँभा होता है न खँभा ? उसकी हांस होती है। हांस (माने) एक भाग (हिस्सा)। एक भाग है यह अवयव है। (उस एक भाग को देखा तो) सारी चीज़ - अवयवी का ज्ञान हो गया। यह अवयव इस अवयवी का है। पूरा खँभा मतिज्ञान की पर्याय में प्रतीति में आ गया। ऐसे मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में सर्वज्ञ शक्ति की प्रतीति हुई। मतिज्ञान का जो अंश (प्रगट) हुआ, यह केवलज्ञान का अंश है। इस अंश को जिसने जाना उसने अंशी को जाना। (जिसने) अवयव को जाना उसने अवयवी को जाना, ऐसा जयधवल में पाठ है। बात थोड़ी सूक्ष्म तो है लेकिन मार्ग तो यह है। समझ में आया ?

इच्छादशा से केवलज्ञान वर्त रहा है, ऐसा कहा। श्रद्धापने केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, विचारदशा से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, इच्छादशा से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, क्योंकि इच्छा-भावना अब केवलज्ञान प्राप्त करने की है। समझ में आया ? कहा न ? '**जाननेरूप से परिणमित...**' ऐसी जो पर्याय है, उसे प्रगट करने की सम्यक्दृष्टि को इच्छा हुई तो इच्छादशा से केवलज्ञान वर्त (रहा है)। ऐसा कहने में आया है। बहुत सूक्ष्म बात है, बापू ! वीतराग का धर्म बहुत सूक्ष्म है। एक बात (हुई)।

(अब) दूसरी (बात)। '**जाननेरूप से परिणमित ऐसी आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञशक्ति।**' सर्वज्ञ कहा तो पर की अपेक्षा आयी, ऐसा नहीं है। यह आत्मज्ञानमयी अपनी पर्याय सर्वज्ञरूप से-आत्मज्ञानमयी परिणमित हुई है। अपने कारण से सर्व को जानना और अपने को जानना, ऐसी आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञ शक्ति (है)। पर को जानना ऐसा नहीं लेकिन सर्व को और अपने को जाने, ऐसी आत्मज्ञानमयी शक्ति (है)। आहाहा ! क्या कहा समझ में आया ? मार्ग-धर्म ऐसा सूक्ष्म है, भाई ! क्रियाकांड करते-करते जिंदगी पूरी हो गई, आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, सर्वज्ञशक्ति के स्वाश्रय से सर्वज्ञ पर्याय प्रगट हुई है। सर्व

है तो उसको जानने के लिए प्रगट हुई है, ऐसा भी नहीं। समझ में आया ? अभी शक्ति में बहुत विरोध है। समझ में आया ?

खाणिया चर्चा में सामनेवाले पंडित ऐसा कहते हैं कि, सर्वज्ञशक्ति है इसमें सर्व की-पर की अपेक्षा आयी तो एक धर्म आत्मज्ञानमयी है और एक पर को जानने का धर्म अंदर है, ऐसे दो धर्म है। (परंतु) दो धर्म नहीं-एक ही धर्म है। आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञशक्ति (कहा) है लेकिन धर्म एक ही हैं। सर्वज्ञपना कहो या आत्मज्ञपना कहो, इसमें विवक्षा का कथनभेद है, वस्तुभेद नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है। समझ में आया ? समझ में आये ऐसा है। नहीं समझ में आये ऐसा नहीं है, बापू ! उसमें केवलज्ञान लेने की ताकत है न, प्रभु ! आहाहा !

एक समय में उस समय के काल में, वही केवलज्ञान पर्याय उत्पन्न करने का स्वकाल है, इसलिये उत्पन्न होती है। पूर्व के चार ज्ञान थे और (उसका) व्यय होकर (केवलज्ञान) उत्पन्न हुआ, यह व्यवहार है, आहाहा ! यह सर्वज्ञ पर्याय-केवलज्ञान उस समय में उत्पन्न होने का स्वकाल है। और यह केवलज्ञान की पर्याय सर्व को जाने इसलिये पर को जानना उसमें आया, इतनी अपेक्षा आयी, ऐसा नहीं है। यह सर्वज्ञपना वही आत्मज्ञपना है। समझ में आया ? सर्व को जाननेरूप परिणमन अपना अपने से स्व आश्रित है, पर के कारण नहीं। लोकालोक है तो सर्वज्ञपना का परिणमन हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? थोड़ा फ़र्क़ (लगे) लेकिन उसमें बहुत फर्क है।

यह चर्चा तो हमारे (साथ) पचास साल पहले बहुत हो गयी थी। `८३ की साल में दामनगर में एक सेठ थे। वे कहते थे कि, यह लोकालोक है तो सर्वज्ञपना उत्पन्न होता है। यहाँ कहा कि, यह सर्वज्ञपने की पर्याय अपने से अपने कारण से स्वाश्रय से उत्पन्न हुई है। लोकालोक है इसलिये उत्पन्न हुई है, ऐसा नहीं है। ज्ञेय है तो ज्ञान की पूर्ण परिणति प्रगट हुई है, ऐसा नहीं है। अपने कारण से प्रगट हुई है, आहाहा !

लेकिन किसे नक्की-निर्धार करने की पड़ी है ? अरे प्रभु ! बापू ! तू कौन है ? भाई ! तेरी शक्ति में सर्वज्ञपना पड़ा है। इतना इसका सामर्थ्य है ! राग को (करने का) सामर्थ्य तेरे में नहीं, अल्पज्ञपने रहना ऐसा सामर्थ्य तेरे में नहीं, आहाहा ! ऐसी बात है। लोगों के साथ मेल नहीं खाये इसलिये बेचारे विरोध करे।.

अरे...भाई ! आत्मज्ञान कहो कि सर्वज्ञ कहो, एक ही शब्द है। यब शब्द का फर्क है। आत्मज्ञान यह निश्चय है और सर्वज्ञपना (है), यह व्यवहार है, ऐसा नहीं। `**आत्मज्ञानमयी...**' ऐसा कहा न ? आत्मज्ञानवाला ऐसा भी नहीं (कहा)। लेकिन आत्मज्ञानमयी (कहा)। आहाहा ! आत्मज्ञानमयी कौन ? कि सर्वज्ञ। आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञ। आहाहा ! एक

समय में सर्वज्ञ की परिणति आत्मज्ञानमयी है। यहाँ पर के ज्ञान की बात नहीं है। समझ में आया ? पर संबंधी अपना ज्ञान और अपना (स्व का) ज्ञान, उस समय में अपने से परिणमित हुआ है। पर को जानते हैं तो सर्वज्ञ शक्ति प्रगट हुई, ऐसा नहीं। आहाहा ! अरे... ऐसी बात है। ऐसा सूक्ष्म समझकर कब धर्म हो ? ऐसी बात है, आहाहा ! अरे ! समझ में नहीं आये ऐसा नहीं है, आहाहा ! उसे खातरी (भरोसा) हो जाये और अल्पकाल में केवलज्ञान होगा, ऐसा निर्णय आ जाये। ऐसे अंदर में आत्मा में आत्मज्ञानमयी अनुभूति में प्रतीति हुई। 'मैं तो अकेली ज्ञानशक्ति, सर्वज्ञ (शक्ति से) भरा पड़ा हूँ।' आहाहा ! यह सर्वज्ञशक्ति के स्वभाव के आश्रय से प्रतीति हुई। प्रतीति ऐसे (ही) नहीं (हुई)। ज्ञान में (शक्ति) आयी नहीं और प्रतीति हुई, वह प्रतीति नहीं। (उसे प्रतीति नहीं कहते)।

ज्ञान की पर्याय में सर्वज्ञ शक्ति (स्वरूप) ऐसा द्रव्य लक्ष में आया। ज्ञान की पर्याय में सर्वज्ञशक्ति और सर्वज्ञ शक्ति को धरनेवाले का ज्ञान आया। सर्वज्ञशक्ति पर्याय में नहीं आयी। अरे...! ऐसी बातें हैं, समझ में आया ? परिणति शब्द का प्रयोग किया है न ? कल बहुत लिया था। यह (दो पद) श्रीमद् में से निकलते हैं। श्रीमद् राजचंद्र में से पढ़ा न ? (हमने) तो हजारों शास्त्र पढ़ें हैं।

यहाँ कहते हैं, '**आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञशक्ति...**' सर्वज्ञ आया तो पर की अपेक्षा आयी, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञशक्ति है। सर्वज्ञशक्ति कहो या आत्मज्ञानमयी कहो, एक ही चीज है। ``''

आत्मज्ञान है यह निश्चय से है और सर्वज्ञ शक्ति व्यवहार से है, ऐसा नहीं है। अथवा सर्व को जानने का सर्वज्ञ (रूप) परिणमन हुआ, यह व्यवहार और अपने को जाना वह निश्चय, ऐसा नहीं है। पर को और अपने को जानने की परिणति अपने से, अपने कारण से, अपनी सत्ता से परिणमित हुई है। पर ज्ञेय की सत्ता है तो सर्वज्ञपना का परिणमन हुआ, ऐसा नहीं है। पर की अपेक्षा नहीं है। आहाहा ! अरे...! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं।

मार्ग अलग (है)। जिसके फल में केवलज्ञान (आये)। 'सादि अनंत अनंत समाधि सुखमां' - जिसका फल केवलज्ञान, अनंत आनंद ऐसी आदि (शुरूआत) हो। पर्याय में अनंत आनंद की आदि हुई न ? अनादि से शक्ति तो है लेकिन (भान हुआ तो) आदि हुई-प्रगट हुई। 'सादि अनंत अनंत समाधि सुखमां' जब से केवलज्ञान हुआ (तब से उसकी) आदि हुई। क्योंकि शक्ति तो अनादि से है परंतु प्रगट हुई (यह) आदि (हुई)। और जब आदि हुई वहाँ सादि अनंत अनंत समाधि, शांति...शांति...शांति...शांति (प्रगट हुई)। 'उपशमरस वरसे रे प्रभु तारा नयनमां' (ऐसी) स्तुति आती है। ऐसे केवलज्ञान में अकेला उपशमरस

वर्त रहा है। आहाहा ! उपशमरस यानी चारित्र। चारित्र यानी वीतरागदशा। केवलज्ञान हुआ तो साथ में यथाख्यात चारित्र हुआ। यथाख्यात यानी जैसी वस्तु है, ऐसी पर्याय में प्रसिद्धि आयी। सर्वज्ञपना में चारित्र की पूर्ण पर्याय (प्रगट हुई)। शांति..शांति...अकषाय स्वभाव...वीतरागरस...उपशमरस की परिणति पूरी हो गई, आहाहा ! समझ में आया ? यह बात परिणति में से चलती है। यह तो गंभीर (मार्ग है), भाई !

अमृतचंद्राचार्य दिगंबर संत आकाश के स्थंभ (धर्म के स्थंभ हैं)। आकाश को स्थंभ नहीं होता लेकिन वे तो धर्म के स्थंभ (हैं), आहाहा ! आकाश होता है उस को स्थंभ होता है ? वैसे यह तो वीतरागी परिणति का स्थंभ है, भगवान ! इस तरह तुम भी ऐसे हो !

स्वभाव में, शक्ति में, सामर्थ्य में, सत्व में, सत् के भाव में, सत्-वस्तु उसके भाव में सर्वज्ञशक्ति है। आहाहा ! ऐसी प्रतीति जहाँ हुई, तो (वर्तमान में) सर्वज्ञ की परिणति भले न हो लेकिन सर्वज्ञ की परिणति की पर्याय में प्रतीति आयी कि, ओहो ! इसमें से तो सब सर्वज्ञ की पर्याय ही प्रगट होगी। मैं अभी सर्वज्ञ पर्याय में आऊँगा। बीज (दूज) उगी है तो तेरहवें दिन में पूर्णिमा होगी, होगी और होगी, आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बातें हैं। दूसरे के साथ कोई मेल नहीं खाये। बापू ! मार्ग ऐसा है, भाई ! समुद्र में जैसे लबालब पानी भरा हो ऐसे भगवान ज्ञान शक्ति और आनंद शक्ति से लबालब भरा है, आहाहा ! उसका जब परिणमन होता है (तो) उसको आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञशक्ति कही।

सर्वज्ञ है तो उस में पर की अपेक्षा है ही नहीं। निश्चय से आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञशक्ति है। बाद में पर को जानना ऐसे कहना, वह व्यवहार हो गया। परंतु (परिणमन) निश्चय है। समझ में आया ? ऐसा मार्ग (है), भाई ! यहाँ क्लास में शक्ति का वर्णन लेने को कहा था, आहाहा !

यह सब जड़ के-मिट्टी के रजकण भिन्न, कर्म के रजकण जड़-अचेतन भिन्न, पुण्य-पाप के परिणाम भिन्न, अल्पज्ञ पर्याय भी जिसमें नहीं है, ऐसी भिन्न सर्वज्ञशक्ति है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बात है। राग से (धर्म) उत्पन्न होता है, ये बात (यहाँ) नहीं है, ऐसा कहते हैं। व्यवहार रत्नत्रय करते-करते सम्यग्दर्शन होगा, केवलज्ञान होगा, ऐसा नहीं है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन में ऐसी प्रतीति आयी कि, मैं सर्वज्ञ शक्तिमयी हूँ, तो उसकी पूर्ण परिणति अपने से होगी। आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञ परिणति है, यह मेरे से उत्पन्न होगी और षट्कारक परिणमन होकर पर की अपेक्षा रखे बिना उत्पन्न होगी। ज्ञेय-लोकालोक है तो (उसकी) अपेक्षा रखे बिना मेरी पर्याय सर्वज्ञरूप से परिणमेगी। भैया ! ऐसी बात

है। भगवान ! आहाहा ! ऐसा मार्ग (है). अरे भगवान ! तू कौन है, प्रभु ? समझ में आया ? आहाहा !

समयसार में जयसेन आचार्य की टीका में लिखा है। एक भाव अगर यथार्थ बैठे तो सर्व भाव यथार्थ बैठे। कोई भी एक भाव ! सर्वज्ञ कहो, सर्वदर्शी कहो, शक्ति कहो, ज्ञान पर्याय कहो, द्रव्य कहो-एक भाव भी यथार्थरूप से जिसको ख्याल में आया तो सर्व भाव उसको यथार्थ (रूप से) ख्याल में आता है। आहाहा ! यहाँ ये नौवीं शक्ति और दसवीं शक्ति में तो गजब बात है ! भैया ! आहाहा !

(ग्वालियर से एक मुमुक्षु आये थे उनको पूज्य गुरुदेवश्री का बहुमान करने का भाव था) पूज्य गुरुदेवश्री ने कहा - हमारा और बहिन का कुछ बाहर में देना नहीं। भगवान और देव, गुरु, शास्त्र की बात करो। हम तो देव, गुरु, शास्त्र के दास हैं, आहाहा ! बहिन को तो कहाँ पड़ी है ? बहिन तो धर्मरत्न हैं। वह कौन है, बापू ? पहचानना मुश्किल पड़े। स्त्री का देह, ऐसे शांति से चले, बोलने का बहुत कम, आहाहा ! यह नव भव (का जातिस्मरण ज्ञान है), यह कैसे बैठे ? भाई ! नहीं बैठे तो विश्वास रखो ! दूसरा क्या हो सकता है ? यह चीज कोई बाहर में दिखाने की है ? आहाहा !

यहाँ आत्मज्ञान और सर्वज्ञपना, ऐसे दो (बात) नहीं है। आत्मज्ञान कहो कि सर्वज्ञपना कहो, दोनों एक ही चीज है। आत्मज्ञान है यह निश्चय परिणति है और सर्वज्ञ है यह व्यवहार है, ऐसे दो (बात) नहीं है। यह तो दो होकर एक (बात) है। समझ में आया ? बाद में लोकालोक को जानते हैं, ऐसा कहना यह व्यवहार है। यह (परिणमन) व्यवहार नहीं है। यह आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञशक्ति, यह तो निश्चय है। यह बाहर की वकालत से अलग प्रकार की वकालत है। यह भगवान बनने की वकालत है। और वह भगवान है। है वह (भगवान) होगा। स्वभाव और शक्तिरूप से (भगवान) है। है वह होगा, नहीं होगा, कहाँ से आया ?

सबेरे आया था न ? आज अच्छा लिया था। सबेरे कलश अच्छा आया था। हिन्दी हो उन लोगों को समझ में आये ऐसा था। बहुत अच्छी बात आयी। सुखरूप सार (है) और दुःखरूप असार (है)। आहाहा ! वहाँ तो ऐसे लिया। पुद्गल के एक परमाणु से लेकर कर्म, शरीर, वाणी, पैसा, लक्ष्मी, स्त्री का शरीर-उसमें ज्ञान भी नहीं और सुख भी नहीं। और निगोद के जो अनंत जीव हैं, उनमें ज्ञान भी नहीं (और सुख भी नहीं)। (यहां) शक्ति की बात नहीं है। (लेकिन परिणति में) ज्ञान भी नहीं और सुख भी नहीं। निगोद के अनंत जीव हैं और यह शरीर अनंत परमाणु का स्कंध है, उसको जाननेवाले को भी ज्ञान नहीं और सुख नहीं। क्या कहा ? यह सबेरे आया था कि, संसारी प्राणी

(और) अनंत निगोद के जीव मलिनरूप से परिणमनेवाले (हैं)। इसको पर्याय में सुख भी नहीं और ज्ञान भी नहीं। वस्तु में सुखगुण है, यह तो त्रिकाली है, उसकी बात नहीं। और ऐसे अनंत संसारी प्राणी निगोद को भी जाने, तो उसे जाननेवाले को ज्ञान भी नहीं और सुख भी नहीं, आहाहा ! उसको (निगोद के जीव को) तो नहीं लेकिन उसको जाननेवाले को भी नहीं, आहाहा !

यहाँ तो शुद्ध चैतन्य भगवान पूर्णानंद को (जाने, उसे ज्ञान और सुख है)। संसारी लिया है इसलिये सिद्ध भी लिया है। सिद्ध और शुद्ध आत्मा दोनों साथ में है। सिद्ध को - शुद्ध को जाने, उनको ज्ञान और सुख है। और उसको अपने में है (ऐसा) जाने तो उसको भी ज्ञान और सुख होता है, आहाहा ! लेकिन उसे जाना कब कहा जाये ? कि भगवान पूर्ण शुद्ध है, अपना आत्मा भी ऐसा ही पूर्ण शुद्ध है। इस शुद्ध (स्वरूप की) दृष्टि करने से, शुद्ध का आश्रय - स्व का (आश्रय) करने से, जो ज्ञान होता है, इसमें सुख होता है और ज्ञान होता है। उसको ज्ञान और सुख कहने में आता है।

शुद्धात्मा में ज्ञान और सुख है। (उसे) जाननेवाले को ज्ञान और सुख है, आहाहा ! समझ में आया ?

श्रोता : अकेले सिद्ध को जाने तो सुख है कि नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख है। परंतु सिद्ध को जाना कब कहा जाये ? कि, अपने स्वरूप में शुद्धता (है और) मैं सिद्ध समान हूँ। ऐसी दृष्टि हुई तब जाना कहा जाये।

श्रोता : अपने आत्मा की कोई ज़रूरत नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर तो (आत्म कल्याण) हो गया ! (ज़रूरत) नहीं है तो वह परद्रव्य है परद्रव्य का विचार यह विकल्प है।

श्रोता : दुःखरूप है कि नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख है, आहाहा ! वह तो मोक्षपाहुड की १६ वीं गाथा में कहा न ? 'पर दवाओ दुगई' भगवान तो अलौकिक बातें करते हैं। तेरे द्रव्य के अलावा दूसरे द्रव्य पर लक्ष जायेगा तो विकल्प ही उत्पन्न होगा। परंतु वहाँ तो ऐसा जानकर आत्मा में घुस गया, उसकी बात ली है, आहाहा !

मेरी पर्याय में सर्वज्ञपना नहीं और उनको सर्वज्ञपना (प्रगट) हुआ, वह कहाँ से हुआ ? सर्वज्ञ शक्ति में से हुआ। उनको सर्वज्ञ (शक्ति में से) पर्याय हुई, तो मेरी सर्वज्ञ पर्याय मेरी सर्वज्ञ शक्ति में से होगी, तो उसकी दृष्टि सर्वज्ञ (शक्ति को) धरनेवाले आत्मा पर जाती है। ऐसी बात है, बापू ! धीरे - धीरे समझना। ऐसी बात है, बापू ! क्या हो सकता है ?

अरे...! लोग विरोध करे, भाई ! चैतन्यस्वरूप भगवान पूर्णानंद का नाथ ! ऐसे आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञशक्ति की गज़ब बात है, बापू ! इसमें से कितना निकालना कि यह पूरा नहीं होता। समझ में आया ? यह १० वीं शक्ति हुई। अब ११ वीँ (शक्ति) लेते हैं।

``**अमूर्तिक आत्म प्रदेशों में...**'' क्या कहते हैं ? कहते हैं कि, भगवान (आत्मा) तो अमूर्तिक आत्म प्रदेशी है। आत्मा के असंख्य प्रदेश है, वह तो अमूर्त है। इसमें कोई वर्ण, रस, स्पर्श, गंध नहीं है। ``**अमूर्तिक आत्म प्रदेशों में प्रकाशमान लोकालोक के आकारों से मेचक...**'' लोक और अलोक में जड़ भी आया। उस जड़ का वर्ण, गंध, रस, स्पर्श भी अमूर्तिक आत्म प्रदेश में जानने में आता है। वह मूर्त (द्रव्य) यहाँ (आत्मा में नहीं आता। समझ में आया ?

स्वच्छत्व शक्ति का इतना स्वभाव है कि, अपना आत्म प्रदेश अमूर्त होने पर भी मूर्त और अमूर्त सब चीज़ को, अपने में, पर की अपेक्षा रखे बिना, स्वच्छता के कारण स्वच्छ - शुद्ध परिणमन होता है।

श्रोता : लोक-अलोक है तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा बिलकुल नहीं। यह स्वच्छता की बात तो कहते हैं। दर्पण का दृष्टांत देंगे। यह तो सर्वज्ञ (परमात्मा की) भारी बातें (हैं। आहाहा !

भगवान के समवसरण में १०० इन्द्रों जाते हैं। अरे...! सैकड़ों केसरीया सिंह जंगलमें से चलते - चलते, धीरे - धीरे समवसरण में जाते हैं, आहाहा ! शेर और २५-५० हाथ के लंबे काले नाग जंगलमें से चलकर समवसरण में एक क्षण में ऊपर चले जाते हैं। समवसरण में २० हज़ार सीढ़ियां हैं। ऐसे नाग अंतर्मुहूर्त में चले जाये। आहाहा ! वहाँ जाकर वीतराग की वाणी ऐसे (विनय से) सुने ! आहाहा ! शेर और सिंह दो पैर नीचे रखते हैं और दो पैर ऐसे (रखते हैं)। यहाँ कुत्ते बैठते हैं न ? नीचे बैठकर दो पैर ऐसे रखे। इस प्रकार सभा में शेर और सिंह दोनों पैर नीचे रखकर (सुनने बैठते हैं)। आहाहा !

श्रोता : वह भी समझ सकता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी समझ सकता है और सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। (तिर्यंच भी) आत्मा है कि नहीं ? आत्मा है तो अंदर पूर्ण आनंद का नाथ पड़ा है। आहाहा ! ऐसा कहते हैं, वे समझ जाते हैं ? ये मनुष्य नहीं समझते हैं और (तिर्यंच समझ जाता है) ? तुम मनुष्य हो ही नहीं। तू तो आत्मा है। आहाहा ! समझ में आया ? (समवसरण में) सम्यक् प्राप्त कर लेता है ! ढ़ाई द्वीप के बाहर ऐसे शेर और सिंह असंख्य हैं।

यह मनुष्य क्षेत्र है (उसमें) ४५ लाख जोजन का ढ़ाई द्वीप है। उसमें मनुष्य है। बाद में असंख्य द्वीप, समुद्र में मनुष्य नहीं है और अंत में आखिर के स्वयंभूरमण समुद्र में तो असंख्य समकिती और पांचवें गुणस्थानवाले तिर्यंच (हैं)। हज़ार योजन के लंबे नाग, मगरमच्छ पंचम गुणस्थान में आत्म अनुभव सहित शांति की वृद्धि करते (हुए) बिराजते हैं। आहाहा ! ऐसे तिर्यंच हैं ! भगवान के आगम में पाठ है कि, स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्य मच्छ समकिती, आत्मज्ञानी, जातिस्मरण ज्ञानवाले, अवधिज्ञानवाले, पंचम गुणस्थानवाले (बिराजते हैं)। सम्यग्दर्शन उपरांत स्व का आश्रय लेकर शांति प्रगट की है। ऐसे ही (बिना आत्म अनुभव) उसको बारह व्रत का विकल्प हो, वह कोई श्रावकपना नहीं है। श्रावकपना तो अंदर स्वरूप में रमणता की शांति बढ़ गई वह श्रावकपना है। स्वयंभूरमण समुद्र में ऐसे असंख्य पशु - तिर्यंच पड़े हैं। आहाहा ! और द्वीप में शेर, रींछ, कौओं, पोपट, चिडियाँ, (सब) भगवान आत्मा है न ? शरीर कहाँ (आत्मा) है ? द्वीप में ऐसे असंख्य समकिती पड़े हैं। द्वीप में असंख्य स्थलचर हैं और पानी में असंख्य जलचर हैं। क्या कहा समझ में आया ? असंख्य द्वीप हैं इसमें स्थलचर हैं, वहाँ जलचर तो स्थल में रह सकते नहीं। स्थल में रहनेवाले नोळिया, सर्प वे भी समकिती हैं। भले थोड़े हैं। एक समकिती और असंख्य मिथ्यादृष्टि (हैं) तो भी वहाँ असंख्य समकिती हैं। तिर्यंच की संख्या बहुत है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच की संख्या बहुत है।

एक बार कहा था न ? (अनंतकाल में) सब से थोड़े मनुष्य के भव करे। अनंत काल में एक मनुष्यभव हो तो भी अनंत हो गये। प्रत्येक प्राणी को मनुष्य की संख्या से नारकी का भव असंख्य गुना अनंता भगवान ने कहा (है)। क्या कहा ? मनुष्य की अनंत भव की संख्या से नारकी के भव की संख्या असंख्य गुनी अनंती है। तो मनुष्य इतने हैं तो (नारकी) असंख्यगुना अनंता कैसे आया ? पशु में (नरक में) आते हैं। मन बिना के पंचेन्द्रिय और मनवाले पंचेन्द्रिय पशु की इतनी संख्या है कि वह सब नारकी में जाते हैं। मनुष्य का एक भव और असंख्य नारकी; अब मनुष्य मर जाये तो नारकी असंख्य गुना कहाँ से आया ? शास्त्र में भगवान असंख्य गुना अनंता भव कहते हैं। इस तिर्यंच की इतनी संख्या है कि, वहाँ से मर के जाते हैं, आहाहा ! और मनुष्यभव से नारकी के जो असंख्य गुना अनंत भव, उससे स्वर्ग का असख्य गुना अनंत भव (किया)। कहाँ से आया ? नारकी मरकर स्वर्ग में तो जाते नहीं। मनुष्य तो अनंतवे भाग में हैं, तो वहाँ नारकी की संख्या असंख्य गुनी अनंती है। अभी तक उससे असंख्य गुना अनंत जीव स्वर्ग में गये। कोई मनुष्य भी स्वर्ग में गये और तिर्यंच की संख्या बहुत है, वह (भी) स्वर्ग में गये। कोई शुक्ललेश्या, पद्मलेश्या आदि भाव होकर (स्वर्ग में) गये, आहाहा !

देव के (भव की) संख्या नारकी के भव से असंख्य गुनी अनंत (हुई)। ये कहाँ से आया ? (तिर्यंच में से आये)। समझ में आया ? आहाहा ! अरेरे... देखो न ! यह पशु दिखते हैं न ? बैल को देखते हैं न तो, ऐसा हो जाता है, आहाहा ! अरेरे...! यह प्राणी कहाँ जायेगा ? क्योंकि धर्म तो है नहीं, पुण्य है नहीं, आहाहा ! बेचारे पशु २५-५०-६० साल (जीकर) मरकर नरक में जाये अथवा तो पशु मरकर पशु होते हैं। आहाहा ! पशु की संख्या बहुत है।

अनंतकाल में प्रत्येक प्राणी ने तिर्यंच के ऐसे अवतार किये हैं। समझ में आया ? यह तो प्रत्येक प्राणी ने ऐसा किया है। मनुष्य के अनंत भव किये, उससे असंख्य गुना अनंत नारकी के किये, उससे असंख्य गुना अनंता स्वर्ग के किये, और उससे असंख्य गुना अनंता निगोद के किये। वह तिर्यंच में आता है। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक सब को तिर्यंच कहते हैं। आहाहा ! एक आत्मज्ञान बिना मर गया, आहाहा !

यहाँ कहते हैं, भगवान ! तो अमूर्त है न ! तो मूर्त (द्रव्य) अंदर में आता है ? अंदर में मूर्त की प्रतिछाया पड़ती है ? नीम दिखता है तो ज्ञान में नीम का आकार आता है ? वह तो जड़ का आकार है। वर्ण, रस, गंध, हरा रंग है, वह यहाँ आता है ? परंतु उस संबंधी ज्ञेयाकाररूप अपना ज्ञान अपने से परिणमन करता है। यह ज्ञेयाकार (हुआ) तो जड़ है इसलिये (यहाँ) जड़रूप परिणमित हुआ, ऐसा नहीं और यह मूर्त है तो यहाँ मूर्तरूप परिणमित होता है (ऐसा नहीं)। आत्मा अमूर्त है तो मूर्त कहाँ से आया ? यह तो पहले शब्द में कहा, आहाहा !

भगवान आत्मा का प्रदेश अमूर्त है। ``**अमूर्तिक आत्म प्रदेशों में प्रकाशमान लोकालोक के आकार से...**'' आकार शब्द का अर्थ वह वस्तु (यहाँ) नहीं। परंतु उस संबंधी का विशेष ज्ञान है। स्वच्छता में उस संबंधी का और अपने संबंधी का विशेष ज्ञान होता है। उस जड़ का आकार यहाँ आता है ? आकार तो वर्ण, रस, स्पर्श, गंध जड़ है। यह पत्थर है, उसका आकार अंदर आता है ? परंतु आकार का अर्थ - स्व-पर अर्थ का ज्ञान उसका नाम आकार कहते हैं। स्व और पर पदार्थ का ज्ञान हो उसका नाम आकार है, आहाहा ! बात - बात में फ़र्क लगे। मार्ग ऐसा (है), बापू ! आहाहा !

श्रोता : प्रत्येक बात समझ ने जैसी लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, समझने जैसी लगे। आहाहा ! ``**अमूर्तिक आत्म प्रदेशों में प्रकाशमान लोकालोक के आकार से मेचक (अर्थात् अनेक - आकाररूप)...**'' स्व का और पर का आकार माने ज्ञान। स्व का और पर का ज्ञान उसका नाम यहाँ आकार कहते हैं। ज्ञान को साकार कहते हैं और दर्शन को निराकार कहते हैं। ज्ञान को साकार

कहते हैं तो पर का आकार आता है, इसलिये साकार कहते हैं ? (ऐसा नहीं है)। परंतु वह स्व-पर प्रकाशक परिणमित हुआ, उसका नाम आकार कहते हैं। विशषरूप से परिणमन हुआ उसका नाम आकार है, आहाहा ! ऐसी बातें (हैं)। भाई ! सुने तो सही !

अरेरे..! चौरासी के अवतार कर-करके (मर गया)। यहाँ अबजोपति बड़ा सेठिया हो और मरकर दूसरी क्षण में ३३ सागर की स्थिति में नरक में जाये। आहाहा ! वह पीड़ा ! उसकी पीड़ा को देखनेवाले को रोना आये, ऐसी पीड़ा है, प्रभु ! तूने ऐसी पीड़ा सहन की है, भाई ! आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ शरीर थोड़ा ठीक हो, निरोगी हो, पैसे हो और स्त्री, पुत्र कुछ ठीक मिले (हो) तो ऐसे (अभिमान में) चलता है ! लेकिन क्या है ? बापू ! भगवान ! तुझे यह पागलपन कहाँ से आाया ? पागल है, पागल तू ! आहाहा ! शरीर थोड़ा सुंदर दिखे, चमड़ी सुंदर दिखे, सबेरे उठकर तेल लगाये, सबेरे स्नान करके आयने में (देखे), पागल है ! पागल जैसे देखता है (वैसे देखता है)। बड़ा (आयना) हो तो पूरा दिखे लेकिन छोटा आयना हो तो, ऐसे करे ! फिर बिंदिया लगाये ! कंगे से ऐसे बाल बनाये ! अरे...! क्या करता है ? बापू ! ऐसे-ऐसे करता रहता है, आहाहा ! `हाड़ बले जो लकड़ी, केश बले जो घास' आहाहा ! लकड़ा जलता है वैसे हड्डी जलेगी, बापू ! यह तो जड़ है और तेल लगाई हुई सब चमडी और यह लंबे बाल, जैसे घास जलता है वैसे स्मशान में जलेगा, भाई ! आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, प्रभु ! तू अमूर्तिक है न ? तो तेरे ज्ञान में यह मूर्त आता है, तो क्या मूर्तपना का आकार आता है ? समझ में आया ? एक तो अमूर्तिक आत्म प्रदेश उसमें लोकालोक प्रकाशमान (होता है)। लोक-अलोक में मूर्त और जड़ सब आ गये। आहाहा ! और आकार माने विशेषता। उसका सब विशेषाकार ज्ञान में ज्ञान की परिणति होती है। ज्ञान की ज्ञेयाकाररूप परिणति। ज्ञेयाकार यानी जड़ का आकार, ऐसे नहीं। परंतु ज्ञेय का जो स्वरूप है - उस रूप ज्ञान का परिणमन होना उसे यहाँ आकार कहने में आता है। आहाहा ! और वह भई मेचक; मेचक (अर्थात्) अनेकरूप हुआ। ज्ञान की पर्याय में एकरूप न रहा। लोकालोक को जानने में ज्ञान की पर्याय अनेकरूप हुई, आहाहा !

``**मेचक (अर्थात् अनेक आकाररूप)...**'' ऐसे कहा न ? मेचक यानी अनेक। ``**ऐसा उपयोग**'' अर्थात् जानना। ``**...ऐसा उपयोग जिसका लक्षण है ऐसी स्वच्छत्वशक्ति।**'' पहली चिति शक्ति आयी थी। उसमें बाद में भेद करके दर्शन - ज्ञान आया। उसको अलग देखकर दर्शन में सर्वदर्शी और ज्ञान में सर्व ज्ञान आया। अब स्वच्छत्वशक्ति भिन्न लेते हैं। ऐसी अंदर में ज्ञान की कोई निर्मलता है, ऐसा कहते हैं। ऐसी स्वच्छता - निर्मलता

है कि लोकालोक जिसमें मूर्त और अमूर्त प्रकाशमान (होता है)। आत्मा के अमूर्त प्रदेश में ज्ञान होता है। समझ में आया ? दृष्टांत से समझ में आयेगा।

``**जैसे दर्पण की स्वच्छत्वशक्ति से उसकी पर्याय में घटपदादि प्रकाशित होते हैं...**'' घटपट वहाँ नहीं जाते। लेकिन घटपट संबंधी की स्वच्छता वहाँ देखने में आती है। समझ में आया ? यहाँ अग्नि है और बर्फ है तो अग्नि ऐसे - ऐसे होती है तो यहाँ दर्पण में (भी) ऐसे - ऐसे होती है। उस (दर्पण में) अग्नि नहीं है। वह दर्पण की स्वच्छ शक्ति का परिणमन है। अंदर अग्नि दिखती है परंतु (वास्तविक) अग्नि नहीं है। वह तो दर्पण की स्वच्छशक्ति है। समझ में आया ? वह दर्पण की पर्याय है। अग्नि की पर्याय वहाँ आयी नहीं है। अग्नि में हाथ जलता है, (लेकिन) वहाँ (दर्पण में) शरीर रखे तो जलता है ? वह तो दर्पण की पर्याय है। ऐसे भगवान (आत्मा की) स्वच्छता की पर्याय में लोकालोक (प्रकाशित होते हैं)। घटपट जैसे दर्पण में दिखते हैं (तो) वह घटपट वहाँ नहीं है, वह तो (दर्पण की) स्वच्छता की पर्याय है। आहाहा ! ऐसे लोकालोक जानने में आता है वह स्वच्छता की पर्याय है। आहाहा ! उसने दरकार नहीं की है और ऐसे ही जिंदगी खत्म कर दी। अरे ! मेरा क्या होगा ? मैं कहाँ जाऊँगा ? (उसका विचार नहीं करता है), आहाहा !

भगवान तो ऐसा कहते हैं, देखो ! ``**घटपट आदि प्रकाशित होते हैं, ``...उसी प्रकार आत्मा की स्वच्छत्व शक्ति से...**'' स्वच्छत्व (अर्थात्) वह अपनी निर्मलता के कारण से लोकालोक दिखने में आता है। वह लोकालोक नहीं (दिखता) लेकिन लोकालोक संबंधी अपनी स्वच्छता की पर्याय देखने में आती है। समझ में आया ? विशेष कहेंगे.....

❖ ❖ ❖

पर्याय में द्रव्य का ज्ञान आता है, परंतु द्रव्य नहीं आता और द्रव्य में पर्याय नहीं आती; और द्रव्य है इसलिए उसका ज्ञान होता है - ऐसा भी नहीं है। पर्याय, निजस्वरूप में रहकर ही द्रव्य का ज्ञान करती है। (परमागमसार - ६१४)

प्रवचन नं. १३

शक्ति-११, १२ दि. २३-०८-१९७७

नीरूपात्मप्रदेशप्रकाशमानलोकालोकारमेचकोपयोगलक्षणा स्वच्छत्वशक्तिः ।।११।।

स्वयंप्रकाशमानविशदस्वसंवित्तिमयी प्रकाशशक्तिः ।।१२।।

समयसार शक्ति का अधिकार (चल रहा) है। यह आत्म पदार्थ है वह अनंत शक्ति का संग्रहालय है। इसमें अनंत शक्ति नाम स्वभाव नाम गुण (हैं) उसका संग्रह-आलय (माने) स्थान है। आहाहा ! आत्मा की अंतर अनंत शक्ति का ज्ञान कर के, शक्तिवान पर दृष्टि देना उसका नाम सम्यग्दर्शन है। यह धर्म की पहली शुरूआत है। यहाँ तो शक्ति का वर्णन है। समयसार में द्रव्यदृष्टि का अधिकार है तो शक्ति का अधिकार लिया है। इन शक्तियों का आधार आत्मा है। शक्ति आधेय है (और) आत्मा आधार है। ऐसा भेद भी जिसमें नहीं, ऐसे आत्मा पर ज्ञान की पर्याय को झुकाने से, अपनी ज्ञान की पर्याय में भान हुआ उसमें प्रतीत कर लेना, उसका नाम सम्यक्ज्ञान और सम्यग्दर्शन है। कठिन बात है।

लोगों को यह बात कठिन लगती है। व्यवहार से नहीं होता है, तो एकांत है, ऐसा कहते हैं। उपादान में निमित्त से होता है, निश्चय में व्यवहार से होता है और (पर्याय) क्रमसर होती है, इसमें कभी अक्रमपने (भी) हो, अनियतपने हो, ऐसा कहते हैं। अरे भगवान !

श्रोता :- इन तीनों बातों में एकांतवाद करते हैं कि तीनों बातें झूठी है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- उसकी तीनों (बातें) झूठी हैं। वस्तुस्थिति ऐसी है, भाई ! कल तो ३७२ गाथा में आया था। कुम्हार घडा करता है, ऐसा हम तो देखते नहीं। मिट्टी

से घड़ा होता है। उपादान तो ध्रुव मिट्टी है और घड़े की पर्याय क्षणिक उपादान है। आहाहा ! इसमें निमित्त कुछ करता नहीं। निमित्त हो (भले लेकिन) निमित्त पर में कुछ करता है, यह बात तीनकाल में (नहीं है)। जैन दर्शन के स्वभाव में यह बात नहीं है। समझ में आाया ? ऐसा व्यवहार हो वह भी निश्चय की अपेक्षा से तो निमित्त है; परंतु यह शुभराग आत्मा के स्वभाव की प्राप्ति में सहाय(रूप) हो, ऐसा नहीं (है), आहाहा ! लोगों को कठिन लगता है।

सबेरे कलशटीका में आया था। कठिन तो है। अति ही कठिन तो है परंतु अशक्य नहीं, आहाहा ! कठिन है नाम अभ्यास नहीं (है)। अनादि का अभ्यास शरीर मेरा, राग मेरा, पुण्य मेरा, पैसा मेरा, ऐसी दृष्टि में उससे भेद करने का अभ्यास नहीं और अभ्यास बिना वह प्राप्त होता नहीं। समझ में आया ?

यहाँ स्वच्छत्व शक्ति चलती है। जैसे दर्पण में घट-पट आदि प्रकाशित होते हैं, वह घट-पट (उस में) नहीं (बल्कि) वह दर्पण की पर्याय है। दर्पण में सामने घट-पट, अग्नि या बर्फ आदि हो (उस में बर्फ) पिघलता हो, ऐसा दिखे तो बर्फ और घटपट (उस) दर्पण में नहीं। वह तो दर्पण की स्वच्छता की अवस्था है। ऐसे भगवान आत्मा अमूर्त असंख्य प्रदेशी चीज में लोकालोक का भास होता है। (तो) लोकालोक (आत्मा में) नहीं। यहाँ स्वच्छत्व की शक्ति की पर्याय में लोकालोक भासित होता है - यह स्वच्छत्व शक्ति का ही परिणाम है। लोकालोक से परिणमन है, ऐसा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसे तो सर्वविशुद्ध अधिकार में आता है कि, लोकालोक में केवलज्ञान निमित्त है। क्या कहा ? सारा लोकालोक अनंत सिद्धों, अनंत निगोद के जीव उसमें केवलज्ञान निमित्त है। उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि, केवलज्ञान ने लोकालोक बनाया है। समझ में आया ? केवलज्ञान की पर्याय लोकालोक में निमित्त है। उसका अर्थ ऐसा नहीं कि, लोकालोक को ज्ञान की पर्याय ने बनाया है। दूसरी बात, यहाँ लोकालोक का ज्ञान हुआ तो (उसमें) लोकालोक निमित्त है। परंतु यहाँ स्वच्छता की पर्याय में जो प्रत्यक्ष अनुभव हुआ उसका लोकालोक कर्ता नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

वह आया न ? '**अमूर्तिक आत्मप्रदेशों में प्रकाशमान लोकालोक के आकार...**' आकार नाम विशेषता। जगत का - जड़ का आकार यहाँ आता नहीं परंतु जो उसका विशेष स्वभाव है, उसका ज्ञान यहाँ अपने से होता है, आहाहा ! '**...मेचक (अर्थात्) अनेक आकाररूप...**' ज्ञान की स्वच्छता की पर्याय में जो अनेकरूपता आयी, वह अपनी पर्याय का स्वभाव है अनेक है तो अनेकरूप परिणमन हुआ, ऐसा नहीं। आहाहा ! ऐसी भारी बातें हैं।

`(**अनेक आकाररूप**) **ऐसा उपयोग जिसका लक्षण है ऐसी स्वच्छत्व शक्ति।**' यह स्वच्छत्व शक्ति अनंत शक्ति में निमित्त है और अनंत शक्ति में स्वच्छत्व शक्ति का रूप भी है, आहाहा ! ज्ञान स्वच्छ, दर्शन स्वच्छ, आनंद स्वच्छ, समकित स्वच्छ, त्रिकाली श्रद्धा स्वच्छ, शांति स्वच्छ, अस्तित्व स्वच्छ, वस्तुत्व स्वच्छ, कर्ता स्वच्छ, कर्म स्वच्छ, करण स्वच्छ, षट्कारक की शक्तियाँ भी स्वच्छ, आहाहा ! यहाँ की (बात) लोगों को बेचारों को एकांत लगती है। लेकिन क्या हो सकता है ?

श्रोता :- व्यवहार से कुछ लाभ होता है, इतना आपको कहना है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- इससे लाभ होता है, ऐसा भगवान कहते हैं। तेरी अनंत शक्तियाँ स्वच्छपने परिणमन करे, ऐसा तेरा स्वभाव है। राग अस्वच्छ है, तो उसके कारण से (शक्ति) परिणमन करे, (ऐसा नहीं है). यहाँ लोगों को कठिन पड़ता है। समझ में आया ? व्यवहार हो, निमित्त हो, इसकी कौन ना कहता है ? परंतु निमित्त से पर में कार्य होता है, (ऐसा नहीं है)।

यह तो अभी एक बड़े विद्वान ने कबूल किया कि, सोनगढ़वाले निमित्त को नहीं मानते हैं, ऐसा नहीं है। (बल्कि) निमित्त से पर में कुछ होता है, यह नहीं मानते। तो यह बात बराबर है। और क्रमबद्ध मानते हैं तो क्रमबद्ध (भी) यथार्थ है। समझ में आया ? द्रव्य की व्यवस्थित क्रमसर पर्याय अपने से होती है। गुण अक्रमवर्ती (है) और पर्याय क्रमवर्ती (है)। क्रमवर्ती का अर्थ क्रम से वर्तन करनेवाला। समझ में आया ? ऐसी पर्याय क्रमे-क्रमे होती है यह निश्चय है। (बाहर में) निमित्त हो परंतु यहाँ निमित्त ने कोई पर्याय की रचना की है, (ऐसा नहीं है)। नयी पर्याय हुई वह होनेवाली थी तो हुई। निमित्त आया तो दूसरी (पर्याय) हुई, ऐसा नहीं है।

`**आत्मा की स्वच्छत्व शक्ति से उसके उपयोग में लोकालोक के आकार प्रकाशित होते हैं।**' आहाहा ! लोकालोक (ज्ञान में) निमित्त हो परंतु स्वच्छता की परिणमन शक्ति है उसमें निमित्त कुछ करता नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? अब बारहवीं शक्ति लेते हैं।

यह सूक्ष्म शक्ति बहुत अच्छी है। `**स्वयं प्रकाशनमान विशद्** (-**स्पष्ट**) **ऐसी स्वसंवेदनमयी** (**स्वानुभवमयी**) **प्रकाश शक्ति।**' गजब काम किया है ! आहाहा ! प्रभु ! एकबार सुन तो सही। यहाँ तेरी स्वतंत्रता की पुकार है। समझ में आया ? दुनिया माने न माने उसके साथ कोई संबंध नहीं। सत्य को संख्या की जरूरत नहीं है कि, बहुत (लोग) माने तो यह सत्य (है) और थोड़े माने तो यह असत्य (है)। ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा !

क्या कहते हैं ? प्रभु ! तेरे में ऐसी एक शक्ति है। `स्वयं अपने से प्रकाशमान

स्पष्ट...' आहाहा ! आत्मा में प्रकाश शक्ति के कारण से अपने में प्रत्यक्ष अपना ज्ञान - स्वसंवेदन होता है। यह प्रकाश शक्ति के कारण से होता है। आत्मा अपने से स्वयं प्रत्यक्ष होता है। 'स्व' (अर्थात्) अपने से. 'सं' (माने) प्रत्यक्ष। 'वेदन' होता है, ऐसी यह शक्ति है। आहाहा ! राग की अपेक्षा से यहाँ प्रत्यक्ष वेदन होता है, ऐसा नहीं। निमित्त की अपेक्षा से प्रत्यक्ष वेदन होता है, ऐसा नहीं। सूक्ष्म बात है, भगवान ! प्रकाश शक्ति स्वयं अपने से स्वसंवेदनमयी - प्रत्यक्ष वेदनमयी शक्ति का (यह) कार्य है।

सम्यग्दर्शन में मतिज्ञान और श्रुतज्ञान द्वारा प्रकाश शक्ति के कारण (स्वसंवेदन होता है)। इस प्रकाश शक्ति का रूप अनंत शक्ति में है। श्रुतज्ञान और मतिज्ञान में भी प्रत्यक्ष होने की शक्ति है। सूक्ष्म बात है। परोक्ष रहना यह इसका स्वभाव ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! क्या कहते हैं ? स्वयं अपने से प्रकाशमान। प्रत्यक्ष स्पष्ट नाम प्रत्यक्ष। स्पष्ट प्रत्यक्ष ऐसी स्वसंवेदनमयी-स्वानुभवमयी प्रकाश शक्ति। आहाहा !

अपने आत्मा का, स्व आनंद का अनुभव होना, यह उसकी शक्ति का ही कार्य है। आहाहा ! व्यवहार है तो स्वानुभव शक्ति काम करती है, ऐसा है नहीं। सूक्ष्म बात है, बापू ! अनंतकाल संसार में रखड़ते-रखड़ते...अरे...! चौरासी के अवतार में कभी मनुष्यपना पाया, उसमें भी जैन धर्म का संप्रदाय - वाड़ा तो मिला। समझ में आया ? परंतु (यह सब मिलने के बाद भी) यह बात समझ में न आवे, प्रभु ! (तो भवभ्रमण चालू रह जायेगा। आहाहा ! पहले श्रद्धा में भी यह बात न रुचे, उसे अनुभव तो कहाँ से हो ? समझ में आया ?

यहाँ तो परमात्मा पुकार करते हैं। यह परमात्मा की आवाज़ है। संतों आडतिया होकर परमात्मा का माल जगत के पास ज़ाहिर करते हैं। आहाहा ! समझ में आया? प्रभु ! तेरे में एक शक्ति ऐसी है कि, तू तेरे से प्रत्यक्ष हो, ऐसी तेरी एक शक्ति है। समझ में आया ? यह तो जिंदगी में कभी सुना भी नहीं। कमाई करना, खाना-पीना और भोग में जिंदगी पूरी हो गई। अररर...! प्रभु ! तेरा कार्य क्या है ? आत्मा का कार्य (तो) पड़ा रहा। राग, दया, दान, भक्ति और पुण्य की क्रिया करे तो वह समझे कि, हमें कोई धर्म हुआ। भगवान ! तेरे में भगवान ने एक शक्ति देखी है, आहाहा ! ''**स्वयं प्रकाशमान...**'' (अर्थात्) अपने से प्रकाशमान (है)।

प्रवचनसार की १७२ गाथा है। उसमें अलिंगग्रहण आया है न ? अमृतचंद्राचार्यदेव ने एक अलिंगग्रहण के २० अर्थ किये हैं। उसमें एक छठ्ठा बोल है वह ये है। पहले उसमें ऐसा आया कि, आत्मा इन्द्रिय से जानने में आता नहीं और इन्द्रिय से आत्मा जानता नहीं। इन्द्रिय प्रत्यक्ष का यह विषय नहीं। यह तीसरा बोल है। मन और इन्द्रिय से आत्मा

जानने में आता ही नहीं। आहाहा ! और आत्मा इन्द्रिय से जानने का काम करता नहीं। आत्मा इन्द्रिय प्रत्यक्ष का विषय नहीं। वह तो अतिइन्द्रिय भगवान है। आहाहा ! आत्मा इन्द्रिय प्रत्यक्ष का विषय नहीं। इन्द्रियों से प्रत्यक्ष जानने में आये, ऐसा नहीं। आहाहा ! यह तीन बोल हुए।

(यहाँ तो) छट्ठा बोल कहना है। आत्मा दूसरे द्वारा अनुमान से जानने में आता है, ऐसा नहीं। एक अलिंगग्रहण के पांच अक्षर हैं। उसके २० अर्थ किये हैं। सब छप गया है। आहाहा ! क्या कहा ? आत्मा दूसरे द्वारा अनुमान से जानने में आता है, ऐसा नहीं है। आत्मा स्वयं अनुमान से पर को जानता है, ऐसा नहीं। आहाहा ! सूक्ष्म बात है। भगवान ! यह तो प्रत्यक्ष की बात आयी न ? अरे...! ऐसा वीतराग मार्ग ! आहाहा ! परमेश्वर का विरह हुआ और सर्वज्ञ की पर्याय प्रगट होने का विरह हो गया। आहाहा ! और यह बड़ी गड़बड़ खड़ी हो गई।

यहाँ तो कहते हैं, पर (द्वारा) अनुमान से जानने में आता है, यह आत्मा नहीं और आत्मा अपने अनुमान से पर को जाने, यह (बात) यहाँ नहीं। आहाहा ! छट्ठा बोल ऐसा है। भगवान आत्मा ! अपने स्वभाव से जानने में आता है, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। यह छट्ठा बोल है। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, (आत्मा) स्वयं अपने से प्रत्यक्ष होता है, ऐसा ही उसका स्वभाव शक्ति है। आहाहा ! अरे...! बात सुनने में कठिन लगती है वह कब विचार में ले और कब अंतर में प्रत्यक्ष अनुभव करे ? आहाहा ! समझ में आया ? वहाँ तो २० बोल है, यह तो (अलिंगग्रहण के) छट्ठे बोल का उसके साथ मिलान है (इसलिये लिया)। छट्ठे बोल में यह है कि, आत्मा अपना स्वभाव, शुद्ध स्वभाव (से जानने में आता है)। पुण्य-पाप से (जानने में नहीं आता)। इन्द्रिय से नहीं (जानने में आता) शुद्ध स्वभाव से जानने में आता है, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। आहाहा !

श्रोता : आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है, यह प्रकाश शक्ति के कारण से है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रकाश शक्ति का कारण है। समझ में आया ? बापू ! यह तो परमात्मा त्रिलोकनाथ की वाणी है। ऐसे महापुरुष वीतराग के वचनों का निषेध नहीं हो सकता, प्रभु ! आहाहा ! समझ में आता है कुछ ? लोक में भी अपने लड़के के लिये कोई कन्या आती हो, एक ही लड़का हो, पैसेवाला हो तो कई ज़गह से उसके लिये रिश्ते आये (और कहे) हमारी कन्या के साथ सगाई (करो), उन सबमें से बड़े करोड़पति की कन्या हो और दिखने में बहुत अच्छी न हो तो भी वह करोड़पति की कन्या को पास करे। क्योंकि वह कन्या शादी में ५-२५ लाख लायेगी और उसका पिता मर जायेगा

तो सारा वारसा (वंशागत) भी मिलेगा। ऐसे यह भगवान सर्वज्ञ परमात्मा का न्योता (कहेण) है, उसका स्वीकार कर। उसे ना नहीं कर, प्रभु ! आहाहा ! समझ में आया ? तेरी सगाई करने का वीतराग का न्योता है। 'समकित साथे सगाई कीधी, सपरिवारसो गाढ़ी' - आनंदघनजी में ऐसा शब्द है। (आनंदघनजी) श्वेतांबर में हुए हैं। सब ग्रंथ देखे हैं। श्वेतांबर के करोड़ों श्लोक देखे हैं। यशोविजयजी के देखे हैं परंतु यह चीज़ कोई दूसरी है। समझ में आया ? आहाहा ! क्या कहते हैं ? सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा की दिव्यध्वनि में तेरे ऊपर बड़ा न्योता आया कि, तेरी सगाई कब हो ? कि तुम आत्मा को प्रत्यक्ष जाने तब आत्मा की सगाई हुई, आहाहा ! यह अलग तरह का दवाखाना है।

श्रोता : हमेशा का रोग मिट जाये (ऐसा है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मिट जाय। बापू !

वहाँ अलिंगग्रहण के सातवें बोल में ऐसा भी लिखा है। आत्मा के उपयोग में परज्ञेय का आलंबन है ही नहीं। स्वच्छत्वशक्ति आई न ? क्या कहा ? अपना भगवान आत्मा ! उसके ज्ञान का जो उपयोग होता है, उस उपयोग में परज्ञेय का आलंबन है ही नहीं। आहाहा !

सातवाँ बोल है। (वैसे तो) २० बोल हैं, सब कंठस्थ हैं। संप्रदाय में भी श्वेतांबर के शास्त्र के ६-७ हज़ार श्लोक कंठस्थ किये थे। पहले दीक्षा उसमें हुई न ? पिताजी का धर्म स्थानकवासी का था। उसमें जन्म हो गया। पहले दो वर्ष में (यानी) ७० और ७१ की साल में ६ से ७ हज़ार श्लोक कंठस्थ किये थे। पानी के पुर की भाँति चले ऐसी भाषा थी। परंतु वह सब सत्य बातें नहीं। आहाहा ! यह तो एक-एक शब्द देखो ! ओहोहो...!

(११ वीं शक्ति में) आया था न ? ``**उपयोग में लोकालोक के आकार प्रकाशित होते हैं।**'' आत्मा के जानन उपयोग में, स्वच्छत्व शक्ति के उपयोग में ज्ञेय - लोकालोक का आलंबन है ही नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! यह अलग जात की बात है, भगवान ! अरेरे...! क्या करता है ? आहाहा ! भगवान ! तेरा स्वभाव ऐसा है, परंतु तुझे ऐसा मानना है क्या (कि) राग करते-करते (धर्म) होगा ? तेरी शक्ति ऐसी है कि प्रत्यक्ष होगा, स्वयं सिद्ध प्रत्यक्ष होगा। ऐसा तेरा स्वभाव है। आहाहा !

श्रोता : उपयोग की स्वच्छता ऐसी है कि ज्ञेय का आलंबन नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, तेरे उपयोग में लोकालोक ज्ञेय का अवलंबन नहीं, नाथ ! तू ऐसा स्वतंत्र है। तेरा ज्ञान का उपयोग केवलज्ञानमयी है। स्वच्छत्वशक्ति में लोकालोक (प्रकाशित) है, ऐसे उपयोग में ज्ञेय का आलंबन है ही नहीं। आहाहा ! दिगंबर संतों

की एक-एक वाणी तो देखो ! एक-एक रामबाण है ! आहाहा ! भगवान के पास सब सुना है। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, ``**स्वयं प्रकाशमान**'' स्वयं कहते हैं उसमें पर की अपेक्षा है ही नहीं। समझ में आया ? अपना अनुभव करने में राग और व्यवहार की अपेक्षा है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। अपने आनंद का प्रत्यक्ष अनुभव करना ऐसी शक्ति स्वयं अपनी है। आहाहा ! समझ में आया ?

वह तो सबेरे कहा न ? कि थोड़ा कठिन तो है। सबेरे आया था, ऐसा अनुभव होना बहुत ही कठिन है। अनुभव करना बहुत ही कठिन है। उत्तर ऐसा है कि, सचमुच ही कठिन है। बात तो सच्ची है भगवान ! परंतु तेरा स्वभाव है तो यह अशक्य नहीं है। कठिन हो परंतु अशक्य नहीं (है)। आहाहा ! समझ में आया ? वास्तव में कठिन है। परंतु वस्तु के शुद्धस्वरूप का विचार करने पर भिन्नपनारूप स्वाद आता है। समझ में आया ? वस्तु का स्वरूप विचारने पर भिन्नपने का स्वाद आता है। आहाहा ! समझ में आया ? वैसे यहाँ यह बात कठिन है, आहाहा ! कठिन है परंतु अशक्य नहीं है, शक्य है। उसकी शक्ति ऐसी है, इसलिये शक्य है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! भगवान आत्मा नहीं समझ सके ऐसी चीज़ नहीं है, प्रभु ! यह अभ्यास नहीं है और यह प्रथा ही पूरी लोप हो गई है। ऐसी बात है। ऐसा मार्ग (है) प्रभु ! आहाहा !

किसी ने कहा था कि, शक्ति का वर्णन करना। मुझे भी विचार तो आया था कि, चलता विषय है वह थोड़ा साधारण हो जायेगा। समयसार चलता था न ? (तो) शक्ति लेना, ऐसा आया था। आहाहा ! थोड़ा लिखा बहुत करके जानना, नाथ ! आहाहा ! थोड़े शब्दों में बहुत कहते हैं। आहाहा !

प्रभु ! तेरे में एक शक्ति नाम गुण नाम स्वभाव ऐसी प्रकाश शक्ति पड़ी है। उस कारण से स्वसंवेदन में आत्मा प्रत्यक्ष हो, यह तेरा स्वरूप और कार्य है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा काम है। प्रत्यक्ष होना यह तो उसकी शक्ति का कार्य और शक्ति का स्वरूप है। यहाँ कहते हैं कि, राग से होता है और निमित्त से होता है। वह (बात) तो है (ही) नहीं। निमित्त हो, व्यवहार होता है, निमित्त होता है परंतु उससे (कार्य) होता है, (ऐसा नहीं है)। वह तो परोक्ष हो गया। समझ में आया ?

यहाँ तो प्रत्यक्ष भगवान आत्मा ! ज्ञान स्वरूपी प्रभु ! (उसमें) प्रत्यक्ष होने की शक्ति (है)। प्रत्येक शक्ति में उसका रूप है। प्रत्येक शक्ति प्रत्यक्ष हो ऐसा ही उसका स्वरूप है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? ज्ञान शक्ति में भी प्रत्यक्ष होना वही शक्ति है। प्रभु ! आहाहा ! और दर्शन शक्ति में भी प्रत्यक्ष होना वही उसका स्वभाव

है। आनंद (शक्ति में) आनंद का अनुभव प्रत्यक्ष वेदन आना, यह आनंद शक्ति का स्वभाव है। आहाहा ! समझ में आया ? भाषा तो सादी है, भगवान ! भाषा ऐसी कोई कठिन नहीं है, आहाहा ! कहते हैं, थोड़े में बहुत भरा है। आहाहा !

``सहेजे समुद्र उल्लसीओ, जेमां रतन तणाणा जाय'' गुजराती में है। सहजपने समुद्र उल्लसीत हुआ है। इसमें रतन तणाणा जाय। ``भाग्यवान कर वावरे, एनी मोतीऐ मुठीओ भराय, भाग्यहिन वावण वारे, तो उसकी शंखले मुठीओ भराय'' आहाहा समझ में आया ? १२ वीं (शक्ति में) गज़ब बात है ! है न ? भैया ! भगवान ! यह कोई संप्रदाय की बात नहीं है। यह कोई सोनगढ़ की बात है ? अरे...! यह तो भगवान के घर की बात है।

भगवान ! तेरी शक्ति में तो ऐसी लक्ष्मी पड़ी है कि, तेरा आत्मा आनंद का प्रत्यक्ष वेदन करे ऐसी तेरे में लक्ष्मी पड़ी है। आहाहा ! हाँ तो भर, नाथ ! एकबार हाँ भर तो हालत होगी। हाँ भर तो हालत (होगी)। समझ में आया ? आहाहा ! १२ वीं शक्ति में तो गज़ब बात है ! ``**स्वयं प्रकाशमान....**'' आहाहा ! अपने आनंद का, ज्ञान स्वरूप का और अनंत गुण का प्रत्यक्ष वेदन हो, ऐसी स्वयं प्रकाशमान प्रकाश नाम की शक्ति में ताकत है। आहाहा ! प्रत्यक्ष आत्मा `स्व' अपने `सं' (अर्थात्) प्रत्यक्ष वेदन में आ जाय, ऐसी उसमें शक्ति और स्वभाव है। आहाहा ! (लोग) यह माने नहीं (और कहते हैं कि) एकांत हो जाता है। अरे... प्रभु ! तू सून तो सही। अंदर है कि नहीं ? अंदर है उसका अर्थ होता है कि नहीं ? आहाहा !

दिव्यध्वनि में आता है, (तो) भगवान का ज्ञान है तो दिव्यध्वनि में आता है, ऐसा नहीं।

श्रोता : निमित्त-नैमित्तिक संबंध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (निमित्त-नैमित्तिक) संबंध का अर्थ (यह है) कि, ज्ञान निमित्त है, जोग निमित्त है परंतु दिव्यध्वनि उठती है वह अपने उपादान - भाषा वर्गणा में से उत्पन्न होती है। समझ में आया ? भाषा वर्गणा चार प्रकार की हैं। सत्यभाषा, असत्यभाषा, मिश्रभाषा और व्यवहारभाषा। चार प्रकार की भिन्न-भिन्न वचन वर्गणा हैं। एक ही वचन वर्गणा (है)। ऐसा नहीं। चार प्रकार की भाषा वर्गणा भिन्न-भिन्न हैं। आहाहा ! उसमें से भगवान के पास तो अकेला केवलज्ञान है। उसमें से तो निमित्तरूप से सत्यभाषा निकलनी चाहिये। परंतु भाषा में तो सत्य और व्यवहार दो आता है। क्या कहा भाई, समझ में आया ? केवलज्ञान है वहाँ व्यवहार भाषा है और व्यवहार है ही नहीं। केवलज्ञान है तो इसमें से तो निमित्तपने अकेला सत्य निकलना चाहिए। परंतु भाषा की योग्यता ही ऐसी है कि

सत्य को व्यवहारपने बतलाते हैं। ऐसी भाषा की शक्ति - ताकत भाषा में है। आहाहा !

भाई ! क्या कहा समझ में आया ? क्या कहा ? यहाँ प्रत्यक्ष हुआ न ? वहाँ (दिव्यध्वनि में) भाषा की पर्याय स्वतंत्र अपने से होती है। केवलज्ञान निमित्त हो परंतु निमित्त उसका कर्ता नहीं। भाषा वर्गणा की पर्याय का कर्ता आत्मा नहीं, केवली नहीं और केवली का जोग भी भाषा की वर्गणा का कर्ता नहीं, आहाहा ! भाषा की वर्गणा भी स्वंय अपनी पर्याय की योग्यता से - स्वकाल में उस काल में जो भाषा होती है, उस काल में भाषा की पर्याय जड़ में होती है। आत्मा उसका कर्ता नहीं और उस काल में आत्मा ने प्रयोग करके भाषा बनाई नहीं। आहाहा ! भाषा में स्व-पर कहने की ताकत है और आत्मा में स्व-पर जानने की ताकत है। दो बातें हो गई।

आत्मा में स्व-पर जानने की ताकत अपने से है। पर है तो (स्व-पर को जानता है, ऐसा) नहीं। अपने में ही अपने से स्व-पर जानने की ताकत है। स्व-पर कहने की ताकत नहीं। स्व-पर कहने की ताकत भाषा में है। तो वहाँ स्व-पर जानने की शक्ति नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! प्रभु का मार्ग तो देखो ! एक-एक पर्याय स्वतंत्र (है)। आहाहा ! बाहर की तेरी लक्ष्मी २-५ करोड़ की धूल हो उसमें क्या आया ? वह तेरी लक्ष्मी है ? (पैसा) मेरा है, यह तो भ्राँति - महा मिथ्या भ्रम है, पाखण्ड है।

श्रोता : जितने दिनों तक रही उतने दिन तक तो उसकी है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय भी उसकी नहीं। जितने दिन साथ में रहे, मरे नहीं वहाँ तक तो (उसकी) है न ? (ऐसा पूछते हैं)। जितने (दिन) रहे उतने दिन तो पुत्र (उसका) है कि नहीं ? ऐसा कहते हैं। यहाँ तो भगवान ! राग भी जहाँ उसका नहीं, वहाँ पर चीज़ तो भिन्न (है)। वह तो पर्याय के संबंध में राग - अशुद्धता होती है। वह भी अपना नहीं तो भिन्न क्षेत्र में और भिन्न प्रदेश में रहनेवाली चीज़ है (वह कहाँ से अपनी हो गई ?) आहाहा ! समझ में आया ? वह मेरी कहाँ से हो, प्रभु ? आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि, भावश्रुतज्ञान से बात सुनी और लक्ष में आया कि, यह ऐसा कहते है कि, तेरी शक्ति में प्रत्यक्ष होना - यह तेरी शक्ति है। ऐसे भगवान की वाणी सुनने में आयी और अपने में अपने से ज्ञान हुआ - भाषा से नहीं। वह ज्ञान भी परोक्ष है। परोक्ष रहना यह उसका स्वभाव नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! क्या कहा ? भगवान की वाणी - दिव्यध्वनि सुनने में आयी, अनंत बार समवसरण में गया, (वाणी) सुनी, उस समय भी सुनने से ज्ञान की पर्याय हुई नहीं। भले परलक्षी ज्ञान है, उस परलक्षी ज्ञान में भी सुनने से परलक्षी ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं। वह तो अपने उपादान से हुआ है। परंतु वह पर्याय भी अपनी नहीं। क्योंकि उसमें आत्मा प्रत्यक्ष होता नहीं तो वह पर्याय

भी अपनी नहीं। आहाहा ! ऐसा है।

देखो न ! जिज्ञासु लोग कहाँ से आये हैं ? सैकड़ों कोस दूर से आये हैं। आहाहा ! (यहाँ) कहते हैं कि, शास्त्र का ज्ञान हुआ (वह) ज्ञान अपने से हुआ। यह अक्षर है न ? तो यहाँ ज्ञान होता है वह अक्षर से नहीं (होता)। अपनी पर्याय से (ज्ञान) हुआ परंतु वह पर्याय भी परोक्ष है। उससे आत्मा प्रत्यक्ष नहीं हुआ, आहाहा ! समझ में आयाा ? और परोक्ष रहना उसका स्वभाव नहीं। आहाहा ! शास्त्र सुना वह ज्ञान की पर्याय अपने से हुई - अक्षर से नहीं। ऐसा भगवान की दिव्यध्वनि सुनी और यहाँ अपने से पर्याय हुई। परंतु वह पर्याय वस्तु की यथार्थ पर्याय नहीं।

श्रोता : पराश्रित हुई इसलिये यथार्थ नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पराश्रित हुई है और जिसमें (आत्मा) प्रत्यक्ष नहीं हुआ, वह पर्याय अपनी नहीं। थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई ! समझ में आया ?

उसमें प्रत्यक्ष होने की शक्ति है। (यह शक्ति) भी द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्याप्त हुई है। पर के लक्ष से जो ज्ञान की पर्याय हुई वह तो अकेली पर्याय में ही है। समझ में आया ? यह स्वसंवेदनमयी प्रत्यक्ष होने की शक्ति जो है; ऐसे शक्तिवान की जहाँ दृष्टि हुई, शक्तिवान का जहाँ अंतर में स्वीकार हुआ (तो पर्याय में स्वसंवेदन प्रत्यक्ष हो गया)। अनादि से द्रव्य-गुण में तो शक्ति थी, परंतु जहाँ स्वीकार हुआ तो पर्याय में स्वसंवेदन प्रत्यक्ष हो गया। यह तो सूक्ष्म बातें हैं, भाई ! आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ दो बातों पर वज़न है। स्वयं अपने से प्रकाशमान यह तो ठीक परंतु विशद् - स्पष्ट। अपनी शक्ति में आत्मा का स्पष्ट प्रत्यक्ष ज्ञान होना, ऐसी शक्ति है। आहाहा ! समझ में आया ? धीरे-धीरे समझना, यह कोई भाषण नहीं है। यह तो भगवान की दिव्यध्वनि (है)। आहाहा ! अमृतचंद्राचार्य ने (ग़ज़ब) काम किया है, देखो ! (समयसार में) बीच में मूल श्लोक कुंदकुंदाचार्यदेव के हैं और बाद में यह टीका और शक्तियाँ अमृतचंद्राचार्य ने बनाई। आहाहा ! एक हज़ार वर्ष पहले चलते-फिरते सिद्ध समान संत थे, आहाहा ! मुनिपना माने क्या ? आहाहा ! जानन शक्ति प्रगट हुई, जानने की शक्ति प्रगट हुई उन्हें मुनि (कहते हैं)। `मुन ते इति मुनि' आत्मा ज्ञायकभाव से जाने वह मुनि, आहाहा ! राग से और निमित्त से (जाने) वह (बात) नहीं, आत्मा का वह स्वभाव नहीं। आहाहा ! भारी कठिन ! समझ में आया ?

प्रवचनसार टीका में एक ज़गह ऐसा आता है कि, समकिती को गृहस्थाश्रम में ऐसा उपयोग नहीं होता। सम्यक्दृष्टि को शुद्ध उपयोग नहीं होता, ऐसा पाठ है। (परंतु) वह कौनसा उपयोग नहीं होता ? मुनि को जो शुद्ध उपयोग है, ऐसा उपयोग नहीं होता,

यह बात है। समझ में आया ? भाई ! आता है न ? टीका में है। सम्यक्‌दृष्टि को गृहस्थाश्रम में शुद्ध उपयोग नहीं होता। वहाँ से लोग बात पकड़ ले कि, देखो गृहस्थाश्रम में (शुद्ध उपयोग) नहीं होता। उसे तो शुभ उपयोग ही होता है। यहाँ कहते हैं कि, समकिती को गृहस्थाश्रम में भी स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता है, ऐसी उसमें शक्ति है और उसका परिणमन भी ऐसा है। आहाहा ! समझ में आया ? न्याय से, लोजीक से, युक्ति से तो समझ में आये ऐसी चीज़ तो है। यह कोई ऐसे ही मान लेना ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा !

श्रोता : स्वसंवदेन प्रत्यक्ष और शुद्ध उपयोग एक ही बात है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वही शुद्ध उपयोग है। वह तो मुनि के योग्य जो तीन कषाय के अभाववाला शुद्ध उपयोग है, वह उपयोग गृहस्थाश्रम में नहीं। यह बतलाना है। यहाँ तो यह क्या कहा ? यह शक्ति तो समकिती को है कि नहीं ? समकिती को स्वसंवेदन प्रत्यक्ष हुआ कि नहीं ? आहाहा ! स्वसंवेदन प्रत्यक्ष हुआ यह शुद्ध उपयोग है कि शुभ जोग है ? समझ में आया ? शुद्ध उपयोग है। सम्यक्‌दृष्टि चौथे गुणस्थान में भले राज में हो, छ खण्ड का राज चक्रवर्ती का दिखे, उस पुण्य का वह स्वामी नहीं।

४७ शक्ति में आखिर की स्वस्वामीसबंध शक्ति है। चक्रवर्ती छ खण्ड और ९६ हज़ार स्त्री के वृंद में दिखाई दे परंतु वह अपने शुद्ध द्रव्य, शुद्ध गुण और वेदन की शुद्ध पर्याय है, उसका वह स्वामी है। राग का स्वामी (भी) नहीं तो पर का, धणी का, स्त्री का स्वामी कहाँ से आया ? समझ में आया ? अनंत शक्ति में प्रत्यक्ष होने का रूप है। ज्ञान भी प्रत्यक्षरूप हो, दर्शन भी प्रत्यक्षरूप हो, आनंद भी प्रत्यक्षरूप हो (ऐसा प्रत्यक्ष होने का रूप है)। आहाहा ! यह तो भण्डार है ! कितना निकाले ? पार न आये ऐसी बात है, आहाहा ! एक `जगत' शब्द पड़ा है तो जगत का विस्तार करे तो कितना होवे ? कि छ द्रव्य, उसके गुण, उसकी पर्याय, अनंत सिद्ध, अनंत निगोद (इतना बड़ा विस्तार है)। वैसे यह एक शक्ति का बड़ा विस्तार है। समझ में आया ? आहाहा ! दुनिया मानो न मानो, दुनिया में बाहर में बात प्रसिद्धि में आये न आये, परंतु वस्तु तो ऐसी है। समझ में आया ? आहाहा !

`स्वयं' (अर्थात्) अपने से। `प्रकाशमान' एक बात (हुई)। `स्पष्ट' (अर्थात्) पर की अपेक्षा बिना। `ऐसी स्वसंवेदनमयी' (अर्थात्) `स्व' - अपना `सं' - प्रत्यक्ष वेदनमयी `स्वानुभवमयी' देखो ! स्वसंवेदन का अर्थ किया। स्वानुभवमयी प्रकाश शक्ति है। आहाहा ! चौथे गुणस्थान में यह है कि नहीं ? आहाहा !

जब सम्यग्दर्शन होता है तब शुद्ध उपयोग में होता है। समझ में आया ? द्रव्यसंग्रह में ४७ गाथा में कहा। तत्त्वानुशासन में ३३ गाथा है। `**दुविहं पि भोक्खहेउं झाणे पाउणदि**

जं मुणी णियमा।' द्रव्यसंग्रह में नेमिचंद सिद्धांत चक्रवर्ती कहते हैं कि, निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग ध्यान में प्राप्त होता है। उसका अर्थ (क्या) ? '**दुविहं पि भोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' ऐसा पाठ है, आहाहा ! ध्यान तो स्वरूप में जब दृष्टि हो तब ध्यान हुआ। वह तो शुद्ध उपयोग हुआ, आहाहा ! ध्यान शुद्ध उपयोग है। ज्ञायक ऊपर ध्यान लगाया तो उस कारण से अंदर (आत्मा) प्रत्यक्ष हुआ। मति-श्रुत ज्ञान में आत्मा प्रत्यक्ष हुआ। तत्त्वार्थसूत्र में मति-श्रुत को परोक्ष कहकर पर का जाननेवाला कहा है। यह अपवाद की बात अंदर गंभीर पड़ी है। समझ में आया ? यह बात कोई छट्ठे, सातवें या तेरहवें (गुणस्थान की) बात नहीं है। समझ में आया ?

एकबार ८३ की साल में हमारे साथ चर्चा हुई थी। (कि) यह मति-श्रुत ज्ञान को आप (प्रत्यक्ष कहते हो) तो तत्त्वार्थसूत्र में मतिज्ञान को तो परोक्ष (कहा) है। (हमने कहा) भाई ! (वह तो) पर की अपेक्षा से परोक्ष कहा है। अपनी अपेक्षा से प्रत्यक्ष है, यह बात उसमें गर्भित है। समझ में आया ?

``**स्वयं प्रकाशमान...**'' भगवान आत्मा ! अपने से प्रकाशमान है। निमित्त से नहीं, संयोग से नहीं, भगवान की वाणी से नहीं, शास्त्र से नहीं, आहाहा ! ``**स्वयं प्रकाशमान विशद् (- स्पष्ट) ऐसी स्वसंवेदनमयी...**'' जैसे व्यवहार प्रत्यक्ष कहते हैं न ? कि मैंने इस आदमी को प्रत्यक्ष देखा है। ऐसे भगवान आत्मा स्पष्ट प्रकाशमान - 'यह आत्मा' ऐसे प्रत्यक्ष होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? आदमी कहते हैं कि, 'मैंने प्रत्यक्ष देखा है' (लेकिन वह) प्रत्यक्ष नहीं है। परंतु ऐसा व्यवहार प्रत्यक्ष में कहने में आता है। और यह राजा है, ठंडा पानी है, अग्नि उष्ण है, देव है, शास्त्र है ऐसा पर का ज्ञान भी जिसको स्वरूप ज्ञान हुआ हो, उसे उसका सच्चा ज्ञान होता है। निजस्वरूप का स्वरूपग्राही ज्ञान हो उसको पर का ज्ञान व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा ! बाकी स्व का ज्ञान नहीं होवे वहाँ पर का ज्ञान है, उसे ज्ञान ही नहीं कहते। (वह तो) एकांत परप्रकाशक है, आहाहा ! समझ में आया ?

हम (अपना) अनुभव कहते हैं। ८० की साल में ५३ वर्ष पहले संप्रदाय में थे तब बोटाद में बहुत आदमी आते थे। उसमें भी हमारी प्रतिष्ठा बहुत थी न ! हज़ार-हज़ार, पंद्रहसो आदमी (आते थे)। एकबार ऐसा कहा कि, भाई ! स्वानुभव होना चाहिए. तब एक आदमी ने कहा, (आप) अनुभव कहाँ से कहते हो ? हमारे कोई महाराज ने तो अनुभव कहा नहीं। यह तो ८० की साल की बात है। यहाँ कहते हैं कि, आत्मा स्वानुभव प्रत्यक्ष है। परंतु उसमें (संप्रदाय में) ऐसी भाषा है ही नहीं। विभाव और अनुभव दो बात कही तो लोग भड़क गये।

यहाँ कहते हैं कि, अनुभव प्रत्यक्ष होता है, ऐसी शक्ति है, आहाहा ! `स्वानुभवमयी' स्व + अनुभवमयी अपना आनंद का प्रत्यक्ष वेदन हो जाना और मति-श्रुत ज्ञान में आत्मा प्रत्यक्ष जानने में आता है, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा ! समझ में आया ? है कि नहीं अंदर ? देखो ! शक्ति का तो पार नहीं, भाई ! इतनी अंदर गंभीरता पड़ी है ! यह प्रकाश शक्ति है उसके दो रूप हैं। एक ध्रुवरूप है वह ध्रुव उपादान और परिणति हुई है वह क्षणिक उपादान। यहाँ परिणति की बात चलती है। स्वानुभव में आत्मा प्रत्यक्ष होता है। ध्रुव भी स्वानुभव में प्रत्यक्ष जानने में आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? यह स्वानुभवमयी प्रत्यक्ष वस्तु अनंत गुण में व्यापक है। जितनी शक्तियाँ हैं इसमें सारे अनुभव में यह व्यापक है तो स्वानुभव प्रत्यक्ष में अनंत शक्ति का पिंड प्रत्यक्ष होता है। आहाहा ! १२ वीं शक्ति (समाप्त) हुई। विशेष कहेंगे......

जो आत्मसन्मुख होते हैं, वे विकार से विमुख हुए बिना नहीं रहते। ``मैं निर्विकार हूँ'' यदि ऐसा कहे, पर विकार से विमुख न हो तो (वह) **मात्र धारणा है। राग से, पुण्य से अथवा पर से चैतन्य की एकता नहीं - ऐसा पृथकतारूप - भेदज्ञान तो न करे व ज्ञानमय - वस्तु का ग्रहण हुआ बतलाए तो, वह बात मिथ्या है। जिसने स्वभाव की दृष्टि की, उसके विभाव का अभाव होना ही चाहिए। यदि विभाव का अभाव न हुआ तो स्वभाव-दृष्टि ही नहीं हुयी।** (परमागमसार - ६४८)

प्रवचन नं. १४
शक्ति-१२, १३, १४ दि. २४-०८-१९७७

स्वयंप्रकाशमानविशदस्वसंवित्तिमयी प्रकाशशक्तिः।।१२।।

क्षेत्रकालानवच्छिन्नचिद्विलासात्मिका असंकुचितविकाशत्व शक्तिः।।१३।।

अन्याक्रियमाणान्याकारकैकद्रव्यात्मिका अकार्यकारणत्वशक्तिः।।१४।।

समयसार शक्ति का अधिकार है। १२ वीं शक्ति चली। १२ वीं शक्ति में क्या चला ? कि आत्मा में ऐसी एक (प्रकाश) शक्ति है, स्वभाव है, सत् वस्तु का सत्त्व उसमें कस भरा है। ऐसा कस है कि जो स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता है, आहाहा !

श्रोता : प्रत्यक्ष होता है उसका अर्थ क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्यक्ष होता है उसका अर्थ राग और निमित्त की अपेक्षा छोड़कर (प्रत्यक्ष होता है)।

सबेरे आया था न ? शुद्ध स्वरूप का विचार करने पर, ऐसा आया था। उसमें गंभीरता है। कठिन है परंतु शुद्ध स्वरूप का विचार करने पर प्रत्यक्ष होता है। अर्थात् राग, पुण्य और पर्याय के विचार में नहीं रुककर शुद्ध स्वरूप का विचार नाम ज्ञान करने से, ऐसा कहते हैं। राग और पुण्य-पाप के विकल्प का ज्ञान तो अनंत बार किया। वह तो पर प्रकाशक मिथ्या भाव है। आहाहा ! अपने में शुद्ध स्वरूप का विचार करने पर अर्थात् शुद्ध स्वरूप का ज्ञान करने पर अर्थात् अनादि से पर्याय में राग की ओर का जो विचार झुक रहा है, उस विचार को शुद्ध स्वरूप की ओर झुकाना, उसमें आत्मा

प्रत्यक्ष होता है। ऐसी बात है ! शुद्ध स्वरूप का विचार करने पर आनंद का स्वाद आता है, ऐसा आया था। बहुत गंभीर है ! आहाहा !

अपने चैतन्यस्वरूप में अनंत शक्तियाँ हैं। उसमें एक शक्ति ऐसी है ``**स्वयं प्रकाशमान...**'' है। अपने से प्रकाश करती है, स्पष्ट प्रकाश करती है, स्वसंवदेन प्रकाश करती है, आहाहा ! समझ में आया ? आत्म पदार्थ में ऐसी शक्ति है। उस शक्ति पर नज़र नहीं करना। समझ में आया ? सबेरे कहा था न ? ``शुद्ध स्वरूप का विचार करने पर''। ऐसा था। शक्ति पर विचार करने पर, ऐसा नहीं था। समझ में आया ? यह सर्वज्ञ की वाणी तो गंभीर है ! उसकी पात्रता प्राप्त करना, आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, उसमें स्वसंवेदनमयी शक्ति (है)। अपना स्वरूप `सं' (अर्थात्) प्रत्यक्ष आनंद का वेदन हो। मति-श्रुत ज्ञान की पर्याय से प्रत्यक्ष होता है। आहाहा ! ऐसी उसमें शक्ति भरी पड़ी है। (उसका उसे) भरोसा नहीं (है), विश्वास नहीं है। समझ में आया ? आहाहा ! (गुजराती में) लोग कहते हैं कि, `विश्वासे वहाण तरे' (हिन्दी में) `विश्वासे नाव तिरे' (कहते हैं)। तो उसका अर्थ क्या ? अपने आत्मा में अनंत शक्तियाँ हैं। उसमें यह एक शक्ति है। ऐसा विश्वास करने पर आत्मा प्रत्यक्ष होता है। अंदर में नाव तिर जाती है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी चीज़ है। आहाहा !

यह तो जन्म-मरण का अभाव करने की चीज़ है, भगवान ! बाकी जिसमें भव हो (ऐसे) कदाचित् कोई दया, दान से स्वर्ग में जायेगा। वहाँ से निकलकर तिर्यंच में पशु होकर नरक में और निगोद में (चला जायेगा)। निगोद...निगोद...निगोद... एक शरीर में अनंत जीव। उसमें जन्म लेना (ऐसा तो) अनंत बार जन्म लिया (है)। स्वर्ग के भी अनंत भव किये। उससे अनंत गुना निगोद में - एकेन्द्रिय में एक श्वास में १८ भव किये। आहाहा ! एक श्वास चलता है इतने में निगोद के १८ भव किये। ऐसे अनंत बार (एक श्वास में) १८ भव हुए। आहाहा ! ऐसे भव के दुःख से निकलना हो तो उसे अपना शक्तिवान जो भगवान आत्मा ! (उस पर दृष्टि करनी पड़ेगी)। शक्ति का तो वर्णन चलता है। परंतु शक्तिवान जो आत्मा (है)। उस पर दृष्टि लगाना। शक्ति और शक्तिवान का भेद भी छोड़ देना। समझ में आया ?

यह चीज़ ऐसी है कि, गुप्त रह सके नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? इस चीज़ का स्वभाव-शक्ति ही ऐसी है। गुप्त रह सके नहीं - प्रगट हो। आहाहा ! परंतु इस चीज़ का विश्वास और अनुभव होने पर प्रगट होता है। ऐसी बातें हैं। लोगों को बाहर में सब झंझाल बढ़ गई, आहाहा ! शुभभाव होता है, स्वरूप में रह सके नहीं तो अशुभ से बचने का भाव आता है परंतु यह कोई जन्म-मरण मिटाने की चीज़ नहीं

है। वह तो भव प्राप्त करने की चीज़ है, आहाहा ! भैया ! (यह तो) भव के अभाव की बात है। बात तो ऐसी है, भगवान ! अरे... प्रभु ! तू कौन है ?

प्रभु ! तेरे में ऐसी शक्ति है। तेरे में प्रभुता भी पड़ी है। स्वसंवेदनमयी शक्ति में प्रभुता भी पड़ी है। प्रभुता की शक्ति भिन्न है। परंतु स्वसंवेदन शक्ति में प्रभुता का रूप है - स्वरूप है। आहाहा ! अपनी प्रभुता से शक्ति में प्रत्यक्ष होना यह गुण है। (स्वरूप) प्रत्यक्ष होता है, वह अपनी शक्ति से (प्रत्यक्ष) होता है, कोई पर की अपेक्षा नहीं है। ऐसा उसका स्वभाव है, आहाहा ! आचार्य ने ४७ शक्ति करके गज़ब बात कही है ! ऐसा वर्णन कहीं नहीं है। श्वेतांबर में ४५ सूत्र में कहीं है नहीं।

एक (साधु) उसमें (श्वेतांबर में) हुए थे। उन लोगों का वाचन उन्हें कुछ ज्यादा था। उन्होंने बाद में यह शक्ति पढ़ी थी। पढ़कर (खुद शक्ति) बनाने गये। आठ शक्तियाँ बनाई परंतु ये (शक्ति) न बन सकी। यह (शक्ति) नहीं। अपनी कल्पना से आठ बनाई। कुछ पढ़ा तो होता है। यहाँ जीवतर शक्ति से बात शुरु की है, तो उन्होंने दूसरी शक्ति से बात उठाई है। यहाँ तो मूल शक्ति का वर्णन है। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, मति-श्रुत ज्ञान में भी स्वसंवेदन शक्ति के कारण से आत्मा प्रत्यक्ष वेदन में आता है और आनंद का स्वाद अपने से लेता है। उसमें कोई परोक्षता नहीं। समझ में आया ? यह बात १२ वीं शक्ति की हुई। आज १३ वीं (शक्ति) लेते हैं। यह तो अपार है, भण्डार है। उसमें से निकाले उतना (कम है)।

अब १३ वीं असंकुचितविकासत्व शक्ति है। क्या कहते हैं ? ``**क्षेत्र और काल से अमर्यादित ऐसी चिद्‌विलास स्वरूप (- चैतन्य के विलासस्वरूप) असंकुचितविकासत्वशक्ति**'' क्या कहते हैं ? उसमें ऐसी एक शक्ति है कि, संकोच है ही नहीं। कोई भी शक्ति प्रगट करने में संकोच नहीं है। सारा द्रव्य, सारा क्षेत्र, सारा काल, सारा भाव। असंकोच (अर्थात्) संकोच बिना शक्ति विकास करती है। समझ में आया ?

कितने ही लोग कहते हैं कि, भगवान एक समयवर्ती को जाने। अभी पेपर में आया है। श्रीमद्‌जी का दृष्टांत दिया है। (लेकिन) श्रीमद् तो दूसरी बात करते हैं। (ऐसा कहते हैं कि) तीनकाल की पर्याय जो है उसे वर्तमान वर्तती नहीं देखे। इतनी बात (है)। एक समय की वर्तमान वर्तती है उसको देखे, वर्तती देखे। भूत और भविष्य की (पर्याय) वर्तती नहीं देखे परंतु वह (हो गई), हुई और होगी, ऐसा प्रत्यक्ष देखते हैं। वर्तती (देखे) इसलिये एक समय को ही देखे, ऐसा नहीं (है)। समझ में आया ? एक न्याय फिरे तो सारी चीज़ फिर जाती है।

यहाँ तो कहते हैं कि, उस शक्ति के कारण ज्ञान शक्ति में भी ऐसा असंकुचितविकासत्व

(शक्ति का) रूप है। जो ज्ञान शक्ति का संकोच बिना विकास होता है। ज्ञान की पर्याय तीनकाल, तीन लोक को जाने, ऐसा एक समय की पर्याय में संकोच बिना विकास होता है। आहाहा ! समझ में आया ?

क्या कहा ? देखो ! वहाँ क्षेत्र की मर्यादा नहीं की, इतना ही जाने। क्षेत्र भी अमर्याद है। आहाहा ! और काल की (भी) मर्यादा नहीं कि, कोई एक काल को ही जाने। एक समय में सब काल, तीन लोक, तीन काल को (जाने)। आहाहा ! ज्ञान में भी असंकुचितविकासत्व शक्ति का रूप है। एक समय में ज्ञान की पर्याय में तीन काल, तीन लोक को संकोच बिना (जाने ऐसा) विकासत्व शक्ति से विकास होता है। आहाहा !

तत्त्वार्थसूत्र में आता है न ? कि चार घातीकर्म का नाश हो तो केवलज्ञान होता है। समझ में आया ? वह तो निमित्त से कथन है। यहाँ तो कहते हैं कि, चार घाती (कर्म का) नाश करना वह भी इसमें नहीं है। अपनी असंकुचितविकासत्व शक्ति के कारण केवलज्ञान की पर्याय प्राप्त करता है। आहाहा ! पामर को प्रभुता बैठनी कठिन है। आहाहा !

ज्ञान में असंकुच (अर्थात्) संकोच नहीं और विकास (हो) ऐसा ज्ञान में रूप है। ऐसा असंकुचितविकासत्व का रूप दर्शन में (भी) है। संकोच बिना सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल (और) भाव को विकासरूप से देखते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसे आत्मा में अतीन्द्रिय आनंद है। उसमें भी असंकोचविकास नाम की (शक्ति का) रूप है। (असंकुचितविकासत्व) शक्ति भिन्न है। आनंद भी संकोच बिना पूर्ण आनंद का विकास हो, (ऐसा) उसका स्वभाव है। आहाहा ! समझ में आया ? और उसकी त्रिकाल श्रद्धा शक्ति है। सम्यग्दर्शन पर्याय है परंतु अंदर में श्रद्धा शक्ति है। इस श्रद्धा शक्ति में असंकुचितविकासत्व का रूप है। आहाहा ! संकोच बिना पूर्ण स्वरूप की प्रतीत करे, ऐसा श्रद्धा गुण में भी असंकुचितविकासत्व का रूप है। ये तो अलौकिक बातें हैं ! भाई ! समझ में आया ? ऐसे आत्मा में चारित्र गुण है। आत्मा में अकषाय स्वभाव चारित्र गुण है। समझ में आया ? चारित्र गुण यानी रमणता, स्थिर होना। अंदर त्रिकाल चारित्र अकषाय भाव है, वह चारित्र शक्ति है।

इस ४७ शक्ति में नहीं आयी है। उसे तो सुख शक्ति में समा दिया है। सम्यग्दर्शन और चारित्र को सुख शक्ति में गर्भित कर दिया है। समझ में आया ? सिद्ध के गुण में भी चारित्र (गुण) नहीं आया है। समकित आया है और सुख आया है। सिद्ध के आठ गुण हैं न ? एक बार कहा था। सुख में चारित्र शक्ति पूर्ण है। चारित्र नाम पूर्ण रमणता - संकोच बिना पूर्ण स्थिरता हो जाय, ऐसा चारित्र शक्ति में भी असंकुचितविकासत्व का रूप है। आहाहा ! समझ में आया ?

परमात्मप्रकाश में एक दृष्टांत दिया है। मंडप ऊपर वेल (बेल, लता) चड़ती है न? तो जहाँ तक मंडप है वहाँ तक वेल जाती है। परंतु वेल में आगे जाने की शक्ति नहीं है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? बांस का मंडप होता है न ? तो जहाँ तक बांस है वहाँ तक वेल जाती है। परंतु बांस है वहाँ तक ही जाने की शक्ति है, ऐसा नहीं। उससे भी आगे (बांस) हो तो (वेल) जा सके, ऐसी वेल की शक्ति है। समझ में आया? ऐसे तीनकाल - तीनलोक का मंडप है। आप लोग लड़के का लग्न मंडप करते हो ना ? वह सब पाप के मंडप है। यह लोकालोक का मंडप है, उससे भी अनंत गुना अगर लोक और अलोक का क्षेत्र और काल हो तो भी असंकुचितविकासत्व शक्ति अपने में विकास करती है। समझ में आया ? आहाहा !

भगवान ! तेरे में (ऐसी) एक शक्ति (है)। ऐसी-ऐसी अनंत शक्ति में एक शक्ति का रूप है। आहाहा ! अतीन्द्रिय आनंद भी असंकुचितविकासत्व से परिणमन करता है। पूर्ण अतीन्द्रिय आनंद की पर्याय, पूर्ण शांति की पर्याय, पूर्ण स्वच्छता की पर्याय, आहाहा ! पूर्ण दर्शन की पर्याय (इन सभी) शक्ति में (परिणमन में) असंकुच नाम बिलकुल संकोच नहीं। आहाहा !

श्वेतांबर में भिक्षा के लिये जाते हैं न ? तो उसमें ऐसा रिवाज है। (ऐसा कहते हैं)। `बहन ! आहार-पानी का संकोच नही है न ?' तो हम को दो, दो आदमी हो और (आहार) थोड़ा हो तो संकोच हो (जाय) और उसे दे तो अल्प हो जाय और नया बनाना पड़े। यह भाषा उसकी है। `मा ! बहन ! आपको आहार का संकोच नहीं है न ? (आहार) ज्यादा हो, तेरे घर में पूरा हो, इसके अलावा विशेष हो तो वोरवो (अर्थात् आहार दो)।' समझ में आया ? वैसे यहाँ तो परमात्मा कहते हैं। ये लोकालोक से अनंत लोकालोक हो और ऐसे अनंत काल हो, तो भी तेरी एक-एक पर्याय संकोच बिना विकास को प्राप्त करे, ऐसी शक्ति है। ऐसी बात है !

यहाँ तो एक-एक शक्ति का भण्डार असंकोचविकास स्वरूप है। आहाहा ! जिसमें कोई शक्ति संकोचरूप होकर विकास न हो, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं, आहाहा ! प्रभु ! तेरी महत्ता तो देख ! तेरे बड़प्पन की महत्ता परमात्मस्वरूप है, प्रभु ! आहाहा ! यहाँ कहते हैं कि, कोई द्रव्य, कोई क्षेत्र, कोई काल उसे संकोच होकर जाने, ऐसा नहीं है। सर्व क्षेत्र और सर्व काल से संकोच बिना - अपनी शक्ति से विकास करके जानता है, ऐसा उसका स्वभाव है। (इस प्रकार से जानने में) पर की अपेक्षा नहीं है। चार घाती(कर्म का) नाश हुआ तो (ज्ञान शक्ति का) विकास हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? आहाहा !

(कोई सत्य) माने (तो लोग कहते हैं कि) यह तो सोनगढ़िया है। अरे...! प्रभु ! सत्य है वह बात करे न ? (दूसरा) तुझे क्या काम है ? यहाँ तो पहले से ही सत्य हमारा है। वस्तु स्थिति ऐसी है, भगवान ! हमने तो भगवान के पास साक्षात् सुना है। आहाहा ! समझ में आया ? अरे...! ऐसी सूक्ष्म बात है, भाई ! कठिन बात है। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि, प्रभु ! तेरे में जितनी अनंत शक्तियाँ हैं (उसमें) जीवतर शक्ति में भी ज्ञान, दर्शन, आनंद की सत्ता का प्राण पर्याय में संकोच बिना विकास हो, ऐसा जीवतर शक्ति का स्वभाव है। समझ में आया ? दूसरे तरीके से कहें तो, उसमें कर्ता नाम की एक शक्ति है। आगे आयेगी। उस कर्ता शक्ति में भी अनंत पर्याय को, (पूर्ण पर्याय को विकास करके करे, ऐसा कर्ता (शक्ति में) भी असंकुचितविकासत्व का रूप है। समझ में आया ? ऐसा है भगवान !

अरे प्रभु ! महाराज, मुनिओं तुझे प्रभु कहके बुलाते हैं। आहाहा ! दिगंबर संतों ऐसा कहे, भगवान आत्मा ! आहाहा ! (समयसार) ७२ गाथा की संस्कृत टीका में है, भगवान आत्मा ! मुनिओं, दिगंबर संतों - वीतरागी झूले में झूलते हैं। अतीन्द्रिय आनंद के स्वाद में झूलते थे। आहाहा !

श्रोता : आप कहाँ मुनियों को मानते हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, (वर्तमान के) मुनियों को नहीं मानते। प्रभु ! (बाकी) (भावलिंगी मुनिराज के) हम तो दासानुदास है। मुनि होने चाहिए, प्रभु ! किसी को दुःख लगे (तो) क्या करे ? वह भी लेख आया है। (उसमें लिखते हैं) द्रव्यलिंगी न हो तो सारा धर्म उठ जायेगा। (ऐसा कहते हैं कि) आप लोग इनको द्रव्यलिंगी अगर मानोगे तो धर्म का लोप हो जायेगा। अरे भगवान ! आगम अनुसार उसका व्यवहार हो तो वह व्यवहार भी कहने में आता है। परंतु आगम के अनुसार व्यवहार (भी नहीं है)। हमेशा उसके लिये चोका बनाकर आहार लेते हैं तो आगम अनुसार २८ मूलगुण का व्यवहार भी ठिकाना नहीं। अरे प्रभु ! (इसमें) तेरा कोई अनादर करने की बात नहीं है। नाथ ! तेरी चीज़ कैसी है ? उसे बताने की बात है, भाई ! आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि, जो ऐसा कहे कि, शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से निश्चय होता है; तो उसे द्रव्य और द्रव्य की शक्ति की प्रतीति की खबर नहीं। समझ में आया ? यहाँ तो ऐसी बात है। यहाँ तो भगवान आत्मा में राग की मंदता की अपेक्षा छोड़कर (निश्चय धर्म प्रगट होता है)। क्योंकि ऐसा राग करना कोई आत्मा की शक्ति नहीं। आहाहा ! परंतु आत्मा की शक्ति तो राग के अभावस्वरूप वीतरागता की पूर्णता

का विकास करे, ऐसी उसमें शक्ति है। आहाहा ! राग करना (ऐसी) कोई (आत्मा में) शक्ति नहीं है। परंतु राग का अभाव करना वह भी उसमें नहीं है। वह तो वीतरागपना का विकास उत्पन्न होता है। जिस समय उसकी वीतरागता की उत्पत्ति है वह अपरिमित उत्पत्ति है, भाई ! आहाहा ! समझ में आया ? यह तो भण्डार (है)। आहाहा !

मृतक कलेवर में अमृत सागर मूर्च्छा गया है। ९६ गाथा में ऐसा कहा है। यह (शरीर) मृतक कलेवर (है)। यह मुर्दा है, जड़ - अचेतन है। आहाहा ! भगवान अमृत का सागर (है)। (समयसार की) ९६ गाथा में आता है। अमृत का सागर मृतक कलेवर में मूर्च्छा गया है। तीनों में `म' है। मृतक, अमृत और मूर्च्छा गया है। समझ में आया? अरे...! अल्पज्ञ पर्याय(रूप) रहना वह भी तेरा स्वभाव नहीं, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। आहाहा ! रागरूप रहना वह तो तेरा स्वभाव है ही नहीं, (बल्कि) अल्पज्ञ रहना वह (भी) तेरा स्वभाव नहीं, भगवान ! आहाहा !

यहाँ तो सर्वज्ञशक्ति और सर्वदर्शीशक्ति संकुचित (हुए) बिना सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को विकास करके जानती है, ऐसा स्वभाव है, आहाहा ! भाई ! सर्वज्ञ किसे कहें ! उसमें बड़ी गंभीरता है। आहाहा ! एक समय में अनंत केवली को जाने। अनंत केवली को एक समय में जाने। केवलज्ञान की पर्याय अनंते केवली को जाने। आहाहा ! अरे...! तीनकाल, तीनलोक का विकास विशेष होता तो भी जान लेता। ऐसी उसमें शक्ति है, आहाहा ! तेरी प्रभुता की तुझे प्रतीत नहीं। अल्पज्ञ और राग जो कि पामर है, उसकी तुझे प्रतीत (है)। वह प्रतीत तो मिथ्या है। समझ में आया ? आहाहा !

यह शरीर का आकार - स्त्री का, पुरुष का और हिजडे का आकार को न देख, प्रभु ! वह तेरी चीज़ नहीं, तेरे में नहीं और उसे राग है, उस राग को न देख। तेरे में राग है ही नहीं और अल्पज्ञपना न देख। अल्पज्ञ रहना यह तेरा स्वभाव नहीं, आहाहा ! समझ में आया ?

श्वेताबंर में एक अतिमुक्त कुमार की (कथा) आती है। बात तो कल्पित है। (एक) बालक था, राजकुमार (था)। बाद में दीक्षित हुआ। (एक दिन) दिशा के लिये साधु के साथ में जंगल जाते थे। जंगल गये तो वहाँ बारीश बहुत आयी। पानी चलता था (बह रहा था)। जल बहुत चल रहा था। बालक था तो वह तो पात्रा रखता था। ऐसा (सब) चलाया है न ? वह तो कल्पित है। बालक था (और) पानी चलता था (इसलिये) कीचड़की पाल बनाई और पानी में पात्र रखा (और गाने लगा)। `नाव तरे रे मेरी नाव तरे, एम मुनिवर जळ शुं खेल करे, मोह कर्म ना ए रे ! चाळा, मुनिवर दोरे नानकडा ए बाळा' अतिमुक्त वह छोटी उम्र के गजसुकुमार। गजसुकुमार आता है न ? बहुत छोटी उम्र

में दीक्षा ली। उसकी एक सज्झाय है।

यहाँ कहते हैं कि, `अमारी नाव तरे रे, मेरी नाव तरे' आहाहा ! आनंद की दशा और ज्ञान-दर्शन के विकास में मेरी नाव तैरती है। वह सब तो कल्पित था। मुनि को पात्र नहीं होता, वस्त्र नहीं होता, वह तो कल्पित बनाया है। आहाहा ! यहाँ तो परमात्मा की - आत्मा की नाव असंकोचविकासत्व शक्ति के कारण से अनंत गुण की पर्याय संकोच बिना विकास होती है। मेरा आत्मा संसार से ऊपर तैरता है। समझ में आया ? ऐसा मेरा स्वभाव है। आहाहा ! ऐसी दृष्टि करना और ऐसी चीज़ का सामर्थ्य का विश्वास करना, यह अलौकिक चीज़ है ! क्या कहा ? उसके जानने में क्षेत्र की मर्यादा नहीं, उसके जानने में काल की मर्यादा नहीं। ``**क्षेत्र और काल से अमर्यादित...**'' जिसको मर्यादा नहीं है, ओहोहो ! परमात्म प्रकाश में मंडप का दृष्टांत दिया (है) न ? (जहाँ तक मंडप है) वहाँ तक वेल चलती है। परंतु उस वेल में आगे जाने की शक्ति नहीं, ऐसा नहीं। बाद में ऊपरा-ऊपरी चड़ती है। मंडप दूसरा हो तो ऊपर चले। वैसे (इस) लोकालोक से भी (दूसरा) लोकालोक अनंत गुना हो तो भी ज्ञान की पर्याय संकोच बिना विकास से जानती है। समझ में आया? यह अरिहंत का रूप देखो ! आहाहा !

``**क्षेत्र और काल से अमर्यादित ऐसी चिद्विलास स्वरूप...**'' आहाहा ! ज्ञान का विलास (ऐसा है)। फूल-झाड के बाग में विलास करने जाते हैं कि नहीं ? वह (बाग) नहीं, बापू ! यह तो आत्मबाग का चिद्विलास है। समझ में आया ? शाम को बाग में घुमने जाते है न ? बंबई में बड़ा बाग है। एकबार हम देखने को गये थे। चारो बाजू झाड (पेड़) और हवा। सबेरे बाग में हवा खाने एक प्रहर पहले रात्रि को आदमी निकलते हैं। उस बाग में हवा (खाना) वह तो पाप है। सुन तो सही। यह तो आत्मबाग में चैतन्यविलास (है)। समझ में आया ? आहाहा ! `चिद्विलास' ऐसा शब्द लिया न ? चिद् यानी ज्ञान (और उसका) विलास। ज्ञान का ऐसा विलास है कि संकोच बिना सर्व क्षेत्र और सर्वकाल को जाने, ऐसी उसकी शक्ति है। समझ में आया ?

``**(- चैतन्य के विलासस्वरूप) असंकुचितविकासत्व शक्ति।**'' संकोच - न होने से - संकोच नहीं करने से विकासरूपी शक्ति। ऐसी स्वरूप में शक्ति (है)। आहाहा ! ज्ञान, दर्शन, आनंद, अस्तित्व, वस्तुत्व, कर्ता, कर्म (ऐसी अनंत शक्तियाँ हैं)। आहाहा ! (आत्मा में) कर्ता नाम की एक शक्ति है. वह भी अनंत पर्याय में संकोच बिना पूर्ण पर्याय को करे, संकोच बिना पूर्ण पर्याय को करे, संकोच बिना अपनी पूर्ण पर्याय का विकास करे, ऐसा उसका स्वभाव है, आहाहा ! १३ वीं शक्ति (हुई)। प्रत्येक शक्ति में यह असंकोचविकासत्व लेना, आहाहा !

एक पंडित के साथ बहुत चर्चा हुई थी। वे कहते थे कि, सर्वज्ञ यानी वर्तमान में सर्व विशेष को जाने - वह सर्वज्ञ। यहाँ जब तीसरी विद्वद् परिषद भरी थी (तब) वे आये थे। ३० वर्ष हुए। उस वक्त भी कहा था, भैया ! परमाणु में अनंत गुनी हरी (आदि रंग की) पर्याय होती है। वह अपने से होती है। पर के कारण से नहीं। आहाहा ! क्रमबद्ध में परमाणु में अनंत गुनी चिकाश, अनंत गुनी लुखाश, अनंत गुनी रंग की पर्याय होनेवाली है तो होगी ही होगी। (यह पर्याय) अपने से होती हैं, पर के कारण से नहीं, समझ में आया ?

ऐसे भगवान आत्मा में सर्वज्ञ पर्याय होती है। उसमें से पर का कोई कारण नहीं है। आहाहा ! सर्वज्ञ यानी एक समय में तीनकाल (को प्रत्यक्ष जाने)। भूतकाल वर्तमान में नहीं कि भविष्य (काल) वर्तमान में नहीं। (फिर भी) जिसको वर्तमान प्रत्यक्षवत् देखे, उसका नाम सर्वज्ञ है। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि, असंकुचितविकास - ज्ञान की पर्याय संकोच बिना पूर्ण विकास (रूप) होती है, आहाहा ! उसकी मर्यादा क्या ? अमर्यादित है। अरे... प्रभु ! तेरा गुण भी तूने सुना नहीं, आहाहा ! क्रियाकांड में सब घुस गये। परंतु राग से भिन्न भगवान (आत्मा है)। अल्पज्ञ रहने की भी तेरी शक्ति नहीं, अल्प दर्शी रहना शक्ति नहीं, अल्प वीर्य रहना शक्ति नहीं, अल्प आनंद में रहना भी उसकी शक्ति नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? अलौकिक बातें हैं। बापू ! यह तो धर्म की बात (है)। धर्म यह कोई अलौकिक चीज़ है, आहाहा !

सम्यक्‌दृष्टि में ऐसी सर्वज्ञ, सर्वदर्शी आदि अनंत शक्ति का संकोच बिना विकास हो, ऐसी प्रतीत उसमें आती है। सम्यक्‌दृष्टि को ऐसी निःसंदेह प्रतीत आती है, आहाहा ! चैतन्य भगवान - शुद्ध चैतन्य स्वभाव स्वरूप उसकी अनंत शक्ति (है)। प्रत्येक शक्ति में विकास पूर्ण हो - संकोच न हो - मर्यादित न रहे। ऐसी उसमें शक्ति है। आहाहा ! समझ में आया ? एक बात यथार्थ समझे तो दूसरे भाव को (बराबर यथार्थ) समझे। समयसार में (ऐसी एक) गाथा है। जयसेनआचार्यदेव की (टीका में आता है)। एक भाव भी यथार्थ समझे; सर्वज्ञ, सर्वदर्शी कोई भी एक शक्ति का (भाव), पर्याय और शक्ति (का) एक भाव यथार्थ समझे तो सर्व भाव यथार्थ (रूप से समझ में) आ जाता है। समझ में आया ? यह १३ वीं शक्ति (है)।

यह असंकुचितविकासत्व शक्ति द्रव्य, गुण में है परंतु जब उसका स्वीकार होता है तो पर्याय में व्याप्त होती है। असंकुचपना और विकासपना अंदर पर्याय में आ जाता है, आहाहा ! और अनंत गुण में यह असंकोचविकास शक्ति व्यापक है। समझ में आया ?

यह असंकुचितविकासत्व शक्ति ध्रुवपने उपादान है और क्षणिक पर्याय में उत्पन्न हुई यह क्षणिक उपादान है। समझ में आया ? आहाहा ! और यह असंकुचितविकासत्व शक्ति (का) किसी के कारण से कार्य हुआ, ऐसा नहीं। और दूसरे लोकालोक को जाने ऐसा कार्य, वह (भी) नहीं। उसकी तो पर्याय को जानता है। आहाहा ! समझ में आया ? वह लोकालोक का कारण नहीं और लोकालोक का कार्य नहि अर्थात् जो ज्ञान, दर्शन और आनंद की पूर्ण शक्ति का विकास हुआ - तो लोकालोक है तो कार्य हुआ, ऐसा नहीं। और लोकालोक के कारण से यह शक्ति नहीं। पर्याय में जो विकास व्याप्त हुआ - वह लोकालोक का कारण नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? अरे... ऐसी व्याख्या ! वह सब तो इतना आसान था कि, दया पालो, व्रत पालो, उपवास करो, रस छोड़ो, कपड़ा छोड़ो। (अपवास करना) यह लांघण (लंघन) है। आहाहा ! भगवान की महत्ता और बड़प्पन मर्यादा बिना की चीज़ है, ऐसे भान बिना सब लांघन हैं। वह सब उपवास और दो-दो महीने के संथारे सब लांघन है, तप नहीं - धर्म नहीं। आहाहा !

श्रोता : तप मत कहो, धर्म मत कहो, परंतु लांघन तो मत कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : लांघण (तो क्या) शास्त्र तो क्लेश कहते हैं। निर्जरा अधिकार में ऐसी क्रियाकांड करनेवाले को क्लेश कहते हैं, दुःख कहते हैं। क्लेश करो तो करो परंतु आत्मा उससे प्राप्त नहीं हुआ। आहाहा ! १३ वीं शक्ति हुई।

(अब) १४ वीं (शक्ति)। ''**जो अन्य से नहीं किया जाता...**'' इस श्लोक में - शक्ति में भी तकरार है। क्या (कहते हैं) ? कि यह तो द्रव्य की बात है। द्रव्य किसी का कारण नहीं और द्रव्य किसी का कार्य नहीं, ऐसा कहते हैं। यह १४ वीं शक्ति जो है इसमें तो द्रव्य की बात चलती है। द्रव्य किसी का कारण नहीं और द्रव्य किसी का कार्य नहीं। (परंतु) ऐसा नहीं (है)। यहाँ तो शक्ति जो है (उस) शक्तिवान का जहाँ अनुभव हुआ तो पर्याय में भी अकार्यकारण पर्याय - दशा प्रगट हुई। यह पर्याय भी राग का कारण नहीं और राग का कार्य नहीं। (वह) तो स्वतः चीज़ है। ऐसे उसकी पर्याय जो होती है वह पर्याय भी कोई पर का कारण नहीं और पर का कार्य नहीं। यह अकारणकार्य शक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय में व्याप्त हो गई। आहाहा ! समझ में आया ? यह (शक्ति) ७२ गाथा में से निकाली है। यह शक्ति (समयसार) ७२ गाथा है उसमें है। यह शक्ति समेदशिखर यात्रा में गये थे तब चली थी। दो घंटे चली थी।

यहाँ कहते हैं कि, (यह) अकारणकार्य शक्ति गुण है, शक्ति है। द्रव्य और गुण में व्यापक (है)। और प्रत्येक गुण की परिणति में पर का कारण नहीं और पर का कार्य नहीं, वैसे इस शक्ति का विकास होता है तो पर के कारण से नहीं। चार घाती (कर्म

का) नाश हुआ तो केवलज्ञान हुआ, ऐसा नहीं। (एक विद्वान ने ऐसा कहा है) चार घाती कर्म का नाश हुआ तो क्या (हुआ) ? वह तो अकर्म पर्याय हुई। जो कर्म पर्याय थी वह अकर्म (पर्याय) हुई। इसमें केवलज्ञान हुआ ये कहाँ से आया ? वह तो निमित्त से कथन है। आहाहा ! जैन तत्त्व मिमांसा में है। उन्होंने बराबर कहा है। खाणिया चर्चा बनाकर ऐतिहासिक सिद्धांत प्रसिद्ध किया है। ऐतिहासिक चर्चा हुई है। लोगों को ऐसा रुचे नहीं। भगवान ! वाद-विवाद से (पार) नहीं आये, प्रभु ! वीतरागता की चर्चा और यथार्थ चीज़ क्या है ? ऐसी चर्चा हो तो - तो वीतरागता सिद्ध हो। परंतु पर को झूठ ठहराना और अपना सच्चा (है), ऐसी बात नहीं। (ऐसे) सत् नहीं मिलेगा। आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ तो ना कहते हैं, देखो !

आत्मा की जो निर्मल पर्याय होती है यह राग का कार्य नहीं। राग - व्यवहार था तो कार्य हुआ, ऐसा नहीं और अकार्यकारण शक्ति राग का कारण नहीं। (वह) राग का कार्य तो नहीं परंतु संसार की उत्पत्ति का कारण नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! अपनी निर्मल शक्ति उत्पन्न करनेवाली कर्ता और निर्मल शक्ति उसका कार्य है। यह बाद में कर्ता-कर्म के छ बोल आयेंगे। समझ में आया ? आहाहा ! अभी वस्तु स्थिति की - सत्य की मर्यादा कैसे है ? (उसकी खबर नहीं)। द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय सत् - तीनों सत् हैं। पर्याय सत् अपने से हुई है। उस पर्याय को उत्पन्न कारण हुआ तो उत्पन्न हुई है ऐसा नहीं है। निश्चय में तो ऐसा है कि जब सम्यग्दर्शन आदि, केवलज्ञान आदि पर्याय उत्पन्न होती है - वह उत्पत्ति का जन्म क्षण था, वह उत्पत्ति का काल था, वह काललब्धि थी। उस समय में भव्यत्व का भाव उत्पन्न होने का था वह पर से नहीं हुआ। आहाहा ! समझ में आया ? अपने स्वरूप में स्थिर होता है तो चारित्रमोह का नाश होता है। तो कहते हैं कि नाश का कार्य अपना नहीं और राग का कारण भी नहीं। समझ में आया ?

``**जो अन्य से नहीं किया जाता...**'' आहाहा ! यहाँ (कोई) द्रव्य लेते हैं। शब्द द्रव्य है परंतु द्रव्य की शक्ति है तो पर्याय में व्याप्त होती है। समझ में आया ? शक्ति है (वह) द्रव्य में भी शक्ति है और गुण में भी शक्ति है। परंतु उसका जहाँ `है' (ऐसा) स्वीकार हुआ तो पर्याय में भी अकार्यकारणता आ गई। आहाहा ! समझ में आया ? (समयसार) ७२ गाथा में है। भगवान आत्मा दु:ख का कार्य नहीं अर्थात् राग का केवलज्ञान कार्य नहीं कि समकित आदि की पर्याय वह भी राग का कार्य नहीं। वैसे समकित आदि की पर्याय राग का कारण नहीं। समझ में आया ? ``**आस्त्रव आकुलता के उत्पन्न करनेवाले हैं।**'' आस्त्रव - पुण्य - पाप के भाव आकुलता के उत्पन्न करनेवाले हैं। आहाहा ! ``**इसलिये**

दु:ख के कारण है और भगवान आत्मा तो सदा ही निराकुलता स्वभाव के कारण किसी का कार्य तथा किसी का कारण न होने से...'' आहाहा ! उसमें से (यह) शक्ति निकाली (है)। समझ में आया ? भगवान आत्मा ! द्रव्य और गुण तो किसी का कारण - कार्य है ही नहीं। ईश्वर से द्रव्य बनाया और ईश्वर से शक्ति दी ऐसा तो तीनकाल में नहीं है। परंतु उसकी पर्याय का भी पर कारण नहीं और पर के कारण से पर्याय उत्पन्न हुई नहीं। आहाहा ! जैसे द्रव्य - गुण का कोई कारण-कार्य नहीं ऐसे अपनी जो निर्मल पर्याय होती है, उस पर्याय का भी कोई कारण नहीं और वह पर्याय किसी का कार्य नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है !

(बाहर तत्त्वा) लेख में ऐसा लिखे कि, शास्त्र में दो कारण का कार्य एक है। तत्त्वार्थराजवार्तिक में ऐसा आता है। वह तो निमित्त का ज्ञान करवाने को (कहा है)। निश्चय से यह बात सिद्ध रखकर कि, पर्याय किसी का कारण नहीं और किसी का कार्य नहीं। इस निश्चय को लक्ष में - दृष्टि में सिद्ध करके बाद में निमित्त को मिलाया तो प्रमाणज्ञान हुआ। परंतु निमित्त मिलाकर (प्रमाणज्ञान) हुआ तो पहले (निश्चय) बात थी उसको सत्य रखकर निमित्त को मिलाया है। समझ में आया ? पहली बात - निश्चय से पर्याय अपने से है। उसका कोई कारण कार्य नहीं है, इस बात को रखकर प्रमाण(ज्ञान) निमित्त को मिलाता है। निश्चय को झूठा करके निमित्त मिलाया तो प्रमाण हुआ ही नहीं। विशेष कहेंगे.....

क्रमबद्धपर्याय का सिद्धांत - यह तो सर्व आगम के मंथन का सार है। यह बात यहीं से (पूज्य गुरुदेव द्वारा) प्रसिद्ध हुयी है। इसके पूर्व यह बात संपूर्ण भारतवर्ष में कहीं भी चर्चित नहीं थी। क्रमबद्धता तो परमसत्य है। जिस काल जो होना है वही होगा; उसे इन्द्र, नरेन्द्र या जिनेन्द्र भी अन्यथा करने में समर्थ नहीं हैं। क्रमबद्ध में (ज्ञायकता) अकर्तृत्व सिद्ध होता है। इसकी श्रद्धा के संस्कार डाले होंगे तो स्वर्ग में जाओगे और वहाँ से सम्यक्त्व पाओगे। (परमागमसार - ५१७)

प्रवचन नं. १५
शक्ति-१४, १५ दि. २५-०८-१९७७

अन्याक्रियमाणान्याकारकैकद्रव्यात्मिका
अकार्यकारणत्वशक्तिः ।।१४।।
परात्मनिमित्तकज्ञेयज्ञानाकारग्रहणग्राहणस्वभावरूपा
परिणम्यपरिणामकत्वशक्तिः ।।१५।।

(समयसार) १४ वीं शक्ति। ``**जो अन्य से नहीं किया जाता और अन्य को नहीं करता ऐसे एक द्रव्यस्वरूप...**'' यह द्रव्यस्वरूप शब्द पड़ा है न ? इसलिये लोग ऐसा कहते हैं कि, (यहाँ) द्रव्य की बात (है)। (यहाँ तो) द्रव्य में शक्ति है, यह शक्ति पर्याय में व्याप्त है। उसे यहाँ द्रव्य कहते हैं। समझ में आया ?

एक द्रव्य अन्य से नहीं किया जाता है। अपनी सम्यग्दर्शन की पर्याय कोई अन्य से नहीं की जाती है और सम्यग्दर्शन की पर्याय अन्य को करती नहीं। समझ में आया ? (सम्यग्दर्शन की) पर्याय अन्य का कार्य नहीं। राग - व्यवहार है तो सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है।

ऐसे केवलज्ञान (भी) मनुष्य, संहनन और निमित्त ऐसा है तो केवलज्ञान उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं है। केवलज्ञान की पर्याय पर का कार्य और पर का कारण है नहीं। आहाहा !

दूसरी ओर से कहें तो केवलज्ञान (होने से) पहले चार ज्ञान अथवा मोक्षमार्ग था; तो मोक्षमार्ग कारण और केवलज्ञान कार्य। ऐसा नहीं है। क्योंकि केवलज्ञान पर्याय अकार्यकारण (स्वरूप) है। उसमें अकार्यकारणत्वशक्ति है; तो केवलज्ञान की पर्याय पूर्व के मोक्षमार्ग के कारण से उत्पन्न हुई, ऐसा भी नहीं। और राग को उत्पन्न करती है या निमित्त को

उत्पन्न करती है, ऐसा भी नहीं। आहाहा ! ऐसी सूक्ष्म बात (है) ! (इसलिये) लोगों को (कठिन लगता है। परंतु) सत्य तो यह है। समझ में आया ? प्रत्येक शक्ति में अकार्यकारणत्वशक्ति का रूप है, तो कहते हैं कि, चारित्र की पर्याय जब उत्पन्न होती है वह अपने द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होती है, यह भी व्यवहार है। चारित्र की पर्याय में द्रव्य कारण है कि राग / व्यवहार के कारण से (अथवा) व्यवहार रत्नत्रय के कारण से निश्चय चारित्र की पर्याय (उत्पन्न) हुई, ऐसा नहीं है। आहाहा ! यहाँ तो समय-समय की निर्मल पर्याय में शक्ति कारण (है। ऐसा) कहना यह भी व्यवहार है, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा !

उसी समय में केवलज्ञान या सम्यग्दर्शन या सम्यक्चारित्र (और) अपनी अनुभूति में आनंद की दशा उत्पन्न होना, इस आनंद की दशा में व्यवहार कारण और आनंद की दशा कार्य, ऐसा नहीं (है)। और उस आनंद की दशा (होने से) पहले जो शुद्धता की अपूर्णता अथवा शुभभाव था उस कारण से अनुभूति हुई, ऐसा भी नहीं। समझ में आया ? ऐसी बात है ! ज्ञान में, दर्शन में, आनंद में, चारित्र में, वीर्य में प्रत्येक में अकार्यकारण है। आहाहा !

अपना पुरुषार्थ - वीर्य, जो पुरुषार्थ की जागृति (उत्पन्न) होती है, उसमें कोई पर कारण है और पुरुषार्थ कार्य है, ऐसा भी नहीं। और यह पुरुषार्थ कोई पर का कारण है; (जैसे कि) वीर्य के कारण से शरीर चलता है, पुरुषार्थ के कारण से (शरीर चलता है), ऐसा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? अकार्यकारणत्वशक्ति का अनंत शक्तियों में रूप है। आहाहा !

अतीन्द्रिय आनंद का उत्पन्न होना यह द्रव्य के आश्रय से (उत्पन्न होता है ऐसा) कहने में आता है। सम्यग्दर्शन 'भूदत्थस्सिदो खलु' - भूतार्थ के आश्रय से (सम्यग्दर्शन) उत्पन्न होता है। ऐसा कहने में आता है। (लेकिन) वह भी व्यवहार है। सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होने में कोई द्रव्य-गुण कारण नहीं और पर द्रव्य कारण नहीं। ऐसा ही पर्याय का स्वभाव है। आहाहा ! सूक्ष्म है, भाई ! सप्त तत्त्व बहुत सूक्ष्म (है) और यह अपूर्व बात है ! समझ में आया ? अकार्यकारण (शक्ति) हो गई है। तो आज तो १५ वीं शक्ति (लेते हैं)। (आज) शिक्षण शिबिर का पंद्रहवां दिन है न ? आहाहा ! १५ वीं शक्ति थोड़ी सूक्ष्म है। ध्यान रखना ! आहाहा !

"**पर और स्व...**" है ? "**पर और स्व जिनके निमित्त हैं ऐसे ज्ञेयाकारों...**" अपने में ज्ञेयाकार ग्रहण करने की शक्ति है। पर ज्ञेयाकारों को ग्रहण करने की शक्ति है तो यह प्रमाण हुआ। "**तथा ज्ञानाकारों को ग्रहण करने के और ग्रहण कराने के स्वभाव...**"

समझ में आया ? ज्ञानाकार अपना जो स्वभाव है यह पर को ग्रहण कराने का स्वभाव है। तो यह प्रमेय है। परिणम्य शक्ति है यह प्रमाण है और परिणामकत्व शक्ति है यह प्रमेय है। दोनों को एक शक्ति गिनने में आया है। पर को ज्ञेयाकाररूप ग्रहण करना ऐसा अपना परिणम्य (अर्थात्) प्रमाण शक्ति है और अपनी शक्ति का पर को ग्रहण कराने का जो स्वभाव है, यह अपने में प्रमेय स्वभाव है। समझ में आया ?

(फिर से) कहते हैं। आत्मा में प्रमाण नाम की एक शक्ति और प्रमेय नाम की (शक्ति ऐसे) दो शक्ति मिलकर एक शक्ति (है)। प्रमाण और प्रमेय (ऐसी शक्ति है)। परिणम्य यह प्रमाण (है)। (और) परिणामकत्व यह प्रमेय (है)। दो शब्द है न ? परिणम्य (और) परिणामकत्व। परिणम्य वह प्रमाण (और) परिणामकत्व वह प्रमेय (है)। प्रमाण और प्रमेय दो होकर एक शक्ति है। उसका अर्थ यह है कि, पर का ज्ञेयाकार जो अनंत ज्ञेय वस्तु है उसे अपने में विशेषरूप से ग्रहण करना, ऐसी प्रमाण नाम की शक्ति है। अपने प्रमाण में पर वस्तु ज्ञेयाकार ज्ञान हो, ज्ञेयाकार कार्य (करे ऐसा) नहीं। अपने स्वभाव में उस ज्ञेयाकार का ज्ञान हो, (ऐसी शक्ति है)। आहाहा !

अनंत ज्ञेय है उसे यहाँ ग्रहण करने का - जानने का स्वभाव है। ग्रहण करने का अर्थ जानने का (स्वभाव है)। और अपना जो अनंत स्वभाव है वह पर के प्रमाण में प्रमेय होने की शक्ति - पर को ग्रहण कराने की शक्ति है। आहाहा ! दो चीज़ सिद्ध की। अकेला आत्मा है, ऐसा नहीं और अकेला पर ज्ञेय ही है और आत्मा नहीं, ऐसा भी नहीं। ज्ञेय अनंत है और ज्ञानस्वभाव भी आत्मप्रमाणरूप अनंत है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है। शक्ति का वर्णन है न ?

आत्मा में अनंत सामर्थ्यता (है)। पर का कर्ता (होना) या अपने में पर से कार्य हो, यह तो अपने में है ही नहीं। परंतु अपने स्वभाव में - प्रमाण में पर ज्ञेयाकारों को ग्रहण करना यह अपना स्वभाव है। और पर ज्ञेय में (अर्थात्) पर प्रमाण में अपने प्रमेयत्व को कारण पर को (अर्थात् पर के ज्ञान में) ग्रहण कराने का स्वभाव है। ऐसी वस्तु (है)। आहाहा ! समझ में आया क्या कहा ?

श्रोता : सूक्ष्म पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिये धीरे से कहते हैं न ? और एकबार, दो बार, तीन बार, चार बार कहते हैं।

यह आत्मा जो है उसमें प्रमाण और प्रमेय नाम की एक शक्ति है। यह प्रमाण और प्रमेय नाम की शक्ति का कार्य क्या (है) ? कि, प्रमाण है उसमें पर ज्ञेयाकार का ज्ञान करना यह प्रमाण कार्य है। यहाँ तो प्रमाण है तो पर का ज्ञेय का आकार ग्रहण

करना, ऐसी बात है। प्रमाण में पर ज्ञेयाकार विशेष जो है, उसका ज्ञान होना यह अपना स्वभाव है। प्रमाण तो अपनी शक्ति है। समझ में आया ? सब ज्ञेयाकार (आये) तो उसमें आत्मा भी आया। परंतु सर्व ज्ञेयाकारों का प्रमाणज्ञान में ज्ञान होना यह अपनी शक्ति है। पर से अपने में कार्य हो, ऐसी कोई चीज़ (शक्ति) नहीं (है)। और पर को ग्रहण करना (ऐसी भी शक्ति है)। अपनी अनंत शक्ति, अनंत गुण स्वभाव है उसमें एक प्रमेय नाम की शक्ति है। प्रमेय - कि जिस प्रमेय के कारण ज्ञान के प्रमाण में (अपने) प्रमेय को ग्रहण कराना उसका स्वभाव है, आहाहा ! भाई ! प्रमेय और प्रमाण दो मिलाकर एक शक्ति है। उसका अर्थ ऐसा करते हैं ! - ऐसा कहना है कि, अनंत पर ज्ञेय हैं उसका ज्ञान होना यह आत्म स्वभाव है; परंतु पर की रचना (करना) या पर को बनाना, यह उसका स्वभाव नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

अपने में अनंत गुण आदि जो द्रव्यस्वभाव है उसमें प्रमेयत्व (शक्ति) है, तो उस कारण से पर द्रव्य के प्रमाण में प्रमेयत्व को ग्रहण करना, परज्ञान में ग्रहण कराना, यह उसका अपना स्वभाव है। आहाहा ! परिणम्य यह प्रमाण हुआ। परिणामकत्व यह प्रमेय हुआ। समझ में आया ? ऐसी बातें (हैं)। सेठ लोगों ने तो (यह) सब सुना भी न हो।

श्रोता : पहले यह नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं था, यह बात सच्ची (है)। लोगों को बेचारों को (कहाँ सुनने मिले) ? अरेरे... प्रभु ! इस काल में ऐसी बात ! बाहर में (लोगों का विरोध ऐसा है कि) यहाँ के साहित्य को जल में ड़ाल देना है। आहाहा ! क्या हो (सकता है) ?

श्रोता : वह अपना ज्ञान पानी में डालता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है। भगवान ! प्रभु ! तुझे नुकसान है। यह तो सत् साहित्य है। उसका ज्ञान करना यह तेरा स्वभाव है। ज्ञेय को पानी में डालना यह तेरा स्वभाव नहीं है। अरेरे...! क्या हो सकता है ? प्रभु ! सत् साहित्य में तो यह चीज़ है। समझ में आया ?

तेरी चीज़ में अनंत ज्ञेयों को जानना ऐसा तेरा स्वभाव है। परंतु अनंत ज्ञेयों की रचना करना या उसका कार्य करना यह तेरे स्वभाव में नहीं है और यह ज्ञेय के स्वभाव में (भी) नहीं है। क्योंकि अपने में प्रमाण तरीके जो ज्ञेय का स्वभाव आता है, उसमें उस ज्ञेय का स्वभाव ऐसा नहीं है कि, पर से रचना हो। ज्ञेय का द्रव्य, गुण, पर्याय अपने ज्ञान के प्रमाण में ग्रहण - जानने का स्वभाव है। ऐसा स्वभाव है। अरिहंत, त्रिलोकनाथ, तीर्थंकर, सर्वज्ञ और पंच परमेष्ठी (वे सब) ज्ञेय हैं। उन्हें जानने का प्रमाणज्ञान में अपना स्वभाव है, परंतु उनसे कुछ मिले, ऐसा कोई स्वभाव नहीं है। ऐसी बातें हैं, भाई ! आहाहा !

समझ में आया ?

पर जिसमें निमित्त है (अर्थात्) अपने ज्ञान प्रमाण में पर निमित्त है। है न ? और ``**स्व जिनके निमित्त है...**'' अपना आत्मा पर को ज्ञात होने में निमित्त है। पर को ग्रहण कराने में (निमित्त है)। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी शुद्ध शक्ति (है) ! इससे तो भक्ति और पूजा करे न ! (तो) लोगों को ठीक पड़ता है। बापू ! भक्ति पूजा होती है, अशुभराग से बचने को शुभभाव हो। और वास्तव में तो सच्ची भक्ति समकिती को ही होती है। आहाहा ! आया ? पंचास्तिकाय में टीका में आया है। सम्यक्दृष्टि को ही यथार्थपने भक्ति का शुभभाव (है)। उन्हें यथार्थ व्यवहार है। अज्ञानी को व्यवहार कहाँ आया ? आहाहा ! समझ में आया ?

हम तो संप्रदाय में थे न ? तो हमारे यहाँ यह चर्चा बहुत चलती थी। ८३ की साल में बहुत चर्चा हुई। एक सेठ थे। उन्होंने ऐसा कहा कि, `सम्यक्दृष्टि होने के बाद मूर्तिपूजन है ही नहीं। जब तक मिथ्यादृष्टि है तब तक मूर्ति की पूजा है।' ऐसी बात चली। ५० वर्ष हुए। आहाहा ! उन्होंने ऐसा कहा कि, `जब तक मिथ्यादृष्टि हो तब तक मूर्ति की पूजा हो। सम्यक्दृष्टि होने के बाद मूर्ति पूजा नहीं होती' तो हमने उसे ऐसा कहा, `यथार्थ में तो सम्यग्दर्शन होता है तब श्रुतज्ञान होता है। श्रुतज्ञान होता है उसमें श्रुताज्ञान अवयवी है और निश्चय - व्यवहार उस अवयवी का अवयव है।' इतना अवयवी शब्द नहीं (कहा) था। परंतु इतना कहा था कि, `श्रुतज्ञान होने के बाद दो नय होती है। निश्चय और व्यवहार। और चार निक्षेप हैं। नाम, स्थापन, द्रव्य और भाव ये ज्ञेय के भेद हैं। निश्चय - व्यवहारनय के भेद हैं। वास्व में तो सम्यग्दर्शन होने के बाद व्यवहारनय होता है और व्यवहारनय में यह पूजनिक वस्तु है, ये निमित्त पड़ती है।' तो समकिती होने के बाद वास्तव में पूजने का भाव - व्यवहार आता है। समझ में आया ? यह तो ५० वर्ष पहले की बात है। (हमने कहा) कि, भाई ! हम ऐसे नहीं मानेंगे। इसमें (संप्रदाय में) आ गये इसलिये हम मान लें, ऐसा (नहीं है)। हमें (बात) नहीं बैठे तो (हमें ऐसे ही) बैठानी नहीं है।

वास्तव में तो भगवान की प्रतिमा ज्ञेय का भेद है। नाम निक्षेप, स्थापना, निक्षेप, द्रव्य निक्षेप, भाव निक्षेप - यह ज्ञेय के भेद हैं। श्रुतज्ञान में नय है यह श्रुतज्ञान का भेद है। श्रुतज्ञान के भेद में निश्चय और व्यवहार आता है। उस व्यवहारनय से (स्थापना) निक्षेप (ऐसी) भगवान की प्रतिमा का सच्चा पूजनिक व्यवहार वास्तव में तो समकिती को ही आता है। आहाहा ! भले है शुभभाव। समझ में आया ? स्थानकवासी में आ गये इसलिये हम ऐसे ही माने ऐसी हमारी चीज़ नहीं। हम तो हमारे आत्मा का (कल्याण)

करने के लिये (आये हैं)। (हमने) कहा, भाई ! मार्ग तो यह है। भाई ! हम ऐसे नहीं माने। हमको तो (बात) अंदर बैठनी चाहिए। वास्तव में तो व्यवहारनय समकिती को ही होता है। मिथ्यादृष्टि को नय कहाँ आया ? (जब) नय नहीं है तो निक्षेप का विषय भी समकित बिना कहाँ से आया ? समझ में आया ? न्याय समझ में आया ? आहाहा ! यहाँ तो न्याय से समझने में आता है तो बात उसके ज्ञान में - अनुभव में आनी चाहिए न ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, आत्मा में परिणम्य - परिणामकत्व ऐसी एक शक्ति ली। परिणम्य (यानी) प्रमाण और परिणामकत्व (यानी) प्रमेय। प्रमाण और प्रमेयरूप एक शक्ति है कि, जिस प्रमाण में - ज्ञान कराने में पर निमित्त है। और पर को ज्ञान कराने में अपना आत्मा निमित्त है। है ? ``**पर और स्व जिनके निमित्त है ऐसे ज्ञेयाकारों...**'' (ज्ञेयाकारों) पर (हैं)। पर ज्ञेयाकारों को ग्रहण करने की अपने में प्रमाणज्ञान की शक्ति है। ``**तथा ज्ञानाकारों को ग्रहण करने के और ग्रहण कराने के स्वभावरूप...**'' आहाहा ! है ? ``**...ज्ञानाकारों को ग्रहण करने के और ग्रहण कराने के स्वभावरूप परिणम्य - परिणामकत्व शक्ति।**'' आहाहा ! बहनों को तो यह सूक्ष्म पड़े। (लेकिन) वस्तु तो ऐसी है। आहाहा !

पर जिसको निमित्त है। आत्मा को पर निमित्त है। आत्मा में - ज्ञान में ज्ञेयाकार ग्रहण होना (उसमें) पर निमित्त है और अपना स्वरूप पर को ग्रहण कराने में निमित्त है। उसके (पर के) प्रमाणज्ञान में अपना प्रमेय (अर्थात्) ज्ञान कराने का स्वभाव है। आहाहा ! समझ में आया ? इस शक्ति का भी अनंत शक्ति में - एक-एक शक्ति में रूप है। आहाहा ! केवलज्ञान में भी पर ज्ञेयों का ग्रहण करने का स्वभाव है। और केवलज्ञान में भी पर को ग्रहण कराने या पर केवली आदि को ग्रहण कराने में प्रमेय स्वभाव है। उसका ज्ञान स्वभाव पर को जानने में प्रमाणरूप है और ज्ञान आदि अनंत स्वभाव पर को ज्ञेय बनाने में - प्रमेय बनाने में - पर को ग्रहण कराने में समर्थ है। आहाहा ! (पर के) केवलज्ञान में आत्मा का स्वभाव ग्रहण कराने का निमित्तपना है और (पर के) केवलज्ञान की अपनी पर्याय में ग्रहण करने का स्वभाव है। केवलज्ञान ऐसा है, ऐसा जानने का स्वभाव है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बातें (हैं) !

श्रोता : समझ में नहीं आया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी भी समझ में नहीं आया ? और स्पष्ट करते हैं, भगवान ! आहाहा ! तुम तो चैतन्यस्वरूप हो न नाथ ! आहाहा ! (समयसार) १७-१८ गाथा में आबाल-गोपाल आया है न ? आबाल-गोपाल अर्थात् बालक से लेकर वृद्ध सब जीव को अपनी ज्ञान की पर्याय में (स्व) ज्ञेय जानना यह उसका स्वभाव है। (स्व) ज्ञेय जानते ही

है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? सर्व प्राणी (अर्थात्) बालक - वृद्ध आदि सर्व, अपनी ज्ञान की पर्याय में सारा ज्ञेय जानते ही हैं। ऐसा ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है। आहाहा ! पर्याय ने अपने को प्रमेय बनाया और अपने को प्रमाण बनाया। पर को ग्रहण किया (अर्थात्) प्रमाण बनाया। पर को ग्रहण किया यह प्रमाण बनाया। आहाहा ! सूक्ष्म बात है। यहाँ प्रमेय शक्ति और प्रमाण शक्ति दो भिन्न नहीं लिया है। दो होकर एक (शक्ति) ली है। भगवान ! तेरे में एक परिणम्यपरिणामकत्व नाम का गुण है। गुण कहो, शक्ति कहो, सत् भगवान उसका सत्व कस कहो, माल कहो (सब एकार्थ है)। आपके रुपये के माल की यहाँ बात नहीं है। इसमें है उसकी बात है।

(पैसा) ज्ञेयपना जानने लायक है, ऐसा तेरा स्वभाव है। पैसा मेरा है (ऐसा मानना) यह तेरा स्वभाव नहीं है। लक्ष्मी, मकान, स्त्री, कुटुंब, परिवार, लड़का, उसकी स्त्री सब ज्ञेय तरीके तेरे ज्ञान में जानने के लायक स्वभाव है। वह मेरा है, ऐसा (मानना) यह कोई तेरे स्वभाव में है ही नहीं। आहाहा ! और तेरा स्वभाव भी पर का पुत्र हो, कि पर का पिता (हो), पर तेरा पिता हो (ऐसा नहीं है)। समझ में आया ? पर को प्रमेय होना (अर्थात्) पर के प्रमाण में प्रमेय होना, यह तेरा स्वभाव है। परंतु पर का पुत्र हो और पर का बाप हो, ऐसी वस्तु नहीं है। आहाहा ! लक्ष्मी आदि परज्ञेय को जानने का तेरा स्वभाव है और ज्ञानी के ज्ञान में प्रमेयत्व ग्रहण कराने का तेरा स्वभाव है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बातें हैं ! आठ लड़के हो, उसकी बहू (हो), मकान, बंगला (हो), आठों के लिये भिन्न-भिन्न बंगले हो, उनके लिये भिन्न-भिन्न कपड़े हो, सभी के लिये होता है न ? ५०-५० हज़ार और लाख-लाख रूपये के कपड़े हो। तो कहते हैं कि, सुन तो सही प्रभु ! वह सब चीज़ ज्ञेय तरीके तेरे ज्ञान में जानने में आये, ऐसी वह चीज़ है। आहाहा !

श्रोता : ज्ञेय तरीके जानने में आये तो हमारी मालिकी की हो जाय कि नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मालिक तो प्रमाणज्ञान का मालिक है। पर को ग्रहण किया (जाना) उस प्रमाणज्ञान का मालिक है। प्रमेय का मालिक है ? वह प्रमेय है न ? (अपने) प्रमाण में (वह) प्रमेय (के रूप में) आया और अपना प्रमेय पर के प्रमाण में गया, तो क्या पर (अपना) आत्मा का स्वामी है ? केवलज्ञानी आत्मा का स्वामी है ? आहाहा ! मेरा भगवान ! मेरा गुरु ! तो कहते हैं कि सुन तो सही प्रभु ! आहाहा ! वह तो ज्ञेय है। तेरे में जानने लायक ज्ञेय है। परंतु मेरे भगवान और मेरे गुरु, ऐसी तो कोई चीज़ है नहीं। समझ में आया ? ऐसी बातें हैं !

कोई चीज़ है उसे जानने का स्वभाव है और कोई ज्ञानानंद आदि स्वभाववाला

प्राणी है। उसे (तुम) ज्ञेय होकर - प्रमेय होकर जानने के लायक है। परंतु पर का होना, इसके लायक तू नहीं। और वह पर तेरा हो, ऐसी लायकात तेरे में है नहीं। आहाहा !

श्रोता : भगवान को इतने शिष्य हुए, (ऐसा आता है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब व्यवहार की बात (है)। समझ में आया ? भगवान को १४ हज़ार साधु थे, ३६ हज़ार आर्जिका थी, ऐसा आता है न ? यहाँ तो कहते हैं कि, प्रभु ! सुन तो सही ! तेरे ज्ञान स्वभाव में उस ज्ञेय को जानने का - ग्रहण करने का अर्थात् जानने का (स्वभाव है)। है न ? देखो !

"**पर और स्व जिनके निमित्त है ऐसे ज्ञेयाकारों...**" (ज्ञेयाकारों) पर और ज्ञानाकार स्व (है)। ज्ञेयाकार ग्रहण करने के (और) ज्ञानाकार ग्रहण कराने के (स्वभावरूप है)। प्रत्येक शब्द में फ़र्क है। आहाहा ! समझ में आया ? जगत में कोई प्राणी विरोधी है ही नहीं। आहाहा ! प्राणी तो सब ज्ञेय (हैं)। ज्ञान में जानने लायक है। उसका विरोध करना कि, यह ऐसा है और वैसा है। अरे प्रभु ! क्या करता है ? समझ में आया ? जिसको दुनिया दुश्मन कहे, वह भी ज्ञेय (है)। ज्ञान में जानने लायक है, बस ! दुश्मन है ऐसी मान्यता (करना) इस आत्मा में है ही नहीं। लोजीक से (बात) चलती है, भगवान ! भगवान का मार्ग लोजीक से है - न्याय से है। ऐसे कचर-बचर मानना, ऐसा नहीं (है)। उसकी स्थिति मर्यादा जैसी है ऐसे प्रकार का ज्ञान करना, प्रतीत करना यह वस्तु का स्वरूप है। आहाहा ! समझ में आया ?

(यहाँ) कहते हैं कि, पर ज्ञेयाकार अपने ज्ञान में निमित्त है और अपना ज्ञानाकार पर ज्ञान में निमित्त है। अंदर में शब्द है न ? पर जिनके निमित्त हैं ऐसे ज्ञेयाकारों (और) स्व जिनके निमित्त हैं ऐसे ज्ञानाकारों। पर जिसके निमित्त हैं ऐसे ज्ञेयाकारों उसे ग्रहण करने के - उन ज्ञेयाकारों को ग्रहण करने के और स्व जिसका निमित्त है, ऐसे ज्ञानाकारों को ग्रहण कराने के स्वभावरूप (परिणम्यपरिणामकत्व शक्ति है)। आहाहा ! अमृतचंद्राचार्यदेव दिगंबर संत (ऐसा) काम करते हैं ! आहाहा ! (पर) ज्ञेयाकार को ग्रहण करना और ज्ञानाकार को पर में ग्रहण कराना (ऐसा स्वभाव है)। आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है। भगवान ! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है।

तीर्थंकर सर्वज्ञ परमेश्वर ! ऐसा कहते हैं कि, मेरे ज्ञान में तुम ज्ञेय तरीके जानने के लायक हो और मैं भी (दूसरे) केवलज्ञानी के ज्ञान में जानने के - ग्रहण कराने के लायक हूँ। परंतु केवलज्ञानी को मैं उसका केवलज्ञानी हूँ, ऐसा (मानना) मेरे स्वभाव में नहीं ! है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसे स्त्री, पुत्र, लक्ष्मी, मकान (ये सब) प्रभु !

तेरे ज्ञान में उस ज्ञेयाकारों को ग्रहण करने का - जानने का स्वभाव है और सामने ज्ञान हो उसमें तेरा प्रमेयत्व उसे ग्रहण कराने की - जानने की ताकत है। परंतु उसका पुत्र हो, उसकी स्त्री हो, ऐसा कोई स्वभाव नहीं है। समझ में आया ? अरेरे...! जिसे यहाँ लोग ऐसा कहे कि, यह मेरी अर्धांगना है। हमारी घरवाली है। अरे ! सुन तो सही प्रभु ! तेरी घरवाली तो ज्ञेय का ज्ञान करे, वह पर्याय तेरी घरवाली है। आहाहा ! समझ में आया ?

इन दरबारों को दो-दो लाख की कमाई हो (वे ऐसा मानते हैं कि), हमारे इतने खेत हैं और इतनी कमाई है। (यहाँ) कहते हैं कि, वह (सब कुछ) तेरे स्वभाव में वह 'है', ऐसा जानने का स्वभाव है। सब ज्ञेय जानने लायक हैं। आहाहा ! वकील की जो भाषा निकलती है और उसमें पैसा मिलता है, वह सब ज्ञेय का ज्ञान करने का तेरा स्वभाव है। आहाहा ! और सामने प्रमाणज्ञानवाले ज्ञानी हो तो तेरा स्वभाव ज्ञेय होकर - प्रमेय होकर पर में जनाने का तेरा स्वभाव है। परंतु पर का करना और तेरा स्वभाव पर का हो जाय और पर ज्ञेय तेरा हो जाय, ऐसा कोई स्वभाव नहीं है। आहाहा ! लोगों को यह सूक्ष्म पड़ता है (परंतु) मूल चीज़ यह है। समझ में आया ? ध्यान रखना ! ऐसा कहा था।

भगवान आत्मा ! उसमें ऐसी एक शक्ति - सामर्थ्य - स्वभाव गुण है कि, जिसका पर ज्ञेयों को ग्रहण करने का अर्थात् जानने का स्वभाव है। और ज्ञानी के ज्ञान में प्रमेय होने का तेरा स्वभाव है। परंतु पर का शिष्य होने का और पर का गुरु होने का (स्वभाव नहीं)। 'मैं पर का गुरु हूँ' ऐसा कोई स्वभाव नहीं है। आहाहा ! गज़ब बात है न ! पर्याय में शक्ति का परिणमन है उसकी बात चलती है। अनादि से शक्ति तो द्रव्य - गुण में थी (परंतु जब) प्रतीत हुई तो पर्याय में शक्ति का परिणमन आया। पर्यायस्वभाव उसका ऐसा है. पर ज्ञेय का ज्ञान करने का पर्याय में स्वभाव है। ध्रुव में तो कहाँ (परिणमन) है ? समझ में आया ? आहाहा !

२५-५०-६०-२०० बीघा (जमीन हो तो यहाँ) कहते हैं कि, किसका कैसा पैसा ? भाई ! तुझे खबर नहीं। पर चीज़ की अनंतता और बहुलता तेरे ज्ञान में जानने के लायक है। परंतु उस पर की बहुलता 'मेरी है' ऐसा मानने का स्वभाव तो तेरी विपरीत दृष्टि है। ऐसी बात है ! आहाहा ! और पर का ज्ञान चाहे केवलज्ञान हो (या) मति-श्रुत ज्ञान आदि हो, उसमें तेरी चीज़ पर को ज्ञेय होने का - पर का ग्रहण कराने का - ज्ञेय होकर ग्रहण कराने का स्वभाव है। परंतु तुम पर के हो जाओ, ऐसा कोई स्वभाव नहीं है। आहाहा ! आत्मा किस प्रकार से ज्ञाता-दृष्टा है ? यह कैसे सिद्ध करते हैं ! समझ

में आया ?

आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है उसे किस प्रकार से सिद्ध करते हैं ! भगवान ! तुम तो ज्ञाता-दृष्टा हो ना ? तो ज्ञेय को जानने का तेरा स्वभाव है न ! आहाहा ! और दूसरे जो ज्ञाता-दृष्टा है उसे तुम प्रमेय - जानने का स्वभाव है परंतु उसका होने का स्वभाव तेरे में नहीं है। आहाहा !

श्रोता : यह सच्चा लगता है परंतु वहाँ (उदय में) जाते हैं तब फिर जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाजरा और तिल दिखे न ? उसे पीसे तो जैसे कि उसमें घुस गया। अंदर (खेत में) देखने जाय न ? लंबे बाजरे पकते हैं। हम संप्रदाय में थे तब अलियाबारा गये थे। गाँव में बाजरे का बड़ा डुडा (अनाज की बाल, भटका) ले आये। बाजरा इतना बड़ा और राडा (बाजरे का तना, डंठल) इतना (छोटा)। बाजरा इतना बड़ा और उसका डुडा इतना (छोटा)। जामनगर के पास अलियाबारा है। उसका राडा का भाग छोटा और उसमें बाजरा पके इतना बड़ा लंबा। वह बाजरा ५०-५० बीघा ज़मीन में इतना पका हो और दरबार देखने जाये (तो देखकर ऐसा लगे कि) आहाहा ! ये तो बाजरा पका ! जवार पकी ! तिल पके ! खेत में अंदर देखने जाते हैं तो ओहोहो ! (हो जाता है)। क्या है प्रभु ! वह चीज़ तो तेरी ज्ञेय है (और) तेरे ज्ञान में जानने के लिये वह होता है। और तेरी चीज़ पर ज्ञेय के ज्ञान में जानने के (लायक) स्वभाव है। मेरी मानना ऐसा स्वभाव तीनकाल में नहीं है। ऐसी बातें हैं ! पुत्र, आदि सब ज्ञेय हैं। ज्ञान में जानने लायक है। 'मेरा है' ऐसा नहीं है।

श्रोता : वह लड़के हैं, ऐसा तो जानने लायक है कि नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह लड़का ही नहीं है। (बल्कि) ज्ञेय है। आहाहा !

''(**पर जिनके कारण है...**'' अर्थात् ज्ञेय अपने ज्ञान में कारण है। ''**ऐसे ज्ञेयाकारों को ग्रहण करने के...**'' (अर्थात्) उन पर ज्ञेयों के आकारों यानी विशेष स्वभाव को जानने का (स्वभाव है)। ''**...और स्व जिनका कारण है ऐसा ज्ञानाकार...**'' अपना ज्ञानाकार जो है (वह) पर ज्ञान में ग्रहण कराने का स्वभाव है - जानने का स्वभाव है। आहाहा ! सम्यग्दर्शन में ऐसी मान्यता में आता है कि, ''**मैं तो परिणम्यपरिणामकत्व शक्तिवान हूँ।**'' जितने ज्ञेय हैं उसे मैं जानने लायक हूँ। और पर ज्ञान में प्रमेय होकर मैं जनाने लायक हूँ। सम्यक्दृष्टि में ऐसी प्रतीति होती है। आहाहा ! समझ में आया ? इस शक्ति की प्रतीत होती है (उसमें) यह आ गया। यह प्रमाण और प्रमेय (आ गया)। परिणम्य यानी प्रमाण (और) परिणामकत्व यानी प्रमेय। यह शक्ति मेरी है। मैं शक्तिवान हूँ। ऐसी जब प्रतीति हुई तो समकिती को अपने सिवा शरीर, वाणी, मन, कर्म, राग आदि सब

(जानने लायक हैं)। आहाहा ! व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प उठता है उसे भी ज्ञेय होकर मैं जानने लायक हूँ। आहाहा ! व्यवहार रत्नत्रय का जो विकल्प - राग उठता है, वह ज्ञेय तरीके मेरे ज्ञान में जानने लायक है। परंतु वह राग मेरा है, ऐसी चीज़ (स्वभाव) नहीं है। आहाहा !

यह बड़ी तकरार (चलती है)। `शुभजोग मोक्ष का मार्ग है और शुभजोग से आत्मा का शुद्ध भाव होता है।' समझ में आया ? यहाँ तो प्रभु ! ना कहते हैं। समझ में आया ? शुभजोग भी ज्ञेय है। उस ज्ञेय को जानने का - ग्रहण करने का स्वभाव (है)। १२ वीं गाथा में यह आ गया। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान (है)। चारों ओर से देखो तो एक ही सिद्धांत खड़ा होता है, आहाहा ! १२ वीं गाथा में आया न ? ११ वीं (गाथा में) आया है कि अपना स्वभाव हुआ। उसे जो राग होता है उस राग को, ज्ञेय के तरीके जानने का स्वभाव है। परंतु राग मेरा स्वभाव है और राग से ज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं। राग का ज्ञान हुआ वह राग से हुआ, ऐसा भी नहीं। राग का ज्ञान तो अपने प्रमाण स्वभाव के कारण से हुआ है। क्या कहा ?

श्रोता : वहाँ तो ऐसा लिखा है कि, व्यवहार द्वारा उपदेश कर देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है ही नहीं। आपत्ति वही है न ? वह तो पद की रचना (ऐसी) हुई है। दिल्ही में एक पंडित ने कहा कि, `देखो ! व्यवहार का उपदेश करना' (ऐसा लिखा है)। अरे...! उपदेश की बात नहीं है, प्रभु ! वहाँ तो पद्य में ऐसा आया है । परंतु उसकी टीका में अमृतचंद्राचार्य ने कहा कि, उस-उस समय में जो कोई राग आता है, उस व्यवहार से - उपचार से जानने लायक है, ऐसा जानना। आहाहा ! १२ वीं गाथा में संस्कृत में `तदात्वे' शब्द है। `तदात्वे' (अर्थात्) उस-उस समय में। माने क्या ? कि जिस समय राग की तीव्रता आयी तो उस समय में स्व और पर - राग का ज्ञान करने की ताकत (है)। अपने से यह ज्ञान होता है। समझ में आया ? और दूसरे समय में थोड़ा मंद राग हुआ तो उसी समय ज्ञान की पर्याय अपने से स्वपरप्रकाश रूप से राग को ज्ञेय (जानती है)। और मैं उसका जाननेवाला (हूँ) (ऐसा जो जानती है) वह भी व्यवहार है। आहाहा !

मेरा राग संबंधी जो ज्ञान की स्वपरप्रकाशक पर्याय हुई उसको मैं जाननेवाला हूँ। और वह मेरा ज्ञेय है, यह भी व्यवहार है। आहाहा ! यह बात आ गई है। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म, भाई ! है न? क्रमवर्ती ज्ञान पर्याय पर को जाने, वह भी व्यवहार है। वह तो दूसरा बोल है। आहाहा ! क्या कहा ?

अपने में - ज्ञान की पर्याय में रागादि ज्ञेय हैं उसे जानने का स्वभाव है। परंतु

वह राग और ज्ञेय है तो उसकी ज्ञान की पर्याय प्रकाश में आयी, ऐसा भी नहीं। अपनी पर्याय की ताकत से स्व और पर को जानने की पर्याय उत्पन्न हुई। राग के कारण से नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? सोनगढ़ के नाम से यह बड़ी तकरार (चलती है)। अरे...! भगवान ! प्रभु ! तेरी चीज़ ऐसी है कि, राग आया उसका उस समय में और उस संबंधी और अपना संबंधी ज्ञान करना यह तेरा स्वभाव है। समझ में आया ? परंतु राग से - व्यवहार से निश्चय ज्ञान की पर्याय हुई, यह तो है नहीं। परंतु राग है तो उस संबंधी अपनी ज्ञान पर्याय हुई, ऐसा भी नहीं। अपनी ज्ञान की स्व-पर प्रकाशक पर्याय हुई उसमें ज्ञेय का ज्ञान हुआ। समझ में आया ? यह भी व्यवहार है। आहाहा ! और ज्ञान की पर्याय को मैं जाननेवाला - ऐसा भेद हुआ यह भी व्यवहार है। मैं तो ज्ञायक हूँ। बस ! ऐसा परिणमन हुआ उसका नाम ज्ञायक कहते है। सूक्ष्म बात तो है।

एक शक्ति एक घंटा थोड़ी चली। बाकी तो पार नहीं है, भैया ! अंदर में उसकी जो गंभीरता भासित होती है इतनी तो कहने की ताकत नहीं है। आहाहा ! संतों और केवलीयों उसका स्पष्टीकरण करे। गज़ब करते हैं ! आहाहा ! अरेरे...! ऐसे परमात्मा और संतों के भरत में विरह हो गये। समझ में आया ? आहाहा !

``**पर जिनके कारण हैं...**'' कौन ? अपने स्वभाव के अलावा जो ज्ञेय (अर्थात्) राग आदि पर जिनके कारण हैं। (अर्थात्) अपने ज्ञान में ज्ञेय तरीके जानने में आये ऐसे कारण हैं। ``**ऐसे ज्ञेयाकारों को ग्रहण करने के और स्व जिनका कारण है ऐसे ज्ञानाकारों को ग्रहण कराने के...**'' पर के ज्ञान में ग्रहण कराना, पर के ज्ञान में `मैं ज्ञेय हूँ' बस ! आहाहा ! अपने ज्ञान में वह परज्ञेय है। पर के ज्ञान में मैं ज्ञेय हूँ। बस ! इतनी बात है। आहाहा ! ऐसी शक्ति माननेवाले को शक्तिवान द्रव्य की जो प्रतीति होती है तो पर्याय में राग से मुझे ज्ञान हुआ, वह तो नहीं, निश्चय पर्याय जो हुई वह राग से हुई, वह तो नहीं परंतु राग है तो पर प्रकाशक की पर्याय हुई, ऐसा भी नहीं। आहाहा ! आया न ? क्या कहा ? ``**स्व जिनका कारण है ऐसे ज्ञानाकारों को ग्रहण कराने के स्वभावरूप परिणम्यपरिणामकत्व शक्ति।**'' परिणमन में (परिणम्य में) प्रमाण लेना और परिणामकत्व में प्रमेय लेना। पर का ज्ञान करने की ताकत और पर में प्रमेय होने की ताकत। बस ! इस शक्ति में तो बहुत भरा है। अनंत शक्ति में इस शक्ति का रूप पड़ा है। उसकी विस्तार से बात लेंगे। विशेष कहेंगे....!

प्रवचन नं. १६

शक्ति-१५, १६, १७ दि. २६-०८-१९७७

परात्मनिमित्तकज्ञेयज्ञानाकारग्रहणग्राहणस्वभावरूपा परिणम्यपरिणामकत्वशक्तिः ।।१५।।

अन्यूनातिरिक्तस्वरूपनियतत्वरूपा त्यागोपादानशून्यत्वशक्तिः ।।१६।।

षट्स्थानपतितवृद्धिहानिपरिणतस्वरूपप्रतिष्ठत्वकारणविशिष्टगुणात्मिका अगुरुलघुत्वशक्तिः ।।१७।।

समयसार, शक्ति का अधिकार चलता है। १५ वीं शक्ति चली। इसमें क्या कहा? एक-एक शक्ति में बहुत भण्डार भरा है। ऐसा कहते हैं कि, आत्मा में परिणम्यपरिणाममकत्व नाम की शक्ति है। उसका अर्थ (यह है) कि, अपने सिवा (जो) परज्ञेय (है) उसे ग्रहण करने का - जानने का जिसका स्वभाव (है), यह परिणम्य शक्ति। और अपना स्वभाव पर के ज्ञान में ग्रहण कराने का स्वभाव, उसका नाम प्रमेय (शक्ति)। परिणम्य - परिणामकत्व (और) प्रमाण और प्रमेय। दोनों का यह अर्थ है। इस शक्ति का स्वभाव (ऐसा है कि), अपने स्वभाव में परज्ञेयों को ग्रहण करना नाम जानने का स्वभाव है। परंतु पर द्रव्य का कुछ करना, ऐसा स्वभाव नहीं है। प्रमाणज्ञान - परिणम्य का अर्थ चलता है। वह रागादि का ज्ञान करे। समझ में आया ? (परंतु) राग का कर्ता (होना, ऐसा) स्वरूप में नहीं। आहाहा ! यह बड़ी तकरार, विरोध अभी यह है न ? जयसेन आचार्य कहते हैं कि, एक भाव यथार्थ समझे तो उसका सब भाव यथार्थ हो जाय। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि, आत्मा में परिणम्य - परिणामकत्व नाम की एक शक्ति है। एक शक्ति अनंत गुण में व्यापक है और अनंत गुण में वह निमित्त है। और यह शक्ति

ध्रुवरूप उपादान है। और क्षणिक पर्याय में जो परिणति होती है वह क्षणिक उपादान है।

ऐसा अपनी पर्याय में पर को जानना - ग्रहण करना ऐसी परिणम्य शक्ति है। और अपना स्वभाव - सारा द्रव्य, गुण और पर्याय पर के ज्ञान में (जनाना, यह परिणामकत्व शक्ति है)। जानने का स्वभाव - इतनी बात कही। परिणम्य कहा न ? वह तो पर ज्ञेयों को अपने में जानने का स्वभाव है। आहाहा ! अनंत सिद्धों और अनंत पंच परमेष्ठी उसके ज्ञेय हैं। (उस) ज्ञेय को जानने का स्वभाव है। परंतु पंच परमेष्ठी मेरे हैं और मैं उसका शिष्य हूँ, ऐसी कोई चीज़ (शक्ति) नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

प्रमाण में पर्याय की बात आयी। पर ज्ञेय में अनंत निगोद में जीव हैं, अनंत सिद्ध हैं, अनंत केवली हैं और त्रिकाल के पंच परमेष्ठी (हैं)। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं - त्रिकालवर्ती अरिहंतों को ज्ञान की पर्याय में जानने का स्वभाव है। आहाहा ! और अपना द्रव्य, गुण, पर्याय ग्रहण करना ऐसा प्रमेय स्वभाव है। आहाहा ! समझ में आया ? पर को प्रमेय बनावे और पोते पर का प्रमेय बने। आहाहा ! पोते अर्थात् स्वयं। थोड़े गुजराती शब्द आ जाते हैं। समझ में आया ? एक परिणम्य परिणामकत्व शक्ति भी जो यथार्थपने समझे तो (सब यथार्थ हो जाय)।

यहाँ मिलन परिणाम का तो प्रश्न है ही नहीं। यहाँ शक्ति का वर्णन है न ? शक्ति शुद्ध है तो उसका परिणमन भी शुद्ध है। अशुद्ध परिणमन की तो यहाँ बात है ही नहीं। द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध और पर्याय शुद्ध। यहाँ उन तीनों की बात है। यहाँ शुद्ध क्रमवर्ती पर्याय है (उसकी बात है)। राग क्रमवर्ती (है), वह बात यहाँ नहीं है। आहाहा ! व्यवहारनय से - राग से ज्ञान की निश्चय पर्याय होती है, वह बात है ही नहीं। परंतु राग का ज्ञान करने का - ग्रहण करने का स्वभाव है कि, `यह राग है' बस ! (इतना)। उस राग को ग्रहण करने के स्वभाव में भी अपना ज्ञान जो राग को जानता है। ऐसी जो ज्ञान की स्वपरप्रकाशक पर्याय है; (तो) राग है तो स्वपर प्रकाशक ज्ञान का भाव हुआ, ऐसा नहीं है। ऐसा मार्ग है ! आहाहा ! समझ में आया ? भाई ! तेरी प्रतीति में यह भरोसा आया नहीं।

परिणम्यपरिणामकत्व शक्ति स्वभाव (है)। द्रव्य की शक्ति, सत् का सत्व, उस शक्ति का संग्रह करनेवाला द्रव्य (है)। आहाहा ! उसमें तो ऐसा आया कि, पर द्रव्य को अपना मानना, पंच परमेष्ठी को अपना मानना, ऐसा उसका स्वभाव नहीं है, ऐसा कहते हैं। यह तो अंदर के आनंद की बात है। ज्ञेय को जानने का स्वभाव है, यह भी व्यवहार कहने में आता है। आहाहा ! आत्मा अपने को जाने यह भी व्यवहार है। भेद हुआ न ? (इसलिये

ऐसा कहा)। वह बात आ गई है। समझ में आया ? आत्मा तो ज्ञायक है, बस ! आत्मा ज्ञान द्वारा जाने, ऐसा भेद भी जिसमें नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? (ऐसी) चीज़ सम्यग्दर्शन का विषय है। समझ में आया ? यह तो अलौकिक बातें हैं ! प्रभु ! यह सर्वज्ञ वीतराग की अमृतधारा है। आहाहा ! यह कोई साधारण चीज़ नहीं है। समझ में आया ?

परिणम्यपरिणामकत्व शक्ति में प्रमाण होने का और पर में प्रमेय होने का स्वभाव है। बस ! इतना स्वभाव (बताना है)। पर को अपना मानना या पर से अपने को मानना, पर से अपने में कोई कार्य हो और अपने से पर में कार्य हो, ऐसी शक्ति है ही नहीं। समझ में आया ?

श्रोता : पर के काम तो सब करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता है ? वह तो जड़ की पर्याय है। उस जड़ की पर्याय को जानने का आत्मा का स्वभाव है। परंतु जड़ की पर्याय को करना, यह आत्मा का स्वभाव नहीं है। समझ में आया ? आहाहा ! गज़ब बात कही है न !

दूसरी एक बात। निगोद के अनंत जीव हैं। प्याज और लसून की एक राई जितने टुकड़े में असंख्य शरीर हैं और एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए (उससे अनंत गुना जीव हैं)। ६ महीने और ८ समय में ६०८ सिद्ध होते हैं तो अभी तक (जितने) सिद्ध हुए उससे अनंत गुना एक शरीर में जीव (हैं)। उन जीवों की दया पालते (हैं), इसलिये (वे टिकते हैं) ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

स्थानकवासी में थे तब बड़ी चर्चा हुई थी। स्थानकवासी में ३२ सूत्र हैं। उसमें एक शब्द पड़ा है कि, भगवान ने प्रवचन क्यों कहा ? कि, `सर्व जीव रक्षणक्षायी' अब संप्रदायवाले ऐसा कहते हैं कि, रक्षा के लिये कहा है। और तेरापंथीवाले ऐसा नहीं मानते। (यहाँ तो कहते हैं कि) रक्षा कर सकते नहीं। पर की रक्षा करना यह तो पाप है। ऐसा कहते हैं। उस पाप का अर्थ रक्षा (नहीं) कर सकते हैं, उसकी तो उसे खबर भी नहीं है। पर की रक्षा का भाव है यह पाप है। ऐसा मानते हैं। समझ में आया ? दोनों के बीच में एक महीना चर्चा हुई। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, भगवान के सर्व जीव की रक्षा के लिये कहा, ऐसा भी नहीं। सर्व जीव की दया पालने के लिये कहा, ऐसा भी नहीं। आहाहा ! वह ज्ञेय हैं, ज्ञान में जानने लायक है, इसलिये बताया है। ऐसी बातें हैं, भाई ! आहाहा ! लोग अब सत् को समझने के लिये जिज्ञासु तो हुए हैं। लोग विरोध करे। अरेरे... भाई ! यह तकरार और यह (सब) क्या है ? बापू ! प्रभु ! तेरा स्वभाव क्या है ? उसकी तुझे खबर नहीं।

यह क्या कहते हो ?

यहाँ तो कहते हैं कि, शुभ राग से धर्म तो नहीं परंतु शुभ राग है तो ज्ञान उसे जानता है, ऐसा भी नहीं। अपनी पर्याय में स्वपर प्रकाशक जानने का स्वभाव है, उसे जानते हैं। यानी कि पर को जानते हैं - ग्रहण करते हैं और पर को - ज्ञानी को ग्रहण कराते हैं। समझ में आया ? ऐसा उसका अनादि अनंत स्वभाव है। आहाहा ! वह बात तो कल बहुत चली थी। आज तो अब उससे भी थोड़ी सूक्ष्म बात है। ध्यान रखना भगवान ! यह तो भगवान के प्रवाह के घर की बात है। समझ में आया ?

(अब) १६ वीं शक्ति। आज आप की शिक्षण शिबिर का १६ वाँ दिन है. आहाहा ! और १६ किरणों से भगवान (आत्मा) पूर्ण है, यह शक्ति यहाँ बतायेंगे। आहाहा ! क्या कहते हैं ? ``**जो कमबढ़ नहीं...**'' आहाहा ! जो ज्ञायक स्वरूप, ध्रुव नित्यानंद प्रभु ! इसमें कभी कम और बढ़ नहीं होता। क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा ! `भरित अवस्थ' (स्वरूप है। परिपूर्ण अवस्था स्वरूप (है)। यह बंध अधिकार में लिया है। सर्व जीवो `भरित अवस्थ' स्वरूप है। भरित अवस्था यानी अवस्था नहीं। पूर्ण स्वभाव से भरा पड़ा भगवान आत्मा ! परमात्मस्वरूप आत्मा है ! आहाहा !

(यहाँ) कहते हैं कि, अपने परमात्मस्वरूप में अशुद्धता की तो बात है नहीं। यहाँ तो शुद्धता की अपूर्ण पर्याय है तो अंदर शुद्धता में बहुत शुद्धता है (अर्थात् शुद्धता बढ़ गई है)। ऐसा नहीं है। और केवलज्ञान में शुद्धता की पूर्ण पर्याय हो तो वहाँ शुद्धता में कमी हो गई। ऐसा नहीं। समझ में आया ?

सुनो भाई ! एक बार कहा था। ``गगनमंडल में गौआ विहाणी वसुधा दूध जमाया'' वसुधा यानी श्रोता। श्रोता के कान में गौआ - गौ यानी वाणी। ``गगनमंडल में गौआ विहाणी, वसुधा दूध जमाया, सौ रे सुनो रे भाई, वलोणुं वलोवे'' मंथन नहीं करते ? ``सौ रे सुनो रे भाई, वलोणुं वलोवे कोई, तत्त्व अमृत कोई पाये, अबधु जोगी रे गुरु मेरा, एम पद का करे रे निवेडा'' आहाहा ! भगवान के श्रीमुख से अमृत की वाणी (निकली)। वहाँ `गो' का अर्थ गाय लिया है। `गौ' का अर्थ वाणी होता है। भगवान की वाणी - ॐ ध्वनि आकाश में निकली। आहाहा ! रेडियो में आकाशवाणी नहीं कहते हैं ? आहाहा ! वह तो सब ठीक है। यह तो भगवान ५०० धनुष ऊपर (बिराजते हैं)। समवसरण में ओम ध्वनि निकली। ओम ध्वनि (माने) आवाज़। गौ नाम आवाज़। ``गगनमंडल में गौआ विहाणी, वसुधा दूध जमाया, सुगुरा होवे सो भर-भर पीए प्यारा, नुगुरा जाय रे प्यासा, अवधु सो जोगी रे गुरु मेरा'' आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, एकबार सुन तो सही नाथ ! तू कैसी चीज़ है ? कि तेरी

चीज़ में कभी कम-बढ़ नहीं होती। आहाहा ! सिद्धपद की पर्याय हो (और) इतनी पूर्ण शुद्धता आई तो अंदर शुद्धता में कमी हुई, ऐसा नहीं (है)। आहाहा ! और चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन की निर्मल पर्याय आयी (और) पूर्ण पर्याय नहीं (आयी) तो शुद्धता में विशेष शुद्धता है, ऐसा नहीं है। वह तो है सो है। ओहोहो ! समझ में आया ? प्रभु का मार्ग (अलौकिक है) भाई ! अभी तो बाहर में पूजा, भक्ति करना (ऐसा हो गया है)। (ऐसे) भाव होते हैं, परंतु वह तो शुभ (भाव) है। उसकी बात तो यहाँ है ही नहीं। शक्ति में उसका वर्णन ही नहीं (है)। शक्ति में तो शक्ति जो है, वह द्रव्य - गुण में तो अनादि से व्याप्त है। परंतु शक्ति की जब प्रतीति होती है तब पर्याय में शक्ति का कार्य आता है, आहाहा !

कहते हैं कि, अंदर जो शक्ति का निर्मल पर्याय(रूपी) कार्य आया (वह भले ही) अल्प निर्मल पर्याय है, तो वहाँ शुद्धता बहुत है कि नहीं ? (तो कहते हैं) नहीं। वहाँ (स्वरूप में) तो परिपूर्ण शुद्धता है। ऐसा है। आहाहा ! ऐसा प्रभु का मार्ग है ! भाई ! आहाहा ! `**कम**' अर्थात् पर्याय में शुद्धता बहुत बढ़ गई तो अंदर (स्वभाव में) शुद्धता अल्प हो गई। ऐसा नहीं। और `बढ़' अर्थात् पर्याय में अल्प शुद्धता हुई तो वहां अंदर में (स्वभाव में) शुद्धता बहुत है, ऐसा नहीं। आहाहा ! ऐसी भगवान की बात है, भाई !

``**जो कमबढ़ नहीं होता...**'' (अर्थात्) कमी और वृद्धि कभी नहीं होती। आहाहा ! समझ में आया ? ``**...ऐसे स्वरूप में नियतत्वरूप (- निश्चिततया यथावत् रहनेरूप...)**'' आहाहा ! भगवान ध्रुव स्वरूपे, ज्ञायकभावरूपे यथास्थित रहता है। द्रव्य स्वभाव में कोई कम-बढ़ हो, ऐसा कभी नहीं होता। आहाहा ! एक बात। यह जो कमबढ़ रहित नियत्वस्वरूप शक्ति का उसकी पर्याय में परिणमन तो होता है, समझ में आया ? तो पर्याय में भी कमबढ़ नहीं, ऐसा लागू पड़े कि नहीं ? आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि, पर्याय में भी कमबढ़ नहीं। क्योंकि (पर्याय में) भले अल्प शुद्धता हो परंतु वह त्रिकाली को सिद्ध करती है। एक पर्याय जो कम कर दो तो त्रिकाली सिद्ध नहीं होता। समझ में आया ? यहाँ अशुद्धता की बात है ही नहीं। अपनी पर्याय में अशुद्धता का ज्ञान अपने से होता है, ऐसी क्रमवर्ती पर्याय में त्याग-उपादान शक्ति का परिणमन होता है। तो वहाँ कहते हैं कि, वस्तु जो है यह त्याग-उपादान शक्ति का परिणमन होता है। तो वहाँ कहते हैं कि, वस्तु जो है यह त्याग उपादान रहित है। पर का त्याग करना और पर का ग्रहण करना यह तो स्वरूप में है ही नहीं। परंतु राग का त्याग करना कि ग्रहण करना वह (भी) स्वरूप में नहीं है। आहाहा ! निर्मल पर्याय का प्रगट होना और उसका त्याग होना और नयी पर्याय का उत्पन्न होना यह (उसमें) है। परंतु यह जो निर्मल पर्याय हुई वह भी कमबढ़

बिना की पर्याय है। धीरे से समझना, यह तो वीतराग का मार्ग है। आहाहा ! गणधरों और संतों उसका अर्थ करते होंगे (वह कैसा होगा) ! आहाहा ! यह बात सर्वज्ञ के अलावा और कहीं नहीं है। कोई बात तो ऐसी करे कि, शुद्ध ऐसा है और वैसा है परंतु शुद्ध चीज़ क्या है ? (उसकी कुछ खबर नहीं होती)।

यह (वस्तु) पूर्ण शुद्ध है उसमें से शुद्धता आती है तो शुद्धता थोड़ी - अपूर्ण आयी इसलिये वहाँ अंदर में (स्वभाव में) शुद्धता विशेष है और शुद्धता बहुत आयी तो वहाँ (स्वरूप में) शुद्धता कम है, ऐसा है (क्या) ? आहाहा ! कमबढ़ रहित (स्वरूप है)। है ? ``**कमबढ़ नहीं होता...**'' कमी और वृद्धि नहीं होती। अब तो यहाँ पर्याय में लेना है। समझ में आया ? जो शक्ति - गुण है यह द्रव्य में व्यापक है। अंदर में शक्ति में शक्ति है। अब जब उसका भान हुआ, उसकी यहाँ बात है। भान हुआ तो कमबढ़ बिना की शक्ति है उसका परिणमन तो आया, तो जैसे गुण में और द्रव्य में कमबढ़ नहीं है वैसे परिणमन - पर्याय में कमबढ़ नहीं है, ऐसा (परिणमन) आता है। आहाहा ! समझ में आया ?

अरे...! परमात्मा का विरह हो गया और भगवान की वाणी - समयसार रह गई। आहाहा ! साक्षात् शब्दब्रह्म ! वाणी शब्दब्रह्म (है)। आहाहा ! अरेरे...! (लोग) विरोध करे, प्रभु ! तुझे खबर नहीं। लोग ऐसा मानते हैं (और कहते हैं), ऐसा साहित्य हो और राग का कर्ता (न माने) और राग से लाभ न माने (तो) वह साहित्य खराब है। अरे प्रभु ! ऐसा झगड़ा है न ? अरेरे...! क्या करते हो ? भगवान !

तेरी चीज़ कमबढ़ बिना की है, नाथ ! वास्तव में तो पर्याय का ग्रहण करना और पर्याय का छोड़ना यह भी द्रव्य में नहीं है। पर का त्याग करना और ग्रहण करना - ऐसा मानना यह मिथ्यात्व है। आहाहा ! क्योंकि आत्मा ने कहाँ उस वस्तु को पकड़ा है ? स्त्री-कुटुंब को पकड़ा है तो (उसे) छोड़े ?

श्रोता : कथंचित् पकड़ा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं पकड़ा है। सर्वथा नहीं पकड़ा है, ऐसा कहते हैं। वह तो स्पष्ट करवाते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! भगवान अनंत आनंद का नाथ, प्रभु ! उसकी शक्ति में और स्वभाव में कमबढ़ होता नहीं। परंतु जब उसकी परिणति हो (तो उसमें भी कमबढ़ नहीं होता)। क्योंकि यह (शक्ति) तो द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्याप्त हैं। समझे ? अनंत गुण में भी यह (शक्ति) निमित्त है। और अनंत गुण में भी इस शक्ति का रूप है। अनंत शक्ति का इस शक्ति की पर्याय में भी रूप है। आहाहा ! समझ में आया ? तब यहाँ कहते हैं कि, भले वस्तु में तो कमबढ़ नहीं (हो) परंतु जब उसका पर्यायपने परिणमन होता है तो उसमें भी कमबढ़ नहीं (होता)। ऐसा लागू पड़ता

है। आहाहा ! अर्थात् वह (पर्याय) अपूर्ण शुद्ध है और पूर्ण शुद्ध है, ऐसा भेद भले हो परंतु वह अपूर्ण शुद्ध पर्याय है वह सारे द्रव्य को सिद्ध करती है (कि) (द्रव्य में शुद्धता) बराबर पूरी है। एक पर्याय को निकाल दो तो अनंत पर्याय का पिंड पूर्ण शुद्ध द्रव्य सिद्ध नहीं होता। समझ में आया ? समझ में आया उतना समझो, भाई ! यह तो गज़ब बात है ! आहाहा !

एक के बाद एक शक्ति का वर्णन अंदर सूक्ष्म होते जाता है। इसके बाद अगुरुलघु (शक्ति) लेंगे। आहाहा ! यह तो ख्याल में आये ऐसी बात है। अगुरुलघुत्व (शक्ति) तो ख्याल में न आये ऐसी बात तो बाद में कहेंगे। समझ में आया ? क्योंकि वह तो केवली जान सके। श्रुतज्ञान में इतनी ताकत नहीं है कि, अगुरुलघु की पर्याय और षट्गुणहानिवृद्धि को जान सके। आहाहा ! प्रतीत कर सके। समझ में आया ? आहाहा !

वस्तु पूर्ण (शुद्ध है)। `भरित अवस्थ' शब्द पड़ा है न ? भाई ! बंध अधिकार में `बंध विनाशार्थम्' यह भावना करना। `**निर्विकल्पो अहं, भरितावस्थो अहं**' मैं अभेद हूँ और भरित अवस्थ (हूँ)। `अवस्थ' यानी पर्याय नहीं। भरित अवस्थ - निश्चय शक्ति से भरपूर भरा हूँ। आहाहा ! ऐसी अनंत शक्ति से पूर्ण भरा हूँ। (बंध के) विनाशार्थ - नाश करने को विशेष भावना - खास भावना कहने में आती है। कैसी भावना करना ? `**सहजशुद्धज्ञानन्दैक स्वभावोडहं**' स्वभाविक शुद्ध ज्ञानानंद स्वभाव से परिपूर्ण हूँ। आहाहा ! समझ में आया ?

वह तो एक बार कहा था न ? संवत् ६४ की साल में १८ साल की उम्र में भरुच, वडोदरा, बंबई, अहमदाबाद माल लेने हम जाते थे। वडोदरा हम माल लेने गये थे। वहाँ सति अनसुया का नाटक (चल रहा था)। भरुच के किनारे नर्मदा (नदी) है। (वहाँ) दो बहनें थीं। उनके नाम पर से नर्मदा नाम पड़ा है। हम अनसुया का नाटक देखने को गये थे। अनसुयाबाई को पुत्र नहीं था। (और मृत्यु के बाद) बाई स्वर्ग में जाती थी। वे लोग ऐसा कहते हैं न ? `अपुत्र गति नास्ति'। पुत्र न हो उसे (स्वर्ग) गति नहीं मिलती। क्योंकि पुत्र हो तो श्राद्ध करे। वहाँ ऐसी सब बाते हैं। (बाई को कहते हैं), स्वर्ग नहीं मिलेगा, पुत्र होना चाहिए। (बाई कहती है), (तो) क्या करना ? (उसे कहते हैं। नीचे जाओ और जो मिले उससे शादी करो। नीचे एक अंधा ब्रह्मण था। (उस) अंधे ब्राह्मण के साथ शादी की। उसे पुत्र हुआ। बाई (पुत्र को) झुलाती थी (और गाती थी), `बेटा ! तू शुद्धोसि, निर्विकल्पोसि, उदासीनोसि' ये तीन शब्द याद रह गये हैं। बाकी तो वह बहुत शब्द बोलती थी। वह बोलती थी, `बेटा ! तुम शुद्ध हो, निर्विकल्प हो, उदासीन हो' आहाहा ! जो बात नाटक में थी वह (बात) अभी संप्रदाय में रही नहीं। आहाहा ! वे तो राग के कर्ता हैं और राग से ऐसा होता है, (ऐसा मानते हैं)। अरे

प्रभु ! तुम क्या करते हो ? आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि, सहज स्वभाविक शुद्ध ज्ञानानंद एक स्वभाव (है)। यहाँ (चलते विषय में) एक कहा न ? कमबढ़ नहीं (ऐसा) एकरूप स्वभाव। उसमें कमी (वृद्धि) त्रिकाल स्वभाव में कभी होती नहीं। 'निर्विकल्पो अहं' मैं अभेद हूँ, उदासीन हूँ, मेरा आसन पर से भिन्न है। ज्ञेय से मेरा आसन - मेरी स्थिति भिन्न है। - पर से मैं उदास हूँ।

"**निरज्जननिजशुद्धात्म सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूप निश्चय रत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधिसंजात-वीतरागसहजानन्दरूपसुखानुभूतिमात्रलक्षणेन**" "निरंजन जो निज - शुद्धात्मा उसके समीचीन श्रद्धान, ज्ञान और अनुष्ठान-रूप जो निश्चय - रत्नत्रय - स्वरूप निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न हुआ जो वीतराग सहजानंदरूप - सुख उसकी अनुभूतिमात्र ही है लक्षण जिसका ऐसे...)" सुखानुभूति लक्षण में जानने में आता है। आहाहा ! व्यवहार से, राग से और निमित्त से जानने में आता है, ऐसी चीज़ नहीं है। समझ में आया ? "स्वसंवेदन के द्वारा संवेद्य है..." "**स्वसंवेदनज्ञानेन संवेद्यो गम्यः प्राप्यो भरितावस्थोऽहं,...**" यह शब्द है - '**भरितअवस्थ**' पूर्ण...पूर्ण...पूर्ण...पूर्ण... ज्ञानरस, आनंदरस, श्रद्धारस, शांतरस, चारित्ररस, स्वच्छतारस, प्रभुतारस इन सब रस से भरित (अर्थात्) पूर्ण हूँ। आहाहा ! समझ में आया ? धर्मी को यह भावना करनी है। ऐसा कहते हैं। आहाहा ! ऐसी बारह भावना करते हुए यह भावना (करनी)। आहाहा ! "राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ, एवं पंचेन्द्रियों के विषयों में होनेवाला मन, वचन, और काया का व्यापार (से रहित हूँ)।" द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से मैं रहित हूँ। जड़ कर्म, नोकर्म = शरीर, वाणी, भावकर्म = दया, दान के विकल्प आदि से मैं शून्य हूँ। अपने स्वभाव से भरित अवस्थ हूँ। पर से मैं शून्य हूँ. समझ में आया ?

प्रवचनसार में आता है। वहाँ सप्तभंगी ली है। अपने से अशून्य हूँ। पर से शून्य हूँ। अपने से अशून्य हूँ यानी पूर्ण हूँ। पर से शून्य हूँ। - राग आदि से मैं त्रिकाल शून्य हूँ। आहाहा ! "**ख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाङ्क्षारूपनिदानमायामिथ्याशल्यत्रयादि सर्वविभाव परिणामरहितः। शून्योऽहं।**" (ख्याति लाभ, पूजा एवं देखे गये, सुने गये तथा अनुभव में लाये गये जो भोग उनकी आकांक्षा-रूप निदान शल्य, माया-शल्य और मिथ्याशल्य इन तीनों शल्य से रहित तथा और भी सब प्रकार के विभाव परिणामों से रहित हूँ, शून्य हूँ) (मैं) पर से त्रिकाल शून्य हूँ। आहाहा ! संसार का जो उदयभाव है उससे तो मैं शून्य हूँ, आहाहा ! दूसरे लोग कहते हैं कि, उदयभाव से कल्याण हो, ऐसी भावना कर। आहाहा ! "**जगत्त्रये**" - तीन लोक में तीनोंकाल में सर्व जीव संपूर्ण स्वभाव से भरा पड़ा है, ऐसी भावना कर। सर्व (जीव) भगवंत स्वरूप है। आहाहा !

निगोद के जीव भी संपूर्ण स्वभाव से भरा पड़ा पूर्ण है। भले एक शरीर में अनंत

जीव (है)। परंतु एक-एक जीव पूर्ण स्वभाव से भरा पड़ा है, यह कौन माने ? आहाहा ! दया पालने के लिये निगोद कहा है, ऐसा नहीं है। अनंत जीव हैं - इसका ज्ञान ग्रहण करने के लिये कहा है। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि, ``**सर्वे जीवाः जगत्त्रये**'' (अर्थात्) तीन लोक में। ``**कालत्रयेपिः**'' (अर्थात्) तीनोंकाल में। ``**मनोवचनकायैः कृतकारितानुभतैश्च शुद्धनिश्चयेन, तथा सर्वे जीवाः**'' आहाहा ! ``**इति निरंतरं भावनाकर्तव्याः**'' यह भावना निरंतर करनी, ऐसा कहते हैं। ऐसा मार्ग है।

यहाँ (शक्ति के चलते विषय में) कहाँ लागू हुआ ? कमबढ़ नहीं (ऐसी) पूर्ण वस्तु (है)। सब - सर्व आत्मा भगवान (है). आहाहा ! वेदांत कहते हैं कि, सर्व व्यापक एक आत्मा है, ऐसा नहीं है। परंतु सारे लोक में भगवान ही बिराजते हैं। सब भगवान आत्मा भिन्न - भिन्न हैं। पर्याय में अशुद्धता हो कि शुद्धता हो, उसका लक्ष छोड़ दे। स्वरूप से तो भगवान निर्विकल्प शुद्ध चिदानंद भरित अवस्थ (है)। आहाहा ! निगोद के एक शरीर में अनंत जीव हैं। एक जीव के साथ कार्मण और तैजस दो शरीर हैं। फिर भी वह आत्मा तो परिपूर्ण ध्रुव स्वरूप भरित अवस्थ है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसे यहाँ कहते हैं कि, पूर्ण वस्तु कमबढ़ बिना की चीज़ है। यह तो वीतराग की वाणी है, बापू ! यह कोई कथा - वार्ता नहीं है। एक-एक शब्द में कितना गूढ़ भरा है ! आहाहा !

``**जो कमबढ़ नहीं होता ऐसे स्वरूप में नियतत्वरूप (- निश्चिततया यथावत् रहनेरूप)**'' जैसा है वैसा त्रिकालरूप भगवान आत्मा (रहता है)। आहाहा ! वह ``**...त्याग-उपादान शून्यत्व शक्ति**'' यह शक्ति ऐसी है कि, राग का त्याग करे या राग का ग्रहण करे, उससे यह चीज़ शून्य है । आहाहा ! ऐसी बात है !

समयसार ३४ गाथा में आया न ? भाई ! कि, आत्मा में राग का त्याग करना यह नाममात्र है। परमार्थ से आत्मा राग का त्याग (कर्ता) भी नहीं। आहाहा ! वह तो स्वरूप की स्थिरता हुई तो राग की उत्पत्ति नहीं हुई तो राग का त्याग किया, ऐसा व्यवहार से कहने में आया है। समझ में आया ? आहाहा ! पचखाण - त्याग - चारित्र उसको कहते हैं कि, स्वरूप परिपूर्ण भरा है, उसकी प्रतीति सहित स्वरूप में स्थिर होना। उस स्थिरता में चारित्र गुण राग का त्याग कर्ता है, यह नाममात्र है। परमार्थ से राग का त्याग भी आत्मा को लागू नहीं पड़ता, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! अरे...! जैन में जन्म हुआ उसे भी यह अभ्यास नहीं। घर में मूडी क्या है ? (उसकी खबर नहीं)। पिताजी की मूडी हो तो सँभाल। कुंजी का दृष्टांत लिया था न ? यह कुंजी क्या है (यह मालूम

नहीं है)। आहाहा !

(यहाँ) कहते हैं कि, पर्याय में भी त्याग-उपादानशून्यत्व शक्ति का परिणमन होता है। कमबढ़ नहीं, ऐसा पर्याय में लागू पड़ता है, भाई ! आहाहा ! धीरे से समझना, नहीं समझ में आये तो इस संबंधित रात्रि को प्रश्न करना। आहाहा ! यहाँ तो प्रभु में पूर्ण...पूर्ण...पूर्ण... पर के त्याग-ग्रहण से शून्य ऐसी एक शक्ति है, गुण है, स्वभाव है। इस स्वभाव की जहाँ प्रतीति हुई, स्वसन्मुख (होकर) स्व का आश्रय लेकर जहाँ ज्ञान हुआ तो पर्याय में भी त्याग-उपादानशून्यत्व शक्ति का परिणमन आया। यह पर्याय भी त्याग-उपादान से शून्य है। आहाहा ! क्योंकि वह एक ही पर्याय चाहे तो सम्यग्दर्शन की शुद्ध पर्याय आयी, अगर उसे निकाल दो तो सारा द्रव्य सिद्ध नहीं होगा। समझ में आया ? यहाँ शुद्ध (पर्याय की) बात है। अशुद्ध (पर्याय की) बात तो यहाँ है ही नहीं। छोटी से छोटी सम्यग्दर्शन की शुद्ध पर्याय हो तो भी वह पर्याय पूर्ण द्रव्य को सिद्ध करती है, साबित करती है। इसलिये पर्याय को पूर्ण कहने में आता है। ऐसी बातें हैं, भाई ! आहाहा !

अरेरे...! जैन परमेश्वर के संप्रदाय में जन्म हुआ और उसे जैन परमेश्वर क्या है ? और कौन जैन होंगे ? (उसकी खबर नहीं)। जैन कोई संप्रदाय नहीं है। जैन कोई कल्पना से खड़ा किया (हो) ऐसा मार्ग नहीं है। यह तो वस्तु का (स्वरूप है)। 'जैन सो हि है आत्मा, अन्य सोहि है कर्म, एही वचन से समझ ले, जिन प्रवचन का मर्म' आहाहा !

ज्ञायकभाव परिपूर्ण प्रभु ! उसमें एक शक्ति ऐसी है कि, प्रत्येक गुण की पर्याय (में) पूर्ण भरित अवस्थ का रूप उसमें आया कि नहीं ? क्या कहा समझ में आया ? ज्ञानगुण की सम्यक् पर्याय हुई तो उसमें भी यह त्याग-उपादान शक्ति का रूप तो पर्याय में है ऐसा उसमें भी रूप है। आहाहा ! थोड़ी सूक्ष्म बात है। भाई ! समझ में आया ? थोड़ी सूक्ष्म ऐसा कहते हैं ! आहाहा ! संतों दिगंबर मुनियों उसका स्पष्टीकरण करते हैं, ओहोहो ! आत्मा ऐसे हथेली में दिखलाते हैं। ऐसे आत्मा बताया है। आहाहा !

प्रत्येक गुण की पर्याय में भी त्याग-उपादानशून्यत्व शक्ति का रूप है। आहाहा ! ज्ञान की पर्याय भी राग का त्याग करे कि राग का ग्रहण करे, ऐसा पर्याय में नहीं है। ज्ञान की पर्याय में नहीं है, ऐसे श्रद्धा की पर्याय में मिथ्यात्व का त्याग करे, ऐसा श्रद्धा की पर्याय में नहीं है। आहाहा ! ऐसे चारित्र की पर्याय में राग का अभाव करे ऐसा चारित्र की पर्याय में नहीं है। आनंद की पर्याय प्रगट हुई उसमें दुःख का त्याग करे, ऐसा नहीं है। आहाहा ! ऐसा मार्ग ! दिगंबर संतों के अलावा कहीं यह झरना नहीं है। अमृत के झरने बहे हैं। आहाहा ! समझ में आया ? भगवान ! तुम परिपूर्ण हो न, नाथ ! और परिपूर्ण में से पर्याय हुई यह भी परिपूर्ण है, (ऐसा) यहाँ तो कहते

हैं। आहाहा ! (लेकिन पर्याय) अल्प है न ? भले अल्प हो। पूर्ण (केवल) ज्ञान हो, आहाहा ! क्षयोपशम समकित की पर्याय हो, चारित्र की अल्प निर्मल पर्याय हो और चारित्र की पूर्ण पर्याय १४ वें (गुणस्थान में) आखिर की हो, वह भी एक-एक पर्याय पूर्ण को (स्वभाव को) सिद्ध करती है।

वह आता है न ? नय उपनय का समुदाय द्रव्य है। धवल में संस्कृत में आता है। नय और उपनय का समुदाय वह भगवान आत्मा (है)। वह थोड़ी सूक्ष्म बात है। आहाहा ! ऐसी बात ! बापू ! तेरे घर की बातें बड़ी हैं न, भाई ! तू कितना बड़ा है ! कि तेरी पर्याय में शुद्धता हो तो भी तेरी महानता में कोई कमी हो गई, ऐसा नहीं है। आहाहा !

त्याग-उपादानशून्यत्व शक्ति - ग्रहण यानी उपादान (और) त्याग यानी त्याग। आत्मा ग्रहण और त्याग से शून्य है। आहाहा ! पर्याय में त्याग-उपादानशून्यत्व शक्ति का जो परिणमन आया तो यह शक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्यापक हो गई। और तीनों में व्यापक हो गई तो अनंत शक्ति की पर्याय में भी व्यापक हो गई। समझ में आया ? आहाहा ! गज़ब का दरिया है बड़ा ! यह दरिया स्वयंभूरमण समुद्र तो साधारण असंख्य योजन का (है)। यह तो अनंत भावों से भरा है। आहाहा !

`अनंत भाव भरेली जिनवाणी' श्रीमद् में आता है कि नहीं ? `अनंत अनंत भाव (भेद थी) भरेली वाणी, ते जिनवाणी जाणी तेणे जाणी छे' बापू ! समझ में आता है कुछ ? देखो ! कौनसी शक्ति हुई ? १६ वीं (शक्ति हुई)। आपकी शिक्षण शिबिर का १६ वाँ दिन चल रहा है। इसमें बहुत (भरा) हैं। फिर भी थोड़ा-थोड़ा शक्ति अनुसार कहा। थोड़ा लिखा बहुत जानना और शोभा बढ़ाने को तुम आना ऐसा आता है न ? वैसे यहाँ थोड़ा कहने से बहुत जानना और अपने आत्मा की शोभा बढ़ाना।

(अब) १७ वीं (शक्ति)। क्रमसर लिया है। (लोगों को) यह बात बैठनी (कठिन पड़े)। यहाँ व्यवहार की बात तो की ही नहीं है। व्यवहार - राग का ज्ञान करते हैं, यह भी व्यवहार है। राग का ज्ञान तो अपनी पर्याय से अपने कारण से होता है। क्या करें ? लोगों को भड़कात हैं (कि), अकेली निश्चय की बात है, निश्चयाभास है, एकांत (है)। अरे प्रभु ! सुन तो सही, भाई ! सम्यक् एकांत की बात यह है। सम्यक् एकांत की ही बात है और सम्यक् एकांत का ज्ञान हो तो उसको ही पर्याय में अपूर्णता आदि का ज्ञान होता है, उसे अनेकांत कहने में आता है। आहाहा ! समझ में आया ? अरे...! इसमें तकरार और झगड़े ! अरेरे...! राग का त्याग भी स्वरूप में नहीं है, प्रभु ! आहाहा ! यहाँ तो बाहर में पर का त्याग (किया), कुटुंब, दुकान छोड़े उसने संसार छोड़ा (ऐसा मानते हैं)। अरे...! सुन तो सही, प्रभु ! मैंने उसे छोड़ा यह मान्यता ही मिथ्यात्व है।

आहाहा ! यह तो सम्यग्दर्शन पाने की चीज़ है। समझ में आया ?

अब १७ वीं (शक्ति)। ``**षट्स्थानपतित...**'' यह बहुत सूक्ष्म (है)। (अभी चली) उससे भी (अधिक) सूक्ष्म है)। क्या कहते हैं ? कि आत्मा में जो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और केवलज्ञान आदि पर्याय है, उस पर्याय में अगुरुलघुस्वभाव ऐसी कोई चीज़ है। वैसे तो अगुरुलघुस्वभाव तो अनंत गुण में है। अगुरुलघुस्वभाव - शक्ति अनंत गुण में नहीं है। परंतु अगुरुलघुस्वभाव का रूप अनंत शक्ति में है। ज्ञान की पर्याय में भी अगुरुलघुपना है। दर्शन की पर्याय में अगुरुलघुपना है। एक समय में षट्गुणवृद्धि होती है और षट्गुण हानि (होती है), (दोनों का) समय एक (है)। एक समय में षट्गुणहानि और षट्गुण वृद्धि - यह कोई केवली गम्य बात है। श्रुतज्ञान में (सब) समा जाय तो केवलज्ञानी की महिमा क्या ? आहाहा !

केवलज्ञान की पर्यायमें भी एक समय में षट्गुणहानिवृद्धि होती है। केवलज्ञान तो है ऐसा है। तीनकाल - तीनलोक को जानता है, तो हानि के समय घट गया और वृद्धि के समय बढ़ गया, ऐसा नहीं है। कोई ऐसा पर्याय का स्वभाव है। जो सर्वज्ञ ने कहा, परमागम ने कहा उस परमागम से मानना चाहिए। पंचास्तिकाय में यह बात है। आगम से मानना चाहिए, बापू ! आहाहा ! अभी तो त्याग-उपादान शक्ति की बात में तो पर्याय में पूर्णता मानना कठिन (पड़ता है)। यहाँ तो एक समय की पर्याय में (चाहे) क्षायिक समकित की पर्याय हो तो भी अगुरुलघु (शक्ति के कारण) पर्याय में षट्गुणहानि (वृद्धि होती है)। षट्गुणहानि अर्थात् अनंतगुण हानि, असंख्यगुण हानि, संख्यगुणभाग हानि अनंतभाग हानि, असंख्यभाग हानि, संख्यभाग हानि - ऐसे छ बोल हैं न ? (वह लेना)।

``**षट्स्थान पतित...**'' षट्स्थानपतित (अर्थात्) छ स्थान के आश्रय से। ``**वृद्धिहानिरूपसे परिणमित...**'' आहाहा ! पहले में तो द्रव्य, गुण, पर्याय में कमबढ़ नहीं है, ऐसा कहा था। यहाँ कहते हैं कि, एक-एक गुण की, एक-एक पर्याय में ऐसी कोई गंभीर वस्तु है कि, एक समय में ज्ञान की पर्याय में, दर्शन की पर्याय में, वीर्य की पर्याय में अनंत चतुष्टय प्रगट हुआ हो तो भी; अरे ! सिद्ध की पर्याय में (भी) षट्गुणहानिवृद्धि (होती है)। आहाहा ! भगवान ने पर्याय में ऐसा (ही) कोई स्वभाव देखा है ! तो आगम से मानना। पर से कोई ख्याल में आ जाय, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? केवलज्ञान की पर्याय में षट्गुणहानि - हानि तो केवलज्ञान (कम हो जाता है ?) केवलज्ञान में षट्गुणवृद्धि - तो केवलज्ञान विशेष स्वरूप होता है ? आहाहा !

द्रव्य की पर्याय का ऐसा कोई स्वभाव है कि, षट्गुणहानि (होती है)। अर्थात् अनंतभाग हानि, असंख्यभाग हानि, संख्यभाग हानि, समझ में आया ? ``**वृद्धिहानिरूप से परिणमित...**'' वर्तमान परिणमित पर्याय की (बात है)। वर्तमान प्रत्येक गुण की परिणमित पर्याय में

षट्गुणहानिवृद्धिरूप पर्याय होती है। (यह) भगवान गम्य है। आहाहा ! ऊपर त्याग-उपादानशून्यत्व शक्ति में तो थोड़ी ख्याल में आये ऐसी बात थी। आहाहा !

यहाँ कहते हैं। ``**षट्स्थानपतित वृद्धिहानिरूप से परिणमित स्वरूप - प्रतिष्ठत्व का कारणरूप...**'' देखो ! उसमें स्वरूप की प्रतिष्ठा है। षट्गुणहानिवृद्धि हो, यह स्वरूप की प्रतिष्ठा है। स्वरूप का स्वरूप ऐसा है। आहाहा ! छ बोल समझे ? अनंतगुण हानि, असंख्यगुण हानि (और) संख्यगुण हानि। ऐसे अनंतभाग हानि, असंख्यभाग हानि (और) संख्यभाग हानि। ये छ बोल हुए। एक समय में एक साथ छ रूप (हैं)।

श्रोता : छ में से एक (समय में) एक रूप हो, (ऐसा नहीं) ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, छ रूप एक साथ हैं। एक समय में छ रूप (हैं)। एक समय में छ रूप तो हानि का था। परंतु उसी समय अनंतगुण वृद्धि, असंख्यगुण वृद्धि, संख्यगुण वृद्धि, अनंतभाग वृद्धि, असंख्यभाग वृद्धि, (और) संख्यभाग वृद्धि, एक ही समय में (हैं)। १२ बोल एक समय में (हैं). यह तो पहले (ही) कहा था अगम्य बात है। समझ में आया ?

प्रत्येक गुण की एक समय की पर्याय में षट्गुणहानि और षट्गुणवृद्धि (होती है)। समय एक (है)। एक समय में षट्गुणहानि और दूसरे समय में षट्गुणवृद्धि, ऐसी बात नहीं है। एक समय में भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा देखा है, ऐसा कहा है। यह सब श्रुतज्ञान में ख्याल में आ जाय तो तो केवलज्ञान की महिमा क्या ? विशेष कहेंगे....

यह आत्मा - यही जिनवर है, यही तीर्थंकर है। अनादि काल से जिनवर है। अहा ! अनंत केवलज्ञान की बेल है। निज आत्मा ही अमृत का कुम्भ है - अमृत की बेल है; इसी में एकाग्र होने से पर्याय में जिनवर के दर्शन होते हैं। परमात्मा प्रकट होते हैं, उसी को सम्यग्दर्शन कहते हैं। (परमागमसार - ३३०)

प्रवचन नं. १७

शक्ति-१६, १७, १८ दि. २७-०८-१९७७

अन्यूनातिरिक्तस्वरूपनियतत्वरूपा त्यागोपादानशून्यत्वशक्तिः ।।१६।।

षट्स्थानपतितवृद्धिहानिपरिणतस्वरूपप्रतिष्ठत्वकारणविशिष्टगुणात्मिका अगुरुलघुत्वशक्तिः ।।१७।।

क्रमाक्रमवृत्तवृत्तित्वलक्षणा उत्पादव्ययध्रुवत्वशक्तिः ।।१८।।

समयसार शक्ति का अधिकार चलता है। शक्ति अर्थात् आत्म जो सत् वस्तु त्रिकाली अविनाशी है उसके सत् का सत्त्व / शक्ति। द्रव्य है (यह) गुणी है और शक्ति है (यह) गुण है। उस गुण की व्याख्या है। शक्ति कहो, गुण कहो, सत् उसका सत्त्व कहो, सत् उसका स्वभाव कहो - उस शक्ति का यह वर्णन है। सूक्ष्म है।

पहले १६ वीं शक्ति आयी। ``**जो कमबढ़ नहीं होता...**'' यहाँ तो शक्ति की बात है। परंतु उस शक्ति की बात में पहले - शुरूआत में वह लिया है कि, क्रमरूप और अक्रमरूप अनंत धर्म समूह जो कुछ जितना लक्षित होता है, यह सब वास्तव में एक आत्मा है। यह पहला बोल है।

क्या कहा ? कि जो अनंत शक्ति है, वह अक्रम(रूप) है और शक्ति का परिणमन जो है वह क्रम(रूप) है। समझ में आया ? यहाँ अशुद्धता क्रम में नहीं लेना। यहाँ तो अकेली शुद्धता की ही बात है। अशुद्धता का ज्ञान होता है कि अपनी पर्याय में अपने से राग है। (राग है तो उसका ज्ञान होता है, ऐसा नहीं परंतु) अपनी पर्याय में उस समय स्वपर प्रकाशक सामर्थ्य है तो अपने से स्वपर प्रकाशक पर्याय होती है। वह १२ वीं गाथा में कहा कि व्यवहार जानने में आता हुआ प्रयोजनवान है। राग का जानना

ऐसा कहना यह भी व्यवहार है। आहाहा ! समझ में आया ?

प्रथम ऐसा लिया है कि, क्रमवर्ती और अक्रमवर्तीरूप अनंत धर्म समूह, तो यहाँ है तो कमबढ़ की शक्ति, कमबढ़ नहीं ऐसी त्रिकाली शक्ति, परंतु होती तो अक्रम है। परंतु यहाँ उसका क्रम भी लेना पड़ेगा। आहाहा ! समझ में आया ? तो कहते है कि ``**कमबढ़ नहीं होता ऐसे स्वरूप में नियत्वरूप (- निश्चिततया यथावत रहनेरूप) त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति**'' अर्थात् पर का त्याग और पर का ग्रहण तो उसकी पर्याय में है नहीं और राग का ग्रहण और त्याग वह भी नहीं। समझ में आया ? क्योंकि राग का त्याग वह तो नाममात्र है। यह (समयसार की) ३४ वीं गाथा में आया है।

यहाँ तो पर्याय में शुद्धता अल्प हो और शुद्धता विशेष हो (फिर भी) वह त्यागउपादान शून्यत्व शक्ति है। आहाहा ! शक्ति तो त्रिकाल है। परंतु शक्ति का परिणमन होता है उस पर्याय में भी त्यागउपादान शून्यत्व (रूप) परिणमन होता है। समझ में आया ? यहाँ तो कहा कि, कमबढ़ नहीं होता ऐसे स्वरूप में नियत्व रहनेरूप त्यागउपादानशून्यत्व शक्ति, आहाहा ! यहाँ से तो शक्तिवान और शक्ति का भेद भी निकालना है। समझ में आया ? वर्णन शक्ति का है परंतु शक्ति और शक्तिवान यह भेद भी व्यवहार है।

शक्तिवान जो चीज़ है (उसकी) शक्ति ज्ञान करके शक्तिवान की दृष्टि करने से (धर्म होता) है, समझ में आया ? सूक्ष्म विषय है। अलौकिक विषय है, आहाहा !

पर्याय में राग का त्याग और राग का ग्रहण है ही नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? वह तो द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों में यह त्यागउपादान (शून्यत्व) शक्ति व्यापक है, समझ में आया ?

त्यागउपादान शक्ति अनंत गुण में व्यापक है, अनंत शक्ति में व्यापक है - एक बात। त्यागउपादान शक्ति अनंत गुण को निमित्त है। समझ में आया ? त्यागउपादान शक्ति (का) अनंत शक्ति में रूप है। त्यागउपादान शक्ति (दूसरी शक्ति के) अंदर में नहीं परंतु प्रत्येक गुण में त्यागउपादान का रूप है। आहाहा ! मतलब क्या ? कि ज्ञान गुण जो है, उसकी जो पर्याय होती है - उसमें भी त्यागउपादान शून्यत्व पर्याय है, आहाहा ! अल्प ज्ञान का त्याग और विशेष ज्ञान की उत्पत्ति उसमें ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म है।

अनंत गुण में त्यागउपादान शक्ति का रूप है। जैसे ज्ञानगुण है और अस्तिगुण है। अस्ति गुण है ये ज्ञान गुण से भिन्न है। फिर भी अस्तिगुण का रूप ज्ञानगुण में है अर्थात् ज्ञान `है'...`है' ऐसा अस्तित्व रूप ज्ञान में भी है। यह अस्तित्व गुण के कारण से नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात (है)। तत्त्वज्ञान का विषय बहुत सूक्ष्म

है। प्रत्येक गुण की पर्याय में (त्यागउपादानशून्यत्वपना है)। द्रव्य-गुण में तो है ही (परंतु) पर्याय में भी त्यागउपादान शून्यत्वपना है, आहाहा ! समझ में आया ? तो ये कमबढ़ नहीं होता ऐसे स्वरूप में नियत्वस्वरूप त्यागउपादानशून्यत्व शक्ति। यह तो शक्ति का वर्णन किया। परंतु यह शक्ति पर्याय में भी आती है।

जो यह शक्ति है, ऐसा शक्तिवान और शक्ति का भेद निकालकर शक्तिवान ऊपर दृष्टि पड़ती है तो पर्याय में भी त्यागउपादान शून्यत्व की क्रमवर्ती पर्याय उसमें होती है। अरे...! कठिन शरतें। समझ में आया ? और त्यागउपादान शक्ति है - यह शक्ति है यह ध्रुव उपादान है और पर्याय में जो परिणति होती है, यह क्षणिक उपादान है। प्रत्येक गुण में ऐसा लेना, एक बात। यह त्यागउपादान शक्ति है, यह क्रमवर्ती परिणमन में क्रम होता है तो यह शुद्धता का क्रम त्यागउपादानशून्यत्व में आता है। तो उसमें व्यवहार का अभाव है। उसका नाम अनेकांत है। (उसमें) राग का अभाव है। यहाँ तो क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती शुद्ध की व्याख्या है।

शक्ति का वर्णन है (इसमें) द्रव्य प्रधान कथन है। यह शक्ति का वर्णन द्रव्यदृष्टि प्रधान कथन है। और प्रवचनसार में ४७ नय है वह ज्ञान प्रधान कथन है। वहाँ ज्ञान प्रधान में तो ऐसा लेना है कि राग का कर्ता भी आत्मा है, ऐसा ज्ञान करते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

श्रोता : दो में से सच्चा कौनसा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों सच्चे हैं। परंतु कौनसी अपेक्षा से ? जहाँ शक्ति और शक्ति का स्वभाव और स्वभाव (का) धरनेवाला आत्मा उसकी दृष्टि जहाँ करानी है वहाँ अशुद्धता होती नहीं। यह शक्ति में अशुद्ध होने की कोई शक्ति नहीं। और परिणमन में जब तक साधकपना है - तब तक राग तो है। तो इस दृष्टि के साथ जो ज्ञान हुआ तो इस ज्ञान में स्वपर प्रकाशक जानने की शक्ति है। दृष्टि तो निर्विकल्प है और उसका विषय भी निर्विकल्प है। परंतु ज्ञान का विषय स्वपर प्रकाशक है। ज्ञान से जब बात चले तो राग का परिणमन अपने में है। पर्याय में राग का कर्ता आत्मा है। समझ में आया ? और राग का भोक्ता भी आत्मा है। यहाँ ये बात नहीं लेना, आहाहा ! यहाँ तो शक्ति का वर्णन है तो शक्ति का परिणमन होता है, वह क्रमसर शुद्ध होता है। क्रमसर - क्रमवर्ती परंतु शुद्ध होता है - अशुद्ध नहीं। अशुद्ध तो परज्ञेय में जाता है। आहाहा !

श्रोता : शुद्ध होता है तब परिपूर्ण शुद्ध होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शुद्धता की पर्याय है। वह भी परिपूर्ण होने की त्यागउपादान शून्यत्व से परिपूर्ण कहने में आयी है। क्योंकि एक समय की भले सम्यग्दर्शन आदि की

शुद्ध पर्याय हो, यह पर्याय सारे द्रव्य को सिद्ध करती है - साबित करती (है)। यहाँ विकारी लेना नहीं। वहाँ तो विकार भी है। जहाँ अंश लिया है (वह) राग का अंश भी अपना है। अगर अपने (इस अंश को) निकाल दे तो त्रिकाल पर्याय का समूह (वह द्रव्य) ये सिद्ध नहीं होता। यहाँ ये लेना नहीं। यहाँ तो शुद्धता लेनी है। शुद्ध पर्याय लेनी है।

यह शुद्ध पर्याय भी भले अल्प हुई परंतु परिपूर्ण द्रव्य को सिद्ध करती है - साबित करती है। यह अंश भी, अंशी पूर्ण है उसको सिद्ध करती है। अगर यह अंश निकाल दे तो पूर्ण द्रव्य सिद्ध नहीं होता। समझ में आया ? बात सूक्ष्म (है) बापू ! यह तो तत्त्वज्ञान (है)।

आप्त मिमांसा में तो ऐसा लिया है कि चाहे तो शुद्ध पर्याय हो कि अशुद्ध हो ये पर्याय एक अंश सारे द्रव्य को सिद्ध करती है। क्योंकि नय-उपनय का समूह वह द्रव्य है। पूरा श्लोक है। समझ में आया ? नय-उपनय का समूह पूरा द्रव्य है। तो वहाँ अशुद्धनय उसमें लिया है। परंतु यहाँ तो ये लेना नहीं है। यहां तो अशुद्ध राग जो होता है उसका क्रमबद्ध पर्याय में उसकी पर्याय में राग का ज्ञान होता है। ये ज्ञान भी राग है तो (होता है, ऐसा) नहीं। राग है तो ज्ञान होता है, ऐसा नहीं। वह क्रमवर्ती पर्याय में अपनी स्वपर प्रकाशक की पर्याय - क्रमवर्ती में अपने से होती है। वहाँ राग परज्ञेय है, ऐसा व्यवहार कहने में आता है, आहाहा ! निश्चय से पर्याय अपनी है, बस इतनी (बात है)। राग का जानना यह भी नहीं, आहाहा !

वह अपने आ गया है। आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञ शक्ति। क्या कहते हैं ? सर्वज्ञ शक्ति है ये सर्व नाम पर की अपेक्षा है, इसलिये सर्वज्ञ है, ऐसा नहीं। अपने त्रिकाली द्रव्य-गुण-पर्याय का भी ज्ञान करती है और पर का भी ज्ञान करती है। परंतु ये सर्वज्ञ पर्याय आत्मज्ञमयी है, निश्चय आत्मज्ञानमयी है। सर्व आया तो पर का उपचार हुआ, ऐसा यहाँ नहीं। ऐसी बातें हैं। क्या कहा ? कि, केवलज्ञान एक समय में स्वपरप्रकाशक होने से पर को प्रकाशते हैं इसलिये यहाँ सर्व है, ऐसा नहीं। ये आत्मज्ञान ही सर्व स्वरूपे परिणमन करना-जानना यह उसका स्वभाव है। पर को जानना ऐसा कहना वह तो असद्‌भूत व्यवहार है। लोकालोक को जानते हैं। लोकालोक तो पर है। सर्वज्ञ किस अपेक्षा से ? सर्व को जानना यह आत्मज्ञानमयी पर्याय का ही स्वभाव है। यह लोकालोक है तो आत्मज्ञ पर्याय सर्वज्ञ है, ऐसा है ही नहीं। समझ में आया ?

वह बात तो कही थी न ? ५० वर्ष पहले दामनगर में चातुर्मास था। वहाँ एक (मुमुक्षु) वकील (थे) और एक दामोदर सेठ थे। उन दोनों के बीच चर्चा चली। सेठ

ने कहा लोकालोक है तो केवलज्ञान की पर्याय हुई। (तो) वकील ने कहा, `केवलज्ञान की पर्याय अपने से हुई (है), लोकालोक है इसलिये हुई, ऐसा नहीं।' बात कहाँ भिन्न पड़ती है ?

श्रोता :- लोकालोक है तो (पर्याय हुई है) तो लोकालोक तो अनादि का है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- दो बात है। सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में आया है। सूक्ष्म बात (है)। ध्यान रखना। ये तो अंतर की बातें हैं। केवलज्ञान लोकालोक को निमित्त है और लोकालोक केवलज्ञान में निमित्त है। ऐसा पाठ है परंतु निमित्त है उसका अर्थ (क्या) ? लोकालोक है तो केवलज्ञान है, ऐसा नहीं और केवलज्ञान है तो लोकालोक है, ऐसा नहीं। यह तो ८३ की साल में बहुत चर्चा हुई। चर्चा करके नीचे उतरे (और) हमको पूछा `महाराज ! यह कैसे है ?' (हमने कहा) लोकालोक है तो केवलज्ञान की पर्याय है, ऐसी बात है नहीं। सर्व को जानने की अपनी पर्याय की ताकात यह अपने से है। निमित्त है तो निमित्त को जानते हैं, ऐसा है नहीं, आहाहा ! (ऐसा) पर्याय का धर्म है।

`**वस्तु सहावो धम्मो**' वस्तु जो भगवान आत्मा है, उसकी जो शक्तियाँ हैं, वह स्वभाव (है)। वह उसका धर्म (है)। वह प्रगट धर्म नहीं। यह धर्म (तो) धर्मी का धर्म (है)। धर्मी आत्मा उसकी शक्तिरूप धर्म (है) उसकी प्रतीति करते हैं तो पर्याय में धर्म होता है। धर्मी का धर्म और धर्म और धर्मी का भेद निकालकर अकेले धर्मी पर दृष्टि देने से पर्याय में वीतरागता (अर्थात्) धर्म पर्याय होती है, आहाहा ! भाई ! ऐसा मार्ग है। तप तो उसको कहें कि, अमृत का सागर पर्याय में उछले, आहाहा ! समुद्र के किनारे जैसे पानी की बाढ़ आती है ऐसे भगवान आत्मा में शक्तिरूप आनंद जो है, वह आनंद और आनंद का दातार दोनों का भेद दृष्टि में से निकालकर आनंद स्वरूप भगवान त्रिकाली उसकी दृष्टि करने से पर्याय में आनंद की छोल (बाढ़) आती है, आनंद की बाढ़ आती है, आहाहा ! यह धर्म है, आहाहा ! भारी बात भाई ! समझ में आया ?

पदार्थ की (पर्याय) क्रमबद्ध है। प्रत्येक वस्तु की क्रमसर व्यवस्थित पर्याय होती है - आगे पीछे नहीं। समझ में आया ? तो एक बड़े विद्वान ने ऐसा कहा कि, अगर क्रमबद्ध न हो तो विशेष ही लोप हो जाता है, ऐसा कहते थे। १३ की साल (में) काशी में गये थे। (वहाँ बात हुई) अरे भाई ! यहाँ प्रवचन मंडप में इस क्रमबद्ध की व्याख्या ३० वर्ष पहले हुई थी। क्रमबद्ध है, क्रमबद्ध बराबर है। (दूसरे विद्वान ना कहते थे)। क्योंकि उस समय बात थी नहीं ना। (और) क्रमबद्ध को कबूल करने जाये तो सोनगढ़ का हो जाता है। यह सोनगढ़ से उद्‌घाटन हुआ है। समझ में आया ? अंदर भाव का उद्‌घाटन तो हमने किया, आहाहा ! तो कहते हैं कि, अगर हम क्रमबद्ध नाम लगायेंगे

तो लोग कहेंगे, यह मान्यता सत्य है, सोनगढ़ की बात सिद्ध हो जायेगी तो लोग सोनगढ़ चले जायेंगे। अरेरे...! भगवान ! सत्य है ऐसा लेना है कि तेरे को पक्ष करना है ? (यह कोई) नया है नहीं। अनादि से सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं, यह बात है। समझ में आया ?

श्रोता :- वह भूल हो गयी थी तो बाहर आ गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह तो हमने कहा था ना ? ७२ की साल। कितने वर्ष हुए ? ६१ (वर्ष हुए)। ७२ (की साल में) चर्चा चली। (हमने) दो साल सुना कि, 'केवलज्ञानी ने देखा ऐसा होगा। अपने पुरुषार्थ क्या करें ?' ऐसी बात तो दो वर्ष सुनी। नव दीक्षित थे ना ? २५ वर्ष की उम्र थी। इस देह को तो ८८ हुए। कितने वर्ष हुए ? ६१ (वर्ष हुए)। आहाहा ! हमारे गुरुभाई है न ! वह बार-बार कहते थे कि, 'केवलज्ञानी ने देखा ऐसा होगा। अपने पुरुषार्थ क्या करे ?' तो दो वर्ष तो सुना, फिर एक बार कहा, 'केवलज्ञान है यह देखा !' बाद में कहा - 'केवलज्ञान है ऐसी सत्ता का स्वीकार है ?' यह तो ७१ (की साल की बात है)। केवलज्ञान एक समय में प्रभु ! ज्ञान गुण की एक समय की पर्याय अनंत केवली को जाने। वह भी केवली को जाने (ऐसा) कहना वह भी व्यवहार है। उस पर्याय का सामर्थ्य ही इतना है, आहाहा ! एक गुण की एक समय की पर्याय इस में इतनी ताकत है कि अपनी पर्याय से अनंता केवली को जाने। केवली है तो (जानते हैं, ऐसा) नहीं। केवली है तो केवली को जानते हैं, ऐसा नहीं। आहाहा ! तो ऐसी एक समय की केवलज्ञान की पर्याय की सत्ता जगत में है, उसका जिसको स्वीकार है, उसकी दृष्टि ज्ञान में घुस जाती है। समझ में आया ?

इतना उस समय में आया था। ७२ की साल थी न ? द्रव्य का आश्रय (और ये सब बात का) उस समय में इतना नहीं था। समझ में आया ? आहाहा ! सर्वज्ञ की पर्याय - एक गुण की एक समय की पर्याय इतनी ताकतवाली वह पर्याय द्रव्य-गुण को जाने, अपना त्रिकाली द्रव्य-गुण को जाने, छः द्रव्य को जाने, अनंत सिद्धों को जाने। एक ही पर्याय अस्तित्व (रूप) है, बाकी सब उसमें नास्तित्व है। समझ में आया ? ऐसी एक समय की पर्याय वह (भी) द्रव्य-गुण के कारण से भी नहीं। इतना तो उस वक्त नहीं था। परंतु केवलज्ञान है (ऐसी) एक समय की सत्ता जगत में है, ये सत्ता जिसको स्वीकार करने में आती है (और) निश्चय से यह सर्वज्ञ की सत्ता का स्वीकार, सर्वज्ञ शक्तिवान भगवान है उसकी दृष्टि करने से सर्वज्ञ की सत्ता का यथार्थ श्रद्धान होता है। समझ में आया ? आहाहा !

श्रोता :- सब जीव में सर्वज्ञ शक्ति है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- सब भगवान सर्वज्ञ से परिपूर्ण भरित अवस्थ (है)। कहा था न? बंध अधिकार में, सर्वविशुद्धमें और परमात्मप्रकाश तीन जगह (यह बात है)। सर्व जीव निर्विकल्पो-निरंजनो-भरित अवस्थ (है)। अवस्थ माने पर्याय नहीं। भरित अवस्थ शक्ति से पूर्ण भरा है। भगवान ! सब भगवान आत्मा परमात्मा है। पर्याय की बात छोड़ दो। वस्तु है यह परमात्मा ही है।

सर्व जीव ऐसे हैं। जीवा (ऐसी) भावना करना। ऐसा पाठ है कि नहीं ? बंध विनाशनार्थम् अथवा ज्ञायक को सिद्ध करने को, ऐसी भावना करना। उस दिन तो कहाँ पढ़ा था? समझ में आया ? यह सब तो ७८ (की साल में) आया। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार ७८ (में मिले)। (और) यह बात ७२ (की साल में की)। मैंने तो दृष्टांत दिया था।

श्रीकृष्ण के छोटे भाई गजसुकुमार (थे)। वे खुद खोळा में बैठकर, खोळा समझते हो न ? गोद में बैठकर हाथी के होदे पर - भगवान के दर्शन करने को जाते थे। तो ऐसी एक कन्या थी। सामेलासंग करके एक कन्या थी। वह सामने के घर में - उसके घर में खेलती थी। स्वयं श्रीकृष्ण भगवान के दर्शन करने के लिये जाते थे। (वह) कन्या बहुत सुंदर दिखती थी। उनको ऐसी इच्छा हुई, आदमी को कहा कि उस कन्या को अंतःपुर में ले आओ। गजसुकुमार की शादी के लिये (ले आओ)। गजसुकुमार छोटे भाई थे न ? (यहाँ) कन्या को ले गये और यहाँ गजसुकुमार भगवान के पास गये। गजसुकुमार - गज नाम हाथी का गला, सुकुमार ऐसा तो शरीर। भगवान की वाणी सुनी (और) भगवान की वाणी सुनकर एकदम जोर से पुरुषार्थ आया (और कहा) कि, `प्रभु ! मुझे तो आयार छोड़कर अणगार लेने का मेरा भाव है।' आहाहा ! जशोदा को देव की आराधना करने के बाद पुत्र आया था। समझ में आया ? लंबी बात है। तो ये गजसुकुमार जहाँ भगवान की वाणी सुनते हैं वहाँ एकदम अंदर से जोर से पुरुषार्थ (उठा)। प्रभु ! मैं अब अणगार-मुनि होना चाहता हूँ। तो उन (श्वेताम्बर) लोगों में तो ऐसी भाषा है न? उन लोगों में अपने जैसा `ओम' नहीं है। `आहा सोऽहम्' ऐसा शब्द है। श्वेताम्बर में तो `आहा सोऽहम् देवानुप्रिया मा प्रतिबंधक' ऐसा शब्द है। भगवान कहते हैं, `हे देवानुप्रिय !' (भगवान को ऐसी वाणी कहाँ (होती है)? वह तो ओमकार है। श्वेताम्बर में तो ऐसी सब गड़बड़ है। `हे मुनि ! गजसुकुमार ! आप को जैसे सुख उत्पन्न हो वैसे करो। प्रतिबंध नहीं करना। प्रतिबद्ध- कहीं रुकना नहीं।' ऐसा कहा।

(गजसुकुमार) माता के पास गये। (और कहा) `माता ! मैं मुनिपना लेना चाहता हूँ। माँ ! एकबार छुट्टी दो। मैं भगवान के पास जाउँ।' देवकी ने कहा, `हे पुत्र ! देव का आराधन करके तुम आये हो। मैंने तो तुझे कितना प्यार दिया है।' श्रीकृष्ण तो ग्वाले

के यहाँ बड़े हुए थे। उन्हें पहले छः लड़के थे। दूसरी औरत का नाम सुलषा (था)। उसके घर छः (पुत्र) बड़े हुए थे। श्रीकृष्ण के पहले छः पुत्र थे। देवकी को छः पुत्र थे। परंतु उसका अपहरण करके सुलषा के घर चले गये थे। ऐसे सात (पुत्र) थे। बालक के रूप में तो देवकी ने कभी देखा नहीं था। (देवकी ने कहा) `बेटा ! तुझे मैंने बालक के रूप में देखा नहीं और तुम (ऐसे ही) चले जाते हो।' गजसुकुमार ने कहा, `माता ! मेरा आनंदस्वरूप भगवान है, उसके पास मैं जाता हूँ। मेरी माता तो अंदर आनंद है। माता एकबार छुट्टी दे। जनेता ! एक बार रोना है तो रो ले, माता ! परंतु मैं कोलकरार - (वादा) करता हूँ (कि) फिर से माता नहीं करूँगा। फिर से माता नहीं करूँगा, माता ! ऐसा कोलकरार करता हूँ, माता !' आहाहा ! कितना पुरुषार्थ है !!

केवलज्ञानी जिसको बैठा है, उसका पुरुषार्थ स्वभाव पर झुक जाता है। समझ में आया ? आहाहा ! दूसरी तरह से कहे तो, केवलज्ञान है - ऐसी बात चारों अनुयोगों में आयी। तो चारों अनुयोगों का तात्पर्य तो वीतरागता है। तो केवलज्ञान है - ऐसा जीव सुने तो उसका तात्पर्य तो वीतरागता आनी चाहिये। तो वीतरागता कब आती है ? आहाहा ! केवलज्ञान की पर्याय की सत्ता का स्वीकार करने में वीतरागता आनी चाहिये। तो वीतरागता कब आती है ? कि ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा (है) उस ओर झुकने से वीतरागता आती है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसा मार्ग है, भाई ! (हमने) कहा, उस सत्ता का स्वीकार करने में उसको भव नहीं है। हम कहते हैं कि, जिसे केवलज्ञान की सत्ता का स्वीकार हुआ, केवलज्ञानी उसे भव नहीं है, ऐसा देखते हैं।

७२ हाँ ७२! ६१ वर्ष हुए। (ये सब बातें) अंतर से आती थी। पढ़ा नहीं था। परंतु अंदर में वह संस्कार था न ? (उसमें से आता था)।

`माता ! कोलकरार करता हूँ। हम जिस रास्ते पर जाते हैं उसमें अब भव नहीं मिलेगा।' आहाहा ! (हमने) कहा `यह पुरुषार्थ तो देखो !!' यह केवलज्ञान की सत्ता का स्वीकार करने में तो पुरुषार्थ है। `देखो है वह पीछे होगा, देखा है वह होगा, देखा है वह होगा' वह (बात) तो है. परंतु केवलज्ञान है कि नहीं जगत में ? पर्याय में इसका माहात्म्य और इसका समर्थ - शक्ति कितनी है, इसकी सत्ता का स्वीकार करने से अल्पज्ञ में रहकर सर्वज्ञ की शक्ति पर झुकने से अल्पज्ञ में (सर्वज्ञ) सत्ता का स्वीकार होता है। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि सर्वज्ञ की शक्ति जो अंदर है, वह सर्वज्ञपना वही आत्मज्ञपना है। वह पहले शक्ति में आगे आ गया है। यह सर्वज्ञपना, वह आत्मज्ञ कहो या सर्वज्ञपना कहो, वह (मात्र) विविक्षा भेद है। कथन भेद है। भाव भेद नहीं। क्या कहा वह ? कि

सर्वज्ञपना है और आत्मज्ञपना वह तो कथन की शैली से बात है। आत्मज्ञ है यह स्व से है और सर्वज्ञपना (है) यह पर से है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

ऐसा सर्वदर्शी - दोनों में लिया है ना ? सर्वदर्शी वह आत्मदर्शीपना है। सर्व को देखते (हैं) वह नहीं (लेना)। सर्व में पर को लेना वह तो असद्भूत व्यवहार है। क्योंकि जिसमें तन्मय होकर देखते नहीं उसको असद्भूत कहते हैं और जिसको तन्मय होकर देखते हैं - तो पर्याय में तन्मय होकर देखते हैं वह अपने को देखते हैं। आहाहा !

यहाँ यह कहते हैं कि, सर्वज्ञ शक्ति सत् है और कमबढ़ नहीं है ऐसी त्यागउपादान शून्यत्व शक्ति है, ऐसा स्वीकार करने से परिणती में भी कमबढ़ नहीं (है), ऐसी पर्याय उत्पन्न होती है। अर्थात् पर्याय भले अल्प हो तो भी पूर्ण द्रव्य को सिद्ध करती है, एक अंश सारे अंशी को सिद्ध करता है। उस कारण से पर्याय को भी पूर्ण कहने में आता है। आहाहा !

अब १७ वीं शक्ति। यह थोड़ी सूक्ष्म बात है। ``**षट्स्थानपतित...**'' पहला शब्द है ? षट्स्थान आशय। पतित माने आशय। षट्स्थान माने ? अर्थात् कि आत्मा में प्रत्येक गुण में, पर्याय में षट्स्थानपतित अर्थात् पर्याय में अनंतगुण वृद्धि, असंख्यगुण वृद्धि, संख्यगुण वृद्धि, अनंतभाग वृद्धि, असंख्यभाग वृद्धि, संख्यभाग वृद्धि, यह (वृद्धि के) ६ बोल हुए। और अब हानि के (६ बोल)। अनंत गुण हानि, असंख्यगुण हानि, संख्यगुण हानि, अनंतभाग हानि, असंख्यभाग हानि, संख्यभाग हानि, ऐसे ६ (बोल) हुए। समझ में आया ? ऐसी बात (है)।

अगुरुलघु शक्ति का वर्णन करते हैं। तो प्रत्येक गुण की पर्याय में (अगुरुलघुपना आता है)। प्रत्येक गुण में अगुरुलघुत्व गुण का रूप है, आहाहा ! और उसकी पर्याय में भी अगुरुलघुपना आता है। यह बहुत सूक्ष्म विषय है। क्योंकि केवलज्ञान की पर्याय है तो भी एक समय में षट्गुणहानिवृद्धि उसमें है। इसका मतलब यह नहीं है कि पहले समय में हानि और दूसरे समय में वृद्धि, ऐसा नहीं (है)। उसी समय में हानि और उसी समय में वृद्धि, यह कोई अगम्य बात है। ये क्यों कहते है ? कि श्रुतज्ञानी सब जान सके तो केवलज्ञान की महिमा कहाँ रही ? आहाहा ! श्रुतज्ञान में भी षट्गुणहानिवृद्धि (होती है)। एक समय में हानि और दूसरे समय में वृद्धि, ऐसा भी नहीं। एक समय में अनंत गुण वृद्धि उसी समय में अनंतगुणहानि (होती है)। एक समय में असंख्यगुण वृद्धि उसी समय में असंख्यगुणहानि और संख्यगुणवृद्धि और संख्यगुणहानि. एक ही समय में द्रव्य का - पर्याय का ऐसा स्वभाव भगवान ने देखा (है)।

क्या कहा समझ में आया ? ``**षट्स्थानपतित...**'' ६ प्रकार से - आश्रय से हानि-

वृद्धि होती है। षट् वृद्धि - हानि दोनों (होती है)। दोनों है न ? चिद्विलास में दिपचंदजी ने जरा उतारा है। परंतु वह तो समझ ने के लिये उतारा है। उन्हों ने उतारा है कि अनंतवे भाग में आठ गुण। अनंतवे भाग में आठ गुण परंतु वह तो एक के बाद एक उतारा है। समझ में आया ? परंतु वह तो समझाने के लिये (कहा)। वास्तव में तो एक समय में षट्गुणहानिवृद्धि (है)। एक समय में (है)। आहाहा ! सूक्ष्म है भगवान ! तेरी मतिज्ञान की पर्याय हो तो भी उसमें षट्गुणहानिवृद्धि पर्याय में होती है। केवलज्ञान की पर्याय हो तो भी षट्गुणहानिवृद्धि केवलज्ञान की पर्याय में होती है। क्षायिक समकित हो उस पर्याय में भी षट्गुणहानिवृद्धि होती है। यथाख्यात चारित्र हो, वीतरागता है, वीतरागता की पर्याय भी षट्गुणहानिवृद्धि है। यह बात तो सर्वज्ञ के अलावा (कहीं नहीं है)।

श्रोता : निगोद के जीव में (भी होती है) ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निगोद के जीव के अक्षर के अनंतवे भाग में षट्गुणहानिवृद्धि उसमें भी है, आहाहा !

देखो ! सर्वज्ञ स्वभाव !! भगवान आत्मा का और उसकी पर्याय का धर्म !! आहाहा ! भगवान ने देखा। समझ में आया ? भगवान ने देखा ऐसा कहा, आहाहा ! यहाँ पंचास्तिकाय में तो ऐसा थोड़ा कहते हैं (कि) षट्गुणहानिवृद्धि यह श्रुतगम्य नहीं। आगम गम्य है। आगम कहते हैं उतना स्वीकार करना उसमें तर्क नहीं करना। तर्क से तुझे नहीं बैठेगा। समझ में आया ? आहाहा ! एक मति पर्यायक निगोद के जीव को अनंतवे, भाग में, अक्षर के अनंतवे भाग का विकास और वीर्य (में) भी अनंतवे भाग का विकास। फिर भी उस पर्याय में भी षट्गुणहानिवृद्धि है। आहाहा ! (एक समय में १२ भाव)। एक समय (मे) ६ हानि के और ६ वृद्धि के (भाव है)। आहाहा ! कभी यह सुना नहीं होगा।

श्रोता : (ये बात) कभी सुनने में नहीं आती।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच है। यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर ! जिनचंद्र ! वीतराग चंद्र ! शीतलता का भगवान पूर्णानंद उपशम रस (से) भरा (है)। इस परमात्मा ने यह बात कही है। समझ में आया ?

``**षट्स्थानपतित वृद्धिहानि से परिणमित...**'' परिणमित कहा, देखा ? पर्याय में परिणमित है। शक्ति तो है परंतु पर्याय में परिणमित है। ``**...स्वरूप - प्रतिष्ठत्व का कारणरूप, (- वस्तु के स्वरूप में रहने के कारणरूप) ऐसा जो विशिष्ट (- खास) गुण है, उस स्वरूप अगुरुलघुत्वशक्ति**'' आगे थोड़ा विशेष कहते हैं। ``**(इस षट्स्थानपतित वृद्धिहानि का स्वरूप `गोमट्टसार' ग्रंथ से जानना चाहिये। अविभागप्रतिच्छेदों की संख्यारूप षट्स्थान में...)**'' क्या कहते हैं ? एक समय की पर्याय मति(ज्ञान) हो या केवलज्ञान हो परंतु उसमें

षट्‌गुणहानिवृद्धि (होती है)। है ना ? आहाहा ! अविभागप्रतिच्छेद। क्या कहते हैं यह ? देखो ! एक मतिज्ञान है। परंतु उस पर्याय में तो अनंत लोकालोक भी जानने में आता है। और स्वद्रव्य भी जानने में आता है। लोकालोक जानने में आता है तो एक पर्याय के भाग में अविभागप्रतिच्छेद कितने हुए ? अंश (को) छेदते-छेदते अविभाग - जिसका भाग न हो, ऐसा प्रतिच्छेद करते-करते अंतिम अंश हो उसे अविभाग कहते हैं। ऐसा अनंता अविभाग प्रतिच्छेद निगोद के अक्षर के अनंतवे भाग की पर्याय में भी अनंत अविभागप्रतिच्छेद है। अरे...! ऐसी बात ! ऐसा वीतराग का मार्ग ! आहाहा !

श्रोता : पर्याय तो स्वयं अंश है तो उसमें भी अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, (होते हैं)। कहा न ? अंदर केवलज्ञानी की पर्याय है, उस पर्याय में अनंता केवली जानते हैं, अनंता लोकालोक, अनंता निगोद (के जीव को) जानते हैं, अनंता जीव से अनंत गुना परमाणु जानते हैं, तो एक पर्याय में इतना जानने का अंश छेदो तो अनंत होय। समझ में आये उतना समझे, बापू ! यह तो भगवान का (कहा मार्ग है)। आहाहा !

``**सहेजे समुद्र उल्लस्यो, जेमां रतन तणांणां जाय, भाग्यवान कर वावरे, एनी मोतीए मुठीयुं भराय**'' `भाग्यहिन वावरे, एनी शंखले मुठीयुं भराय' आस्था से, श्रद्धा से, उत्साह से, उल्लासित वीर्य से (कबूल करना)। आहाहा ! परमात्मा की अगम-निगम की बातें है। तेरी पर्याय में अनंत अविभाग प्रतिच्छेद !! आहाहा ! वह कहा न ? ``(**...वस्तुस्वभाव की वृद्धिहानि जिससे (- जिस गुण से होती है और जो (गुण) वस्तु को स्वरूप में स्थिर होने का कारण है। ऐसा कोई गुण आत्मा में है; उसे अगुरुलघुत्व गुण कहा जाता है। ऐसी अगुरुलघुत्व शक्ति भी आत्मा में है**)'' प्रत्येक गुण में यह है। द्रव्य में भी अगुरुलघु, गुण में भी अगुरुलघु और पर्याय में (भी) अगुरुलघु। शक्ति है न ? आहाहा ! प्रत्येक गुण में अगुरुलघु (का रूप है)। आहाहा ! सूक्ष्म बात (है)।

अब ज्यादा समझने जैसी बात है। १८ वीं शक्ति। ``**क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है...**'' भाषा देखो ! पर्याय क्रम से वर्तती है - ऐसा वर्तन जिसका लक्षण है। क्रमवर्ती नाम पर्याय का क्रम से वर्तनेवाली ऐसा वर्तन उसका लक्षण है। आहाहा ! इस प्रकार पर्याय क्रमवर्ती (और) गुण अक्रमवर्ती (है)। उसका अर्थ यह हुआ कि गुण ऐसे एक साथ अंतर में है और पर्याय एक साथ ऐसे आयत समुदाय है। पर्याय क्रमवर्ती कहने में आयी - गुण अक्रमवर्ती (कहने में आया)। इसलिये क्रमवर्ती कहने में आयी (उसमें) यह क्रमबद्ध आ गया। वह आया न ? क्रमवृत्ति और अक्रमवृत्ति रूप वर्तन जिसका लक्षण (है)। क्रम से वर्तन करना जिसका लक्षण (है), आहाहा ! उन्हें (कुछ विद्वानों को) ऐसा

लगा कि अगर हम क्रमबद्ध का सच्चा निर्णय करने जायेंगे तो उन लोगों की बात है तो सच्ची। (और) अगर सच्चा निर्णय है ऐसा कहने जाये तो लोग उस ओर ढ़ल जायेंगे कि उनकी बात सच है और हमारी बात झूठ है, ऐसा हो जायेगा। अरे...! भगवान ! आहाहा ! बापू ! ऐसा नहीं होता, भाई ! तू भगवान है ना ! एक समय की भूल है उसे निकलने में कितना काल लगे ? एक समय लगे। आहाहा !

श्रोता : (हम अपनी भूल) अपने आप निकालेंगे, आपके कहने से नहीं (निकालेंगे)। (ऐसा वह लोग कहेंगे)।

पूज्य गुरुदेवश्री : (अपने आप) निकालने में भी एक ही समय लगता है न ? उसे निकालने में कितना समय लगता है ? क्रमवर्ती पर्याय है तो क्रम से वर्तना जिसका लक्षण है अर्थात् क्रम से वर्तना जिसका स्वरूप है, आहाहा ! ऐसी बातें (हैं) ! इसके बदले व्रत करना, उपवास करना, भक्ति करना, पूजा करने लग जाये तो सीधा सरल हो जाये।

प्रत्येक गुण में उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम की शक्ति का रूप है। क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती गुण का समुदाय वह आत्मा है. समझ में आया ? वह बोल लिया है। वहाँ लिया है कि, क्रमवर्ती में ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है तो उसमें अनंत गुण की पर्याय (साथ में) उछलती है। वह पहले आ गया है। उछलती अर्थात् ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई तो उसके साथ अनंत गुण की पर्याय साथ में उछलती है। उछलती नाम उत्पन्न होती है, आहाहा ! ऐसी बात है। वह दूसरा बोल है। एक-एक शक्ति में इतने बोल लागू पड़ते हैं। पहले कहा ना ? क्रम-अक्रमरूप अनंत धर्म समूह वह आत्मा। अब ज्ञानमात्र एक भव की अंतःपातिनी अनंत शक्तियाँ, यह दूसरा बोल है। यह प्रत्येक शक्ति में लागू होता है। क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है। प्रत्येक शक्ति का (पर्याय का) क्रमरूप प्रवर्तन होना (और) अक्रमरूप गुण का रहना वह उसका लक्षण - स्वरूप है। एक-एक शक्ति अनंत में व्यापक है। एक शक्ति अनंत में व्यापक है। एक शक्ति अनंत में निमित्त है। एक शक्ति द्रव्य - गुण - पर्याय में व्याप्य है। एक शक्ति में ध्रुव उपादान - क्षणिक उपादान दोनों हैं। आहाहा ! ध्रुव (है) यह ध्रुव उपादान है (और) पर्याय है यह क्षणिक उपादान है। आहाहा ! क्रम से वर्तन करनेवाली क्षणिक उपादान है और अक्रम से रहनेवाला ध्रुव उपादान है, आहाहा ! एक-एक शक्ति में व्यवहार का अभाव है। यह अनेकांत है। व्यवहार से होता है और निश्चय से (भी) होता है, ऐसा शक्ति के वर्णन में है ही नहीं। समझ में आया ?

अपनी एक-एक शक्ति (पर्याय) क्रम से प्रवर्ते और (गुण) अक्रम से प्रवर्ते। तो उसमें

निर्मल परिणति क्रम से प्रवर्तती (है)। निर्मल परिणति क्रम से प्रवर्तती है और निर्मल गुण एक साथ रहते हैं तो उसमें व्यवहार का अभाव है। राग आदि निमित्त आदि का अभाव है, यह अनेकांत है। समझ में आया ?

यहाँ तो व्यवहार की बात ही नहीं कहते। उसका ज्ञान होता है, वह अपनी पर्याय में अपनी ताकत से होता है। तो उसमें व्यवहार का अभाव (है) और निश्चय अपने से हुआ है। ज्ञान की पर्याय, समकित की पर्याय, चारित्र की पर्याय, आनंद की पर्याय अपने से पर की अपेक्षा रखे बिना होती है, आहाहा ! समझ में आया ? यह उत्पाद - व्यय - ध्रुव शक्ति है तो इस शक्ति के कारण से प्रत्येक गुण में वह जिस समय में (पर्याय) उत्पन्न होने का समय है वहाँ उत्पन्न होगी। प्रत्येक गुण की पर्याय (उस समय में उत्पन्न होगी)। आहाहा ! जिस समय में उत्पाद है उसी समय में पूर्व की पर्याय का व्यय (है)। ऐसा उसकी शक्ति का स्वभाव है, आहाहा !

दूसरी तरह से कहे तो, उत्पाद - व्यय - ध्रुव, यह शक्ति है वह पर के कारण से उत्पन्न हो, ऐसा वहाँ रहा नहीं। कि भाई ! राग की मंदता हुई, दया, दान, और पंच महाव्रत के (मंद परिणाम) हुए, इसलिये वह निर्मल पर्याय हुई, ऐसा वस्तु में है ही नहीं, समझ में आया ? आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू ! (लोग) नहीं कहते ? 'लोहा काटे छेनी' वह बात है झीणी (सूक्ष्म) - लोहा काटे छेनी। लोहे की छेनी होती है वह (लोहे को) काटे। यह लकड़ी काटे क्या ? लकड़ी मारे तो टूट जाये परंतु लोहे की बारीक छेनी होवे (वह लोहे को काटे)। वैसे यह भेदज्ञान की सूक्ष्म बातें हैं। आहाहा ! कहते हैं कि एक-एक शक्ति में व्यवहार का अभाव है, यह स्याद्वाद है। यह शक्ति है वह पारिणामिकभाव (रूप) है।

एकबार कोई पूछ रहे थे। मोक्षमार्ग क्या है ? मोक्षमार्ग है वह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव है। और शक्ति जो गुणरूप है वह पारिणामिकभाव है। समझ में आया ? यह सब ऐसा क्या होगा ? यह तो तत्त्व की बात है, भाई ! आहाहा ! भगवान आत्मा उसमें उत्पाद, व्यय, ध्रुव नाम की शक्ति है। यह शक्ति है वह पारिणामिकभावरूप है। परंतु शक्ति की प्रतीत हुई (तो निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई)। ध्रुव है वह तो शक्ति है। परंतु उसके कारण से उत्पाद - व्यय होता है। ये पर्याय में यहाँ उदय का भाव लेना ही नहीं। शक्ति में उत्पाद होता है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव या क्षायिकभाव उत्पन्न होता है। वह क्रमवर्ती पर्याय है। आहाहा ! इसमें कितना याद रहे ?

यह मार्ग ऐसा (है), भाई ! अरे...! मनुष्यपने में यह नहीं समझेगा तो कब समझेगा, भाई ! आहाहा ! ऐसा सर्वज्ञ स्वभाव का समुद्र भरा है। आहाहा ! केवलज्ञान की पर्याय

(है) ऐसी तो अनंती पर्याय गुण में पड़ी हैं। ज्ञान गुण में तो अनंती केवलज्ञान की पर्याय क्रम से (पड़ी हैं)। पर्याय की अवस्था तो एक समय की है। केवलज्ञान भी एक समय की अवस्था है। दूसरे समय दूसरी पर्याय ऐसी ही (है)। परंतु वह नहीं। ऐसी-ऐसी सादि अनंत केवलज्ञान की पर्याय (ज्ञान गुण में हैं)। अनंत नाम कहीं आदि नहीं, कहीं अंत नहीं। ऐसी पर्याय का समुदाय वह ज्ञान गुण है। आहाहा ! और ऐसे-ऐसे श्रद्धा गुण की अनंत पर्याय, चारित्र गुण की अनंती पर्याय, आनंद की अनंती पर्याय। अनंत पर्याय का पिंड वह आनंद - श्रद्धा और वीर्य है। अनंत गुण का पिंड वह द्रव्य है। समझ में आया ? ऐसा अभ्यास कहाँ किया हो ? उपवास कर लो तो कुछ हो जाय कल्याण, तो कर डालो लांघण (उपवास)।

श्रोता : आपने तो रास्ता दिखा दिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोगों को कठिन पड़ता (है)। (कहते हैं) यह तो एकांत निश्चय है। अरे...! भगवान ! मार्ग तो यह है, भाई ! आहाहा ! बाद में एक-एक शक्ति में उत्पाद - व्यय - ध्रुव जो पर्याय होती है, वह उत्पाद षट्कारक से होता है, आहाहा ! विशेष आयेगा....

ज्ञान और राग के बीच भेदज्ञान होने का यह लक्षण है कि ज्ञान में राग के प्रति तीव्र अनादरभाव जगता है - यही ज्ञान और राग के मध्य भेदज्ञान होने का लक्षण है। आत्मा में राग की गंध भी नहीं। राग के जितने भी विकल्प उठते हैं, मैं उनमें जलता हूँ, वह दुःख-दुःख और दुःख हैं, विष हैं - ऐसा ज्ञान में पूर्ण निर्णय हो; तो भेदज्ञान प्रकट होता है। (परमागमसार - ३०७)

प्रवचन नं. १८
शक्ति-१८, १९ दि. २८-०८-१९७७
क्रमाक्रमवृत्तवृत्तित्वलक्षणा उत्पादव्ययध्रुवत्वशक्तिः ।।१८।।
द्रव्यस्वभावभूतध्रौव्यव्ययोत्पादालिंगितसदृशविसदृशरूपैकास्तित्वमात्रमयी परिणामशक्तिः ।।१९।।

(समयसार)। यह शक्ति कितने नंबर की होगी ? १८ वीं (चलेगी)। तुम्हारे शिक्षण शिबिर का १८ वाँ दिन है। क्या कहते हैं ? आत्म सत् / शाश्वत वस्तु (है) इसमें शक्तियाँ भी शाश्वत हैं। आत्मा / स्वभावभाव पारिणामिकभावरूप है (और) उसकी शक्ति भी पारिणामिकभावरूप है। सहज स्वभाव है। एक शक्ति दूसरी शक्ति को निमित्त है। परंतु एक शक्ति दूसरी शक्ति को उत्पन्न करे, ऐसा नहीं।

यहाँ तो उत्पाद - व्यय - ध्रुव शक्ति ऐसी कही कि प्रत्येक ज्ञान में भी उत्पाद - व्यय - ध्रुव का रूप है। इसमें उत्पाद - व्यय - ध्रुव शक्ति नहीं। परंतु उत्पाद - व्यय - ध्रुव का रूप है। क्या ? कि ज्ञान शक्ति जो त्रिकाल है, इसमें से जिस समय ज्ञान की पर्याय (उत्पन्न होगी, वह उत्पाद - व्यय - ध्रुव शक्ति के कारण से होगी)। यहाँ निर्मल (पर्याय) की बात है, यहाँ मलिनता की बात नहीं है। जिस समय ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होगी वह उत्पाद, उत्पाद - व्यय - ध्रुव शक्ति के कारण से है। आहाहा ! क्या कहा ? कि जो ज्ञान में उत्पाद - व्यय - ध्रुव के कारण वह पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा ! समझ में आया ?

खाणिया चर्चा में चर्चा हुई थी कि `चार घातीकर्म नाश होता है तो केवलज्ञान होता है', ऐसा कहा। तत्त्वार्थसूत्र में लिखा है न ? परंतु वह तो निमित्त का कथन है।

वस्तुस्थिति ऐसी है (कि) ज्ञान गुण में उत्पाद - व्यय - ध्रुव का रूप है तो यह केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, वह अपने से होती है; पर के कारण की कोई अपेक्षा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

सत् चिदानंद ध्रुव प्रभु ! (उसकी) शक्ति भी ध्रुव है। जैसे वस्तु ध्रुव है वैसे शक्ति भी ध्रुव है। तो शक्ति और शक्तिवान का भेद लक्ष में नहीं करके अभेद दृष्टि करने से पर्याय का ज्ञान कराने को वह बात की है। तत्त्वार्थराजवार्तिक आदि में यह सब है ना ? यह दृष्टांत बहुत देते हैं कि पूर्ण पर्याय युक्त द्रव्य वह कारण और उत्तर पर्याय युक्त द्रव्य वह कार्य। यहाँ यह भी निकाल दिया। स्वामीकार्तिकेय में ऐसा लिया है। और जैनतत्त्वमिमांसा में - खाणिया चर्चा में यह आधार बहुत लिया है कि द्रव्य जो है वस्तु - उसकी पर्याय सहित द्रव्य उपादान कारण है और पीछे की पर्याय सहित द्रव्य वह कार्य है, यह भी व्यवहार है।

यहाँ कहते हैं कि उत्पाद - व्यय - ध्रुव उस समय में जो पर्याय उत्पन्न होती है (वह) पूर्व के कारण से नहीं। आहाहा ! सूक्ष्म बात है। शास्त्र में ऐसा बहुत आता है और वह आधार भी बहुत लिया है। परंतु वह तो पूर्व पर्याय क्या थी ? और पीछे पर्याय क्या है ? ऐसा द्रव्य सहित का कारण - कार्य बताया। यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु ! एकबार सुन तो सही। आहाहा ! तेरे एक-एक गुण में ध्रुवता और पर्याय में उत्पन्न होना, वह पर्याय स्वतंत्र उत्पन्न होती है। ज्ञान में हो, दर्शन में हो, चारित्र में हो, आनंद में हो (सभी गुण में स्वतंत्र पर्याय उत्पन्न होती है)। आहाहा ! आनंद शक्ति है, उसमें भी उत्पाद - व्यय - ध्रुव का रूप है। आहाहा ! वह पाँचवीं सुख (शक्ति में) पहले आ गया है। जीवतर, चिति, दशि, ज्ञान, सुख और छट्ठी वीर्य। वीर्य में भी उत्पाद् - व्यय - ध्रुव का रूप है। आहाहा ! गंभीर !! वीर्य भी अपनी पर्याय में उत्पन्न होने की उसमें शक्ति है। अपने से वीर्य की पर्याय स्वरूप की रचना में उत्पन्न होती है। सूक्ष्म बात है, समझ में आया ?

वीर्य भी शक्ति है। उसमें उत्पाद - व्यय - ध्रुव का रूप है तो वीर्य भी अपनी पर्याय में पुरुषार्थ जो उत्पन्न होता है, वह अपने शक्ति के कारण से (उत्पन्न होता है)। पूर्व की पर्याय के कारण से नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? निमित्त से तो नहीं परंतु पूर्ण (पर्याय के) कारण से भी नहीं। वह तो नहीं परंतु वर्तमान में जो अनंती पर्याय है तो उस पर्याय के कारण से दूसरी पर्याय है, ऐसा भी नहीं। क्योंकि प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक गुण में उत्पाद - व्यय - ध्रुव का रूप है, तो उस गुण में ज्ञान का, दर्शन का उत्पाद अपने से उत्पन्न होता है। यह सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ तो सम्यक्ज्ञान की पर्याय

उसके कारण से उत्पन्न हुई, ऐसा नहीं। आहाहा !

श्रोता : व्यवहार से शास्त्र में कहा है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले तो कहा था कि व्यवहार का कथन है।

श्रोता : व्यवहार को तो आप हेय मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हेय ही है। (ऐसा ही) मानते हैं। (और) है ही ऐसा। चिदानंद भगवान ध्रुव आनंद का कंद प्रभु ! अतीन्द्रिय आनंद का तलस्पर्शी करने से उसका तलवा - तलवा माने ध्रुवता में स्पर्श करने से (धर्म होता है)। (तो) पर्याय स्पर्श करती है, उसकी तो ना कही। समझ में आया ? परंतु ध्रुव की ओर का लक्ष करने जो शक्ति उत्पाद - व्यय - ध्रुव है, तो प्रत्येक गुण की पर्याय आत्मा में उत्पन्न, पूर्ण से व्यय और ध्रुवता धारण करती है। आहाहा ! ऐसी बात है।

इस वक्त तो व्यवहार की तकरार (चलती है)। अरे...! प्रभु ! सुन तो सही। व्यवहार हो, परंतु अंतर निर्मल पर्याय उत्पन्न करने में वह कारण नहीं। समझ में आया ? सोनगढ़ के सामने यही तकरार है ना ? उपादान में निमित्त से होता है, निश्चय में व्यवहार से निश्चय होता है और पर्याय में क्रमवर्ती एकांत है, नियत है (ऐसा नहीं) (ऐसा लोग कहते हैं)। नियत (और) अनियत दोनों हैं। अरे...! ऐसा नहीं है, भाई ! समझ में आया ?

नियत-अनियत पंचास्तिकाय संग्रह की १५५ गाथा में आता है। नियत-अनियत - उसका दृष्टांत देते हैं। वहाँ नियत - अनियत की व्याख्या दूसरी है। नियत नाम उसके स्वभाव को नियत कहते हैं और विभाव को अनियत कहते हैं, ऐसा अर्थ है। यह सब चर्चा बाहर में विरोध में चली है ना ! (कहते हैं) देखो ! अनियत भी है। परंतु अनियत का अर्थ आगे-पीछे (हो) वह प्रश्न वहाँ नहीं है। व्यवहार है वह अनियत है। स्वभाव की जात नहीं ना ! अनियत का अर्थ आगे-पीछे है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? स्वभाव जो है यह नियत है। इसलिये उसकी पर्याय नाम आत्मा निज स्वभाव है और विभाव है वह अनियत है। निश्चय की पर्याय है इसलिये व्यवहार की पर्याय से विभाव - अनियत है। अनियत नाम आगे-पीछे होती है, ऐसा प्रश्न है नहीं। समझ में आया ?

४७ नय में नियत - अनियतनय आया है और काल और अकालनय आया है। यह सब नय एक समय में ४७ धर्म साथ में है। ४७ नय में ऐसा भी कहा है कि काल पर मोक्ष होगा और अकाल में भी (मोक्ष) होगा, ऐसा लिया है। तो उसका अर्थ ऐसा करते हैं कि देखो ! अकालनय से (भी होता है)। ऐसा अर्थ है ही नहीं। काल(नय में) तो जिस समय में केवलज्ञान और मुक्ति होनी है, वह उस समय होगी। परंतु अकाल का अर्थ - काल सिवाय स्वभाव और पुरुषार्थ (को) लेकर अकाल कहा है। समझ में

आया ? काल आगे-पीछे (हो जाय, ऐसा अर्थ नहीं है)। काल और अकाल, नियत और अनियत एक समय में ४७ धर्म साथ में है। (कोई धर्म) आगे - पीछे है नहीं - एक साथ में धर्म है। किसी को काल और किसी को अकाल, ऐसा है नहीं। स्वभाव और पुरुषार्थ की अपेक्षा से इसको ही अकाल कहते हैं। समझ में आया ? अरे...! सत्य की खबर नहीं है, आहाहा !

एक बार हम गजपंथा गये थे। वहाँ (एक श्वेतांबर साधु रहते थे और सोनगढ़ के साहित्य का वांचन करते थे)। तो नीचे उतरके आये (और) आकर वंदन करके ढ़ोक दिया। रात्रि का समय था तो बोल सके नहीं। दूसरे दिन शाम को हमें जाना था, वहाँ से निकल जाना था। (वे) आये नहीं थे तो कुछ बात नहीं हुई। इसलिये हम ऊपर गये। शाम को पाँच बजे निकलना था। तो ढ़ाई - तीन बजे बैठे थे। दरवाजा बंध (था)। हम गये तो दरवाजा खोल दिया। (खुद) नीचे उतर गये (और) हमको पाट पर बिठाया (और) वंदना किया। मुझे तो यह कहना था कि, ये कोई बात करते - करते कहते हैं कि कोई चीज़ उन्हें ख्याल में है ? यहाँ का वाचन करके कहते हैं कि उसे कोई यथार्थ का ख्याल है ? चार-पाँच जन बैठे थे। (हमने) प्रश्न किया कि `शास्त्र में काल से भी मोक्ष (होता है) और अकाल में (भी होता है) दोनों हैं। पर्याय में क्रमबद्ध में मोक्ष होता है। तो शास्त्र में काल और अकाल दोनों हैं' वे समझ गये थे (कि) मुझे अभी पकड़ेंगे। तो ऐसा बोल दिया कि `मैंने विचार किया नहीं।' समझ में आया ?

यहाँ शास्त्र में तो ऐसा कहते हैं कि, जिस समय उत्पाद होना है (वह) उस समय में होता है। समझ में आया ? अकालनय में भी जिस समय उत्पन्न होता है उसका अर्थ पुरुषार्थ और स्वभाव की अपेक्षा से अकालनय कहा है। आगे-पीछे होता है, वह अकाल का अर्थ है ही नहीं। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है यह। आहाहा ! परमात्मा ! पूर्ण काल स्वरूप (है)। एकबार यह भी कहा था कि, जो पूर्णकाल स्वरूप है वह स्वकाल है और उसकी पर्याय का उत्पन्न होना वह परकाल है। क्या कहा ? समझ में आया ? २५२ कलश में लिया था ना ? कलशटीका में २५२ कलश है। सबेरे चलता है ना ? उसमें ऐसा लिया है कि जो स्वद्रव्य है वह अभेद (है) और द्रव्य में विकल्प करना (कि) यह द्रव्य और यह गुण है, वह पर द्रव्य (कहा है)। और क्षेत्र में असंख्य प्रदेशी एकरूप है वह स्वक्षेत्र और क्षेत्र में भेद करना कि `ये प्रदेश और ये प्रदेश' वह परक्षेत्र (है)। और काल में त्रिकाली चीज़ वह स्वकाल (है) और पर्यायान्तर - अवस्थांतर (में) एक समय की अवस्था का भिन्न लक्ष करना वह परकाल (है)। समझ में आया ? सूक्ष्म बात (है), बापू ! मार्ग सूक्ष्म है, सूक्ष्म बहुत सूक्ष्म है। आहाहा ! विकल्प से चीज़ जानने में नहीं

आती। भले विकल्प से धारणा कर ले। समझ में आया ? कि ऐसा है और ऐसा है, परंतु वह विकल्प से जानने में आये ऐसी (चीज़) है ही नहीं। वह तो निर्विकल्प से जानने में आती है, आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो ऐसे कहा कि त्रिकाली द्रव्य को स्वकाल कहा और एक समय की अवस्था को परकाल कहा और पर का कार्य और अवस्था तो भिन्न रह गई। आहाहा ! क्योंकि भेद पर से भी दृष्टि उठाना है। भाई ! भेद (अर्थात्) द्रव्य का भेद, क्षेत्र का भेद, काल का भेद और भाव का भेद। निश्चय से तो जो द्रव्य है वही क्षेत्र है, वही काल है, वही भाव है। क्या कहा वह ? निश्चय में जो पर्याय के सिवा का द्रव्य कहा वही क्षेत्र है। वही द्रव्य है, वही क्षेत्र है, वही त्रिकाली काल है और वह त्रिकाल भाव है। ऐसे चार भेद भी नहीं (है)। पर्याय का भेद तो नहीं लेकिन चार के भेद भी नहीं। आहाहा ! ऐसी वस्तु में उत्पाद - व्यय - ध्रुव शक्ति पड़ी है, आहाहा ! सूक्ष्म बातें बहुत, बापू ! मार्ग ऐसा है।

(यहाँ) कहते हैं कि प्रत्येक गुण में उत्पाद - व्यय - ध्रुवपना है, आहाहा ! समझ में आये उतना समझो, वस्तु तो ऐसी गंभीर है। निर्विकल्प अनुभव (के) बिना उसका अनुभव होता नहीं। आहाहा ! क्योंकि वस्तु भेद रहित है, राग रहित है, पर्याय रहित है। फिर भी उत्पाद - व्यय - ध्रुव नाम की शक्ति प्रत्येक गुण में है। प्रत्येक गुण अपनी पर्याय में उत्पाद होता है और पूर्व की पर्याय का व्यय होता है तो इस गुण के कारण से (होता है)। अथवा इस शक्ति के रूप के कारण से (होता है)। पर की शक्ति के कारण से नहीं (होता)। आहाहा ! पर के व्यवहार के कारण से तो नहीं परंतु पूर्व की पर्याय है उसके कारण से नहीं। और एक शक्ति है वह दूसरी शक्ति के कारण से भी नहीं। ऐसी बातें हैं, भाई ! अरे...! लोगों की समझ में नहीं आये (और) बाहर की क्रियाकांड में जोड़ दिया। ये करो और ये करो। अरे...! वह तो बापू, अनंत बार किया है न प्रभु ! (ऐसे) शुभभाव अनंत बार किये हैं। 'मुनिव्रतधार अनंतबैर ग्रैवेयक उपजायो, पण आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो' भगवान ! आनंद के तलवे में पड़े हैं भगवान ! आहाहा ! जिसके तलवे में आनंद है। जैसे समुद्र के तलवे में मोती आदि पड़ा है. समुद्र में कितने मोती टूट गये हैं। सोना, चांदी गुम गया हो, वह सब नीचे समुद्र में पड़ा है। समझ में आया ? समुद्र में अनंतकाल हुआ न ? तो अंदर कोई चांदी का डूब गया हो, ऐसी चांदी भी अंदर पड़ी है, सोना नीचे पड़ा है, मोती नीचे पड़ा है। बहुत पड़ा है। समझ में आया ? परंतु अंदर डुबकी मारकर (निकालना पड़े)। (डुबकी मारनेवाले) साँस (लेने के लिये) नली रखते हैं। (मोती) लेने के लिये अंदर डुबकी मारे। साँस लेने की नली में हवा आये

ऐसी नली रखते हैं, तो ही हवा आ सकती है। (नहीं तो) वहाँ तो हवा आने की कोई ज़गह नहीं है। ऊपर से हवा और अंधेरा हो तो दिखने में आये नहीं; तो वहाँ अंदर में प्रवेश भी करते हैं। तो (जैसे) देखते हैं कि, `ये रहा मोती' तो मोती उठा लेते हैं। वैसे भगवान के तलवे में तो अनंत आनंद आदि मोती पड़े हैं, समझ में आया ? आहाहा ! अनंत ज्ञान है, अनंत आनंद है, अनंत शांति है, अनंत प्रभुता है, अनंत स्वच्छता है, आहाहा ! प्रत्येक शक्ति उत्पाद - व्यय - ध्रुव से कार्य करती है। उस उत्पाद के लिये दूसरे कारण तो नहीं परंतु दूसरी शक्ति और दूसरी पर्याय भी कारण नहीं। बहुत साल से तो सुनते हैं। ४३ वर्ष तो यहाँ हुए ४३ चोमासा - यहाँ हुआ है प्रभु ! एकबार सुन नाथ ! तेरा आनंद का और सम्यग्दर्शन की पर्याय का उत्पाद् उस-उस गुण में वह-वह उत्पाद का काल है तो उत्पन्न होता है। आहाहा ! और वह भी उत्पाद होता है (वह) द्रव्य की दृष्टिवंत को ही निर्मल उत्पाद् होता है। समझ में आया ? पर्याय के लक्ष से पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा है नहीं। आहाहा !

श्रोता : मोक्षमार्ग प्रकाश में तो ऐसा लिखा है कि पुरुषार्थ से उत्पन्न होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ (है) परंतु प्रत्येक में वीर्य शक्ति भी है ना ? कहा न ? वीर्य शक्ति भी है तो अपने से पुरुषार्थ चलता है। इसमें यह पुरुषार्थ है। अरे...! इसमें तो है परंतु परमाणु में भी वीर्य शक्ति है। इसकी शक्ति है। परमाणु में वीर्य नाम (की) शक्ति है। वह वर्ण, गंध, रस, स्पर्शपणे १-२-३ आदि त्रिकालपने परिणमते हैं, वह अपनी शक्ति से परिणमते हैं, पर के कारण से नहीं, आहाहा ! समझ में आया ?

वह प्रश्न हुआ था ना ? यह स्कंध है न ? (उसमें) भिन्न परमाणु हैं वह सूक्ष्म रहा। यहाँ आया तो स्थूल हो गया। तो देखो ! निमित्त से हुआ (ऐसा कहते हैं)। उस ओर से ऐसा प्रश्न आया था। (लेकिन) ऐसा है नहीं। उस परमाणु में भी अपनी शक्ति से स्थूलरूप होने की योग्यता से उत्पन्न हुई है। निमित्त के कारण से नहीं। परमाणु एक है यह सूक्ष्म है। यहाँ सूक्ष्म नहीं रहा। परंतु सूक्ष्म न रहा, वह स्थूलरूप उत्पन्न होने की शक्ति से स्थूल हुआ है, आहाहा !

वह प्रश्न तो उस दिन तीसरी साल में चला था। तभी विद्वान आये थे। (कहते थे) कि परमाणु में भी जो दो गुण चिकाश और दूसरा परमाणु (में) चार गुण की पर्याय की चिकाश है तो दोनों मिलकर चार गुण हो जाते हैं। चार गुण हो जाता है, परंतु वह अपनी पर्याय की योग्यता से उस समय की उत्पाद की योग्यता से यह हो जाता है। निमित्त आया तो चार गुण चिकाश हुई, ऐसी वस्तु है नहीं, भाई ! आहाहा ! देखो ! गज़ब किया है ना !!

प्रत्येक शक्ति में उत्पाद - व्यय - ध्रुव शक्ति का रूप है। और उस समय जो उत्पाद होनेवाला है, वह उत्पाद होगा। उस समय जिसका व्यय है उसका व्यय होगा और उस समय सदृश ध्रुव तो कायम है। आहाहा ! यह शक्ति का वर्णन सर्वज्ञ के सिवा कहीं है नहीं। ओघे-ओघे बात करे कि आत्मा निर्मल है, शुद्ध है, सर्व व्यापक है उसमें क्या ?

श्रोता : ओघे - ओघे माने (क्या) ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ओघे - ओघे नहीं समझे ? ओघे-ओघे माने जाना है यहाँ ओर दृष्टि रह गयी दूसरी ओर (और चले) जाते हैं। उसे ओघे-ओघे गये ऐसा कहते हैं। बिना खबर चलते हैं, खबर नहीं। आदमी जाता है न ऐसे ? जाना हो पश्चिम परंतु धुन में ही धुन में चला जाय दक्षिण में। (बाद में पता चले) अरे...! ये क्या ? मुझे इस ओर जाना था ना ? इस प्रकार ओघे-ओघे भान बिना (चलते हैं)। वैसे यह भान बिना आत्मा की बातें करे, ये सब झूठ है।

यह `**उत्पाद - व्यय - ध्रुव युक्तं सत्**' तत्त्वार्थसूत्र में आया न ? उस शक्ति का यह वर्णन है। `**उत्पाद - व्यय - ध्रुव युक्तं सत्**' जो तत्त्वार्थ सूत्र में आया है। उस उत्पाद - व्यय - ध्रुव की यहाँ बात है। प्रत्येक गुण में, प्रत्येक द्रव्य में, परमाणु में भी ऐसी शक्ति है। आहाहा ! यहाँ तो आत्मा की बात चलती है। क्योंकि आत्मा (को) जाने तो परमाणु को यथार्थ जाना। समझ में आया ?वह अपने आ गया है। कलशटीका में दो बात आ गई थी कि, पानी शीतल है और उष्णता अग्नि की है। किसको उसका ज्ञान होता है ? निज स्वरूपग्राही ज्ञानवाले को (ऐसा) ज्ञान होता है। क्या कहा ? मोक्षमार्ग प्रकाश में तीन बोल आया न ? कारण विपर्यास, स्वरूप विपर्यास और भेद विपर्यास। भूलवाले को तीन में से एक बोल तो होता ही है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि (पर्याय) अपने से उत्पन्न हुई, पर से नहीं, आहाहा ! और अपना निज स्वरूप का ज्ञान करे तो पर का ज्ञान - परप्रकाशक ज्ञान यथार्थ होता है, आहाहा ! दो बात ली थी ना ? कि एक तो जल ठंडा है और अग्नि के निमित्त से उष्ण हुआ, ऐसा ज्ञान किसको होता है ? कि जिसको निज स्वरूप का ज्ञान होता है, उसको व्यवहार का ज्ञान यथार्थ होता है, आहाहा ! और वहाँ एक बात ऐसी ली है कि तरकारी है न ? तरकारी - सब्जी। तो सब्जी में खारापना यह नमक है और सब्जी खारापना से भिन्न है। इसका ज्ञान किसको होता है ? आहाहा ! निज स्वरूपग्राही (ज्ञान) वाले को ज्ञान होता है। जिसको अपना स्वप्रकाशक भगवान आत्मा ! उसका ज्ञान का ज्ञान किया उसको यह सब्जी खारी नहीं (लेकिन) नमक खारा है, खारा (है वह) नमक है (ऐसा)

उसका भेद का ज्ञान निज स्वरूपग्राही (ज्ञानवाले को) ही होता है। जिसको निज स्वरूप का ज्ञान नहीं है उसको व्यवहार का ज्ञान सच्चा नहीं होता (है)। कुछ-कुछ भी कारण विपर्यास, भेद विपर्यास, स्वरूप विपर्यास तीन में से कोई भूल तो रह जाती है। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि ``**क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है ऐसी उत्पाद - व्यय - ध्रुवत्वशक्ति**'' क्रमवृत्तिरूप पर्याय उत्पाद - व्ययरूप (है) (और) अक्रमवृत्तिरूप गुण ध्रुवरूप (है)। यह अक्रम माने पर्याय अक्रम नहीं बल्कि गुण अक्रम है। समझ में आया ? वैसे तो (समयसार) कर्ता-कर्म (अधिकार में) आता है। क्रम-अक्रम पर्याय दोनों आती हैं। कौन सी गाथा ? ३८ (गाथा में आता है)। क्रम-अक्रम दो पर्याय चलती हैं। उसका अर्थ क्या ? कि गति एक के बाद एक होती है तो उसे क्रम कहते हैं और राग - कषाय - योग एक साथ में होता है तो (उसे) अक्रम कहते हैं। एक साथ में हैं। जोग है, राग है, लेश्या है। एक समय में है ना ? यहाँ तो इसमें तीन बोल लेना है। जोग है उसी समय लेश्या है, उसी समय कषाय है, उसी समय मतिज्ञान है। एक साथ में है तो अक्रम कहने में आया। अक्रम यानी आगे - पीछे है वो प्रश्न वहाँ है नहीं। एक साथ है तो अक्रम कहा और गति है तो एक के बाद एक होती है। नरक के बाद पशु (वैसे)। तो वह क्रमवर्ती गति कहने में आयी। समझ में आया ? आहाहा ! अक्रम शब्द खाणिया चर्चा में आया है। (और कहते हैं) कि `देखो ! यहाँ अक्रम कहा है।' वहाँ अक्रम किसको कहा ?

श्रोता : गुणस्थान क्रम से होते हैं और मार्गणा एं अक्रम से होती हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक-एक समय की पर्याय गति है, ज्ञान है, दर्शन है, एक साथ में है। ऐसे (कहना है)। बस समझ में आया ? यह तो हमें संक्षिप्त में लेना है कि जोग है उसी समय लेश्या है, लेश्या है उसी समय कषाय है, तो उसे अक्रम कहने में आता है। वहाँ मार्गणा में तो फिर ऐसे लिया है भव्य - अभव्य का भी निषेध कर दिया है। आत्मा भव्य - अभव्य नहीं है। १४ बोल है ना ? आखिर का बोल - अहारक - अनअहारक, समकित का भेद, दर्शन का भेद, ज्ञान का भेद, गति का भेद। बाद में कहा है कि भवि - अभवि भी नहीं (है)। आत्मा में भवि - अभवि मार्गणा है ही नहीं। अक्रम होता है उसका वहाँ निषेध कर दिया है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बातें (हैं)। वह १८ वीं शक्ति हुई।

अब १९ वीं शक्ति का नाम परिणाम शक्ति है। उसका नाम अस्तित्वमयी परिणाम शक्ति है। आहाहा ! निश्चय से तो जैसे उत्पाद - व्यय - ध्रुव कहा वैसे `**सत् द्रव्य लक्षणं**'

तत्त्वार्थसूत्र में आया ना ? `**उत्पाद - व्यय - ध्रुव युक्तं सत्**' एक बात (हुई)। `**सत् द्रव्य लक्षणं**' दूसरी (बात हुई)। तो सत् के परिणाम की व्याख्या करके अस्तित्वमयी परिणाम शक्ति का वर्णन है, आहाहा ! क्या कहा देखो ?

(अब) १९ वीं शक्ति। ``**द्रव्य के स्वभावभूत...**'' आत्मा के द्रव्य से उसका स्वभावभूत। ``**...ध्रौव्य - व्यय - उत्पाद से...**'' पहले में उत्पाद - व्यय और ध्रुव कहा था। पहले उत्पाद् - व्यय लिया था बाद में ध्रुव लिया। इसमें पहले ध्रुव लिया। समझ में आया ? स्वभाव है न उसका तो ध्रुव लिया। ध्रुव और व्यय - अभाव होता है न ? इसलिये व्यय पहले लिया। उसमें तो उत्पाद पहले लिया और उत्पाद - व्यय और ध्रुव ऐसा लिया। उत्पन्न होता है, व्यय होता है और ध्रुव (रहता है)। यहाँ तो ध्रुव, व्यय और उत्पाद ऐसा लिया। आहाहा ! एक शब्द फ़र्क है उसमें हेतु है कि स्वभावभूत ध्रुव पहले सिद्ध करना है। तीनको आलिंगन करते हैं। यहाँ ऐसा लेते हैं। समझ में आया ? थोड़ा सूक्ष्म तो है भाई ! क्या कहा ? कि ``**द्रव्य के स्वभावभूत ध्रौव्य - व्यय - उत्पाद् से...**'' ध्रौव्य - कायम रहनेवाली चीज़। व्यय - पूर्व की पर्याय का अभाव और नयी पर्याय का उत्पाद्। उसको ``**...आलिंगित (- स्पर्शित)**'' द्रव्य तीनको आलिंगन करते हैं। यह परिणाम शक्ति तीन को आलिंगन करती है। क्या कहा ?

श्रोता : उत्पाद - व्यय - ध्रुव तीनों को आलिंगन करती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों को (आलिंगन करती है)। वही कहा न ? आलिंगन का अर्थ पर्याय द्रव्य को स्पर्श करती है। ऐसा नहीं. तीन को आलिंगन करती है। तीन में अस्तित्वपना है। तीनों होकर अस्तित्व है, ऐसे (कहना है)। आगे अस्तित्व लिया है।

देखो ! ``**द्रव्य के स्वभावभूत...**'' यह तो वीतराग का मार्ग, प्रभु ! बहुत सूक्ष्म (है)। बहुत ध्यान रखे तो उसको पकड़े। ऐसी-ऐसी (बात है)। पर की दया पालो और व्रत करना और भक्ति करना, पूजा करना, वह धर्म है (ऐसा लोग मानते हैं)। अरे...! वह तो अधर्म है। पूरी दुनिया अनादि से (ऐसा मानती है)। आहाहा ! अंदर शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा ! यहाँ यह तीनों उत्पाद - व्यय - और ध्रुव पवित्र हैं। यह पवित्र की बात है, राग की बात (नहीं)। ध्रुव, व्यय और उत्पाद ऐसा शब्द लिया है। पहले में उत्पाद - व्यय और ध्रुव ऐसा लिया था। क्योंकि पर्याय (की) उत्पत्ति (हुई) व्यय हुआ और ध्रुव (ऐसे ही रहा)। यहाँ तो पहले स्वभावभूत ध्रुव लिया। आत्मा के स्वभावभूत - (ऐसा लिया है)।

ऐसा यह सब सूक्ष्म कातना ! कातना समझे ? यह धागा निकलता है ना ? सुतर। कोई २० नंबर का, कोई ४० नंबर का, कोई ६० नंबर का।

श्रोता : आज तो १२० नंबर (का) है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (इसकी) ज्यादा कीमत है। ऊँची चीज़ के धागे की कीमत भी ज्यादा होती है ना ? १२० नंबर का धागा बहुत पतला (होता है)। समझ में आया ? आहाहा ! और चांदी का भी धागा निकलता है। चांदी है ना ? चांदी। उसको लोहे का छिद्र (होता है) उसमें खींचते हैं। लोहे के छिद्र में खींचकर पतला बनाते हैं। सब देखा है न ! यहाँ खींचकर नहीं (निकालते हैं) यहाँ तो यथार्थ (जो) है, ऐसा बताते व हैं।

श्रोता : आज तो आप खींचकर निकालते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिये तो कहा, खींचकर नहीं, इसमें यथार्थ है ऐसा निकालते हैं। आहाहा ! पंडितजी ऐसा कहते हैं कि हम तो इसमें से सूक्ष्म बात निकालते हैं। बात तो सच्ची है, परंतु खींच करके नहीं।

श्रोता : जो है ऐसा कहते हैं, न हो वह क्या कहें ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अंदर चीज़ ऐसी है, आहाहा !

भगवान आत्मा द्रव्य ! ध्रौव्य - व्यय और उत्पाद तीनों को आलिंगन करते हैं। समयसार तीसरी गाथा में लिया न ? कि प्रत्येक द्रव्य अपने धर्म को चुंबते हैं। चुंबते है कहो कि स्पर्श करते (हैं) कहो, (एक ही बात है)। पर द्रव्य को तो छूते ही नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? लोग चिल्लाते हैं ना ? कर्म के कारण से होता है। परंतु कर्म के उदय को तो आत्मा कभी छूता ही नहीं। समझ में आया ?

वह टीका बहुत चली थी। एक विद्वान यहाँ आये थे। वैसे नरम थे, परंतु पुरानी रुढ़ि की बहुत पकड़ थी, तो यहाँ तो कबूल करते थे। देखो ! `परसंग एव' शब्द है। `परसंग एव' - (परंतु) `पर एव' ऐसे नहीं। वह तो पर का संग करता है तो राग होता है। `पर एव' (माने) पर से राग होता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? अपने असंग तत्त्व को छोड़कर पर का संग करता है - संबंध करता है तो विकार होता है। पर से विकार होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? विकार जो होता है वह अपने से, अपने कारण से (होता है)।

ईश्वरनय लिया है ना ? ४७ नय में ईश्वरनय है। ईश्वरनय का अर्थ ऐसा लिया है कि, जैसे धावमाता के पास बालक को पराधीन होकर (दूध पीना पड़ता है), वह (स्वयं) पराधीन होता है। धावमाता के पास दूध पिलाते हैं ना ? वह पराधीन (होता है)। वैसे आत्मा में ऐसी योग्यता है कि निमित्त के अधीन होने की शक्ति है। निमित्त आधीन कराते हैं, ऐसा नहीं।

श्रोता : अधीन होने की भी शक्ति है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, (ऐसी भी शक्ति है)। अपनी योग्यता रूप ऐसा ईश्वरनय है। ४७ नय में ईश्वरनय - अनीश्वनय (आया है)। समझ में आया ? आहाहा ! यहाँ तो एक-एक नय का वर्णन हो गया है। व्याख्यान हो गये हैं। ज्ञेय-ज्ञायक स्वभाव ज्यादा स्पष्ट किया था न ? विरोध बहुत आया न !

श्रोता : पर्याय नयी-नयी है तो (खुलासा भी अधिक आये ना) ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय नयी है और विरोध बहुत आया तो उसका खुलासा स्पष्टीकरण (भी) बहुत आता है।

(कोई विद्वान आये थे) उन्होंने कहा था कि, मेरा नाम कहीं देना नहीं। (परंतु) वह तो अपना काम नहीं है। यह तो एक जानने की बात (है)। किसी व्यक्ति के प्रति (द्वेष करना) वह अपना काम नहीं है। योग्यता हो (और) सुनने आये तो समझे ना।

श्रोता : आप बुलाते नहीं हो ना।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो सच कहते हो। बुलाने की क्या ज़रुरत है ? आपकी बात झूठी है, उस कारण से तो (आप) यहाँ आते हो। हमारा सच्चा है और आपका झूठ है। इस कारण से तो आते हैं। समझने को (थोड़ी) कोई आता है ?

श्रोता : वह तो नक्की कर लिया है (कि) हम सच्चे हैं और आप झूठे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो नक्की करके आते हैं। (वह ऐसा कहे कि) हमें वीतराग भाव से स्पष्टीकरण समझना है, ऐसा कहे तो तो (बात बराबर है)। (लेकिन) यह रीत अनादि से है, कोई नवीन नहीं है।

यहाँ तो प्रभु कहते हैं कि, तेरी चीज़ में एक अस्तित्वमात्रमयी परिणाम शक्ति है। चिद्विलास में परिणाम का बहुत वर्णन किया है। परिणाम शक्ति का चिद्विलास में बहुत वर्णन (किया) है। उसमें परिणाम शक्ति का बहुत वर्णन किया है कि प्रत्येक गुण का परिणाम होने की उत्तर अस्तित्वमयी शक्ति है। बहुत वर्णन किया है। दो पन्ने में किया है। यहाँ तो सब देखा है ना ! हज़ारों शास्त्रों (देखे हैं)। श्वेतांबर के करोड़ों श्लोक (देखे हैं)। यहाँ तो पूरी जिंदगी (इसमें गयी है)। चिद्विलास में वह है। परिणाम शक्ति का वर्णन बहुत है। इस शक्ति का वर्णन (बहुत है)।

प्रत्येक पदार्थ की - आत्मा की प्रत्येक पर्याय अस्तित्वमयी परिणाम है। अस्तित्वमयी परिणाम है। शक्ति का अस्तित्व ध्रुव है और पर्याय में व्यय - उत्पादरूपी परिणमन है, वह परिणाम शक्ति के कारण से है। आहाहा ! समझ में आया ? १८ और १९ (शक्ति में) फ़र्क क्या है ? यहाँ पहले ध्रुव लिया है और उसमें पहले उत्पाद् लिया है। उतनी

पर्याय की प्रधानता से कथन करते हैं। '**उत्पाद - व्यय - ध्रुव युक्तं सत्**' यह तत्त्वार्थ सूत्र की व्याख्या (है)। यहाँ तो ध्रुव, व्यय और उत्पाद। इस प्रकार से (लिया है)। उसमें उत्पाद् पहले, बाद में व्यय, (और उसके) बाद ध्रुव (लिया है)। व्यय के बाद उत्पाद् ऐसा (है)। देखो ! है ना ? ध्रौव्य - व्यय और उत्पाद (ऐसे है)। आहाहा ! परिणमन करने में उसकी ध्रुव शक्ति और परिणाम व्यय और उत्पाद से परिणमित होता है। ऐसी एक शक्ति है। पर्याय में ऐसी परिणमन की शक्ति है, उस कारण से परिणमन करती है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी सब सूक्ष्म बातें (हैं) !

"**द्रव्य के स्वभावभूत ध्रौव्य - व्यय - उत्पाद से आलिंगीत** (- **स्पर्शित**) **सदृश्य और विसदृश...**" ध्रुव को सदृश्य कहा। उत्पाद् - व्यय को विसदृश कहा। क्या कहा ? जो ध्रुव है वह सदृश्य है, हमेशा एकरूप रहनेवाला (है) और उत्पाद - व्यय विसदृश्य है। क्यों ? कि उत्पाद् - भाव, व्यय - अभाव - भाव-अभाव इसका नाम विसदृश्य है। उत्पाद - व्यय (उसमें) एक का अभाव, एकका भाव - वह विसदृश्य हुआ न ? और ध्रुव है वह सदृश्य है। त्रिकाल सदृश्य है। एकरूप रहनेवाले को सदृश्य कहते हैं। और व्यय और उत्पाद दोनों का भाव विसदृश्य है। एक का अभाव होना और एक का भाव होना। व्यय का अभाव होना उत्पाद् का भाव होना - वह विसदृश्य है। आहाहा ! ऐसी बात है।

धवल में भी आया है। धवल में सदृश - विसदृश आया था। अपनी बात हुई थी। उत्पाद् व्यय (और) व्यय - उत्पाद एक सरीखा नहीं। विसदृश है। क्योंकि पूर्व की पर्याय का अभाव है और उसकी समय उत्पाद् है तो एक अस्ति स्वरूप है और एक अभाव स्वरूप है। इस प्रकार उत्पाद - व्यय को विसदृश कहने में आता है। (दोनों में) एकरूपता नहीं। विरूपता (है)। समझ में आया ? ध्रुव को सदृश कहते हैं। सामान्य कहो, ध्रुव कहो, अभेद कहो, एक कहो, त्रिकाली कहो वह सब सदृश है। और पर्याय में - एक समय की अवस्था में व्यय - उत्पाद है (वह) विसद्दश है। आहाहा ! धवल में आया है। वहाँ विरुद्ध - अविरुद्ध है। धवल में उत्पाद - व्यय को विरुद्ध कहा है और ध्रुव को अविरुद्ध कहा है। ऐसी बात है। यहाँ सदृश - विसदृश कहा। वहाँ विरुद्ध - अविरुद्ध कहा। आत्मा में ध्रुवता (है) यह अविरुद्ध है और उत्पाद् - व्यय विरुद्ध है। क्योंकि एक उत्पाद और एक व्यय (यह) विरुद्ध है।

समयसार की तीसरी गाथा में भी आया है ना ? वहाँ तीसरी गाथा में विरुद्ध - अविरुद्ध शब्द पड़ा है। विरुद्ध - अविरुद्ध से सारा जगत टिक रहा है। उत्पाद - व्यय से और ध्रुव से सारा जगत अपने से टिका रहा है। आहाहा ! समझ में आया ? भाई !

तीसरी गाथा में है। वहाँ विरुद्ध - अविरुद्ध शब्द हैं, धवल में विरुद्ध - अविरुद्ध शब्द हैं। यहाँ सदृश - विसदृश शब्द हैं। आहाहा ! आचार्यों ने तो गज़ब काम किये हैं !! दिगंबर संतों ने एक-एक बात को कितनी छेद - भेद कर भिन्न करके बतायी है !! आहाहा !

(यहाँ) कहते हैं कि द्रव्य के स्वभावभूत ``**ध्रौव्य - व्यय - उत्पाद...**'' स्वभावभूत। देखा ? तीनों उसका स्वभाव है। `**सत् द्रव्य लक्षणं**' में आया न ? `**उत्पाद - व्यय - ध्रुव युक्तं सत्**' वह पहली (१८ वीं शक्ति में) गया। और `**सत् द्रव्य लक्षणं**' वह दूसरी (१९ वीं) शक्ति में आया। `**सत् द्रव्य लक्षणं**' तो सत् में तीन आया। ध्रुव - व्यय और उत्पाद। उससे ``**...आलिंगीत (- स्पर्शित) सदृश और विसदृश जिसका रूप है...**'' आहाहा ! व्यय और उत्पाद यह विसदृश है। विसदृश नाम एकरूप नहीं (है) और ध्रुव सदृश है, एकरूप है, आहाहा ! ऐसा मार्ग है। यह एकदम समझे बिना, तत्त्व की दृष्टि बिना उसको धर्म हो जाय (यह बात कभी बननेवाली नहीं)। आहाहा !

भाई ! यह तो जन्म-मरण रहित होने की चीज़ है। जन्म-मरण और जन्म-मरण का कारण वह तो यहाँ लिया ही नहीं। क्योंकि शक्ति कोई ऐसी नहीं कि विकार करे। शक्ति कोई ऐसी नहीं कि भवभ्रमण करावे। समझ में आया ? आहाहा ! शक्ति और शक्तिवान तो पवित्र परमात्मस्वरूप भगवान (स्वरूप) बिराजमान है। आहाहा ! इस परमात्मस्वरूप में दृष्टि देने से जो विसदृश व्यय और उत्पाद होता है वह भी निर्मल होता है। यहाँ उत्पाद् - व्यय जो होता है वह निर्मल की बात है, मलिनता की बात नहीं। विसदृश और सदृश (उसमें) विसदृश में क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती का समुदाय वह आत्मा है, ऐसा कहा। यहाँ तो पर्याय सहित आत्मा लेना है। अकेला द्रव्य नहीं (लेना है)। समझ में आया ?

ध्यान रखना ! यह बात कोई सूक्ष्म है। दूसरा क्या हो सकता है ? बापू ! यहाँ पर्याय सहित का द्रव्य लेना है। नियमसार शुद्धभाव अधिकार की ३८ गाथा में तो त्रिकाली को ही आत्मा कहा। पर्याय बिना की त्रिकाली चीज़ वह निश्चय आत्मा है। पर्याय भले निर्मल हो तो भी वह व्यवहार आत्मा है।

श्रोता : आप तो बहुत बार कहते हैं कि वास्तविक आत्मा वही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय से वह वास्तविक आत्मा है। यहाँ तो निश्चय है उसका भान सहित की यहाँ बात करना है। अकेला निश्चय - निश्चय (करे) ऐसा नहीं। (निश्चय का) भान हुआ उस (भान) सहित की यहाँ बात करना है। समझ में आया ? कारण जीव है, कारण परमात्मा है - (यह) है तो सही। परंतु वह प्रतीत और ज्ञान में आया उस सहित की यहाँ बात करनी है। समझ में आया ? प्रतीत और ज्ञान में न आया उसको ध्रुव का कहाँ है ? आहाहा ! विशेष कहेंगे.....

प्रवचन नं. १९

शक्ति-१९, २०, २१ दि. २९-०८-१९७७

द्रव्यस्वभावभूतध्रौव्यव्ययोत्पादालिंगितसदृशविसदृशरूपैकास्तित्वमात्रमयी परिणामशक्तिः ।।१९।।

कर्मबन्धव्यपगमव्यंजितसहजस्पर्शादिशून्यात्मप्रदेशात्मिका अमूर्तत्वशक्तिः ।।२०।।

सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामकरणोपरमात्मिका अकर्तृत्वशक्तिः ।।२१।।

समयसार, शक्ति का अधिकार चलता है। १९ वीं शक्ति चली न ? १९ वीं शक्ति चलती है। शक्ति अर्थात् आत्मा में स्वभावरूप भाव (है), उसको यहाँ शक्ति कहते हैं। आत्मा गुणी है और यह शक्ति है वह गुण है। यहाँ अस्तित्वमयी परिणाम शक्ति का वर्णन है। किसी को ऐसा लगे कि, पहले १८ वीं (शक्ति) आई, वैसी (ही) १९ (वीं शक्ति है)। (लेकिन) ऐसा नहीं है। (दोनों में) फ़र्क है।

``**द्रव्य के स्वभावभूत...**'' (अर्थात्) वस्तु का स्वभाव ``**...ध्रौव्य, उत्पाद, व्यय, उत्पाद से आलिंगित (- स्पर्शित) सदृश और विसदृश...**'' (१८ वीं शक्ति में) उत्पाद् - व्यय में सदृश और विसदृश (शब्द) नहीं आया था। जो गुण है वह सदृश है और पर्याय है यह विसदृश है। गुण है यह अविरुद्ध (स्वभावी) है और पर्याय विरुद्ध (स्वभावी) है। माने क्या ? गुण है यह अविरुद्ध नाम त्रिकाल एकरूप भाव है और पर्याय में उत्पाद् - व्यय, उत्पाद् - व्यय दो हैं। एक भाव और एक अभाव (ऐसे) दोनों विरुद्ध (स्वभावी) हैं। फिर भी यह उसका स्वभाव है।

यहाँ अस्तित्वमयी परिणमन शक्ति (चलती है)। शिष्य का प्रश्न था कि, यह परिणमन शक्ति जो है तो उसका जो पर्याय में अस्तित्वमयी परिणाम आता है, यह परिणमन शक्ति से परिणमन आता है ? या द्रव्य के परिणमन से आता है ? क्या कहा ? समझे ? क्या कहते हैं सुनो !

श्रोता : चिद्‌विलास में कहते हैं कि, द्रव्य परिणमन करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य ही परिणमता है, यहाँ ये लेना है। वस्तुस्थिति ऐसी है। गुण परिणमता है इसलिये (गुण के) आश्रय से पर्याय परिणमती है, ऐसा नहीं। द्रव्य परिणमता है इसिलये पर्याय उठती है। समझ में आया ? क्योंकि गुण के आश्रय से गुण नहीं। परंतु गुण द्रव्य के आश्रय से हैं। जो अस्तित्वमयी परिणमन उठता है - वह द्रव्य में से उठता है। शक्ति का वर्णन किया कि, ध्रौव्य, व्यय, उत्पाद् तीनों से आलिंगीत सदृश - विसदृश (जिसका रूप) है। उत्पाद् - व्यय यह विसदृश है। उत्पाद् - व्यय (है, यह) भाव - अभाव है, तो इस अपेक्षा से विरुद्ध भी कहा। समयसार की तीसरी गाथा में विरुद्ध कहा। विरुद्ध - अविरुद्ध से सारा जगत टिक रहा है। तीसरी गाथा में ऐसा लिखा है। सारा जगत विरुद्ध - अविरुद्ध से (टिक रहा है) अर्थात् सर्व जगत अपने गुण और उत्पाद् - व्ययरूप विरुद्ध (भाव से) सारा जगत टिक रहा है। यह तीसरी गाथा में है। और धवल में भी ऐसा है कि, पर्याय (है, यह) विरुद्ध है और गुण है यह अविरुद्ध है, आहाहा ! समझ में आया ?

(यहाँ) कहते हैं कि, तीनों से ``**...आलिंगीत (- स्पर्शिता), सदृश और विसदृश जिसका रूप है ऐसे एक अस्तित्वमात्रमयी परिणामशक्ति।**'' तो यह परिणमन जो उठता है, वह गुण से उठता है कि द्रव्य से उठता है ? प्रश्न ऐसा है। समझ में आया ? गुण की परिणति (ऐसा) कहते हैं। पर्याय उत्पाद् - व्यय (रूप) है। वह ध्रुव - गुण की उत्पाद् - व्यय (रूप) पर्याय है, तो यह गुण की परिणति गुण से उठती है ? कि यह परिणति द्रव्य से उठती है ? तो कहते हैं कि, (परिणति) गुण से नहीं (उठती)। गुण - द्रव्य की परिणति होने में गुण की परिणति साथ में उठती है। परंतु द्रव्य से गुण परिणति उठती है, आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म है, भाई ! यह तो तत्त्वज्ञान का विषय है। समझ में आया ?

यह द्रव्य जो वस्तु अनंत शक्ति का पिंड है, (वह) द्रव्य स्वतः ही परिणमता है। उसमें गुण परिणति होती है। तत्त्वार्थसूत्र शास्त्र में भी ऐसा लिखा है कि, ``गुण पर्यायवत् द्रव्यम्'' लिया है। `पर्यायवत् गुण' ऐसा नहीं लिया है। `गुण पर्यायवत् द्रव्यम्' अनंत शक्ति और उसकी पर्याय - यह (बात) पहले इसमें आ गई (है)। क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती

गुण (दो) का समुदाय होकर सारा आत्मा है। अरे...! ऐसी बातें (हैं)। समझ में आया? क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती गुण इन दोनों का समुदाय यह आत्मा है; तो इसका अर्थ यह हुआ कि, ``गुणपर्यायवत् द्रव्यम्' कहा। लेकिन `पर्यायवत् गुण' ऐसा नहीं कहा। समझ में आया ? तत्त्वार्थसूत्र में `गुणपर्यायवत् द्रव्यम्' ऐसा शब्द है, आहाहा ! गुण और पर्याय, क्रम और अक्रम यह बोल पहले आया था। आहाहा ! वस्तु का स्वरूप तो देखो ! वस्तु के स्वरूप की खबर नहीं और उसको धर्म हो जाये, (यह बात कभी हो नहीं सकती)। समझ में आया ?

यहाँ संतों कहते हैं वही परमात्मा भी कहते हैं। समझ में आया ? कहते हैं कि, तीनों को (ध्रौव्य - व्यय - उत्पाद् से आलिंगीत - स्पर्शित कहा है)। पहले में (१८ वीं शक्ति में) उत्पाद् - व्यय और ध्रुव आया था। आलिंगीत और सदृश - विसदृश नहीं आया था। और १९ वीं शक्ति में) ध्रुव - व्यय - उत्पाद् (ऐसे लिया है)। उसमें (१८ वीं शक्ति में) उत्पाद् - व्यय और ध्रुव से ऐसा आया था। यहाँ ध्रुव से लिया है। त्रिकाली अस्तित्व है न ? (इसलिये ऐसे लिया है)। ध्रुव - व्यय और उत्पाद् (ऐसे लिया)। क्योंकि (पहले) अभाव होता है न ? अभाव होता है तो पहले लिया और बाद में भाव को पीछे लिया। ध्रुव - व्यय - उत्पाद् तीनों को आलिंगीत करती है, - ऐसी परिणाम शक्ति है। परंतु इस परिणाम शक्ति में उत्पाद् - व्यय का परिणमन जो उठता है, यह शक्ति में से नहीं उठता है। इसलिये ऐसा कहा कि, शक्ति और शक्तिवान का भेद दृष्टि में से छोड़ दे ! समझ में आया ?

भेद से अभेद को दिखाते हैं, लेकिन भेद और अभेद ऐसा दो का लक्ष छोड़ दे अभेद एकरूप चीज़ है, आहाहा ! अबद्धस्पृष्ट, सामान्य वस्तु जो ध्रुव है उस पर दृष्टि देने से, अभेद पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन होता है। शक्ति पर दृष्टि होने से (सम्यग्दर्शन) नहीं (होता)। क्योंकि शक्ति का परिणमन द्रव्य के परिणमन में उठता है। समझ में आया? इसमें लादी के (व्यापार में) कुछ सूझे ऐसा नहीं है।

श्रोता : लादी में भी परिणमन तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लेकिन वह परिणमन क्यों होता है ? यह परिणमन शक्ति है इसलिये परिणमन होता है, ऐसा नहीं। द्रव्य का परिणमन होने से गुण का परिणमन साथ में अविनाभावीरूप से होता है, आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा करके द्रव्य पर दृष्टि करानी है। समझ में आया ? द्रव्य पर दृष्टि होने से सार द्रव्य अनंत शक्ति का गुणरूप स्वयं परिणमता है तो उसमें गुण की परिणति आ गई। परंतु यह गुण की परिणति गुण से नहीं (ऊठती)। (बल्कि) द्रव्य से उठती है। समझ में आया ? आहाहा ! लो, ऐसी

बातें (हैं) ! इसमें क्या समझना ?

धर्म करना इसमें (ऐसा सब समझना) ? भाई ! धर्म करना हो तो ऐसी चीज़ है कि, जो शक्ति है वह धर्म और वस्तु है यह धर्मी है। वस्तु धर्मी है और शक्ति - गुण कहो कि धर्म कहो (एक ही बात है)। धर्म यानी त्रिकाल स्वभाव. (यहाँ कहा न) ? ``**द्रव्य के स्वभावभूत...**'' ? ``**द्रव्य के स्वभावभूत ध्रौव्य - व्यय - उत्पाद् से आलिंगित स्पर्शित (सदृश और विसदृश)...**'' सदृश (यानी) ध्रुव, विसदृश वह उत्पाद - व्यय (रूप) पर्याय। सदृश वह अविरुद्ध। विसदृश यह विरुद्ध (है)। उत्पाद् - व्यय, उत्पाद् - व्यय दो (हुआ न ?) एक भाव और एक अभाव ऐसा विरुद्धभाव (है) और सदृश है यह अविरुद्ध - एकरूप भाव (है)। इसमें उत्पन्न होना और व्यय होना, ऐसा भेद नहीं है, आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा है। लोगों को ऐसा लगे कि सोनगढ़ ने यह नया निकाला। नया तो नहीं है, बापू ! लोग खुद के लिये आते हैं न ? भाषा तो सरल है। भाव भले ऊँचे हो ! आहाहा !

श्रोता : गंभीर भाव सुनने के लिये आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : (गंभीर भाव) सुनने को आते हैं। बात सच्ची है। मार्ग तो ऐसा है, भाई ! कि शक्ति का वर्णन किया लेकिन शक्ति से परिणमन नहीं उठता। कहा तो सही। क्या कहा ? ``**सदृश और विसदृश जिसका रूप है ऐसे एक अस्तित्वमात्रमयी परिणामशक्ति।**'' देखा ? एक सत्तारूप परिणाम है। है तो शक्ति लेकिन उसका परिणमन भी परिणाम में आता है। आहाहा !

परिणमना - परिणाम होना, यह अस्तित्वमात्र शक्ति का कार्य है। तो भी अस्तित्वमात्र शक्ति का कार्य है तो अस्तित्वशक्ति से परिणाम उठता है, ऐसा नहीं। यहाँ तो शक्ति का वर्णन किया है। समझ में आया ? परंतु परिणाम द्रव्य से उठता है। `द्रव्य - द्रवति' (परंतु) `गुण - द्रवति', ऐसा नहीं। द्रव्यत्व के कारण से गुण को द्रवति, ऐसा भी कहने में आता है। द्रव्यत्व गुण है न इसमें ? तो इसमें गुण - द्रव्य है, पर्याय - द्रव्य है, द्रव्य-द्रव्य है, ऐसा कहने में आता है। परंतु वास्तव में तो `द्रव्य द्रवति गच्छति इति' ऐसा शब्द है। पंचास्तिकाय की ९ वीं गाथा में मूल पाठ में ऐसा है कि, `द्रवति इति द्रव्यम्' `द्रवति गच्छति' (ऐसे) दो शब्द वहाँ लिये हैं। क्योंकि एक तो द्रवति यानी स्वभावरूप द्रव्य है और गच्छति यह विभावरूप भी एक द्रव्य है। वहाँ ऐसा लेना है। यहाँ वह नहीं लेना है। समझ में आया ?

यहाँ तो स्वभावरूप शुद्ध परिणमन करे ऐसी शक्ति का वर्णन है, आहाहा ! एक ज़गह कुछ कहे और दूसरी ज़गह कुछ कहे। परंतु क्या अपेक्षा है, यह न समझे (तो

विरोधाभास लगे)। पंचास्तिकाय की ९ वीं गाथा में तो ऐसा लिया है, `द्रव्यम् - गच्छति' ऐसे दो शब्द हैं। तो द्रव्य खुद द्रवित होता है। जैसे पानी तरंग उठाता है, वैसे वस्तु तरंग उठाती है। पर्याय का तरंग (उठता है)। द्रवति (यानी) द्रवित होता है। आहाहा ! द्रव्य स्वयं `द्रवति' (द्रवति होता है)। गुण - द्रवति कहने में आता है, वह भेद का कथन है। बाद में कहने में आता है कि, `यह परिणति गुण की है'। ज्ञान की है, दर्शन की है, चारित्र की है, आनंद की है। परंतु यह आनंद की सब परिणति उठती है, यह (सब) आनंद गुण से नहीं (उठती)। सम्यग्दर्शन की पर्याय भी श्रद्धागुण से उठती है, ऐसा नहीं।

आत्मा (एक) वस्तु है और एक श्रद्धा नाम की (उसमें) शक्ति है। सम्यग्दर्शन जो है यह तो पर्याय है। लेकिन अंदर एक श्रद्धा नाम की शक्ति त्रिकाली ध्रुव (है)। श्रद्धाशक्ति का परिणमन समकित पर्याय है (यह श्रद्धा गुण के कारण से) परिणमता है, ऐसा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? त्रिकाली द्रव्य जो भगवान आत्मा ! देखो न ! कैसे कहा ? आहाहा ! बात ये (कहनी है) कि, गुणभेद की दृष्टि भी छोड़ दे। कोई गुण (अकेला, स्वतंत्र) परिणमता नहीं (लेकिन) द्रव्य परिणमता है (तो) गुण का परिणमन हो जाता है। गुण परिणमता है, ऐसा भेद करने से तो गुण स्वयं एक-एक भिन्न द्रव्य हो जाये। समझ में आया ? आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई ! यह तो वीतराग मार्ग (है), बापू ! आहाहा ! तद्दन (एकदम) वीतरागता बताते हैं। यह शक्ति बताकर भी वीतरागता बताते हैं और वीतरागता इसका फल आता है। कैसे ? कि, द्रव्य का आश्रय करे तो वीतरागता का फल आता है। गुण का आश्रय करे तो गुण परिणति ऐसी नहीं है। द्रव्य परिणमता है, आहाहा ! समझ में आया ? तो द्रव्य खुद चीज़ अखण्डरूप (है)। द्रव्य शब्द ही ऐसा कहता है कि, `द्रवति द्रव्यम्' द्रव्य शब्द ऐसा नहीं कहता है कि, `गुण द्रवति वह द्रव्यम्' समझ में आया ? थोड़ा सूक्ष्म है, लेकिन उसे जानना तो पड़ेगा न ? आहाहा !

पानी में जो तरंग उठते हैं, वह समुद्रमें से उठते हैं। अकेले पानी से (तरंग) नहीं (उठते)। समुद्रमें से तरंग उठते हैं। ऐसे दरिया भगवान आत्मा ! एक समय में अनंत शक्ति का समुदाय अथवा अनंत स्वभाव का सागर अथवा अनंत शक्ति का संग्रहालय, अनंत शक्ति का संग्रह का आलय - स्थान अथवा अनंत गुण का गोदाम द्रव्य (है)। गुण गोदाम नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! अनंत गुण का गोदाम (आत्मा) है, आहाहा ! समझ में आया ?

श्रोता : ऐसा समझे बिना धर्म नहीं हो सकता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परंतु तत्त्व समझे बिना (धर्म कैसे हो) ? तत्त्व कैसा है ? और कैसा परिणमन (होता है)। कैसी शक्ति ? (ये समझे) बिना कैसे धर्म (होगा) ?

श्रोता : लेकिन तिर्यंच कहाँ समझते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तिर्यंच अंदर समझते हैं। शब्दों का ख्याल नहीं है परंतु वस्तु यह परिणमति है। यह (शुद्ध) परिणति है, यह संवर-निर्जरा है और पूर्ण (पुरुषार्थ) करूँ तो मोक्ष होगा। और यह आनंदस्वरूप द्रव्य है और पर्याय में विकल्प होता है यह दुःख है। ऐसा ज्ञान तो (है)। भाषा भले न हो। भाषा का ख्याल न हो लेकिन भाव का तो भासन होता है। समझ में आया ? मोक्षमार्ग प्रकाशक में लिया न ? बहुत लिया है। भावभासन का अर्थ कि, भाव का ज्ञान तो है (भले ही) नाम याद न हो, नाम न (आते) हो इससे क्या है ?

तिर्यंच समकिती है। जुगलिया में क्षायिक समकिती तिर्यंच भी है। क्या कहा ? पहले तिर्यंच का आयुष्य बंध गया और बाद में क्षायिक समकित हुआ तो वह क्षायिक समकित लेकर जुगलिया में जाते हैं। समझ में आया ? वह समकित लेकर मनुष्य में (भी) जाते हैं। मनुष्य का आयुष्य बंध गया हो तो वह मनुष्य में ही जाते हैं। पहले आयुष्य बंध गया हो तो क्षायिक समकित लेकर वहाँ तिर्यंच में भी जाना पड़े। मनुष्य में भी (जाना पड़े)। परंतु वह मनुष्य जुगलिया में (जाते हैं)। महाविदेह में मनुष्य मरके मनुष्य होता है वह तो मिथ्यादृष्टि (भी होता है)। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! ये सब नियम हैं ! सिद्धांत के - वस्तुस्वरूप के ये सब नियम हैं। ये नियम किसी ने किये नहीं लेकिन ये नियम ऐसे हैं ही। भगवान ने नहीं बनाये। भगवान ने तो जाना ऐसा कहा।

(यहाँ) ये कहा कि, ``**एक अस्तित्वमात्रमयी...**'' (ऐसी) भाषा है न ? भले तीन भेद हुए लेकिन तीन का एक अस्तित्वमयी परिणाम शक्ति (है)। तीनों मिलकर एक अस्तित्व है, आहाहा ! द्रव्य का सत्, गुण का सत्, पर्याय का सत्, ऐसा आता है। लेकिन तीन द्रव्य नहीं (हैं)। द्रव्य, गुण और पर्याय मिलकर एक सत्ता है। तीनों मिलकर एक सत्ता है। यह १९ वीं शक्ति हुई।

चिद्विलास में तो बहुत लिया है। दो बातें ली हैं। एक तो द्रव्य में परिणमन शक्ति, ऐसा लिया है। और एक वस्तु में परिणाम शक्ति का क्या स्वरूप ? यह लिया है। दो (बातें) ली हैं। समझ में आया ? इसमें है न ? परिणमन शक्ति द्रव्य में है। पहले ऐसा बोल लिया है। परिणमन शक्ति द्रव्य में है। द्रव्य परिणमता है तो गुण परिणमते हैं। गुण परिणमते हैं तो द्रव्य परिणमता है, ऐसा नहीं। एक बात यह (ली है)। और दूसरी बात ऐसे (ली है कि), वस्तु विषे परिणाम शक्ति का वर्णन, ये दो अधिकार चले हैं। वस्तु विषे परिणाम शक्ति का वर्णन और उसमें परिणमन शक्ति द्रव्य में है, उसका

वर्णन (है)। एक शक्ति का दो प्रकार से वर्णन लिया है। समझ में आया ? यह बात सर्वज्ञ के सिवा कहीं नहीं है। और द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों चीज़ और कहाँ हैं ? यहाँ ओघे-ओघे आत्मा निर्मल है और शुद्ध है और अनुभव करो (ऐसा कहे, लेकिन) उसमें क्या हुआ ? ओघे - ओघे समझे ? नहीं समझे ? एकबार कहा था न ? समझे बिना चलना उसे ओघे - ओघे कहते हैं। आहाहा !

चिद्विलास में तो दो बातें ली हैं। द्रव्य में परिणमन शक्ति है। उसका वर्णन लिया बाद में वस्तु विषे परिणाम शक्ति का वर्णन है। समझ में आया ? उसमें पहले में यह लिया कि, गुण परिणत है, ऐसा नहीं। (परंतु) द्रव्य परिणमता है तो गुण परिणमता है। यह परिणमन शक्ति द्रव्य में है। ऐसा वहाँ लिया है। और पीछे में तो वस्तु में परिणाम शक्ति है, उसका स्वरूप क्या (है) ? तो उसमें तो बहुत हिस्सा लिया है कि, (वस्तु) परिणमति है तो त्यागउपादानशक्ति परिणमति है, साधारण परिणमता है, असाधारण परिणमता है। उसमें अनेक शक्ति का वर्णन है। १५-२० शक्ति का वर्णन है। समझ में आया ?

अपना द्रव्य (अपने में है)। दूसरे का द्रव्य दूसरे में रहा। यहाँ तो अपना द्रव्य जो वस्तु है, उसमें '**स्वभावभूत...**' स्वभावभूत क्यों कहा ? यह स्वभाव ही उसका है, स्वभाव ही ऐसा है कि, ध्रुव, व्यय, उत्पाद को आलिंगन करना अथवा उसको चुंबना, अपने गुण - पर्याय को चुंबे, यह द्रव्य स्वभाव है। अपने गुण - पर्याय सिवा दूसरे को चुंबे या छूए, ऐसा स्वभाव नहीं है। समझ में आया ? यह (समयसार की) तीसरी गाथा में आया है।

प्रत्येक पदार्थ अपने गुण और पर्यायरूपी धर्म को चुंबते हैं। चुंबते हैं नाम छूते हैं। पर के द्रव्य, गुण, पर्याय को कभी (कोई) द्रव्य छूता नहीं। कर्म के उदय को आत्मा की विकारी पर्याय कभी छूती नहीं और कर्म का उदय राग को कभी छूता नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? (लोग) चिल्लाते हैं न ? कर्म के कारण हैरान हो गया, हैरान हो गया। लेकिन कर्म को छूता भी नहीं तो हैरान कहाँ से हो गया ? समझ में आया ? तेरी उलटी परिणमन शक्ति से तुझे रखड़ना पड़ता है। अशुद्धता भी तेरी बड़ी (और) शुद्धता भी तेरी बड़ी।

अनुभव प्रकाश में आया है। तेरी अशुद्धता भी बड़ी। (वह) तेरे कारण से (है)। क्रम के कारण नहीं। अनंत तीर्थंकरों का श्रवण किया, व्याख्यान सुना, इन्द्रो सुनते थे वहाँ गया परंतु तेरी अशुद्धता बड़ी कि तूने पलटा नहीं किया। समझ में आया ? आहाहा ! तेरे परिणाम में पलटा नहीं हुआ। भगवान के उपदेश में तो पर्याय की दृष्टि छोड़कर द्रव्यस्वभाव की दृष्टि कराते हैं। गुण का वर्णन करे लेकिन गुण का वर्णन गुणी को बताने के लिये करते हैं।

चिद्विलास में तो ऐसा भी लिया है कि, जैसे-जैसे गुण का, पर्याय का स्पष्ट कथन आता है, वैसे-वैसे सम्यक्दृष्टि को आनंद के तरंग उठते हैं। उसमें है। परिणमन शक्ति कहा था न ? परिणमनशक्ति द्रव्य में है। उसमें वर्णन है। `विशेषता शिष्य को प्रतिबोध कीजिये। तब ज्यों - ज्यों शिष्य गुरु के प्रतिबोध का, गुण का स्वरूप जाणी विशेष भेद होता जाये तैसे-तैसे शिष्य के आनंद की तरंग उठे' सम्यक् की दृष्टि लेना है न ?

श्रोता : भेद से तरंग कैसे उठे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तरंगें उठते हैं। भेद से अभेद को दिखाना है तो अभेद पर दृष्टि पड़ती है तो तरंगें उठते हैं, ऐसा कहते हैं। भेद बताना है परंतु भेद से अभेद बताना है। जैसे-जैसे गुण बताते हैं, वैसे-वैसे गुण अभेद द्रव्य को बताते हैं। इसलिये पहले कहा था न ? समझे ? इसमें आया है। इसमें ही आया है। `यह परिणमन शक्ति द्रव्य ते उठे हैं, गुण ते नहीं' समझ में आया ? क्यों ? `द्रव्यश्रया निर्गुणा गुणा' द्रव्य के आश्रय से गुण है। गुण के आश्रय से गुण नहीं। `गुण, पर्यायवत् द्रव्यम्' कहा। यह भी कहा है। `पर्यायवत् द्रव्यम्' कहा। गुण नहीं कहा। पर्यायवत् द्रव्य कहा। पर्यायवत् गुण नहीं कहा, आहाहा ! समझ में आया ? पर्यायवत् गुण को नहीं कहा, पर्यायवंत द्रव्य को कहा। क्योंकि दृष्टि द्रव्य पर करानी है न ? आहाहा ! थोड़ा सूक्ष्म है। तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म है। बापू !

अभी तो स्थूलता ऐसी हो गई, बस ! व्रत करो, उपवास करो, दान करो, शील, तप (करो)। सबेरे आया था न ? मिथ्यादृष्टि का व्रत, तप, दान, शील सब बंध का कारण है। यहाँ तो कहते हैं कि, व्रत और तप हमारे निश्चय के साधन हैं। अब इन दोनों बातों का कहाँ मेल करना ?

श्रोता : लोग सब छोड़ देंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन छोड़े ? ऐसे भाव आये बिना रहे नहीं। जिस समय जो भाव आता है वह तो आता ही है। दृष्टि में क्या है ? इतनी बात है। दृष्टि उससे धर्म मानती है ? या दृष्टि राग को ज्ञाता के रूप में जानती है ? (शुभभाव) तो होंगे। ज्ञानी को भी शुभ के काल में अशुभ से बचने को ऐसा कहने में आता है। ऐसा पाठ है। समझ में आया ? `अन्य स्थान से बचने को...' ऐसा पंचास्तिकाय की टीका में (आया) है। परंतु वह भी व्यवहार है। वास्तव में तो उस समय में शुभ होने का है तो आता ही आता है। उसके क्रम में शुभ आना है तो आता ही है। परंतु अज्ञानी उसे उपादेय मानता है। धर्मी उसको हेय मानते हैं। इतना फर्क है। समझ में आया ? आहाहा !

यह १९ वीं शक्ति कही।

इस शक्ति का भी अनंत शक्ति में रूप है। प्रत्येक शक्ति अपने ध्रुव-व्यय-उत्पाद को स्पर्शती है और उसमें भी अस्तित्वमयी परिणाम शक्ति का प्रत्येक शक्ति में रूप है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी सूक्ष्म बात (है)। उसमें तो सीधी पड़िमा ले लो, दो-चार पड़िमा, दस पड़िमा, ग्यारह पड़िमा (ले लो)। (इससे) ज्यादा हो तो (भी) कोई हर्जा नहीं। २५ हो तो २५ ले लो। अंदर भान कहाँ है ?

एक बार कुरावली में गये थे। वहाँ एक (व्यक्ति को) मिले थे। वे कहते थे, फिरोजाबाद में सब इकट्ठे हुए थे तो उसमें ऐसा आया कि, पड़िमा लो, पड़िमा लो। तो उसने कहा कि, मैंने पड़िमा ली, लेकिन मेरे पास (पड़िमा) आयी या नहीं आयी, वह मालूम नहीं पड़ता। प्रति संमेलन में मुझे सात पड़िमा दी सही, परंतु मेरे पास पड़िमा आयी (इसकी) मुझे खबर नहीं। अरे...! यह मार्ग तो वीतराग का है, भाई ! आहाहा ! पड़िमा तो किसको (होती है) ? जिसको सम्यग्दर्शन है, आत्मा के आनंद का अनुभव है, उसको जब आनंद की विशेष धारा होती है (तो) उसमें ये पड़िमा का विकल्प उठता है। समझ में आया ?

समाधिशतक में ऐसा कहा है कि, 'धूप में खड़े रहने से छाँव में खड़ा रहना अच्छा (है)।' अव्रत में खड़े रहने से व्रत में (रहना) अच्छा है। ऐसा वहाँ कहा। परंतु व्रत किसको होता है ? अज्ञानी को व्रत होता है ? जिसको व्रत का विकल्प उठता है उसको तो सम्यग्दर्शन उपरांत अंदर शांति की वृद्धि हुई (होती) है। समझ में आया ? उसको (व्रत है वह) छाया है। उन लोगों ने यह ले लिया कि, 'देखो ! व्रत को छाया कहा है और अव्रत को (धूप कहा है)।' परंतु किसको ? सम्यक्‌दृष्टि में अव्रतपने रहना उसके बजाय व्रत का विकल्प (उठता है), इसकी अंदर की स्थिति में शांति की वृद्धि होती है। सर्वार्थसिद्धि का देव चौथे गुणस्थान में एक भवतारी है। उससे व्रत का जिसको विकल्प उत्पन्न हुआ, पंचम गुणस्थान में उसकी शांति सर्वार्थसिद्धि के देव से भी विशेष है। आहाहा ! इस शांति के स्थल में - स्थान में जो पड़िमा का विकल्प उठता है, उसको (वहाँ) छाया कहा है। वास्तविक छाया तो ऐसी शांति उत्पन्न हुई है, वह छाया है। पंचम गुणस्थान की शांति उत्पन्न हुई न ? कि, चौथे गुणस्थान में विकल्प आया और व्रत हो गया ? समझ में आया ? आहाहा ! यह १९ वीं शक्ति (पूरी) हुई।

अब २० वीं शक्ति। '**कर्मबंध के अभाव से व्यक्त किये गये, सहज स्पर्शादिशून्य ऐसे आत्मप्रदेशस्वरूप अमूर्तत्वशक्ति।**' क्या कहते हैं ? आत्मा में अमूर्त नाम की शक्ति है। कर्म बंधन के अभाव से यह अमूर्त शक्ति का परिणमन होता है। यहाँ चौथे गुणस्थान

में भी जितना कर्म का अभाव हुआ, इतना अमूर्त शक्ति का परिणमन भी हुआ। आहाहा ! क्योंकि अनंत शक्ति साथ में है न ? तो अनंत शक्ति का समुदाय द्रव्य है और जिस को द्रव्यदृष्टि हुई तो अनंत शक्ति का अंश व्यक्तपने प्रगट परिणमन में आता है; तो अमूर्त शक्ति का भी परिणमन चौथे गुणस्थान में अमूर्त (अर्थात्) राग के अवलंबन बिना अमूर्तपना, अंदर शुद्ध परिणमन-अमूर्तता अनंत शक्ति की व्यक्तता के साथ में अमूर्त शक्ति की व्यक्तता-अमूर्तपना प्रगट होता है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी व्याख्या (है) !

अभ्यास (होना) चाहिये, भाई ! यह मार्ग तो ऐसा (है)। क्योंकि तिर्यंच का दृष्टांत तो (इसलिये आता है कि), तिर्यंच को दूसरे शल्य बहुत होते ही नहीं, तो उसको इस (स्वरूप की) ओर की दृष्टि हुई तो सब निकल गया। यहाँ तो बहुत शल्य रहे हैं, पूर्व के आग्रह (रहे हैं) तो बहुत शल्य है, इसे निकालने के लिये अनेक प्रकार का सत्य का ज्ञान करना पड़ेगा। समझ में आया ? यह (दोनों के बीच) अंतर है। तिर्यंच को तो ऐसा कोई शल्य नहीं (है)। एकत्वबुद्धि का एक ही शल्य था, आहाहा ! यहाँ तो पंडिताई और वाचन में बहुत आगे हो गया। भाई ! तो जितने विरुद्ध आग्रह है इतनी सच्ची समझ करके विरुद्ध आग्रह को छोड़ने के लिये विशेष ज्ञान करना पड़े। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, '**कर्मबंध के अभाव से व्यक्त किये गये...**' भाषा देखो ! अमूर्तपना प्रगट किया। पर्याय में तद्दन (बिलकुल) राग के संबंध बिना अपने पुरुषार्थ से जितना कर्म का अभाव हुआ, इतनी अमूर्तता, अनंत गुणों की अमूर्तता व्यक्तरूप से अंश में प्रगट हुई। समझ में आया ? '**ऐसे आत्मप्रदेशस्वरूप....**' क्या कहा ? आत्म प्रदेशरूप उसमें आत्म प्रदेश का अरूपी परिणमन हो गया। आहाहा ! है तो अरूपी परंतु कर्म के संबंध से उसको रूपी भी कहने में आता है। समझ में आया ? और समकिती को पुण्य-पाप का विकार होता है उसको भी रूपी कहा है। पुद्गल का परिणाम कहा न ? तो रूपी कहा है। समझ में आया ? तो यहाँ जितना द्रव्य स्वभाव की दृष्टि से अमूर्त शक्ति का (परिणमन हुआ) उतना राग का अभावरूप अमूर्तपना-व्यक्तरूप से शुद्ध का परिणमन होता है। समझ में आया ?

सर्वविशुद्ध अधिकार में भावार्थ में लिया है कि, चौथे गुणस्थान में भी अजोगपना (अर्थात्) जोग के अंश (का) अभाव का भी परिणमन हो जाता है। समझ में आया ? अक्रिय में कहा है। बाद में अक्रिय आयेगा कि, (यह) अक्रियपना जो है वह जोग के अभाव का अक्रियपना है तो अक्रिय शक्ति जो है वह कंपन बिना की अजोग शक्ति है। इस अजोग शक्ति के साथ अमूर्तपना भी साथ में है, आहाहा ! तो जब अपने द्रव्यस्वभाव

का आश्रय हुआ तो पर्याय में यह अक्रिय शक्ति-अजोगपना की शक्ति का व्यक्त अंश प्रगट हुआ। भले पूर्ण (प्रगट) नहीं (हुआ) हो, समझ में आया ? आहाहा ! आंशिक अक्रिय व्यक्तपने हो गया, आहाहा ! समझ में आया ? `**समजाय छे ?**' आहाहा ! `**कांई-कांई**' समझाय छे ? `**कांई**' का अर्थ वास्तविक समझन का परिणमन तो अलौकिक है परंतु किस पद्धति से कहने में आता है ? उस पद्धति की गंध भी आती है ? `**कांई**' का अर्थ यह है। समझ में आया ? किस ख्याल से, किस पद्धति से, इसकी रीत क्या है ? जो कहने में आती है उसकी गंध आती है ? कि यह रीत है। अनुभव हो जाये तो वह तो प्रत्यक्ष समझ हो गई। आहाहा ! परंतु अनुभव पहले भी क्या स्थिति है ? द्रव्य की, गुण की, पर्याय की स्वतंत्रता आदि की (क्या स्थिति है) ? उसके लक्ष में उसको पहले आना चाहिये। समझ में आया ?

कर्म से विकार होता है और विकार से दुःख होता है, तो-तो कर्म से दुःख हुआ, कर्म से विकार और विकार से संसार तो कर्म से संसार हुआ। संसार तो अपनी विकारी पर्याय है। समझ में आया ? आहाहा !

प्रवचनसार में तो वहाँ तक कहा है - जैन साधु है, दिगंबर है, २८ मूलगुण का पालन करता है, पंच महाव्रत पालता है, तो भी संसारी है। यह संसार तत्त्व है, ऐसे लिया है। प्रवचनसार की आखिर की पाँच गाथा है। पाँच रत्न की यह गाथा है। एक गाथा में ऐसे लिया है कि, ऐसे-ऐसे पंच महाव्रत पाले, २८ मूलगुण पाले, हजारों रानियों को छोड़ा, फिर भी वह संसारी है। संसार तत्त्व है। क्यों ? राग और पुण्य को अपना मानते हैं, यह संसार तत्त्व है। (यह) मोक्ष का मार्ग भी नहीं और मोक्ष भी नहीं, आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कहा, `**कर्मबंध के अभाव से व्यक्त किये गये...**' भाषा (तो देखो) ! कोई कहे कि, कर्मबंध का अभाव तो चौदहवें (गुणस्थान में) होता है। तो (यहाँ ऐसा क्यों कहा) ? यहाँ तो अंतर में द्रव्यदृष्टि होकर जितनी शक्ति की व्यक्तता उत्पन्न हुई, उतने में तो कर्मबंध का अभाव ही है। आहाहा ! समझ में आया ?

`**कर्मबंध के अभाव से व्यक्त किये गये सहज...**' देखा ? (सहज) स्वभावी। `**...स्पर्शादि शून्य (-स्पर्श, रस, गंध और वर्ण से रहित) ऐसे आत्मप्रदेशस्वरूप (अमूर्तत्वशक्ति)।**' आत्मा के प्रदेश अरूपी-अमूर्त शक्ति की व्यक्तता हो गई, आहाहा ! आनंद की धारा बहे, यह अमूर्त स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह बीसवीं (शक्ति) हुई। अब अपने यहाँ विशेष लेना है।

(अब) २१ वीं (शक्ति)। `**समस्त कर्मों के द्वारा किये गये...**' `कर्मों के द्वारा किये

गये' ऐसा शब्द है। निमित्त के आश्रय से हुआ वह कर्मों द्वारा किया गया, ऐसा कहने में आता है। निमित्त के वश से जो हुआ-वह कर्म द्वारा हुआ, ऐसा कहने में आता है। आहाहा ! ऐसा फर्क पड़ता है। समझ में आया ? '**समस्त कर्मों के द्वारा...**' देखो ! आठों कर्म हैं न ? '**किये गये, ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न...**' जानने-देखने के परिणाम से (भिन्न है)। कर्म के निमित्त से-वश से हुए रागादि, उसका अकर्ता आत्मा का स्वभाव है। समझ में आया ? '**...ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न जो परिणाम...**' ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न परिणाम। कौन से (परिणाम) ? परिणाम लिये हैं। शुभ-अशुभ राग ज्ञातापने से भिन्न परिणाम हैं। उसको परिणाम लिया (है)। कर्म के निमित्त के वश से जो राग-द्वेष परिणाम समकिती को भी उत्पन्न हुआ वह परिणाम है। कर्म के निमित्त के वश होकर वह परिणाम (हुए) हैं। समझ में आया ? उस परिणाम का कर्ता आत्मा नहीं (है)। आत्मा में अकर्तृत्व नाम का गुण है। आहाहा ! राग को करना ऐसी कोई त्रिकाली शक्ति नहीं। पर्याय में योग्यता है। राग का परिणमन करना, ऐसी पर्याय में योग्यता है। परंतु गुण में ऐसी कोई चीज नहीं कि, राग-विकाररूप परिणमे। सब शक्ति निर्मल आनंदकंद हैं, आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि, आत्मा में अकर्तृत्व नाम की शक्ति है। अकर्तृत्व शक्ति का कार्य क्या ? कि, जो दया, दान, राग आदि के परिणाम उत्पन्न होते हैं, उसका कर्ता न होना, ऐसी अकर्तृत्व शक्ति है। (राग) न करने की (शक्ति है)। राग नहीं करना। राग है परंतु कर्तृत्व नहीं है। ऐसी एक शक्ति है। सूक्ष्म है। आहाहा !

वैसे तो कहते हैं न ? श्वेताम्बर में अनाथीमुनि के अधिकार में आता है। इसे (पढ़कर) लोग बहुत कहते हैं, 'वैतरणी नदी की भाँति आत्मा कर्म को करे और आत्मा कर्म को भोगे' नदी होती है न ? नरक में वैतरणी (नदी है)। (उसमें) बहुत कीड़े (हैं)। ज़हर जैसे अंदर उष्ण पानी (है)। नरक में अग्नि की ज्वाला जैसे पानी की नदी चलती है। परमाधामी (नारकी को) वहाँ डालते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ राजकुमार हों, २५-३०-४० साल की उम्र हो और मरके नरक में जाये, आहाहा ! (उसे) वैतरणी नदी में (डाले)। पहले तो खुद ऊपर जन्म लेता है फिर नीचे गिरता है। जैसे भमरी का दर होता है न ? भमरी (भँवरा)। नरक में जीव को उत्पन्न होने के ऐसे बिल होते हैं। पहले वहाँ उत्पन्न होते हैं फिर नीचे गिरते हैं। समझ में आया ? नीचे आताप, शीत की पीड़ा (बहुत) है। तो कहते हैं कि, श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती - चौथे गुणस्थान में (हैं)। (वे) वहाँ गये हैं लेकिन वे दुःख के कर्ता नहीं। आहाहा ! कहा न ? ज्ञातापना से भिन्न। ज्ञानी को जानने - देखने के परिणाम होते हैं। सम्यक्दृष्टि को - धर्मी को तो ज्ञायक स्वरूप की दृष्टि होने से, पर्याय में जानने - देखने का परिणाम

होता है। यह परिणाम उसका कार्य और (उस) परिणाम के वे कर्ता (हैं)। परंतु इस ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम से भिन्न राग आदि के परिणाम उसका आत्मा कर्ता नहीं, आहाहा !

व्यवहार श्रद्धा का कर्ता आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं, आहाहा ! व्यवहार श्रद्धा यह राग है। वह प्रश्न उठा था न ? यहाँ से ऐसा कहने में आया था कि, भाई ! देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा करे यह मिथ्यात्व नहीं (बल्कि) राग है। परंतु राग को धर्म माने तो मिथ्यात्व है।

खाणिया चर्चा में यह प्रश्न उठा है। क्या देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा यह मिथ्यात्व है ? ऐसा प्रश्न उठाया। यहाँ कोई देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा करना यह मिथ्यात्व नहीं। इस पर द्रव्य की श्रद्धा करना यह शुभराग है परंतु राग को धर्म मानना, यह मिथ्यात्व है। देव, गुरु, शास्त्र को मानना अलग बात है और मानने की पर्याय को धर्म माने, वह अलग चीज़ है, आहाहा ! समझ में आया ? देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा (का) भाव तो होता है (यह) व्यवहार श्रद्धा (है)। जहाँ तक निश्चय श्रद्धा पूर्ण न हो, वहाँ तक व्यवहार श्रद्धा आती है।

द्रव्य संग्रह में ४७ वें श्लोक में कहा न ? '**दुविहं पि भोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' अंदर में ज्ञायकभाव जहाँ ध्यान लगा तो निर्विकल्प ज्ञान, दर्शन, चारित्र की पर्याय प्रगट हुई कि, यह तो निश्चय मोक्षमार्ग है और जितना राग बाकी रहा उसको आरोप से व्यवहार (मोक्ष) मार्ग कहा- (मोक्षमार्ग) है नहीं। है नहीं उसको (मोक्षमार्ग) कहा, (इसका) नाम व्यवहार (है)। (व्यवहार) है सही लेकिन कर्ता नहीं, आहाहा !

आत्मा में शुभभाव का कर्तापना (हो) ऐसी कोई शक्ति ही नहीं। राग का अकर्तापना और ज्ञातापना का परिणाम (हो), यह उसकी शक्ति है, आहाहा ! ऐसा (सुनने को) कहाँ (दो) घड़ी की फुरसद है ? एक तो स्त्री, पुत्र में मशगूल पड़ा हो, आहाहा ! १०-२० घंटे उसमें जाये। नींद में, खाने-पीने में, कुटुंब-कबीले को राजी रखने में (जाये), अरेरे...! उसका काल कहाँ जाता है। ऐसा सुनने को वक्त मिले नहीं उसे निर्णय करने का समय कब मिले ?

श्रोता : यहाँ आये तो (समय) मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ आये तो भी अंदर में निवृत्ति करे तब (समय) मिले। समझ में आया ? आहाहा ! दरबार को तो बहुत काम होते हैं। बाजरा हो, जुवार हो, गेहूँ हो, तिल और शींग (होती है)।

श्रोता : भाल के गेहूँ बहुत ऊँचे (होते हैं)।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाल के गेहूँ ऊँची धूल के (होते हैं)। वह धूल है, आहाहा !

वह पुद्गल की पर्याय है। यहाँ तो राग की पर्याय भी पुद्गल की है (और) आत्मा की नहीं। आत्मा तो ज्ञाता-दृष्टा है, आहाहा !

खाने की क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं, पानी पीने का कर्ता आत्मा नहीं। दवाई दे उस क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं, आहाहा ! परंतु उस संबंधी राग होता है, वह भी (आत्मा की) क्रिया नहीं।

श्रोता : पुस्तक पढ़ने की क्रिया तो आत्मा की (है या नहीं) ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग है, विकल्प है।

श्रोता : (तो पुस्तक) नहीं पढ़नी न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव के लक्ष से आगम का अभ्यास करना, ऐसा आया है। प्रवनसार में स्वभाव को लक्ष में (रखकर अभ्यास करना, ऐसा आया है)। अथवा कुंदकुंदाचार्य ने कहा कि, अनंता सिद्धों को पर्याय में रखकर सुन ! `**वोच्छामि समयपाहुजमिणमो सुदकेवलीभणिदं, वंदित्तु सव्वसिद्धे...**' तेरी पर्याय में अनंत सिद्धों को (स्थापित करके सुन), ओहोहो !

अभी तो पहले सुनने आया तो कहते हैं कि, अनंत सिद्ध जो केवली परमात्मा (हैं) उनको मैं तेरी पर्याय में स्थापित करता हूँ। आहाहा ! अनंत केवलज्ञानी की पर्याय, अनंत केवली को मैं तेरी पर्याय में स्थापन करता हूँ। उस `**वंदित्तु**' का ऐसा अर्थ है। आहाहा ! ऐसी स्थापना की तो तेरी पर्याय अल्पज्ञपने से (उठ जायेगी)। ऐसे अनंत सर्वज्ञ को स्थापन किये तो तेरी दृष्टि गुलांट (पलटी) खा जायेगी। द्रव्य पर लग जायेगी और द्रव्य पर लक्ष करके तू सुन ! समझ में आया ? उसका तात्पर्य यह है, `सुन' ऐसा कहा न ? `सुणो' - ऐसी बड़ी व्याख्या है। धवल में यह गाथा है। `सुणो' की व्याख्या बहुत लंबी की है। बहुत पन्ने हैं। `सुनो' की गाथा है। आहाहा ! `सुनो' का अर्थ तो यह है कि, अंदर में तेरी चीज़ है यह तो अनंत सिद्धों की पर्याय से भी अनंत गुण-शक्ति (वान) है। क्योंकि सिद्ध की एक समय की पर्याय (है), ऐसी तो अनंती पर्याय का पिंड तेरे पास है, आहाहा ! समझ में आया ? अनंत सिद्धों को स्थापन करके तो समयसार (शुरू किया है)। ``**वंदित्तु सव्वसिद्धे ध्रुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते। वोच्छमि समयपाहुडमिणमो...**'' मैं समयप्राभृत कहूँगा। `**मिणमो**' (अर्थात्) यह प्रत्यक्ष श्रुतकेवली ने कहा हुआ - साक्षात् केवली और श्रुतकेवलीओं ने कहा हुआ, यह (समयप्राभृत) कहूँगा। तो कहूँगा का अर्थ यह है कि, तू सून ! उसका अर्थ हुआ कि नहीं ? आहाहा ! परंतु `सुन' किस प्रकार से ? कि अनंत सिद्धों को पर्याय में स्थापन करके सुन, आहाहा ! मैंने स्थापन किया ही है, आचार्य ऐसा कहते हैं, आहाहा ! परंतु तुझे सिद्ध होना है और सिद्ध की बात

तुझे सुननी हो तो पर्याय में सिद्ध को स्थापन करके (सुन)। सिद्ध होने में थोड़ा काल लगेगा। लेकिन स्थापन कर (और) बाद में सुन ! आहाहा ! (तो) तेरा स्वभाव पर दृष्टि का घोलन जायेगा और उससे तुझे सम्यग्दर्शन और सिद्धपद प्राप्त होगा, आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि, राग आदि का परिणाम, ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम से (भिन्न हैं)। परिणाम तो लिया है। भाषा देखो ! क्या कहा ? ``**ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न जो परिणाम...**'' चाहे तो तीर्थंकर गोत्र बांधने का भाव (हो, लेकिन वह) ज्ञाता-दृष्टा से भिन्न परिणाम है। `सोलश कारण भावना (भाये) तीर्थंकर पद पाय' आता है कि नहीं ? ये भाव है, राग है। वह ज्ञातृ परिणाम से भिन्न जात का है। उसका कर्ता आत्मा नहीं है, आहाहा !

(राग) आता है। वह तो कहा न ? ``**...समस्त कर्मों के द्वारा...**'' `कर्मों के द्वारा' ऐसा शब्द है। ``**...किये गये ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न जो परिणाम...**'' `समस्त कर्मों के द्वारा किये गये...' देखो ! आठ कर्मों के द्वारा किये गये, उसे वश होकर हुए - ऐसा उसका अर्थ है। कर्म क्या करे ? `कर्म बिचारे कौन ? भूल मेरी अधिकाई' यह स्तुति में आता है। यहाँ तो भाषा ऐसी ली है। देखो ! (लोग) इसमें तकरार करे।

गोम्मटसार में ऐसा पाठ (आता है)। `ज्ञानावरणीय (कर्म) ज्ञान को रोके' उसमें व्याख्या ऐसी (ली)। स्वभाव की दृष्टिवंत को विकार पर्याय व्याप्य है और कर्म व्यापक है। यहाँ यह कहा कि, `आठ कर्मों से किये गये' अरे ! ऐसे लिखा हुआ आये (तो लोग पकड़ लेते हैं)।

श्रोता : (इसमें) क्या सही मानना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों सही मानना। किस अपेक्षा से है (यह समझना) ? कर्म के द्वारा नाम आत्मा के द्वारा विकार नहीं होता है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि आत्मा और आत्मा की शक्ति तो शुद्ध पवित्र है। आहाहा ! उसके आश्रय से पवित्रता उत्पन्न होती है, उसके आश्रय से विकार नहीं उत्पन्न होता। कर्म के आश्रय से विकार उत्पन्न होता है, तो यह शब्द कहा। समझ में आया ?

`समस्त कर्मों' भाषा ऐसी ली है। आठों कर्मों के द्वारा किये गये, आहाहा ! ऐसा लिखा है तो ऐसा नहीं मान लेना कि, `कर्म से हुआ है, कर्म से हुआ है' वह कर्म से नहीं हुआ, बापू ! तेरी कमज़ोरी से विकार परिणाम हुआ है। सम्यक्‌दृष्टि को भी कमज़ोरी से विकारी परिणाम (होता है) परंतु ज्ञाता परिणाम से भिन्न परिणाम का कर्ता नहीं, ऐसी आत्मा में अकर्तृत्व (नाम की) शक्ति है।

अकर्तृत्व शक्ति है तो यह अकर्तृत्व का परिणमन कब हुआ ? (कि) द्रव्य पर दृष्टि जाने से (हुआ)। अकर्तृत्व का सीधा गुण - गुणपने अकर्तृत्वरूप से परिणमे, ऐसा नहीं।

क्या कहा ? अकर्तृत्व गुण सीधा अकर्तापने परिणमे, ऐसा नहीं। गुणी जो अकर्तृत्व आदि शक्ति का पिंड द्रव्य है, यह परिणमता (है तो) अकर्तृत्व शक्ति का परिणमन, ज्ञाता-दृष्टापने हो और राग का कर्ता न हो, (ऐसा परिणमन सहज होता है)। थोड़ा फ़र्क में (बड़ा) फ़र्क (पड़ जाता है)। देखो ! वकालत की लेकिन यह कभी सुना नहीं होगा। ऐसा मार्ग है। आहाहा !

संस्कृत में ऐसा है ``**सकलकर्मकृत ज्ञातृत्वमात्रा तिरिक्तपरिणामकरणो - परमात्मिका अकर्तृत्वशक्तिः**'' भगवान आत्मा में ऐसी एक अकर्तृत्व शक्ति है कि, समस्त कर्मों के निमित्त के वश जो विकार हुआ, वह ज्ञातृमात्र से भिन्न है। ज्ञाता-दृष्टा - ज्ञायकभाव से तो ज्ञातापना होता है। ज्ञातापना का कार्य अपना (और) वहाँ आत्मा कर्ता। ``**उन परिणामों के करण के उपरमस्वरूप...**'' देखो ! विकार के परिणाम से ऊपरम स्वरूप (है)। ``**...(उन परिणामों को करने की निवृत्तस्वरूप...)**'' अभावस्वरूप, ``**अकर्तृत्वशक्ति**'' है। विशेष लेंगे....

जैसे केवलज्ञान में तीन काल की पर्यायें दिखाई देती हैं, वैसे ही पदार्थों में क्रमबद्ध पर्यायें होती हैं। केवलज्ञान में जाना इसलिए नहीं, परंतु पदार्थों की पर्यायें स्वयं ही स्वकाल में, उसी प्रकार होती है और वैसे ही सर्वज्ञ जानते हैं। आहाहा ! पर द्रव्य को करने की बात तो दूर, परंतु स्वयं की शुद्ध या अशुद्ध पर्यायें जो स्वकाल में जैसी क्रमबद्ध होनी हैं, वैसी ही होती हैं। अतः उन्हें आगे - पीछे करने का अवकाश नहीं है। मात्र जैसा होता है वैसा जानना ही रहा। जैसे सर्वज्ञ ज्ञाता हैं वैसे ही धर्मी भी ज्ञाता हो गया। क्रमबद्ध के निर्णय का तात्पर्य अकर्तापनेरूप वीतरागता है। यह वीतरागता अनंत पुरुषार्थपूर्वक द्रव्य पर दृष्टि जाने से होती है। आहा हा ! आत्मा सर्वज्ञ स्वभावी है !

(परमागमसार - ४६७)

प्रवचन नं. २०

शक्ति-२१, २२ दि. ३०-०८-१९७७

सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामकरणोपरमात्मिका अकर्तृत्वशक्तिः ।।२१।।

सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामानुभवोपरमात्मिका अभोक्तृत्वशक्तिः ।।२२।।

समयसार, शक्ति का अधिकार चलता है। शक्ति अर्थात् क्या ? जो आत्मा है वह अनंत गुण रत्नाकर स्वरूप है। गुण कहो कि शक्ति कहो (एक ही बात है)। आत्मा अनंत शक्ति रत्नाकर - रत्नों का समुद्र है। समझ में आया ? उसमें अनंत रत्न (अर्थात्) शक्ति (है)। द्रव्य और शक्ति का भेद भी छोड़कर। जिसने शक्ति और शक्तिवान ऐसा विकल्प भी जिसने छोड़ दिया और शक्तिवान को जिसने अनुभव में लिया, उसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और स्वरूप आचरण चारित्र कहने में आता है। समझ में आया ? एक शक्ति का व्यक्त परिणमन में अनंत शक्ति का व्यक्त परिणमन एक साथ उछलता है। यानी उदय होता है। क्या समझना इसमें ? इसमें रुपयों की बात कहीं नहीं आयी।

यहाँ प्रतापगढ़ से कोई आये थे। पहले पत्र आया था कि, हम तीर्थंकर हैं। चार घाती कर्म का नाश हुआ है। चार अघाती (कर्म) बाकी है। मैं केवलज्ञानी हूँ। मैं सोनगढ़ आनेवाला हूँ तो मेरे लिये (कुछ) व्यवस्था करना। बाद में यहाँ आये। गरीब आदमी था। सामने बैठकर कहा कि, 'मैं तीर्थंकर हूँ, सत्य कहता हूँ। भगवान को जैसे चार घाती कर्म का नाश हुआ है वैसे मुझे (भी) हुआ है। परंतु भगवान को चार घाती कर्म बाकी था तो उनके पास पैसा नहीं था' ऐसे आदमी भी सामने आते हैं। आहाहा ! वैसे अंदर

कुछ (मालूम नहीं पड़े)। अंदर मिथ्यात्व का ज़ोर (चलता हो)। आहाहा ! पत्र में तो ऐसा लिखा था। चार घाती (कर्म का) नाश कैसे हुआ ? यह मैं वहाँ (आकर) कहूँगा। यहाँ आकर इतना कहा कि, `चार घाती (कर्म का) नाश (हुआ) है और चार अघाती (कर्म बाकी) है। भगवान को चार घाती (कर्म का) नाश हुआ (और उनके पास) पैसे नहीं थे (और) मेरे पास भी पैसे नहीं है'। आहाहा ! फिर उठकर पैर छूए। हमने कहा, `भैया ! मिथ्यादृष्टि है' जगत की दशा देखो न ! आहाहा ! अरे...! क्या करता है आत्मा ? आहाहा ! भगवान ! मिथ्यादृष्टि हो, भाई ! ये दृष्टि ? अरेरे...! कपड़े हो वहाँ मुनिपना भी नहीं होता तो केवलज्ञान हो जाय (यह कैसे हो सकता है ?) आहाहा ! यह दृष्टि बहुत विपरीत दृष्टि (है)। आहाहा !

यहाँ तो (निज) परमात्मा अनंत शक्ति का पिंड रत्नाकर ! उसका अनुभव होते ही उसमें आनंद की दशा आती है। तब तो अभी चौथा गुणस्थान कहने में आता है। मुनि तो (किसको कहें ?) शास्त्र में ऐसा लिखा है, `**चरितं खलु धम्मो**' - चारित्र धर्म है और सम्यग्दर्शन यह तो चारित्र का मूल (है)। `**दसंण मूलो धम्मो**' क्या कहा ? धर्म का मूल चारित्र। परंतु उस धर्म का मूल क्या ? तो (कहते हैं) दंसण - सम्यग्दर्शन चारित्र का मूल है। चारित्र धर्म है और चारित्र का मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन हुए बिना चारित्र कभी होता नहीं है।

बंध अधिकार में व्यवहार से कारण - कार्य लिया है कि, चारित्र का कारण जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान यह तो है नहीं, उसे व्रत, नियम कहाँ से आये ? समझ में आया ? स्वरूप की रमणता (रूप) जो चारित्र - जिसमें चरना, आनंद में रमना, आनंद का भोजन करना, निरंतर जिसका अतीन्द्रिय आनंद का भोजन है, आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा चारित्र ! ओहो ! धन्य अवतार !! यह चारित्र तो समकिती को भी पूज्य है। समझ में आया ? यह चारित्र धर्म है तो उसका मूल कारण दर्शन है। `**दंसण मूलो धम्मो**' धर्म का मूल दर्शन (और) चारित्र का मूल दर्शन और दर्शन का मूल अभेद रत्नत्रय स्वरूप भगवान अनंत गुण स्वरूप आत्मा ! उसकी दृष्टि (और) अनुभव होता है तो सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा ! समझ में आया ? सम्यग्दर्शन के काल में ज्ञान सम्यक् (होता है)।

एकबार कहा था कि, अभवी को ज्ञान है परंतु ज्ञान की परिणति नहीं है। समझ में आया ? यह अध्यात्मपंच संग्रह में है। अध्यात्म पंचसंग्रह दीपचंदजी ने किया है। दीपचंदजी परमात्मपुराण में (कहते हैं) अभवी को ज्ञान है परंतु ज्ञान की परिणति नहीं। आहाहा ! क्या कहा ? ज्ञान की परिणति उसे कहें कि, जो ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा उसका ज्ञान हो (अर्थात्) स्वसंवेदन (हो) तब ज्ञान की परिणति (कही जाती है)। वैसे तो अभवी को

११ अंग और ९ पूर्व की लब्धि प्रगट होती है। फिर भी वह ज्ञान परिणति नहीं। आहाहा ! ११ अंग में एक आचारांग के १८ हज़ार पद (होते हैं) और एक पद में ५१ क्रोड़ श्लोक (होते हैं) ऐसे-ऐसे १८ हज़ार पद का एक आचार (अंग है)। सुयगडांग के ३६ हज़ार, ठाणांग के ७२ हज़ार, ऐसे डबल करते-करते ११ अंग तक ले जाना। आहाहा ! इतना जो जिसे कंठस्थ ज्ञान था और इसके अलावा ९ पूर्व का (ज्ञान हो)। यह (सब) अभ्यास (करने से) नहीं होता। (लेकिन) अंदर में ऐसी लब्धि होती है। अभवी को भी (ऐसी लब्धि) होती है। विभंग (ज्ञान में) सात द्वीप सात समुद्र को देखे। समझ में आया ? फिर भी वह ज्ञान की परिणति नहीं। आहाहा ! वह ज्ञान की पर्याय नहीं। आहाहा !

ज्ञानस्वरूप भगवान (आत्मा को) जिसने अपनी ज्ञान पर्याय में ज्ञेय (बनाया), पर्याय में ज्ञायक स्वभाव का ज्ञान हुआ और श्रद्धा की पर्याय में ज्ञेय अनंत शक्ति का रत्नाकर भगवान (आया तब उसे ज्ञान की परिणति कहने में आती है)। यहाँ तो शक्ति का वर्णन है। परंतु शक्ति ऊपर (भेद ऊपर) लक्ष करना, ऐसा (कहने का आशय) नहीं है। समझ में आया ? शक्ति और शक्तिवान ऐसे दो भेद भी नहीं। आहाहा ! तेरा नाथ अभेद चिदानंद स्वरूप निर्विकल्परूप से (बिराजमान हैं)। प्रत्येक शक्तियाँ भी निर्विकल्प नाम राग के अभावस्वरूप बिराजती हैं। ऐसे शक्तिवान का अंतर में ज्ञेय बनाकर ज्ञान हो, तब वह ज्ञान परिणति - पर्याय कहने में आती है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, वह ज्ञान की परिणति जब हुई तो साथ में अनंत शक्तियाँ उछलती हैं। पहले शुरूआत में (यह) आ गया है। अनंत शक्ति की व्यक्तता (होती है)। ज्ञान का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान, आत्मज्ञान ऐसा लिया है न ? ऐसे नहीं लिया है कि शास्त्र का ज्ञान या राग का ज्ञान या निमित्त का ज्ञान या पर्याय का ज्ञान ऐसे शब्द नहीं हैं। आत्मज्ञान (लिया है)। आहाहा ! समझ में आया ? आत्मा एकरूप अखण्ड आनंद का कंद प्रभु ! उसका ज्ञान वह आत्मज्ञान कहने में आता है। आहाहा ! आत्मज्ञान में ऐसा नहीं लिया है कि, शास्त्र का ज्ञान या निमित्त का ज्ञान और पर्याय का ज्ञान या राग का ज्ञान ऐसा नहीं लिया। आहाहा ! ऐसी बात है, भगवान ! आत्मज्ञान आहाहा ! शब्द तो देखो ! आत्मा जो अनंत शक्ति का भण्डार ! एकरूप वस्तु ! उसका ज्ञान (वह आत्मज्ञान है)। आहाहा ! उसका ज्ञान कब होता है ? कि पर्याय उस ओर झुकने से (आत्मज्ञान होता है)। तन्मय होने से ऐसी भाषा है न ? परंतु वह झुकने से बात है। आहाहा ! समझ में आया ?

स्वयंभूरमण समुद्र तो असंख्य योजन में है और नीचे रत्न भरे हैं। रेत की ज़गह रत्न है। स्वयंभूरमण समुद्र आखिर का समुद्र है। इसके नीचे रत्न है, रेत नहीं है। आहाहा !

ऐसे यहाँ `स्वयंभू' भगवान आत्मा ! (है)। (प्रवचनसार की) १६ वीं गाथा में स्वयंभू कहा न ? भाई ! आहाहा ! उसके तल में तो अनंती शक्ति का रत्न भरा है। आहाहा ! ऐसे शक्तिवान की दृष्टि करने से जो सम्यग्दर्शन की पर्याय शक्तिरूप थी (वह) उत्पादरूप से व्यक्तरूप से आयी। आहाहा ! उसके साथ अनंत शक्ति का उदय / उछलते नाम उत्पन्न होता है। यह पर्याय जो उछलती है वह क्रमसर है और गुण - शक्ति है वह अक्रम है। क्रमवर्ती पर्याय उछलती है (उस क्रमवर्ती पर्याय) और अक्रमवर्ती (गुण के) समुदाय को आत्मा कहते हैं। यहाँ विकार नहीं लेना। यहाँ तो शक्ति का वर्णन है। शक्ति तो शुद्ध है तो उसका परिणमन भी शुद्ध है। इस शुद्ध परिणमन में अनंत शक्तियाँ निर्मलरूप से क्रमसर - क्रमवर्ती उत्पन्न होती हैं। उस क्रमवर्ती (पर्याय) और अक्रमवर्ती गुण दोनों के समुदाय को आत्मा कहते हैं। आहाहा ! यहाँ तो आत्मा पर्याय सहित लेना है न? समझ में आया ?

नियमसार की ३८ वीं गाथा में जो आत्मा लिया (है) वह तो पर्याय बिना का त्रिकाली ज्ञायकभाव वह आत्मा है, भाई ! वहाँ पर्याय नहीं ली। यहाँ तो जो वस्तु है, शक्ति है उसकी ज्ञान में प्रतीत हुई तो `है' ऐसा प्रतीत में आया। ऐसा परिणमन हुआ तो प्रतीत में आया। ऐसा क्रमवर्ती पर्याय में अव्यक्त को जानकर निर्मल पर्याय का व्यक्तपना (हुआ)। आहाहा ! ऐसी बातें हैं। अव्यक्त को व्यक्त ही जाना। आहाहा !

यहाँ तो अब दूसरा कहना है। (अनंत) शक्ति में एक अकर्ता नाम की शक्ति है। २१ वीं शक्ति है। वर्णन तो क्रम से होता है (परंतु) वस्तु में क्रम नहीं है। शक्तियाँ क्रम(सर) नहीं, पर्याय क्रम(सर) है। (सभी शक्तियाँ) एक साथ हैं। एक समय में (एक साथ) शक्तियाँ हैं। प्रवचनसार में जो ४७ नय लिये हैं वह भी एक समय में (एक साथ) ४७ नयरूप धर्म है। समझ में आया ? वहाँ एक नय का धर्म ऐसा भी लिया है कि, काल से भी मोक्ष है और अकाल से भी मोक्ष है। एक समय में दोनों धर्म हैं, ऐसे वहाँ लेना है। (ऐसी) पर्याय में योग्यता (की बात है)। आहाहा ! समझ में आया ? यह शक्तियाँ एक समय में गुणरूप है और वहाँ जो पर्याय ली, वह तो नियत नाम स्वभावरूपी पर्याय और अनियत नाम विभावरूपी पर्याय, दोनों धर्म एक समय में हैं।

(प्रवचनसार नय अधिकार में) वहाँ तक लिया है कि, क्रिया से भी मुक्त होता है और ज्ञान से भी मुक्त होता है। आहाहा ! क्रिया से मुक्त होता है (और) ज्ञान से मोक्ष होता है (उसमें) कोई-कोई क्रिया से (मुक्त) होता है और कोई-कोई ज्ञान से (मुक्त) होता है, ऐसा नहीं है। उस जीव को भी कोई बार क्रिया से होता है और कोई बार ज्ञान से होता है, ऐसा भी नहीं है। उसी समय में राग के अभावरूपी योग्यता गिनकर

क्रियानय से मुक्ति है, ऐसे कहा; परंतु उसी समय में ज्ञान से (भी) मुक्ति है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बातें हैं। वह धर्म का विवक्षा भेद है। धर्म तो एक ही है। एक धर्म का विवक्षा भेद है। क्रिया से मुक्ति और ज्ञान से मुक्ति, ऐसा कहने में आया। धर्म तो अंदर में एक साथ में है। आहाहा ! ऐसी बात ! ऐसा भगवान का मार्ग है, भाई !

अब यहाँ तो अपनी अकर्तृत्वशक्ति चलती है। २० (शक्ति) तो चल गई। एक साथ ४७ शक्ति हैं। जैसे ४७ नय के धर्म एक साथ हैं (वैसे) वहाँ धर्म है - वह शक्ति नहीं। समझ में आया ? ज्ञान से मोक्ष होता है वह पर्याय की बात है। ज्ञान से मोक्ष होता है (ऐसा कहा) तो ज्ञान की पर्याय की कोई दूसरी पर्याय है, ऐसा नहीं।

यहाँ तो शक्ति का वर्णन है तो शक्ति की पर्याय का वर्णन साथ में है। आत्मा नित्य है यह धर्म है। परंतु नित्य (धर्म) की कोई पर्याय है, ऐसा नहीं। आत्मा अनित्य है, ऐसी एक योग्यता - धर्म है। परंतु अनित्य धर्म की कोई दूसरी पर्याय है, ऐसा नहीं और शक्ति की तो पर्याय - विशेष है। समझ में आया ? यह शक्ति है उसकी तो प्रत्येक शक्ति की वर्तमान व्यक्त पर्याय होती है और उन धर्म में पर्याय नहीं (है)। वह तो एक अपेक्षित धर्म गिनने में आया (है)।

यहाँ कहते हैं कि, ``**समस्त कर्मों के द्वारा...**'' भाषा यह है। लोग तकरार करते हैं कि, देखो ! `समस्त कर्मों के द्वारा किये गये' (ऐसा स्पष्ट लिखा है)। स्पष्ट ही लिखा है (लेकिन) किस अपेक्षा से (लिखा है) ? किस नय का वह कथन है ? कि अपने स्वभाव से विकार उत्पन्न होनेवाला नहीं। क्योंकि कोई शक्ति विकार उत्पन्न करे, ऐसी अनंत शक्ति में कोई शक्ति नहीं। उस कारण से पर्याय में जो विकार होता है - वह शक्ति का कार्य नहीं। तब उसे शक्ति के स्वभाव की दृष्टि कराने को कर्म के निमित्त के वश होकर विकार हुआ (ऐसा कहते हैं)। निमित्त से (विकार) हुआ, ऐसा नहीं। निमित्त के वश होकर (विकार हुआ है)। `कर्मों के द्वारा किये गये' भाषा ऐसी है। वह कहा था न ?

पंचास्तिकायसंग्रह की ६२ गाथा में ऐसा कहा। कोई बड़े विद्वान के साथ चर्चा हुई थी कि, अपनी पर्याय में विकार (अपने) षट्कारक परिणमन से होता है। द्रव्य, गुण से नहीं (और) पर कारक से नहीं। २० वर्ष पहले बहुत बड़ी चर्चा हुई थी। १३ की साल में शिखरजी में यात्रा में निकले थे तब कहा था। सब (बड़े विद्वान) बैठे थे, (उस समय कहा) एक समय की पर्याय में जो मिथ्यात्व या राग-द्वेष (रूप) विकृतभाव होता है, वह पर्याय में (अपने षट्कारक से होता है)। एक समय की पर्याय में षट्कारक है,

जो षट्कारक शक्तिरूप से द्रव्य-गुण में है। उसी पर्याय में षट्कारकरूप से विकार अपने कारण से होता है। पर के कारण से बिलकुल नहीं। एक (बात) यह कही।

समयसार ७५-७६-७७ (गाथा में) ऐसा कहा कि, अपने आत्मा का स्वभाव उसकी पर्याय में व्याप्य और द्रव्य स्वभाव उसका व्यापक - ऐसा जब धर्मी को दृष्टि में आत्मा का पूर्ण स्वभाव आया तो स्वभाव व्यापक और स्वभाव की निर्मल पर्याय व्याप्य। अब उनको जो विकार रहा (उसमें) विकार व्याप्य और कर्म व्यापक (है)। वहाँ ऐसे लिया। यहाँ यह लिया। द्रव्य स्वभाव सिद्ध करना है न ? द्रव्य स्वभाव की दृष्टि कराने को जो चीज़ निकल जाती है तो (विकार) निमित्त से हुआ है, ऐसा कहने में आया। समझ में आया ? वहाँ ऐसा कहा कि, कर्म व्यापक और विकारी पर्याय व्याप्य। और सबेरे अपने ६८ कलश में अधिकार वह था कि, अपने में अशुद्ध परिणमन अपना व्याप्य है और आत्मा व्यापक है। और पुद्‌गल की पर्याय जो कर्मरूप होती है, वह कर्म(रूप) होती है, वह व्याप्य है और पुद्‌गल उसका व्यापक है। आत्मा उसका व्याप्य-व्यापक है, ऐसा नहीं है। ऐसे कर्म की पर्याय में आत्मा व्याप्य-व्यापक है, ऐसा नहीं। और अपनी व्याप्य-व्यापक (पर्याय में) कर्म व्याप्य - व्यापक है, ऐसा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? किस अपेक्षा से है यह समझना चाहिए। लिखा है, परंतु किस नय से, किस अपेक्षा से कौनसी विवक्षा है ? किस प्रकार की विवक्षा चलती है ? उस पर ध्यान रखकर उसका अर्थ करना चाहिए। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि, ``**समस्त कर्मों के द्वारा...**'' समस्त नाम आठों कर्म। ``**कर्मों के द्वारा किये गये...**'' भाषा देखो ! स्वभाव का वर्णन है न ? तो विभाव है यह कर्मों के निमित्त के अधीन होकर हुआ है, तो कर्मों के द्वारा हुआ है, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया ? यह तो समझना...समझना...समझना... ज्ञानस्वरूप भगवान है तो प्रत्येक अपेक्षा का ज्ञान समझना, यह वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया ? कौनसी अपेक्षा से कथन (है, यह समझना चाहिए)। नय का, आगम का, अन्य आगम का तात्पर्य क्या है ? एक-एक गाथा में पाँच अर्थ चलते हैं न ? शब्दार्थ, आगमार्थ (अर्थात्) दूसरे का आगमार्थ, नयार्थ और तात्पर्य। एक गाथा में पाँच अर्थ चलते हैं। यहाँ भी कर्मों द्वारा कहा, यह कौन सी अपेक्षा से है ? कि निमित्त की प्रधानता से विकृत (भाव) होता है, अपने स्वभाव के कारण विकृत होता नहीं। यह सिद्ध करने को यह (बात) कही है। आहाहा !

``**समस्त कर्मों के द्वारा किये गये, ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न...**'' आहाहा ! भगवान तो ज्ञायकस्वरूप है न, प्रभु ! और ज्ञायक का जहाँ अनुभव हुआ तो पर्याय में ज्ञान और आनंद की पर्याय उत्पन्न होती है। उसको विकार उत्पन्न होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा !

एक बात। और यह जो ज्ञायकमात्र पर्याय है वह क्रमवर्ती (है) और शक्ति अक्रमवर्ती (है)। इन दोनों का पिंड यह आत्मा है। यहाँ ये लेना है। समझ में आया ?

``**...ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न जो परिणाम...**'' परिणाम यानी विकार। ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न विकार - पुण्य-पाप, दया, दान आदि (परिणाम)। आहाहा ! व्यापारी को वही का वही धंधा इसलिये कोई नये तर्क या ऐसा कुछ करने का होता नहीं। इस भाव का सोना है, इस भाव की चांदी है। हररोज़ वही जात।

श्रोता : धन रळे तो ढ़गला थाय। (ऐसा गुजराती में कहते हैं)।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी धन नहीं है। वह तो पुण्य हो तो (मिले)। (बाकी तो) बहुत लोग पुरुषार्थ करते हैं बेचारे। फिर भी पुण्य हो तो मिलता है। पुण्य बिना पैसा मिलता नहीं, परंतु पैसा मिले तो भी उसे क्या मिलता है ? उसके पास तो `यह मेरा है' ऐसी ममता आ जाती है। पैसा तो पैसा में रहा। वह तो जड़ - पर द्रव्य है। आहाहा ! ये सब पैसेवाले करोड़पति बैठे हैं। धूल में भी करोड़पति नहीं है। जड़ का पति भगवान ! आहाहा ! निर्जरा अधिकार में कहा है कि, `भैंस का पति पाड़ा होता है' वैसे विकार का पति जड़ होता है। विकार अपना माने वह जड़ है। आहाहा ! (तो) पैसा (अपना) माने वह तो कहाँ (दूर) रह गया।

विकार की पर्याय द्रव्य में नहीं है, शक्ति में है नहीं और जहाँ द्रव्यशक्ति का भान हुआ तो पर्याय में भी विकार नहीं है। यह यहाँ लेना है। समझ में आया ? ``**...उन परिणामों के करण के...**'' उन विकारी परिणाम को करने में, पुण्य और पाप के विकारी (परिणाम) करने में, ``**...उपरमस्वरूप...**'' (अर्थात्) भगवान तो निवृत्तस्वरूप है। आहाहा !

सम्यग्दर्शन हुआ, चैतन्यधर्म का ज्ञान हुआ तो कहते हैं कि, (स्वभाव तो) विकारी परिणामों से अंत लानेवाला है - अभावरूप है। उपरम - निवृत्त(स्वरूप) है। आहाहा ! धर्मी जीव, सम्यक्‌दृष्टि जीव, विकार के परिणाम से निवृत्तस्वरूप है। आहाहा ! है ? उपरम की तीन व्याख्या कही। उपरम नाम निवृत्त, उपरम नाम अंत - वहाँ विकार का अंत है। विकार सहित नहीं, विकार का अंत नाम दूर है - अभाव है। आहाहा !

सम्यग्दर्शन में - अनंत शक्ति का धरनेवाला भगवान आत्मा उसका जहाँ आश्रय लिया, तब जो विकार के परिणाम होते हैं, उससे वह आश्रय लेनेवाला सम्यक्‌दृष्टि आत्मा विकार से निवृत्तस्वरूप है। विकार में प्रवृत्तस्वरूप कर्ता नहीं। विकार में प्रवृत्त स्वरूप हो तो कर्ता हो जाता। आहाहा ! समझ में आया ? बहुत (सूक्ष्म) मार्ग, भाई ! मार्ग ऐसा है। आहाहा ! जिसका फल अनंत आनंद और अनंत शांति और जो प्रगट हो वह अनंत काल रहे, उसका उपाय भी कुछ अलौकिक हो न ! आहाहा ! जिसके कार्य फल में

अनंत आनंद, अनंत ज्ञान, अनंत वीर्य, अनंत शक्ति की अनंतता की अनंत पर्याय प्रगट हो और वह समय-समय में भिन्न-भिन्न (हो) (भले) वही जात होती है परंतु (वही की वही) पर्याय नहीं। ऐसा सादि अनंत... अनंत... समाधि सुख में (रहने का) उपाय तो अलौकिक हो कि न हो ? जिसका फल अलौकिक लोकोत्तर (है) उसका उपाय भी अलौकिक है। समझ में आया ?

आत्मज्ञान - आत्मा का ज्ञान हुआ तो उस ज्ञान में ज्ञातापना - दृष्टापना का परिणाम आया। कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुआ (उसे कर्म के द्वारा) कहा। निमित्त द्वारा यह कथनशैली है। कहीं उपादान से (कहने में आता है)। कहीं निमित्त द्वारा (कहने में आता है)। समझ में आया ?

(समयसार) ६८ गाथा में कहा न ? जव से जव होता है। पुद्गल से (हुआ) विकारी परिणाम पुद्गल का है, वहाँ ऐसे कहा। आहाहा ! ये कुँआरी कन्या होती है न ? वह जुवारा बोती है। यह तो सब सुना हुआ है। शादी के लायक कन्या हो वह ऐसे बोले 'मारा जवना जुवारा रे' उसमें बात तो यह है कि, हम जब शादी करेंगे तब इस प्रकार का फल आयेगा और वह टिकेगा या नहीं टिकेगा ? जैसा बोया होगा वैसा फल आयेगा। बोया हो तो फल आये तो सही न ? शादी के बाद (पति) छ महिने में मर जाय और दूसरे - तीसरे दिन (भी) मर जाय, उसमें क्या है ? 'जवना जुवारा' (ऐसा हमारे गुजराती में) कहते हैं। वह अनंतकाय (जीव) हैं। (वह) उत्पन्न हो और काँटे निकले वह अनंतकाय है।

यहाँ तो कहते हैं कि, भगवान (आत्मा को) राग का कर्तापना नहीं है। आहाहा ! कर्म द्वारा हुए विकल्प से निवृत्तस्वरूप है। आहाहा ! समझ में आया ? धर्मी उसे कहें, सम्यक्दृष्टि उसे कहें, आत्मज्ञानी उसे कहें (कि) विकार से निवृत्तस्वरूप हैं। आहाहा ! प्रवृत्त स्वरूप है वह तो कर्ता हुआ, वह मिथ्यादृष्टि है। ऐसा मार्ग है ! लोगों को ठीक न लगे फिर विरोध करे, बापू ! विरोध करने जैसी चीज़ नहीं है, प्रभु ! यह तो भगवान के श्रीमुख से आयी हुई बात है। आहाहा ! वस्तु ऐसी है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा ! कोई तो कहते हैं न ? कि, व्यवहार से होता है (और) यहाँ तो कहते हैं कि, समकिती तो व्यवहार से निवृत्त स्वरूप है। क्या कहा ? लोगों की यह तकरार है न ? यहाँ तो कहना है कि, (आत्मा) पर की क्रिया का कर्ता नहीं है। क्योंकि कोई द्रव्य निकम्मा नहीं है। निकम्मा का अर्थ पर्याय बिना का नहीं है तो पर का कार्य करना वह बात रही नहीं। समझ में आया ? प्रत्येक द्रव्य निकम्मा अर्थात् पर्याय का कार्य बिना नहीं है।

यहाँ तो दृष्टि और दृष्टि के विषय की अपेक्षा चलती है। समझ में आया ? परंतु साथ में ज्ञान को लेना। पर्याय में जितना राग होता है उसका (उतना) परिणमनरूप है तो (उसका) कर्ता कहने में आता है। यहाँ ते प्रवृत्ति में करने लायक है, ऐसी प्रवृत्ति उसकी नहीं। समझ में आया ? राग करने लायक है, हितकर है ऐसी प्रवृत्ति ज्ञानी को होती नहीं। परंतु परिणमनरूप है तो कर्ता भी कहने में आता है। आहाहा ! समझ में आया ? बाद में अभोक्ता (शक्ति) भी आयेगी। वहाँ तो भोक्ता ही कहा है। जितने प्रमाण में मुनि को या समकिती को राग होता है (उतना) उन्हें दुःख का वेदन है।

श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती नरक में पड़ा है। श्रेणिक राजा भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले हैं। आहाहा ! अभी नरक में हैं। नरक से निकलकर माता के पेट में आयेंगे तब इन्द्रो आयेंगे। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! (इन्द्र) माता को कहते हैं, ``माता ! पुत्र तमारो धणी अमारो, तरण तारण जहाज रे, माता जतन करीने राखजे रे...'' देखो ! यह समकिती कहते हैं। सौधर्म इन्द्र एकावतारी समकिती (है)। व्यवहार से बोलने में तो ऐसा आता है कि, ``माता जतन करीने राखजे एने, तम पुत्र हम आधार रे...'' निमित्त के कथन (ऐसे) चले। समझ में आया ? और (जब) आते हैं तब ऐसा (कहते हैं) कि, `हे रत्नकुखधारिणि ! त्रिलोक के तीर्थंकर का तुम्हारे में गर्भ हुआ और केवलज्ञान पायेंगे तो अनेक जीवों का मोक्ष होगा' भले उपादान उसका है। समझ में आया ? `हे माता ! जनेता ! पहले तुझे नमस्कार !' बाद में तीर्थंकर को नमस्कार करते हैं। (एक ओर) यह विकल्प है (और) कहते हैं कि, `जतन करके रखना' (और) यहाँ ना कहते हैं। कौनसी अपेक्षा से कथन है ? (यह समझना चाहिए)। भक्ति का वर्णन है (उसमें) ऐसा आये बिना रहे नहीं। फिर भी उस विकल्प से तो (स्वरूप) निवृत्तस्वरूप है। आहाहा ! समझ में आया ?

``**...करण के...**'' (अर्थात्) उन परिणामों का करना। उसके ``**...उपरमस्वरूप... (उन परिणामों को करने की निवृत्ति स्वरूप**)'' आहाहा ! धंधा-पानी का तो कर्ता नहीं परंतु दया, दान का विकल्प उत्पन्न होता है उसका भी अकर्ता (अर्थात्) निवृत्तस्वरूप है। आहाहा ! समझ में आया ? यह भाषा तो सादी है। यह तो मूल तत्त्व की बात है। यह तत्त्व समझे बिना सब थोथा है। चाहे जैसे व्रत करे, तप करे, मुनिपना ले (सब थोथा है)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि, अकर्तृत्व स्वभाव उसका धर्म है। आहाहा ! एक बात - यह अकर्तृत्व स्वभाव राग के अभाव स्वरूप है। (फुटनोट में) नीचे आया न ? निवृत्ति, अंत और अभाव, (स्वभावः राग के अभावस्वरूप है)। वही अनेकांत हुआ। चैतन्य का शुद्ध स्वभाव

अकर्तृत्व (स्वरूप) है। अकर्तृत्व में ज्ञाता - दृष्टा का परिणाम होता है। उसमें राग का अभाव है - यह अनेकांत है। राग से भी (धर्म) होता है और ज्ञाता - दृष्टा परिणाम से भी धर्म होता है, यह तो फूदडीवाद है - अनेकांत नहीं।

श्रोता : फुदडीवाद क्या होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह फुदडी फिरत है न ? चक्कर फिरते हैं न ? (हिन्दी में) फिरकणी (कहते हैं)। यह तो यथार्थ स्याद्वाद का विषय है। अनेकांत है, आहाहा ! एक-एक शक्ति के वर्णन में निर्मल परिणति का वह कर्ता है और राग से तो निवृत्तस्वरूप है। उसका अर्थ कि उससे वह निवृत्त हुआ ही नहीं। उससे वह निवृत्त जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान (रूप पर्याय) राग से हुई ही नहीं। क्योंकि उससे तो वह निवृत्तस्वरूप है। आहाहा !

अब यहाँ तकरार यह लेते हैं कि, 'व्यवहार करते-करते (व्यवहार) साधन है तो निश्चय होगा। पंचास्तिकाय में भेद साध्य-साधन कहा है' भाई ! वह तो भिन्न साधन का ज्ञान करवाया है। साधन दो प्रकार के नहीं। साधन तो एक ही है। जैसे मोक्षमार्ग दो प्रकार का नहीं, मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से है। मोक्षमार्ग की कथन शैली दो प्रकार से है। निश्चय है वहाँ राग की मंदता में आरोप देकर सम्यग्दर्शन आदि कहने में आता है। मोक्षमार्ग दो नहीं, मोक्षमार्ग तो एक ही है। ऐसे साधन दो नहीं। साधन तो एक ही है। साधन कहो, उपाय कहो कि मार्ग कहो। (सब एकार्थ है)। साधन का निरूपण दो प्रकार का है। कथन दो प्रकार के हैं। समझ में आया ?

अकर्तृत्व शक्ति में कर्तृत्वपना का - राग का अभाव है, वही अनेकांत और वही स्याद्वाद है। आहाहा ! समझ में आया ? अकर्तृत्व शक्ति में अकारणकार्य शक्ति साथ में है। वह पहले आ गई है। अकर्तृत्व शक्ति का धरनेवाला भगवान, उसका जहाँ अनुभव हुआ तब कहते हैं कि, अनुभव में राग की मंदता कारण और अनुभव कार्य, ऐसा नहीं है। वैसे अनुभव कारण और राग उसका कार्य (ऐसा भी नहीं)। (ऐसी) अंदर अकारणकार्य शक्ति है। समझ में आया ? अकारणकार्य शक्ति पहले आ गई है। शुभभाव कारण और निश्चय सम्यग्दर्शन कार्य, ऐसा नहीं है। वैसे निश्चय सम्यग्दर्शन कारण और राग कार्य (ऐसा भी नहीं)। यह तो कहा (कि राग से) निवृत्त स्वरूप है। आहाहा ! !

शास्त्र का पठन करना (आये नहीं), कहनेवाले की कौनसी पद्धति है ? इसकी खबर नहीं और धर्म हो जाय (ऐसा कैसे हो सकता है) ? आहाहा ! समझ में आया ?

श्रोता : शास्त्र की पद्धति शास्त्र में है, हमको तो धर्म करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (धर्म) करना है परंतु पद्धति क्या (है) यह जाने तो करे, नहीं जैन तो कैसे करेगा ? उसमें लिखा है कुछ और अर्थ करे कुछ तो (वह तो) ऊँधी

(विपरीत) दृष्टि हो गई। समझ में आया ?

इस शक्ति में अकारणकार्य शक्ति भी पड़ी है और यह शक्ति अनंत गुण में है। आहाहा ! ज्ञान की पर्याय के साथ (अनंत शक्ति) उत्पन्न हुई, उसके साथ अकर्तृत्व शक्ति की पर्याय उत्पन्न हुई, तो ज्ञान की हीन दशा का कर्ता ज्ञान नहीं। आहाहा ! ऐसे राग से निवृत्तिस्वरूप है। आहाहा ! समझ में आया ? अनंत गुण में यह अकर्तृत्व शक्ति व्यापी है। प्रत्येक गुण की पर्याय में अकर्तृत्वपना है। ज्ञान की पर्याय पर से हुई है, शास्त्र सुनने से हुई है, शास्त्र से हुई है, देव-गुरु की भक्ति से ज्ञान की पर्याय हुई है, ऐसा नहीं है। उसमें ऐसा कारणकार्य है ही नहीं। आहाहा !

अकारणकार्य शक्ति (समयसार) ७२ गाथा में से निकाली है। जीवत्व शक्ति दूसरी गाथा के पहले शब्दमें से निकाली है। ऐसे प्रत्येक शक्ति निकाली है। शास्त्र में से निकाली है - टीका में से निकाली है। अंदर में से निकाली है। आहाहा !

यहाँ अकर्तृत्व शक्ति के साथ दूसरी अभोकर्तृत्व शक्ति (है)। आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि आहार-पानी, दाल, भात, शाक तो भोग सकता नहीं, स्त्री का शरीर भोग सकता नहीं परंतु विकार को भी भोगता नही है। ऐसी इसकी चीज़ है। समझ में आया ? आहाहा ! यह शरीर, मांस, हड्डी, चमड़ा इसका आत्मा भोग ले, ऐसा तो अज्ञानी को भी नहीं। परंतु ज्ञानी को जो भोग की, आसक्ति की वृत्ति उठती है उससे वह निवृत्तस्वरूप है। बराबर है ? सूक्ष्म बात है। आहाहा ! भोग की क्रिया तो है नहीं (अर्थात् कर सकते नहीं) वह तो अज्ञानी भी शरीर को भोग सकता नहीं। ये चमड़ा, हड्डी, मांस, खून है उसे भोगे कौन ? आत्मा अरूपी है और यह तो वर्ण, स्पर्श, गंध, रसवाली चीज़ है और दाल, भात, सब्जी, मौसंबी, रसगुल्ला यह सब तो जड़, मिट्टी, धूल है, रूपी है। रूपी को आत्मा भोगे ? अज्ञानी रूपी (पदार्थ का) लक्ष करके 'यह ठीक है' ऐसा राग उत्पन्न करके राग को भोगता है (और) मानता है कि, 'मैं इस शरीर को भोगता हूँ' दृष्टि विपरीत है। आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ तो अब धर्मी की बात चलती है। आहाहा ! क्या कहते हैं ? देखो !

''**समस्त कर्मों से किये गये, ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न परिणामों के अनुभव की (- भोकर्तृत्व की) उपरमस्वरूप अभोकर्तृत्व शक्ति**'' आहाहा ! पर का भोक्ता तो अज्ञानी भी नहीं और ज्ञानी को स्वरूप की दृष्टि, आत्मज्ञान हुआ (है) तो वह आत्मा का आनंद का भोक्ता है। राग भोगने के काल में उसे राग होता है परंतु राग से निवृत्तस्वरूप ही है। उसका भोक्ता नहीं।

श्रोता : (तो फिर) राग को कौन भोगता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग को राग भोगता है। भोक्ता की पर्याय में षट्कारक परिणमन विकार का है। अपनी अभोकर्तृत्व शक्ति की पर्याय में षट्कारकरूप निर्मल परिणति के षट्कारक हैं।

फिर से, ``**समस्त कर्मों से किये गये ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न परिणामों के अनुभव...**'' राग का अनुभव, द्वेष का अनुभव, विकल्प का अनुभव उससे उपरमस्वरूप है। आहाहा ! ऐसा मार्ग है।

दो-तीन वर्ष पहले ५० पंडित लोग इकट्ठे हुए थे। रात्रि को प्रश्न चर्चा की थी। उसमें यह चर्चा रखी थी (कि) `कोई भी पर द्रव्य का कर्ता नहीं माने तो वह दिगंबर नहीं' ऐसा उनको निश्चित करना है। अरे...! भगवान ! ऐसा मार्ग है न प्रभु ! दीपता, शोभित मार्ग है।

ज्ञानी को राग की आसक्ति होती है। समझ में आया ? (उसकी) रुचि नहीं (है)। राग की रुचि नहीं, राग में सुखबुद्धि नहीं। आसक्ति होती है परंतु उस आसक्ति से वे तो निवृत्त स्वरूप है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बातें हैं। आहाहा ! ऐसा मार्ग ! जिनमार्ग - यह जैनमार्ग है न ? तो जैन में राग का अभावस्वभावस्वरूप आत्मा का अभोक्ता गुण है। राग का भोक्ता गुण आत्मा में है नहीं। आहाहा ! कितनी धीरज चाहिए। अंदर द्रव्यस्वभाव में घुसकर, चैतन ज्ञायक का तल स्पर्श करके (अनुभव करना, उसमें कितनी धीरज चाहिए !) आहाहा !

ज्ञातापना का परिणाम कहा न ? क्या कहा ? ज्ञाता, ``**ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न...**'' आहाहा ! जानना - देखना परिणाम जो है... यहाँ परिणाम की (बात है)। द्रव्य, गुण तो (विकार से) भिन्न है ही परंतु धर्मी का ज्ञाता - दृष्टा का परिणाम विकार के परिणाम से निवृत्तस्वरूप है। आहाहा ! समझ में आया ? पाठ है न ?

अरेरे...! शास्त्र का अर्थ करने में भी अपनी दृष्टि रखकर अर्थ करे। शास्त्र को क्या दृष्टि से कहना (है) ? दृष्टि उस ओर नहीं ले जानी है और अपनी दृष्टि की ओर (अपनी दृष्टि रखकर) शास्त्र का अर्थ करना (है)। (यह पद्धति बराबर नहीं है)।

श्रोता : दृष्टि थी कहाँ ? दृष्टि तो आपने दी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ``**समस्त कर्मोंसे किये गये...**'' यहाँ भी `**किये गये**' आया। ``**ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न परिणाम...**'' यानी विकारी भाव। उसके ``**...अनुभव की (- भोकर्तृत्व की) उपरम...**'' (अर्थात्) निवृत्तस्वरूप। विकारी भाव के भोक्तापने से निवृत्तस्वरूप अभोकर्तृत्व शक्ति है। आहाहा !

भरत (चक्रवर्ती) जैसे सम्यक्दृष्टि धर्मी जीव, आत्मज्ञानी जीव को छ खण्ड का राज, ९६ हज़ार स्त्री (थी)। (उन्हें) भोग की आसक्ति के परिणाम थे परंतु स्वभाव की

दृष्टि के कारण, ज्ञाता - दृष्टा परिणाम के कारण विकारी परिणाम से निवृत्त स्वरूप, अभोक्ता आत्मा है। क्या कहा कि, जैसे अभोकर्तृत्व शक्ति द्रव्य में है, गुण में है ऐसा जहाँ परिणाम हुआ तो पर्याय में अभोक्तापना आया। समझ में आया ? अभोकर्तृत्व शक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्यापती है। द्रव्य, गुण में तो अनादि है परंतु जब (उसका) भान हुआ तब पर्याय में अभोक्तापना की पर्याय आयी। ज्ञाता - दृष्टापना की (पर्याय) कहो कि राग का भोक्ता नहीं (अर्थात्) अभोक्तापना की पर्याय कहो (एक ही बात है)। आहाहा ! ऐसा मार्ग !

फुरसद मिले नहीं (वह) निवृत्ति कब ले ? और कब निर्णय करे ? यह धूल और धमाल ! सारा दिन पाप...पाप... ये किया, वह किया... अरेरे...! बाहर का (कुछ) करना वह तो उसकी पर्याय में भी नहीं। और उसके द्रव्य, गुण में जो अभोक्तापना है, उसका स्वीकार होते ही अभोक्तापना पर्याय में आता है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! द्रव्य - गुण में तो अभोक्तापना त्रिकाल है (परंतु) पर्याय में अज्ञानी ने भोक्तापना माना है। द्रव्य का जहाँ अनुभव होता है तो पर्याय में भी राग का भोक्ता छूट जाता है। आहाहा ! समझ में आया ? अरे ! अनंत गुण की - शक्ति की पर्याय में अभोकर्तृत्व की पर्याय निमित्त है अथवा अभोकर्तृत्व का उसमें रूप है। तो ज्ञान की हीन दशा का और विपरीत दशा का भोक्ता जीव नहीं है। ऐसी बात ! आहाहा ! समझ में आया ? भाषा तो सादी है, भाई ! बहुत (कठिन) भाषा (नहीं है)। संस्कृत या व्याकरण ऐसा कुछ नहीं है। वह (सब) पंडित जाने।

यहाँ तो अभोक्ता शक्ति द्रव्य, गुण में तो त्रिकाल पड़ी है परंतु उसका भान हुआ, जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ तो अभोक्ता शक्ति की पर्याय में अभोक्तापना आ गया। पर्याय में अभोक्तापना आया तो राग का भोक्ता से वहाँ निवृत्त (स्वरूप) है। विशेष कहेंगे... !

प्रवचन नं. २१
शक्ति-२३ दि. ३१-०८-१९७७
सकलकर्मोपरमप्रवृत्तात्मप्रदेशनैष्पन्द्यरूपा निष्क्रियत्वशक्तिः।।२३।।

समयसार, शक्ति का अधिकार (चलता है)। आत्म वस्तु ऐसी अनंत शक्ति का, रत्न का भण्डार है। एक-एक शक्ति में अनंत शक्ति है। अनंत शक्ति संख्या से तो है। आकाश का जितना अनंत प्रदेश है उससे अनंत गुणी एक द्रव्य में शक्ति है। एक-एक शक्ति में अनंत-अनंत सामर्थ्य है और एक-एक शक्ति में अनंत पर्याय है। यह अनंत शक्तियाँ आत्मा में अक्रम से बिराजमान हैं। आहाहा ! उसकी प्रतीत और अनुभव होने पर अंतर में द्रव्यस्वभाव का स्व आश्रय करके ज्ञान की पर्याय में सारा द्रव्य और गुण का ज्ञान होता है। तो पर्याय में सब गुण की - शक्ति का एक अंश व्यक्त होता है। समझ में आया ?

यहाँ तो अपने निष्क्रिय शक्ति चलती है। थोड़ा सूक्ष्म है। सत्ता स्वरूप भगवान बिराजमान है। आहाहा ! उसका अस्तित्व अनंत गुण से है। आहाहा ! गुण और पर्याय का (समुदाय) आत्मा है। यहाँ विकारी पर्याय नहीं ली है। शक्ति और शक्तिवान ऐसा भगवान आत्मा ! उसके सामान्य ध्रुव पर दृष्टि होने से, ध्रुव को ध्येय बनाने से जितनी संख्या गुणों की है इतनी संख्या में शक्ति की आंशिक व्यक्तता सम्यग्दर्शन में होती है। आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ अपनी भोक्ता शक्ति हो गई। अब आज २३ वीं (शक्ति लेते हैं)।

``**समस्त कर्मों के उपरमसे...**'' भाषा ऐसी है, ``**समस्त कर्मों के उपरमसे...**'' (२१ और २२ शक्ति में) ऐसा (कहा) था ``**समस्त कर्मों के द्वारा किये गये परिणाम...**'' अकर्ता - अभोक्ता (शक्ति में) ऐसा (कहा) था। यहाँ तो कहते हैं, ``**समस्त कर्मों के उपरमसे प्रवृत्त**

आत्मप्रदेशों की निस्पंदतास्वरूप (- अकंपतास्वरूप) निष्क्रियत्व शक्ति'' है। आहाहा ! निष्क्रियत्व शक्ति (ऐसा कहा) तो तद्दन (एकदम) अकंपपना तो अजीव में होता है। परंतु आस्त्रव (अधिकार १७८, गाथा के भावार्थ में) अर्थ का अर्थ क्षायिक समकिती को ऐसा किया है। परंतु समकिती को ही निष्क्रियत्व शक्ति का अंश व्यक्तरूप से है। समझ में आया? उसमें ऐसा लिया है कि, क्षायिक समकिती को उस संबंधी अविरति, जोग का नाश होता है। इस संबंधी इतना (कथन है)। वास्तव में तो सम्यग्दर्शन में सत्यस्वरूप पूर्णानंद जहाँ अंतर में प्रतीत में आया, अनुभव में आया, अनुभूति में द्रव्य का स्वभाव का अनुभव हुआ तो सम्यक्दृष्टि को भी निष्क्रियत्व शक्ति का एक अंश प्रगट है। यहाँ समस्त कर्म का अभाव लिया है।

निश्चय में तो आत्मा में अनंत आनंद, अनंत ज्ञान, अनंत स्वच्छता, प्रभुता (है) वैसे निष्क्रियत्व शक्ति भी अनंत पड़ी है। उस स्वभाव सन्मुख की प्रतीति होने से निष्क्रियत्व शक्ति का भी अंश चौथे गुणस्थान से व्यक्त - प्रगट होता है। आहाहा !

श्रोता : सर्व गुणांश ते सम्यक्त्व।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्व गुणांश ते समकित - यह (कथन) इस संबंध में है। (और) रहस्यपूर्ण चिट्ठी में ``ज्ञानादि एक देश व्यक्त'' ऐसा पाठ है। समझ में आया ? ``ज्ञानादि एकदेश व्यक्त...'' ऐसा आया है। और केवलज्ञानी को ज्ञानादि सर्वदेश व्यक्त है। उसका अर्थ क्या ? वहाँ ऐसा नहीं कहा कि, ज्ञान, दर्शन, आनंद का ही एक अंश व्यक्त होता है। ज्ञानादि सर्व गुणों की एकदेश व्यक्तता - उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा ! श्रीमद्जी ने सर्वगुण कहा। (और) रहस्यपूर्ण चिट्ठी में ऐसा (कहा)। समझ में आया ?

(आत्मा) ज्ञानादि अनंत गुण का (भण्डार है)। आहाहा ! चैतन्य रत्नाकर भगवान आत्मा ! अनंत-अनंत गुण की खाण - खजाना है। और एक-एक शक्ति में भी अनंत ताकत ! और एक-एक शक्ति में अनंत शक्ति का रूप ! एक-एक शक्ति अनंत गुण में व्यापक और एक-एक शक्ति का भान हुआ तब तो एक शक्ति द्रव्य, गुण और पर्याय में व्यापक हो गई। समझ में आया ? तो निष्क्रियशक्ति भी पर्याय में व्यापक हुई। आहाहा ! निष्क्रिय अजोगपना का अंश चौथे गुणस्थान में प्रगट हुआ। आहाहा ! अरे ! प्रतिजीवी गुण जो चार अघाती (कर्म का) नाश होकर (प्रगट) होते हैं उसका भी अंश प्रगट हुआ है, ऐसा कहते हैं। `ज्ञानादि सर्व गुण का एकदेश व्यक्त' का अर्थ क्या ? समझ में आया ?

मोक्षमार्ग प्रकाशक में रहस्यपूर्ण चिट्ठी है न ? श्रीमद्जी में भी (आता) है। परंतु इसमें (मोक्षमार्ग प्रकाशक में) दिगंबरों को थोड़ा ख्याल में रहे। यहाँ तो थोड़ा आगम का आधार देना है न ? ``**भाईजी, तुमने तीन दृष्टांत लिखे व दृष्टांत में प्रश्न लिखा,**

सो दृष्टांत सर्वांग मिलता नहीं है। दृष्टांत है वह एक प्रयोजन को बतलाता है।'' क्योंकि ज्ञानादि गुण एकदेश प्रगट हुआ, ऐसा कहते हैं। जैसे चंद्रमा एकदेश अंशे बाह्य में प्रगट हुआ और दूसरा आवरण में है, ऐसा (यहाँ) नहीं है। यहाँ तो सर्व असंख्य प्रदेशे असंख्य गुण एकदेश प्रगट हुआ है। (यहाँ) चंद्र का दृष्टांत लागू नहीं पड़ता। चंद्र के बीज का एक भाग मात्र इतने में है और बाकी दूसरा (भाग) आवरण में है। भले ख्याल में सारा आता है। वैसे सम्यग्दर्शन में पूर्ण (स्वरूप) ख्याल में आता है। परंतु सम्यक्दृष्टि की व्यक्त (पर्याय में) अनंत गुण का एक अंश प्रगट है। समझ में आया ? आहाहा ! दृष्टांत में जैसे चंद्र का नीचे का भाग व्यक्त है और दूसरा भाग सारा आवरण में है, ऐसा दृष्टांत यहाँ लागू नहीं पड़ता। भले दृष्टांत आपने लिखा परंतु यह दृष्टांत यहाँ लागू नहीं पड़ता। यहाँ तो सारा असंख्य प्रदेश में एक अंश व्यक्त पूर्ण (प्रदेश में) एकदेश व्यक्त है। चंद्रमा तो अमुक भाग में व्यक्त है और बाकी आवरण में है। इसलिये यहाँ इस दृष्टांत का सिद्धांत लागू नहीं पड़ता। समझ में आया ?

भगवान आत्मा ! असंख्य प्रदेश में अनंत गुण के निधान से (भरा है)। एक-एक प्रदेश में अनंत गुण है। सर्व (प्रदेश में) व्यापक ऐसे अनंत गुण (हैं)। चंद्र की भाँति इसका एक नीचे का हिस्सा व्यक्त है, यहाँ ऐसा दृष्टांत लागू नहीं होता। यहाँ तो सारे असंख्य प्रदेश में अनंत गुण का एक व्यक्त अंश प्रगट है। समझ में आया ? देखो ! चौथे गुणस्थानवर्ती आत्मा में ज्ञानादि गुण (लिये)। उसमें कोई गुण बाकी नहीं रखे। प्रतिजीवी गुण या निष्क्रिय गुण (ऐसा कुछ बाकी नहीं रखा)। सब आ गया। आहाहा !

गंभीर चैतन्यरत्न से भरा भगवान आत्मा उसका आश्रय लेकर जहाँ सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ (तो पर्याय में असंख्य प्रदेश में अनंत गुण का एक अंश व्यक्त - प्रगट हुआ)। ``**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।**'' ११ वीं गाथा जैन दर्शन का प्राण (है)। ऐसा जैन संदेश में लिखा था। ``**भूदत्थमस्सिदो खलु**'' - सारा भूतार्थ, सत्यार्थ, त्रिकालवर्ती उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन (होता है)। उसमें अनंत शक्ति है। अनंत शक्तिरूप द्रव्य का जहाँ आश्रय लिया - उस पर्याय में असंख्य प्रदेश में एक अंश व्यक्त प्रगट है जैसे चंद्रमा है (वैसेमात्र) नीचे के प्रदेश में व्यक्त है, ऐसा नहीं है। आहाहा !

आस्त्रव अधिकार की १७६ गाथा के भावार्थ में लिखा है, ``**सम्यक्दृष्टि के मिथ्यात्व का और अनंतानुबंधी कषाय का उदय न होने से उसे उस प्रकार के भावास्त्रव तो होते ही नहीं। और मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय संबंधी बंध भी नहीं होता...**'' बाद में कौंस में लिखा है। ``**क्षायिक सम्यक्दृष्टि की सत्तामें से मिथ्यात्व का क्षय होते समय ही अनंतानुबंधी कषाय का तथा तत्संबंधी अविरति और योगभाव का भी क्षय हो गया**

होता है'' है ? परंतु उन्होंने क्षायिक डाला है। और यह रहस्यपूर्ण चिट्ठी में तो सर्व समकितदृष्टि कहा। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ क्षायिक क्यों कहा ? कि (मिथ्यात्व का) क्षय हुआ है वह वैसा का वैसा ही रहेगा। इस अपेक्षा से उसे क्षायिक कहा। चौथे गुणस्थान में योग के अंश का भी क्षय है। कंपन के एक अंश का क्षय है। आहाहा ! निष्क्रिय शक्ति है उसका अकंपस्वरूप स्वभाव है। सम्यग्दर्शन में इस अकंपस्वभाव का - शक्ति का एक अंश व्यक्त - प्रगट (हुआ है)। अजोगपना की पर्याय का प्रगटपना व्यक्त हुआ है। आहाहा ! समझ में आया ? अद्‌भुत गंभीर है ! आहाहा !

एक दूसरा न्याय इस (रहस्यपूर्ण चिट्ठी में) आया न ? एकदेश कहा न ? और पीछे क्या है ? देखो ! ``**ज्ञानादिगुण एकदेश प्रगट हुए हैं**'' गुण शब्द का (अर्थ) पर्याय। ``**तेरहवें गुणस्थान में आत्मा के ज्ञानादिक गुण सर्वथा प्रगट होते हैं**'' अर्थात् सर्वदेश प्रगट (होते हैं)। (यहाँ आस्रव अधिकार में) ``**क्षायिक सम्यक्‌दृष्टि की सत्तामें से मिथ्यात्व का क्षय होते समय ही अनंतानुबंधी कषाय का तथा तत्संबंधी अविरति...**'' - `तत् संबंधी अविरति' अभी है तो चौथा (गुणस्थान)। परंतु उस संबंधी अनंतानुबंधी आदि कषायभाव था उसका अभाव हुआ। आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई ! यह तो भगवान सारा पूर्ण अनंत-अनंत चेतन शक्ति का रत्नाकर, अनुभव में जहाँ आया तो जितनी शक्ति है उसका (एक अंश प्रगट हो गया)। अकंप हो, अजोगपना हो, ज्ञान हो, आनंद हो, ईश्वरता - प्रभुता हो, स्वच्छता हो, कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान शक्ति हो - सब का एक अंश - देश व्यक्त - प्रगट चौथे गुणस्थान में होता है। आहाहा ! थोड़ा सूक्ष्म है। समझ में आया ? ज्ञानचंद्र की बात है। आहाहा ! यहाँ जो निष्क्रिय शक्ति कहते हैं, सम्यग्दर्शन में इस (शक्ति का) भान हुआ तो पर्याय में (यह शक्ति) पर्याय में व्यापती है। इसमें तो बहुत गंभीरता है।

पुण्य के कारण पैसे मिल गये तो वहाँ कोई डहापण काम नहीं करता। डहापण (माने) समझे ? होंशियारी। धूल में भी होंशियार नहीं है। आहाहा ! अनंत गुण का पिंड प्रभु इसका जहाँ स्वीकार हुआ, सत्कार हुआ, आश्रय हुआ, सन्मुख हुआ तो जितनी शक्तियाँ हैं उसका एक अंश व्यक्त - प्रगट (होता है)। द्रव्य, गुण में तो (शक्ति) है ही। (परंतु) पर्याय में (भी) व्याप्त होती है। यह पहले आ गया है। प्रत्येक शक्ति द्रव्य, गुण और पर्याय में व्याप्त होती है। समझ में आया ? आहाहा ! जैन दर्शन और उसमें द्रव्यानुयोग तत्त्व बहुत सूक्ष्म है। भगवान का यश ऐसा है कि अनंत गुण का पालन करे। आहाहा ! क्या कहते हैं ?

निष्क्रियता प्रगट हो गई ? हाँ, चौथे गुणस्थान में आंशिक निष्क्रियता प्रगट हो गई। आहाहा ! भाई ! यहाँ तो जितने गुण हैं (उसमें) प्रतिजीवी गुण भी गुण है कि नहीं ? तो सत्य स्वरूप भगवान जो अनंत गुण का पिंड उसकी सत्य, पूर्ण सत् की सत् प्रतीति, सत् दर्शन - सत् का दर्शन, सत् की प्रतीति, सत् का देखना ऐसी प्रतीति जहाँ आत्मा में हुई, तो जितनी शक्तियाँ हैं उसका एक अंश पर्याय में व्याप्त होता है। आहाहा ! यह द्रव्य, गुण पर्याय की व्याख्या, कोई कहता था कि, (लोग) द्रव्य, गुण, पर्याय की व्याख्या ही नहीं समझते। कितने लोगों को (तो) द्रव्य, गुण, पर्याय की खबर नहीं। आहाहा !

श्रोता : द्रव्य यानी पैसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यहाँ कहा था। यहाँ लिखा है न ? `द्रव्यदृष्टि ते सम्यक्‌दृष्टि' - तो एक श्वेतांबर आये। उन्होंने देखा ओहोहो ! यहाँ पैसेवाले बहुत आते हैं। द्रव्यदृष्टि ते सम्यक्‌दृष्टि ? जिसके पास बहुत द्रव्य (पैसा) है वह सम्यक्‌दृष्टि ? ऐसा प्रश्न किया। आहाहा ! अरेरे...! ५०-५०, ६०-६० वर्ष से जैन में जन्म लिया (उसे) कुछ खबर नहीं। बापू ! यहाँ द्रव्य - पैसा की बात कहाँ है ? यहाँ तो पैसा धूल में कहकर तिरस्कार हो जाता है। वह अजीव में जाता है और पैसा का स्वामी हो तो वह जड़ है। `भैंस का स्वामी पाड़ा' होता है। (ऐसी गुजराती में कहावत है)। ऐसा अजीव का स्वामी (बनकर) `यह मेरा है' (ऐसा माननेवाला) तो जड़ है। वह चैतन्य नहीं। आहाहा !

निर्जरा अधिकार में टीका में (ऐसा आया है कि) मैं अगर राग का स्वामी होऊँ तो मैं अजीव हो जाऊँ। अपने शुद्ध स्वरूप की प्रतीति अनुभव में हुई तो सम्यक्‌दृष्टि कहते हैं कि, मैं राग हूँ, ऐसा मानूं तो मैं अजीव - जड़ हो जाऊँ। आहाहा ! लोग व्यवहार रत्नत्रय से निश्चय होगा, ऐसा मानते हैं। जड़ से चैतन्य का विकास होता है। बहुत विपरीत (मान्यता)। आहाहा ! उस विपरीतता का ढिंढ़ोरा पिटे. (सोनगढ़ की बात) एकांत है... एकांत है।

यहाँ तो कहते हैं एकांत ही है। ठीक कहते हैं। वह एकांत कहते हैं (परंतु उसे एकांत स्वरूप की) दृष्टि नहीं। एक अपने स्वरूप की एकाग्रता में एकांत है। एकांत में आनंद आता है। शांति आती है। अनंत गुण - शक्ति आंशिक व्यक्त होती है। आहाहा ! आनंद गुण का भी अंश आया, वीर्य गुण का भी अंश (आया)। वीर्य गुण (का कार्य) क्या ? स्वरूप की रचना करे यह वीर्य। शुभभाव की रचना करे यह वीर्य नहीं। (उसे वीर्य कहा नहीं)। आहाहा ! और अपनी पर्याय में प्रभुता का गुण भी (प्रगट होता है)। (पर्याय में) प्रभुता आती है। शक्ति के धरनेवाले की दृष्टि होने से, प्रभुता शक्ति के कारण

पर्याय में प्रभुता का परिणमन होता है। द्रव्य, गुण, पर्याय में प्रभुता व्यापती है। आहाहा ! समझ में आया ? मार्ग तो सूक्ष्म है, बापू ! बहुत सूक्ष्म (है)। क्या हो सकता है ? आहाहा !

बाहर के साथ क्या संबंध है ? शुभ भाव भी दुःखदायक है। भाई ! तुझे खबर नहीं। तेरा स्वभाव तो आनंद है न ! तो आनंद की पर्याय होनी चाहिए। उसके बदले शुभभाव में तू रुक गया, दुःख में रुक गया तो दुःख के अभाव स्वरूप आनंद स्वरूप के समीप गया नहीं और दुःख के समीप रहा। आहाहा ! जिसका संग करना नहीं उसके संग में पड़ा। शुभभाव दुःख है उसका संग करना नहीं और भगवान आनंद स्वरूप, असंग में स्वरूप का संग करना है। आहाहा ! समझ में आया ? असंग का संग किया नहीं और राग का संग किया तो वह तो दुःख लिया। दुःख को अपने पर ले लिया, दुःख को भोगा। आहाहा ! आदमी को कठिन लगे। शुभजोग साधन है, (ऐसे) चिल्लाते हैं न ? (कोई विद्वान ऐसा कहते हैं)। `शुभ जोग मोक्ष का मार्ग है, जो शुभ को हेय माने वह मिथ्यादृष्टि है' अरेरे...! प्रभु ! ये क्या सिखा ? बापू ! तुझे दुनिया मानेगी परंतु वस्तु स्थिति में विरोध होगा, भाई ! आहाहा !

यहाँ कहते हैं, ``**समस्त कर्मों के उपरमसे...**'' २१, २२ शक्ति में क्या आया था ? ``**समस्त कर्मों के द्वारा किये गये...**'' अकर्तृत्व - अभोकर्तृत्व में आया था न ? समस्त कर्मों के द्वारा किये गये विकार आदि (परिणामों के निवृत्तस्वरूप अकर्तृत्व शक्ति है)। अकंप शक्ति की विकृत अवस्था कर्म के द्वारा हुई है। समझ में आया ? भगवान का निष्क्रिय अकंप स्वभाव है। उसकी पर्याय में कर्म के द्वारा कंपन होता है, ऐसा आया न ? भाई ! आहाहा ! (यहाँ) समस्त कर्मों के उपरमसे - (ऐसा लिया है)। (और) पहले तो ऐसा कहा था, कर्म द्वारा हुए विकार के उपरमसे अकर्ता और अभोक्ता है। अब यहाँ तो कर्म का अभाव (लिया है)। आहाहा ! समझ में आया ? टीका तो टीका है !! शक्ति का भण्डार भरा है। आहाहा ! चैतन्य रत्न है। चैतन रत्नाकर है।

यहाँ कहते हैं, प्रभु ! तुम सम्यक्दृष्टि को भी ऐसा बताते हो ? सर्व शक्ति निष्कंप है - अकंप है, उसमें भी अकंप का रूप सर्व गुणों में है। सर्व गुणों में पर्याय में निर्मलता होती है वहाँ कंपपना है ही नहीं। कंपपना नहीं वही वस्तु की पर्याय है। कंपपना है उसका यहाँ अभाव बताया है। क्या कहा समझ में आया ? स्वरूप की अनंत शक्ति में निष्क्रिय - निष्कंप शक्ति है। निष्क्रिय शक्ति के परिणमन में - पर्याय में निष्क्रियता आयी, यह द्रव्य की पर्याय (है)। और कर्म के निमित्त से जितना कंपना है उसका निष्क्रिय पर्याय में अभाव है। व्यवहार का अभाव है, यह अनेकांत और स्याद्वाद है। समझ में आया ? यह तो गंभीर है। एक-एक शक्ति का वर्णन ओहोहो !

भाई ! दीपचंदजी ने (शक्ति का वर्णन) बहुत किया है। सवैया में - परमात्मपुराण में भी है। थोड़ा समयसार नाटक में भी है। परंतु इन्होंने जो किया है ऐसा विस्तार कहीं है नहीं. बहुत विस्तार (किया है)। ओहोहो ! एक-एक पर्याय में अनंत नट, अनंत थट, अनंत रूप, अनंत भाव ऐसे-ऐसे कितने ही बोल लिये हैं। एक-एक पर्याय में हों !

यहाँ कहते हैं कि, ``**समस्त कर्मों के उपरमसे...**'' (अकर्तृत्व - अभोकर्तृत्व में) परिणाम के उपरमसे, ऐसा कहा। अकर्तृत्व और अभोकर्तृत्व में कर्म द्वारा जो विकार परिणाम हुआ उसके उपरमसे अकर्तृत्व - अभोकर्तृत्व था। उससे निवृत्त होकर अकर्ता और अभोक्ता कहा। यहाँ सर्व कर्म से निवृत्त है। आहाहा ! क्योंकि कर्म तो तेरे में अभावरूप है और यह शक्ति का परिणमन तो भावरूप है। आहाहा ! सूक्ष्म मार्ग, भाई ! लोगों को इस का अभ्यास नहीं और यह सब (संसार में) रखड़ने का अभ्यास (करते हैं)। सारा दिन ये किया और वो किया।

यहाँ कहते हैं, ``**समस्त कर्मों के उपरमसे...**'' आहाहा ! सभी कर्मों का उपरम ? (तो कहते हैं) कर्मों का अभाव है तो उपरम ही है। द्रव्य जो भगवान आत्मा ! उसका द्रव्य, उसका गुण और उसकी पर्याय - समस्त कर्म के उपरमसे बात है। कर्म के संबंध से (बात) नहीं है। आहाहा ! यह शक्ति सूक्ष्म है। अकंपपना चौथे गुणस्थान से सिद्ध करना (ग़ज़ब बात है !)। आहाहा ! भाई ! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर की ज्ञानधारा है। इसकी दिव्यध्वनि - प्रवचन अमृतधारा, उसे समझने में तो बहुत प्रयत्न चाहिए। समझ में आया ? एक M.A. और L.L.B. के लिये (कितने वर्ष अभ्यास करते हैं ?)।

छोटी उम्र में एक मेरा मित्र था। हम पालेज १३ वर्ष की उम्र में गये। बाद में बहुत साल के बाद भावनगर आये। तब वह मिला था। हमे देखकर कहा, `अरे ! आप यहाँ कहाँ से ?' (मैंने) कहा, `पालेज से आया हूँ।' (और पूछा) कितने साल से पढ़ते हो ? (उसने कहा), `२२ साल से पढ़ता हूँ' मैंने तो सात कक्षा पढ़कर छोड़ दिया था। सातवीं कक्षा की परीक्षा नहीं दी थी। परीक्षा में छट्ठी कक्षा की परीक्षा दी थी। सातवीं छोड़कर पालेज गये थे। (तब) पढ़ाई छोड़ दी। एक छ महीना तो यह अभ्यास कर ! अमृतचंद्राचार्य (कहते हैं), एक छ मास तो अभ्यास कर, प्रभु `लागी लगन हमारी, लगन लगा दे परमात्मामें' आहाहा ! तुम ही परमात्मा हो ! दूसरे परमात्मा की लगनी तो राग है। आहाहा !

निष्क्रिय (शक्ति की) बात (चलती है)। आहाहा ! चौथे गुणस्थान में निष्क्रिय शक्ति की व्यक्तता - प्रगटता पर्याय में प्रगटी है। आहाहा ! जो चौदहवें गुणस्थान में अजोगपना प्रगट होगा उसका एक अंश चौथे (गुणस्थान में) प्रगट हो गया है। आहाहा ! समझ

में आया ? दूसरा एक न्याय आया है न ? शुभभाव है उसमें शुद्धता का अंश जो न हो तो ज्ञान बढ़ के केवलज्ञान होता है (ऐसे ही) शुभ बढ़कर यथाख्यात चारित्र होता है ? क्या कहा समझे ? मति - श्रुतज्ञान की पर्याय व्यक्त हुई वह तो ज्ञान की धारा बढ़कर केवलज्ञान में जाती है। परंतु शुभभाव में जो शुद्धता का अंश न हो तो, (क्या) शुभभाव बढ़कर यथाख्यात चारित्र होता है ? तो शुभभाव में भी शुद्ध का अंश है, यह बढ़कर यथाख्यात चारित्र होता है। मोक्षमार्ग प्रकाशक में उपादान - निमित्त की चिट्ठी में लिया है, आहाहा ! क्या कहा ? कि, आत्मा में शुभ जोग के काल में भी स्थिरता का - शुद्धता का जो अंश न हो तो वह अंश बढ़कर यथाख्यात (चारित्र) कहाँ से होगा ? शुभ जोग बढ़कर यथाख्यात चारित्र होगा ? और ज्ञान बढ़ा है तो क्या चारित्र की शुद्धि बढ़ जायेगी ? एक गुण की पर्याय (बढ़ती है उसमें) दूसरे गुण की पर्याय बढ़ती है, ऐसा होता ही नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? वहाँ सिद्ध किया है, शुभ जोग वर्ते (छे, ते समये) शुद्ध का अंश है। परंतु शुद्ध अंश का किसको लाभ होगा ? (कि जिसे) ग्रंथिभेद हुआ है, उसको (लाभ होगा)। जिसको राग की एकता टूट गई है, उसका वह शुद्ध अंश बढ़कर यथाख्यात (चारित्र) होगा। ज्ञान की शुद्धि ज्ञान को बढ़ाती है। ज्ञान की शुद्धि बढ़ गई इसलिये चारित्र की शुद्धि बढ़ जाय (ऐसा नहीं है)। एक गुण की शुद्धि में दूसरे गुण की (शुद्धि बढ़े) ऐसा नहीं है। आहाहा ! मोक्षमार्ग प्रकाश में पीछे है। आहाहा !

बनारसीदास में परमार्थ वचनिका में कहा है कि, मैं यथार्थ सुमति प्रमाण केवलज्ञान अनुसार यह कहता हूँ। आया है ? आहाहा ! प्रभु ! तुम चौथे गुणस्थानवर्ती सम्यक्‌दृष्टि (हो फिर भी) केवलज्ञान अनुसार तुम यह चिट्ठी कहते हो, तो इतना ज़ोर !! समझ में आया ? ``**वचनातीत, इन्द्रियातीत, ज्ञानातीत**'' (यहाँ) ज्ञानातीत कहा। (इसका मतलब) विकल्पवाला ज्ञान। ``**इसलिये यह विचार बहुत क्या लिखें ? जो ज्ञाता होगा वह थोड़ा ही लिखा बहुत करके समझेगा**'' थोड़ा लिखा बहुत करके जानना। ``**जो अज्ञानी होगा वह यह चिट्ठी सुनेगा सही परंतु समझेगा नहीं। यह वचनिका ज्यों की त्यों सुमतिप्रमाण केवली वचनानुसारी है।**'' यह वचनिका यथायोग्य मेरी योग्यता प्रमाण, सुमति प्रमाण (लिखी है)। परंतु केवली भगवान के अनुसार है। ``**जो इसे सुनेगा, समझेगा, श्रद्धेगा उसे कल्याणकारी है - भाग्य प्रमाण**'' आहाहा ! चौथे गुणस्थानवाले ऐसा कहते हैं कि, मेरी यह बात केवलज्ञान वचनानुसार है।

(उस समय में) यहाँ केवलज्ञान तो था नहीं। केवलज्ञानी के पास तो कुंदकुंदाचार्य गये थे, बनारसीदास तो गये नहीं थे। वे भगवान आत्मा के पास गये थे न ! तो हम

जो कहते हैं वह केवली वचन अनुसार कहते हैं। आहाहा ! (भावलिंगी) संतोंकी तो बलिहारी (है ही) परंतु दिगंबर समकिती - गृहस्थी की (भी) बलिहारी (है) !! आहाहा ! (कोई ऐसा कहते हैं) कि, `आचार्य के सिवा किसी का (आधार) नहीं (चलेगा)। विद्वानों की बात नहीं, आचार्य का कथन होना चाहिए' भगवान ! सम्यक्‌दृष्टि हो कि पंचम गुणस्थानवाले हो कि छट्ठे (गुणस्थानवाले) हो, सब केवली अनुसार ही कहते हैं। आहाहा ! उसमें कोई फेरफार नहीं है।

यहाँ कहते हैं, ``**समस्त कर्मों के उपरमसे प्रवृत्त...**'' देखो ! परिणमन में प्रवृत्त। परिस्पंद रहित क्रिया। परिणाम में प्रवृत्त। इस शब्द में गूढ़ता है। शक्ति में तो (गूढ़ता) है परंतु ``**आत्म प्रदेशों की निस्पंदता...**'' असंख्य प्रदेश की अकंपता। आहाहा ! मेरु पर्वत हिले तो प्रदेश हिले - कंपे। ऐसी (अचल) निस्पंदता है। आहाहा ! समझ में आया ? ``**निस्पंदतास्वरूप (- अकंपतास्वरूप)**'' निष्क्रिय का अर्थ अकंपस्वरूप। चौथे गुणस्थान में भी अकंप स्वरूप जो शक्ति है, उसका एक अंश - सर्व गुणांश में (उसका) भी एक अंश प्रगट हुआ, ऐसा कहने में आया है, ऐसा है। आहाहा ! समझ में आया ?

जोग के अंश की बात तो ली नहीं और जितना कंप है उसका अभाव लिया। द्रव्य, गुण, पर्याय में निष्कंपता की व्यापती यह आत्मा (है)। जो अकंप - निष्कंप पर्याय हुई, यह क्रमवर्ती निष्कंपता की पर्याय और अकंप गुण अक्रम, दोनों का समुदाय यह आत्मा (है)। कंप का समुदाय यह आत्मा, ऐसा नहीं लिया। कंप है, परंतु उस कंप का अकंप की पर्याय में अभाव है, आहाहा ! भाई ! ऐसी बात है ! शक्ति का वर्णन (गज़ब है) !

उसके दृष्टि के विषय में सारी शक्तियाँ आती हैं। शक्ति का पर्याय में अकंपपना हुआ। आहाहा ! प्रभु ! शास्त्र में तो १४ वें गुणस्थान में अजोग कहा, १३ वें (गुणस्थान में भी) अभी सयोग कंपन कहा है। आंशिक कंपन कहो परंतु यहाँ तो सम्यग्दर्शन में समस्त कर्म का अभाव है। उस कारण से निस्पंदता की पर्याय में कर्म का अभाव है और कर्म के निमित्त से कंपन हुआ उसका भी अभाव है, भाई ! आहाहा ! ऐसी गंभीर (बात है)। आहाहा ! ओहोहो ! दिगंबर संतों के सिवा ऐसी बात कहीं है (नहीं)। कर्म के निमित्त से कंपन है (वह) अपनी योग्यता से है। परंतु निमित्त के संबंध से कंपन है, उसका यहाँ अकंप पर्याय में अभाव (है)। द्रव्य, गुण में तो अभाव है। (परंतु पर्याय में भी अभाव है, ऐसा कहते हैं)। ऐसी बातें हैं ! ऐसा मार्ग कहाँ है, बापू ? आहाहा !

श्रोता : गुरुदेव (आपने) सबको निष्कंप बना दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका निष्कंप स्वरूप ही है। शक्ति निष्कंप है। शक्ति - उसका

सामर्थ्य (उसमें) अक्रियपना का सामर्थ्य है। सक्रियपना - कंपन का उसका सामर्थ्य है ही नहीं। आहाहा ! एक शक्ति में ५० मिनिट तो हो गई। उसकी गंभीरता का पार नहीं है।

अकंपशक्ति में जो उसका द्रव्य का अनुभव हुआ तो अकंपना का परिणमन हुआ, वह अकंप(पना) कारण और कंप कार्य, ऐसा नहीं और कंप कारण और अकंप(पना) कार्य, ऐसा भी नहीं। आहाहा ! इसमें तो बहुत भरा है। कंप है, शुभ उपयोग तो है परंतु यहाँ शुभ उपयोग का अभाव है। ऐसी बात है, भाई ! कितने ही लोगों को तो पहली बार सुनने को मिलता होगा। भगवान ! तेरे अनंत गुण में एक अकंप नाम का गुण है, तो सर्व गुण अकंप है। कोई गुण ऐसे कंपते नहीं। समझ में आया ? एक ज़गह तो ऐसा लिया है कि, योग का कंपन है उसमें धर्मास्तिकाय का निमित्त नहीं। कंप तो पर्याय में है तो धर्मास्तिकाय निमित्त कब आयेगा ? कंपन को धर्मास्तिकाय का निमित्त कहो तो स्थिरता में - अकंप में अधर्मास्तिकाय निमित्त कब आयेगा ? स्थिरता में कभी निमित्त है ही नहीं। क्या कहा समझ में आया ? आहाहा !

'प्रभुनो मारग छे शूरानो' हरिनो मारग छे शूरानो, ने कायर ना नहि काम जो ने' श्रीमद् में आता है न ? 'वचनामृत वीतरागना परम शांतरस मूल, औषध जे भवरोगना कायरने प्रतिकूळ रे...गुणवंता रे... ज्ञानी, ए अमृत वरस्या रे पंचमकाळमां' आहाहा ! मुनियों ने पंचमकाल में अमृत की वर्षा की है। दिगंबर संतों ने अमृत की धारा बरसाई है। आहाहा ! एक-एक गुण में अंदर कितना भरा है ! आहाहा ! यह तो यथाशक्ति और क्षयोपशम शक्ति के प्रमाण में अर्थ होता है। मुनियों के क्षयोपशम और केवलज्ञान की उसकी बात करे ! आहाहा ! अपार...अपार... नाथ ! तेरी शक्ति का वर्णन (अपार है)। सर्वज्ञ भगवान की दिव्यध्वनि में जब आता हो और जब तीन ज्ञान के धनी एक भवतारी इन्द्र सुनते हो, वह चीज़ कैसी हो !! समझ में आया ? यह अनेकांत सिद्ध किया। अकंपशक्ति के परिणमन में अकंपपना आया। कंपपना है परंतु (उसका) अभाव है। इसका भाव है तो उसका अभाव है, यह अनेकांत है। व्यवहार का अभाव - कंपन का अभाव यह स्याद्वाद और अनेकांत है, समझ में आया ? आत्मा में कंपपना भी है और अकंपपना भी है। ऐसी यहाँ ना कहते हैं। आत्मा में कंपपना है ही नहीं। आहाहा ! क्योंकि ऐसा कहा न ? क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती का समुदाय आत्मा कहा। यह निर्मल क्रमवर्ती पर्याय की बात है। आहाहा ! समझ में आया ? और अक्रमवर्ती (गुण) है वह तो निर्मल है ही। क्रमवर्ती पर्याय का और अक्रमवर्ती गुण का समुदाय आत्मा है। कंपपना आत्मा का है और आत्मा में है, ऐसा यहाँ लिया ही नहीं। आहाहा ! ऐसा सूक्ष्म है।

अर्थ में ऐसा लिया, ``**जब समस्त कर्मों का अभाव हो जाता है तब प्रदेशों का कंपन मिट जाता है इसलिये निष्क्रियत्व शक्ति भी आत्मा में है।**'' यह भी अजोगपना की सिद्धि की है। `सर्व गुणांश ते समकित' कब आयेगा ? कोई गुण बाकी रहेगा ? निष्क्रिय गुण बाकी रहेगा कि उसका अंश न आये ? आहाहा ! ``**इसलिये निष्क्रियत्व शक्ति भी आत्मा में है**'' देखा ? निष्क्रियत्व शक्ति भी आत्मा में है। निष्क्रियत्व शक्ति का परिणमन भी आत्मा में है। निष्क्रियत्व शक्ति का परिणमन भी आत्मा में है। समझ में आया ? कंपन आत्मा में है नहीं। आहाहा ! गज़ब बात है ! यह बात कहाँ है भाई ? सर्वज्ञ के अलावा वस्तु स्थिति की मर्यादा किसी ने जानी नहीं है, आहाहा ! अर्थात् तुम सर्वज्ञ स्वभावी भगवान ! सर्वज्ञ शक्ति संपन्न है ! तुम सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा हो, आहाहा ! सर्वज्ञ स्वभाव के अलावा ऐसी शक्ति का वर्णन (कहीं नहीं है)। सर्वज्ञ स्वभावी जानते हैं। आत्मा जानता है। सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा है। विशेष कहेंगे... !!

गुणों पर आवरण नहीं है और उनमें न्यूनता भी नहीं है; प्रत्येक गुण में ऐसी शक्ति है। अस्तित्व - वस्तुत्व - कर्ता - कर्म - करण आदि गुणों की सामर्थ्य ऐसी है कि जिससे वस्तु न तो आवृत्त हो और न ही अपूर्ण - इस प्रकार निर्णय करे तो तभी गुण - जाति - निर्णित हुयी कहलाए। ऐसी शक्ति प्रत्येक गुण में है। ऐसा सम्यक् - भाव साधक है तथा वस्तु - जाति सिद्ध होना सो साध्य है। (परमागमसार - ६९४)

प्रवचन नं. २२
शक्ति-२४ दि. ०१-०९-१९७७
आसंसारसंहरणविस्तरणलक्षितकिंचिदूनचरमशरीरपरिमाणावस्थित-लोकाकाशसम्मितात्मावयवत्वलक्षणा नियतप्रदेशत्वशक्तिः ।।२४।।

समयसार, शक्ति का अधिकार चलता है। शक्ति का अर्थ क्या ? भगवान आत्मा जो वस्तु है, यह स्वभाववान है, शक्तिवान है। इसमें गुण कहो कि शक्ति कहो, एक ही बात है। एक आत्मा वस्तु-द्रव्य तरीके एक है और उस शक्ति तरीके अनंत है। गुण की संख्या अनंत है। अनंत का विस्तार करना (यह तो शक्य नहीं)। तो आचार्य ने ४७ शक्ति का वर्णन किया। बाकी तो प्रत्येक आत्मा में सामान्य गुण भी अनंत हैं और विशष गुण भी अनंत हैं। गुण कहो कि शक्ति कहो (एक ही बात है)। इतना सब अगर विस्तार करने जाये तो तो अनंत काल हो जाय। इतना तो काल है नहीं, आहाहा ! (इसलिये) संक्षेप में ४७ शक्ति का वर्णन करके, आत्मा में अनंत शक्ति जो शुद्ध और पवित्र है उसका आश्रय करने से, शक्ति और शक्तिवान का भेद का लक्ष भी छोड़कर (अभेद स्वरूप का आश्रय करने से अनंत शक्ति का स्वाद पर्याय में आता है)। शक्ति और शक्तिवान का भेद भी दृष्टि का विषय नहीं है। एक-एक शक्ति पर २२ बोल लिखे हैं, उसमें १८ नंबर में आया है। पार नहीं शक्ति का (इतनी शक्ति है)।

आत्मा तो अनंत-अनंत गुण रत्नाकर का भंडार है। शुद्ध चैतन्य स्वभाव का सागर, पवित्र भगवान ! (उसका) क्षेत्र भले शरीर प्रमाण हो परंतु उसके स्वभाव की तो परिमितता नहीं है, मर्यादा नहीं है। एक-एक शक्ति अनंत मर्यादावाली शक्ति है, ऐसी अनंत शक्ति का (एक) रूप, उसे द्रव्य कहने में आता है। शक्ति और शक्तिवान (का भेद लक्ष में

नहीं लेना). शक्ति समझने में समझना परंतु शक्ति और शक्तिवान का भेद दृष्टि में नहीं लेना। आहाहा ! (जब) अभेद दृष्टि हो, तब अनंत रत्न का स्वाद, अनंत चैतन्य की शक्ति और स्वभाव, उस अनंत शक्ति का पर्याय में स्वाद आता है। सुख का स्वाद, ज्ञान शक्ति का स्वाद, दर्शन का स्वाद, जीवतर शक्ति का स्वाद, नियत प्रदेशत्व शक्ति का स्वाद, (ऐसे) पर्याय में अनंत शक्ति का स्वाद है. आज तो २४ वीं शक्ति चलती है, आहाहा !

श्रोता :- स्वाद माने क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- अनुभव-वेदन, लहसुन का, दाल-भात, सब्जी का स्वाद आता है; वह जड़ का स्वाद नहीं आता। उसमें तो (उसका) लक्ष कर के `(यह) ठीक है' ऐसी वृत्ति उठती है, (उस) राग का स्वाद (आता) है। और बिच्छू काटे तो उसका दुःख नहीं है। इसमें अणगमा उत्पन्न करता है, यह दुःख है, वह दुःख का वेदन है। बिच्छू के डंक का वेदन नहीं। समझ में आया ? क्योंकि वह तो जड़ है। जड़ का वेदन कहाँ से (आया) ? भगवान तो अरूपी है। मात्र अपने स्वभाव का लक्ष छोड़कर अनुकूल चीज में प्रेम उठाना और प्रतिकूलता में द्वेष उठाना, उसको ऐसे राग-द्वेष का स्वाद (आता) है। आहाहा ! भगवान वीतरागी आनंद स्वरूप ! इसका एक समय भी कभी स्वाद लिया नहीं, आहाहा ! समझ में आया ?

(आत्मा में) अनंत-अनंत शक्ति है। (उस में) एक-एक शक्ति का सुख है। सुख शक्ति भिन्न है परंतु अनंत शक्ति में सुख का रूप है। आहाहा ! ऐसा शरीर प्रमाण क्षेत्र है (तो शरीर के) प्रमाण से उसकी शक्ति की हद और माप है, ऐसा नही ंहै। आहाहा ! उसकी शक्ति अमाप है, अनंत हैं, अपरिमित है और एक-एक शक्ति का माप भी अनंत है। शक्ति की संख्या भी अनंत और अमाप है। वह तो कहा था न ? आकाश का (अनंत) प्रदेश हैं। लोक में असंख्य प्रदेश (हैं) और अलोक में अनंत... अनंत... अनंत... अनंत.... कहीं अंत नहीं (इतने अनंत प्रदेश हैं)। ऐसे आकाश का एक परमाणु जितने क्षेत्र को रोके इसका नाम प्रदेश कहने में आता है। ऐसा आकाश के अनंत अमाप प्रदेश से भी अनंत गुना गुण एक जीव में है। आहाहा ! स्वभाव है न ? स्वभाव में क्षेत्र की महत्ता की जरूरत नहीं। उसका स्वभाव और शक्ति की महत्ता है।

यहाँ कहते हैं कि, एक-एक चीज में अनंत शक्तियाँ हैं। उसमें यह ४७ शक्ति का वर्णन (है)। २३ शक्ति चल गई। कल २३ (वीं शक्ति) चली न ? कल एक घंटा चला था। आहाहा ! प्रत्येक शक्ति अपने द्रव्य, गुण और पर्याय में व्यापती है। कब (व्यापती है) ? (कि), जब द्रव्य की दृष्टि होती है, द्रव्य का स्वीकार (होता है)। चिदानंद भगवान का जहाँ स्वीकार हुआ, सत्कार हुआ, सत्कार हुआ कि, तुम सत् हो, ऐसी प्रतीत हुई

तो सत्कार (है)। (तब प्रत्येक शक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्यापती है)। समझ में आया ?

भगवान आत्मा ! अनंत-अनंत शक्ति का सागर (है). एक-एक शक्ति में भी अनंत-अनंत सामर्थ्यता और एक-एक शक्ति में अनंती-अनंती पर्याय (है)। आहाहा ! अनंत शक्ति की क्रमवर्ती उत्पाद-व्यय की पर्याय और अक्रम (रूप) अनंत गुण - ऐसे क्रमवर्ती पर्याय और अक्रम गुण उसके समुदाय को यहाँ आत्मा कहने में आता है, आहाहा ! यहाँ विकार की बात नहीं। समझ में आया ? शक्ति का वर्णन है न ? तो कोई शक्ति विकार करे ऐसी बात नहीं है। क्रमवर्ती पर्याय में भी यहाँ विकार की बात का अभाव है। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू ! भाई !

यहाँ २४ वीं शक्ति कहते हैं। क्रमवर्ती (पर्याय) और अक्रमवर्ती (गुण का) समुदाय आत्मा (है)। एक-एक शक्ति अनंत शक्ति में व्यापक (है)। अनंत शक्ति में एक-एक शक्ति का रूप (है)। एक-एक शक्ति पारिणामिकभावरूप है। उसका भान होकर क्रमवर्ती पर्याय होती है। यहाँ उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक (पर्याय की) बात है। यहाँ उदय की (औदयिकभाव की) बात नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? शक्ति की पर्याय जो होती है उसमें षट्कारक का परिणमन होता है। क्योंकि द्रव्य में और गुण में षट्कारक शक्तिरूप वस्तु है। शक्ति का संग्रहालय ऐसा भगवान है। क्योंकि द्रव्य में और गुण में षट्कारक शक्तिरूप वस्तु है। शक्ति का संग्रहालय ऐसा भगवान (आत्मा) ! उसका सत्कार किया; सत्कार किया (माने) `यह है' ऐसा अनुभव में आया (तो पर्याय में निर्मलता प्रगट होती है)। लोग (बाहर में) सत्कार करते हैं न ? आहाहा ! समझ में आया ? पर्याय में निर्मलता प्रगट होती है वह पर्याय में व्यापक होगी। आहाहा !

अनंतकाल से शक्ति और शक्ति का स्वरूप त्रिकाल है। परंतु पर्याय में व्यापक नहीं (है)। जैसे आत्मा में सुख नाम की शक्ति पूर्ण पड़ी है। परंतु अनादि से पर्याय में सुख शक्ति का व्याप्यपना, अवस्थापना नहीं है। क्योंकि (ऐसी स्व) चीज का ज्ञान नहीं, चीज का भान नहीं, चीज का स्वीकार नहीं, चीज का सत्कार नहीं, इस चीज की ओर की सन्मुखता नहीं (है)। ऐसी बातें हैं ! इसलिये पर्याय में जब द्रव्य वस्तु है इसकी जहाँ दृष्टि होती है, तो पर्याय में सुख की पर्याय व्याप्य होती है। समझ में आया ?

कल कहा था। `सर्व गुणांश ते समकित' जितनी शक्ति की संख्या है, इतनी संख्या में व्यक्त अंश-अनेक शक्ति का, अनंत (शक्ति का) व्यक्त अंश प्रगट होता है। यह प्रगट होती है (ऐसी) आनंद की पर्याय, अस्तित्व की पर्याय, शांति की पर्याय, स्वच्छता की पर्याय, प्रभुता की पर्याय-इन पर्यायों को यहाँ पवित्र क्रमवर्ती (पर्याय) कहने में आता है। समझ

में आया ? यह तो ध्यान रखे तो पकड़ में आये ऐसी बात है।

अब यहाँ अपने २४ वीं शक्ति है। एक शक्ति कैसी है ? (कि) नियतप्रदेशत्व शक्ति। क्या नाम है ? नियत प्रदेशत्व। २४ वीं (शक्ति ऐसा कहते हैं तो) कथन में क्रम पड़ता है। (परंतु) अंतर वस्तु में (कोई) क्रम नहीं। वस्तु में तो एक साथ अनंत शक्तियाँ हैं। कथन में कैसे लाये ? कथन में क्रम पड़ता है। वस्तु में अक्रम-एक साथ सब अनंत शक्ति है। आहाहा ! तो कहते हैं कि, नियत प्रदेशत्व (माने क्या) ? अपना देश, अपना क्षेत्र। जिस क्षेत्र में अनंत गुण का प्रकाश उठता है (वह अपना क्षेत्र है)। अपना नियत प्रदेशत्व (उस में) नियत क्यों कहा ? वैसे तो असंख्य प्रदेश हैं। उसको व्यवहार कहने में आता है।

पंचास्तिकाय में ३२ गाथा की टीका में ऐसा लिया है कि, असंख्य प्रदेश नहीं है, एकप्रदेश है, ऐसा पाठ लिया है। देखो ! '**जीवो खरेखर अविभागी-एक द्रव्यपणाने लीधे लोकप्रमाण एक प्रदेशवाळा छे**' एक प्रदेशवाला कहने में आया है। किस अपेक्षा से (कहा) समझ में आया ? वह तो संस्कृत में है। यहाँ निश्चय से असंख्य प्रदेश को एकरूप लेना है। निश्चय से एक प्रदेशरूप है, ऐसा कहते हैं। यहाँ (शक्ति में) निश्चय से असंख्य प्रदेश कहेंगे। किस अपेक्षा से (कहा है) ? वह तो निश्चय संख्या असंख्य प्रदेशी है। समझ में आया ? असंख्य प्रदेश निश्चय से है। संख्या की अपेक्षा से नियत कहा है। और वहाँ (पंचास्तिकाय में) भेद को निकालकर सर्व असंख्य प्रदेश एक प्रदेशरूप है। आहाहा ! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं, बापू ! यह तो भगवान के घर की बात है।

एक ओर वहाँ (पंचास्तिकाय में) एक प्रदेशी कहा और यहाँ नियत असंख्य प्रदेश कहेंगे। तो दोनों में विरोध है ? कि, नहीं (विरोध नहीं है)। वहाँ एकरूप असंख्य प्रदेश में (असंख्य का) भेद करना, यह व्यवहार हो गया। समझ में आया ? वह याद आ गया।

चार बोल २५२ कलश में है न ? वह बात अपने चल गई है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। (उसमें) अपना द्रव्य जो है-एकरूप वस्तु है, उसे द्रव्य कहते हैं - स्वद्रव्य कहते हैं। और (उस में) यह द्रव्य है और यह गुण है, ऐसा भेद उठाना यह परद्रव्य है। क्या कहा ? यह वस्तु-यह चीज सर्वज्ञ के सिवा कहीं नहीं है। श्वेताम्बर में भी ऐसी बात नहीं है। अन्यमत में वेदांत आदि सर्व व्यापक कहते हैं, वह बात है ही नहीं। आहाहा ! क्या करें ?

भगवान आत्मा ! असंख्य प्रदेशी को पंचास्तिकाय की ३२ गाथा की टीका में एक प्रदेशी कहा। भेद किये बिना एक प्रदेशी कहा और यहाँ असंख्य प्रदेशरूप संख्या नियत है। इस अपेक्षा से निश्चय से असंख्य प्रदेशी कहा। समझ में आया ? समझ में

आये उतना समझो, भाई ! यह तो भगवान का मार्ग है। आहाहा ! वहाँ (पंचास्तिकाय में) एकरूप प्रदेश कहा-असंख्य भेद हैं। यह व्यवहार हो जाता है।

२५२ कलश में ऐसा कहा कि, आत्म द्रव्य एकरूप द्रव्य है-वह स्वद्रव्य है। और इस द्रव्य में भेद से विकल्प उठाना-यह परद्रव्य है, एक बात। और भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी एकरूप क्षेत्र है-यह स्वक्षेत्र है। असंख्य प्रदेशी एकरूप अपना स्वरूप उसको स्वक्षेत्र कहा है और असंख्य प्रदेश में भेद करके विचार करना कि, यह प्रदेश, यह प्रदेश.... वह परक्षेत्र है। आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ असंख्य (प्रदेशी) कहेंगे। इस असंख्य में भेद से लक्ष करना, वह परक्षेत्र है। समझ में आया ?

तीसरी बात। आत्मा त्रिकाल है - यह स्वकाल है। भगवान आत्मा ! त्रिकाली चीज, भूतार्थ, सत्यार्थ, अभेद, एकाकार, यह स्वकाल है। और उसमें एक वर्तमान पर्याय का लक्ष भिन्न करना वह परकाल है। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो वीतराग मार्ग है, भाई ! समझ में आया ? वीतराग का संदेश है, आहाहा ! त्रिकाली चीज को स्वकाल कहना और एक समय की पर्याय अवस्थांतर होती है-उसे परकाल कहना। परद्रव्य की अवस्था तो परकाल है ही परंतु अपना एकरूप में भिन्न वर्तमान पर्याय के भेद का लक्ष करना उसे परकाल कहते हैं, आहाहा !

चौथा बोल। अपना अनंत शक्ति का पिंड, स्वभावरूप अनंत शक्ति, अनंत भाव यह शक्ति है न ? (ऐसी) अनंत शक्ति की एकरूपता यह स्वभाव है और अनंत शक्ति में एक-एक शक्ति का भिन्न लक्ष करना, यह परभाव है। आहाहा ! ऐसी बात (है)। लोग अगर शांति से सुने तो उनका आग्रह मिट जाय। यह कोई कल्पित बात नहीं है, प्रभु ! प्रभु के प्रवाह से (बात) आयी है, भाई ! आहाहा ! अभेद को पकड़ (और) भेद को छोड़ दे !

वह लिया है न ? शक्ति और शक्तिवान का भेद भी दृष्टि का विषय नहीं। अर्थात् भगवान ! प्रभु ! अनंत रत्नाकर-अनंत शक्ति का रत्न से भरा हुआ स्वयंभू भगवान आत्मा (है)। जैसे स्वयंभू समुद्र है वह तो असंख्य योजन में (है) और (उसके) तलवे में रत्न भरे हैं। परंतु वह तो क्षेत्र से असंख्य योजन में है। यह (आत्मा) तो क्षेत्र से असंख्य प्रदेश हैं परंतु असंख्य प्रदेश में एक-एक प्रदेश में अनंत गुणरूप रत्न भरा है। आहाहा ! समझ में आया ? अनंत भावरूपी शक्ति यह स्वभाव-परंतु उसमें एक लक्ष भिन्न करना कि, 'यह ज्ञानशक्ति है', 'यह सुखशक्ति है' ऐसा भेद करना उसे परभाव कहते हैं। दूसरी बात। और जो स्वद्रव्य है वही स्वक्षेत्र है, वही स्वकाल है और वही परभाव है।

यह चार भेद कहे उसमें से जो स्वद्रव्य कहा, भगवान आनंदकंद प्रभु ! अकेला

अकषाय स्वभाव से भरा पड़ा, प्रभु ! वीतराग स्वरूप ! अमृत का पिंड प्रभु ! यह स्वद्रव्य। उसी को जो असंख्य प्रदेशी जो स्वक्षेत्र है, उसी को क्षेत्र कहते हैं। द्रव्य भी वही और असंख्य प्रदेशी क्षेत्र भी वही। द्रव्य से भिन्न क्षेत्र है और क्षेत्र से भिन्न द्रव्य है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? और काल-त्रिकाल। वह भी जो क्षेत्र है, वही द्रव्य है, वही त्रिकाल वस्तु है। समझ में आये उतना समझो, बापू ! यह भगवान का मार्ग है। आहाहा ! और अनंत शक्ति का भाव कहा वही अनंत शक्तिरूप भाव, वही द्रव्य, वही क्षेत्र, वही काल और वही भाव (है)। भेददृष्टि छोड़कर (अभेद की दृष्टि करना)। स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल (और) स्वभाव (ऐसे चार भेद कहे)। परंतु वह चारों एक ही चीज है। समझ में आया ? आहाहा !

जैसे आम है (उसमें) वर्ण भी वह, गंधरूप भी वह, रसरूप भी वह और स्पर्शरूप भी वही है। उसमें छिलका और गोटली यह बात (भेद) यहाँ नहीं लेना। सारी चीज रंगरूप भी वह है, गंधरूप भी वह है, रसरूप भी वह है, स्पर्शरूप भी वह है। ऐसे भगवान आत्मा ! अभेद द्रव्यरूप भी वह, क्षेत्ररूप भी वह, कालरूप भी वह और भावरूप भी वही (है)। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं, '**जो अनादि संसार से लेकर संकोचविस्तार से....**' असंकुचितविकासत्व शक्ति गई वह दूसरी चीज़ (है)। यह दूसरी चीज़ है। असंकोचविकास शक्ति में तो वह शक्ति ऐसी है कि, जिसमें संकोचता का अभाव है और विस्तार का सद्भाव अपरिमित है। अपने असंकोचविस्तार नाम की शक्ति चली थी। असंकोचविस्तार (का कार्य) पूर्ण द्रव्य, पूर्ण क्षेत्र, पूर्ण काल, पूर्ण भाव इन सबको संकोच किये बिना विकास शक्ति से जानता है। आहाहा ! ऐसी बात ! समझ में आया ? भगवान आत्मा में ऐसी एक शक्ति है कि, जिसमें संकोच नहीं, परिमितता नहीं, हद नहीं और विकसित (अर्थात्) अनंत...अनंत... ज्ञान का विकसित। ज्ञान में भी संकोच नहीं, (यह) ज्ञान विकसित। दर्शन में संकोच नहीं (यह) दर्शन विकसित। पूर्ण...पूर्ण... विकसित। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बातें आदमी को सुनने नहीं मिले इसलिये बाहर में रुक जाते हैं ! आहाहा !

वह तो अपने सबेरे चलता है कि नहीं ? (यहाँ आकर भी) पर्याय में रुक जाय, विकल्प में रुक जाय तब तक अनुभव नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? सबेरे मूढ़-मूढ़ आया न ? मूढ़ है, यह तो व्यवहारनय से कहने में आता है। उसका तो निषेध करते आये हैं। भगवान (मूल स्वरूप) मूढ़ नहीं। आहाहा ! ज्ञान, आनंद आदि अमूढ़ है। उसकी शक्ति का पार नहीं। प्रभु ! स्वभाव का पार नहीं, ऐसी अमूढ़ शक्ति (है)। आहाहा ! 'मैं अमूढ़ हूँ' ऐसा भी विकल्प करना उससे तुझे क्या लाभ है ? आहाहा ! मैं अपरिमित

अनंत आनंद का कंद हूँ, अनंत चैतन्य रत्न से भरा हुआ (हूँ), मेरी चीज़ तीनलोक और तीन काल को एक समय में जाने ऐसी पर्याय - ऐसी अनंत पर्याय का पिंड ज्ञान रत्न पड़ा है। ऐसे क्षायिक समकित की सादि अनंत पर्याय। इन सब पर्याय का पिंड श्रद्धा गुण में पड़ा है। ऐसे एक समय का अनंत आनंद जो भगवान को उत्पन्न हुआ, `सादि अनंत समाधि सुख में' (ऐसा आनंद गुण भी पड़ा है)। आहाहा ! अनादिकाल से आकुलता के वेदन में पीस गया है। इसको भगवान आत्मा का पता जहाँ लिया, सम्यग्दर्शन और सम्यक्ज्ञान में जहाँ उसको स्वीकार और सत्कार किया तो पर्याय में - वर्तमान में भी आनंद आया और यह पर्याय पूर्ण आनंद का कारण है, ऐसा व्यवहार कहने में आता है। यह भी व्यवहार है। बाकी तो अनंत आनंद जो प्रगट होगा वह एक समय में षट्कारक की परिणति से प्रगट होगा। पूर्ण में मोक्षमार्ग था उसका व्यय हुआ और केवलज्ञान (प्रगट) हुआ, वह तो व्यवहार की चीज़ है। उत्पाद - व्यय की अपेक्षा रखता नहीं। आहाहा ! केवलज्ञान की पर्याय का उत्पाद पूर्व के चार ज्ञान की व्यय की अपेक्षा रखता नहीं। ऐसा एक समय में केवलज्ञान की पर्याय का कर्ता वह पर्याय, कार्य वह पर्याय, करण नाम साधन वह पर्याय (है)। चार ज्ञान का कारण दिया वह साधन, यहाँ तो ऐसे नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? - वह पर्याय करके अपने में रखी यह संप्रदान, अपनी पर्याय से पर्याय हुई यह अपादान और पर्याय का आधार पर्याय यह अधिकरण। कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण यह षट्कारक के परिणमन से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। आहाहा ! पहले संहनन है, मनुष्यपना है उसे केवलज्ञान उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं है। चार ज्ञान पहले था (उसका) व्यय हुआ और केवलज्ञान हुआ, यह भी व्यवहार है। अभाव होकर भाव हुआ, यह भाव कहाँ से आया ? अभाव में से भाव आया ? द्रव्य की शक्ति जो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी है वह स्वनियत प्रदेश में पड़ी है। यह शक्ति चलती है न ?

असंख्य प्रदेश जो नियत है, यहाँ प्रदेश को संख्या में नियत - निश्चय करना है और वहाँ (पंचास्तिकाय में) इस संख्या को छोड़कर अकेला प्रदेशरूप एकरूप (कहा) है। पंचास्तिकाय में अपनी अस्तिकाय सिद्ध करना है, अपना अस्तिकाय सिद्ध करना है। समझ में आया ? तो उसकी पर्याय में एकरूप प्रदेश लिया, आहाहा ! यहाँ तो उसकी शक्ति में नियत प्रदेश जो असंख्य प्रदेश है उसको निश्चय कहा और २५२ (कलश में) एकरूप असंख्य प्रदेश को स्वक्षेत्र कहा। उसमें संख्या (का भेद करना कि) यह है, यह है, यह है उसे परक्षेत्र कहा। ऐसी बहुत सूक्ष्म बातें हैं ! बापू ! आहाहा ! भगवान का भेटा (मिलन) जिसे करना हो (उसको कितनी तैयारी होनी चाहिए ?) एक साधारण बड़े

चक्रवर्ती के पास जाना हो तो भी कितनी तैयारी होनी चाहिए ? आहाहा !

हमारे यहाँ गरासीया - गरासदार होते हैं। उसकी रानी के पास जाना हो तो आदमी ऐसे ही खुल्ला नहीं जा सके। कपड़े खुल्ले पड़े हो और पीछे से शरीर का भाग दिखता हो, ऐसे नहीं जा सकता। यहाँ ऐसा रिवाज है। भले ही १० हज़ार, २५ हज़ार की ही कमाई हो। नाई जाये तो (भी) भेट बांधकर जाय। कपड़े का भेट बांधकर जाना। शरीर का कोई भाग दिखे नहीं ऐसे कपड़े बांध के जाय। रानी के पास जाना हो तो (ऐसे जाते हैं)। आहाहा ! यहाँ तो भगवान का भेटा करना है तो इसके लिये बहुत कमर कसनी चाहिए। आहाहा ! अनंत-अनंत पुरुषार्थ की भेट बांधकर भगवान का भेटा होता है। भगवान के दरबार में जाना है, दरबार ! यह (बाहर के) दरबार तो ठीक बेचारे साधारण (हैं)। यह तो अनंत-अनंत शक्ति का भण्डार भगवान ! बादशाह, परमात्मा, बादशाह तीनलोक और तीनकाल को एक समय में जाने (ऐसा भगवान का दरबार है)। आहाहा ! उसमें भी तीनलोक और तीनकाल को (जाने ऐसा) नहीं (परंतु) अपनी पर्याय में आत्मज्ञ में ही सब सर्वज्ञपना का भास होता है। आहाहा ! ऐसे भगवान की एक समय की पर्याय की इतनी ताकत ! ऐसी अनंत पर्याय का पिंड ज्ञान, अनंत पर्याय का पिंड आनंद, ऐसे अनंत आनंद और अनंत ज्ञान आदि अनंत शक्तिओं का (पिंड) प्रभु ! बादशाह ! इस बादशाह के पास जाना (उसके लिये कितनी तैयारी चाहिए ?) (भेट बांधकर जाये) तब दर्शन दे। आहाहा !

यहाँ आपके पैसे की बात नहीं है। (गुरु के) आशीर्वाद से धूल (पैसा) नहीं मिलती। उसका भाव हो, पुण्य का भाव किया हो उससे पुण्यबंध हो गया हो और पूर्व के पुण्य के साथ वर्तमान सुनने से पुण्य आता है, उस पुण्य को मिलाकर पुण्य का उदय आ गया तो (पैसा) मिल जाता है। परंतु (पैसा) मिले इसमें क्या आया ?

श्रोता : कितना बढ़ गया !

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी बढ़ा नहीं। आहाहा ! लक्ष्मी कहाँ शरण(रूप) है ? यहाँ तो राग शरण (रूप) नहीं और एक समय की पर्याय शरण (रूप) नही। आहाहा ! भगवान ! पूर्णानंद का नाथ ! अभेद चैतन्य स्वरूप शरण (रूप) है। वह मांगलिक है, वह उत्तम है, वह शरण है। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि, ``**जो अनादि संसार से लेकर संकोचविस्तार से...**'' किसका (संकोच विस्तार) ? आत्म प्रदेश का (संकोच विस्तार)। निगोद में प्रदेश का संकोच होता है, प्रदेश कम नहीं होते (बल्कि) संकोच होता है। और हज़ार योजन का मच्छ हो तब विस्तार होता है। प्रदेश तो इतने ही इतने (रहते हैं)। प्रदेश का संकोच हो तब (प्रदेश)

कम हो जाय और विस्तार हो तो (प्रदेश) बढ़ जाय, ऐसा नहीं है। आहाहा ! ऐसे ``**संकोच विस्तार से लक्षित...**'' (अर्थात्) संकोच विस्तार से जानने लायक। संसार में (आत्म प्रदेशों का) असंख्य प्रदेश में संकोच विस्तार होता है, वह जानने लायक है। है ? ``**...और जो चरम शरीर के परिणाम से कुछ न्यून परिणाम से...**'' आखिर का चरम शरीर हो, उसके अनुसार उसकी अवगाहना - चौड़ाई रहती है। ``**...परिणाम से अवस्थित...**'' वहाँ अवस्थित है। वहाँ वह चरम शरीर छूट गया तो वैसे के वैसे (आत्म प्रदेश) अवस्थित रहेंगे। सादि अनंत (वैसे का वैसा अवस्थित रहेगा।) चरम शरीर में लक्षित - जानने लायक, ऐसा कहा। संसार में असंख्य प्रदेश में संकोच विस्तार है, यह जानने लायक है। क्योंकि (आत्म प्रदेश) एकरूप नहीं रहेगा. आहाहा ! समझ में आया ?

जैसे यह कपड़ा है न ? यह कपड़ा ऐसा संकोच करे (तो) कपड़े में प्रदेश घट जाता है, और ऐसा करे तो प्रदेश बढ़ जाता है, ऐसा नहीं। प्रदेश तो जितना है इतना ही है। ऐसे संकोच में निगोद के एक शरीर में अनंत जीव और अंगुल के असंख्य भाग में एक शरीर। आहाहा ! (तो) निगोद में एक शरीर का कद कितना ? (हिन्दी में) कद कहते हैं न ? उस (शरीर का) कद कितना ? तो (कहते हैं) अंगुल का असंख्यवा भाग। आहाहा ! और जीव कितना ? तो (कहते हैं) अनंत (हैं)। कितने अनंत ? (तो कहते हैं) अभी (तक जितने) सिद्ध हुए (उससे अनंत गुना जीव हैं)। छ मास और आठ समय में ६०८ (जीव) मुक्ति पाते हैं। तो (ऐसे) अनंत पुद्‌गल परावर्तन हो गये। एक शरीर में सिद्ध की संख्या से अनंत गुना जीव हैं। आहाहा ! समझ में आया ? तो वहाँ प्रदेश का संकोच हो गया।

संकोच नाम जितने चौड़े प्रदेश है उनका संकोच नहीं होता। क्या कहा ? जो (मूल) प्रदेश जितनी चौड़ाई में है, उसमें संकोच नहीं होता। परंतु जो बहुत प्रदेश हैं, वे संकोच होते हैं। क्या कहा समझ में आया ? जितने चौड़े प्रदेश हैं वे संकोच नहीं होते परंतु असंख्य प्रदेश ऐसे चौड़े हैं, वह ऐसे संकोच होते हैं। बस इतना ! एक प्रदेश के साथ असंख्य प्रदेश हैं। प्रदेश खुद संकोच विस्तार को प्राप्त नहीं होते। परंतु प्रदेश की संख्या ऐसे संकोच हो जाती है और विस्तार हो जाती है। आहाहा ! यह स्वरूप वीतराग के सिवा और कहीं नहीं है। (आत्मा का) असंख्य प्रदेश (है), यह बात सर्वज्ञ के अलावा कहीं नहीं है। समझ में आया ? कोई शास्त्र में (यह बात नहीं है)। आत्मा असंख्य प्रदेशी क्षेत्र की बात ही नहीं है। जाना नहीं तो वहाँ बात कहाँ से हो ? आहाहा ! बात करे कि आत्मा शुद्ध है, चैतन्य है, ऐसा है और ऐसा है, परंतु इसका क्षेत्र कितना ? (तो उसकी कुछ खबर नहीं)। आहाहा !

एक वेदांती थे। निश्चय का बहुत जानपना (था)। (श्रीमद्जी को) उसके साथ बहुत प्रेम था। श्रीमद् ने एक बार पत्र लिखा कि, ``हम पदार्थ की व्याख्या चार प्रकार से कर सकते हैं। कोई भी पदार्थ (की व्याख्या) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से कर सकते हैं। तो आत्मा में भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उतारना चाहिए।'' क्योंकि वे (ऐसा) मानते हैं कि (आत्मा) सर्व व्यापक है और आत्मा की निश्चय की बात करे कि शुद्ध है, ऐसा पवित्र और ऐसा निर्लेप है। उसकी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चार से व्याख्या होती है।' (श्रीमद्जी ने लिखा), `आपकी चार की व्याख्या कहो' परंतु वह (व्याख्या) करने जाय तो वेदांत रहता नहीं। समझ में आया ? द्रव्य से एक, क्षेत्र से असंख्य प्रदेश, काल से त्रिकाली अथवा एक समय की अवस्था और भाव से अनंत गुण, और चार भेद तो उसमें है नहीं। समझ में आया ? `सर्व व्यापक एक आत्मा शुद्ध चेतन है, अभेद है' ऐसा (मानते हैं)। वह तो कथन की भाषा (हुई)। वस्तु की स्थिति कैसी है ? उसकी खबर नहीं। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, प्रदेश एक नहीं परंतु असंख्य (प्रदेश) जो है (उसमें) ऐसा (संकोच) होता है और विकास होता है। बस ! ``**...संकोच विस्तार से लक्षित है और चरम शरीर के परिणाम से कुछ न्यून परिणाम से अवस्थित...**'' यहाँ अवस्थित रहा। संसार में तो अवस्थित नहीं रहा। निगोद में जाये, एक हज़ार योजन का मच्छ (बने), इस शरीर में बचपन में असंख्य प्रदेशी इतने में था, बड़ा होने से प्रदेश में इतना विस्तार हुआ। समझ में आया ? बचपन में इतना था, युवावस्था और वृद्धावस्था में इतना प्रदेश चौड़े हुए। एक प्रदेश चौड़ा हुआ, ऐसा नहीं। प्रदेश विस्तार पाया। समझ में आया ? आहाहा ! आदमी को ऐसा कहाँ (सुनने मिले) ? फुरसद कहाँ है ? भगवान क्या कहते हैं ? (वह) चीज़ (कहाँ) अलग पड़ती है और अपने से पर चीज़ (कैसे) अलग पड़ती है ? (ऐसा) भेदज्ञान नहीं (और) खिचड़ा कर दे कि, `उसमें भी आत्मा की बात है, कल्याण की बात है।' धूल में भी (कल्याण की बात) नहीं। आहाहा !

(यहाँ) कहते हैं कि, ``**चरम शरीर के...**'' (अर्थात्) आखिर का शरीर ``**...परिणाम से कुछ न्यून...**'' (अर्थात्) थोड़ी न्यून। यह बाल जितना है उससे (भी) छोटा। परिणाम से यानी माप से अवस्थित होता है। वहाँ अवस्थित रहता है। ``**...ऐसा लोकाकाश के माप जितना...**'' संख्या से कितना है ? कि लोकाकाश में जो असंख्य प्रदेश है इतना एक जीव का प्रदेश है। लोकाकाश में आकाश के असंख्य प्रदेश की जितनी संख्या है, धर्मास्तिकाय का भी जितना असंख्य प्रदेश है, अधर्मास्तिकाय की भी जितनी संख्या है, इतनी संख्या एक जीव की लोकाकाश के अनुसार असंख्य प्रदेश है। आहाहा ! समझ

में आया ? ऐसी बात सर्वज्ञ के सिवा कहीं हो सकती नहीं। (अन्य मत में) भले ही बातें कुछ भी करी हो, श्वेतांबर में भी फ़र्क है। यह जो प्रदेश कहते हैं ऐसे प्रदेश की संख्या का माप उसमें भी नहीं है।

(श्वेतांबर में किसी ने पुस्तक लिखा है)। उसमें कबूल किया है कि, `हम लोग लोक को ३४३ राजु प्रमाण कहते हैं, तो इतने प्रदेश में अगर माप करने जाते हैं तो हम लोग जो ३०० राजु कहते हैं, उसके अनुसार उसका मिलान नहीं होता' यहाँ एक श्वेतांबर पुस्तक है। (सब) देखा है। ३४३ राजु कहते हैं न ? तो इसमें जितना है वह हम कहते हैं, इतना मेल नहीं खाता। और दिगंबर लोग कहते हैं उसके अनुसार मिलान होता है, एक जीव के असंख्य प्रदेश में भी (इस विषय में भी) उसके कथन में फ़र्क है। श्वेतांबर में भी फर्क है तो अन्यमती की तो बात क्या करना ? आहाहा ! बहुत सूक्ष्म, भाई !

यहाँ ये कहा, ``**...ऐसा लोकाकाश के माप जितना...**'' प्रमाण। माप (यानी) प्रमाण। लोकाकाश जितना होना, ऐसा नहीं। वह तो कोई बार केवलज्ञान समुद्घात में हो और किसी को न भी हो, परंतु उसकी संख्या कितनी ? (तो कहते हैं) लोकाकाश प्रमाण माप - बस, इतना (कहना है)। लोकाकाश प्रमाणे व्याप्त हो, ऐसा नहीं। समझ में आया ? ``**...लोकाकाश के माप जितना मापवाला आत्म - अवयवत्व...**'' आहाहा ! आत्मा अवयवी और प्रदेश अवयव। जैसे यह शरीर अवयवी (और) हाथ-पैरा-अंगुठा अवयव। ऐसे भगवान आत्मा अखण्ड एकरूप अवयवी और प्रदेश उसका अवयव। आहाहा ! जैसे श्रुतज्ञान प्रमाण अवयवी और निश्चयनय और व्यवहार(नय) अवयव। समझ में आया ? श्रुतज्ञान प्रमाण में जो आत्मा का अनुभव हुआ तो उस शुद्धज्ञान की पर्याय को प्रमाण कहते हैं और प्रमाण में दो भेद करना यह अवयवी का अवयव है। (भावश्रुत) अवयवी (भी) है तो पर्याय - भावश्रुत की पर्याय भी है तो पर्याय परंतु उस पर्याय को अखण्ड कहकर अवयवी कहना और निश्चयनय और व्यवहार(नय) दो भाग होते हैं, उसे अवयव कहना। समझ में आया ? ऐसे भगवान आत्मा एक है उसका असंख्य प्रदेश अवयव है। आहाहा ! यह अंगुली और हाथ है, यह (आत्मा का) अवयव नहीं, वह तो जड़ का (अवयव) है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! बहुत डाला है।

(लोग ऐसा मानते हैं कि) शरीर के आँख के, पैर के, कान के अवयव हमारे हैं। धूल में भी (तेरा अवयव) नहीं, वह तो पर है। तेरा अवयव तो असंख्य प्रदेश है, यह तेरा अवयव है और असंख्य प्रदेश के धाम में अनंत गुण का धाम का प्रकाश उठता है। यह असंख्य प्रदेश (रूप) देश तेरा ऐसा है कि प्रदेश - प्रदेश में अनंत गुण व्यापक

(है)। एक प्रदेश में दूसरे प्रदेश का अभाव, उसे तिर्यक प्रचय कहना। परंतु एक प्रदेश में जो गुण है इतना दूसरे (प्रदेश में) वही सर्व गुण में व्यापक है। आहाहा ! क्या कहा समझ में आया ? प्रवचनसार ९९ गाथा में तिर्यक प्रचय है। एक प्रदेश है उसमें दूसरे प्रदेश का अभाव (है) तो असंख्य प्रदेश सिद्ध होता है। नहीं तो सिद्ध नहीं होगा। परंतु एक प्रदेश में जो अनंत गुण है वह एक ही प्रदेश में है, ऐसा नहीं। अनंत गुण असंख्य प्रदेश में व्यापक है। समझ में आया ? प्रदेश सिद्ध करना हो तब एक प्रदेश का दूसरे प्रदेश में अभाव है तो असंख्य (प्रदेश) सिद्ध होगा। एक प्रदेश में दूसरा (प्रदेश) हो तो असंख्य (प्रदेश) सिद्ध कहाँ से होगा ? न्याय समझ में आया ? एक प्रदेश में जो अनंत गुण है वही गुण दूसरे में है, वही गुण तीसरे में है और वही गुण असंख्य प्रदेश में है।

अरे...! जिसे मालूम नहीं कि आत्मा असंख्य प्रदेशी अवयव है। भगवान (आत्मा) अवयवी और (उसका) अवयव यह (प्रदेश) है। जैसे शरीर अवयवी है और अंगुली, हाथ - पैर ये सब अवयव कहने में आता है। इसका भाग है। एकरूप वस्तु का वह भाग है। ऐसे भगवान आत्मा द्रव्यरूपी एक (और) असंख्य प्रदेश यह उसका अवयव है। यह अंगुली और हाथ-पैर उसका अवयव नहीं। यह तो जड़ का (अवयव) है। आहाहा ! (आत्मा के) अवयव - अवयव में (प्रदेश-प्रदेश में) अनंत गुण व्यापक है। असंख्य प्रदेश है, तो असंख्य में भाग में एक प्रदेश आया तो अनंत गुण का अनंतवां भाग एक प्रदेश में है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! यह तो गुण का बड़ा पाटला (है)। पाटला समझते हो ? सोने का लड्डु होता है न लड्डु ? वैसे अनंत गुण का लड्डु एक समय में है। आहाहा ! अरे...! (खुद के) घर का भी विचार किया नहीं (और) पर घर शुरू कर दिया। आहाहा ! मेरा घर क्या ? मेरा घर का क्षेत्र क्या ? मेरे क्षेत्र में गुण क्या और गुण की पर्याय क्या ? (उसकी कुछ खबर नहीं)। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ निर्मल पर्याय की बात है, मलिन (पर्याय) की बात नहीं। यह संकोचविकास में भी शक्ति है। मलिनपना का तो इसमें अभाव है। आहाहा ! क्या कहा ? ``असंख्य प्रदेश नियत...'' ऐसे कहा न ? नियत कहा न ? ``...अवयव जिसका लक्षण है ऐसी नियत प्रदेशत्वशक्ति'' (अर्थात्) निश्चय प्रदेशत्व शक्ति। नियत नाम निश्चय प्रदेशत्व शक्ति। इसका अर्थ कि जो प्रदेश है वह निश्चय से असंख्य ही है। ऐसे सिद्ध करना है। और पंचास्तिकाय में जो लिया है (वहाँ) एकरूप प्रदेश है - भेद नहीं। वहाँ उसकी अस्तिकाय सिद्ध करना है। अस्ति एकरूप है। समझ में आया ? असंख्य प्रदेश की अस्ति एकरूप है। यहाँ शक्ति के वर्णन में असंख्य प्रदेश नियत (अर्थात्) प्रदेश की संख्या नियत है। समझ में

आया ?

ऐसा निज घर द्रव्य, निज घर का क्षेत्र, निज घर का काल और निज घर का भाव - यह चार एक ही वस्तु है। निज घर का द्रव्य भिन्न और निज घर का क्षेत्र भिन्न, ऐसा नहीं है। जितने में द्रव्य है, इतने में क्षेत्र है, इतने में काल है और इतने में भाव है। आहाहा ! ये भेद की दृष्टि छोड़कर (अभेद स्वरूप की दृष्टि करना)। २५२ कलश में आया न ? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का भेद (कहा)। (उसमें) अपनी पर्याय को भी जहाँ परकाल कहा, आहाहा ! और अपने असंख्य प्रदेश में भी यह क्षेत्र है और यह है, ऐसा विकल्प उठाना - यह परक्षेत्र है। त्रिकाली भगवान स्वकाल में है उसकी एक समय की पर्याय का लक्ष करना यह परकाल है और परकाल की स्वकाल में नास्ति है। आहाहा ! अनेकांत है। जैसे पर द्रव्य के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अस्ति उसमें है परंतु उस पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की नास्ति आत्मा में है। (आत्मा में) उसका अभाव है। समझ में आया ? यह तो स्थूल लिया। परंतु यहाँ तो त्रिकाली भगवान !-त्रिकाली वस्तु त्रिकाल... त्रिकाल...त्रिकाल...त्रिकाल... यह स्वकाल (है)। एक समय की निर्मल पर्याय परभाव (है)।

नियमसार में ५० गाथा में तो एक समय की निर्मल पर्याय को पर द्रव्य कहा है। समझ में आया ? आहाहा ! तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म भाई ! कौनसी अपेक्षा से (बात है) यह समझना चाहिए। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, नियत प्रदेशत्व शक्ति ली न ? निज क्षेत्र है। इस क्षेत्र में से तो आनंद पकता है। ऐसा नियत प्रदेश है। समझ में आया ? कुलथी (एक प्रकार का अनाज) पके ऐसा क्षेत्र भिन्न होता है और चावल पके उसका क्षेत्र भिन्न होता है। जिस क्षेत्र में कुलथी पके उस क्षेत्र में चावल नहीं पके। ऐसे भगवान (आत्मा के) असंख्य प्रदेशी नियत क्षेत्र में पवित्रता पकती है, ऐसा यह क्षेत्र है। उसमें अपवित्रता पके, ऐसा यह क्षेत्र नहीं है। आहाहा !

कौंस में कहते हैं, ``**आत्मा के लोकपरिणाम असंख्य प्रदेश नियत ही है**'' नियत (कहा है)। देखा ? ``**नियत ही है**'' संख्या की अपेक्षा से (नियत ही है)। ``**वे प्रदेश संसार अवस्थामें संकोच विस्तार को प्राप्त होते हैं और मोक्ष अवस्था में चरम शरीर से कुछ कम परिमाण से स्थित रहते हैं।**'' इस प्रकार वस्तु का स्वरूप है। लो, आज एक घंटा चला। विशेष कहेंगे... !

प्रवचन नं. २३

शक्ति-२४, २५, २६ दि. ०२-०९-१९७७

आसंसारसंहरणविस्तरणलक्षितकिंचिदूनचरमशरीरपरिमाणावस्थित-लोकाकाशसम्मितात्मावयवत्वलक्षणा नियतप्रदेशत्वशक्तिः ।।२४।।

सर्वशरीरैकस्वरूपात्मिका स्वधर्मव्यापकत्वशक्तिः ।।२५।।

स्वपरसमानासमानसमानासमानत्रिविधभावधारणात्मिका साधारणासाधारणसाधारणासाधारणधर्मत्वशक्तिः ।।२६।।

यह समयसार। शक्ति का अधिकार (चलता) है। शक्ति नाम आत्मा का गुण। गुणी भगवान आत्मा और उसमें शक्ति - रत्न, अनंत शक्ति का रत्न से भरा रत्नाकर भगवान आत्मा (है)। इस शक्ति के वर्णन में शक्ति का ज्ञान करना। जानने में यह शक्तिवान, (यह) शक्ति, ऐसा ज्ञान करना परंतु श्रद्धा में तो शक्ति और शक्तिवान का भेद छोड़कर अभेद शक्ति की दृष्टि (अर्थात्) शक्तिवान की दृष्टि (करना)। उससे उसमें सम्यग्दर्शन रूपी रत्न (प्रगट होता है)। त्रिरत्न कहते हैं कि नहीं ? रत्नत्रय - मोक्ष के मार्ग को रत्नत्रय कहते हैं न ? यह रत्नत्रय कैसे प्रगट हो ? जो आत्मा वस्तु है इसमें अनंत शक्ति (रूप) रत्न (हैं)। अनंत शक्तिरूप रत्न से भरा भण्डार है। आहाहा ! ऐसे शक्तिवान पर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन रूपी रत्न प्रगट होता है। द्रव्य रत्न, गुण रत्न और पर्याय में (भी) रत्न प्रगट होता है। आहाहा ! समझ में आया ?

चाहे जितना जानपना हो, कम-अधिक (जानपना) हो उसके साथ कोई संबंध नहीं और वर्तन में कदाचित् स्वरूप की रमणता (रूप) चारित्र न हो परंतु वस्तु की दृष्टि में एकरूप दृष्टि करने से, उसमें यह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र (रूप) रत्नत्रय प्रगट होता

है। इस रत्नत्रय का फल अनंत ज्ञान, दर्शन (प्रगट होता है)। रत्नत्रय का फल तो महारत्न है। जब पर्याय रत्न है और (उसका) फल रत्न है तो उसका कारण द्रव्य, गुण तो महारत्न है। समझ में आया ? आहाहा ! यह साधारण बात नहीं है। शक्ति का वर्णन, अलौकिक वर्णन है।

यह २४ वीं शक्ति फिर से लेते हैं। २३ (शक्ति) तो चली। २४ वीं शक्ति है तो नित्य - ध्रुव परंतु है कैसी ? ``**जो अनादि संसार से लेकर...**'' ओहोहो ! अनादि संसार (अर्थात्) निगोद से लेकर। ``**...संकोचविस्तार से लक्षित...**'' (आत्मा का) असंख्य प्रदेश है, यह संकोच होता है और विस्तार होता है। संख्या इतनी की इतनी (रहती है) और यह एक-एक प्रदेश (का) संकोच-विस्तार होता है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? संकोच विकास का अर्थ मात्र इतना (है कि), परमाणु (जितनी ज़गह रोके उतना एक प्रदेश है)। उसमें दूसरा प्रदेश आ जाता है, उसका नाम संकोच। और विकास (का अर्थ इतना है कि), जितना असंख्य प्रदेश से विकास होता है (चाहे) लोक प्रमाणे हो कि १ हज़ार योजन का मच्छ (हो), उस रूप असंख्य प्रदेश व्यापक हो (जाय) परंतु है असंख्य (प्रदेश ही)। इसमें कम या बढ़ (वृद्धि) नहीं होती। (यह) एक बात (हुई)।

(दूसरी बात यह है कि), इस असंख्य प्रदेश को पंचास्तिकाय में तो एक प्रदेश ही कहा है। ३२ गाथा की टीका में है। कल बतलाया था। (आत्मा के) असंख्य प्रदेश (हैं)। यह भेद से कथन है और असंख्य प्रदेश का एकरूप, यह अभेद से कथन है। आहाहा ! ऐसे एक प्रदेशरूप यह असंख्य प्रदेश को एक प्रदेश कहा। यहाँ (शक्ति में) असंख्य प्रदेश को नियत - निश्चय कहा। नियत प्रदेश कहा न ? क्यों ? संख्या से असंख्य (प्रदेश है) यह निश्चय है। असंख्य प्रदेश को एकरूप करके एक प्रदेश कहना और असंख्य प्रदेश के भेद करके व्यवहार कहना, यह बात अभी नहीं (करनी है)। समझ में आया ? अभी तो असंख्य प्रदेश है यह निश्चय से है, (इतना कहना है)। समझ में आया ?

यह प्रश्न तो बहुत काल पहले उठा था। (हम) अमरेली जाते थे वहाँ एक आदमी ने प्रश्न किया था, करीब ७८ की साल होगी। वे स्वागत में आये थे। उन्होंने रास्ते में प्रश्न पूछा, `ये प्रदेश है यह तो कल्पना से है। आकाश के अनंत प्रदेश जीव, जीव का असंख्य (प्रदेश) यह तो कल्पना है'। हमने कहा, `कल्पना नहीं है।' (हम) अमरेली जाते थे (वहाँ) एक वरसडा गाँव है। (हम) चलकर जाते थे। (तो वहाँ) रास्ते में लोग लेने को आते थे। वहाँ ये प्रश्न उठा कि, `यह प्रदेश जो कहने में आता है - यह कल्पना है। प्रदेश (जैसा कुछ) नहीं है।' ऐसे नहीं (है)। यह (बात) यहाँ सिद्ध करते हैं।

असंख्य प्रदेश नियत है, निश्चय से है। समझ में आया ? इस संख्या के निश्चय

को नियत लागू पड़ता है। बाद में उसे एकरूप कहना। और भेद से (असंख्य प्रदेश का), विचार करना यह तो फिर व्यवहार नय हो गया। परंतु यहाँ तो असंख्य प्रदेश संख्या से नियत है। व्याजबी रीत से, यथार्थ रीत से है। आकाश का (जैसे) अनंत प्रदेश है, वैसे जीव का असंख्य प्रदेश है, यह यथार्थ है।

यहाँ कहते हैं कि, ``**जो अनादि संसार से लेकर संकोचविस्तार से लक्षित...**'' (अर्थात्) संकोचविस्तार से जानने में आनेवाला है। है न ? ``**और जो चरम शरीर के परिणाम से कुछ न्यून...**'' (जो) मुक्त होने का आखिर का शरीर है। (उस) शरीर प्रमाण से आत्म प्रदेश रहते हैं। सिद्ध में भी शरीर प्रमाण आत्म प्रदेश है। शरीर के कारण से नहीं। अपनी योग्यता से आखिर का शरीर प्रमाण आत्म प्रदेश का रहना, यह अपना स्वभाव है।

(यहाँ) कहते हैं कि, ``**...चरम शरीर के परिमाण से...**'' परिणाम यानी माप। ``**...चरम शरीर के परिमाण से कुछ न्यून...**'' चरम शरीर का जो माप है, उससे थोड़ा न्यून। समझ में आया ? ``**कुछ न्यून परिमाण से...**'' (अर्थात्) न्यून माप से। ``**...अवस्थित होता है।** '' बाद में चरमशरीर का आखिर का असंख्य प्रदेश सादि अनंत (काल) वैसा का वैसा अवस्थित रहता है। सिद्ध में आखिर का शरीर से थोड़ा न्यून सादि अनंत (काल) रहता है तो उसे अवस्थित कहा (और) संकोच-विस्तार को लक्षित कहा। आहाहा ! संकोच विस्तार होता है, यह जानने लायक है। बाद में सादि अनंत (काल) असंख्य प्रदेश अवस्थित होता है। (उसमें कोई) फेरफार नहीं होता तो उसे वहाँ अवस्थित कहा।

``**...अवस्थित होता है। ऐसा लोकाकाश के माप (जितना)...**'' आहाहा ! लोक के आकाश प्रमाण जिसका माप है। ``**...जितना मापवाला आत्म - अवयवत्व...**'' भगवान आत्मा ! अवयवी (है) (और) प्रदेश उसका अवयव है। जैसे शरीर अवयवी (है) तो हाथ-पैर, अंगुली, हाथ-पैर अवयव है। समझ में आया ? ऐसे वस्तु अवयवी है। असंख्य प्रदेश उसका अवयव है। यह अंग के अवयव (हैं यह आत्मा के) अवयव नहीं। समझ में आया ? यह तो मिट्टी का - धूल का अवयव है। उसका अवयव तो असंख्य प्रदेश है, यह उसका अवयव है और एक-एक प्रदेश में अनंत गुण व्यापक है।

श्रोता : एक-एक प्रदेश में पूरा गुण नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा (गुण ऐसे) नहीं। व्यापक कहा। एक-एक गुण असंख्य प्रदेश में व्यापक है। एक प्रदेश में पूरा गुण, ऐसा नहीं है।

श्रोता : असंख्य प्रदेश में पूरा गुण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : असंख्य प्रदेश में पूरा गुण है। और एक प्रदेश में प्रदेश तो

पूरा है। (जैसे) एक प्रदेश में दूसरे प्रदेश का अभाव (है)। वैसे एक प्रदेश में जो गुण है (उसमें) दूसरे गुण का अभाव है, ऐसा नहीं। क्या कहा ?

श्रोता : एक गुण में दूसरे गुण का अभाव नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। (एक प्रदेश का दूसरे) प्रदेश में अभाव है। ९९ गाथा में ऐसा लिया है। उसका असंख्य प्रदेश स्वरूप है। परंतु (सर्व प्रदेश) तिरछा है। (उसमें) एक प्रदेश दूसरे प्रदेशरूप है, दूसरा (प्रदेश) तीसरा (स्वरूप है), ऐसा नहीं। एक प्रदेश में दूसरे प्रदेश का अभाव है। तब असंख्य (प्रदेश) सिद्ध होगा। परंतु एक प्रदेश में जो ज्ञान आदि अनंत गुण हैं, वह एक ही प्रदेश में है, ऐसा नहीं। (अनंत गुण) असंख्य प्रदेश में तिरछा व्यापक है।

प्रवचनसार में सामान्य समुदाय आता है। गुण की आकृति की पर्याय - जो व्यंजन पर्याय है। व्यंजन पर्याय की बात नयी आयी। आकृति की व्यंजन पर्याय (जो) है, (यह) संसार में संकोच विस्ताररूप व्यंजन पर्याय है। और (सिद्ध दशा में) आखिर में चरम शरीर प्रमाण व्यंजन पर्याय है। द्रव्य के प्रदेश की पर्याय को व्यंजन पर्याय कहते हैं और उसमें दूसरे अनंत गुण हैं, उस (गुण की) पर्याय को अर्थ पर्याय कहते हैं। ऐसी बात (है)। समझ में आया ?

श्रोता : स्वभाव में व्यंजन पर्याय का रूप तो है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ है, परंतु द्रव्य के प्रदेश को ही व्यंजन पर्याय कहते हैं। और प्रदेश में जो अनंत गुण है उसकी पर्याय को अर्थ पर्याय कहते हैं। अब यहाँ, दूसरी बात कहनी है कि, वह व्यंजन पर्याय का आयत जो क्रमसर होता है और अक्रम जो गुण है; यह व्यंजन पर्याय और अर्थ पर्याय की क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती गुण, इन दोनों के समुदाय को यहाँ आत्मा कहने में आया है। एक बात।

दूसरी बात। (आत्म) प्रदेश में जितना कंपन आदि है, इस कंपन का यहाँ अभाव लेना है। वह निष्क्रिय (शक्ति में) आ गया है। यह निष्क्रिय शक्ति अनंत गुण में व्यापक है। आहाहा ! यहाँ जो असंख्य प्रदेश की व्यंजन पर्याय है, इसमें भी निष्क्रियता है। (उतने) प्रदेश स्थिर हो गये। समझ में आया ? और उसमें जितनी अस्थिरता है उसका उसमें (उस निर्मल पर्याय में) अभाव है। यहाँ व्यंजन पर्याय की मलिनता नहीं लेनी है, निर्मल पर्याय लेनी है। आहाहा ! ऐसा मार्ग ! समझ में आया ?

(यहाँ) कहते हैं कि, आत्मा की नियत प्रदेशत्व शक्ति (अर्थात् आत्मा की) निश्चय प्रदेशत्व शक्ति। आहाहा ! इस शक्ति का रूप तो असंख्य (अनंत) गुण में भी है। समझ में आया ? आहाहा ! दीपचंदजी ने सवैया में बहुत विस्तार किया है। अध्यात्म पंचसंग्रह

में पाँच बोल (अधिकार) है। ज्ञान दर्पण, स्वरूप आनंद, उपदेश सिद्धांत रत्न, सवैया। (इस) सवैया में उसका बहुत विस्तार किया है, बहुत किया है। साधारण सभा में समझ में न आवे। नट, थट, रूप, भाव (ऐसा) बहुत लिया है।

सवैया है न ? देखो ! ``**गुण एक एक जाके परजे अनंत करे, परजे में नंत नृत्य नाना विस्तर्यो है**'' एक पर्याय में ज्ञान की पर्याय द्रव्य को जाने, गुण को जाने, पर्याय को जाने। ऐसी एक समय में अनंता गुण की पर्याय द्रव्य को जाने, ऐसा ज्ञान की पर्याय का नृत्य होता है। समझ में आया ? ``**नृत्य में अनंत थट...**'' एक पर्याय में अनंत नृत्य और उसमें अनंत सामान्य - विशेष वस्तु का भी ज्ञान, संकोच विकास का ज्ञान, अवस्थित है उसका ज्ञान, अनंत गुण का ज्ञान, अनंत पर्याय का ज्ञान (ऐसे) एक पर्याय के नृत्य में थट है। वहाँ लंबी बात है। उसमें अनंत कला है। उसमें भी एक-एक पर्याय के अनंत भाग में नृत्य, उसके अनंत भाग में थट, उसके अनंत भाग में - थट में अनंती कला है। कला के अंदर भाग होता है। विस्तार किया है। लेकिन बहुत सूक्ष्म है। यह तो इतने थोड़े शब्दों में (लिया)। ``**कला में अखण्डित अनंत रूप धर्यो है,**'' पर्याय में - ज्ञान की पर्याय सबको जाने, यह नृत्य (है) और इस नृत्य में एक समय की पर्याय में अनंता... अनंता... गुण और अनंत पर्याय का थट जान्या है। और इस थट में उसकी एक-एक पर्याय की कला है। और कला में अखण्डित अनंत रूप है। ``**रूप में अनंत सत्, सत्ता में अनंत भाव, भाव को लखावहु अनंत रस भर्यो है; रस के स्वभाव में प्रभाव है अनंत दीप, सहज अनंत यो अनंत लगि कर्यो है**'' बाद में व्याख्या की है। पहले सब पढ़ा है न !

दीपचंदजी का सम्यग्दर्शन सहित क्षयोपशम बहुत था। समझ में आया ? स्वसंवेदन सहित क्षयोपशम बहुत था। लिखते हैं कि, `दीपचंदजी साधर्मी...' ऐसा लिखे। परंतु उनकी क्षयोपशम शक्ति बहुत थी। लगभग २०० वर्ष पहले हो गये। श्रीमद्जी हुए तो श्रीमद्जी का (भी) क्षयोपशम उस समय बहुत था। परंतु उन्होंने बाहर में इसका बहुत स्पष्टीकरण नहीं किया। बाकी उनका क्षयोपशम बहुत था और इन्होंने (दीपचंदजी ने) तो बाहर में सब स्पष्टीकरण किया। एक-एक गुण, एक-एक पर्याय, एक-एक पर्याय में अनंत नृत्य और थट, रूप, भाव और प्रभाव (ऐसा बहुत वर्णन किया है)। दरबार भरा है। समझ में आया ? दरबार के निधान में बड़ा भण्डार होता है न ? हीरा-माणेक का बड़ा भण्डार होता है। बड़े चक्रवर्ती राजा के भण्डार में जैसे ९ निधान (होते हैं)। उस एक-एक निधान की एक-एक देव सेवा (करे)। निधान में तो बहुत चीज़ भरी है। ऐसे भगवान आत्मा ! अनंत रत्नाकर से भरा समुद्र - दरिया है। आहाहा ! उससे कोई ऊँची चीज़ जगत

में नहीं है। समझ में आया ?

ऐसा आत्मा का प्रदेश, है ? ``(**आत्मा के लोक परिमाण असंख्य प्रदेश नियत ही हैं**'' निश्चय से असंख्य (प्रदेश) है। कल्पना से है, ऐसा नहीं। आहाहा ! ``**वे प्रदेश संसार अवस्था में संकोचविस्तार को प्राप्त होते हैं और मोक्ष- अवस्था में चरम शरीर से कुछ कम परिमाण से स्थित रहते हैं।**)'' यह २४ वीं शक्ति कही। समझ में आया ? कल तो एक घंटा चली थी। वह तो आये सो आये न ? आहाहा !

एक-एक प्रदेश में अनंत गुण भरा है। (और अनंत गुण) असंख्य प्रदेश में व्यापक (हैं)। आहाहा ! एक-एक गुण में अनंत सामर्थ्य भरा है। एक-एक शक्ति में अनंती प्रभुता पड़ी है। नियत प्रदेशत्व शक्ति में भी अनंत प्रभुता है। और दूसरी एक बात आ गई। भगवान के असंख्य नियत प्रदेश है, उसमें सर्वज्ञ और सर्वदर्शी(शक्ति का) निधान पड़ा है। अपने देश में निधान है। आहाहा ! ऐसा है।

असंख्य प्रदेश स्वदेश है. उसमें सर्वज्ञ और सर्वदर्शी(शक्ति) परिपूर्ण भरी है। आहाहा ! सर्वज्ञ और सर्वदर्शी - ऐसी परिपूर्ण शक्ति स्वदेश में - असंख्य प्रदेश में व्यापक है। आहाहा ! सर्वज्ञ स्वरूप ही भगवान है और सर्वदर्शी स्वरूप ही भगवान है। आहाहा ! यह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी (शक्ति) एक समय की पर्याय में जब प्रगट होती है तो सर्वदर्शीशक्ति एक समय की पर्याय में सब (पदार्थों को) सामान्यरूप से देखती है। भेद किये बिना - विशेष किये बिना, सामान्य जो सत् है उसे देखती है और उसी समय में केवलज्ञान की पर्याय एक-एक द्रव्य का भिन्न गुण, गुण की भिन्न पर्याय, पर्याय का भिन्न अविभाग प्रतिच्छेद, उसमें नट, थट, सब कुछ हैं, (इन) सबको ज्ञान की (पर्याय) - केवलज्ञान की पर्याय एक समय में देखती है। उसी समय में दर्शन भेद किये बिना देखता है। (और) उसी समय में ज्ञान की पर्याय सबको भेद करके देखती है। उसे यहाँ (अध्यात्म पंचसंग्रह में) पुराण (अधिकार में) अद्‌भुत रस में लिया है। समझ में आया ? अद्‌भूत रस की व्याख्या करते हैं। (उसमें) यह लिया है। असद्‌भूत तो देखो ! आहाहा ! भगवान आत्मा (के) असंख्य प्रदेश में सर्वदर्शी, सर्वज्ञ शक्ति जब प्रगट होती है, शक्ति में से व्यक्ति (जब प्रगट होती है) तो (दर्शन) एक समय में सर्वको भेद किये बिना देखे और (ज्ञान) सब को भेद करके जाने। एक समय में दो शक्ति (और) दोनों के लक्षण भिन्न। आहाहा ! समझ में आया ?

उसमें (अध्यात्म पंचसंग्रह में है)। (बातें तो) निकले तब निकले, (ऐसे) सर्वथा थोड़ी निकले ? उसमें (नव रस में एक) अद्‌भुत रस है। ``**आगे अद्‌भुत रस कहिये है। अद्‌भुतता सत्ता में ऐसी है।**'' - अद्‌भूतता सत्ता में ऐसी है, भगवान आत्मा की सत्ता, उसकी सत्ता

में अद्भुतता ऐसी है। ``**...साकार ज्ञान है, निराकार दर्शन है। दोनों की सत्ता एक है**'' एक समय में है। ``**यह अद्भुत (भाव) रस है।**'' यह अद्भुतभाव रस है। अद्भुत की यह व्याख्या है। है अद्भुत रस ? ज्ञान साकार है। एक समय में साकार (अर्थात्) सब का भेद कर-करके (जाने)। साकार का अर्थ आकार नहीं। साकार का अर्थ - स्व-पर अर्थ का भेद करके - जितने भेद हैं इतने प्रमाण से जाने उसे साकार (कहते हैं)। ज्ञान को साकार (अर्थात्) पर का आकार होता है तो साकार कहने में आता है, ऐसा है नहीं।

यह (बात) तत्त्वार्थसार में है। अमृतचंद्राचार्य का तत्त्वार्थसार में है न ? इसमें यह बोल है कि ज्ञान को साकार इस कारण से नहीं कहा कि, पर का उसमें आकार पड़ा, झलक पड़े तो आकार (है), ऐसी बात नहीं है। परंतु ज्ञान का विकल्प है, स्वपर का विकल्प (है)। परंतु राग नहीं। आहाहा ! ऐसा सूक्ष्म तत्त्व ! यहाँ यह कहते हैं। उसमें नियत प्रदेशत्व शक्ति है। देखो ! २४ (शक्ति समाप्त) हुई।

(अब) २५ वीं (शक्ति)। ``**सर्व शरीरों में एकस्वरूपात्मक...**'' आहाहा ! क्या कहते हैं ? निगोद से लेकर आखिर का चरम शरीर उसमें, ``**सर्व शरीरों में...**'' सर्व शरीर आया न ? (उसका अर्थ) निगोद से लेकर चरम शरीर, (ऐसे) जितने शरीर हैं, इसमें ``**...एकस्वरूपात्मक...**'' (अर्थात्) उसमें स्वरूप तो एकस्वरूप ही है। (आत्मा) शरीर में व्याप्त होता है, राग में व्याप्त होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा ! क्या कहते हैं ?

अनंत शरीर में शरीर की पर्याय अनुसार आकार आदि हो। फिर भी शरीर में यह पर्याय व्यापक नहीं। शरीर की अवस्था व्याप्य और आत्मा व्यापक, ऐसा है नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? अपने अनंत गुण जो व्यापक होकर (निर्मल) पर्याय व्याप्य (होती है)। यहाँ निर्मल पर्याय की बात है। मलिन पर्याय की बात नहीं। (आत्मा) शरीर में तो व्यापक नहीं है, व्याप्य नहीं है, परंतु राग में भी व्याप्य नहीं है, आहाहा ! क्योंकि राग तो अनेक प्रकार का - विविध (प्रकार का) होता है। असंख्य प्रकार के शुभ और अशुभ (राग होते हैं)। यहाँ ये नहीं लेना है। यहाँ तो ``**एकस्वरूपात्मक...**'' (लेना है)। है ? ``**सर्व शरीर में...**'' सर्व शरीर में। आहाहा ! जैसे २५ कमरे हो और एक दीपक हो (और दीपक) एक कमरे से दूसरे कमरे में (ले जाओ) तो (भी) दीपक तो दीपक स्वरूप ही है। (वह) कमरे स्वरूप भी हुआ नहीं। समझ में आया ? ऐसे सर्व - अनंत शरीरों में (जाने पर भी) चैतन्य स्वरूप दीपक प्रभु ! उसका एक सरीखा स्वरूप है। जैसे दीपक कमरे में व्याप्त नहीं होता वैसे जीवस्वरूप आत्मा शरीर में व्याप्त नहीं और अंदर दया, दान का विकल्प है इसमें भी व्यापक नहीं। आहाहा ! यहाँ कहीं भी मलिन

पर्याय की बात लेनी ही नहीं। समझ में आया ? यहाँ शक्ति के वर्णन में तो क्रम (रूप पर्याय) और अक्रम (रूप गुण) दोनों निर्मल लेना है।

यहाँ लोग ऐसा कहते हैं कि, व्यवहार से निश्चय से होता है। अरे...! व्यवहार - राग तो निर्मल पर्याय में है ही नहीं। समझ में आया ? आत्मा व्यापक और राग व्याप्य यह वस्तु का स्वरूप ही नहीं है। आहाहा ! भगवान आत्मा द्रव्य व्यापक नाम कर्ता होकर निर्मल पर्यायरूपी व्याप्य की अवस्था करनेवाला है। यह भी व्यवहार है। आहाहा ! निर्मल पर्याय अपने से हुई है। कर्ता - कर्म - करण (आदि षट्कारक से) अपने से हुई है। परंतु यहाँ तो पर से भिन्न करके बात बतलानी है न ?

(यहाँ) ``**एकस्वरूपात्मक...**'' आहाहा ! अनंत शरीर (मिले उसमें) हज़ार योजन का शरीर मिला या एक अक्षर के अंगुल के असंख्य भाग में एक शरीर मिला, तो भी स्वयं तो अपने स्वरूप में ही व्यापक है। शरीर में व्यापक नहीं और राग में कभी व्यापक हुआ ही नहीं। आहाहा ! ऐसा चैतन्य भगवान परमात्मस्वरूप बिराजते हैं। तेरी निधि तेरी है, तेरी है यह तेरे पास है, ऐसा कहना यह भी व्यवहार है। तेरी निधि तुम (स्वयं) हो। आहाहा ! (यह) स्वरूप ही निधि है। आहाहा ! अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन (स्वरूप उसकी निधि है)। कहते हैं कि, शरीर छोटा-बड़ा हुआ परंतु शरीर में उसका धर्म व्यापक है ही नहीं। वह तो अपने स्वरूप में ही व्यापक है। आहाहा ! शरीर को कभी छूआ ही नहीं और शरीर को तो नहीं (छूआ) परंतु राग को भी निर्मल पर्याय कभी स्पर्श नहीं करती। ऐसा ``**एकस्वरूपात्मक...**'' ऐसा लिया न ? आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बातें ! बापू ! यह शक्ति का वर्णन कलास शुरू किया तब से शक्ति शुरू की है। आज २३ दिन हुए। शक्ति के वर्णन में आज २३ वाँ दिन है। आहाहा ! क्या कहा ?

``**सर्व शरीरों में...**'' सर्व शब्द (का अर्थ) क्या है ? निगोद से लेकर चरम शरीर तक - सर्व शरीरों में। अनंत...अनंत... छोटे-बड़े ऐसे शरीरों में - अंगुल के असंख्य भाग के शरीर में और हज़ार योजन के शरीरों में ``**...एकस्वरूपात्मक...**'' एक स्वरूपी चिदानंद प्रभु है। उसमें कोई कमी या वृद्धि कुछ नहीं है। ऐसी चीज़ भगवान पूर्णानंद का नाथ, परमात्मस्वरूप, (बिराजमान है)। सर्व आत्मा परमात्मप्रकाश ही है। शरीर का नाम है यह कोई आत्मा में नहीं है। आहाहा !

असंख्य प्रदेशी अनंत गुण का धाम ! और यह आत्मा अनंत छोटे-बड़े शरीरों में रहने पर भी शरीर को छूआ ही नहीं। आहाहा ! तो लक्ष्मी, स्त्री, कुटुंब, मकान और व्यापार उसको भी कभी छूता ही नहीं। तीनकाल में छूआ ही नहीं। आहाहा ! आत्मा शरीर की पर्याय को छूआ ही नहीं। अनादि से एक स्वरूप ही रहा है, ऐसा कहते

हैं। आहाहा ! ऐसी चीज़ पर दृष्टि करना। आहाहा ! एक स्वरूपी प्रभु भगवान ! अनंत गुण होने पर भी, अनंत शरीर में क्रमसर पलटते रहने पर भी वह तो एक स्वरूप ही है। उसमें अनेक स्वरूप कभी आया नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है।

एक स्वरूप शक्ति, एक स्वभाव ऐसा लिया न ? सर्व शरीरों में एक स्वरूप... एकस्वरूपात्मक, यानी एक स्वरूप लक्षण - आत्मक का अर्थ ही स्वरूप होता है। आत्मक है न ? '**स्वरूपात्मक**' उस लक्षण स्वरूप है। उसका एक स्वरूप लक्षण स्वरूपी भगवान है। आहाहा ! ऐसा सूक्ष्म ! कहने जाय (तो लोगों को सूक्ष्म पड़ता है)। आहाहा ! अरे...! ऐसे मनुष्यदेह में ऐसी चीज़ नहीं मिले, समझ में नहीं आये तो दृष्टि न हो तो उसने क्या किया ? आहाहा ! चाहे जितने व्रत, तप, भक्ति, शास्त्र का जानपना करे, उसमें क्या आया ? आहाहा !

एक स्वरूपी भगवान आत्मा ! अनंत भिन्न - भिन्न शरीर में रहने पर भी अपना एक स्वरूपपना छूटा नहीं। आहाहा ! और पर्याय में भी शुभ - अशुभ राग हुआ तो भी भगवान एक स्वरूप है। वह पर्याय या रागरूप कभी हुआ नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

वह तो छट्ठी गाथा में कहा न ? ज्ञायक - "**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।**" भगवान ज्ञायकभाव ! यहाँ (ज्ञायक) शब्द की बात नहीं। ज्ञायकभाव वाच्य जो है (वह लक्ष्य में आना चाहिए)। ज्ञायक शब्द है (और ज्ञायक भाव वाच्य है)। (जैसे) चीनी शब्द वाचक है और चीनी वाच्य है। ऐसे यहाँ ज्ञायकभाव शब्द वाचक है। उसका वाच्य त्रिकाली ज्ञायकभाव है। (वह) एक स्वरूप ही रहा है। आहाहा ! पर्याय में कम - बेसी आदि भले हो (लेकिन) वस्तु तो अनादि - अनंत एक स्वरूप पड़ी है। आहाहा ! समझ में आया ? और ऐसी दृष्टि होने से पर्याय में भी एक स्वरूपता का परिणमन होता है।

द्रव्य और गुण एक स्वरूपात्मक है। परंतु उसका स्वीकार करने से (सम्यग्दर्शन होता है)। कल तो कहा था न ? सत्कार (करना)। पूर्ण सत्स्वरूप भगवान आत्मा उसका सत्कार (करना)। 'है' ऐसा आदर करना, 'है' ऐसा आदर करना, यह सम्यग्दर्शन की पर्याय है। उसमें सारे आत्मा का सत्कार हुआ। 'है' ऐसा प्रतीत में आया। और उसे पर्याय जितना मानना, राग जितना मानना वह तो आत्मा का मृत्यु है। सारी वस्तु है उसका वह अनादर करता है। पूर्णानंद का नाथ एक स्वरूपे बिराजमान है। (है उसे) रागवाला कहना, स्वरूप की जो त्रिकाली शक्ति - सत्त्व है, उसकी यह हिंसा करता है। हिंसा नाम निषेध करता है, निषेध करता है वही हिंसा है। आहाहा ! और अंदर में अनंत

गुण का जीवन जिसका है, ऐसा स्वीकार करने से पर्याय में भी निर्मल परिणति (परिणमित होती है)। (जैसी) एकस्वरूपात्मक वस्तु है, ऐसा ही एकस्वरूपात्मक परिणमन पर्याय में भी होता है। आहाहा ! समझ में आया ?

``**सर्व शरीरों में एकस्वरूपात्मक ऐसी स्वधर्मव्यापक...**'' (आत्मा) अपने धर्म में व्यापक है। आहाहा ! अपने गुण और अपनी निर्मल पर्याय में व्यापक है। आहाहा ! मलिन पर्याय में भी व्यापक नहीं (है)।

(लोग) शुभ जोग से धर्म होता है, (ऐसा मानते हैं)। अररर... गज़ब करते हैं ! (इस बात की) बड़ी तकरार (चली) है। (कोई विद्वान ऐसा कहते हैं) शुभ जोग मोक्ष का मार्ग है। वे कहते हैं कि, `शुभ जोग हेय माने (वह मिथ्यादृष्टि है)।' (लेकिन) कुंदकुंदाचार्य देव ने (शुभ जोग को हेय) कहा है। कुंदकुंदाचार्य (शुभजोग को) हेय मानते हैं तो तुम कहते हो कि, (शुभ जोग को) हेय माने (वह) मिथ्यादृष्टि है। तो कुंदकुंदाचार्य (शुभ जोग को) हेय मानते हैं तो वे भी मिथ्यादृष्टि हो गये ! आहाहा !

परमात्मप्रकाश में ३६-३७ गाथा में तो ऐसा कहा है कि, जो राग को उपादेय मानता है उसने आत्मा को हेय माना। जिसने राग को - विकल्प को उपादेय माना उसने आत्मा के स्वभाव को हेय माना, आहाहा ! व्यवहार रत्नत्रय का शुभ जोग है, वह व्यवहार रत्नत्रय उपादेय है, आदरणीय है, ऐसा जिसने माना उसने शुद्ध चिदानंद स्वरूप को, अखण्डानंद (स्वरूप को) हेय माना। (अज्ञानी जीव ने) आत्मा को हेय माना (और) राग को उपादेय माना। धर्मी जीव राग को हेय मानकर त्रिकाली को उपादेय मानते है। इसमें कहाँ सब मेल करना ?

अरे प्रभु ! तेरी चीज़ जितने प्रकार से है, इतने प्रकार से स्वीकार न हो तो - तो (उसका) अनादर हो गया। सत् परिपूर्ण भगवान एकस्वरूपात्मक धर्म है, वह स्वधर्म में व्यापक है। अपने गुण और पर्याय में ही व्यापक है। यहाँ निर्मल पर्याय लेना। समझ में आया ? आहाहा ! शब्द थोड़े हैं परंतु भाव बहुत गंभीर है। अमृतचंद्राचार्य ने गज़ब काम किया है ! पंचम आरा में कुंदकुंदाचार्य ने तीर्थंकर जैसा काम किया है (और) अमृतचंद्राचार्य ने (उनके) गणधर जैसा काम किया है। आहाहा ! शब्द थोड़े हैं इसलिये (भाव कम है ऐसा) नहीं समझना। (एक) जगत (शब्द) कहते हैं (उसमें) सब आ गया। जगत तीन अक्षर का (शब्द है)। तो जगत में तो अनंत सिद्ध आये, अनंत निगोद आया। अनंत द्रव्य आये। (जगत कहने में) सब आ गया। आहाहा ! तीन निरक्षर हैं। कानो - मात्रा बिना का (है)। ज...ग...त... जा, जी, जो... ऐसा कुछ नहीं। एकाक्षरी (है)। भगवान की वाणी एकाक्षरी निकलती है न ? `ओम' आहाहा ! जगत तीन अक्षर (का शब्द है)।

जगत में तो अनंत सिद्ध आ गये, अनंत निगोद आ गये, छः द्रव्य (आ गये), छः द्रव्य के गुण-पर्याय सब आ गया। ऐसे एक-एक शक्ति में इतनी गंभीरता है। आहाहा !

श्रोता : आपने फरमाया न कि अमृतचंद्राचार्य ने गज़ब काम किया तो गज़ब किसने किया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अमृतचंद्राचार्य ने (गज़ब) किया।

श्रोता : अब तो गज़ब आप कर रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हम तो वे कहते हैं उसका स्पष्टीकरण करते हैं। इसमें (अंदर टीका में भरा) है। समझ में आया ? वह दृष्टांत नहीं दिया ? कि गाय के - भैंस के आळ में दूध है. (दूध निकालनेवाली) बाई ज़ोरदार ऐसी होनी चाहिए कि, (दूध बाहर निकले)। (गाय का) आंचल है न ? (उसमें से दूध) ऐसे नहीं निकलता। (ऐसी ही निकालने जाये तो) फोडे हो जाय। आंचल कहते हैं क्या कहते हैं ? भूल जाते हैं। आत्मा का जितना याद रहे उतना बाहर का याद नहीं रहता। आंचल ऐसे नहीं दोहते। देखा है कभी ? हमारी बहन के यहाँ गाय थी। छोटी उम्र में लाये थे। वह दोहती थी तो हम देखते थे। इस उँगली में अंगुठा ऐसे करती थी तो दूध निकलता था। वैसे इन शास्त्रों के शब्दों में अमृतचंद्राचार्य ने तर्क लगाकर उसमें दूध है उसे निकालते हैं। भाव में है उसको निकालते हैं। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं, ``**सर्व शरीरों में...**'' (अर्थात्) अनंत शरीरों में। (यानी) भिन्न - भिन्न आकारवाले छोटे और महा शरीरों में। भगवान (आत्मा) तो सर्व शरीरों में एकस्वरूप, एकस्वरूप चिदानंदकंद, आनंदकंद रहा है। आहाहा ! समझ में आया ? निगोद की पर्याय में अक्षर के अनंतवें भाग में (ज्ञान) हो तो (भी) वस्तु तो एकस्वरूप त्रिकाल आनंदकंद रही है। ऐसी दृष्टि कभी की नहीं। सब किया, जानपना किया, ११ अंग पढ़े। `पढ़ डाला' (अर्थात्) पढ़कर छोड़ दिया ! आहाहा ! जो करना है वह तो चीज़ यह है। अपनी ज्ञान की पर्याय में पूर्णानंद एकस्वरूप है उसकी दृष्टि करना, - तो पर्याय में भी शक्ति की व्यक्तता (होती है)। श्रद्धा की वीर्य की, आनंद की, ईश्वरता की, प्रभुत्व शक्ति है न ? सब का वेदन पर्याय में आना। उसका नाम धर्म ऐसा उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। आहाहा ! समझ में आया ?

श्रोता : धर्म तो वीतरागता को कहते हैं। इसमें कहाँ वीतरागता आयी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतरागता ही आयी। वीतरागता कब आयी ? वीतराग स्वरूप ही भगवान है। उसका आश्रय लेने से पर्याय में वीतरागता प्रगट होती है। वीतराग स्वरूप है उस तरफ झुकने से पर्याय में वीतरागता होती है।

आज एक (पत्रिका में) बड़ा लेख आया है। 'सबको प्रेम कहो कि वीतरागता कहो (एक ही बात है)' ऐसा लिया है। बड़ा लेख है। प्रेम शब्द का (अर्थ) ऐसा नहीं। प्रेम का अर्थ ऐसा लेना कि, स्वरूप जो है उसमें एकाग्रता होना वह प्रेम है। सर्व विश्व के प्रति प्रेम, ऐसा (उसका अर्थ) नहीं है। परंतु बड़ा लेख आया है। स्थानकवासी में एक है। वे ऐसा कहते हैं, 'विश्वप्रेम - सर्व विश्व पर प्रेम करो' - क्या विश्व पर प्रेम करे? (कोई) स्थानकवासी साधु है। उसका पत्र निकलता है उसमें लिखते हैं - विश्ववात्सल्य। सर्व विश्व पर प्रेम करना। परंतु प्रेम की व्याख्या क्या ? क्या सब को अपना मानना ? (सब से) एकत्व मानना यह प्रेम है ? विश्व का ज्ञान करके अपने स्वभाव में एकता होना यह प्रेम है। दूसरे द्रव्य से प्रेम (करना, यह तो राग है)। तीर्थंकर गुरु के पास गये इनका भी प्रेम करना कि, 'यह मेरे हैं' यह तो राग है। यह तो एकस्वरूपात्मक है नहीं।

''**सर्व शरीरों में एकस्वरूपात्मक ऐसी स्वधर्मव्यापकत्व...**'' है ? स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति। (आगे कौंस में) - ''(**शरीर के धर्म रूप न होकर, अपने अपने धर्मों में व्यापने रूप शक्ति** ! **सो स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति है।**)'' आहाहा ! परमार्थ से तो अपना भगवान (आत्मा) निर्मल गुण और निर्मल पर्याय में व्यापक है, उसको छूता है। राग को और शरीर को कभी छूता नहीं - यह द्रव्यस्वभाव है। समझ में आया ?

अभी तो चीज़ क्या है ? उसकी खबर नहीं और उसे धर्म हो जाये ! (यह कैसे हो सकता है ?) अरेरे...! (ऐसा) करते...करते...करते... अनंत काल चला गया। एक तो संसार के व्यापार के आड़े निवृत्ति नहीं (मिलती)। २४ घंटे पाप के धंधे। एक-दो घंटे कदाचित् देवदर्शन के लिये जाये कि वाचन करे (तो) बाकी २२ घंटे पाप में (जाये)। (पैसे) कमाना, ऐसा (करना) और वैसा (करना)। लड़के की शादी करना, कोई कन्या न दे तो उसके पास माँगकर लेना और कुटुंब के स्त्री, पुत्र को राजी रखना, इसमें तेरा आत्मा अराजी होता है। इसकी खबर नहीं। (खुद) दुःखी होता है। पर के साथ संबंध क्या ? उसके संबंधी जो अपना ज्ञान है उस ज्ञान की पर्याय में समस्त विश्व जानने में आता है, यह अपनी पर्याय (है)। पर्याय में अपने (स्वरूप में) प्रेम में एकाग्र होना (यह प्रेम है)। आहाहा ! २५ वीं शक्ति हुई न ?

अब २६ वीं (शक्ति)। ''**स्व-पर के समान...**'' अब क्या कहते हैं ? स्व और पर में समान अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व आदि (गुण) स्व-पर में समान हैं। समझ में आया ? ''**स्व - पर के समान, असमान...**'' आत्मा में ज्ञान है (और) पर में नहीं। यह असमान (हुआ)। ''**स्व-पर के समान...**'' स्व-पर के समान का अर्थ समझे ? साधारण। साधारण यानी जैसे अपने में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व है, ऐसे अनंत द्रव्य में अस्तित्व है,

प्रमेयत्व है, तो उसे समान कहने में आता है। साधारण को समान कहने में आता है। ``**स्व-पर के समान, असमान...**'' असाधारण को असमान कहने में आता है। आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनंद (आदि गुण हैं) यह अपना विशेष है। यानी असमान है। समान नाम अपने में है ऐसा पर में (भी) है, ऐसी समान शक्ति भी अनंत हैं। (परंतु) छः नाम से कहा - द्रव्यत्व, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व आदि (बाकी तो) अनंत हैं। आहाहा !

अगुरुलघु में कहा न ? भाई ! केवलज्ञान की एक समय की पर्याय है। उसमें भी एक समय में षट्गुणहानिवृद्धि होती है। क्या ? तर्क से ख्याल आता है ? केवलज्ञान की पर्याय (हो) अरे...! (चाहे) क्षायिक समकित की एक समय की पर्याय (हो उसमें भी) षट्गुणहानिवृद्धि (होती है)। एक ही समय में षट्गुणहानि और एक ही समय में षट्गुणवृद्धि (होती है)। यह स्वभाव अगर श्रुतज्ञान में जानने में आ जाय तो केवलज्ञान में क्या रहा ? केवलज्ञान (माने क्या !!) आहाहा !

एक समय में ज्ञान की पर्याय का परिणमन लोकालोक है उसे तो जाने, ऐसा कहना व्यवहार (है)। परंतु उससे अनंत गुना काल और अनंत गुना क्षेत्र हो तो भी जानने की जिसकी ताकत है। ऐसी केवलज्ञान की एक समय की पर्याय (है)। वह अपने में असमान गुण है। केवलज्ञान की पर्याय असमान है। (ऐसा) दूसरे द्रव्य में नहीं है।

प्रवचनसार की ९३ गाथा में एक अपेक्षा से तो ऐसा लिया है कि, आत्मा में जो चेतन गुण है, यह भी असमान और समान दोनों हैं। समझ में आया ? एक के अलावा दूसरे (द्रव्य में) है तो उसे समान कहने में आया। नहीं तो जो ज्ञान है वह तो असमान - विशेष है। समझ में आया ? फिर भी ९३ गाथा में ऐसा लिया है कि, ज्ञान, दर्शन, आनंद यह भी दूसरे आत्मा में है; इस अपेक्षा से उसे साधारण कहने में आया। सब आत्माओं में (है)। समझ में आया ?

``**स्व-पर के समान, असमान...**'' अब दोनों एक साथ लेते हैं। ``**समानासमान...**''अस्तित्व आदि समान और ज्ञान आदि असमान (हैं)। ``**ऐसे तीन प्रकार के भाव...**'' उसके तीन प्रकार के भावस्वरूप एक शक्ति है। आहाहा ! ऐसा बहुत सूक्ष्म (है) ! लोगों ने तो अभी बाहर के क्रियाकांड में, शुभ जोग में संतोष करके (धर्म) मान बैठे। अरे प्रभु ! ऐसा तो अनंत काल में हुआ। आहाहा !

यहाँ तो अपना जो गुण है, यह अपने में है और दूसरे में (भी) है यह समान है। और अपने में है और दूसरे में नहीं है, यह असमान (है)। और एक अपेक्षा से तो एक जीव के अलावा दूसरे (जीव में ज्ञानगुण) है, उसको भी वहाँ (प्रवचनसार - ९३ गाथा में) समान कहने में आया है। (ज्ञान) पर में भी है न ? ज्ञान एक आत्मा के अलावा

अनंत आत्मा में है इस अपेक्षा से समान कहा। समझ में आया ? एक अपेक्षा से ज्ञान को असमान कहा, दूसरी अपेक्षा से ज्ञान को समान भी कहा। क्या अपेक्षा है, समझ में आया ? कि ज्ञान विशेष है - सामान्य गुण के बजाय विशेष (गुण) है, इस अपेक्षा से उसे असाधारण - असमान कहा। परंतु ज्ञान अपने में भी है और अनंत आत्मा में (भी) है, इस अपेक्षा से साधारण भी कहा। आहाहा ! प्रवचनसार ९३ गाथा में है। समझ में आया ? और वहाँ ९४ गाथा में तो ऐसा कहा कि, आत्मा का व्यवहार क्या ? कि आत्मा शुद्ध आनंदरूप परिणमन करे, यह आत्मव्यवहार है। रागरूप परिणमन करे यह मनुष्यव्यवहार है, आत्मव्यवहार नहीं। आहाहा !

प्रवचनसार (अर्थात्) भगवान की दिव्यध्वनि का सार। भगवान आत्मा ! अपना शुद्ध चैतन्य स्वरूपपने परिणमना - द्रव्य - गुण तो त्रिकाल (शुद्ध) है ही परंतु (शुद्धपने) परिणमना यह व्यवहार है। आहाहा ! यह (शुद्ध) पर्याय है, यह व्यवहार है। समझ में आया ? तो उसे आत्मव्यवहार कहा और रागरूप होना यह मनुष्यव्यवहार है। भव का कारण (है) इसलिये मनुष्यव्यवहार है। आहाहा ! ऐसी बात है !

यहाँ कहते हैं, ``**...ऐसे तीन प्रकार के भावों की धारण-स्वरूप...**'' है न ? ``**...धारण - स्वरूप साधारण...**'' समान में साधारण आया। ``**असाधारण...**'' (यानी) ``**असमान,...**'' असमान अपने में है इतना (लेना)। ``**...साधारणासाधारण...**'' अब दोनों साथ में (लिया)। वह आ गया न ? समानासमान। ऐसी एक शक्ति है। शक्ति एक है। साधारण-असाधारण, साधारणासाधारण मिलकर एक शक्ति है। वह भी अपने स्वभाव में अपने कारण से है। पर के कारण से नहीं है। विशेष कहेंगे....

❖ ❖ ❖

तत्त्वज्ञान का मूल सर्वज्ञ है। सर्वज्ञदेव ने जिस साधन से तत्त्वज्ञान-साधा व वाणी में जो साधन बतलाया - उसे पहचाने; उस अनुरूप देव-गुरु-शास्त्र को पहचाने - उसे ही यथार्थ तत्त्व की भावना होती है; अन्य को नहीं। (परमागमसार - ७९९)

प्रवचन नं. २४
शक्ति-२७, २८ दि. ०३-०९-१९७७
विलक्षणानन्तस्वभावभावितैकभावलक्षणा अनन्तधर्मत्वशक्तिः ।।२७।।
तदतद्रूपमयत्वलक्षणा विरुद्धधर्मत्वशक्तिः ।।२८।।

समयसार, शक्ति का अधिकार है। २६ शक्ति चली। कल २६ (वीं शक्ति) चली न ? आज २७ अनंतधर्मत्व शक्ति (लेते हैं)। यह शक्ति एक है, परंतु यहाँ अनंतधर्मत्व शब्द लिया है। (यह) है तो गुण, परंतु धर्म क्यों लिया है ? `धारिति इति धर्म' द्रव्य स्वभाव अनंत धर्म को धारण करता है। समझ में आया ? `धारिति इति धर्म' द्रव्य स्वभाव अनंत धर्म- गुण को धारण करता है। यह धर्म माने अपेक्षित नित्य - अनित्य धर्म, ऐसे नहीं। उसमें अलापपद्धति में आता है न ? नित्य, अनित्य ये धर्म (है)। परंतु इसमें गुण के (जैसे) पर्याय नहीं। यह तो गुण है। अंदर अनंत धर्म - गुण है। उन अनंत गुण को धारण करनेवाली एक शक्ति अनंतधर्मत्वशक्ति है। आहाहा !

वस्तु एक (है) उसमें अनंत गुण (है)। उन अनंत गुण को धारण करके रखे ऐसी अनंतधर्मत्व नाम की एक शक्ति है। आहाहा ! समझ में आया ? शक्ति का परिणमन तो क्रम से होता है। समझ में आया ? शक्ति का परिणमन तो क्रम से होता है। समझ में आया ? अनंतधर्मत्व शक्ति है, यह ध्रुव है परंतु इस अनंतधर्मत्व शक्ति को दृष्टि में लेने से - शक्तिवान और शक्ति का भेद निकालकर (अभेद स्वरूप को दृष्टि में लेने से धर्म होता है)। आहाहा ! एकरूप अनंत धर्म को धारण करनेवाली शक्ति और शक्ति को धारण करनेवाला द्रव्य, ऐसी दृष्टि में जो आनंद की अवस्था का परिणमन होता है तो आनंद की अवस्था से आनंद स्वरूप का ज्ञान और भान होता है। वह सबेरे कहा था न ? अनित्य से नित्य का ज्ञान होता है। आहाहा ! समझ में आया ?

आनंद की पर्याय, निर्विकल्प आनंद की दशा अनंतधर्मशक्ति संपन्न भगवान (आत्मा को दृष्टि में लेने से प्रगट होती है)। अनंतधर्मत्वशक्ति एक है। फिर भी एक-एक (शक्ति में) ज्ञान आदि में अनंत धर्म का रूप है, आहाहा ! समझ में आया ? ज्ञान है तो उसमें अस्तित्व भी है। वह अस्तित्व गुण के कारण नहीं। (परंतु) अस्तित्व का रूप है, उस धर्म का - गुण का रूप है। आहाहा ! ऐसे दर्शन अस्तित्व, आनंद अस्तित्व, पर्याय का अस्तित्व (है)। यहाँ तो परिणमनवाली शक्ति का वर्णन लिया है। अकेली ध्रुव शक्ति, ऐसा नहीं। शक्ति जो है, उसका ज्ञान में भान हुआ तो यह शक्ति है, ऐसी प्रतीति हुई। ऐसी शक्ति है और अनंत शक्ति को धारण करनेवाला द्रव्य है। ज्ञान में इस द्रव्य की दृष्टि हुई (तो) पर्याय में सारे द्रव्य का ज्ञान आया। समझ में आया ? तब उस शक्ति का परिणमन हुआ तो शक्ति और शक्तिवान है, ऐसी प्रतीति हुई। सूक्ष्म बात है, बहुत सूक्ष्म बात है।

शक्ति है यह तो त्रिकाल है परंतु यहाँ तो शक्ति की क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती गुण दोनों मिलाकर, क्रमवर्ती (पर्याय) और अक्रमवर्ती (गुण दोनों) मिलाकर आत्मा है। दोनों मिलाकर आत्मा है। उसमें विकार नहीं (लेना)। आहाहा ! समझ में आया ? क्योंकि शक्ति है यह निर्मल है और शक्तिवान यह भी निर्मल है; तो भगवान निर्मल का जहाँ भान हुआ तो पर्याय में निर्मलता ही प्रगट होती है, विकार नहीं। आहाहा ! विकार का तो उसमें अभाव (है)। उसका नाम स्याद्वाद है। (लोग) एकांत-एकांत कहते हैं न ?

आज ही बहुत विरोध आया है। वे कहते हैं कि, 'मिट्टी में घड़ा करने का कर्तव्य नहीं है। कुंभार (कुम्हार) कर्तव्य करता है तब घड़ा होता है। उपादान में योग्यता हो परंतु जैसा निमित्त मिले ऐसी पर्याय होती है' (लेकिन) ऐसा नहीं है। बहुत विरोध आया (है)। मिट्टी में घड़ा होने का कर्तव्य - शक्ति नहीं, ऐसा कहते हैं। वह कर्तव्य तो कुंभार करता है, उसमें कर्तव्य शक्ति है, तो उससे घड़ा होता है।

समयसार में २७२ गाथा में तो आया कि, कुंदकुंदाचार्य कहते हैं कि, घड़ा कुंभार से होता है, ऐसा तो हम देखते नहीं। मिट्टी में घड़ा होता है, ऐसा हम तो देखते हैं। कुंभार से (घड़ा) होता है, ऐसा तो हम देखते ही नहीं। ऐसा पाठ है। समझ में आया ? आहाहा !

श्रोता : जैनदर्शन की बात तो आप बताते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु का स्वरूप (ऐसा है)। आहाहा ! जैन दर्शन कोई संप्रदाय नहीं। निमित्त से होता है, यह मान्यता जैन दर्शन की नहीं। क्योंकि निमित्त पर द्रव्य है और उपादान स्व द्रव्य है।

यहाँ कहते है कि, (आत्मा में) अनंतधर्मत्व शक्ति भरी है, उसका परिणमन होता

है वह अपने से (होता है)। इसमें कर्ता नाम का गुण है और राग का अकर्ता नाम का गुण (है)। अनंत धर्म आया न ? अकर्ता गुण है। राग का अकर्ता गुण है और आनंद आदि की पर्याय का कर्ता गुण है। आहाहा ! ऐसा अनंत धर्म का परिणमन करना उसका अर्थ कि, उसमें कर्ता नाम की शक्ति है, वह शक्ति अनंत गुण में व्याप्त है। (इसलिये) अनंत धर्म शक्ति में अकर्ता शक्ति आ गई। समझ में आया ? यहाँ तो अनंत धर्म जो है उसके परिणमन में अनंत धर्म कारण और धर्मी कारण है। क्या कहा ? समझ में आया ? अनंत धर्म जो है उसकी एक अनंतधर्मत्व नाम की शक्ति है कि जो अनंत धर्म को धारण करती है। और यह अनंत धर्म और अनंत धर्म को धारण करनेवाला धर्मी उसके उपादान में जो परिणमन होता है, (वह) उस काल में (ऐसा परिणमन करने की) जन्मक्षण होती है। प्रवचनसार १०२ गाथा में (आता है)। जन्मक्षण (अर्थात् उस पर्याय की) उत्पत्ति का काल होता है, तब उत्पन्न होती है - निमित्त से नहीं।

दूसरी एक बात है। चिद्विलास में लिया है, भाई ! निश्चय और व्यवहार का अधिकार लिया है न ? निश्चय (अधिकार में) ऐसा लिया है कि, होनहार जिस समय में जो (पर्याय) होनेवाली है - वह निश्चय। उसे निश्चय में डाला है। समझ में आया ? जिस समय जो पर्याय होनेवाली है वही होगी। आहाहा ! परंतु उसका निर्णय करनेवाला निर्णय कैसे करे ? कि त्रिकाल ज्ञायक स्वभाव (पर दृष्टि करे तब निर्णय होता है)। होनहार है परंतु उद्यम से उसकी प्रतीति आती है। होनहार तो है। जिस समय जो द्रव्य की पर्याय की उत्पत्ति का क्षण है, उसी समय उत्पन्न होगा। नियत ही है। होनहार है परंतु उद्यम से (अर्थात्) पुरुषार्थ से उसका निर्णय होता है। समझ में आया ?

पहले कहा था न ? भगवान ने देखा है वैसे होगा, वह तो बराबर है परंतु भगवान ने देखा है तो भगवान है कौन ? जिनकी ज्ञान गुण की एक समय की पर्याय तीनकाल तीनलोक को प्रत्यक्ष जाने... प्रत्यक्ष जाने, ऐसी एक समय की पर्याय की इतनी सत्ता कि, सादि अनंत भूत-भविष्य की पर्याय अभी हुई नहीं उसे भी ज्ञान की पर्याय प्रत्यक्ष जाने। ऐसी एक समय की पर्याय का सामर्थ्य - सत्ता जगत में है, ऐसा निर्णय कब होता है ? वह (निर्णय) पुरुषार्थ से होता है। क्यों ? कि सर्वज्ञ की पर्याय का अस्तित्व सिद्ध करने जाते हैं, तब अपना स्वभाव (भी) सर्वज्ञ है उस पर दृष्टि जाती है, तब सर्वज्ञ की पर्याय का सत्ता का स्वीकार हुआ। क्योंकि अपना ही सर्वज्ञ स्वभाव है, आहाहा ! (एक समय में सब को जानने का स्वभाव) तो पर्याय का हुआ। परंतु (यह) पर्याय हुई कैसे ? सर्वज्ञ स्वभाव में से हुई है; तो मैं मेरी सर्वज्ञ पर्याय की श्रद्धा करने जाऊँ तो मेरा सर्वज्ञ स्वभाव है, उसकी प्रतीति होती है तो सर्वज्ञ पर्याय की प्रतीति होती है। द्रव्य

की प्रतीति हो, गुण की प्रतीति हो तो पर्याय की प्रतीति होती है। सूक्ष्म बात है। समझ में आया ? ७२ की साल में संप्रदान में बहुत बात चली थी। कितने वर्ष हुए ? ६१ वर्ष हुए। ६० और १। संप्रदाय में बड़ी चर्चा हुई थी।

कोई कहे कि, भगवान ने देखा ऐसा होगा। हम क्या पुरुषार्थ कर सके ? ऐसा दो साल तो सुना। यह बात पहले से हमको खटकती थी। यहाँ कहते है ऐसी बात नहीं है। उसमें (ऐसा मानने से) पुरुषार्थ का लोप होता है। सर्वज्ञ है, भाई ! यहाँ तो अनंतधर्म कहते हैं न ? अनंत धर्म की जिस समय जो सर्वज्ञ की पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, वह होगी। परंतु होगी इसका निर्णय किसे (होता है) ? मेरा सर्वज्ञ स्वभाव है और उनका भी सर्वज्ञ स्वभाव था, इसमें से सर्वज्ञ पर्याय आयी है। मेरा (भी) सर्वज्ञ स्वभाव है।

प्रवचनसार में आया न ? भाई ! प्रवचनसार में एक शब्द आया है, ज्ञानरूपी असाधारण त्रिकाल स्वभाव उसे कारण(रूप से) ग्रहण करके पर्याय में कार्य होता है, ऐसा पाठ है। प्रवचनसार संस्कृत टीका (में है)। त्रिकाली ज्ञायकभाव, ज्ञानभाव कारणरूप से ग्रहण करके (ऐसा) शब्द है न, भाई ? अमृतचंद्राचार्य की संस्कृत टीका है। आहाहा ! जिस समय सर्वज्ञ की पर्याय की प्रतीति करने जाते है तो अपना त्रिकाल सर्वज्ञ ज्ञायक स्वभाव को कारणरूप से ग्रहण करने से पर्याय में प्रतीति और ज्ञान होता है। उसका (यह ज्ञान) पुरुषार्थ से हुआ है। होनहार (का निर्णय) भी पुरुषार्थ से हुआ है। समझ में आया ? थोड़ी सूक्ष्म बात है। मार्ग बहुत सूक्ष्म है।

लोग बेचारे निमित्त से होता है (और) बस कुंभार (कुम्हार) से घड़ा होता है, (ऐसी मान्यता में पड़े हैं)। पेपर में भी आया था। उपादान में अनेक प्रकार की योग्यता है, परंतु जैसा निमित्त मिले ऐसा कार्य होता है।

श्रोता : कार्य का नियामक निमित्त होता है (ऐसा कहते हैं)।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे भगवान ! तेरी यह अनंतधर्मत्व शक्ति है तो तेरी शक्ति में अनंत धर्म पड़े हैं। अनंत धर्म पड़े हैं। उसकी एक शक्ति अनंत धर्म है तो उसका परिणमन कैसे होता है ? ऐसे अनादि से तो विकाररूप परिणमन है। अनादि से तो पर्याय में विकार का परिणमन है। आहाहा ! उसका अभाव कैसे हो ? और पुरुषार्थ कैसे हो ? कि अनंत धर्म को धरनेवाला भगवान ! (उसकी) निर्विकल्प दृष्टि होकर, इन अनंत गुण को धारण करनेवाले द्रव्य की जहाँ श्रद्धा होती है, वहाँ पुरुषार्थ करते ही पर्याय में वीर्य भी आ गया। वीर्य ने निर्मल पर्याय की रचना की। यह वीर्य शक्ति का गुण है। अंदर में वीर्य गुण - स्वभाव है। इस (शरीर का) वीर्य से पुत्र का जन्म होता है, वह तो धूल

है। यहाँ तो आत्मा में एक बल - वीर्य नाम की शक्ति है कि जो अनंत गुण की निर्मल पर्याय को रचती है। वीर्य (निर्मल पर्याय को) रचता है। आहाहा ! कब रचना करे ? कि वीर्य में अनंत गुण का धरनेवाला द्रव्य है उस द्रव्य पर दृष्टि होते (ही पर्याय में निर्मलता की रचना होती है)। सूक्ष्म बात है, भाई ! आहाहा !

निमित्त पर दृष्टि हो, राग पर हो और पर्याय पर (दृष्टि) हो तब तक सर्वज्ञ स्वभाव का निर्णय नहीं होता। समझ में आया ? सर्वज्ञ के ज्ञान में तो अनंत गुणों भी आये। एक ज्ञान की पर्याय में अनंत गुण का ज्ञान आया। अनंत गुण का ज्ञान आया और एक पर्याय में भेद इतने हुए कि अनंत, अनंत केवली को जाने, ऐसी यह पर्याय है। उस पर्याय को धरनेवाला ज्ञान गुण है और उस ज्ञानगुण को धरनेवाला द्रव्य है, आहाहा !

पहले एकबार कहा था कि, गुण से परिणति नहीं उठती। सारा द्रव्य है इसका जहाँ स्वीकार होता है तो सारे द्रव्य में से परिणति उठती है। क्योंकि तत्त्वार्थसूत्र में `गुणपर्यायवत् द्रव्य' कहा है। `पर्यायवत् गुण' ऐसा नहीं कहा। समझ में आया ? पर्यायवंत गुण-ऐसा नहीं कहा। `गुणपर्यायवत् द्रव्य' कहा है। सूक्ष्म बात है, भाई ! उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र में यह बहुत लिया है। (उसमें) है तो व्यवहारप्रधान कथन परंतु उसमें निश्चय की बात समा दी है। आहाहा ! अंतर में गुण की परिणति भिन्न होती है और द्रव्य की (परिणति) भिन्न (होती है), ऐसा नहीं। आहाहा ! ऐसा कहकर द्रव्य पर दृष्टि देते हैं। यह शक्ति भले हो परंतु शक्ति और शक्तिवान दो का भेद छोड़कर, अनंत धर्म को धारण करनेवाली शक्ति (एक) द्रव्य ने धारण की है। इस द्रव्य पर दृष्टि देने से अनंत धर्म का शुद्ध परिणमन व्यक्त-प्रगट होता है। सूक्ष्म बात है, भाई ! आहाहा !

दूसरे तरीके से (कहे तो) अनंत धर्म है, ऐसी एक शक्ति है। अनंत धर्म है, ऐसी एक शक्ति (है)। वेदांत आदि अन्य मत में ऐसा नहीं है। समझ में आया ? वहाँ तो अनंत धर्म भिन्न, यह भी व्यवहार है और वह झूठ है, ऐसा कहते हैं। एक ही चीज है। (वेदांत ऐसा) कहते हैं कि, `आत्मा का अनुभव ? आत्मा अनुभव करे-ये क्या ? यह तो दो बात हो गई। एक में दो आया कहाँ से ? आत्मा का अनुभव-तो (उसमें) अनुभव और आत्मा दो चीज हो गई'। वे दो को मानते नहीं, एक मानते हैं। एक ही स्वरूप है, (ऐसा मानते हैं)। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि, (आत्मा) एक स्वरूप है। वह अपने पहले आ गया। एक-स्वरूपात्मक - `सर्व शरीरों में एकस्वरूपात्मक...' वह २५ वीं शक्ति में आ गया। सर्व शरीरों में एकस्वरूपात्मक परंतु यह एकस्वरूपात्मक यह अनंत शक्ति का (एक) स्वरूपात्मक

है। शक्तिवान ऊपर दृष्टि देने से अनंत शक्ति का परिणमन (होता है)। द्रव्य स्वभाव भगवान आत्मा ! जिसने अनंत शक्ति को धारण कर रखी है, जिसने अनंती ईश्वरता-प्रभुता धारण कर रखी है, जिसने अनंत वीर्य, बेहद अपरिमित वीर्य धारण कर रखा है, ऐसा 'धारिति इति धर्म' को धरनेवाला धर्मी, धर्मी माने द्रव्य - (उस पर दृष्टि देने से) पर्याय में धर्म होता है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई !

लोगों को बाहर से (धर्म) मानना है। ये व्रत, तप, भक्ति (आदि से धर्म मानते हैं)। वह सब तो शुभभाव है। वह तो वस्तु में है नहीं। उससे अपना कल्याण मानना, वह तो महा भ्रम और पाखंड है। क्योंकि शुभ राग आदि अनंत धर्म में है नहीं। यह जो अनंतधर्म शक्ति कही, उसमें शुभ राग है नहीं। शुभराग तो पर्याय में नया उत्पन्न होता है। पर के लक्ष से उत्पन्न होता है। द्रव्य-गुण में विकार करने की कोई शक्ति नहीं। द्रव्य की शक्ति नहीं कि विकार करे और शक्ति की शक्ति (भी) नहीं कि विकार करे। आहाहा !

श्रोता :- विकार कहाँ से आया ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- पर्याय में से अद्धर से (पर्याय की योग्यता से) आया। पर्याय की योग्यता से षट्कारक परिणमन से उत्पन्न हुआ। पंचास्तिकाय ६२ गाथा में कहा न? वहाँ अस्तिकाय सिद्ध करना है तो अस्तिकाय में - पर्याय में षट्कारक परिणमन करके विकार होता है, ऐसी शक्ति सिद्ध करनी है। अस्तिकाय है न ? परंतु जब अपना त्रिकाल स्वभाव सिद्ध करना है, तब तो वह विकार की पर्याय का षट्कारक का परिणमन उसमें होता ही नहीं, आहाहा !

अपना त्रिकाली ज्ञायक आनंदस्वरूप प्रभु ! अनंतधर्मत्व शक्ति को धरनेवाला, (उसमें) यह एक शक्ति ऐसी है कि जो अनंत... अनंत... गुणों में (यह) अनंतधर्मत्व शक्ति व्याप्त है, आहाहा ! बहुत सूक्ष्म, भाई !

(अध्यात्म पंचसंग्रह) सवैया में तो बहुत लिया है। एक गुण में अनंती पर्याय, अनंती पर्याय में एक ज्ञान का घट और एक ज्ञान की पर्याय में अनंत ज्ञान और उसमें ठठ ऐसा बहुत लिया है)। आहाहा ! समयसार नाटक में (शक्ति का वर्णन) है परंतु शब्द थोड़े हैं। अध्यात्म पंचसंग्रह में बहुत है, आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि, 'विलक्षण...' यहाँ क्या कहा है ? एक गुण में दूसरा गुण विलक्षण है। ज्ञान का लक्षण जानना, दर्शन का (लक्षण) देखना, वीर्य का (लक्षण) (स्वरूप की) रचना करना, अस्तित्व का सत्तारूप रहना, ऐसा प्रत्येक गुण विलक्षण है। कोई गुण का कोई दूसरे गुण में लक्षण एक होता नहीं। पहला शब्द पड़ा है। 'विलक्षण (-परस्पर

भिन्न लक्षण युक्त)' आहाहा ! ऐसी बातें ! अंदर अनंत ज्ञान, दर्शन, आनंद आदि अनंत गुण हैं। परंतु प्रत्येक गुण विलक्षण है। कोई गुण का लक्षण कोई गुण में जाता नहीं। आहाहा ! प्रत्येक (गुण) भिन्न भिन्न है और उसका लक्षण भी भिन्न भिन्न है, आहाहा ! समझ में आया ?

`विलक्षण (-परस्पर भिन्न लक्षणयुक्त) अनंत स्वभावों से....' आहाहा ! परस्पर भिन्न लक्षण (अर्थात्) परस्पर प्रत्येक का भिन्न भिन्न लक्षण, ऐसे अनंत स्वभावों में - देखो ! (अनंत) धर्म शक्ति लेनी है न ? ऐसा अनंत स्वभाव है।

`...अनंत स्वभावों से भावित...' अनंत स्वभावों से भावित... आहाहा ! परस्पर गुण का विलक्षण (अर्थात्) एक लक्षण दूसरे में (लक्षण में) मिलता नहीं। ऐसा (है) तो अनंत गुण सिद्ध होता है। एक लक्षण दूसरे में मिश्र हो जाये तो अनंत (गुण) सिद्ध नहीं होते। यहाँ अनंत धर्मात्मक सिद्ध करना है न ? तो प्रत्येक गुण का लक्षण भिन्न भिन्न है। ज्ञान का जानना, दर्शन का देखना, आनंद आह्लाद् का, वीर्य का स्वरूप की रचना का, ऐसे प्रत्येक (शक्ति का) लक्षण भिन्न-भिन्न है। अनंत गुण का लक्षण भिन्न-भिन्न है। क्योंकि भिन्न (भिन्न) अनंत गुण हैं। भले द्रव्य एक है परंतु भिन्न-भिन्न लक्षणवाले गुण तो अनंत हैं।

`विलक्षण (-परस्पर भिन्न लक्षणयुक्त अनंत स्वभावों से...' आहाहा ! भवगान ऐसे विलक्षण गुण से अनंत स्वभावों से (भावित है)। गुण कहो कि स्वभाव कहो (एक ही बात है)। `....अनंत स्वभावों से भावित...' (अर्थात्) रहनेवाला। `...ऐसा एक भाव जिसका लक्षण है...' अनंत स्वभाव का भाव उसका एक लक्षण अनंतधर्मत्व (है)। कहाँ ऐसा (सुनने मिले) ! (सब ऐसा कहे) दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो (तो) कल्याण हो जायेगा ! आहाहा ! भाई ! तेरी चीज कोई अलौकिक है, नाथ ! महा रत्नाकर, चैतन रत्नाकर अंदर अनंत गुण का भंडार है। उसकी राग की एकताबुद्धि ने उस भंडार का ताला बंद कर दिया है। समझ में आया ? राग और विभाव की एकताबुद्धि में खजाना बंद हो गया है। इस खजाने को खोल ! (यह खजाना) कब खुलता है ? कि राग ऊपर का भी लक्ष छोड़ दे और पर्याय उपर का भी लक्ष छोड़ दे ! और स्वभाव और स्वभाववान एकपने है (उस पर दृष्टि दे)। `तं यत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण' समयसार पाँचवीं गाथा में (आया है)। `'एयत्त' (अर्थात्) अपने स्वभाव से एकत्व है और पुण्य-पाप के विकल्प से विभक्त है-भिन्न है। आहाहा !

ऐसा अपना स्वभाव ! `...अनंत स्वभावों से भावित...' अनंत स्वभाव से रहनेवाला। भावित माने अनंत स्वभाव से रहनेवाला। एक-एक शब्द में (गंभीर भाव भरा है)। `...अनंत स्वभावों से भावित ऐसा एक भाव....' आहाहा ! `.... ऐसा एक भाव जिसका लक्षण है...'

पहले विलक्षण कहा था - (भिन्न-भिन्न) गुण का लक्षण। परंतु यह शक्ति का तो एक ही लक्षण है। क्या (कहा) ? कि, ऐसी अनंतधर्म शक्ति का लक्षण एक है, आहाहा !

(आत्मा) ज्ञानस्वरूप है तो यह समझ से-ज्ञान से ही प्राप्त होता है। आनंद स्वरूप है तो वह आनंद की पर्याय से ही प्राप्त होता है। यह प्रभुत्व शक्ति से भरा है तो प्रभुत्व शक्ति की पर्याय से प्रभुत्व का भान होता है। समझ में आया ? आहाहा ! यह अकर्तृत्व शक्ति से भरा है तो राग का अभोक्ता और अपने आनंद का भोक्ता से सारा आनंद स्वरूप है, ऐसा भान होता है। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म, बापू ! क्या हो ? लोगों ने मार्ग को बिखेर दिया और सत्य बाहर आया तो उसे तोड़ देते हैं, (कहते हैं) एकांत है...एकांत है... निमित्त से कुछ होता नहीं और व्यवहार से निश्चय होता नहीं (यह सब एकांत है)। २० साल पहले तो (कोई) क्रमबद्ध मानते नहीं थे। अभी तो नक्की किया है कि, क्रमबद्ध है ऐसा एक पत्रिका में आया है। क्रमबद्ध है, ऐसा निर्णय करे तो ऐसा व्यवहार से निश्चय होता है और निमित्त से उपादान में कार्य होता है, यह बात छूट जाती है। बराबर है ? दूसरे लेख में बहुत विरोध (आया) है। बड़ा लेख है। (लिखते हैं) `एकांत है, एकांत है' कोई दूसरे ने लिखा है, `ये बड़े-बड़े सेठ लोग इकट्ठे होते नहीं, इकट्ठे होकर (कुछ) करो कि, यह धर्म पंथ का नाश हो जाता है' अरे... भगवान ! (कोई) साधु है (उन्होंने लिखा है)। साधु नाम धारण करे और ऐसा विरोध करे ! आहाहा !

यहाँ शक्ति के वर्णन में बात यह है कि, शक्ति को धरनेवाला पवित्र और शक्ति पवित्र (है) तो उसकी परिणति भी पवित्र है। उसको यहाँ गिनने में आया है। शुभराग आदि का उसमें अभाव है, यह अनेकांत है। निश्चय से (भी) शुद्धता आती है और व्यवहार से - शुभ से भी शुद्धता होती है, वह तो मिथ्या अनेकांत है। क्या कहा ? अनेकांत है सही (लेकिन) मिथ्या अनेकांत है।

मोक्षमार्ग प्रकाश में सातवें अध्याय में आया न ? निश्चयाभास और व्यवहाराभास (की बात चली है)। वह अधिकार आ गया। अनेकांत भी दो प्रकार के हैं। एकांत भी दो प्रकार के हैं। एक सम्यक् एकांत (और) एक मिथ्या एकांत। इस प्रकार अनेकांत के दो प्रकार (हैं)। एक मिथ्या अनेकांत और एक सम्यक् अनेकांत। आहाहा ! समझ में आया ? निश्चय से अपनी परिणति अपने से होती है। यह निश्चय है और यहाँ तो व्यवहार को गिनने में आया ही नहीं। व्यवहार का अभाव है, वही अनेकांत और वही स्याद्वाद है। समझ में आया ?

पहले २२ बोल में लिखा है। उसमें देखो ! (८ नंबर का मुद्दा) एक-एक शक्ति में व्यवहार का अभाव है। यही अनेकांत है और यही स्याद्वाद है। प्रचार करना है

न ? यह तो सत्य बात है। छिपाने की कोई चीज़ नहीं (है)।

श्रोता : गाँव-गाँव तक पहुँचाना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (मात्र) गाँव-गाँव (तक पहुँचाना ऐसा नहीं) व्यक्तिगत - व्यक्तिगत पहुँचाना है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, आहाहा ! ``एक भाव जिसका लक्षण है...'' आया न ? ``...अनंत स्वभावों से भावित ऐसा एक भाव जिसका लक्षण है ऐसी अनंतधर्मत्वशक्ति'' लो ! आहाहा ! यह २७ वीं शक्ति (समाप्त) हुई। इस एक शक्ति की पर्याय जब उत्पन्न होती है तो इसमें अनंत शक्ति की पर्याय साथ में उत्पन्न होती है, आगे-पीछे नहीं। अंदर गुण भी आगे-पीछे नहीं है। एक साथ में है। पहले ज्ञान अनंत (गुण) है तो पर्याय में भी एक साथ अनंत की पर्याय परिणति (उत्पन्न) होती है। इसे यहाँ अनेकांत कहने में आया है। राग का अभाव - व्यवहार का अभाव है, यह स्याद्वाद (और) अनेकांत है और निश्चय का सद्भाव है, यह सम्यक् अनेकांत है। समझ में आया ? आहाहा ! २७ वीं (शक्ति समाप्त हुई)।

(अब) २८ (शक्ति लेते हैं)। ``तद्रूपमयता और अतद्रूपमयता जिसका लक्षण है ऐसी विरुद्धधर्मत्वशक्ति।'' आहाहा ! क्या कहते हैं ? पहले १४ बोल में तत् - अतत् लिया है न ? वहाँ तो ऐसे लिया है कि, तत् (अर्थात्) आत्मा ज्ञायक स्वभाव वह तत् है और अतत् (अर्थात्) उसमें ज्ञेय स्वभाव नहीं है, वह अतत् है। १४ बोल में ऐसा लिया। समझ में आया ? तत् (अर्थात्) अपने में जो भाव है वह तत्। ज्ञायक - ज्ञायकरूप है, ज्ञान - ज्ञानरूप है, यह तत्। और ज्ञान रागरूप नहीं, कोई ज्ञेयरूप नहीं (यह अतत्)। ज्ञेय में राग भी आ गया। परज्ञेयरूप नहीं वह अतत्। १४ बोल में ऐसा लिया।

पंचाध्यायी में ऐसा लिया है कि, तत् - अतत् वस्तुपने है और परवस्तुपने नहीं, ऐसा भी अर्थ लिया है। यहाँ १४ बोल में ज्ञायक और ज्ञेय के बीच में तत् - अतत् लिया है। यह क्या (कहा) समझे ? अपना ज्ञानस्वरूप अपने से है और ज्ञेय से नहीं, इतना (लेना है)। यह ज्ञेय - ज्ञायक के बीच में तत् - अतत् का वर्णन लिया है। परंतु दूसरी ज़गह पंचाध्यायी में ऐसा लिया है कि, जैसे अस्ति है वह तत् (अर्थात्) अपने से है - सब गुण अपने से हैं। अकेले ज्ञानगुण की बात नहीं। यहाँ समयसार के १४ बोल में ज्ञान और ज्ञेय के बीच में तत् - अतत् मिलाया है। और एक तत् नाम अपने से है। सब गुण अपने से है, सारा द्रव्य अपने से है और पर द्रव्य से नहीं, ऐसी विरुद्ध शक्ति उसमें है। समझ में आया ?

(यहाँ) विरुद्ध शक्ति ली है। देखो ! अन्यमती को तो कभी यह बात बैठे नहीं।

आहाहा ! क्योंकि अनंत द्रव्य है, तो एक द्रव्य अपने से है और पर से नहीं, तो उसमें अनंत पर आ गया। अनंत पर से नहीं (है)। संक्षेप भाषा में ऐसे लिया है कि, ज्ञान - ज्ञान से है (और) ज्ञेय से नहीं। समझ में आया ? बस ! इतना लिया और ऐसे लेना हो तो तत् है (अर्थात्) सारा द्रव्य अपने से है (और) सारे पर द्रव्य से नहीं। यह अतत् (हुआ)। दोनों अर्थ होते हैं। ज्ञान और ज्ञेय का (भेद) तत् - अतत् में लेते हैं। भगवान ज्ञानस्वरूपी है। वह ज्ञेय का ज्ञान करता है परंतु ज्ञेय उसमें है नहीं। ज्ञेय का ज्ञान होता है, परंतु ज्ञेय उसमें नहीं है। समझ में आया ? ज्ञान - ज्ञान से है यह तत् और ज्ञेय से नहीं यह अतत्। ऐसा अर्थ १४ बोल में लिया है।

पंचाध्यायी आदि में तत् - अतत् में ऐसा लिया है। परंतु यह नित्य - अनित्य और तत् - अतत् में फ़र्क क्या ? पंचाध्यायी में ऐसा लिया है कि, तत् नाम वही का वही है। नित्य में तो `यह है' बस इतना (लेना है)। परंतु `वही का वही' है वह तत् (है)। वहाँ पंचाध्यायी में शक्ति को भिन्न कहा है। नित्य - अनित्य में नित्य तो कायम है और पर्याय अनित्य है। इतना (उसका अर्थ है)। परंतु बाद में तत् - अतत् क्या ? कि कायम है परंतु वही का वही है, वही का वही है - यह तत् (है)। समझ में आया ? ऐसी बात है। आहाहा ! यह तो भगवान का - प्रभु का पंथ है। समझ में आया ?

(यहाँ) कहते हैं कि आत्मा में दो (विरुद्ध) शक्तियाँ एक साथ हैं, यह है विरुद्ध (शक्ति), विरुद्ध भी एक शक्ति है। अपने से है (और) ज्ञेय से नहीं, यह तो विरुद्ध हुआ। जो है, वह नहीं। वह अपने से है (और) पर से नहीं। यह तो विरुद्ध हुआ परंतु ऐसी विरुद्ध शक्ति उसमें है। विरुद्ध उसका एक गुण है। विरुद्ध नाम का गुण है, आहाहा ! इस गुण की पर्याय है, विरुद्ध गुण की पर्याय है। नित्य - अनित्य जैसे अपेक्षित धर्म है (और) उसकी पर्याय नहीं (है), ऐसा यह नहीं है. क्या कहा समझ में आया ?

नित्य एक धर्म है। धर्म तो अपेक्षित हुआ। कायम रहने की अपेक्षा से नित्य (कहा) परंतु नित्य कोई गुण है और नित्य की कोई पर्याय है, ऐसा नहीं। ऐसे अनित्य एक धर्म है। अनित्य धर्म एक अपेक्षित धर्म है। पलटता है, इस अपेक्षा से अपेक्षित कहा। परंतु अनित्य कोई गुण है और उसकी कोई पर्याय है, ऐसा नहीं। और यह तो गुण है।

विरुद्ध शक्ति नाम का एक गुण है, आहाहा ! वर्तमान में विरुद्ध शक्ति तत्रूप है और अतत्रूप नहीं, ऐसी विरुद्ध शक्ति का परिणमन है। समझ में आया ? अपने ज्ञानरूप ज्ञान रहता है (और) अज्ञानरूप नहीं होता। वीतरागता वीतरागरूप रहती है और रागरूप नहीं होती। आनंद की पर्याय आनंदरूप रहती है - वह दुःखरूप नहीं होती।

समझ में आया? आहाहा ! ऐसी बात है। बापू ! वह तत् - अतत् (कहा)। अपने से (अपने में) निश्चय से परिणमन होता है और व्यवहार से परिणमन नहीं होता है, वह तत् - अतत् है, आहाहा !

१४ बोल में तो तत् - अतत् के साथ स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अस्ति है और परद्रव्य से नास्ति (ऐसे) ८ बोल लिये न ? उस कारण से पहले तत् - अतत् में ज्ञान और ज्ञेय संबंधित बात कही। दूसरे गुण के साथ (बात) नहीं कही। एक ज्ञानगुण के साथ (बात कही)। क्या कहा, समझ में आया ?

तत् - अतत् में अकेला ज्ञानगुण (अपने से) है - ज्ञेय से नहीं, इतना सिद्ध किया है। बाद में ८ बोल आते हैं। १४ बोल हैं न ? (उसमें) तत् - अतत्, एक-अनेक, स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से (और) पर से नहीं, यह आठ हुए और नित्य - अनित्य। समझ में आया ? और वहाँ १४ बोल लिये हैं। स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है और परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं है, यह आठ और तत् - अतत् दो, एक-अनेक दो, बारह और नित्य - अनित्य दो। (इस प्रकार) १४ (बोल लिये हैं)। आहाहा ! ऐसी सब लंबी बातें हैं। मूल में अनेक प्रकार के विपरीत शल्य हैं न ? तो उसका निषेध करने को, शल्य का नाश करने का अनेक प्रकार का ज्ञान करना पड़ता है। समझ में आया ? कोई कुछ मानता है, कोई कुछ मानता है, (अंदर में) विरोध है उसका नाश करने का स्वभाव है, आहाहा !

श्रोता : इतनी (सब बातें) कहाँ तक याद रखेंगे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ (याद) रखने की बात नहीं है, अंदर भाव में उतार देना। आहाहा ! अपना स्वभाव अपने से है (और) पर से नहीं। प्रवचनसार में वहाँ तक कहा कि, अपने ज्ञान में अनंत ज्ञेय कोतराई गये हैं, घुस गये हैं, ऐसा आता है। अंदर लिखित हो गये हैं। वह तो उसका निमित्त से कथन है। वह ज्ञेय संबंधी ज्ञान ही हो गया है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बातें (हैं)। चारों ओर से सत्य समझ में नहीं आये तो एकांत हो जाता है। और यहाँ (बाहर में लोग) एकांत ऐसा कहते हैं कि, आप व्यवहार से भी मानो निमित्त से भी मानो, नहीं तो एकांत है, ऐसा कहते हैं, आहाहा ! और ऐसा कहे कि, यह व्रत, तप और भक्ति करते हैं, उससे भी धर्म (होता) है, ऐसा माने, नहीं तो एकांत हो जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! शुभराग तो अधर्म है।

श्रोता : आत्मा का हित करने के लिये एकदम एकांत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकांत है - सम्यक् एकांत है। समझ में आया ? आहाहा !

८५ की साल में पोष मास था। कितने वर्ष हुए ? ४८ (वर्ष हुए)। पचास में

दो कम। हम संप्रदाय में थे न ? बोटाद में ३०० घर १५०० आदमी थे। हमारी प्रतिष्ठा बहुत थी न ? हमारे प्रवचन में तो आदमी...आदमी...आदमी... मकोडे की भाँति उभरते थे। (वहाँ) तत्त्व की बात निकलती थी। ऐसी (बात) कहीं थी नहीं। इसलिये लोग बहुत आते थे। (लोग ऐसा कहते थे कि), ओहोहो ! महाराज के आसपास केवलज्ञान घूम रहा है। संप्रदाय में भी प्रतिष्ठा बहुत थी न ? यहाँ तो दूसरा कहना है। संप्रदाय में ८५ (की साल में) पोष मास में ऐसा कहा। बड़ी सभा (भरी थी)। लाखोपतिओ - एक साल की ५०-५० हज़ार की कमाईवाले बड़े सेठ लोग अपासरा में बैठे थे। अपासरा में समाते नहीं थे तो पीछे गली में लोग (बैठते थे)। एक-दो शब्द कहे कि, `जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बंधे वह धर्म नहीं।' धीरे से कहा, `शांति से कहें तो वह अधर्म है।' हमारे एक गुरुभाई साधु थे, उन्हें ठीक नहीं लगा। वे थोड़ा ऐसे बोल गये, लेकिन उसकी कोई सुने नहीं। हमारी प्रतिष्ठा ऐसी थी (तो) कोई उनकी सुने नहीं। वे ऐसा बोले `होसरे...होसरे...' होसरे समझे ? यह श्रद्धा नहीं चले। ऐसा बोले। लेकिन लोग कुछ सुने नहीं। (हमने) कहा `जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बंधे वह भाव धर्म नहीं, अधर्म है।' एक बात। और पंचमहाव्रत के परिणाम वह आस्रव है, धर्म नहीं। ४८ साल पहले संप्रदाय में सभा में कहा था। वस्तु तो यह है, बापू ! मार्ग यह है। जिस भाव से बंध हो वह भाव धर्म नहीं। धर्म परिणाम तो अबंध स्वभावी है, क्योंकि भगवान आत्मा अबंध स्वरूपी है, उसका परिणाम (अर्थात्) मोक्ष का मार्ग वह अबंध परिणाम है। वह अबंध परिणाम बंध का कारण है, ऐसा नहीं हो सकता। (और) जो बंध का कारण है, वह अधर्म है, वह धर्म नहीं। हम दिगंबर शास्त्रों पढ़ते थे तो भी लोग हमारे पर शंका नहीं करते थे। (लोग ऐसा माने कि) `महाराज को ठीक लगता होगा वह करते होंगे।' संप्रदाय में सब देखा था, आहाहा ! हमने कहा, `मैं यहाँ आ गया हूँ इसलिये मैं यहाँ रहूँ, ऐसा मैं नहीं चलाऊँगा। अगर कोई कुछ प्रतिकूलता करेगा तो मैं तो क्षण में छोड़ दूँगा।' तो लोग डरते थे और ऐसा बोलते ते कि, `इन्हें कुछ नहीं कहना, नहीं तो ये मुँहपत्ति छोड़ देगें।'

यहाँ तो यह कहा कि, महाव्रत के परिणाम यह आस्रव और बंध का कारण है। और तीर्थंकर गोत्र जिस भाव से बंधे वह भाव अधर्म है।

श्रोता : (वह भाव) धर्म नहीं है, ऐसा कहो लेकिन अधर्म मत कहो !

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले ऐसा कहा था कि, वह धर्म नहीं है। बाद में दूसरी भाषा में कहें तो वह धर्म नहीं है यानी अधर्म है, ऐसा कहा था।

यहाँ कहते हैं कि, अपना स्वरूप जो तत्‌रूप, ज्ञायकरूप, आनंदरूप है उसकी परिणति आनंदरूप होती है। और अतत् (अर्थात्) परद्रव्यरूप नहीं, परज्ञेयरूप नहीं, पर

के अभावरूप परिणति होती है, (यह अतत् है)। अपने स्वभाव की अस्तिरूप परिणति होती है (और) पर के अभावरूप परिणति होती है। यह विरुद्ध शक्ति नाम का एक धर्म है।

व्यवहार से भी (धर्म) हो और निश्चय से भी धर्म हो तो विरुद्ध शक्ति न रही। इस विरुद्ध शक्ति का अभाव हुआ। क्या समझ में आया ? (ऐसा कहें) तो विरुद्ध शक्ति नहीं रहती। (लेकिन) विरुद्ध शक्ति है, आहाहा ! ज्ञान आनंदस्वरूप भगवान आत्मा अपने से है और (पर) ज्ञेयस्वरूप और व्यवहारस्वरूप नहीं है। अतत् (अर्थात्) व्यवहार से नहीं है। इसलिये विरुद्ध शक्ति नाम का एक गुण है। यह गुण है, इस गुण की परिणति - पर्याय है। नित्य - अनित्य धर्म है उसकी परिणति - पर्याय नहीं है। यह तो गुण है। आत्मा में विरुद्ध नाम का गुण है। आहाहा ! यह विरुद्ध (गुण आत्मा में है ऐसी मान्यता) किसको हो ? कि (जो) अनेक (गुण) हैं, ऐसा मानता हो, उसे हो। एक ही है, (ऐसी मान्यता में) विरुद्ध कहाँ आया ? समझ में आया ? वेदांत - एक ही आत्मा (मानते) हैं। सर्व व्यापक एक शुद्ध निर्मल आत्मा (मानते हैं)। उसमें विरुद्ध कहाँ आया ? यह तो विरुद्ध है, ऐसा सिद्ध करना है। अपना स्वभाव अपने से है और व्यवहार से और पर द्रव्य से नहीं, ऐसा विरुद्ध शक्ति नाम का गुण है। गुण है (और) गुण की परिणति भी है। यह विरुद्ध शक्ति की परिणति, अपने अविरुद्ध स्वभाव का परिणमन इसमें राग और पर का परिणमन नहीं - यह विरुद्ध शक्ति का परिणमन है। समझ में आया ? आहाहा ! उसमें तो व्यवहार से नहीं है, ऐसा परिणमन है - ऐसा आया। पर्याय में व्यवहार का परिणमन नहीं। अपने स्वभाव का परिणमन है और व्यवहार का परिणमन नहीं, उसका नाम विरुद्ध शक्ति गिनने में आया है। तो व्यवहार से होता है, यह बात उड़ जाती है। समझ में आया ? व्यवहार का तो अभाव है। यहाँ व्यवहार की बात है ही नहीं। यहाँ तो द्रव्य - गुण - पर्याय तीनों (में) निर्मल की बात है। शक्ति का वर्णन है न ? शक्ति तो निर्मल है, तो इसका परिणमन भी निर्मल है। यहाँ विकार का परिणमन गिनने में आया ही नहीं। इसका अभाव गिनने में आया है, आहाहा ! समझ में आया ?

``तद्रूपमयता...'' भाषा देखो ! तद्रूपमयता। अपने स्वभाव (से) तद्रूपमयता। तद्रूपवाला ऐसा भी नहीं। तद्रूपमयता, तद्रूपमय, है ? आहाहा ! ``तद्रूपमयता और अतद्रूपमयता...'' अतद्रूपमय (अर्थात्) आत्मा व्यवहार से और पर द्रव्य से अतद्रूपमय है। अतद्रूपमय है। (अपने से) तद्रूपमय है और पर से अतद्रूपमय है। अतद्रूपमय है (अर्थात्) राग से बिलकुल परिणमन (नहीं है)। और पर के सद्भाव से यहाँ परिणमन (होता है), ऐसा है नहीं, आहाहा ! एक शक्ति कहकर इसमें से बहुत निकाला है।

तद्रूपमय अपना निर्मल अनंत धर्म, अनंत गुण उसमें तद्रूपमय परिणमन है और

ज्ञेय और व्यवहार का अतद्रूपमय (परिणमन) है। व्यवहार उसमें बिलकुल तन्मय नहीं है।

श्रोता : फिर बेचारे कर्म का क्या होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म तो बहुत दूर रह गये। कर्म के घर में रह गये। कर्म का तो अभाव है। अतत्मय है। कर्म से तो अतद्रूप आत्मा का स्वभाव है। लोग तो कहे कि, कर्म के उदय से विकार होता है। यहाँ तो विकार और उदय दोनों का अतत्भाव है। दोनों को अतत्भाव है। आहाहा !

श्रोता : उनका (दोनों का) क्या होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : होगा क्या ? (विकार) इसमें रहेगा। (अर्थात्) विकार - विकार में रहेगा। निर्विकार परिणति में वह आता नहीं। निश्चय में तो उसको वस्तु ही गिनने में नहीं आया। समझ में आया ?

परमार्थ से तो अपने में विकार को तो वस्तु ही गिनने में नहीं आयी है। पर वस्तु तरीके है। क्या समझ में आया ? व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प - शुभराग वह अपने में गिनने में आया ही नहीं। यह तन्मय में है ही नहीं। अतन्मय में है। उसका अभाव है।

यह विरुद्ध शक्ति नाम का गुण है। प्रत्येक गुण में यह लागू होता है। प्रत्येक गुण में विरुद्ध शक्ति है। समझ में आया ? चारित्र गुण है, यह वीतरागरूप परिणमता है और रागरूप नहीं (परिणमता)। आनंद गुण है वह आनंदरूप परिणमता है और दुःखरूप नहीं (परिणमता)। ऐसी उसमें विरुद्ध शक्ति है।

``...अतद्रूपमयता जिसका लक्षण...'' किसका लक्षण ? जिसका लक्षण (माने) किसका ? ``...ऐसी विरुद्धधर्मत्व शक्ति।'' विरुद्धधर्मत्व (यानी) विरुद्ध धर्मपना। विरुद्ध धर्मपना ऐसी शक्ति है। आहाहा ! इसका बहुत लंबा अर्थ है। अपने भगवान आत्मा में पवित्र अनंत धर्म - गुण है, उससे परिणति तन्मय है और रागादि का और पर आदि का अतन्मयरूपभाव है। आहाहा ! वस्तु और वस्तु की पर्याय में भी (विकार) नहीं। यहाँ तो पर्याय में भी (लिया है)। अपने अनंत गुण का तन्मय परिणमन होता है और विकार और पर का अतन्मयरूप परिणमन होता है। विकार - व्यवहार का परिणमन उसमें अस्तिपने है, ऐसा गिनने में आया ही नहीं। समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म बातें, बापू !

यह तो आखिर की बात है। यहाँ ४३ वर्ष हुए। चालीस और तीन तो यहाँ हुए। जो चीज़ है उसका स्पष्टीकरण तो बराबर आना चाहिए न ! बहुत विरोध करते हैं तो विरोध के सामने बहुत स्पष्ट होता है, आहाहा !

विरुद्ध शक्ति का तत्त्व, अपने अनंत गुण जो आनंद आदि शक्ति है, उस रूप परिणमन है वह तन्मयम शक्ति है और राग और पर से नहीं है, ऐसी अतद्रूप शक्ति है। रागरूप परिणमन अपने में है ही नहीं। इसे आत्मा कहते ही नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? राग का परिणमन अपने में है, वह आत्मा ही नहीं। आहाहा ! वह अनात्मा में जाता है।पर द्रव्य में जाता है।

(यह धर्म तो) अनादि काल का है। बिल्ली होती है न ? (उसे) बच्चा होता है तो (वह) एक स्थान में (उसे) सात दिन रखे। (बाद में) उसे सात दिन घुमाये। ऐसे घूमते -घूमते सात बार घुमाये। बाद में (बच्चे की) आँख खुले तब जगत को देखे। (उसे ऐसा लगे) `आहो ! जगत तो है !' परंतु तेरी आँखे नहीं थी तब भी जगत तो था। तेरी आँखे खुली और देखने में आया तो जगत है, ऐसा नहीं है। वैसे यह नया पंथ नहीं, यह तो अनादि का (पंथ) है। विशेष कहेंगे.....

❖ ❖ ❖

जैसे राग की मंदता मोक्षमार्ग नहीं, वैसे व्यवहार - सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग नहीं, या मोक्ष का कारण नहीं; वैसे ही उनके साथ प्रवर्तित परसत्तावलंबी ज्ञान भी न तो मोक्षमार्ग है और न ही मोक्ष का कारण। स्वसत्ता को अनुभव में लेने की योग्यतावाला ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। ज्ञानानुभूति...आत्मानुभूति.... यही मोक्ष का कारण है।

(परमागमसार - ३२७)

प्रवचन नं. २५
शक्ति-२९ दि. ०४-०९-१९७७
तद्रूपभवनरूपा तत्त्वशक्तिः ।।२९।।

समयसार, शक्ति का अधिकार है। आत्मा में अनंत शक्तियाँ हैं। अनंत शक्ति का वर्णन तो कर सकते नहीं तो उसमें से ४० और ७ (४७), ऐसी शक्ति का वर्णन किया है। नय में भी ४७ नय लिये हैं। भैया भगवतीदासजी ने उपादान - निमत्त में भी ४७ श्लोक लिये हैं। चार घाती कर्म की प्रकृति भी ४७ हैं। उसका नाश करने का (यह) उपाय है। समझ में आया ?

चार घाती कर्म है न ? उसकी प्रकृति भी ४७ हैं। भैया भगवतीदास के उपादान - निमित्त के दोहरे भी ४७ हैं। प्रवचनसार में नय भी ४७ हैं और ये शक्तियाँ भी ४७ हैं। द्रव्यसंग्रह में यह बात ऐसे उतारी है कि, `**दुविहं पि भोक्खहेउं**' द्रव्यसंग्रह में ४७ वीं गाथा है। वहाँ भी यह वर्णन है। `**दविहंपि भोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' क्या कहते हैं ? कि, अपना आत्मा का अनुभव - निश्चय मोक्षमार्ग ध्यान में प्राप्त होता है। ऊपर से कोई धारणा कर ली हो, वह कोई चीज़ नहीं है। अपने आत्मा को ध्येय बनाकर, विकल्प से रहित अपनी ध्यान पर्याय में द्रव्य को ध्येय बनाकर (अभेद दृष्टि करने से निश्चय मोक्षमार्ग प्रगट होता है)।

रात्रिचर्चा में ध्याता - ध्यान और ध्येय का प्रश्न था। परंतु श्लोक में ऐसा आया है कि, ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान। उसका अर्थ ऐसा है कि, ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान तीनों आत्मा हैं। ज्ञेय भी आत्मा, ज्ञान भी आत्मा और ज्ञाता भी आत्मा, आहाहा ! समझ में आया ? कलशटीका में ऐसा लिया है कि, ज्ञेय एक शक्ति है, ज्ञान एक शक्ति है और ज्ञाता अनंत शक्ति संपन्न है। भगवान आत्मा ज्ञाता अनंत शक्ति संपन्न है। ज्ञेय एक शक्ति

है और ज्ञान एक शक्ति है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई !

अंदर भगवान आत्मा पूर्णानंद का नाथ (बिराजमान) है। यहाँ तो शक्ति का वर्णन चलता है। परंतु शक्ति और शक्तिवान ऐसा जिसमें भेद नहीं, ऐसी अभेद दृष्टि करके अंदर में ध्यान की एकाग्रता होना, 'मैं ऐसा हूँ - ऐसा नहीं', ऐसे विकल्प का भी जिसमें अभाव है - ऐसा अपना स्वरूप उसके ध्यान में निश्चय मोक्षमार्ग होता है। ध्यान में निश्चय स्वाश्रय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र होता है और ध्यान में ही व्यवहार मोक्षमार्ग होता है अर्थात् स्वरूप तरफ का ध्यान होने से जितना स्वाश्रय लिया, इतना दर्शन, ज्ञान, चारित्र निर्मल है। अभी तत्त्व शक्ति में आयेगा। समझ में आया ? और राग बाकी रहा उसको व्यवहार मोक्षमार्ग का उपचार करने में आया। ध्यान में दोनों मार्ग (निश्चय और व्यवहार) प्राप्त होते हैं, समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है।

यहाँ अपनी शक्ति चलती है। २८ तो चल गई न ? (अब) २९ वीं (शक्ति लेते हैं)। इसमें शब्द थोड़े (हैं) परंतु बड़ा भण्डार है। क्या कहते हैं ? सुनो ! ``**तद्रूप भवनरूप...**'' आत्मा में ऐसी एक शक्ति है, गुण है, सत् का सत्त्व है, स्वभाव है, तत्त्व शक्ति नाम का स्वभाव है। तो उसका स्वरूप क्या ? कि, ``तद्रूप भवनरूप...'' अपना आत्मा सहजात्मस्वरूप, अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में तद्रूप (है)। यहाँ ये लेना है। अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव (लेना है) विकार भी नहीं। अपना द्रव्य - ज्ञायक भाव, क्षेत्र - असंख्य प्रदेशी, काल - त्रिकाल और भाव भी त्रिकाल। ऐसी चीज़ पर तद्रूप होना, उस रूप परिणमन करना। सूक्ष्म है, भाई ! धर्म कोई अलौकिक बात है। लोगों ने बाहर से कल्पना कर ली है, वह धर्म नहीं है। यह दान, दया और दो-पाँच लाख खर्च करे, तो धर्म हो जाये (लेकिन उसमें) धूल में भी धर्म नहीं। तेरे लाख तो क्या करोड़ खर्च कर न ! वह तो जड़ चीज़ है और 'जड़ मेरा है' ऐसा मानकर देते हैं तो मिथ्यात्व का सेवन करता है।

यहाँ तो तत्त्व में तो क्या कहना है ? 'तद्रूप भवनरूप...' (अर्थात्) जैसा ज्ञायकभाव स्वद्रव्य है, क्षेत्र असंख्य प्रदेशी (उसे) द्रव्य कहो या असंख्य प्रदेशी क्षेत्र से कहो (एक ही बात है) और काल से अपना त्रिकाली सत्त्व काल कहो और उस त्रिकाली भाव को भाव कहो। समझ में आया ? तद्रूप भवनरूप - उस रूप परिणमन होना। 'भवन' शब्द पड़ा है न ? आहाहा ! तत्त्व शक्ति का अर्थ ऐसा है कि भगवान आनंद स्वरूप, ज्ञायक स्वरूप, शुद्ध स्वरूप, परम पवित्र, प्रभुत्व शक्ति स्वरूप, ऐसा तत्त्व - वह तद्रूप होना, उस रूप भवन होना, ये तत्त्व शक्ति का स्वरूप है और अपना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से तद्रूप होना उसमें राग का भी अभाव है। थोड़ा सूक्ष्म है। तद्रूप में राग नहीं आता। समझ में आया ?

ज्ञायक चैतन्यदल प्रभु ! असंख्य प्रदेश जिसका देश है और उसके देश में अनंत...अनंत... गुण (रूपी) गाँव है और एक-एक गाँव में अनंत बस्ती है वैसे एक-एक शक्ति की अनंती पर्याय (रूपी) प्रजा है। ऐसे अपना स्वरूप द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावस्वरूप (शुद्ध है)। यहाँ शुद्ध लेना। पर्याय में राग है वह अपना काल नहीं, आहाहा ! व्यवहार रत्नत्रयरूप होना वह स्वकाल नहीं। वह अपनी स्थिति नहीं। इसमें तद्रूप नहीं आता है। वस्तु स्वरूप बहुत (सूक्ष्म है), भाई ! अभी तो लोग बाहर में (धर्म मान बैठे हैं)। अभी तो निवृत्ति (लेकर) निर्णय करने का भी ठिकाना नहीं है। सारा दिन संसार...संसार...संसार... आहाहा ! अरे...! भगवान ! तुझे कहाँ जाना है ? आहाहा ! अपने स्वरूप में तद्रूप होना (है) वहाँ जाना है।

दीपचंदजी ने ऐसा लिया है, भाई ! दीपचंदजी ने अतत्त्व शक्ति में परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का अभाव है, ऐसा लिखा है। तो उसका अर्थ तत्त्वशक्ति में स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का सद्भाव (है)। दीपचंदजी ने ज्ञान दर्पण में (ऐसा लिया है)। क्या कहते हैं ? सुनो ! अरे...! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ (की वाणी उसमें) जो धर्म (आता है उसे) सुनने एक भवतारी इन्द्र और इन्द्राणी - एक भव में मोक्ष जानेवाले हैं (वे सुनने जाते हैं)। सुधर्म देवलोक, ३२ लाख विमान, एक- एक विमान में असंख्य देव हैं। कोई विमान छोटा है (उसमें) असंख्यात देव (हैं)। बाकी ३२ लाख विमान में एक-एक विमान में असंख्य देव और जिसको हज़ारो तो इन्द्राणी हैं, उसमें से एक इन्द्राणी जो है वह एक भवतारी है। क्या कहा ? वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। अभी सुधर्म देवलोक में है। इतनी बाहर की समृद्धि, इतनी संपदा - ऋद्धि, परंतु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में नहीं, ऐसा सम्यक्‌दृष्टि मानते हैं और अनुभव करते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है !! और सम्यग्दर्शन का विषय (कोई) अलौकिक अद्‌भुत बात है, भाई ! साधारण इन्सान को पता लग जाये, ऐसी बात नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं, ``तद्रूप भवनरूप...'' जो आनंदस्वरूप, ज्ञायकस्वरूप, शुद्ध स्वरूप, पवित्र स्वरूप (है उसका) द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से - उस रूप परिणमन होना। भवन (शब्द) है न ? अकेली शक्ति है, उस शक्ति का स्वरूप ही ऐसा है कि, तद्रूप भवन होना। शुद्ध आनंदरूप, शुद्ध ज्ञानरूप, शुद्ध समकितरूप, शुद्ध चारित्ररूप, शुद्ध प्रभुत्व - ईश्वररूप तद्रूप परिणमन होना - यह तत्त्व शक्ति का स्वरूप है। अरेरे...! ऐसी बातें इन्सान ने सुनी भी न हो (और) बाहर की माथापच्ची (करते रहते हैं)। भगवान के दर्शन किये, मंदिर बनाया और दो-पाँच-पचास लाख का खर्च किया (तो माने कि धर्म हो गया)। समझ में आया ?

श्रोता : अभी (धर्म) नहीं होगा (लेकिन) बाद में इसके फल में हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें से धूल में भी (धर्म) नहीं होगा। उसमें दृष्टि मिथ्यात्व है वहाँ पुण्यानुबंधी पुण्य भी नहीं बंधेगा, आहाहा ! जिसकी दृष्टि शुद्ध चैतन्यस्वरूप, तद्रूप परिणमन की दृष्टि हुई, और (ऐसा) परिणमन है (वह धर्म है)। तत्त्व शक्ति का स्वरूप तद्रूप परिणमने का है। उसमें जो शुभ राग है उसका तो यहाँ अभाव गिनने में आया है। फिर भी शुभराग हो उसमें पुण्य बंध जायेगा। समझ में आया ? भविष्य में उस पुण्य बंध (का उदय) आयेगा (तो) उस पुण्य को भी छोड़कर स्वरूप में स्थिर हो जायेगा। आहाहा !

अज्ञानी की दृष्टि में तो अभी राग की रुचि है और पर वस्तु लक्ष्मी (आदि पर पदार्थ) पर (प्रेम हैं)। अपनी चीज़ को भूलकर पर के प्रति अधिक प्रेम है, वह तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है। चाहे तो वह मंदिर के नाम पर करोड़ रुपये खर्च करे (तो भी मिथ्यादृष्टि है)। आहाहा ! यहाँ तो ऐसी बात है, बापू !

श्रोता : (मंदिर बंधवा ने में) दो उद्देश्य है। आपका प्रवचन सुनने मिले और मंदिर भी बंधाय जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : (सुनने मिले) तो क्या हुआ ? यहाँ तो भगवान ऐसा कहते हैं कि, हमारी वाणी सुनने आये तो उसे राग होगा।

कर्ता - कर्म (अधिकार में) ७४ गाथा में कहा है। आस्रव कैसा है ? वर्तमान दुःखरूप है। पुण्य के भाव - दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव यह वर्तमान दुःखरूप है, और भविष्य में दुःख का कारण है, आहाहा ! सूक्ष्म बात, बापू ! यह तत्त्व बहुत सूक्ष्म (है), आहाहा ! ये क्या कहा ? शुभराग वह वर्तमान दुःखरूप है और उससे पुण्य बंध जायेगा. और उससे वीतरागी वाणी आदि का कदाचित् संयोग मिलेगा तो भी वाणी सुनने में लक्ष है तो वह राग है।

श्रोता : करना क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ये तो कहते हैं, राग से भिन्न होकर अपना अनुभव करना - यह करना है। आहाहा ! ७४ गाथा में छः बोल हैं न ? उसमें छठ्ठा बोल ऐसा है, आहाहा ! भगवान आत्मा ! पुण्य और पाप को दोनों भाव अशुचि है, जड़ है। तद्रूप परिणमन में वह नहीं आता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

तद्रूप शक्ति का स्वरूप है उसमें रागरूप परिणमन आता ही नहीं। आहाहा ! सूक्ष्म है। सूक्ष्म बात है, भगवान ! आहाहा ! यहाँ कहते हैं कि, शुभभाव अशुचि है (और) भगवान (आत्मा) तो पवित्र परमात्मस्वरूप है। दोनों का भेदज्ञान करना उसका नाम धर्म

है। वह अशुचि है और जड़ है। शुभ भाव - दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा का शुभभाव जड़ है। यहाँ कहना यह है कि, तद्रूप परिणमन में वह नहीं आता। आहाहा ! भगवान आत्मा में तत्त्व शक्ति पड़ी है। तत्त्व शक्ति है तो इस शक्ति का कार्य क्या ? तत्त्व शक्ति तो ध्रुव है परंतु उसके परिणमन बिना शक्ति की प्रतीति कैसे आये ? उसका परिणमन तद्रूप भवनमय (है), ऐसा शब्द है। परिणमन में आनंदरूप होना, ज्ञातारूप परिणमन में होना, शांतिरूप, अकषायरूप, वीतरागभावरूप परिणमन होना, उसे तत्त्वशक्ति का तद्रूप भवन कहने में आता है। रागरूप होना उसका तो यहाँ अभाव है। आहाहा ! समझ में आया ? वह जड़ है। वह चेतन नहीं। राग में चैतन्य के प्रकाश का अंश नहीं है। यह शक्ति है न भैया ? यह शब्द है (लेकिन) शब्द में बहुत गंभीरता है, आहाहा !

परसों कहा था न ? जगत (शब्द में) कानो -मात्रा बिना के तीन अक्षर हैं। ज..ग..त... जगत की व्याख्या क्या हुई ? जगत में छः द्रव्य हैं, अनंत सिद्ध हैं, अनंत निगोद हैं, जगत में सब आया। ऐसे इस तत्त्व शक्ति में कितना आया है ? समझ में आया ? थोड़े शब्द हैं, भाई ! (लेकिन भाव बहुत गंभीर है)। आहाहा ! तद्रूप भवन - तद्रूप (अर्थात्) अपने स्वरूप परिणमन। आहाहा ! शरीररूप तो है ही नहीं, ये तो पर - जड़ है, मिट्टी - धूल है, आहाहा !

कल ऐसा आया है कि, मिट्टी में कर्तृत्व शक्ति नहीं है कि, घड़ा बनाये। कर्तृत्व शक्ति कुंभार (कुम्हार) में है तो घड़ा बनाता है। अरे...! भगवान ! तुझे खबर नहीं, प्रभु ! एक एक परमाणु में कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकारण ऐसी छः शक्तियाँ पड़ी हैं। एक-एक परमाणु में (ऐसी शक्तियाँ पड़ी हैं)। एक बात तो ऐसी ली कि, नरक में जैसे स्वर्ग का सुख नहीं, नरक में स्वर्ग का सुख नहीं, स्वर्ग में नारकी का दुःख नहीं, परमाणु में पीड़ा नहीं, ऐसे भगवान में विकार नहीं। समझ में आया ? दीपचंदजी ने ऐसा शब्द लिया है। सिद्धांत सिद्ध करने को ऐसा लिया है।

श्रोता : भगवान माने क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान आत्मा (की बात है)। वे भगवान तो दूर रहे। समझ में आया ? सात नरक में कहीं स्वर्ग के सुख की गंध नहीं - अभाव है। ऐसे स्वर्ग में नरक के दुःख का अभाव है, आहाहा ! ऐसे एक परमाणु में पीड़ा का अभाव है। जड़ में पीड़ा क्या ? समझ में आया ? ऐसे भगवान त्रिलोकनाथ आत्मा उसमें विकार और शरीर का अभाव है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बातें कहाँ (हैं) ? कहाँ पड़ी है कि मेरा क्या होगा ? कहाँ जाऊँगा ? भाई ! इस देह की स्थिति तो २५-५०-६०-७० वर्ष की है। बाद में जाना कहाँ ? रहना है कि नहीं ? आत्मा तो अनंतकाल

रहेगा, तो अनंतकाल कहाँ रहेगा ? जिसने राग पर रुचि करी है तो भविष्य में रागरूपी रुचि में - मिथ्यात्व में रहेगा। आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ कहते हैं कि, जैसे नरक में स्वर्ग का सुख (नहीं है)। (स्वर्ग के सुख की बात है)। आत्मा के सुख की बात है नहीं। जैसे सातवीं नरक में, सातवीं नरक के किसी नारकी को स्वर्ग के सुख का अभाव है, वैसे स्वर्ग के देव को नारकी के दुःख का अभाव है, आहाहा ! ऐसे एक परमाणु में पीड़ा का (अभाव है)। जड़ में पीड़ा क्या ? आहाहा ! ऐसे भगवान आत्मा में विकार का अभाव है। प्रभु में - आत्म में पुण्य और पाप के विकार का अभाव है। ऐसी बातें हैं, बापू ! क्या हो सकता है ? इन्सान बाहर में मर गये हैं। ये पैसे, ये शरीर, स्त्री, पुत्र आहाहा ! बड़े मकान किये (उसीमें रुक गये)।

श्रोता : मरकर कहाँ जायेगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ जायेगा ? बहुत आदमी मरकर पशु में जानेवाले हैं। समझ में आया ?

हमारे भागीदार थे। संवत १९६६ की साल की बात है। कितने वर्ष हुए ? ६७ (वर्ष हुए)। दो दुकान थी। (भागीदार) मेरी दुकान में काम करते थे परंतु मैं तो पहले से भगत कहलाता था। छोटी उम्र से भगत कहलाता था। दुकान पर काम करते थे परंतु (कोई) साधु आये तो हम दुकान छोड़ देते थे। वहीं रहते थे। (एक दिन) शाम को आहार करने गये। हमारे (वहाँ) बड़े भाई के भागीदार (और) उनके बड़े भाई मेरे भागीदार थे। दो दुकान थी। हमारे (साथ) कुंवरजीभाई थे। मेरे से ४ साल बड़े थे। उस वक्त तो साल की (लगभग) पांच हज़ार की कमाई होगी। परंतु बाद में उनकी लोलुपता मैंने देखी कि, ये क्या ? साधु आये (तो कुछ) सुनना, विचार करना (ऐसा कुछ नहीं)। रात को आठ बज़े दुकान बंध करे। बाद में जाये। साधु गाँव में आये तो रात को आठ बज़े जाये। पूरा दिन सामने नहीं देखे। इतनी लोलुपता (कि). 'मैं कमाता हूँ...', 'मैं कमाता हूँ...', 'मैं कमाता हूँ...' उस समय मेरी उम्र २० साल की थी। उसके पहले की बात है। मेरे नाम भगत था तो मेरे सामने कोई बोले नहीं। मेरे से चार साल बड़े थे (परंतु) बोले नहीं। (हमने कहा), 'भाई ! कुंवरजीभाई ! मुझे ऐसा लगता है कि, हम तो वाणिया - बनिये हैं। दारू-मांस तो खाते नहीं (इसलिये) तुम नरक में तो नहीं जाओगे। और मुझे तो ऐसा लगता है भाई ! देवलोक में जाने के तुम्हारे लक्षण नहीं हैं और तुम मनुष्य मरकर मनुष्य बनोगे, ये मुझे दिखता नहीं।' दुकान पर बैठे थे। सुनते थे। मेरे सामने कोई बोले नहीं। (लोग ऐसा कहे) 'भगत है, सुनो'। उसके सामने कुछ बोला नहीं जाता। हमने (आगे कहा), 'देखो ! याद रखो ! मुझे ऐसा भासित होता है कि, तुम

नरक में (तो) नहीं जाओगे, देवलोक में नहीं (जाओगे), मनुष्य में नहीं (जाओगे), तुम्हारे लिये पशु का अवतार है।' बाद में मरते समय तो साल की दो लाख की कमाई (हो गई थी)। बाद में अभिमान बहुत किया था न ! मैंने किया, मैं करूँ, मैं करूँ ! मरते समय दिमाग में पागलपन हो गया। पागल हो गये और देह छूट गया। आहाहा !

ये बनिये जो हैं, उनमें से तो कई पशु में जानेवाले हैं। क्योंकि धर्म नहीं है और पुण्य के ठिकाने नहीं है। धर्म तो राग से भिन्न करने का (ऐसा) सम्यग्दर्शन (रूपी) धर्म तो है नहीं और सच्चा संग करना, सच्चा श्रवण करना, वाचन करना यह तो पुण्य है। उसके लिये भी समय नहीं। उसे जगत के पाप के आड़े सारा दिन (फुरसद नहीं मिलती)। आहाहा ! मैंने तो मेरे घर का दृष्टांत दिया। (वे तो) हमारे भाई थे - भागीदार थे. अरे...! प्रभु ! भाई ! वह बाहर की लक्ष्मी - धूल और आबरू (कीर्ति) साथ में कुछ नहीं आयेंगे। आहाहा ! समझ में आया ?

अरे प्रभु ! उसमें एक बात ऐसी है, तिर्यंच संज्ञी और असंज्ञी की संख्या बहुत है। समझ में आया ? संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच - पशु और असंज्ञी - मन बिना के - उनकी संख्या बहुत है। क्यों बहुत है ? कि शास्त्र में ऐसा लिखा है कि, मनुष्य का भव अनंतकाल में मिले तो भी अनंत बार मिल गया है। और तभी तक उससे असंख्य गुना अनंत बार जीव नरक में गया है। अनंत मनुष्य का जो भव हुआ उसकी संख्या से असंख्य गुना अनंत (बार) नरक में गया। मनुष्य तो उससे असंख्यवें भाग में हैं। वहाँ से पशुमें से नरक में जाते हैं। समझ में आता है ? भगवान सर्वज्ञदेव परमेश्वर ने ऐसा फरमाया है कि, अनंतकाल में अनंत परिभ्रमण करते हुए, अनंतकाल में मनुष्य भव मिले तो भी अनंत बार मिल गया। समझ में आया ? मनुष्य के जितने भव किये - (अभी तक) अनंत (भव) किये। एक मनुष्य (का भव और) असंख्य नरक (के भव)। नरक समझे ? नारकी। ऐसे मनुष्य की संख्या से अनंत गुने अनंते नरक के भव किये, तो नरक में कहाँ से गया ? मनुष्य तो बहुत थोड़े हैं। पशु की संख्या इतनी (अधिक) है और उसमें इतने मनुष्य जाते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! कोई बार एक-एक समय में असंख्य पंचेन्द्रिय (तिर्यंचमें से) नारकी उत्पन्न होते हैं। (सभी की) एक सरीखी स्थिति नहीं होती। परंतु उसी समय एक से सात नरक तक, तिर्यंच मरकर जाते हैं। एक समय में असंख्य (तिर्यंच) मरकर नरक में जाते हैं। इतनी (तिर्यंच की) संख्या है। तिर्यंच की इतनी संख्या है। इसमें अनंत बार आया तो वहाँ से मरकर पहली नरक से सातवीं नरक पर्यंत तिर्यंच जाते हैं। सातवीं नरक तक जाते हैं। आहाहा !

मनुष्य से असंख्य गुना अनंता भव (नरक का) किया (तो) असंख्य गुना अनंता

कहाँ से आया ? तिर्यंच - पशु की इतनी संख्या है, वहाँ इतने (जीव) जाते हैं। परंतु इसमें से इतने (बाहर) निकलते हैं (और) नरक में भी जाते हैं। एक समय में एक साथ असंख्य जाये। (सभी की एक) सरखी (जैसी) स्थिति नहीं। समझ में आया ? ऐसा स्वर्ग में भी (हुआ)। नरक में अनंत बार गया और अनंत भव किये, मनुष्य से असंख्य गुना अनंता (भव नरक के किये)। उससे असंख्य गुना अनंता स्वर्ग के भव किये। प्रत्येक प्राणी का अभी तक (ऐसा हुआ है)। एक भव नरक का और असंख्य (भव) स्वर्ग का । एक नरक (का भव और) असंख्य स्वर्ग का (भव)। ऐसे नारकी के भव से स्वर्ग के भव अनंत गुने किये। वहाँ स्वर्ग में कौन गया ? नारकी तो जाते नहीं। मनुष्य थोड़े हैं। समझ में आया ? ढ़ाई द्वीप के बाहर जानवर - पशु पंचेन्द्रिय इतने हैं (वे जाते हैं)। आहाहा ! कोई शुभभाव हो (तो) स्वर्ग में जाते हैं। एक समय में असंख्य (तिर्यंच, स्वर्ग में) उत्पन्न होते हैं। इतने तिर्यंच हैं, (लेकिन किसी की भी) सरखी स्थिति नहीं। समझ में आया ?

यह घबराने के लिये नहीं है। परिभ्रमण का डर होना, भव का भव-भय होना। चारों गति में दुःख है। नरक में दुःख, मनुष्य में दुःख और स्वर्ग में अकेला दुःख है। यहाँ तो दूसरा कहना था कि, प्रत्येक प्राणी ने नरक से असंख्य गुना अनंता भव स्वर्ग में किये हैं, ऐसा भगवान कहते हैं। तो कहाँ से गया ? पशु में से (गये)। स्वर्ग से अनंते निगोद के भव किये। आहाहा ! स्वर्ग के जो अनंते (भव) किये उससे अनंत गुना तिर्यंच में (भव किये)।उसमें निगोद विशेष लेना। आहाहा ! निगोद में एक श्वास में १८ भव करते हैं। प्याज, लहसुन की एक कणी में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनंत जीव (हैं)। एक श्वास में १८ भव करते हैं। जन्मे और मरे, मरे और जन्मे, स्वर्ग के अनंत (भव की) संख्या से अनंत गुना (भव) वहाँ किये। आहाहा ! समझ में आया ?

(यहाँ) कहते हैं, प्रभु ! एकबार भव का अभाव करने की बात सुन तो सही ! आहाहा ! प्रभु ! तेरे में एक तत्त्व शक्ति पड़ी है, ऐसा परमात्मा कहते हैं। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ प्रभु ! केवली महाराज, जिनेन्द्र चंद्र प्रभु ! आहाहा ! ऐसा कहते हैं, नाथ ! तेरे में एक तत्त्व शक्ति है न प्रभु ! उस तत्त्व शक्ति का परिणमन तद्रूप होना। उससे भव का अभाव होता है। आहाहा ! शब्द तो थोड़े हैं परंतु (भाव) बहुत गंभीर है।

``**तद्रूप भवन...**'' यह शब्द पड़ा है। यहाँ तद्रूप में विकार नहीं लेना। यहाँ शक्तिरूप परिणमन में विकार है ही नहीं। क्योंकि शक्ति निर्मल है तो उसका परिणमन भी निर्मल ही है। निर्मल शक्ति की क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती गुण - उसका समुदाय आत्मा है। आत्मा विकार के साथ का समुदाय है, (ऐसा नहीं है)। उसे यहाँ गिनने में आया नहीं, आहाहा !

पहले आया न ? क्रमरूप - अक्रमरूप अनंत धर्म समूह जो कुछ जितना लक्षित होता है वह वास्तव में एक आत्मा है, आहाहा ! इसमें बोल है। एक शक्ति पर २२ बोल लिखे हैं। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, प्रभु ! एकबार सुन न ! तेरे में एक तत्त्वरूप शक्ति ऐसी है कि, अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप निर्मलरूप से परिणमन करना, यह तत्त्व शक्ति का कार्य है। तद्रूप है न ? आत्मा का स्वरूप तो ज्ञायक और आनंद है। समझ में आया ? आहाहा ! एक काँटा लगता है तो चीख निकल जाती है, आहाहा ! अरेरे...! ऐसा कहेगा, `दुःखता है, दुखाओ मत।' ऐसा दुःख प्रभु ! काँटे के दुःख से पहली नरक में १०,००० वर्ष की स्थिति में उत्पन्न होता है, उसमें इस काँटे के दुःख से अनंतगुना दुःख है। उस दुःख को निवृत्त करने का उपाय यह एक है। भगवान अंदर आनंदस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, चिद्घन, प्रभुत्व स्वरूप, उसरूप भवन (अर्थात्) उस रूप परिणमन करना, (ऐसा उसका स्वरूप है)। आहाहा ! समझ में आया ? बापू ! सूक्ष्म बातें हैं। अभी तो बाहर में सब धर्म के नाम पर शुभभाव - दया, दान, व्रत और तप को धर्म मान लेते हैं। (उसमें धर्म मानना) वह तो मिथ्यात्व है।

यहाँ कहते हैं कि, सम्यग्दर्शन का स्वरूप (विषय) जो अखण्ड वस्तु है और (स्वरूप) जिसके ध्येय में है, उसमें एक तद्रूप नाम की शक्ति पड़ी है, आहाहा ! ``**तद्रूप भवन...**'' आनंदरूप परिणमन होना, ज्ञातापने का परिणमन होना, सम्यग्दर्शन का परिणमन होना, स्वरूप में वीतरागता का परिणमन होना, पर्याय में प्रभुत्व शक्ति का परिणमन आना। आहाहा ! जितनी शक्तियाँ हैं (उसका) पर्याय में तद्रूप परिणमन आना, यह तत्त्व शक्ति का स्वरूप है। ऐसा उपदेश है। अनजाने आदमी ने तो कुछ सुना (भी) नहीं हो, कुछ खबर भी नहीं हो, बेचारे मूढ़पने जिंदगी निकालते हैं। बाहर में डाह्या - होशियार गिना जाये। डाह्या समझे ? समझदार और होशियार। धूल में भी (होशियार) नहीं है। आहाहा ! प्रभु ! हाथ का हथियार अपना गला काटे, वह होशियारी किस काम की ? वैसे जो समझ की होशियारी अपने भव बढ़ाये, वह होशियारी किस काम की ? आहाहा ! हमारे में तो कुछ गुजराती भाषा आ जाती है। भाषा थोड़ी समझ लेना, आहाहा ! क्या कहा ?

``**तद्रूप भवनरूप ऐसी तत्त्व शक्ति।**'' तत्त्व स्वरूपरूप होनेरूप (अर्थात्) अपना तत्त्व जो ज्ञायक और आनंदस्वरूप है, उसका तद्रूप - होनेरूप अथवा तत् स्वरूप परिणमन रूप। `भवन' है न ? भवन, आहाहा ! तत्त्व शक्ति का वस्तु स्वरूप ही यह है। तत्त्व शक्ति है यह ध्रुव है। परंतु उसके परिणमन में उसकी प्रतीति आती है। परिणमन बिना तत्त्व शक्ति की प्रतीति किसे आये ? समझ में आया ?

आत्मा अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप है। परंतु पर्याय में अतीन्द्रिय आनंद का वेदन आये बिना, 'यह अतीन्द्रिय आनंद है' ऐसी प्रतीति कहाँ आयी ? आहाहा ! ऐसा मार्ग है।

श्रोता : आधी पंक्ति में तो कुछ समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : (ये) कहते हैं कि, आधी पंक्ति में इतना सारा भरा है कि ख्याल में नहीं आता। बात तो सच्ची है।

इसमें इस तरह लिया है। क्योंकि शक्ति में कोई स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अस्ति और (परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नास्ति) ऐसा कोई बोल नहीं है। नय में (ऐसे बोल) है। ४७ नय हैं न ? उसमें स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव वह अस्ति, परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव वह नास्ति, अस्ति - नास्ति, अवक्तव्य, अस्ति अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य, अस्ति - नास्ति अवक्तव्य ऐसे सात भंग ४७ नय में हैं। वह ज्ञानप्रधान कथन है। यहाँ तो दृष्टिप्रधान कथन है। आहाहा ! क्या होगा यह ?

यहाँ तो तद्रूप परिणमन - तत्स्वरूप से परिणमन (अर्थात्) भगवान आनंद और ज्ञान स्वरूप है, उस रूप पर्याय में परिणमन होना, उस कारण का कार्य आना, कार्य में कारण की प्रतीति आना, उसका नाम तत्त्वस्वरूप शक्ति कहने में आता है। कार्य से कारण की प्रतीति होना। कारण में प्रतीति कहाँ है ? वह तो ध्रुव है। आहाहा ! आँखे बंध करके चला जायेगा, बापू ! जिसे तत्त्व की दृष्टि की खबर नहीं है, वह मरकर कहाँ चला जायेगा, बापू ! इस देह का एक कण साथ में नहीं आयेगा। जाओ ! चौरासी में रखड़ने के लिये ! आहाहा ! परिभ्रमण और परिभ्रमण का कारण आत्मा में है ही नहीं, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझने में बहुत पुरुषार्थ करना पड़ेगा।

पहले अपने कलश टीका में आया था। वस्तु कठिन है, अति कठिन है (ऐसा) आया था। मार्ग अति कठिन है। परंतु शुद्धस्वरूप का विचार करने पर आनंद आता है। विचार करने पर का अर्थ ? शुद्ध स्वरूप का ज्ञान करने से (अर्थात्) यह शुद्ध चैतन्य है, उसे ज्ञेय बनाकर ज्ञान करने से, (ऐसा अर्थ है)। कठिन है, दुर्लभ है, (लेकिन) अशक्य नहीं (है), आहाहा ! परंतु पुरुषार्थ क्या है ? उसकी खबर ही नहीं। 'अंधो अंध पलाय' अंधे चले और अंधे दिखलानेवाले मिले (बाद में) गिर जाये कुएँ में, आहाहा ! भाई ! प्रभु का मार्ग (कोई भिन्न ही है)।

जिनेन्द्रदेव परमेश्वर (की वाणी) इन्द्र और इन्द्राणी जैसे एकावतारी - एक भवतारी सुनने आते हैं, तो वह चीज़ कैसी होगी ? इन्द्र और इन्द्राणी (बाहर में) असंख्य देव के स्वामी (हैं) फिर भी अंतर में इसका स्वामी (हूँ ऐसा) नहीं मानते। आहाहा ! मैं तो तत्त्वस्वरूप पूर्ण आनंद की पर्याय, गुण और द्रव्य का स्वामी हूँ (ऐसा मानते हैं), आहाहा !

किसी ने ऐसा लिखा है, ये देव इतने-इतने काम - भोग करते हैं। समकिती हैं फिर भी ऐसा सब करते हैं कि नहीं ? क्या करें बापू ? तुझे मालूम नहीं, भाई ! सम्यक्दृष्टि धर्मी को राग आता है। लडाई का भी राग आता है, परंतु उस राग का मेरी पर्याय में (अभाव) है, ऐसा नास्ति मानते हैं, तत्स्वरूप में वह नहीं है, (ऐसा मानते हैं), आहाहा ! परज्ञेय तरीके उसका ज्ञान करते हैं, आहाहा ! समझ में आया उतना समझना, प्रभु ! यह तो लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव का पंथ है। यह कोई पामर प्राणी का पंथ नहीं, आहाहा !

(यहाँ) कहते हैं, कौंस में ``**तत्स्वरूप होनेरूप...**'' है न ? भवन शब्द है न ? ``**तत्स्वरूप होनेरूप अथवा तत्स्वरूप परिणमनरूप...**'' भवनरूप कहो, होनेरूप कहो कि परिणमनरूप कहो (सब एकार्थ है)। भगवान आनंद और ज्ञानस्वरूप है। तत्त्व शक्ति के कारण ज्ञान और आनंदरूप परिणमन होने से, द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों में तत्त्व शक्ति व्याप्ती है। समझ में आया ? ये क्या कहा ? एक (बात) मुश्किल से समझ में आती है वहाँ दूसरी कठिन (बात आती है)। आहाहा !

भगवान आत्मा ! वस्तु, पदार्थ उसमें तत्त्व शक्ति पड़ी है। यह गुण है। शक्ति - शक्ति में (है)। यह (शक्ति) पर्याय में कब व्यापक होती है ? तत् स्वरूप का पर्याय में कब परिणमन होता है ? तत्त्व स्वरूप पर दृष्टि पड़ने से परिणमन में तत्त्वरूपी परिणमन की दशा आती है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की निर्मल दशा (आती है)। तब यह तत्त्व स्वरूप की शक्ति पर्याय में व्याप्त हुई। आहाहा ! द्रव्य, गुण और पर्याय के नाम नहीं आते हो और हम जैन हैं और हम दिगंबर हैं, (ऐसा मानते हैं)। कुछ खबर नहीं है। आहाहा !

प्रभु ! तेरा रूप क्या है ? तेरा स्वरूप क्या है ? यह तो पहले आ गया न ? स्वधर्म में व्यापक स्वरूप है। राग और पर में व्यापक, तेरा स्वरूप है ही नहीं, आहाहा ! समझ में आया ?

(यहाँ) कहते हैं कि, ``**तद्रूप भवन...**'' इतना शब्द है। तद्रूप होनेरूप (अर्थात्) आनंद और ज्ञायकरूप होनेरूप। तद्रूप परिणमनरूप (अर्थात्) अपना अतीन्द्रिय ज्ञान और आनंद स्वरूप है, उस रूप परिणमन रूप (होना), यह तत्त्व शक्ति है। आहाहा ! समझ में आया ?

अरे प्रभु ! तू सुन तो सही, नाथ ! तेरी ऋद्धि तो देख ! तेरी संपदा तो देख ! तेरे में क्या है ! ये (बाहर की) धूल की संपदा में मोह करके मूढ़ हो गया है। समझ में आया ? तेरी संपदा में इतना तद्रूप स्वरूप है - अनंत आनंद, अनंत ज्ञान, अनंत शांति, अनंत प्रभुता, अनंत चैतन्य रत्नाकर भगवान है, उसमें एक तत्त्व शक्ति नाम का रत्न पड़ा

है। आहाहा ! यह शक्ति पड़ी है तो यहाँ तो परिणमनरूप लिया। क्योंकि `है', कारण आत्मा है।

राजकोट में प्रश्न हुआ था न ? (किसी ने पूछा था), `महाराज ! त्रिकाली भगवान को आप कारण परमात्मा कहते हो, तो कारण है तो कार्य तो आना ही चाहिए' ऐसा प्रश्न किया था। वस्तु कारण परमात्मा है न ? वस्तु द्रव्य जो है वह कारण परमात्मा है। कारण जीव कहो, कारण परमात्मा कहो, कारणस्वरूप कहो, कारण ईश्वर कहो (एक ही बात है)। तो कार्य तो आता नहीं। हमने कहा कि, भैया ! कारण परमात्मा है (वह) किसको (है) ? जिसे प्रतीति में आया इसे (कारण परमात्मा है)। (कारण परमात्मा) है परंतु जिसे प्रतीति में आया नहीं, ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय अकारण द्रव्य है, ऐसा पर्याय में तो आया नहीं, तो पर्याय में आये बिना `है' ऐसा किसे मानते हो ? आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई ! कारण परमात्मा तो तद्रूप त्रिकाल है। यहाँ तो परिणमन में बात लेनी है। तद्रूप है परंतु उसकी प्रतीति है, उसके ज्ञान में है। उसकी प्रतीति किसे है ? जिसे स्वरूप की ओर की दृष्टि करके ज्ञेय बनाकर ज्ञान हुआ और प्रतीति हुई, इसे कारण परमात्मा है। ऐसा कारण परमात्मा जिसने माना उसे सम्यग्दर्शन - कार्य हुए बिना रहे नहीं। समझ में आया ? ऐसी बातें हैं।

अरे...! कहाँ निवृत्ति है ? सारा दिन, स्त्री, पुत्र, कुटुंब (में जाता है)। जीव को तो मार डाला है। पर के प्रेम में स्व का द्वेष है, क्या कहा ? आहाहा ! `द्वेष अरोचक भाव' आनंदघनजी श्वेतांबर साधु कहते हैं कि, (निज) स्वरूप रुचता नहीं और राग रुचता है, (तो) तेरे स्वरूप पर तुझे द्वेष है, आहाहा ! स्वरूप में नहीं ऐसा जो राग - दया, दान, विकल्प आदि या हिंसा, झूठ आदि। उस राग का रस है और राग का प्रेम है और राग को ज्ञेय बनाकर रागी होता है (तो) तुझे ज्ञान पर द्वेष है। तुझे स्वरूप पर द्वेष है, आहाहा ! समझ में आया ? `द्वेष अरोचक भाव' ऐसा लिया है। `संभवदेव ते धुर सेवो सेवे रे, लही प्रभु सेवन भेद, सेवन कारण प्रथम भूमिका रे, अभय अद्वेष अखेद' लंबी बात है। सब देखा है। `भय चंचळता रे परिणामनी...' भगवान में परिणाम जाते हैं और भयभीत होकर चंचलता करते हैं, ये तुझे भगवान का भय है। `भय चंचळता रे परिणामनी...' जो परिणाम अंदर में जाते नहीं तो तेरे परिणाम में डर है - तेरे स्वरूप का तुझे भय है। भय परिणाम अंदर नहीं जाकर बाहर में भटकते हैं। ऐसी बात है, भगवान ! आहाहा !

`भय चंचलता हो जे परिणामनी रे, द्वेष अरोचक भाव' आहाहा ! अंदर में प्रवृत्ति करते थक जाये उसे खेद आ जाये। अंदर में थकान लग जाये. यह तेरा स्वरूप के

प्रति खेद है। आहाहा !

तद्रूप भवन (शब्द में से) यह सब निकलता है, समझ में आया ? एक घंटा एक (शक्ति में) गया। उसका भाव है न ? यह शास्त्र बोलते नहीं परंतु उसमें भाव है कि नहीं ? आहाहा ! एक शब्द के अंदर इतना है। आहाहा ! अरे... भगवान ! तेरी एक शक्ति का भी (तुझे) ख्याल नहीं। एक शक्ति का ख्याल हो तो अनंत शक्ति का ख्याल साथ में आये बिना रहे ही नहीं।

जयसेन आचार्य कहते हैं कि, एक भाव भी यथार्थ जाने तो अनंत भाव जाने बिना रहे नहीं। वैसे एक शक्ति भी यथार्थ जाने तो अनंत शक्ति का ज्ञान हुए बिना रहे नहीं। विशेष कहेंगे....

अहो ! सम्यग्दर्शन महारत्न है। शुद्ध आत्मा की निर्विकल्प - प्रतीति ही सर्व रत्नों में महारत्न है। अलौकिक - रत्न तो जड़ हैं। परंतु देह से भिन्न केवल शुद्ध चैतन्य का भान होकर - सम्यग्दर्शन प्रकट हो, वही महारत्न है। (परमागमसार - ७९१)

यह तो वीतराग-मार्ग है - उसमें तो सत्य को ही सत्य जानना चाहिए; आड़ा-टेड़ा मानना स्वीकृत नहीं है। आँख में तो कदाचित् रजकण समा भी जाए, परंतु वीतराग-मार्ग में तनिक भी आगे-पीछे होना नहीं चलता। जैसा वस्तु - स्वरूप, उसे वैसा ही जानकर प्रतीति करे तो ही सम्यग्दर्शन है; और वह सम्यग्दर्शन जगत में श्रेष्ठ है।

(परमागमसार - ७९३)

प्रवचन नं. २६
शक्ति-२९, ३० दि. ०५-०९-१९७७
तद्रूपभवनरूपा तत्त्वशक्तिः।।२९।।
अतद्रूपभवनरूपा अतत्त्वशक्तिः।।३०।।

समयसार शक्ति का अधिकार है। आत्मा में (एक) तद्रूप शक्ति (है)। यह चलती है न ? कल चला था। कल तो एक घंटा चला था। क्या कहते हैं ? कि यह भगवान आत्मा ध्रुवस्वरूप चिदानंद उसमें एक तत्त्व शक्ति है। तद्रूप होना यह तत्त्व शक्ति (है)। इसका अर्थ (क्या ? कि) चेतन, आनंद, ज्ञान शुद्ध स्वरूप है, उसमें इस चैतन्यस्वरूप का तद्रूप भवन - परिणमन होना। तद्रूप स्वरूप - चैतन्य का चिदानंद, आनंद, शांति, वीतरागता स्वरूप (है)। उस स्वरूप का भवन, उस स्वरूप का होना, परिणमन होना, उसका नाम तत्त्व शक्ति है, आहाहा !

पाठ है न ? ``**तद्रूप भवन...**'' तत्‌रूप - जो स्वरूप भगवान आत्मा ! चैतन्य और आनंद जिसका स्वरूप है, रूप है, स्व...रूप है, अपना रूप है, आहाहा ! उस चैतन्यरूप के परिणमन में रागरूप नहीं होना, यह अतत्त्व शक्ति में आयेगा। यहाँ तो चैतनरूप का आनंदरूप परिणमन होना, आहाहा ! भगवान सर्वज्ञ परमात्मा (में) जो अपनी तत्त्वशक्ति थी, उस कारण से उस रूप पूर्ण परिणमित हो गये और पूर्ण परिणमन होकर सर्वज्ञ, सर्वदर्शीपना आ गया। उन भगवान के श्रीमुख से जिनेन्द्रवाणी ऐसी निकली कि, तुम भी क्या हो ? समझ में आया ? कि, तत्त्वशक्तिरूप तेरी चीज़ है, आहाहा !

शरीर(रूप) होना, वह तो है नहीं। वह तो जड़, मिट्टी, धूल है और उस शरीर की चलने - फिरने की क्रिया होती है, वह जड़ की क्रिया है - आत्मा की नहीं, आहाहा !

उसमें दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का परिणाम होता है, वह चैतन्यरूप नहीं। वह तो जड़रूप है। आहाहा ! कठिन बात है, समझ में आया ?

जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करना हो तो वह कैसे प्राप्त होता है ? कि आत्मा तत्त्वरूप - तद्रूप जो अनंत आनंदकंद स्वरूप प्रभु है, उसमें ``**तद्रूप भवन...**'' (ऐसी तत्त्व शक्ति है)। आनंदरूप परिणमना, ज्ञानरूप होना, शांतिरूप वेदन होना, सुख वेदन होना, ईश्वर शक्ति जो है उसका भी ईश्वरपना का परिणमन होना, उसे तद्रूप भवन (रूप) तत्त्व शक्ति कहने में आता है। ऐसी बातें कभी सुनी न हो उसे मुश्किल पड़ता है। आहाहा !

एक तो अनादि से बाह्य क्रियाकांड में रुक गया। इसमें (भी) निकलकर पुण्य और पाप के भाव में रुक गया। आहाहा ! यह उसका स्वरूप नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या, अपवास आदि तप करते हैं न ? वह सब विकल्प हैं, राग है। भगवान ! तुझे खबर नहीं। आहाहा ! इस रागरूप होना यह तद्रूप नहीं, आहाहा ! ऐसा मार्ग सुनना (समझना) भी कठिन पड़े। (ऐसी बातें) चले नहीं। बाहर में यह बड़ी तकरार चलती है कि, ये दया, दान, व्रत, तप करते हैं, ये शुभ (भाव) शुद्धता का कारण है। शुद्धता का कारण है।

यहाँ तो कहते हैं कि, प्रभु ! तेरे घर की चीज़ एक बार सुन तो सही। आहाहा ! तेरा स्वरूप नाथ ! भगवान स्वरूप तेरा है। भग नाम ज्ञान और आनंद की लक्ष्मी से भरी पड़ी तेरी चीज़ है। इसमें एक तत्त्व शक्ति नाम का गुण है कि, जो गुण - गुणी की (द्रव्य की) दृष्टि करने से - गुण और गुणी का भेद भी लक्ष में से छोड़ने से (उसका परिणमन होता है)। यह सब (सुनने) बाहर के काम के आड़े फुरसद नहीं निकालता। अपने लिये फुरसद ली नहीं। (खुद को) मार डाला।

सबेरे आया था न ? २८ श्लोक चला था। बहुत अच्छा चला था। किसी ने कहा कि, अहो ! यह तो दिव्यध्वनि निकली ! क्या कहते हैं ? प्रभु ! एकबार सुन तो सही, नाथ ! तेरी चीज़ अतीन्द्रिय आनंद और अतीन्द्रिय ज्ञान से भरी है, नाथ ! उसे दया, दान, व्रत आदि के परिणाम जो हैं, उसके प्रेम में तेरी चीज़ को तूने मृत्यु तुल्य कर दिया है, आहाहा ! अरेरे...! ये सुनने मिले नहीं, वह कब प्रयोग करे ? आहाहा ! यह मनुष्य देह भवाब्धि में - चौरासी के अवतार में चला जायेगा, आहाहा !

(यहाँ) कहते हैं, नाथ ! एक बात तेरी ऋद्धि, तेरी संपदा (की ओर नज़र तो कर !) आहाहा ! (कि) तेरी चीज़ में इतनी संपदा पड़ी है ! उसमें तत्त्व शक्ति नाम की एक संपदा है, आहाहा ! और एक शक्ति में भी अनंती संपदा - ताकत है, आहाहा ! ऐसी-ऐसी, अंदर अनंती शक्ति की संपदा से भरपूर भगवान तू पड़ा है, आहाहा ! कहाँ

नज़र करे ? कुछ सुने नहीं (और) वैसे के वैसे धर्म के बहाने ये व्रत किया, अपवास किये और (माना कि) धर्म हो गया। धूल में भी धर्म नहीं। सुन तो सही, आहाहा !

परमात्मा जिनेन्द्रदेव ऐसा कहते हैं कि, तद्रूप भवन यह तेरी शक्ति है। तेरा सामर्थ्य ही ये है। तेरे पुरुषार्थ में सामर्थ्य यह है। क्योंकि तत्त्वरूप होना उस पुरुषार्थ की शक्ति में भी तत्त्व शक्ति का रूप है। यह तत्त्व शक्ति कही (उसमें) कल एक पंक्ति में एक घंटा चला था। अपार भाव भरे हैं, आहाहा ! भगवान ! तेरे अंदर जो वीर्य नाम का गुण है, उसमें तत्त्व शक्ति का रूप है। आहाहा ! अर्थात् अपना पुरुषार्थ शुद्धरूप परिणमन करना, ऐसा उसमें रूप है। दया, दान, व्रतरूप परिणमन करना यह तेरा रूप नहीं, यह तेरा स्वरूप नहीं, आहाहा ! ऐसी बातें ! भगवान ! एक बार सुन तो सही, आहाहा ! अरे...! आचार्य तो 'भगवान' कहकर बुलाते हैं !

(समयसार) ७२ गाथा में 'भगवान आत्मा' (कहा है)। आहाहा ! (बालक की) माँ झूले में झुलाते समय उसकी प्रशंसा करती है (ताकि बालक) सो जाये। (माँ कहती है कि) बेटा ! 'तू ऐसा है, तू ऐसा है' कहते हैं न ? गीत गाते हैं न ? 'पाटले बेसीने नाह्यो' ऐसा हमारी गुजराती में (है)। आहाहा ! (ऐसे) प्रशंसा करते हैं तो वह सो जाता है। अव्यक्तरूप से भी उसकी प्रशंसा (उसे) प्रिय है। अगर गाली दोगे तो नहीं सोयेगा, ऐसा देख लेना। एकबार (ऐसा कहोगे(कि, 'मारा रोया सूई जा' तो नहीं सोयेगा। समझ में आया ? क्योंकि उसे अव्यक्तरूप से भी प्रशंसा प्रिय है तो इन गुणों की बात प्रिय न हो ! अरे भगवान ! (ये क्या है)? आहाहा ! तुम आनंद स्वरूप हो नाथ ! प्रभु ! तुम चैतन्य की चमत्कारी शक्ति से भरा पड़ा है न ! आहाहा ! तत्त्व शक्ति के शरण बिना तू राग, दया, दान और व्रत (आदि) परिणाम के प्रेम में पड़ा है (तो) तेरी चीज़ को तूने मरण तुल्य कर दिया। आहाहा ! 'मैं ऐसा हूँ ही नहीं, मैं तो दया पालनेवाला, व्रत करनेवाला', (ऐसा माना है)। (परंतु) वह तो सब विकल्प और राग है, आहाहा ! राग के प्रेम में प्रभु तेरी लक्ष्मी लूट गई। तेरी चैतन्य शक्ति तद्रूप होना, आनंद और ज्ञानरूप (भवन) - तद्रूप भवन (होना, वह तत्त्व शक्ति का स्वरूप है)। (अपना) स्वरूप जो शुद्ध चैतन्यघन, आनंदकंद (स्वरूप है), उस आनंदरूप भवन (अर्थात्) होना (परिणमना) यह तेरी शक्ति है। अरे...! ऐसी बातें !

(लोग) कहे, व्रत करो, अपवास करो, चोवीयार करो, रात्रि को आहार नहीं करो, (ये खाना और) ये नहीं खाना (तो) हो गया धर्म ! धूल भी नहीं है, सुन न ! समझ में आया ? राग यह तेरा स्वरूप नहीं परंतु (लोग उसे) राग नहीं मानते। धंधा करना, स्त्री के समागम में आना, इसे राग (मानते हैं)। परंतु इस राग की उसे खबर नहीं है।

समझ में आया ? आहाहा ! व्रत करना, अपवास करना, भक्ति करना ये सब राग भाव हैं। भाई ! तुझे खबर नहीं, आहाहा ! प्रभु ! तेरे स्वरूप में यह चीज़ नहीं। आहाहा !

श्रोता : तो क्या करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : करना ये। (शुभराग) बीच में आ जाये परंतु हेयबुद्धि से आ जाये। समझ में आया ? उपादेयबुद्धि करने से आत्मा हेय हो जाता है। क्या कहा ? यह शुभ क्रिया - शुभ राग को उपादेय मानने से - आदरणीय मानने से भगवान चिदानंदरूप का अनादर हो जाता है - हेय हो जाता है, आहाहा ! राग हेय है उसको उपादेय मानने से सारा चिद्रूप - तद्रूप भगवान आत्मा उसका तेरी दृष्टि में अभाव हो जाता है। समझ में आया ?

सबेरे आया था न ? मरण को प्राप्त होता है। आहाहा ! अमृतचंद्राचार्य का कलश और राजमल्लजी की टीका (में आया था)। भगवान ! तेरा जीवन तो अंदर आनंद और ज्ञानमय है। जीवन शक्ति से शुरू किया है न ? इस जीवन शक्ति में तत्त्वरूप शक्ति का रूप है और तत्त्व शक्ति में जीवन शक्ति का रूप है। इस एक-एक शक्ति में अपार बात है, आहाहा !

यह तत्त्वशक्ति तद्रूप भवन (स्वरूप है)। इसमें जीवन शक्ति का रूप है। इसलिये तत्त्व जो ज्ञानानंद स्वभाव उस रूप परिणमन करना और उस तरह जिना, यह तेरा जीवन है। शरीर में जीना और राग से जीना, यह तेरा जीवन - तेरा रूप ही नहीं, आहाहा ! भाषा तो देखो ! ओहोहो ! अमृतचंद्र आचार्य दिगंबर संत (है)। (उनके) एक-एक शब्द में (गंभीरता है)। ``**तद्रूप भवन**'' बस ! इतने में (कितना भरा है !) ``**तद्रूप भवन...**'' है ? आपके हिसाब की किताब में यह नज़र में आये ऐसा नहीं है। कुछ हाथ में आये ऐसा नहीं है। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि, प्रभु ! तद्रूप - तेरा रूप क्या ? रूप कहो कि स्वरूप कहो (एकार्थ है)। तेरा अपना रूप क्या ? क्या राग तेरा रूप है ? दया, दान, व्रत, विकल्प यह तेरा स्वरूप - रूप है ? शरीर - धूल, मिट्टी यह तेरा स्वरूप है ? आहाहा ! भगवान ! तेरा स्वरूप तो अनाकुल आनंद की रचना करे ऐसा वीर्य और अनाकुल (आनंद की) रचना करे, ऐसी तत्त्व शक्ति, तेरा तत्त्वरूप का भान होना - यह तेरी शक्ति है (स्वरूप है), आहाहा !

लोगों को यह समझ में नहीं आये इसलिये बेचारे खुद का विरोध करे। पर का (विरोध) कौन करे ? भाई ! समझ में आया ? हमने तो कभी मंदिर बनाओ, यह भी नहीं कहा। अभी कहा कि शास्त्र और पुस्तकें करो कि, जिससे लोगों के पास जाये

तो (कुछ) समझे। समझ में आया ? आहाहा ! अरे...! ये खीस्ती लोग एक रुपये का पुस्तक हो तो चार पैसे में देते हैं। खीस्ती लोग चार पैसे - एक आने में देते हैं। एक रुपये की चीज़ चार पैसे में (देते हैं)। प्रचार करने के लिये (देते हैं)। तो अभी तो यह सत् शास्त्रों का प्रचार करने का काल है, भगवान ! आहाहा !

भगवान आत्मा ! यहाँ ``**तद्रूप...**'' शब्द पड़ा है न ? तत् रूप - तो उसका तत् नाम उसका रूप (क्या) ? उसका रूप तो अतीन्द्रिय आनंद, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय श्रद्धा, अतीन्द्रिय शांति, अतीन्द्रिय स्वच्छता, अतीन्द्रिय प्रभुता आदि अनंत शक्तियाँ जो हैं - यह तद्रूप आत्मा है। आहाहा ! समझ में आया ?

संप्रदाय की दृष्टि में तो यह बात कहीं है नहीं। इसलिये लोगों को (यह बात) सुनने पर ऐसा लगे कि, ये कहाँ नया धर्म निकाला ? ये कोई नया धर्म निकाला होगा ? नया धर्म निकाला है ? अरे प्रभु ! नया नहीं है, प्रभु ! अनादि का वीतराग जिनेन्द्र प्रभु का यह मार्ग है। यह लुप्त हो गया है, आहाहा ! मार्ग तो मार्ग है। परंतु दृष्टि की विपरीतता से मार्ग लुप्त हो गया, आहाहा ! जिसमें अनंत शक्ति का नाथ दृष्टि में न आये, जिसमें अनंत अतीन्द्रिय ज्ञान-आनंद का स्वरूप ज्ञान की पर्याय में न आये, वह क्या क्रिया है ? (अर्थात् वह किस काम का ?) समझ में आाया ? बाकी तो बाहर की यह धूल पाँच-पच्चीस करोड़ वह सब शून्य है। आहाहा ! लखपति, करोड़पति और अरबपति (सब धूल है)। तेरी चीज क्या है ? यह तेरा स्वरूप है ? आहाहा ! दया, दान का, राग करता है, ये तेरा स्वरूप है ? आहाहा !

आहाहा ! चैतन्य प्रकाश का नूर ! चमत्कारी चैतन्य जिस की एक समय की पर्याय में तीनकाल-तीनलोक जानने में आये, ऐसी पर्याय का पिंड ज्ञान चमत्कार (स्वरूप) वस्तु, यह उसका रूप है। अतीन्द्रिय सुख और आनंद उसका रूप है और अतीन्द्रियशांति, चारित्र यानी अतीन्द्रिय वीतरागता, यह उसका रूप है। आहाहा !

प्रभु `**तद्रूप भवन...**' इतने शब्द में तो कितना भर दिया है ! दिगंबर संतों की वाणी - रामबाण वाणी है। कभी प्रेम से सुना नहीं। यह वाणी मिली नहीं और मिली तो प्रेम से सुनी नहीं, आहाहा ! यह तो सूक्ष्म बात है, सूक्ष्म है... ऐसा है और वैसा है, ऐसा करके निकाल दिया। आहाहा ! यहाँ कहते हैं, तद्रूप भवन अर्थात् कौंस में लिया है। चेतन का चेतनरूप होना। `**...चेतन चेतनरूप से रहता है, परिणमित होता है।**' क्या ? ज्ञानस्वरूपी भगवान, ज्ञान का समुद्र भरा है। जैसे समुद्र के किनारे बाढ़ आती है, तो वह समुद्र के पानी की बाढ़ आती है। ऐसे भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय ज्ञान और आनंद पड़ा है, तो इस पर दृष्टि करने से पर्याय में आनंद और ज्ञान की

बाढ़ आती है। समझ में आया? यहाँ तो ऐसी बातें हैं, भाई ! आहाहा !

अरे...! दुनिया में ऐसा लगे, `वाड़ा बांधी बेठा रे, पोतानो पंथ करवा ने' यह मार्ग ऐसा नहीं। संप्रदाय का नाम धराये, `हम ऐसे हैं और ऐसे हैं' अरेरे...! प्रभु ! तेरा रूप तो आनंदकंद है, नाथ ! तुझे खबर नहीं। तेरी दृष्टि में यह आनंदरूप आया नहीं। तेरी ज्ञान की पर्याय में द्रव्य स्वभाव का ज्ञान हुआ नहीं। आहाहा ! अनादि से लौकिक ज्ञान करके तो मर गया। अरे...! शास्त्र ज्ञान से भी आत्मा जानने में नहीं आता। आहाहा !

तद्रूप भगवान आत्मा ! आत्मा और तद्रूप यानी उसका स्वरूप। ज्ञान, आनंद, शांति, स्वच्छता, अनंत शक्तियाँ वही उसका स्वरूप (है)। उस स्वरूपरूप भवन, भवन नाम होना। आहाहा ! चैतन का स्वभाव चैतन्य के स्वभावरूप परिणमन में होना, यह तत्त्व शक्ति का स्वरूप है, आहाहा !

डाया तारुं डहापण त्यारे कहीए, ऐसा आया था न ? एक बार कहा था, आहाहा ! बहुत साल पहले की बात है। संवत् १९६४ की साल की बात है। हम दुकान पर (बैठते थे)। हमारी दुकान तो बहुत प्रसिद्ध थी। दो दुकानें थी (और) स्थानकवासी में हम मुख्य थे। इसलिये स्थानकवासी के कोई साधु आये तो हमारे यहाँ ठहरते थे। उस वक्त हमारी १८ वर्ष की उम्र थी। भरूच के स्टेशन के सामने धर्मशाला है। वहाँ साधु उतरे थे। (हम को) खबर नहीं कि, कहाँ उतरे थे ? तो गाँव में ढूँढ़ा। समय तो बहुत था तो हम मीराबाई का नाटक देखने गये। (एक) डायाभाई धोळशा वांकानेरवाले थे। वे नाटक करते थे और उसका पैसा लेते थे। वे मरते (समय) ऐसा बोले। `डाह्या तारुं डहापण त्यारे अमे कहीए के अत्यारे शांतिथी देह छोड़े तो' वह नाटक किया और उसका पैसा लिया (वह कोई डहापण (होशियारी) नहीं है)। आहाहा !

ऐसा यहाँ परमात्मा कहते हैं कि, तेरा डहापण-होशियारी तो तब कही जाये कि, निर्विकल्प आनंद को प्रगट करे तो तेरी होशियारी कहने में आती है, आहाहा ! समझ में आया ? बाकी तेरी होशियारी संसार बढ़ायेगी। पैसा साथ में नहीं आयेगा। दान में पैसे खर्च किये हो तो साथ में कुछ आयेगा कि नहीं ? पुण्य के परमाणु बंध जाये तो परमाणु साथ में आयेंगे। उसमें आत्मा में क्या (आया) ? समझ में आया ? कोई दान किया हो, २-५-१० लाख खर्चा कर के राग मंद किया हो तो पुण्य-शुभभाव (बंधे)। अशुभभाव तो चला गया। वहाँ परमाणु पड़ा रहा तो साथ में परमाणु आयेंगे। परिणाम तो नहीं आयेगा। आहाहा ! तो कहते हैं कि, भगवंत ! एकबार सुन तो सही, नाथ ! आहाहा ! अरेरे...! तेरी लक्ष्मी की, तेरे स्वरूप की तुझे खबर नहीं, आहाहा !

यहाँ तो कहा कि, `**तद्रूप भवनरूप ऐसी तत्त्व शक्ति। (तत्स्वरूप होनेरूप अथवा**

तत्स्वरूप परिणमनस्वरूप...)' यह भवन की व्याख्या कही। `(**...ऐसी तत्व शक्ति आत्मा में है। इस शक्ति से चेतन चेतनरूप से रहता है - परिणमित होता है।**)' आहाहा ! तत्स्वरूप रूप परिणमन नाम चेतन चेतनरूप से परिणमन करे। पर्याय में चेतन, आनंद और ज्ञानरूपी दशा, यह चैतन्य की दशा (है)। रागरूप होना यह चेतन की दशा ही नहीं। यह चेतन का रूप भी नहीं, आहाहा ! समझ में आाया ? यह शक्ति कल चली थी और आज आधा घंटा चली। कल तो एक घंटा चली थी।

अब, अतत्त्व (शक्ति लेते हैं). क्या कहते हैं ? `**अतद्रूप भवनरूप...**' अर्थात् रागरूप न होना, पुण्य के परिणामरूप न होना, पर द्रव्य, क्षेत्र, भावरूप न होना। समझ में आया ? तत्त्व शक्ति में अपना निर्मल द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से होना और अतत्त्व में पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से न होना (और) राग भाव से भी न होना, यह अतत्त्व शक्ति है। आहाहा ! यहाँ तो (ऐसा कहे) व्यवहार करो तो निश्चय होगा ! यहाँ तो कहते हैं कि, व्यवहार रूप न होना यह अतत्त्व शक्ति का स्वरूप है, आहाहा !

अनंत-अनंत शक्ति का भंडार, प्रभु ! तेरे भंडार में निधान पड़ा है। यह निधान इतना है कि, इसमें से केवलज्ञान निकालते हैं तो भी निधान खत्म नहीं होता। केवलज्ञान हो जाये तो भी निधान में कमी नहीं आती, आहाहा ! और निगोद में अक्षर के अनंतवें भाग में पर्याय रही है (तो निधान में कुछ बढ़ता नहीं)। निगोद समझे ? आहाहा ! यह लील-फुग, वनस्पति और ये लहसुन, प्याज इन सबके एक कण में असंख्य शरीर हैं और एक शरीर में अनंत जीव हैं। परंतु उस जीव का स्वरूप तो तद्रूप भवनस्वरूप है। आहाहा !

कल थोड़ा कहा था कि, जैसे नरक में स्वर्ग का सुख नहीं। यह लौकिक (सुख की बात) है। (आत्मिक) सुख (तो वहाँ) धूल में कहाँ था ? परंतु नारकी में भी, कोई (भी) नारकी का जीव (हो), दस हजार की स्थिति से ३३ सागर (पर्यंत) किसी को स्वर्ग का सुख बिलकुल नहीं। स्वर्ग के देव को नारकी का दुःख बिलकुल नहीं और परमाणु में राग की पीड़ा नहीं। (यहाँ) एक परमाणु (कहा), वैसे तो सारा स्कंध विभावरूप से परिणमित है। इसलिये परमाणु का दृष्टांत दिया है। यह स्कंध है न ? यह तो विभाविक पर्याय है। विभाविक समझे ? कर्मरूप पर्याय है यह विभाविक पर्याय है। (परमाणु में) कोई ऐसा गुण नहीं कि, कर्मरूप परिणमे। ऐसा गुण नहीं (है)। क्या कहा ? गुण हो तो उस की पर्याय होनी चाहिये। परंतु कर्मरूप विभाविक पर्याय है तो कोई (ऐसा) गुण नहीं कि, विभावरूप पर्याय होती है। ये विभाविक पर्याय गुण बिना स्वतंत्र होती है। क्या कहा ? समझ में आया ? (ऐसा) कोई गुण नहीं है। परमाणु में कर्म की पर्यायरूप परिणमन हो,

ऐसा परमाणु में कोई गुण नहीं। वह पर्याय में स्वतंत्र विभावरूप परिणमित होता है। आहाहा ! यह शरीर, वाणी, लक्ष्मी, पैसा ये स्कंध आदि धूल यह तो विभाव पर्याय है। आहाहा ! परंतु अनंत शक्ति संपन्न एक भिन्न परमाणु उसको कोई पीड़ा नहीं। जड़ को पीड़ा है ? ऐसे भगवान आत्मा ! आनंद के कंद में दुःख नहीं, राग नहीं, विकार नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

कल बहिन का (पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन) दृष्टांत दिया था न ? (बहिनश्री के वचनामृत में) बहिन कहती है। अग्नि को उधई नहीं होती। उधई समझते हो ? लकड़े में छोटे जीव होते हैं। बहुत मुलायम, सफेद (होती है)। धूप लगे तो जलकर मर जाये। ७५ की साल में हमने नजरों से देखा है। हम जंगल गये थे। बाहर जाते थे वहाँ जंगल बैठे थे। वहाँ धूलमें से बाहर निकली तो इतने में सूर्य का ताप लगा तो जलकर मर गई। उसे उधई कहते हैं। लकड़े में उधई होती है, आहाहा ! अग्नि को उधई होती है ? उधई का नाश कर दे, (ऐसा) अग्नि का स्वभाव है। आहाहा ! ऐसे भगवान आत्मा में आवरण होता है ? बहिन ने तीन शब्द इस्तेमाल किये हैं। जैसे अग्नि को उधई नहीं होती, कनक को काट नहीं - सोने में काट नहीं, वैसे भगवान (आत्मा को) आवरण नहीं, उणप नहीं और अशुद्धता नहीं।

यहाँ क्या चलता है ? अतत्त्व शक्ति (चलती है)। भगवान पूर्णानंद का नाथ ! उसमें अतत्त्वशक्ति पड़ी है तो उसका रागरूप होना, यह उसमें है ही नहीं। रागरूप नहीं होना, ऐसी उसकी शक्ति है। आहाहा ! समझ में आया ? भाग्यशालियों को सुनने मिले ऐसी बात है। ये सब धूल के (पैसे के) भाग्यशाली तो भांगशाली है। भांग (अर्थात्) तंबाकू। उसे भांग कहते हैं न ? (ये) सब पैसे के भाग्यशाली-वे भांगशाली हैं। यह तो ऐसी बात (है)।

प्रभु तो ऐसा कहते हैं, `भवी भागन जोग' भगवान की वाणी निकलती है, आहाहा ! यह वीतराग की वाणी (है)। बापू ! यह तो प्रभु तीनलोक के नाथ (की वाणी है)। आहाहा ! महावीर प्रभु तो मोक्ष पधारे। वे तो णमो सिद्धाणं में गये। सीमंधर भगवान बिराजते हैं। समझ में आया ? भगवान कुन्दकुन्द आचार्य संवत् ४९ में वहाँ (महाविदेह में) गये थे। आठ दिन रहे थे। आठ दिन साक्षात् वाणी सुनी है। (वहाँ से) आकर बाद में यह शास्त्र बनाया है। समझ में आया ? तो (यहाँ) अतद्रूप शक्ति कहते हैं कि, आहाहा ! रागरूप नहीं होना, विकाररूप नहीं होना, ऐसी इसमें अतत्त्व शक्ति है। आहाहा ! कहते हैं न ? व्यवहार श्रद्धा-देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा यह तो राग है। शास्त्र का पढ़ना विकल्प है - राग है। नौ तत्त्व की श्रद्धा और पंच महाव्रत के परिणाम, यह राग हैं। यहाँ तो कहते

हैं कि, व्यवहार रत्नत्रयरूप नहीं होना, यह अतत्त्व शक्ति है। आहाहा ! तो फिर यह कुटुम्बरूप, स्त्रीरूप, पुत्ररूप होना, मकान हमारा है, (ऐसा माने लेकिन) धूल में (भी तेरा) नहीं है। आहाहा ! अनादि का हैरान हो गया है। अपने को आप भूल के हैरान हो गया। तेरी चीज क्या है और स्वरूप क्या है ? प्रभु ! तुने कभी सुना नहीं। प्रेम से सुना नहीं, आहाहा ! आता है न ? '**तत्प्रतिप्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता**' राग से भिन्न यह भगवान त्रिलोकनाथ (आत्मा) रागरूप परिणमन करे (ऐसी) उसमें शक्ति नहीं। अपना आनंद और चेतनरूप परिणमन करने की शक्ति है और रागरूप परिणमन करने की शक्ति नहीं है। (ऐसी) अतत्त्वशक्ति है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ तो अभी ये चलता है कि, तुम दया, दान, व्रत, भक्ति करो तो उससे कल्याण होगा। अरे...प्रभु ! पररूप परिणमन करना (और उससे) स्वरूप परिणमन होगा (ऐसा मानना यह तो मिथ्यात्व है). आहाहा ! ऐसा कहते हैं कि नहीं ? व्यवहार करो, व्यवहार करते-करते निश्चय होगा, ऐसी सब प्ररूपणा चलती है। साधु ऐसा प्ररूपण करते हैं। पंडित लोग ये प्ररूपणा करते हैं। यहाँ के सिवाय के पंडित लोग (ऐसी प्ररूपणा करते हैं)। आहाहा !

'**अतद्रूप...**' है ? अतद्रूप यानी अपने स्वरूप के सिवा, अतद्रूप (अर्थात्) रागादिरूप नहीं होना, आहाहा ! शरीर, मिट्टी और जड़रूप तो नहीं होना, वह तो साधारण बात है। वह तो कभी तीनकाल में होता नहीं। परंतु रागरूप (तो) परिणमन है। पर्याय में राग - मिथ्यात्वरूप परिणमन है परंतु वह शक्ति का परिणमन नहीं। स्वरूप का परिणमन नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? नये आदमी को तो ऐसा लगे कि, ये क्या कहते हैं ? बापू ! मार्ग तो यह है, भाई ! आहाहा ! अतद्रूप (अर्थात्) रागरूप नहीं होना, यह अतद्रूप है, आहाहा ! चेतनरूप परिणमना यह तद्रूप है। रागरूप यानी अतद्रूप नहीं होना, यह इसका स्वभाव है। आहाहा ! तो यह पैसा करना (कमाना), स्त्री-पुत्र का पोषण करना, उसको राजी रखना, सारा दिन पाप...पाप... और पाप में पड़ा (है)। सारा दिन प्रपंच में (पड़ा है)। अतत्त्वशक्ति यानी उस रूप (जड़ और रागरूप) नहीं होना, ऐसी तेरे में शक्ति है, समझ में आया ?

''**अतद्रूप भवनरूप...**'' यानी कि रागरूप नहीं होना, ऐसी तेरे में शक्ति है, आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि, राग करो तो तेरा कल्याण होगा, गज़ब है, भाई ! तेरी मिथ्यादृष्टि का बड़ा ज़ोर है। जो स्वरूप में नहीं (है) ऐसी दृष्टिरूप तेरा परिणमन हो गया है, आहाहा ! समझ में आया ? कहते हैं, अतद्रूप भवन (अर्थात्) अतद् - जो उसमें नहीं (है)। उस रूप भवन नहीं (होना) - पररूप नहीं होना, ऐसी अतत्त्व शक्ति है, आहाहा ! एक-

एक शक्ति में भण्डार पड़ा है। चक्रवर्ती के नव निधान होते हैं तो उसमें (आत्मा में) क्या आया ? नव निधान होते हैं न ? यह निधान जड़ का - धूल का है। आहाहा ! यह तो चैतन्य का निधान (है)। अंदर अनंत - अनंत चैतन्य शक्ति का रत्नाकर, रत्न का आकर - दरिया भरा है, आहाहा ! समझ में आया ?

(उसका) माहात्म्य सुना नहीं। सुना तो रुचि में लिया ही नहीं, आहाहा ! शास्त्र का ज्ञान हुआ तो उसमें खुश हो गया, राजी हो गया कि, हमको (ज्ञान हो गया - समझ में आ गया)। परंतु वह ज्ञान, ज्ञान ही नहीं है, आहाहा ! शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, सत्य बोलना, यह सब तो राग है, आस्रव है, समझ में आया ?

``**अतद्रूप भवन...**'' (अर्थात्) पररूप नहीं होना, आहाहा ! ``**...ऐसी अतत्त्व शक्ति**'' है। ``(**तत्स्वरूप नहीं होनेरूप अथवा तत्स्वरूप नहीं परिणमनेरूप...**)'' क्या कहा समझे ? ``(**तत्स्वरूप नहीं होनेरूप...**)'' (यानी) पररूप नहीं होनेरूप ``(**...अतत्त्वशक्ति आत्मा में है।**)'' आहाहा ! भगवान (आत्मा में) यह शक्ति है कि, रागरूप नहीं होना, ऐसी शक्ति है। रागरूप होना ऐसी उसमें कोई शक्ति नहीं है। क्या कहा समझे ?

जैसे परमाणु में कर्म की पर्याय (रूप) होने का कोई गुण नहीं कि, कर्म की पर्याय होती है। (परमाणु की) पर्याय में अद्धर से गुण बिना विभाव पर्याय होती है। ऐसे आत्मा में ऐसी कोई शक्ति नहीं कि, रागरूप, विकाररूप, मिथ्यात्वरूप (परिणमन) हो। पर्याय में अद्धर से मिथ्यात्व आदि का परिणमन करता है। समझ में आया ? एक परमाणु में भी पीड़ा का जहाँ अभाव है तो तीनलोक के नाथ में विकार का त्रिकाल अभाव है, आहाहा !

श्रोता : (आत्मा में) विभाविक शक्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, (लेकिन) वह विभाव करे, ऐसा उसका अर्थ नहीं। विभाविक शक्ति का अर्थ - चार द्रव्य में नहीं है, ऐसी विशेष शक्ति उसका नाम विभाविक शक्ति (है)। विशेष शक्ति का नाम विभाविक शक्ति। विभाविक शक्ति नाम विभावरूप परिणमना, ऐसा है नहीं। उसका अर्थ ऐसा नहीं है।

श्रीमद् ने ऐसा कहा है, श्रीमद् ने लिखा है कि, विभाव शक्ति का अर्थ ऐसा नहीं है कि, विभावरूप परिणमना। परंतु चार द्रव्य में नहीं है ऐसी शक्ति को विभावशक्ति - विशेषपने कहने में आता है। परमाणु (अर्थात्) पुद्गल और जीव में यह खास विभाविक शक्ति है। बाकी के चार (द्रव्य में यह शक्ति) नहीं है। (बाकी के) चार जो हैं न ? धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल यह तो शुद्ध परिणमन (स्वरूप) त्रिकाल पारिणामिक भाव है। उसका द्रव्य भी पारिणामिक भाव, गुण पारिणामिक भाव (और) पर्याय (भी) पारिणामिक

भाव (स्वरूप है)।

१९९९ की साल में स्पष्ट किया था कि, आत्मा में कारणपर्याय है कि नहीं? नियमसार की १९ गाथा के व्याख्यान में आ गया है। एक कारण ध्रुव, कारणपर्याय आत्मा में है। (यह पर्याय) कैसी (है) ? कि जैसे धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल (है), उनके द्रव्य, गुण तो पारिणामिक एकरूप है परंतु उत्पाद - व्ययरूप परिणाम भी एकरूप है। चार द्रव्य में (ऐसा है)। समझ में आता है ? उत्पाद - व्यय (एक) सरीखा - एकरूप धारा चलती है, तो आत्मा में एकरूप उत्पाद - व्यय तो है नहीं। संसार दशा में विकार का उत्पाद् है और मोक्षमार्ग में कुछ शुद्ध पर्याय और कुछ अशुद्ध (पर्याय का) उत्पाद - व्यय है। सिद्ध में पूर्ण शुद्ध (पर्याय का) उत्पाद - व्यय है, तो (इस अपेक्षा से) एकरूप न रहा। चार द्रव्य में जैसे उत्पाद - व्यय एकरूप हैं, वैसे यहाँ एकरूप उत्पाद - व्यय न रहा। थोड़ी सूक्ष्म बात है। नियमसार की १९ गाथा पर व्याख्यान हुआ है। पुस्तक आ गयी है। क्या कहना है ? कि चार द्रव्य में उत्पाद - व्यय (है), (उसमें) ध्रुव तो ध्रुव है ही। परंतु उत्पाद - व्यय भी एक (रूप) धारावाही (है)। चार द्रव्य में कम, विपरीत, पूर्ण ऐसा भेद नहीं है। समझ में आया ? ऐसा व्याख्यान ! ऐसे भगवान आत्मा में संसार दशा में मलिनता का उत्पाद - व्यय है, मोक्षमार्ग में थोड़ा शुद्ध है और थोड़ा अशुद्ध का उत्पाद - व्यय है तो (इस अपेक्षा से) एकधारा न रही। उत्पाद - व्यय की धारा एकरूप न रही। वहाँ अंदर एकरूप धारावाही कारण ध्रुव पर्याय है। नियमसार में कारणशुद्धपर्याय आ गया है। ३३-३४ वर्ष हुए।

आत्मा में (एक) कारणशुद्धपर्याय है। कैसे ? उस चार (द्रव्य में) एकधारा है। यहाँ उत्पाद - व्यय में एकधारा नहीं। भगवान आत्मा का धारावाही सामान्य जो स्वरूप है उसकी एक विशेष ध्रुवपर्याय है। उसमें ध्रुव में उत्पाद - व्यय नहीं। (इसे समझने के लिये एक नकशा) बनाया था।

यहाँ तो क्या कहते हैं ? कि, आत्मा में उत्पाद् - व्यय की धारावाहि पर्याय नहीं है। चार (द्रव्य में) परमपारिणामिक तो द्रव्य और गुण (है)। और जो पर्याय है वह पारिणामिक भाव की पर्याय है। आत्मा में उत्पाद - व्यय में ऐसी पारिणामिक भाव की पर्याय एक सरीखी नहीं। अंदर जो सामान्य वस्तु है, इसमें - उत्पाद - व्यय में एक विशेष दशा, एकधारी अनादि अनंत ध्रुव कारण पर्याय है। उसको भगवान कारण पर्याय कहते हैं, आहाहा ! यह नियमसार की १५ गाथा में आता है। अभी बाहर में बात बैठे नहीं, उसमें यह (बात कहाँ बैठेगी ?) धारणा में मंथन करे नहीं, श्रवण करके उसका विचार करके मंथन से निर्णय करना, आहाहा ! समझ में आया ?

यह कारण पर्याय पवित्र है। जैसे समुद्र में ऊपर सपाटी है वह समुद्र की सपाटी है। वैसे भगवान आत्मा अनंत गुण (स्वरूप) ध्रुवरूप जो है, उसमें कारण पर्याय सपाटी जो है वह त्रिकाल अनादि एकरूप है। यह एकदम नयी बात है। पहले १९९९ की साल में व्याख्यान तो आ गया है। समझ में आया ? यह बात गुजराती है, हिन्दी नहीं है। गुजराती में (समझनेवाले) मुश्किल से निकले। क्योंकि बाहर में अन्य विद्वानों को (यह बात) नहीं बैठी थी। (वे ऐसा कहते थे), `ये तो एक पर्याय है, पर्याय है...' परंतु पर्याय कैसी ? एक कारणपर्याय ध्रुव है (उसका) नकशा बनाया था। ये नकशा नियमसार की १९ गाथा के व्याख्यान में डालना था। परंतु बड़े पंडितों को (बात) नहीं बैठी, इसलिये (ऐसा लगा कि) साधारण (आदमी को) नहीं बैठेगी। इसलिये नकशा बाहर रखा. नियमसार के प्रवचन में नहीं रखा।

प्रत्येक गुण की कारणपर्याय है। गुण त्रिकाली है। वैसे अंदर एक ध्रुव पर्याय भी कायम की अनादि अनंत उत्पाद - व्यय बिना की पर्याय है, आहाहा ! बाहर में समुद्र की जो सपाटी है ऐसी आत्मा में बाहर में यह उत्पाद - व्यय सिवा की कारण पर्याय अनादि अनंत है। (ऐसा) कभी सुना नहीं होगा। इसमें अतत्त्व शक्ति पड़ी है तो यह पर्याय का स्वभाव, विकाररूप नहीं होना, ऐसा स्वभाव है। समझ में आया ? आहाहा ! द्रव्य - गुण का तो स्वभाव ऐसा है कि विकाररूप नहीं होना परंतु यह कारण पर्याय है, वह भी विकाररूप नहीं हो, ऐसी उसकी शक्ति है। क्यों ? (क्योंकि), अतत्त्वशक्ति नाम की जो शक्ति है, यह द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्याप्ती है। यहाँ तो कारण पर्याय में तो (शुद्धता) है। परंतु अतत्त्वशक्ति का धरनेवाले भगवान पर दृष्टि पड़ते ही पर्याय में भी रागरूप नहीं होना, ऐसा अतत्त्व (शक्ति का) परिणमन हो जाता है। सूक्ष्म बातें (हैं), बापू ! आहाहा !

यह तो तीनलोक के नाथ जिनेन्द्रदेव (की वाणी है)। अभी तो बाहर में दया पालो, सामायिक करो, पोसा करो, प्रतिक्रमण करो (इसलिये सब हो गया, जाओ ! (परंतु) करना है वहाँ मरना है। आहाहा ! निहालभाई ने (सोगानीजी ने) डाला है न ? `करना सो मरना है' यह करो, यह करो, (यह सब) विकल्प है। उसमें चैतन्य जीवतर का मृत्यु होगा, आहाहा !

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं, चैतन्य - चैतन्यरूप परिणमन करते हैं परंतु ``(**- इस शक्ति से चेतन जड़रूप नहीं होता।**)'' कौंस में है अंदर ? आत्मा में अतत्त्व शक्ति है, उस शक्ति से चेतन जड़रूप नहीं होता, उसका अर्थ क्या ? कि भगवान आत्मा अतत्त्व शक्ति के कारण विकाररूप नहीं होता, आहाहा !

(ज्ञायक) जड़रूप नहीं होता है, ऐसा अर्थ लिया है। (ऐसा) कहीं आया है ? (समयसार) छट्ठी गाथा में आया है । ज्ञायक ! ज्ञायक भगवान आत्मा ! त्रिकाल ज्ञायक है। वह शुभ - अशुभ भावरूप हुआ ही नहीं। क्योंकि शुभाशुभ भाव जड़ है, ऐसा लिया है। जयचंदजी पंडित ने कौंस में डाला है, शुभाशुभ भाव जड़ है। ज्ञायक, जड़रूप कभी हुआ ही नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? और शुभाशुभ (भावरूप) हो जाय तो जड़ हो जाये। आहाहा ! शुभ और अशुभ राग अचेतन है। आत्मा की शक्ति से खाली है। चैतन्य के नूर के - तेज का पुर का पुण्य और पाप भाव में अभाव है, आहाहा !

अब स्पष्टीकरण ज्यादा आता है, आहाहा ! लोग विरोध करते हैं न ? जितना विरोध करते हैं उतना स्पष्टीकरण बढ़ता जाता है। बापू ! यह मार्ग है, भाई ! तेरे हित की बात है, आहाहा ! तेरे द्रव्य में, गुण में, कारणपर्याय में भी (अतत्त्व नाम की एक) शक्ति है। अतत्त्व (अर्थात्) रागरूप न होना, व्यवहार रत्नत्रयरूप न होना, ऐसी तेरी एक शक्ति है। आहाहा ! जैसे कहा न ? (परमाणु में) कर्मरूपी पर्याय होती है (तो) परमाणु में कोई गुण नहीं है कि, गुण के कारण (कर्मरूपी) पर्याय होती है। नयी पर्याय अद्धर से होती है। ऐसे आत्मा में कोई शक्ति नहीं है कि, विकाररूप हो। पर्याय में से विकार उत्पन्न होता है। पर्याय दृष्टिवाले को पर्याय दृष्टि में, स्वभावदृष्टि को छोड़कर विकार होता है, आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बापू ! आहाहा ! ऐसा मार्ग वीतराग के अलावा कहीं नहीं है और उसमें भी दिगंबर संतों के सिवा, ऐसी बातें किसी ने कही नहीं हैं, आहाहा !

``(**...इस शक्ति से चेतन जड़रूप नहीं होता।**'' उसका अर्थ क्या ? रागरूप होना वह जड़रूप होना है, आहाहा ! क्योंकि दया, दान, व्रत, भक्ति का जो राग है, उसे तो जीव अधिकार में अजीव कहा और कर्ता - कर्म अधिकार में उसे संयोगी भाव कहा। (वह) स्वरूप भाव नहीं। संयोगी भाव (माने) संयोग के कारण से उत्पन्न हुई (ऐसी) संयोगी चीज़ है। उसका स्वभाव नहीं। कर्ता - कर्म (अधिकार की) ६९-७० गाथा (में आया है)। समझ में आया ? सूक्ष्म पड़े, लेकिन बापू ! यह समझने जैसा है, भाई ! अनादिकाल से दुःखी होकर मर गया है, आहाहा !

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का ७०० वर्ष का जीवन रहा। उसके एक श्वासोश्वास का फल इतना मिला कि, इस वक्त सातवीं नरक में ३३ सागर (की आयु स्थिति में) है। ऐसे हीरों के ढ़ोलिये (हो)। ढ़ोलिये कहते हैं न ? (ढ़ोलिया माने पलंग)। हीरे के पलंग पर सोता था। १६ हज़ार देव सेवा करते थे। परंतु मिथ्यादृष्टिपने में आत्मा को भूलकर इतने पाप किये कि, जिसके एक श्वास के फल में ११ लाख, ५६ हज़ार, ९७५ पल्योपम का (दुःख भोग रहा है)। एक श्वास का फल इतना (आया) ! क्या कहा ? ७०० वर्ष

में जो श्वास होते हैं, (तो उसका फल कितना ?) एक श्वास के फल में ११ लाख, ५६ हज़ार, ९७५ पल्योपम का दुःख (भोगता है)। एक श्वास के फल में ११ लाख पल्योपम का (दुःख भोगता है)। एक पल्य के असंख्य भाग में असंख्य अबज वर्ष (जाते हैं), बापू ! तू कितना दुःखी हुआ इसकी तुझे खबर नहीं, भाई ! समझ में आया ? ७०० वर्ष चक्रवर्ती नहीं थे। आयुष्य ७०० (वर्ष का) था। बाद में बड़ी उम्र में चक्रवर्ती हुए। समझ में आया ? परंतु सारे ७०० वर्ष के श्वास गिने तो भी उसके फल में इतने पल्योपम के दुःख (भोगता है)। बापू ! और यहाँ आत्मज्ञान हो तो अनंतकाल में अनंत आनंद रहे उतना उसमें फल है। विशेष कहेंगे... !!

❖ ❖ ❖

भाई ! तू एकबार कुतूहल तो कर ! भगवान तेरे इतने-इतने बखान करते हैं तो तू है कौन ? तू आनंद का सागर है - परमानंद स्वरूप है - अनंत-अनंत गुणों का (गोदाम) भंडार है - अतीन्द्रिय आनंद का दरिया है - सिद्ध - समान शुद्ध है - तेरे इतने-इतने बखान (प्रशंसा) करते हैं; ऐसा तू परमात्म-स्वरूप है कौन ? - इसका एक बार कुतूहल कर देख तो सही। भाई ! महा कष्ट उठाकर-मरकर, तू कुतूहल करके देख। इन शरीरादि का पड़ौसी होकर आत्मा का अनुभव करे तो तेरा आत्मा आनंद-विलास रूप दिखेगा, और पर-द्रव्य का मोह तुरंत छूट जायेगा।

(परमागमसार -४७९)

❖

अरे भाई ! सुन...सुन ! हम तो आत्मा के दर्शन करके यह बात करते हैं। भगवान आत्मा सदा ही आनंदमय, सदा ही वीर्यमय, सदा ही शिवमय - ऐसा परमात्मतत्त्व है। उसके संदर्भ में दया-दान आदि करने की कहने में, तो लज्जा आती है। अरे ! तू `इतना महान' परमात्मस्वरूप सदा ही कल्याणमय है कि तुझमें ध्यान करने की कहने में, भी लज्जा आती है।

(परमागमसार - ५०१)

प्रवचन नं. २७
शक्ति-३१, ३२, ३३ दि. ०६-०९-१९७७
अनेकपर्यायव्यापकैकद्रव्यमयत्वरूपा एकत्वशक्तिः।।३१।।
एकद्रव्यव्याप्यानेकपर्यायमयत्वरूपा अनेकत्वशक्तिः।।३२।।
भूतावस्थत्वरूपा भावशक्तिः।।३३।।

समयसार, शक्ति का अधिकार (चलता है)। ३० वीं शक्ति चली। अतत्त्व शक्ति आ गई न ? कल उसका अर्थ आ गया। पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव है - वह आत्मा में अतत्त्व है। यह शक्ति पर के अभाव स्वरूप है। तत्त्व शक्ति अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अस्ति है। यह तत्त्व शक्ति (हुई)। और परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की नास्ति है। यह अतत्त्व शक्ति (है)। रात्रि को प्रश्न हुआ था। समझ में आया ?

बात यह है कि, अतत्त्व शक्ति और तत्त्व शक्ति दोनों शक्ति परस्पर विरुद्ध हैं। वह तो पहले आ गया कि, (आत्मा में) विरुद्ध धर्मात्मक शक्ति है। एक विरुद्धधर्मात्मक (नाम की) शक्ति है कि, स्वरूप से रहे और पररूप से नहीं, ऐसी विरुद्धधर्मत्व शक्ति है। परंतु यह शक्ति गुण है। विरुद्ध शक्ति यह गुण है, तो इस गुण की दृष्टि करने से, गुण - गुणी का भेद छोड़कर गुण और गुणी का भेद - लक्ष छोड़कर, गुणी पर की अभेद दृष्टि (होनेसे) यह तत्त्व, अतत्त्व, विरुद्ध शक्ति का पर्याय में परिणमन आता है। अपने से है और पर से नहीं, ऐसी पर्याय में परिणति आती है, आहाहा ! समझ में आया ?

अनुभव में ऐसा कहते हैं कि, इस अनुभव में ध्याता, ध्यान या ध्येय का विकल्प नहीं है, आहाहा ! वहाँ शास्त्रज्ञान भी नहीं है। वहाँ तो भगवान आत्मा अपने स्वरूप है

और परस्वरूप नहीं, ऐसी विरुद्ध शक्ति का परिणमन अस्तिरूप से है और पर से नास्ति (है), ऐसी पर्याय में परिणति है। समझ में आया ? ऐसी तत्त्वशक्ति के परिणमन में भी अपनेरूप से अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से (परिणमन) है। यहाँ `है' ऐसा विकल्प, यहाँ (अनुभव में) नहीं। (ऐसा निर्विकल्प) परिणमन (है)। समझ में आया ? और अतत्त्व शक्ति का परिणमन (ऐसा है कि) पर्याय में वीतरागता का वेदन होना। पर रागादि का अभावरूप परिणमन और वीतरागभाव का सद्भावरूप परिणमन (होना, यह अतत्त्व शक्ति का स्वरूप है)। आहाहा ! ये समझे बिना पंचमहाव्रत, व्रत और तप सब (बेकार हैं)।

अध्यात्म पंचसंग्रह में ऐसा लिया है कि, घेंटा (भेड़) भी मुंडन करवाते हैं। घेंटा समझे ? जिसमें से ऊन होता है न (उसे घेंटा कहते हैं)। और नग्न तो पशु भी रहते हैं और परिषह भी सहन करते हैं तो इसमें क्या आया ? समझ में आया ? अपना भगवान पूर्णानंद का अस्तित्व, मौजूद चीज़ पर के अभाव स्वभाव (स्वरूप) है। भाव-अभाव बाद में आयेगा। यहाँ तो अभी परद्रव्य, क्षेत्र, काल भाव (रूप) तत्त्व का अतत्त्व, उस तत्त्व का अतत्त्व (स्वरूप निज स्वभाव) है, पर रूप नहीं होना, इतनी बात है। भाव - अभाव शक्ति अलग आयेगी। समझ में आया ? इसके अनुभव के पहले जब विकल्प आया, तो इस नयपक्ष को भी छोड़कर, चैतन्य निर्विकल्प का आनंद का वेदन होना, यह चीज़ है। ऐसी बातें हैं। बाहर के दान, दया, शरीर का ब्रह्मचर्य, अपवास, तपस्या आदि ये सब व्यर्थ क्लेश हैं, आहाहा !

भगवान चिदानंद प्रभु ! (बिराजमान हैं)। वर्तमान में पर्याय के अंतर में (उस ओर) झुकना और उसमें एकाग्र होने से आनंद का स्वाद आना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यक्ज्ञान है, समझ में आया ? और इसके बिना भव का छेद नहीं होगा। लाख दान करे, अपवास करे, तपस्या करे (उससे) भव छेद नहीं होगा, आहाहा ! सम्यग्दर्शन के बिना भव छेदन होगा नहीं, आहाहा !

अब आत्मा में एक एकत्व नाम का गुण है। है ? ``**अनेक पर्यायों में व्यापक...**'' गुण और पर्यायों के भेद में द्रव्य का व्यापकपना, ऐसा एकपना यह उसका गुण है। समझ में आया ? कलशटीका में आया था ``मैं एक हूँ। सर्व व्यापक द्रव्य में मैं एक हूँ।'' यह बराबर है। परंतु वहाँ एक हूँ ऐसे विकल्प का पक्ष छुड़ाया है। समझमें आया ? यहाँ तो एकत्व गुण का (धारक) गुणी का आश्रय लेने को एकत्व शक्ति कहने में आयी है। आहाहा ! समझ में आया ?

४७ नय में भी एक-अनेक आया है। एक-अनेक तीन प्रकार से है। यहाँ एक-अनेक, कलशटीका में एक-अनेक और ४७ नय में एक-अनेक (है)। वह दूसरी चीज़

(है)। वह धर्म अपेक्षा से है। जैसे अग्नि का बड़ा ढ़ेर हो तो इसमें सब अकेला अग्निपना है। वैसे अद्वैत (अर्थात्) आत्मा का ज्ञान और लोकालोक का ज्ञान (ऐसा) एकरूप ज्ञान (यह) अद्वैत है। अद्वैत नय लिया है। अद्वैत यानी एक, अद्वैत यानी दो नहीं। आहाहा ! दो नहीं यानी एक (लेना। तीन, चार, पांच नहीं)। वेदांत अद्वैत कहते हैं न ? वेदांती (एक) अद्वैत है, ऐसा कहते हैं। उसका अर्थ कि, द्वैत नहीं - एक है। परंतु एक (कहते) हैं। (उसकी) बात झूठी है। यहाँ तो अद्वैत का अर्थ जैसे अग्नि ईंधन से एकरूप होता है (वैसे)। २४ वां नय है। ``**आत्म द्रव्य ज्ञानज्ञेय - अद्वैतनय से...**'' ज्ञान - ज्ञेय अद्वैत नय से (अर्थात्) ज्ञान - ज्ञेय अद्वैतरूप नय से, दो का एकत्व हो जाना। ज्ञेय का ज्ञान और ज्ञान का ज्ञान (इस तरह दोनों का एक हो जाना)। ज्ञेय तो ज्ञेय में रह गया। परंतु ज्ञेय का ज्ञान और आत्मा का ज्ञान, यह अद्वैत हुआ। अरे...! ऐसी बातें। ``**आत्मद्रव्य ज्ञानज्ञेयद्वैतनयसे, पर के प्रतिबिंबों से संपृक्त...**'' (दर्पण यानी) आयना, शीशा - शीशा कहते हैं न ? जो पर चीज़ है उससे ``**...संपृक्त दर्पण की भाँति अनेक हैं** (**अर्थात् आत्मा ज्ञान और ज्ञेय के द्वैतरूपनय से अनेक हैं, जैसे पर - प्रतिबिंबों के संगवाला दर्पण अनेकरूप है।**)'' वैसे भगवान आत्मा ज्ञान में ज्ञेय के संग से, (उसमें) ज्ञान तो अपना हुआ परंतु ज्ञेय का निमित्त है तो संग हुआ, (ऐसा कहा)। (अद्वैतनय में) ईंधन की भाँति एकरूप हुआ और इस (द्वैतनय में) अनेकरूप हुआ। ज्ञान और ज्ञेय (ऐसे दो हो गया)। दर्पण में जैसे प्रतिबिंब होता है (उसमें) प्रतिबिंब और दर्पण (ऐसे दो) द्वैत हो गया, आहाहा ! वैसा भगवान आत्मा सर्वगत (है)। सर्वगत कहा न ? आत्मा सर्वगत है। यह नय भी उसमें आया है। पंचाध्यायी में इस सर्वगत (नय को) नयाभास कहा है। समझ में आया ?

यहाँ एक अपेक्षा से कुंदकुंद आचार्य ने सर्वगत कहा। सर्वगत (अर्थात्) सर्व चीज़ों का पूर्ण ज्ञान हो जाता है, इस अपेक्षा से (आत्मा) सर्वगत है। समझ में आया ? सर्वगत नाम पर में व्यापक हो जाता है, ऐसा सर्वगत का (अर्थ) नहीं। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, ``**आत्मद्रव्य ज्ञानज्ञेयद्वैतनय से, पर के प्रतिबिंबों से संपृक्त...**'' (बाहर जल और अग्नि है तो) दर्पण में अग्नि और जल दिखते हैं। बाहर बर्फ और अग्नि है तो इसका प्रतिबिंब दिखता है। अंदर कोई बर्फ और अग्नि नहीं है। वह तो दर्पण की अवस्था है। समझ में आया ? ऐसे ज्ञान - ज्ञेय द्वैत नय से (अर्थात्) दो रूप से (यानी) एक ज्ञेय का ज्ञान और (दूसरा) अपना ज्ञान, ऐसे दो रूप हो गये। इस अपेक्षा से अनेक है। आहाहा ! कलशटीका में एक-अनेक आया, नय में एक-अनेक आया, इस चलते अधिकार में एक-अनेक आया। (यह) तत्त्व विशाल है, बापू ! आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, ``**अनेक पर्यायों में व्यापक...**'' भगवान आत्मा ! अनेक गुण और

पर्यायों में व्यापकरूप से, एक द्रव्यमयता रूप (है)। है ? ``**...व्यापक ऐसी एकद्रव्यमयतारूप...**'' एक द्रव्यस्वरूप है। ऐसी एकत्व शक्ति है। आहाहा ! यह गुण है। यह एकत्व शक्ति गुण है। उसकी पर्याय होती है और द्वैत और अद्वैत (नय) ये गुण नहीं, यह धर्म है। उसकी पर्याय होती है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! अपेक्षित ज्ञान चारों ओर से वस्तु स्थिति सिद्ध करता है। और सम्यक् वेदन के बिना जितना (भी) काय क्लेश करे, व्रत करे, शास्त्र पढ़े, सब संसार है, आहाहा ! समझ में आया ? भगवान ! अपनी एकत्व शक्ति सर्व पर्यायों में व्यापकता, प्रसरना, फैलना उस रूप एक द्रव्यमय (शक्ति है)। एक द्रव्यमय (कहा), एक द्रव्यवाला ऐसा नहीं (कहा)। एक द्रव्यमय (एकत्व शक्ति है)। आहाहा ! अपने सर्व गुण - पर्यायों में व्यापक, ``**...ऐसी एकद्रव्यमयतारूप एकत्व शक्ति।**'' यह एकत्व शक्ति अनंत गुणों में व्यापक है। क्या कहा ? समझ में आया ? ज्ञानगुण में भी एकत्व का रूप है। तो ज्ञान अपने में एकरूप होता है। समझ में आया ? आहाहा ! उसको यहाँ एकत्व शक्ति कहते हैं। आहाहा !

अब दूसरा बोल। ३१ शक्ति में एकपना (कहा)। वेदांत कहते हैं, वह एकपना नहीं। यहाँ तो अपने गुण - पर्याय में व्यापकपना ऐसा, एक (द्रव्य)मय (कहना है)। समझ में आया ? आहाहा ! आचार्यों ने शक्ति का (वर्णन करके) गज़ब काम किया है !

श्रोता : अनेकपना रखकर एकत्व है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (हाँ), अनेकपना रखकर एकत्व है। अनेकपना अभी (आगे) आयेगा। समझ में आया ? पहले लिया न ? कि ``**अनेक पर्यायों में व्यापक...**'' ऐसे लिया। सर्व द्रव्यों में व्यापक होकर एक, ऐसा नहीं लिया है, आहाहा ! अपनी अनेक पर्यायें, अपने भेद, अनंत गुण की (निर्मल) पर्यायों (में व्यापक ऐसी एकत्व शक्ति है)। यहाँ निर्मल (पर्याय की) बात है। यहाँ मलिनता की बात नहीं है। अपनी अनंत पर्यायों में व्यापक - प्रसरता, ऐसी एक द्रव्यमय एकत्वता, एकत्व (अर्थात्) एकपना की शक्ति है। समझ में आया ?

शक्ति का ज्ञान करना परंतु बाद में अनुभव में तो शक्ति और शक्तिवान का भेद भी नहीं, आहाहा ! अभेद की दृष्टि होने से पर्याय में आनंद का स्वाद आना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और (सम्यक्) ज्ञान है। आहाहा ! शास्त्रज्ञान कितना भी हो, अभवी को नव पूर्व की लब्धि हो जाती है (लेकिन वह सम्यक्ज्ञान नहीं है)। समझ में आया ? एक बार कहा था कि, अभवी को (अंगपूर्व का) ज्ञान है परंतु ज्ञान परिणति नहीं। ११ अंग और ९ पूर्व पढ़े तो भी ज्ञान परिणति नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? ज्ञान परिणति तो उसे कहते हैं कि, ज्ञायक स्वभाव पर दृष्टि (करने से) अभेदरूप से ज्ञान की पर्याय ज्ञान को स्पर्श करके प्रगट होती है, उसका नाम ज्ञान परिणति - सम्यक्ज्ञान दशा, धर्मज्ञान,

धर्मी का ज्ञान कहते हैं। अरे...! ऐसा सब कहाँ सीखने जाये ?

श्रोता : यह समझे बिना धर्म नहीं होता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होता। यह समझे बिना (नहीं होता)।

श्रोता : पशु को होता है, उसे कहाँ कुछ आता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पशु है, परंतु उसके भाव में सब है। ''मैं आनंद हूँ और राग उत्पन्न होता है वह दुःख है'' वहाँ दुःख और आनंद का भेदज्ञान है। तिर्यंच को (तत्त्व के) नाम भले नहीं आते हो (लेकिन उसे भान है)। मोक्षमार्ग प्रकाशक में वह तो लिखा है - तिर्यंच को जीव, अजीव, पुण्य, पाप आदि (तत्त्व के) नाम नहीं आते हैं। परंतु यह आत्मा आनंद स्वरूप (है), स्वभावरूप आनंद (है)। पर्याय में आनंद प्रगट हुआ वह संवर और निर्जरा हुई। संवर, निर्जरा का नाम नहीं आता हो (लेकिन) भावभासन (है)। अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप भगवान के सन्मुख होकर, निमित्त, राग और पर्याय का भी आश्रय छोड़कर, त्रिकाली ज्ञायक भाव का आश्रय करने से आनंद का स्वाद आता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म है, आहाहा ! ऐसी बात है।

आनंदघनजी कहते हैं। 'आतम अनुभव रस कथा प्याला पीया न जाय, मतवाला तो ढळी पड़े, नीमता पड़े पचाय।' आहाहा ! 'आतम अनुभव रस कथा' (अर्थात्) राग से भिन्न निर्विकल्प वेदन उसकी बात। 'आतम अनुभव रस कथा, प्याला पीया न जाय' अतीन्द्रिय आनंद का प्याला वह साधारण (मनुष्य से) पीया न जाये। आहाहा ! शास्त्र ज्ञान का अभिमान, दया, दान, व्रत का अभिमान करके (ऐसा मानते हैं कि) यह मेरी क्रिया है। उसे अनुभव नहीं होता, आहाहा ! 'मतवाला तो ढळी पड़े' हम राग करते हैं, व्रत पालते हैं, अपवास करते हैं, ऐसा मतवाला तो ढ़ल जाता है। अनुभव से बाहर निकल जाता है। 'नीमता पड़े पचाय' पर की ममता रहित अपने स्वरूप का आश्रय करता है। ऐसी बात है, समझ में आया ?

पशु होता है न ? उसको खीले से बांधते हैं। खीला समझे ? खूँटा (कहते हैं)। (उससे बांधते हैं तो) घूम नहीं सकता। खूँट छोड़ देते हैं तो घूमता है। यहाँ आत्मा में अंदर आनंद का खूँटा लगा दिया, वह अब परिभ्रमण नहीं करेगा, आहाहा ! खूँटे से बांध दिया। समझ में आया ? अंदर भगवान आत्मा ध्रुव...ध्रुव... अतीन्द्रिय आनंद का खूँटा है, आहाहा !

ध्रुव को ध्येय बनाकर आहाहा ! इसका अर्थ क्या है ? कि, 'मैं यह ध्रुव हूँ' ऐसा भेद करना, ऐसा भी नहीं है। फक्त वर्तमान पर्याय परसन्मुख है, उसे छोड़कर, नयी पर्याय स्वसन्मुख होती है, तो उसका अर्थ यह है कि, सामान्य ध्रुव पर पर्याय गई।

लक्ष (गया)। ऐसा कहने में आता है। बाकी `यह ध्रुव है, इसलिये ध्यान करता हूँ' ऐसा विकल्प है, वह तो भेद है। समझ में आया ? आहाहा ! पशु को बांधा नहीं होवे तो घूमता है और बांधा हो तो एकरूप (एक स्थान पर) रहे। घूमता नहीं।

यहाँ कहते हैं कि, छूटा (अर्थात्) आत्मा से राग भिन्न (है)। उसकी एकत्वबुद्धिवाला चार गति में घूमता है, आहाहा ! समझ में आया ? राग से भिन्न अपना निज आनंदकंद, प्रभु ! उसमें जहाँ दृष्टि लगाई (उसने) आत्मा को खूँटे से बांध दिया। यहाँ (गुजराती में) खूँटे को खीला कहते हैं और दूसरा (खूँटे का अर्थ) खूँटे नहीं (खत्म न होना)। ऐसी चीज़ प्रभु ! भगवान आत्मा है। आहाहा ! यहाँ तो ऐसी बातें हैं, भाई ! आहाहा !

(यहाँ) कहते हैं कि, ``**अनेक पर्यायों में व्यापक...**'' (अनेक पर्याय कहकर) पर्याय सिद्ध तो करी। अनेकपना है तो सही। समझ में आया ? द्रव्य एक, गुण अनंत (और) पर्याय अनंत, ऐसा (भेद) है। (भेद) नहीं है, ऐसा नहीं। आहाहा ! अनेक पर्यायों में प्रसरना, व्याप्त होना, विस्तार होना। ``**...ऐसी एकद्रव्यमयतारूप एकत्व शक्ति।**'' परंतु वस्तु एक द्रव्यमय है। आहाहा ! शक्ति का वर्णन बहुत सूक्ष्म है। यहाँ तो आत्मा निर्विकल्प आनंदकंद प्रभु है, ऐसा वेदन करना यह चीज़ है, आहाहा ! बाकी तो सब फोगट (व्यर्थ) है। पुण्य - पाप से रहित भगवान (है), यह पूरी भगवान की वाणी का सार है। ये क्रियाकांड, व्रत, ये सब पुण्य - पाप से मेरा भगवान भिन्न है, समझ में आया ? भगवान तो आनंद का नाथ (है और) ऐसे भिखारी के जैसे (घूमता है)। मुझे पैसे चाहिए, स्त्री चाहिए, कुटुंब चाहिए, ये चाहिए, वह चाहिए, भिखारी (है)।

उसमें (अध्यात्म पंचसंग्रह में) दृष्टांत दिया है कि, नग्न तो पशु भी घूमते हैं और बाल तो घेंटा भी (उतारते हैं)। समझ में आया ? तो उससे आत्मा को क्या लाभ है ?

एकत्व शक्ति यह गुण है और (प्रवचनसार में) जो अद्वैतपना कहा, वह एक अपेक्षित धर्म है। (४७) नय में ईंधन का दृष्टांत देकर ज्ञान - ज्ञेय अद्वैत (कहा)। वह तो एक अपेक्षित धर्म है। समझ में आया ? और एक-अनेक कलशटीका में २० (नंबर के) कलश में आया। अपने २० (कलश) चलता है न ? यह एक-अनेकपना उसका स्वभाव है। पर्याय अपेक्षा से अनेकपना भी स्वभाव है और एकपना (भी) द्रव्य की अपेक्षा से स्वभाव है। परंतु विकल्प का पक्ष है, वह छुड़ाते हैं। समझ में आया ? यहाँ एकत्व के अर्थ में विकल्प की अपेक्षा से (अर्थ) नहीं है। यह तो भगवान में एकत्व नाम का गुण है तो द्रव्यदृष्टि करने से एकत्व धर्म में एकत्वपना का परिणमन होता है। सारा अनंत गुण में - अनंती शुद्ध, शुद्ध पर्याय परिणमन में आती है, आहाहा !

यह अनेक शक्ति प्रत्येक (गुण में) व्यापक है। इस शक्ति में ध्रुव उपादान और

क्षणिक उपादान दोनों हैं। एकत्व शक्ति कायम है। उसका नाम ध्रुव उपादान परंतु क्षणिक में (पर्याय में) उसका परिणमन होता है, (उसका) नाम क्षणिक उपादान (है)। परिणमन बिना ध्रुव शक्ति की यथार्थ प्रतीति होती नहीं। समझ में आया ? एकत्व शक्ति का भी परिणमन (हुए) बिना, यह एकत्व शक्ति (और यह) एकत्व शक्ति का धरनेवाला भगवान आत्मा है, ऐसा परिणमन बिना ख्याल नहीं आता। सत्ता का जब परिणमन में स्वीकार आता है तो `सत्ता है' ऐसी कबूलात आती है, आहाहा ! ऐसा सूक्ष्म मार्ग (है)।

अब अनेक शक्ति। ``**एक द्रव्य में व्याप्य जो अनेक पर्याय...**'' क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा ! एक द्रव्य उसमें व्याप्त - एक द्रव्य से व्याप्त अनेक पर्यायें, भाषा देखो ! अपने एक द्रव्य में व्याप्त अनेक पर्यायें। है अनेक शक्ति ? अनेक शक्ति उसका गुण है, आहाहा ! क्योंकि गुण और पर्यायरूप परिणमना है तो अनेक नाम की उसकी शक्ति - गुण है। अनेकपना उसका गुण है।

वेदांत तो वहाँ तक कहता है कि, आत्मा अनुभव करे ? आत्मा और अनुभव (ऐसी) दो चीज़ हो गई। लोग उसका भी निषेध करते हैं। समझ में आया ? वेदांत का साधु मिला था तब बहुत बार चर्चा हुई है। बहुत साल पहले की बात है। एक भाई ने प्रश्न किया था। भक्तामर में २४ नंबर का श्लोक आता है। अव्यय है, अक्षय है, विभु है। विभु का अर्थ समझे ? (भक्तामर में ऐसा आता है कि) `तुं आद्य, अव्यय, अचिंत्य, असंख्य विभु' गुजराती में है। हे ना ! तू आद्य, अव्यय, (अर्थात्) नाश बिना का (है)। अचिंत्य (अर्थात्) चिंतवन नहीं हो, (ऐसे हो), असंख्य विभु (हो)। `छे ब्रह्म इश्वर, अनंत अनंगकेतु' आप ब्रह्मा हो, आप विष्णु हो (इस प्रकार) परमात्मा की स्तुति करते हैं। लोग जो ब्रह्मा - विष्णु कहते हैं (वह बात नहीं है)। परंतु जो केवलज्ञान को प्राप्त होकर, (जिन्होंने) जळहळ (चैतन्य) ज्योति प्रगट करी, (तो) प्रभु ! आप ही ब्रह्मा, आप ही विष्णु (और) आप ही शंकर हो। समझ में आया ? अनंग केतु ! आहाहा ! पहले मूल श्लोक कंठस्थ किये थे। `योगीश्वर विदित योग अनेक एक' प्रभु ! आप अनेक भी हो और एक भी हो। इसमें कुदरती आ गया। `कहे छे तने विमल ज्ञानस्वरूप संत' आप विमल ज्ञान के पिंड हो, ऐसा संतों कहते हैं। प्रभु ! अकेले ज्ञान का पुंज (है)।

`चिद्रूप अहं' (ऐसा) आता है ? चिद्रूपो अहं तत्त्वज्ञान तरंगिणी में आता है। समझे ? `चिद्रूपो अहं' वहाँ (यह) एक शब्द बारंबार आता है। चिद्रूपो अहं (अर्थात्) मैं तो ज्ञान स्वरूपी हूँ। राग, पुण्य और संसार स्वरूप मेरे में है नहीं। चिद्रूपो अहं - ऐसा पाठ है।

(अध्यात्म पंचसंग्रह - ज्ञानदर्पण - १८२) `**आग तै पतंग यह जल सेती जलचर,**

जटा के बढ़ाये सिद्धि है तो बट धरे हैं' (बट = वट वृक्ष) जटा बढ़ाकर सिद्धि होती हो तो वड (वट वृक्ष) को जटा बहुत होती है '**आग तै पतंग यह जल सेती जलचर, मुंडन तैं उरणिये नगन रहे तैं पशु,**' उरणिये अर्थात् घेंटा। पेड़ भी कष्ट को सहन करते हैं। ठंडी, गरमी (सब सहन करते हैं)। आहाहा ! उससे क्या हुआ ? '**कष्ट को सहे ते तरु, कहुं नहीं तरें हैं,**' उससे कोई तैरते नहीं। आहाहा ! '**पठन तैं शुक**' (अर्थात् बहुत) शास्त्र पढ़े; तो शुक (पोपट) भी पढ़ते हैं आाहाहा ! '**बक ध्यान**' (अर्थात्) बगुला ध्यान करता है न ? ऐसे विकल्प का ध्यान करने से कल्याण होता हो तो बगुला का (भी कल्याण हो जाये)। यह दीपचंदजी ने लिखा है।

यह तो शांति का मार्ग बतलाते हैं, भाई ! शांति तो यह है। तेरे भव भ्रमण (से मुक्त होने का) उपाय तो यह है। शांति की बात है। अभी यह बहिन का (बहिनश्री चंपाबहिन का) पुस्तक निकली है। मुझे तो ऐसा विकल्प आया कि, यह चीज़ (का) तो हिन्दुस्तान में, गुजरात में सब ज़गह प्रचार करनी चाहिए। ऐसी चीज़ बाहर आयी है कि, अभी जरूरत की ऐसी चीज़ बाहर आयी है।

(अब यहाँ भाव दीपिका में) ''**पठनतैं शुक, बक ध्यान के किये कहुं, सिझे नाहीं सुने यातैं भवदुःख भरे हैं**'' उससे कोई मुक्ति नहीं, बापू ! आहाहा ! '**अचल, अबाधित, अनुपम, अखण्ड महा, आतमिक ज्ञान के लखैया सुख करे हैं**' अचल - चले नहीं, अबाधित - बाधा रहित, अनुपम अखण्ड महा प्रभु आत्मिक ज्ञान के लखैया। आत्मिक ज्ञान को जाननेवाले सुखकर है। उसे सुख होता है, आनंद होता है। बाकी सब क्लेश है। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ अनेक शक्ति। ''**एक द्रव्य से व्याप्य जो अनेक पर्याय...**'' भाषा देखो ! अनेक पर्याय सिद्ध की। ''**...उसमयपनारूप...**'' (अर्थात्) अनेकपनारूप - अनेक पर्यायपनारूप अनेकत्व शक्ति है। जैसे एक शक्ति है उसके साथ अनेक शक्ति भी है। एक साथ है।

प्रवनचसार में ४७ नय में आता है न, भाई ! क्रियानय से मोक्ष और ज्ञान नय से मोक्ष। ऐसा पाठ आता है। वहाँ क्रियानय से मोक्ष कहते हैं। (लेकिन) किस अपेक्षा से (कहते हैं) ? वहाँ नय तो एक-एक लिये हैं। पहला शब्द ऐसा लिया कि, श्रुतज्ञान प्रमाण में एक साथ धर्म दिखते हैं। क्रियानय का धर्म और ज्ञाननय का धर्म भिन्न-भिन्न है। (इसलिये) भिन्न कहा है, ऐसा है नहीं। वह तो राग के अभावरूप अपेक्षित (धर्म) गिनकर क्रियानय को लिया। उस समय में ज्ञान (नय) साथ में है और ऐसे अनंत - अनंत गुण श्रुतप्रमाण से जानने में आते हैं। ऐसा वहाँ पाठ है। श्रुतप्रमाण तो एक साथ सभी धर्म को देखता है। पहले क्रियानय (है) और बाद में ज्ञाननय (है), ऐसा कुछ नहीं है। समझ

में आया ? थोड़ी सूक्ष्म बात है, आहाहा !

(लोग कहते हैं) वहाँ क्रियानय कहा है न ? परंतु किस अपेक्षा से (कहा है) ? मुक्ति तो ज्ञाननय से है। परंतु राग को अभावरूप गिनकर वहाँ एक धर्म ऐसा गिनने में आया है। परंतु उसी समय में (है)। दूसरे समय में (है), ऐसा नहीं। जिस समय में ज्ञान से मोक्ष है, उसी समय में निश्चय से मोक्ष है, उसी समय में व्यवहार से - क्रियानय से (मोक्ष है)। ऐसी कथन शैली से एक प्रकार का धर्म बताया कि, जो श्रुतप्रमाण एक साथ सब का ज्ञान करता है, वहाँ पहला शब्द श्रुतप्रमाण आया है, भाई ! बाद में नय लिये हैं। पहले श्रुतप्रमाण आया, आहाहा ! अरे...! अर्थ करने में वांधे।

श्रोता : ज्ञाननय और क्रियानय दो तो आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आया न ? परंतु कब ? एक ही समय में (दोनों है)। समझ में आया ?

श्रोता : ज्ञानक्रियाभ्याम मोक्ष, (ऐसा आता है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दूसरी क्रिया (की बात है)। वह तो वीतरागी क्रिया (है)। वह वीतरागी क्रिया की बात है। यहाँ (नय में तो) राग की क्रिया से क्रियानय से मुक्ति, ऐसा एक धर्म गिनने में आया (है)। समझ में आया ?

'यह आत्मा कौन है (कैसा है) और कैसे प्राप्त किया जाता है' ऐसा प्रश्न किया जाय तो इसका उत्तर (पहले ही) कहा जा चुका है और (यहाँ) पुनः कहते हैं। प्रथम तो, आत्मा वास्तव में चैतन्यसामान्य से व्याप्त अनंत धर्मों का अधिष्ठाता (स्वामी) एक द्रव्य है' एक साथ सब धर्म हैं। किसी को क्रियानय से (मुक्ति होती है और किसी को ज्ञाननय से मुक्ति होती है), ऐसा नहीं। वह तो एक अपेक्षित धर्म साथ में गिनने में आया।

''आत्मा वास्तव में चैतन्यसामान्य से व्याप्त अनंत धर्मों का अधिष्ठाता (है)'' (अधिष्ठाता यानी) आधार। (अनंत धर्मोका) अधिष्ठाता। **''...एक द्रव्य है, क्योंकि अनंत धर्मों में व्याप्त होनेवाले जो अनंत नय हैं उनमें व्याप्त होनेवाला जो एक श्रुतज्ञानस्वरूप प्रमाण है।''** अब यहाँ कहा है। प्रमाणज्ञान तो एक समय में सब धर्म को जानता है। एक समय में है, उसे जानता है। किसी को क्रियानय और किसी को ज्ञाननय, ऐसा है नहीं, समझ में आया ? आहाहा ! इसलिये पहला शब्द यह लिया है कि, **''...एक श्रुतज्ञानस्वरूप प्रमाण है, उस प्रमाणपूर्वक स्वानुभव से (वह आत्मद्रव्य) प्रमेय होता है (ज्ञात होता है)।''** आहाहा !

एक समय में अनंत धर्म गिनने में आया है। किसीको क्रियानय से और किसी को ज्ञाननय से, किसी को व्यवहारनय से और किसी को निश्चयनय से, ऐसा उसमें आया है। परंतु उसका अर्थ एक समय में सब धर्म हैं। लोग बहुत गड़बड़ करते हैं, (कहते

हैं) देख ! क्रियानय से मुक्ति (कही) है। परंतु (उसकी) क्या (अपेक्षा है), बापू ? उस समय पर्याय में क्रियानय का एक अपेक्षित धर्म गिनने में आया और श्रुतप्रमाण है वह अनंत धर्मों को एक साथ जानता है। एक समय में अनंत धर्म साथ में है, ऐसा श्रुतप्रमाण जानता है। नय से कहा वह तो भेद हुआ परंतु यह श्रुतप्रमाण तो अनंत धर्म को एक साथ में जानता है। उसमें पहला धर्म क्रियानय और बाद में ज्ञाननय धर्म, ऐसा है ही नहीं। बात समझ में आयी ? (प्रमाण में) जानते हैं। अनंत धर्म की ऐसी योग्यता एक समय में जानते हैं, बस !

वह बात कही थी न ? कि, कालनय और अकालनय से मुक्ति। उसमें (प्रवनसार में नय अधिकार में ऐसा लिया है), उसका (अर्थ) क्या ? तो किसी को कालनय से (मुक्ति) होती है और किसी को अकालनय से (मुक्ति) होती है, ऐसा है ? कालनय और अकालनय (ऐसे) दो धर्म एक समय में गिनने में आये (हैं)। श्रुतज्ञान प्रमाण एक समय में अनंत धर्मों को एक साथ जानता है। किसी को कालनय से (मुक्ति) और किसीको अकालनय से (मुक्ति), ऐसा है ही नहीं। आहाहा ! बहुत बड़ी गड़बड़ है। वज़न यहाँ है। ``**...एक श्रुतज्ञानस्वरूप प्रमाण है, उस प्रमाणपूर्वक स्वानुभव से (वह आत्मद्रव्य) प्रमेय होता है (ज्ञात होता है)।**'' क्रियानय का, ज्ञाननय का, निश्चयनय का, व्यवहारनय का धर्म भी आया है। व्यवहारनय का एक धर्म है, निश्चयनय का एक धर्म है, परंतु सब एक समय में साथ में अपेक्षित धर्म गिनने में आया। श्रुतप्रमाण एक समय में एक साथ सब को जानता है। किसी को व्यवहारनय से मुक्ति होती है और किसी को निश्चयनय से मुक्ति (होती है), ऐसा शब्द है ही नहीं। न्याय समझ में आया ? (लोग) इन नयों में से बहुत गड़बड़ करते हैं। आहाहा !

श्रुतज्ञान प्रमाण लिया है। उसमें वज़न है। श्रुतज्ञानप्रमाण एक समय में अनंत धर्मों को एक साथ जानता है। उसका अर्थ एक साथ अनंत धर्म हैं। किसी को क्रियानय और किसी को ज्ञाननय (से मुक्ति) ऐसे भिन्न धर्म नहीं है। आहाहा ! एक साथ गिनने में आया है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, ``**एक द्रव्य से व्याप्य जो अनेक पर्यायें उसमयपनेरूप...**'' अनेक पर्याय में उसमयपनेरूप लिया। और (एकत्व शक्ति में) एक द्रव्यमयतारूप लिया था। एक में द्रव्यमयपना कहा था। अनेक में उसमयपने (कहा)। अनेक पर्याय उसमयपने (कहा)। है न ? अनंत भेद हैं, उसमयपने अनेकत्व शक्ति है। आहाहा ! समझ में आया ? बात थोड़ी सूक्ष्म है।

अनंत पर्यायों में व्यापक एक द्रव्यमयपने की एक शक्ति गिनने में आयी और एक

ही द्रव्य अनंत पर्यायों में व्यापता है। इस अपेक्षा से अनेक शक्ति गिनने में आयी। आहाहा ! शास्त्र के अर्थ करने में भी बड़ी गड़बड़ हो गई है। शास्त्र में किस अपेक्षा से कहना है वह अपेक्षा नहीं समझे और अपनी धारणा से अर्थ कर दे तो उलटा (अर्थ) हो जाये। दो शक्ति हुई।

अब तीसरी शक्ति में बहुत गंभीर अलौकिक बात है। ``**विद्यमान - अवस्थायुक्ततारूप भाव शक्ति।**'' क्या कहते हैं ? कि, आत्मा में एक भाव शक्ति ऐसी है कि, कोई भी वर्तमान निर्मल पर्याय होती ही है, करनी पड़ती नहीं। यहाँ निर्मल (पर्याय की) बात है। भाव शक्ति का स्वरूप विद्यमान अवस्था युक्त (है)। वर्तमान निर्मल पर्याययुक्त विद्यमान है, ऐसी भाव शक्ति है। भाव शक्ति के कारण एक वर्तमान पर्याय होती ही है। भाव शक्ति के कारण पर्याय में निर्मल अवस्था की विद्यमानता होती है, समझ में आया ? वह भी एक समय में, जिस समय में भाव शक्ति का परिणमन होता है, तो उस समय में निर्मल पर्याय होती है। यह भाव शक्ति का कार्य है, आहाहा ! भाव नाम उस समय में विद्यमान एक अवस्था होती ही है। भाव शक्ति के कारण वर्तमान में निर्मल पर्याय विद्यमान होती ही है, आहाहा ! मैं निर्मल पर्याय करूँ तो होवे, ऐसी बात है नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! सूक्ष्म भाव (है)।

भाव शक्ति का अर्थ ऐसा है कि, आत्मा में (एक) ऐसा गुण है कि, वर्तमान में विद्यमान निर्मल अवस्था होती ही है। थोड़ा गंभीर है। आत्मा में अनंत शक्तियां हैं, उसमें एक भाव शक्ति ऐसी है कि जिसके कारण वर्तमान में हयातीवाली विद्यमान निर्मल अवस्था होती ही है। भावशक्ति के कारण विद्यमान निर्मल अवस्था होती है। आहाहा ! यहाँ निर्मल (पर्याय की) बात है। मलिन (पर्याय की) बात नहीं है।

भाव शक्ति के कारण - भाव (अर्थात्) भवन, निर्मल परिणमन का भवन। भावशक्ति के कारण विद्यमान परिणमन होता ही है।

श्रोता : उसका ज्ञान तो करना पड़ता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान करना दूसरी बात है। परंतु यहाँ विद्यमान पर्याय, भाव शक्ति के कारण होती ही है। मैं करूँ तो इस भाव शक्ति में निर्मलता हो, ऐसी बात यहाँ नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा !

फिर से कहते हैं। ऐसे के ऐसे जाने नहीं देंगे। यह तो बड़ी शक्ति है। भगवान आत्मा में जैसे ज्ञान शक्ति है, आनंद शक्ति है, श्रद्धा शक्ति है, अस्तित्व शक्ति है, ऐसे एक भाव शक्ति है। भाव शक्ति की स्थिति क्या ? कि शक्ति तो त्रिकाल है परंतु उस शक्ति का कार्य क्या ? कि वर्तमान में अनंत गुण की निर्मल पर्याय विद्यमान हो ही

हो। वर्तमान में निर्मल पर्याय की विद्यमानता होती ही है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन की बात है न ? अज्ञानी की बात नहीं है। यह बात तो भाव शक्ति और शक्तिवान का जिसे अनुभव है, उसे निर्मल पर्याय विद्यमान होती ही है। यहाँ मिथ्यादृष्टि की बात नहीं है। समझ में आया ?

यहाँ तो भाव शक्ति और शक्ति को धरनेवाला भगवान उसकी जिसे प्रतीति (हुई है) और ज्ञान की पर्याय में यह गुण और द्रव्य ज्ञेयरूप में आया है (उसकी बात है)। ज्ञान (स्वरूप) निर्मलरूप से आनंद की पर्याय के साथ (ज्ञान में) आया है। उसकी भाव शक्ति में निर्मल पर्याय विद्यमान होती है। समझ में आया ? आहाहा !

दूसरे तरीके से कहें तो, जो भावशक्ति है (उसकी) पूर्व की निर्मल पर्याय थी, उसके कारण बाद में निर्मल पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। धीरे से समझने की बात है। यह बात बहुत बार व्याख्यान में ली थी। भाव शक्ति का स्वरूप - वर्तमान में इस शक्ति के कारण वर्तमान निर्मल पर्याय की हयाती - विद्यमान होती ही है। आहाहा ! जैसे भाव शक्ति के कारण केवलज्ञान की पर्याय विद्यमान होती है। (यहाँ) कहते हैं कि, पूर्व का मोक्षमार्ग था तो यह (केवलज्ञान की) पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। इस भाव शक्ति के कारण वर्तमान केवलज्ञान की पर्याय विद्यमान है, आहाहा !

जिस समय जो पर्याय होती है वह काललब्धि (है)। जिस समय जो पर्याय होती है वह काललब्धि। (यह) एक बात (हुई)। स्वामी कार्तिक ने कहा कि, प्रत्येक द्रव्य की काललब्धि होती है। अर्थात् उस समय में वह पर्याय उसकी काललब्धि है। प्रवचनसार १०२ गाथा में कहा कि, जन्मक्षण है (अर्थात्) उस पर्याय की उत्पत्ति का काल होता है। यहाँ निर्मल (पर्याय की) बात है। परंतु काल है, उस समय में होती है, काललब्धि है परंतु उसका कारण कौन ? यह भाव शक्ति है तो निर्मल पर्याय इसमें होती ही है। समझ में आया ? (वहाँ) विकल्प नहीं है। विकल्प करे तो होता है, ऐसा नहीं है। विशेष कहेंगे....

प्रवचन नं. २८
शक्ति-३३ दि. ०७-०९-१९७७
भूतावस्थत्वरूपा भावशक्तिः ।।३३।।

समयसार, परिशिष्ट अधिकार (चलता है)। शक्ति का वर्णन (चल रहा) है। आत्मा जो वस्तु है, उसमें अनंत शक्तियाँ हैं। प्रत्येक शक्ति का लक्षण भिन्न-भिन्न है। कोई शक्ति का लक्षण दूसरी शक्ति में आता है, ऐसा नहीं। ऐसा आत्मा जिसको निर्विकल्प अनुभव में आया हो, उसकी बात है, आहाहा !

व्यवहार रत्नत्रय के राग से भी चीज़ भिन्न है। राग की क्रिया से आत्मा का आत्मज्ञान होता है, ऐसा नहीं। राग बंध का कारण है। उससे उसमें अबंध का कारण मोक्षमार्ग होता नहीं। मोक्षमार्ग तो अबंध स्वरूपी भगवान आत्मा, सुखामृत, अमृत का सागर प्रभु ! उसके पास (जाने से मोक्षमार्ग प्रगट होता है)। यहाँ तो पहले अधिकार में आया कि, ज्ञान की एक समय की पर्याय जब उत्पन्न होती है, तो उसके साथ अनंत गुण की पर्याय साथ में उछलती है। उछलती है अर्थात् उत्पन्न होती है। यहाँ सम्यक्दृष्टि की बात है। उसने भगवान आत्मा ! अतीन्द्रिय आनंद, सुख स्वरूप, सुख का सागर उसकी ओर का पता लिया (और) अंतर अनुभव हुआ। विकल्प से और निमित्त से अनुभव नहीं होता। अनुभव तो शुद्धता का परिणाम अपने द्रव्य स्वभाव सन्मुख, त्रिकाली द्रव्य सन्मुख करने से (होता है)।

कल रात्रि को कहा था न ? (आत्मा के) असंख्य प्रदेश है। प्रत्येक प्रदेश में पर्याय भिन्न - ऊपर है। समझ में आया ? यह आत्मा जो है वह तो इस शरीर प्रमाण है। परंतु (अंदर) अपनी चीज़ भिन्न है। इसमें बाहर जो ऊपर-ऊपर असंख्य प्रदेश है, उसमें यह पर्याय है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? यहाँ शरीर में - पेट में अंदर में

असंख्य प्रदेश हैं तो प्रदेश - प्रदेश में पर्याय भिन्न ऊपर है। रात्रि को आया था। एक पोईन्ट में पर्याय का क्षेत्र भिन्न है (और) ध्रुव का क्षेत्र भिन्न है। आहाहा ! यह तो अलौकिक बातें हैं, भगवान !

असंख्य प्रदेश में अनंत गुण से बिराजमान बादशाह आत्मा है, आहाहा ! और प्रत्येक असंख्य प्रदेश इसका देश है और अनंत गुण उसका गाम है। गाम को क्या कहते हैं? गाँव है और एक-एक गाँव में अनंती प्रजा है, आहाहा ! यह तो हिन्दी भाषा है। थोड़ी - थोड़ी किसी को नहीं समझ में आये तो रात्रि को पूछ सकते हैं।

यहाँ तो प्रभु ! अंतर्मुख दृष्टि करने का अर्थ यह है कि, सारे असंख्य प्रदेश में पर्याय ऊपर है। शरीर और आत्मा भिन्न (है)। यह बाह्य पर्याय है ये ऊपर है, ऐसा नहीं। बाह्य प्रदेश में भी पर्याय ऊपर है और अंतर के प्रदेश में भी पर्याय ऊपर है, समझ में आया ?

असंख्य प्रदेश में अनंत गुण (हैं)। प्रत्येक (गुण की) पर्याय भिन्न-भिन्न हैं। इस पर्याय का लक्ष छोड़कर, (मात्र) ऊपर की (पर्याय का) लक्ष छोड़ना, ऐसा नहीं। अंदर के प्रदेश में पर्याय है, उन सबका लक्ष छोड़कर, अंदर ध्रुव भगवान है, ध्रुव की धारा (है, उसका लक्ष करना)। आहाहा ! समुद्र में ध्रुव के तारे से जहाज चलता है न ? उसके लक्ष से (जहाज चलता है)। ध्रुव तारा होता है न ? समुद्र में जहाज चलता है न ? (उसमें) ध्रुव का तारा होता है। उसके स्थान में वहीं रहता है। वह फिरता नहीं। बड़ी आगबोट समझे हैं न ? स्टीमर। स्टीमर कहो कि आगबोट कहो (एक ही बात है)। आहाहा ! वह सब ध्रुव के तारे के लक्ष से चलता है। वैसे भगवान आत्मा ध्रुवरूप जो अंदर वस्तु है, एक समय की पर्याय असंख्य प्रदेश में ऊपर है, उससे अंदर ध्रुवपना भिन्न है। उस ध्रुव की और पर्याय को वर्तमान में गहराई में ले जाना। आहाहा ! तब उस पर्याय में ध्रुव में एकता करी। पर से एकता थी, (अब) स्व से एकता हुई। राग के साथ एकता थी, उस पर्याय की ध्रुव के साथ एकता हुई। एकता का अर्थ ? ध्रुव और पर्याय एक हो जाती है, ऐसा एकता का अर्थ नहीं। पर्याय उस ओर झुकती है तो एकता कहने में आता है। ऐसा मार्ग (है) ! बहुत सूक्ष्म, बापू ! ऐसा सत्य है, वह अंदर में बैठे नहीं, अनुभव न हो और व्रत और तप करने से कल्याण हो (जायेगा, ऐसा भाव) मिथ्यात्वभाव, पाखण्डभाव है। समझ में आया ?

ध्रुव चिदानंद, आनंदरस, ज्ञानरस, शांतरस, वीतरागरस, जीवतर शक्ति का रस, चिति, दशि, ज्ञान का रस, ऐसे (सब रस) अंदर ध्रुव में भरा पड़ा है। आहाहा ! उस ओर पर्याय को अंतर में झुकाना तब निर्विकल्प दृष्टि में अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आना,

ये पर्याय हुई वह भाव शक्ति के कारण से हुई, ऐसा कहने में आता है।

अभी बहुत बात बाकी है। क्या है ? शब्द तो बहुत थोड़े हैं। ``**विद्यमान अवस्थायुक्ततारूप...**'' आत्मा (की ओर) अंतर्मुख दृष्टि करने से, अनंत शक्ति में एक भाव शक्ति पड़ी है कि, जो भाव की शक्ति वर्तमान विद्यमान अवस्था को प्रगट करती है। भावशक्ति के कारण वर्तमान में पर्याय की हयाती हो, विद्यमान हो, वह भाव शक्ति के कारण से है। क्या कहा ?

श्रोता : (तो फिर) पर्याय पर्याय का कारण नहीं हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अपेक्षित कहा। यहाँ उससे थोड़ा आगे ले जाना है न ? बाद में उत्पाद, उत्पाद के कारण से (होता है), यह बाद में लेना है।

यहाँ तो भाव शक्ति ऐसे लिया न ? ``**विद्यमान अवस्थायुक्ततारूप...**'' भगवान आत्मा में जितनी अनंत शक्तियाँ हैं, (उन) प्रत्येक शक्ति में भाव (शक्ति का) रूप है। भाव शक्ति भिन्न है। जीवतर, चिति, दशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व सर्वदर्शित्व, सर्वज्ञ, स्वच्छत्व, प्रकाश, असंकुचितविकासत्व, अकार्यकारणत्व, परिण्म्यपरिणामकत्व, त्यागउपादानशून्यत्व, अगुरुलघु आदि सब शक्ति में (भाव शक्ति का रूप है)। ४७ शक्ति कंठस्थ है। हमेशा पहले इसका ही स्वाध्याय होता है। सबेरे उठकर यह स्वाध्याय करते हैं। समझ में आया ? कहा न ? जीवतर, चिति, दशि ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व सर्वदर्शित्व, सर्वज्ञ, स्वच्छत्व, प्रकाश, असंकुचितविकासत्व, अकार्यकारणत्व, परिण्यपरिणामकत्व, त्यागउपादानशून्यत्व, अगुरुलघु, उत्पादव्ययध्रुवत्व, परिणाम, अमूर्तत्व, अकर्तृत्व, अभोक्तृत्व, निष्क्रिय, नियतप्रदेशत्व, स्वधर्मव्यापकत्व, साधारण-असाधारण-साधारणअसाधारण धर्मत्व शक्ति, विरुद्धधर्मत्व, तत्त्व, अतत्त्व, एकत्व, अनेकत्व, भाव, अभाव। अभी भाव (शक्ति में) आये हैं। भाव, अभाव, भावाभाव, अभावभाव, भावभाव, अभावाभाव, भाव, क्रिया, कर्म, कर्तृत्व, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण, स्वस्वामीसंबंध शक्ति, (ये) ४७ हो गई। इन ४७ शक्ति से भी अनंत शक्ति अंदर है। कथन में कितना कहे ? आहाहा !

भगवान अनंत चैतन्य रत्नाकर से भरा पड़ा है। अंदर में अमृत का सागर उछलता है। परंतु किसको ? उछलती है कहा न ? पहले आया था। ज्ञान पर्याय उछलती है। उसमें (साथ में) अनंत शक्ति उछलती हैं। पंरतु किसको ? कि जिसकी दृष्टि द्रव्य पर गई है और पर्याय में आनंद का वेदन आया है, उसको भाव शक्ति की पर्याय विद्यमान आनंद की (पर्याय) प्रगट होती है। भाव शक्ति की पर्याय का भी भवन। भाव शक्ति का भवन। यहाँ विद्यमान कहा न ? भाव शक्ति है उसका भवन। विद्यमान अवस्था युक्तपन। कोई भी समय में भाव शक्ति के कारण विद्यमान अवस्था होती ही है, करनी पड़ती नहीं।

`मैं (यह पर्याय) करूँ' ऐसा नहीं है।

अनंत शक्ति का पिंड, प्रभु ! अंदर में वर्तमान ज्ञान पर्याय में सारे द्रव्य को ज्ञेय बनाकर उसकी प्रतीति हुई, निर्विकल्प वेदन हुआ तो उस समय में ज्ञान की पर्याय (विद्यमान है)। ज्ञानगुण में भी भाव (शक्ति का) रूप है तो ज्ञान गुण में भी वर्तमान अवस्थायुक्तपना होता है। सूक्ष्म बात है, समझ में आया ? पहली जीवतर शक्ति ली है। जीवतर शक्ति में ज्ञान, दर्शन, आनंद सबका प्राण है। यह जीवतर शक्ति का जो भाव है उसकी वर्तमान अवस्था विद्यमान होती ही है। भावशक्ति के कारण अपनी पर्याय होती है परंतु जीवतर शक्ति के कारण उसमें भावरूप शक्ति है तो उस कारण से उसकी विद्यमान अवस्था दर्शन, ज्ञान, चारित्र और सत्ता की पर्याय विद्यमान अवस्थायुक्त होती है, आहाहा !

दूसरी रीत से कहे तो, यह वर्तमान भाव शक्ति अवस्थायुक्त है तो उस समय में जो अवस्था होनेवाली (है), यह भाव शक्ति का भवन (होता है)। (भवन) - परिणमन ऐसा लेना है न ? परिणमन तो स्वतंत्र है। परंतु यहाँ भाव शक्ति के कारण परिणमन है, ऐसा लेना है, समझ में आया ? ऐसे अनंत गुण जो हैं (उसमें भाव शक्ति का रूप है)। जीवतर शक्ति में भावशक्ति का रूप है, भवन शक्ति (उसमें) नहीं। एक गुण में दूसरे गुण का अभाव (है)। `निराश्रय गुणा' आता है न ? गुण के आश्रय गुण नहीं, द्रव्य के आश्रय से गुण है। आहाहा ! भगवान आत्मा ! उसके आश्रय से अनंत गुण है। परंतु एक गुण के आश्रय से दूसरा गुण है, ऐसा नहीं।

जीवतर शक्ति जो है उसके आश्रय से भाव शक्ति है कि, भाव शक्ति के आश्रय से जीवतर शक्ति है, ऐसा नहीं है। फिर भी जीवत्व शक्ति में भाव शक्ति का रूप है तो जीवतर शक्ति की वर्तमान अवस्थायुक्तपना होना, यह उसका स्वभाव है, आहाहा !

जिसने सम्यग्दर्शन में आत्मा प्राप्त किया, पूर्णानंद का नाथ ! चैतन्य रत्नाकर ! अमृत का सागर ! अनंत शक्ति का सागर ! भगवान (आत्मा) ! अपनी पर्याय में जब उत्पन्न होता है (तो उसकी) विद्यमान अवस्था होती ही है। उसको (पर्याय) करनी पड़ती नहीं, ऐसा कहते हैं। अरे...! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं। शक्ति का अधिकार बहुत सूक्ष्म है। क्योंकि यह तो द्रव्यदृष्टि का अधिकार है न ? आहाहा !

अरे...! (आत्महित) कभी किया नहीं। बाहर की क्रिया में माथापच्ची (भेजामारी) करके मर गया। संसार की क्रिया से फुरसद नहीं (और कभी) फुरसद ले तो व्रत, तपस्या, भक्ति और पूजा की क्रिया करी। वह भी राग क्रिया है। बंध का (कारण) है, संसार है। वह संसार है और संसार का कारण है। समझ में आया ?

यह शक्तियाँ जो हैं उसमें भाव शक्ति का रूप प्रत्येक (शक्ति में) है; तो जीवन

शक्ति की पर्याय विद्यमान अवस्थायुक्त ही होती है, आहाहा ! यह अबंध परिणाम है। जीवतर शक्ति का वर्तमान अवस्था सहितपना, यह अबंध परिणाम है। यह मोक्ष का मार्ग है अथवा यह मोक्ष ही है, आहाहा ! ऐसी बहुत सूक्ष्म बातें ! परंतु (उसमें) क्या हो सकता है ?

अरूपी भगवान (आत्मा में) रूप तो नहीं परंतु पुण्य-पाप के विकल्प की जड़ता भी नहीं। उसके मूल में (स्वरूप में) यह है ही नहीं, आहाहा ! उसके मूल में तो अनंत आनंद, अनंत ज्ञान, अनंत शांति ऐसी अनंत शक्तिओं का संग्रहालय (भरा पड़ा है). संग्रह + आलय (अर्थात्) संग्रह का घर। आहाहा !

हमने कहा था न ? पिछले वर्ष बंबई गये थे (तब किसी के यहाँ) भोजन करने गये थे। वहाँ एक टाटा का मकान है। वहाँ एक लड़का था। (तत्त्व का) बहुत प्रेमवाला था। शादी के बाद यहाँ आया था। शादी के बाद बहुत छोटी उम्र में (देहांत हो गया)। उसको कीडनी का दर्द हो गया। बहुत नरम लड़का था। उसके पास हम गये थे। परंतु शक्ति नहीं थी तो उसकी माता ने कीडनी दी थी। फिर भी देह छूट गया। एक साल की शादी ! आहाहा ! (कैसी स्थिति !)

ज्ञान में भी जो पर्याय विद्यमान अवस्थायुक्तपने है, वह भावरूप (भावशक्ति) के कारण है। वैसे श्रद्धा गुण में भी त्रिकाल श्रद्धा गुण है। उसमें भी भावरूपता है। सम्यग्दर्शन की पर्याय में पर्याय सहित विद्यमानता होती है। आनंद गुण है तो आनंद गुण में भी भाव शक्ति का रूप है, तो आनंद गुण भी वर्तमान आनंद की पर्याय विद्यमान सहित है, आहाहा ! सम्यक्दृष्टि को अनंत गुण की पर्याय, उस-उस गुण की पर्याय उस-उस वर्तमान अवस्था विद्यमान सहित है। करनी पड़ती नहीं। आहाहा !

कर्ता गुण से कहने में आये तो ऐसे (कहा जाये कि), अनंत गुण की पर्याय का कर्ता है। समझे ? आगे कर्ता - कर्म आयेगा। (आत्मा में) कर्ता नाम की एक शक्ति है तो इस शक्ति में भी भाव शक्ति का रूप है। यह कर्ता शक्ति भी वर्तमान अवस्था विद्यमान सहित है, आहाहा ! समझ में आया ? थोड़ा गंभीर (है)। यह तो बहुत सूक्ष्म बातें हैं।

दीपचंदजी ने पंचसंग्रह में इसका विस्तार किया है। बहुत (विस्तार) किया है। थोड़ा-थोड़ा (वर्णन) किया है परंतु वैसे बहुत संक्षेप में समाप्त किया है। लेकिन शक्ति का वर्णन तो एक दीपचंदजी के अलावा कहीं इतना विस्तार आया नहीं। थोड़ा साधारण समयसार नाटक में आता है। बाकी विस्तार चिद्विलास में और पंचसंग्रह में (बहुत आया है)।

यहाँ कहते हैं कि, ``**विद्यमान अवस्था...**'' (अर्थात्) वर्तमान होनेवाली अवस्था - विद्यमान

अवस्था। द्रव्य जो है इसमें अनंत शक्तियाँ हैं। प्रत्येक शक्ति की वर्तमान विद्यमान अवस्था होती ही है। यह अवस्था परिणाम (होता ही है)। शक्ति जो है यह द्रव्य में है, गुण में है और पर्याय में व्याप्य होती अवस्था, विद्यमान अवस्था सहित है, आहाहा !

धर्मी को आनंद की अवस्था सहित आनंद गुण है। ज्ञानगुण की अवस्था सहित ज्ञानगुण है। स्वच्छता की पर्याय सहित स्वच्छता शक्ति है। प्रभुत्व की पर्याय सहित प्रभुत्व शक्ति है, आहाहा !

यह करियावर नहीं बिछाते ? (हिन्दी में) करियावर को क्या कहते हैं ? लड़की को दहेज (देते हैं न ?) गृहस्थ हो वह दो-चार-पाँच लाख का (दहेज) देते हैं। कुटुंब देखने आये कि, देखो ! यह इतना दिया, यह पाँच-पाँच हज़ार की साड़ियाँ। (ऐसी-ऐसी) २५ साड़ी देते हैं। पाँच हज़ार तोला सोना देते हैं। ये सब देखा है न ? समझ में आया ? आहाहा ! और उस साड़ी को पहनकर स्त्री (बाहर) निकले तो लोग नज़र करे। लोगों की नज़र तो दूसरी होती है कि, इस साड़ी में बहुत भरा है। यह विवाहीत स्त्री का ससुर ऐसा देखे कि, मैंने जो साड़ी दी है, वह (लोगों की) नज़र में आती है। इसे देखते हैं। समझ में आया ? साड़ी देखकर उसके ससुर को ऐसा होता है कि, मैंने साड़ी बहू को दी है उस साड़ी को लोग देखते हैं, तो मैं गृहस्थ हूँ, ऐसी (बात) साड़ी के द्वारा बाहर आती है। दूसरा देखनेवाला दूसरी दृष्टि से देखते हैं, देखो ! यह सब जगत के ढ़ोंग।

यहाँ कहते हैं कि, सम्यक्दृष्टि को भाव शक्ति के कारण निर्मल पर्याय की विद्यमानता सहित वह शक्ति होती है। इसको ज्ञानी जानते हैं और अनुभव में हैं, आहाहा ! समझ में आया ? जगत से सारी अलग जाति - भिन्न जाति की (बात) है। आहाहा ! अभी तो इस वक्त यह तूफान (चल रहा है कि), शुभ जोग की क्रिया व्रत, तप, अपवास ये सब धर्म हैं और धर्म का कारण हैं। अरे प्रभु ! पेपर में आया था। शुभ जोग धर्म है। धर्म का कारण है, ऐसा नहीं लिखा है। और शुभ जोग को हेय माने वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा लिखा है। अररर...! प्रभु यह क्या करता है, भाई ?

यहाँ तो शुभ जोग का अभाव बतलाते हैं। शुद्ध शक्ति जो है, वह प्रत्येक शक्ति की वर्तमान निर्मल विद्यमान अवस्था है। उस अवस्था में विकार का अभाव, यह स्याद्वाद है, यह अनेकांत है, आहाहा !

विकार से (निर्मल पर्याय) होती है, ऐसा नहीं। यह निर्मल शक्ति की शक्ति में भाव नाम का रूप है, तो प्रत्येक शक्ति निर्मलरूप से विद्यमान प्रगट होती है। अरे...! ऐसी बातें ! समझ में आया ? जितनी अनंत शक्ति है उतनी प्रत्येक शक्ति में भाव शक्ति

का रूप है। (अंदर) जो ज्ञान गुण है उसकी वर्तमान ज्ञान अवस्था विद्यमान सहित ही होती है। वह पढ़ाई करे, और शास्त्र पढ़े तो अवस्था प्रगट होती है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? ऐसे श्रद्धा गुण त्रिकाल है। समकित पर्याय है। श्रद्धागुण त्रिकाल है। इसमें भाव शक्ति का रूप है। यह श्रद्धा गुण समकित पर्याय की वर्तमान विद्यमान (अवस्था) सहित ही है। आहाहा ! ऐसा है। (भाव) शक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्यापती है। समझ में आया ? और यह शक्ति वर्तमान पर्याय की विद्यमान अवस्था सहित है। तो यह शक्ति कोई राग का कार्य है, ऐसा नहीं। उसी तरह यह अवस्था राग का कारण है, यह अवस्था व्यवहार का कारण है, ऐसा भी नहीं है। ऐसी बातें हैं, बापू ! आहाहा !

अरे...! दुनिया को कहाँ पड़ी है ? कहाँ जायेंगे ? उलटे रास्ते पर (जा रहे हैं)। बापू ! संसार का रास्ता तो विपरीत है ही, आहाहा ! २०-२२ घंटे अकेले पाप की पोटली (बांधता है), आहाहा ! ६-७ घंटे स्त्री-पुत्र को राजी रखने में, खुश रखने में जाये, अररर...! बापू ! तूने ये क्या किया ? आहाहा ! जिसे जो धंधा होता है वह (उसी में पड़ा है)। वह सब तो पाप के परिणाम (हैं)। उसका तो यहाँ अभाव बताना है, आहाहा ! धर्मी को इस परिणाम का अभाव है। समझ में आया ? धर्मी ऐसा जो आत्मा उसमें अनंत शक्ति रूपी धर्म (है)। `वस्तु सहावो धम्मो'। वस्तु का जो त्रिकाली स्वभाव है, वह धर्म (है)। यह उसकी वर्तमान पर्याय प्रगट होती है, यह प्रगट धर्म (है)। आहाहा ! ये सब समझे उसके बजाय यह व्रत करे, अपवास करे, कोई बेचारा कहता था, हम व्रत को पालन करें, ब्रह्मचर्यका पालन करे, महाव्रत का पालन करे, दया पालन करे, झूठ नहीं बोले, सत्य बोले, कुटुंब आदि को छोड़कर निवृत्ति ले लें, तो (भी) धर्म नहीं ? धूल में धर्म नहीं है। आहाहा !

श्रोता : तो क्या करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करना। कहते हैं न ? भगवान ! पर का करना ऐसा मानना यह मरण है। `करना है, यह मरना है' आता है ? निहालचंद्र सोगानी में आता है। द्रव्यदृष्टि प्रकाश तीसरे भाग में आता है। `करना सो मरना' अरे...! मैं राग करूँ, (ऐसा) राग का करना सो मरना (है)। आहाहा ! (राग को करने मान्यतावाला) चैतन्य की शक्ति का अनादर करता है अर्थात् अनंत चैतन्य शक्ति जो है, वह है ही नहीं (और) राग का कर्ता वही मैं हूँ - ऐसा (माननेवाला) आत्मा त्रिकाली भगवान (आत्मा की) हिंसा करता है, आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

भाव शक्ति में तो बड़ी (गंभीरता है)। एक तो उसमें विद्यमान अवस्था सहित क्रमबद्ध का निर्णय होता है। भाव शक्ति के कारण अपनी कोई भी विद्यमान पर्याय होती ही है।

इस (पर्याय को) करनी पड़े, ऐसा नहीं। (विद्यमान अवस्था) होती ही है और अनंत गुण में भाव शक्ति का रूप है, इस कारण से अनंत गुण की वर्तमान विद्यमान पर्याय सहित ही है, आहाहा ! ऐसी विकार रहित, निर्मल पर्याय सहित - इसको यहाँ भाव शक्ति की विद्यमान अवस्था कहने में आता है। उसमें राग का अभाव है, व्यवहार रत्नत्रय के विकल्प का अभाव है, - यह अनेकांत है। उससे (राग से धर्म) होता है, ऐसा नहीं। अपने कारण से, भावशक्ति के कारण से निर्मल अवस्था होती है। राग से निर्मल अवस्था होती है, ऐसा नहीं। राग से (निर्मल पर्याय) नहीं होती है, उसका नाम अनेकांत है। कुछ समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बातें हैं।

अरेरे...! उसने जीव की दरकार नहीं की है। मनुष्यपना का पाँच - पचास - साठ - सत्तर वर्ष खोकर चला जाता है। त्रस में रहने की २००० सागर की स्थिति है। वह पूरी होगी और अगर यह आत्मा का कार्य नहीं किया तो निगोद में जायेगा, आहाहा ! समझ में आया ? त्रस की स्थिति २००० सागर की है। पंचेन्द्रिय मनुष्य की स्थिति १००० सागर की है। पंचेन्द्रिय भव करे तो १००० हज़ार सागर का (करे)। और यदि यह स्थिति पूरी हुई और आत्मा का कार्य नहीं किया तो प्रभु ! अरे...! तो वह भव में रखड़नेवाला है, आहाहा ! चौरासी के अवतार में घूमकर निगोद में चला जायेगा। पंचेन्द्रिय की स्थिति पूरी हो गई तो एकेन्द्रिय में जायेगा। ये तेरे पाँच - पचास लाख, पाँच-दस करोड़ पैसे, स्त्री, पुत्र कोई तेरे साथ नहीं आयेंगे। आहाहा ! यह सब पाप के भाव साथ में आयेंगे, आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि, उसे भी छोड़कर कदाचित् पुण्यभाव किये (तो) वह साथ में आयेंगे। (परंतु) पुण्य का भाव संसार है (और) उसका फल संसार है। पुण्यभाव संसार (है) और उसका फल भी संसार (है)। आहाहा !

यहाँ तो भगवान ऐसा कहते हैं कि, प्रभु ! तेरी शक्ति में (तो) संसार नहीं परंतु शक्ति की अवस्था - विद्यमान अवस्था सहित है, इस अवस्था में (भी) संसार नहीं। संसार का विकल्प जो है, शक्ति की विद्यमान अवस्था में उस (विकल्प की) अवस्था का अभाव है, आहाहा ! ऐसी स्पष्ट बात है परंतु लोग चिल्लाते हैं। अरेरे...! हम कहते हैं व्यवहार कारण है, साधन है। व्रत, तप, अपवास यह साधन (है), भाई ! वह साधन नहीं है, भाई ! वह (सब) कहा है, (परंतु) वह निमित्त का ज्ञान कराने को कहा है, समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि, ``**विद्यमान अवस्था...**'' ओहोहो ! जैसे विद्यमान तत्त्व शक्ति है, ऐसे शक्ति की अवस्था भी विद्यमान ही होती है। हयातीवाली अवस्था प्रगट है ही। प्रत्येक गुण की वर्तमान विद्यमान अवस्था होती ही है, करनी पड़ती है, ऐसा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

ज्ञान, दर्शन, आनंद, शांति, स्वच्छता, प्रभुता (आदि शक्ति है, वैसे) आत्मा में एक उत्पादव्ययध्रुव शक्ति है। वह चल गई है। आत्मा में एक उत्पादव्ययध्रुव नाम की शक्ति है। जैसे यह भाव शक्ति है, वैसे उत्पादव्ययध्रुव नाम की शक्ति है। उस कारण से समय - समय में वर्तमान विद्यमान उत्पाद होता ही है। आहाहा ! क्या कहते हैं ? आत्मा में उत्पाद - व्यय - ध्रुव नाम की शक्ति - गुण है। इस गुण के कारण वर्तमान उत्पाद और पूर्व की पर्याय का व्यय, (वर्तमान) अवस्था का विद्यमाननपना (और) पूर्व की अवस्था का अविद्यमानपना, इस शक्ति का कार्य ही ऐसा है, आहाहा !

पर के कारण से निर्मल शक्ति की (अवस्था) होती है, (उसका) यहाँ निषेध करते हैं। वर्तमान अवस्था युक्त है, निर्मल अवस्था युक्त है। धर्मी जीव, जिसकी दृष्टि द्रव्य पर है, उन्हें अनंत शक्ति की निर्मलता - वर्तमान अवस्थायुक्तपना है। आहाहा ! ऐसा है, प्रभु ! लोगों को ऐसा लगे कि, यह सब निश्चय... निश्चय (है), परंतु निश्चय यानी सत्य और व्यवहार माने उपचारित - आरोपित कथन। आहाहा !

अरे भाई ! यहाँ तो अनंत भव का छेद करके, भवभ्रमण रहित होना, यहाँ तो यह बात है, भाई ! आहाहा ! जैसे यह भव मिला तो (इस) भव के बाद कदाचित् स्वर्ग मिले, (तो उसमें क्या हो गया ?) कहते हैं न ? `एकबार वंदे जो कोई समेदशिखर, नरक-पशु गति न होय' नरक - पशु नहीं हुआ तो क्या हुआ ? बाद में नरक-पशु की (गति) होगी। वर्तमान में जो कोई ऐसे बहुत शुभभाव हो तो स्वर्ग में जायेगा। आठवें स्वर्ग में जानेवाला तिर्यंच - कोई आठवें स्वर्ग में जाता है। (वहाँ से मरकर फिर से) तिर्यंच होता है। आहाहा ! समझ में आया ? (यहाँ से) आठवें स्वर्ग में जाये (और) स्वर्ग की स्थिति पूरी होती है तब वहाँ से कोई तिर्यंच में चला जाता है। आहाहा ! तो `नरक-पशु न होय' तो उसमें हुआ क्या ? नरक या पशु में जाने का एक भव न हो परंतु समेदशिखर की भक्ति, यात्रा से भव का अभाव हो (ऐसा) तीनकाल में नहीं है, समझ में आया ?

यहाँ (एक साधु) आये थे। (अभी तो) गुजर गये। वहाँ प्रवचनमंडप में ठहरे थे। हम आहार करके फिरते हैं, वैसे आहार करके चक्कर लगा रहे थे। वहाँ गये और बैठे। हम पैर तो छूते नहीं। (हम) बैठे तो उसने कहा कि, `समेदशिखर की यात्रा करे तो ४९ भव में मोक्ष जाये, ऐसा समेदशिखर के माहात्म्य में है।' श्वेतांबर में शेत्रुंजय का ऐसा माहात्म्य आया है कि, एकबार वहाँ कोई साधु को आहार-पानी दे तो उसका संसार नाश होता है - परित होता है। ऐसे तुम समेदशिखर की यात्रा (करो तो) संसार परित (नाश) होता है। यह सब झूठी बात है। उसके पास `समेदशिखर का माहात्म्य'

(नाम का) पुस्तक था। (हमने पूछा) उसमें ऐसा लिखा है ? (तो उन्होंने कहा) हाँ, (लिखा है)। (इसलिये हमने कहा) `यह भगवान की वाणी नहीं' यह भगवान की वाणी नहीं।

श्रोता : फिर उन्होंने क्या कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसने पहले तो कहा कि, (समेदशिखर की यात्रा करे) `तो ४९ भव में मोक्ष चला जाये' बाद में हमने ऐसा कहा कि, ऐसा है नहीं। (फिर उन्होंने कुछ कहा नहीं)। बाद में क्या कहें ? समेदशिखर की यात्रा लाख बार, करोड़ बार, अबज बार करे तो भी वह तो शुभ भाव है। वह तो संसार है, आहाहा ! (ऐसा मानना) वह (भाव) मिथ्यात्व है। राग से मुझे लाभ होगा, समेदशिखर की यात्रा से मेरा भवछेद होगा, (यह सब) मिथ्यात्व है। महा संसार ताप है। समझ में आया ? आहाहा ! ये लोग शेत्रुंजय के लिये कहते हैं न ? चैत सुदी पूर्णिमा, कार्तिक सुदी पूर्णिमा को यात्रा करो तो कल्याण हो जायेगा। धूल में भी (कल्याण) नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं कि, कल्याण का कारण अपनी निर्मल भाव शक्ति है। उसकी वर्तमान पर्याय है, यह कल्याण का कारण है। समझ में आया ? वह कल्याण का कारण कहो या कल्याणरूप कहो, (एक ही बात है), आहाहा !

यहाँ तो (भाव) शक्ति अनंत गुण में व्याप्त है। भाव नाम की शक्ति अनंत गुण में व्याप्त है। अनंतगुण में यह भाव शक्ति निमित्त है। भाव शक्ति पारिणामिक भावस्वरूप है। अनंत शक्तियाँ पारिणामिकभावस्वरूप है और उसका परिणमन है यह उपशम, क्षयोपशम (और) क्षायिक भाव(रूप) है। क्या कहा ?

भाव शक्ति जो कही वह तो पारिणामिक भावस्वरूप है। परंतु यह विद्यमान अवस्थायुक्त है। यह अवस्थायुक्त है, वह अवस्था उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक सहित है। उदयभाव (रूप) नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! लिखा है उसमें ? ``**विद्यमान अवस्था...**'' अवस्था नाम पर्याय। वर्तमान पर्याय युक्तरूप भाव शक्ति है। ``(**अमुक अवस्था जिसमें विद्यमान हो...**)'' आहाहा ! निर्मल पर्याय की हयाती हो, यह भाव शक्ति का स्वरूप है, आहाहा ! समझ में आया ? उसमें तो ऐसा कहा कि, जिसने द्रव्यस्वभाव की दृष्टि करी, और शक्ति की प्रतीति की, उसकी वर्तमान अवस्था - निर्मल अवस्था शक्ति के कारण से है। राग के कारण से निर्मल अवस्था विद्यमान है, ऐसा नहीं है। आहाहा !

(लोग) तो ऐसा कहे कि, पाँच-पच्चीस लाख खर्च करो और मंदिर बनाओ तो तुम्हारा कल्याण होगा, जाओ ! धूल में भी कल्याण नहीं, समझ में आया ? तेरे आठ लाख में या चार लाख में (मंदिर बनाये तो) कोई धर्म होगा, ऐसा नहीं है। हम तो पहले से कहते हैं, आहाहा !

श्रोता : ४३ साल से (कहते हो)।

पूज्य गुरुदेवश्री : ४३ साल से नहीं, उससे पहले संप्रदाय में भी हम कहते थे। वह सब राग की मंदता है, पुण्य है। उससे जन्म-मरण का अंत आ जाता है, (ऐसा नहीं है)। यहाँ तो निर्मल शक्ति की निर्मल अवस्था सहित होना, यह मोक्ष का कारण है, समझ में आया ? आहाहा !

``**विद्यमान अवस्था...**'' (अर्थात्) पर्याय। ``**युक्ततारूप...**'' (अर्थात्) सहितपनारूप, सहितपनारूप ``**...भावशक्ति**'' आहाहा ! ``(**अमुक अवस्था जिसमें विद्यमान...**)'' विद्यमान समझे ? हयाती। विद्यमान हो - मौजूद (हो)। प्रत्येक गुण की वर्तमान निर्मल पर्याय मौजूद ही होती है, होती है। करनी पड़ती नहीं। क्रमबद्ध में वह पर्याय ऐसी ही आती है, आहाहा !

श्रोता : अमुक शब्द का प्रयोग किया है (उसका अर्थ क्या ?)

पूज्य गुरुदेवश्री : अमुक अवस्था यानी जो अवस्था होनेवाली है वह। अमुक यानी जो अवस्था होनेवाली है वह अमुक अवस्था। सब अवस्था नहीं। ``**अमुक अवस्था जिसमें विद्यमान हो**)'' जो वर्तमान अवस्था है यह अमुक (कहने में आती है)। यह वर्तमान (अवस्था) जिसमें विद्यमान, हयाती धारण करके मौजूद हो। ``**उसरूप भाव शक्ति**'' - उसका नाम भावशक्ति कहने में आता है। आहाहा ! भाव में भवन होना (ऐसा उसका अर्थ है)। भाव शक्ति का भवन (अर्थात्) पर्याय सहित होना, यह भाव शक्ति का कार्य है। निर्मल अवस्था (होती है), वह व्यवहार रत्नत्रय का कारण है या कार्य है, ऐसा नहीं है। आहाहा ! यह भारी - कठिन पड़ता है। पंच महाव्रत लिये, ऐसे (व्रत) लिये, उस कारण से यह विद्यमान निर्मल अवस्था की हयाती हुई, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

अध्यात्म पंचसंग्रह में तो ऐसा लिखा है कि, अग्नि तापस होता है न ? ऐसा उससे लाभ होता हो तो अग्नि में पतंगिया भी गिरते हैं, तो उसको भी लाभ होना चाहिए और जल में स्नान करने से, जल में डूबकी मारने से (लाभ होता हो तो) जल में तो जलचर (प्राणी भी) रहते हैं, उनका भी कल्याण होना चाहिए। बस ! स्नान करने से कल्याण होगा, (ऐसा मानते हैं)। धूल में भी नहीं होगा। समझ में आया ? वह कहा था न ? बताया था। और नग्न रहने से (मुक्ति होगी), तो नग्न तो पशु भी रहते हैं, उसमें क्या हुआ ? घेंटा का भी बारह महीने के (बाद बाल काटते हैं)। अभी तो केशलोच का बड़ा महोत्सव होता है और सब प्रशंसा करते हैं। आहाहा !

श्रोता : यहाँ तो बाल हाथ से खींचते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें क्या हो गया ? हाथ से खींचते हैं, (ऐसा मानते हैं)। खींचने की शक्ति कहाँ है ? वह तो उसके कारण से निकलता है। हाथ से भी नहीं

निकलता है।

श्रोता : बिना हाथ लगाये निकल जाता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिना हाथ लगाये निकलता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को निकाले कहाँ से ? आहाहा !

यहाँ तो जीवतर, चिति, दशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, (ऐसे) अनंत गुण लेने। वीर्य शक्ति में भी भाव शक्ति का रूप पड़ा है। वीर्य जो है वह निर्मल अवस्थायुक्त ही वीर्य है। वीर्य में निर्मल अवस्था सहित ही वीर्य है। यह वीर्य शक्ति का कार्य है। समझ में आया ?

दूसरी (बात) लें तो, वीर्य शक्ति स्वरूप की रचना करता है। यह वीर्य शक्ति ४७ में पहले आ गयी। (वीर्य शक्ति) आत्म स्वरूप की रचना करती है। इस वीर्य शक्ति को धरनेवाले द्रव्य स्वभाव पर एकाग्र होने से अनुभव होता है (तो) यह वीर्य शक्ति अनंत (गुण की निर्मल) पर्याय की रचना करती है। राग की रचना करता है, यह वीर्य नहीं। यहाँ कहा न ? वीर्य अपनी अवस्था सहित है तो निर्मल वीर्य शक्ति है। उसकी अवस्था भी निर्मल अवस्था सहित है। राग की रचना करे, यह वीर्य की विद्यमान अवस्था नहीं. यह अवस्था ही आत्मा की नहीं है।

श्रोता :- तो राग कौन रचता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- नपुंसक वीर्य रचता है। नपुंसक को वीर्य नहीं होता तो प्रजा नहीं होती। वैसे शुभभाव नपुंसक है तो उससे धर्म की प्रजा नहीं होती, आहाहा ! (यह बात तो) बहुत बार कहते हैं।

यहाँ तो प्रभुत्व शक्ति आदि में भावरूपता है तो प्रभुत्व शक्ति भी वर्तमान विद्यमान अवस्था सहित है। यहाँ तो यह शक्ति पर्याय का परिणमन सहित लेनी है। क्योंकि यहाँ सम्यक्‌दृष्टि की बात है न ? अथवा जिसने आत्मा का अनुभव किया उसको शक्ति की प्रतीति आयी, (उसे) शक्ति की वर्तमान अवस्था सहित ही (पर्याय) होती है। परिणमन में यह द्रव्य और शक्ति का भान हुआ तब पर्याय में प्रतीति आयी। लक्ष में वस्तु (अर्थात्) शक्ति और शक्तिवान पर्याय में ख्याल में न आया तो, ख्याल में आये बिना प्रतीत किसकी ? इसलिए अवस्था सहित दशा त्रिकाली द्रव्य और गुण की प्रतीत करती है। समझ में आया ? ऐसी बातें हैं। कहीं नज़र में (भी यह बात) आयी नहीं और कभी कुछ किया नहीं। करने का था वह किया नहीं और आत्मा को सर पर मारकर मार डाला। आहाहा ! राग में और राग में (मार डाला).

एकबार (जौहरी की बात) की थी। एक चोर जौहरी की दुकान पर जवाहरात लेने गया। मूल में चोर था। दस हजार रुपया उसके पास (था, तो उसे लेकर गया

और कहा), `जवाहरात लाओ' (जौहरी ने) पाँच-पचास हीरे निकाले। वह (चोर) चिकना मोम होता है उसे साथ लेकर गया था। मीण होता है न ? हिन्दी में मोम कहते हैं। मोम को जेब में लेकर गया था। जोहरी ने पचीस-पचास हीरे बाहर निकाले तो उसे खबर नहीं थी कि, (ये चोर है)। उसने पचास हजार, लाख का एक हीरा ले लिया। और मकान की पाट पर उसे चीपका दिया। (जौहरी) एक-एक (हीरे को) तपासे तो (हीरा) नहीं मिला। जौहरी को ऐसा लगा कि, अरे...! हीरा कहाँ गया ? चोर ने कहा, भाई देखो ! हमारे पास तो कुछ नहीं है। फिर दूसरी बार दस हजार रुपये लेकर आाया और कहा, भाई लाओ ! हीरा। उस दिन देखा था न ? वहाँ वह हीरा चिपका दिया था उसे ले लिया। दूसरी बार (गया तब) ले लिया। उस दिन तो कैसे ले सके ? इस प्रकार भगवान आत्मा ने राग के साथ आत्मा को चिपका दिया है और चोर हुआ है। राग से मुझे लाभ होगा, (ऐसा माननेवाला चोर है)। क्या कहा ? एक शक्ति में तो एक घंटा चला गया।

अनंत संख्या में (जो) प्रत्येक शक्ति है, वह प्रत्येक शक्ति में भाव शक्ति का रूप है तो प्रत्येक शक्ति वर्तमान विद्यमान अवस्था बिना रहती नहीं। प्रत्येक शक्ति की वर्तमान विद्यमान अवस्था होती है। क्यों ? (क्यों कि) यह शक्ति पर्याय में व्याप्ती है। द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्याप्ती है। अनादि से द्रव्य, गुण में तो है परंतु जब अनुभव हुआ तब इस शक्ति का निर्मल परिणमन हुआ। नहीं तो (द्रव्य) पर दृष्टि नहीं थी तब तक तो मलिन पर्याय पर रुचि थी। मलिन पर्याय की रुचि (है) तो (उसे) आत्मा की रुचि नहीं। इसलिये उसे निर्मल पर्याय विद्यमान हो, ऐसा उसे तो है नहीं। आहाहा ! थोड़ा सूक्ष्म है, आहाहा ! अपूर्व (बात है)। बात तो ऐसी है, आहाहा !

जिसको राग की, पुण्य परिणाम की मिठास है, उसको स्वभाव के प्रति द्वेष है। `द्वेष अरोचक भाव' और जिसको भगवान आत्मा और अनंत शक्ति के प्रति प्रेम है, उसको राग के प्रति प्रेम होता नहीं। ज्ञाता-दृष्टा रहता है। समझ में आया ? यह भावशक्ति के (कारण) अनंत शक्ति जो निर्मल है (वह) प्रत्येक शक्ति वर्तमान अवस्था सहित होती है। निर्मल (पर्याय की बात) है। उस अवस्था में व्यवहार का अभाव है। उसका नाम अनेकांत है। उसमें व्यवहार रत्नत्रय का अभाव है। आहाहा !

राग आता है उसका यहाँ ज्ञान है, यह अपनी पर्याय में है। यह अपनी पर्याय विद्यमान है, बस ! राग विद्यमान है, यह (बात) यहाँ नहीं। क्या कहा ? समझ में आया ?

भाव शक्ति की प्रत्येक शक्ति की निर्मल पर्याय विद्यमान होती है, तो विद्यमान पर्याय में ज्ञातापने की निर्मल पर्याय भी प्रगट है तो ये राग है उसका ज्ञान हुआ। इस

पर्याय में (ज्ञान) विद्यमान है। इसमें राग विद्यमान है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? कठिन पड़े। सूक्ष्म है। बात ऐसी है, आहाहा !

वीतराग स्वरूपी भगवान ! (उसकी) प्रत्येक शक्ति वीतरागरूप है और जब शक्ति और शक्तिवान का अनुभव हुआ, आहाहा ! तो वीतरागी पर्यायरूप - विद्यमान वीतराग पर्यायरूप यह शक्ति होती है। उसमें रागपना विद्यमान नहीं है। आहाहा ! धर्मी की विद्यमान अवस्था निर्मल है। मलिन अवस्था विद्यमान है, ऐसा नहीं है, आहाहा ! जो रागादि अवस्था हुई, उसको अपने से (जानते हैं)। राग है तो (जानते हैं, ऐसा) नहीं। अपने से स्वपरप्रकाशक ज्ञानपर्याय प्रगट होती है; उसमें राग को जानते हैं, ऐसा कहने का व्यवहार है। राग है तो राग को जानने की पर्याय हुई, ऐसा नहीं। अपनी पर्याय में स्वपरप्रकाशक की ताकत (है)। उस समय में राग और अपने को जाने, ऐसी पर्याय अपने से प्रगट होती है। उसमें व्यवहार का अभाव है, आहाहा ! समझ में आया ? उसको यहाँ भावशक्ति का स्वरूप कहते हैं। विशेष कहेंगे....

आहा हा ! दिगंबर संतों की वाणी तो देखो ! चीर-फाड़ करती हुयी त्रिकाली चैतन्यतत्त्व को बतलाती है। आहा हा ! शुद्धनय तो ध्यान करने को भी नहीं कहता; शुद्धनय पर्याय को भी स्वीकार नहीं करता, यह तो सदा ही आनंदस्वरूप शुद्ध परमात्मतत्त्व ही को स्वीकार करता है। आहा हा ! भाई, तेरे पूर्ण प्रभु की महिमा तो देख ! (परमागमसार - ५०२)

प्रवचन नं. २९
शक्ति-३४, ३५ दि. ०८-०९-१९७७
शून्यावस्थत्वरूपा अभावशक्तिः ।।३४।।
भवत्पर्यायव्ययरूपा भावाभावशक्तिः ।।३५।।

समयसार, शक्ति का अधिकार (चलता है)। शक्ति अर्थात् आत्मा का गुण, आत्मा गुणी है - शक्तिवान है। उसकी शक्ति को गुण कहो कि शक्ति कहो - उसका यह सामर्थ्य है। गुण है यह द्रव्य का सामर्थ्य है। सत् का गुण, उसका सत्त्व है। सत्य भगवान आत्मा! सत् अविनाशी, उसका सत्त्व-गुण-शक्ति-स्वभाव उसको यहाँ शक्ति कहने में आता है। समझ में आया ? भाव शक्ति तो कल चल गयी। एक घंटा चली थी। उसका तो कोई पार नहीं आये, ऐसी शक्ति (है)। आज तो अभाव शक्ति लेते हैं। बहुत अलौकिक बात है, भगवान !

'**शून्य (अविद्यमान) अवस्थायुक्ततारूप अभावशक्ति।**' आहाहा ! आत्मा की पर्याय में (आठ कर्म का अभाव है)। आत्मा द्रव्य है, उसकी शक्ति त्रिकाली ध्रुव है। उस की पर्याय में आठ कर्म का अभाव (है)। (उसकी) अवस्था आठ कर्म से शून्य है, आहाहा ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा ! (ऐसी) वस्तु की जिसको दृष्टि हुयी, 'मैं निर्विकल्प चैतन्य स्वरूप हूँ' ऐसी भाव शक्ति में अनंत गुण की वर्तमान निर्मल पर्याय विद्यमान है। समझ में आया ? भाव शक्ति में तो ज्ञान की निर्मल पर्याय विद्यमान है, दर्शन की है, चारित्र की है, आनंद की है, अस्तित्व की है, वस्तुत्व की है, प्रभुत्व की है, विभुत्व की है, आदि जितनी संख्या में अनंत शक्तियाँ हैं, (उन) सबकी भावशक्ति के कारण (वर्तमान निर्मल पर्याय विद्यमान होती ही है)। दूसरी शक्ति में भावशक्ति का रूप है। भावशक्ति अपने में (है) और पर

में भावशक्ति का रूप (है) तो प्रत्येक शक्ति वर्तमान निर्मलरूप से विद्यमान है। उसका नाम भावशक्ति कहते हैं। आहाहा ! यहाँ मलिनता की बात नहीं है। वह तो बाद में लेते हैं। आहाहा !

अभाव शक्ति का अर्थ, आत्मा में एक अभाव नाम का गुण, शक्ति, सत्त्व है। उस का कार्य क्या ? कि, (आत्मा में) आठ कर्म की अवस्था का अविद्यमानपना (यह अभावशक्ति का कार्य है)। आहाहा ! समझ में आया ? भगवान आत्मा ! आनंद की पर्याय में और अनंत गुण की निर्मल पर्याय में विद्यमान अवस्था (युक्त है)। परंतु आठ कर्म की अवस्था से शून्य है। आहाहा ! समझ में आया ? आठ कर्म हैं, वह तो जड़ है। परंतु उसका जो उदय है, उसमें जो विकार होता है (उससे शून्य है)। उस आठ (द्रव्य) कर्म से शून्य है तो भावकर्म से भी शून्य है। समझ में आया ?

'**शून्य (अविद्यमान) अवस्थायुक्ततारूप...**' भावकर्म की अवस्था का भी अविद्यमानपना है। आहाहा ! दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का जो विकल्प है, उससे तो आत्मा की अवस्था शून्य है, आहाहा !

श्रोता :- भावकर्म से (शून्य है) यह बराबर है। परंतु दया, दान के (भाव से भी शून्य है) ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- दया, दान है यह भावकर्म है। उसका स्पष्टीकरण हुआ। (अध्यात्म) पंचसंग्रह में आता है, दया, दान, शील, तप ये सब भाव-शुभ जोग बंध का कारण है। यह समयसार का निचोड़ ऐसा उसमें आता है कि, पुण्य-पाप से (आत्मा) भिन्न है। भाव पुण्य-पाप की (बात) है। जड़ पुण्य-पाप, वह (तो) कर्म में गया। आहाहा ! यहाँ लोगों को विरोध है। मूल शक्ति और शक्तिवान की खबर नहीं। वे कहते हैं कि, राग और दया, व्रत आदि को नहीं मानो तो तुम नरक में चले जाओगे। अरे प्रभु ! सुन तो सही, नाथ ! आहाहा ! समझ में आाया ?

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि, प्रभु ! तू वस्तु है कि नहीं ? तो वस्तु में बसी हुई - रही हुई शक्ति है कि नहीं ? वस्तु तो उसे कहते हैं कि, जिसमें शक्ति का वसवाट है। गाँव उसे कहने में आता है कि, जिसमें प्रजा बसती है। यहाँ कहते हैं कि, शील, दान, तप, भाव आदि तो विकारी पर्याय है - भावकर्म है। भगवान आत्मा में अभाव नाम का गुण - शक्ति है। उस कारण से आत्मा विकारी पर्याय से शून्य है। पर्याय में शून्य है। (आत्मा में) अभाव नाम की शक्ति है तो द्रव्य - गुण में तो (विकार से शून्यता) है ही। परंतु पर्याय में (भी) अभावपना का परिणमन होने से वह अवस्था विकारी परिणाम - भावकर्म से शून्य है, आहाहा !

ऐसी बातें हैं। क्या करें ? उसे खबर नहीं है इसलिये बहुत विरोध करते हैं। प्रभु ! विरोध मत कर ! नाथ ! तेरे घर की बात है। प्रभु ! तुझे खबर नहीं, भाई !

श्रीमद् में आता है, ``**कोई क्रिया जड़ थई रह्यां, शुष्क ज्ञान मां कोई, माने मार्ग मोक्ष नो करुणा उपजे जोई**'' ``**कोई क्रियाजड़ (थई रह्यां)**'' (अर्थात्) शुभ और अशुभ भाव (है, उसमें भी) मूल तो शुभ भाव में (धर्म माननेवाला) क्रियाजड़ है। राग की क्रिया में रुककर मुझे धर्म होगा, (ऐसा माननेवाला) क्रियाजड़ है। और ``**शुष्कज्ञान मां कोई**'' (अर्थात्) क्षयोपशम से चैतन्य की बातें करें परंतु अंदर में राग से रहित परिणमन होना, वह है नहीं तो वह शुष्कज्ञानी है, आहाहा ! ``**कोई क्रियाजड़ थई रह्यां,**'' गुजराती भाषा है। ``**शुष्कज्ञानमां कोई**'' ज्ञाननी वात करे। परंतु राग नी रुचिनो प्रेम खसे नहीं। अंदर से शुभराग और अशुभराग का प्रेम खसे नहीं, आहाहा ! उसे शुष्कज्ञानी कहने में आता है, आहाहा ! क्योंकि आत्मा में विकारी परिणाम का अभाव स्वभावरूप भाव है। विकारी परिणाम की अवस्था का भाव आत्मा की पर्याय में है, उसको यहाँ आत्मा ही नहीं कहते। समझ में आया ?

यह तो आत्मदर्शन की बातें चलती हैं न ? आत्मा और आत्मा की शक्तियाँ और वर्तमान में उस शक्ति का द्रव्य, गुण, पर्याय में व्याप्त होना। जो शक्ति (है) (उसका) पर्याय में अभावपना का परिणमन होता है। किसका अभाव ? आठ कर्म के अभावरूप शून्य अवस्था है। आहाहा ! आत्मा ज्ञानावरण कर्म की अवस्था से शून्य है। आत्मा दर्शनावरणी कर्म से शून्य है। आत्मा वेदनीय कर्म से शून्य है, मोहकर्म से शून्य है, दर्शनमोह से शून्य है, चारित्रमोह से शून्य है, आहाहा ! नामकर्म की ९३ प्रकृति है उससे शून्य है। गोत्रकर्म है परंतु उससे आत्मा शून्य है, आहाहा !

लोग यहाँ कहते हैं कि, कर्म हमको नड़ते हैं। (हिन्दी में) नड़ते हैं को क्या कहते हैं ? हैरान करते हैं। कर्म हैरान करते हैं, अरे भगवान ! `कर्म बिचारे कौन ? भूल मेरी अधिकाई' आता है कि नहीं ? चंद्रप्रभु भगवान की स्तुति में आता है। `कर्म बिचारे कौन ? भूल मेरी अधिकाई' बिचारे कर्म जड़ है। उसकी अवस्था से तो आत्मा शून्य है। पर की अवस्था से तो शून्य है परंतु अभाव शक्ति के कारण उसके (जड़ कर्म के) निमित्त से हुई विकारी दशा, उससे भी शून्य है, आहाहा ! अपना आनंद स्वभाव से अशून्य है और राग स्वभाव से शून्य है, आहाहा ! यह अभाव (हुआ), ओहोहो ! अमृतचंद्राचार्य ने गज़ब काम किया है !

घर में भाई की शादी हो और छोटा भाई साल डेढ़ साल का हो तो उसे झुलाये नहीं तो रोता है। उसे खबर नहीं है कि भाई की शादी है तो रोया नहीं जाता ।

उसे खबर है ? वैसे यहाँ आत्मा की शादी चल रही है, भाई ! तेरे भाई की शादी चल रही है। आत्मा आनंद का नाथ उसकी शादी (अर्थात्) अंदर एकाग्रता (होनी) उसकी (बात) चलती है। क्या कहा ? कि आठों कर्म की जो १४८ प्रकृति (है, उससे आत्मा शून्य है)। आहाहा ! नामकर्म में जो तीर्थंकर प्रकृति है उसकी अवस्था से आत्मा शून्य है, आहाहा ! क्योंकि भावशक्ति के कारण अपनी पवित्र अनंत शक्तियों की विद्यमानता - मौजूदगी है। वहाँ अपवित्र नामकर्म की कर्म प्रकृति की अवस्था से (आत्मा) शून्य है, आहाहा !

दूसरी बात। आता है न ? `सोलश कारण भावना भाय, सोलह तीर्थंकर पद पाय' तो (यहाँ तो) कहते हैं कि, तीर्थंकर के कारणभूत सोलह भावना जो है, उस भावना से भगवान (आत्मा) शून्य है, आहाहा ! समझ में आया ? यह बात कठिन पड़ती है। लोगों को सुनने नहीं मिलती है। इसलिये परंपरा टूट गई (और) गुरुगम रहा नहीं। समयसार में जयचंद पंडित ने पीछे लिखा है, समयसार की सत्य बात का गुरुगम छूट गया। आहाहा ! समझ में आया ? समयसार में पीछे लिखा है। ``**इस ग्रंथ के गुरु संप्रदाय का (- गुरुपरंपरागत उपदेश का) व्यच्छेद हो गया है,...**'' आहाहा ! हिन्दी में ६०४ पन्ना है। उसकी आखिर की पंक्ति है। ``**इस ग्रंथ के गुरु संप्रदाय का (- गुरुपरंपरागत उपदेश का) व्यच्छेद हो गया है,...**'' आहाहा ! समझ में आया ? ``**समयसार अविकार का, वर्णन कर्ण सुनन्त; द्रव्य - भाव - नोकर्म तजि, आत्मतत्त्व लखंत**'' उसके नीचे है। समझ में आया ? यह तो अलौकिक बातें (हैं), बापू ! आहाहा ! लोगों को खटकती है कि, दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा वह धर्म नहीं ? अरे... भगवान ! सुन तो सही नाथ ! तेरे में पवित्रता भरी है तो उसकी पर्याय पवित्र होती है। समझ में आया ? अपवित्रता से तो (आत्मा) शून्य है, आहाहा ! समझ में आया ?

द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म इन तीनों से शून्य है। आठ कर्म से अभावरूप शून्य है, भावकर्म से अभावरूप शून्य है और नोकर्म - यह शरीर, औदारिक आदि पाँच शरीर हैं (उससे भी अभावरूप शून्य है)। औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तेजस (और) कार्मण (ऐसे पाँच शरीर है)। कार्मण में उत्कृष्ट १४८ प्रकृति कोई ज्ञानी को होती है। समझ में आया ? क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति तो ज्ञानी को ही होती है, अज्ञानी को तो होती ही नहीं। वैसे आहारक (शरीर) का बंधन भी समकिती को होता है, अज्ञानी को होता नहीं। परंतु कोई समकिती को सत्ता में १४८ प्रकृति होती है। मिथ्यादृष्टि को १४८ (प्रकृति) नहीं होती है, थोड़ी (कम) होती है। समझ में आया ?

यहाँ तो इतना कहना है कि, जो प्रकृति से बंधन पड़े वह भाव, आत्मा में अभाव शक्ति के कारण उस भाव की शून्यता है, आहाहा ! ऐसा सूक्ष्म मार्ग, बापू ! उसे नहीं

बैठता। अंदर महा प्रभु पवित्रता का सागर उछल रहा है, आहाहा !

चैतन्य रत्नाकर पवित्रता का पिंड का नाथ, प्रभु ! वह नाथ पवित्रता का रक्षक है। नाथ किसको कहते हैं ? जो कोई चीज़ है उसकी रक्षा करे और नहीं प्राप्ति हुई चीज़ को मिला दे। योगक्षेम के करनेवाले को नाथ कहते हैं। योगक्षेम (अर्थात्) वर्तमान जो दशा है उसकी रक्षा करे। निर्मल (पर्याय की बात है)। और पूर्ण केवलज्ञान नहीं है, उसको लाये, मिला दे। आहाहा ! ऐसा भगवान (आत्मा) अपना नाथ है, समझ में आया ? कितनी स्पष्ट बात है !

४७ शक्ति में तो इतना भर दिया है ! आहाहा ! अमृतचंद्र आचार्य ने तो गज़ब काम किया है ! कुंदकुंदाचार्य ने पंचमकाल में तीर्थंकर जैसा काम किया है (और) इन्होंने गणधर जैसा काम किया है। आहाहा !

(यहाँ) कहते हैं कि, शक्ति में शब्द तो इतना है, पाठ में तो इतना है, है न ? ``**शून्यावस्थत्वरूपा अभावशक्ति**'' अक्षर तो कितने हैं ? सोलह अक्षर है परंतु उसके अर्थ में तो बहुत गंभीरता है। दीपचंदजी ने शक्ति का वर्णन किया है। समझ में आया ? दूसरे किसी ने किया नहीं है। एक अमृतचंद्राचार्य ने शक्ति का वर्णन किया है और शक्ति का स्पष्टीकरण दीपचंदजी ने किया ऐसा दूसरे कोई स्थान में आता नहीं। समयसार नाटक में थोड़े नाम आते हैं।

भगवान आत्मा महा प्रभु है। वह चैतन्य भगवान है। आहाहा ! उसका जिसको अंतर में निर्विकल्प दृष्टि होकर भान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ और अंदर में सम्यग्दर्शन की शक्ति जो श्रद्धा है, उसके परिणमन में सम्यग्दर्शन की पर्याय (प्रगट हुई), उस पवित्रता की - भावशक्ति की विद्यमानता में और कर्म के निमित्त से (हुए) राग आदि (और) मिथ्यात्व आदि की शून्यता (है), आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा मार्ग है, भाई ! क्या कहा ? ``**शून्य (- अविद्यमान) अवस्थायुक्त...**'' नहीं अवस्थायुक्त ऐसे (कहना है)। किसकी (अवस्था नहीं) ? कि कर्म की, शरीर की। यह औदारिक आदि (शरीर की अवस्था नहीं)। यह औदारिक शरीर है। यह (उसकी) अवस्था है, इस अवस्था से भगवान शून्य है। समझ में आया ? यह अवस्था ऐसी करते हैं, वह आत्मा नहीं (करता)। समझ में आया ? क्योंकि यह अवस्था आत्मा में शून्य है। यह शरीर की अवस्था आत्मा में शून्य है, अभाव शक्ति है, (उस कारण से)। आहाहा ! समझ में आया ?

मुनि को आहारक शरीर होता है न ? (तो उस) आहारक शरीर की अवस्था से चैतन्य तो शून्य है। आहाहा ! गज़ब बात है ! (मुनिराज को) विकल्प आता है कि, आहारक शरीर हो और मैं भगवान के पास जाऊँ। परंतु कहते हैं कि, विकल्प और

आहारक शरीर की अवस्था, दोनों आत्मा में नहीं हैं। और (ऐसे आहारक शरीरधारी मुनिराज) भगवान के पास जाते हैं तो (कोई प्रश्न) पूछे बिना उसका समाधान हो जाता है। अंदर में ऐसी योग्यता है। आहाहा ! आहारक शरीर हुआ तो मेरे पास आया, ऐसा भी नहीं और मेरे पास आने का विकल्प आया, वह भी तेरे में नहीं, आहाहा ! ऐसा मार्ग ! विद्यमान अवस्थायुक्त यह भाव (शक्ति) और विद्यमान अवस्थायुक्त अभाव (शक्ति), आहाहा ! समझ में आया ? ``**शून्य (- अविद्यमान) अवस्थायुक्त...**'' शून्य अवस्थायुक्त (यानी) शून्य अवस्था सहित। शब्द ऐसा है न? शून्य अवस्था सहित। यानी कि आत्मा आठों कर्म की पर्याय की अवस्था से शून्य है। ऐसी अवस्थायुक्त है, आहाहा !

अब यहाँ पुकार करते हैं कि, अरे...! हमें कर्म हैरान करते हैं। हमको कर्म से विकार होता है। अरे...प्रभु ! तेरा (विकार) भाव (जो) है, कर्म के निमित्त के आधीन होकर तू जो भाव करता है, वह भी स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से तो उस भाव का भी तेरे में अभाव है, आहाहा !

यहाँ तक चैतन्य तत्त्व में जाना - पहुँचना कि, यह भगवान आत्मा (है)। भावशक्ति के कारण अनंत गुण की निर्मल पर्याय विद्यमान है और अभावशक्ति के कारण कर्म और शरीर से (शून्य है)। पाँच शरीर में कार्मण शरीर आता है न ? जीव कार्मण शरीर की अवस्था से शून्य है। आहाहा ! समझ में आया ? अज्ञानी को जो विकार होता है, वह विकार सहित है। अज्ञानी कर्ता - कर्म मानता है। परंतु धर्मीजीव जिसको आत्मा की दृष्टि हुई, वह तो राग की अवस्था से मेरी दशा शून्य है, ऐसा मानते हैं, आहाहा ! समझ में आया ? राग से भिन्न होकर भेदज्ञान हुआ वहाँ भेदज्ञान में भगवान राग की अवस्था से शून्य है। आहाहा ! राग सहित है, ऐसा पर्यायदृष्टि में है। परंतु वह तो पर्यायदृष्टि में जिसको द्रव्य की दृष्टि नहीं और द्रव्य की खबर नहीं, (उसको विकार सहित है), आहाहा ! एक समय की पर्याय में - अवस्था में (विकार) सहित जिसको अपने अस्तित्व का स्वीकार है, उसको विकार सहित अवस्था है। वह परिभ्रमण है, दुःख है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा अनंत शक्तियों का भण्डार - गोदाम (है)। आहाहा ! इस शक्ति के गोदाम में अंदर अभाव शक्ति भी पड़ी है। उस द्रव्य पर, वस्तु पर ध्येय लगाकर, जो द्रव्य का भान हुआ, (वह) दशा कार्मण की १४८ प्रकृति की अवस्था से भी शून्य है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा गले उतारना (कठिन पड़ता है)। है और नहीं है ? किस अपेक्षा से बात है ? प्रभु ! तेरी चीज़ जो है, आत्मा ! प्रभु ! उसकी अनंत शक्तियाँ हैं। उन अनंत शक्तिओं का एकरूप आत्मा ! उसका जिसको अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन

हुआ, राग से भिन्न भान हुआ, इसे यहाँ कहते हैं कि, इस अभावशक्ति (के कारण) पर से शून्य है। अज्ञानी तो अपने में (विकार) है, ऐसा मानते हैं। विकारी अवस्था (और) कर्म का मेरे (साथ) संबंध है, ऐसा अज्ञानी मानते हैं, आहाहा ! ऐसी बात (है) !

एक ओर गोमट्टसार में ऐसा कहे कि, ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञान को रोके, ज्ञान को आवरण करे। भाषा ऐसी आयी है। आहाहा ! समझ में आया ? वह तो निमित्त का कथन है। अपनी पर्याय में द्रव्यस्वभाव की दृष्टि का जब अभाव है, तो हीन अवस्थारूप अपने कारण से परिणमन करता है, तो उसमें ज्ञानावरणीय कर्म निमित्त कहने में आता है। निमित्त कहने में आता है, उसको कहा कि, उसने (कर्म ने) आवरण किया। वह तो व्यवहार का कथन है। भाव घाती करनेवाला (कहने में आता है), आहाहा ! ग़ज़ब बात है ! ज्ञान की हीन दशा - भावघात करनेवाला ज्ञानावरणीय द्रव्यघाती निमित्त कहने में आता है। परंतु जहाँ भावघाती पर्याय ही मेरे में नहीं (तो द्रव्यघाती तो दूर रहा)। द्रव्यघाती कर्म तो मेरे में है ही नहीं। वह द्रव्यकर्म में गया। परंतु भावघाती जो विकृत अवस्था है, उसका भी मेरी चीज़ में अभाव है, शून्य है, आहाहा ! समझ में आया ? भाई ! मार्ग ऐसा है। मार्ग नहीं, यह तत्त्व ही ऐसा है।

चैतन तत्त्व भगवान आत्मा ! आहाहा ! इस आत्मा का जिसको आत्मज्ञान हुआ... आत्मज्ञान कहते हैं न ? उसको कर्म का ज्ञान, राग का ज्ञान, पर्याय का ज्ञान - ऐसा नहीं कहते हैं। आहाहा ! आत्मज्ञान नाम आत्मा अनंत शक्ति का एकरूप, उसका जिसको स्वसन्मुख से अंतर ज्ञान हुआ, तो कहते हैं कि, ज्ञानी को तो कर्म की अवस्था (जो) निमित्त से हुई, उससे भी (वे) शून्य हैं। आहाहा ! ऐसी बातें (हैं) ! सर्वज्ञ के अलावा यह (बात) कहीं हो नहीं सकती।

एक तो कर्म है, ऐसा स्वीकार करते हैं। (दूसरा) कर्म के निमित्त से अवस्था है, ऐसा स्वीकार करते हैं। परंतु स्वरूप में नहीं है, ऐसा (ज्ञानी को) स्वीकार है, आहाहा ! जिसको स्वरूपदृष्टि हुई, स्वरूपदृष्टि (अर्थात्) स्वभावदृष्टि (हुई) उसको स्वरूपदृष्टि में तो अनंत शक्तिरूप स्वरूप, इसकी पर्याय में निर्मल परिणमन विद्यमान है, आहाहा !

(ज्ञानी को) आनंद की अवस्था विद्यमान है, ईश्वर की अवस्था, प्रभुता की (अवस्था) विद्यमान है, स्वच्छता की (अवस्था) विद्यमान है, कर्ता - कर्म आदि शक्तियों की वर्तमान निर्मल पर्याय (विद्यमान) है। उसमें कर्म के निमित्त से (हुई) शरीर की अवस्था - पाँचों शरीर (और) कर्म की १४८ प्रकृति - उसकी अवस्था से प्रभु शून्य है, आहाहा !

प्रवचनसार में लिया है। प्रवचनसार में अस्ति - नास्ति लेकर, स्वरूप से अस्ति है और पररूप से नास्ति है। ऐसा अर्थ करने के बाद संस्कृत टीका में ऐसा (लिया)

कि, अपने से अशून्य है और पर से शून्य है। समझ में आया ? पहले ऐसे लिया कि, अपने से अस्तित्व है और पर से नास्तित्व है। बाद में उसको स्पष्ट करते हुए (कहा)। अपने से अशून्य है और पर से शून्य है। प्रवनसार में सप्तभंगी आती है, वह याद आ गई। आहाहा ! यह शून्य शब्द आया न ? आहाहा !

भावशक्ति में विद्यमान शब्द था और यह शून्य शक्ति (कही)। आहाहा ! चैतन्य की नज़र तेरा स्वभाव - तेरे निधान में (गई नहीं)। आहाहा ! वह तो कहा था न ? कि जैसे नरक में स्वर्ग के सुख की गंध नहीं, स्वर्ग में नरक के दुःख की हयाती नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? सूर्य के प्रकाश में अंधकार का अभाव है, (अंधकार से) शून्य है। एक परमाणु में पीड़ा का अभाव है। ऐसे भगवान आत्मा में विकार और कर्म का अभाव है। आहाहा ! अरे...! ऐसा मार्ग उसे बैठता नहीं और मैं पराधीन (हूँ ऐसा मानता है)। (परंतु) इसमें ईश्वरशक्ति है। प्रवचनसार ४७ नय में एक ईश्वर नाम की शक्ति (नय) है। बालक जैसे धावमाता का पराधीन होकर दूध पीता है। (धावमाता) दूध पिलाती है। तुम्हारी भाषा में क्या है ? धावमाता होती है न ? (बालक) धावमाता का पराधीन होकर दूध पीता है. प्रवचनसार में दृष्टांत दिया है। समझ में आया ? ४७ नय में ३४ वां नय है। ``**आत्मद्रव्य ईश्वरनय से परतंत्रता भोगनेवाला है, धाय की दुकान पर दूध पिलाये जानेवाले राहगीर को बालक की भाँति**'' मुसाफिर का बालक हो, उसकी माता को दूध नहीं (आता) हो, और गाँव में आये हो तो धावमाता के पास (बालक को) दूध पिलाते हैं। ऐसे भगवान आत्मा, अपनी पर्याय में निमित्त के आधीन होकर विकार करता है, उसका नाम ईश्वरनय (है), आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, जब ज्ञान का अधिकार हो तो ज्ञान से जानने में आता है कि, मेरी पर्याय में विकृतपना है। उससे मैं शून्य नहीं हूँ। (विकार की) अस्ति है। वह तो ज्ञान जानता है। परंतु दृष्टि का विषय और दृष्टि का जब कथन चले तब तो अशुद्धता की विद्यमानता उसमें है ही नहीं। समझ में आया ? समयसार में तो शक्ति का वर्णन है न ? तो शक्ति तो द्रव्य की शक्ति है। द्रव्यदृष्टि का वर्णन है और प्रवचनसार में ज्ञानप्रधान कथन है। वहाँ ४७ नय उस प्रकार से लिये हैं। समझ में आया ? यहाँ कर्ता आदि (शक्ति में) ऐसा आयेगा कि, आत्मा रागादि का कर्ता है ही नहीं। वह कर्ताशक्ति है, वह निर्मल परिणमन है उसका कर्ता है। समझ में आया ? यहाँ दृष्टिप्रधान (कथन में) द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से ऐसा वर्णन आता है। परंतु दृष्टि के साथ जो ज्ञान हुआ तो ज्ञान अपने में जितना राग के कणरूप - अंशरूप परिणमन है उसका कर्ता है, ऐसा ज्ञान जानता है। आहाहा ! समझ में आया ?

मुनि भी ऐसा जानते हैं। अमृतचंद्र आचार्य ने (लिखा) न ? `कल्माषितायाः' यहाँ उसकी ना कहते हैं। कल्माषित अवस्था आत्मा में है (ही नहीं)। तीसरे श्लोक में तो ऐसा कहा (कि), मैं वस्तुस्वरूप से - द्रव्यस्वरूप से तो शुद्ध हूँ। पंरतु मेरी पर्याय में अनादिकाल से `कल्माषितायाः' - अशुद्धता चली आती है, आहाहा ! वही अमृतचंद्र आचार्य शक्ति का वर्णन करनेवाले ऐसा कहते हैं कि, अनादि से मेरी पर्याय में `कल्माषितायाः' - अशुद्धता चली आती है। आहाहा ! मेरी पर्याय में दुःख का वेदन है, आहाहा ! यहाँ कहते हैं कि, दुःख के वेदन की अवस्था का (आत्मा में) अभाव है। जिस अपेक्षा से कहा है उस अपेक्षा से जानना चाहिए न ! आहाहा ! समझ में आया ?

भाई ! तेरी चीज़ को समझना - जानना (यह) कोई अलौकिक चीज़ है ! लौकिक से कोई प्राप्त नहीं होता। द्रव्यसंग्रह में व्यवहारनय को लौकिक कहा है। द्रव्यसंग्रह में लौकिक (कहा है)। टीका में व्यवहारनय को कथनमात्र कहा है। पाँचवें श्लोक में कथनमात्र (कहा है)। आहाहा ! व्यवहार से कहा है, उसको (लोग) पकड़ ले। मोक्षमार्ग प्रकाशक में आया न ? कि, सिंह को बताना हो और सिंह न हो तो बिल्ली को सिंह कहे। (बिल्ली को) सिंह कहे तो (बिल्ली) सिंह नहीं है। मात्र उसकी पहचान कराने के लिये (कहते हैं कि) ऐसा सिंह होता है। ऐसा क्रूर (होता है)। पकड़, पकड़ में फ़र्क है। (सिंह) अपने बच्चे को भी दाँत में पकड़े और चूहे को भी पकड़े - (लेकिन) दोनों में फ़र्क है। पकड़, पकड़ में फ़र्क है। चूहे को तो दाँत से दबाती है और अपने बच्चे को पकड़ती है तो (नरमी से पकड़ता है)। बिल्ली सात दिन के बाद बच्चे को घूमाती है न ? (उस समय) मुँह से लेकर घूमती है। परंतु नरम-नरम (दाँतों से पकड़ती है)। समझ में आया ? हमने तो सब नज़रों से देखा है न !

दामनगर में अपासरा है। उसके सामने एक किराणा की दुकान थी। उसमें बिल्ली जाये। बड़ा चूहा अपासरा में आये तो उसे खाने के लिये उसके पीछे जाये। (बाहर आये तब मुँह में चूहा) लटकता है। आहाहा ! वह तो ऐसे दबाकर (पकड़ती है तो) मर ही जाता है। और बिल्ली अपने दो-चार बच्चे हो तो एक को धीरे-धीरे लेती (है), समझ में आया ? ऐसे ज्ञान राग की अवस्था से शून्य है। राग को पकड़ते नहीं। (बिल्ली) चूहे को जैसे पकड़ती है, ऐसे (ज्ञानी राग को) पकड़ते नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बातें हैं !

यह तो सब देखा है न ! एक-एक बात को ऐसे विचार करते-करते देखा है। वहाँ ऐसे देखा है कि, यह किस प्रकार से चलता है ? इतना बड़ा चूहा मुँह में पकड़कर निकले। हम अपासरा में पाट पर बैठे हो तो अपासरा में से निकले।

यहाँ कहते हैं कि, भगवान आत्मा में राग की पकड़ नहीं है। राग से तो शून्य है। आहाहा ! राग होता है, व्यवहार आता है। क्या कहा ? धर्मी को भी दया, दान, पूजा, भक्ति का भाव आता है परंतु उस भाव से पर्याय शून्य है। आहाहा ! ऐसा द्रव्य का स्वभाव है। अभावशक्ति का वर्णन है न ? यह द्रव्य का स्वभाव है। वह अभाव शक्ति (स्वरूप) स्वभाव है। आहाहा ! मार्ग ऐसा है ! भाई ! लोगों को यह नया लगता है। लोगों को ऐसा लगता है कि, नया मार्ग निकाला। भाई ! नया नहीं है, प्रभु ! तुझे खबर नहीं, बापू ! तेरी शक्ति के स्वभाव का वर्णन ही यह है। समझ में आया ?

तुम ऐसा कहते हो कि, दया, दान, व्रत नहीं करे, तो फिर (लोग) पाप करेंगे। भाई ! यहाँ वह प्रश्न ही कहाँ है ? यहाँ तो दया, दान, व्रत का शुभभाव है उसकी रुचि छोड़। क्योंकि यह अवस्था तेरे द्रव्य, गुण और पर्याय में है ही नहीं। पर्याय में - सम्यक् पर्याय में यह अवस्था नहीं है। आहाहा ! बापू ! यह तो वीतराग तीनलोक के नाथ सीमंधर भगवान बिराजते हैं, आहाहा ! उनके (श्रीमुख से) यह बात आयी है। समझ में आया ?

प्रभु तो ऐसा कहते हैं, भाई ! तेरे द्रव्य, गुण में तो अशुद्धता नहीं परंतु तेरी पर्याय (भी) अभावशक्ति के कारण अशुद्धता से शून्य है, आहाहा ! सम्यक्‌दृष्टि को ऐसा भासित होता है, ऐसा कहते हैं। मिथ्यादृष्टि को ऐसा भासित नहीं होता, (उसे) राग सहित भाषित होता है। (स्वरूप की) शुद्धता मेरी है (और) शुद्धता से परिणमन हुआ, उसमें अशुद्धता तो शून्य है, ऐसी दृष्टि का जिसको विरह है, उसको अशुद्धता भासित होती है। परंतु सम्यक्‌दृष्टि का जिसको सद्भाव है, (उसे राग सहित भासित नहीं होता) आहाहा ! ऐसा मार्ग है ! यहाँ तो प्रसन्नता का अंकुर फूटे वह आत्मा की विद्यमानता है। दुःख के विकल्प से तो शून्य है, प्रभु ! आहाहा ! समझ में आया ?

``**शून्य (- अविद्यमान) अवस्थायुक्ततारूप अभावशक्ति। (अमुक अवस्था...)**'' अमुक अवस्था यानी विकार अवस्था। ``(**...जिसमें अविद्यमान हो...**)'' जिसमें (विकारी अवस्था) नहीं हो। ``(**...उसरूप अभावशक्ति**)।'' आहाहा ! गज़ब काम किया है !

संतों ने जगत को शांति का (मार्ग दिखलाया है)। शांति का मार्ग दिखाये उसे संत कहते हैं। आहाहा ! यहाँ तो शांति...शांति...शांति... प्रभु ! तेरे में तो शांतरस पड़ा है न ? तो पर्याय में शांतरस आता है, उसका नाम धर्म है। रागादि कषाय तो अशांत है, दुःख है, आहाहा ! दया, दान, व्रत, तप का विकल्प उठता है, वह तो दुःख है। प्रभु ! तुझे खबर नहीं, आहाहा ! इस दुःख की अवस्था से प्रभु की अवस्था शून्य है।

प्रभु ! भगवान आत्मा ! प्रभुत्व शक्ति का धरनेवाला ईश्वर (स्वरूप है)। आहाहा !

वह ईश्वर शक्ति (४७ नय में कही, वह) दूसरी और यह ईश्वर शक्ति दूसरी, इस शक्ति में प्रभुत्व शक्ति है। यह अस्ति शक्ति है। दृष्टि को विषय में अस्ति प्रभुता शक्ति है, तो प्रभुता शक्ति से पर्याय में प्रभुता आती है। और ईश्वरनय अभी जो कहा, वह पर्याय के लक्ष से (अपेक्षा से) है। यह नय गुण में नहीं है, द्रव्य में नहीं है। पर्याय में निमित्ताधीन होने की योग्यता है। कोई शक्ति नहीं है कि विकाररूप करे। अनंत शक्ति में कोई शक्ति विकाररूप हो, ऐसी कोई शक्ति नहीं। तो विकार होता है न ? तो कहते हैं कि, वह पर्याय की योग्यता से विकार होता है। (उसका) ज्ञान कराने को बात की है, आहाहा ! परंतु जहाँ दृष्टि का विषय और द्रव्य का स्वभाव का वर्णन (है), वहाँ अशुद्ध अवस्था से प्रभु तू शून्य है। आहाहा !

अनंत गुण की पवित्र पर्याय की विद्यमानता में अमुक गुण की (ही) अशुद्धता (है), सब गुण अशुद्ध नहीं होते। अस्तित्व गुण, वस्तुत्व गुण, कभी अशुद्ध नहीं होते। समझ में आया ? अनंत गुण की शुद्धता की विद्यमान अवस्थावाली प्रभु तेरी चीज़ है और अशुद्धता से तो तुम शून्य हो, आहाहा ! अशुद्धता (है) तो सर्व गुण की अशुद्धता तो होती नहीं। अमुक गुण की अशुद्धता होती है, समझ में आया ?

एक बार बहुत वर्ष पहले २१ बोल निकाले थे। बहुत वर्ष पहले तो सब विचार चलते थे। (हम) सायला में थे। रात्रि में मकान के बाहर चर्चा करते थे कि, अनंत शक्ति अशुद्ध नहीं हैं। अनंत शक्ति तो शुद्ध ही हैं। (मात्र) शक्ति नहीं, शक्ति का परिणमन भी शुद्ध है। परंतु कोई - कोई शक्ति में जैसे (कि), छ (सामान्य गुण है, उसमें) अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व उसकी पर्याय निर्मल है। मात्र प्रदेशत्वगुण की पर्याय मलिन है। एक प्रदेशत्व गुण की (पर्याय में) अशुद्धता (है)। अशुद्धता है, यह ज्ञान कराने को कहा, परंतु द्रव्य के स्वभाव की दृष्टि में उस प्रदेश की अशुद्धता का भी अभाव है, आहाहा !

यह भगवान आत्मा ज्ञानचंद्र है। शीतल स्वरूप...शीतल स्वरूप... ज्ञानचंद्र, शीतल स्वरूप है। रात्रि में चंद्रमा में शीतलता होती है न ? आहाहा ! भगवान आत्मा शीतल स्वरूप है। शांत...शांत...शांत (स्वरूप है)।

अरे प्रभु ! तुझे तेरी महत्ता ओर बड़प्पन की खबर नहीं और तुझे अशुद्धता से धर्म होगा (ऐसा मानकर) प्रभु तूने प्रभु का खून कर दिया है। तेरी चीज़ की शुद्धता का तूने खून कर दिया। शुद्ध की ताकत से (पर्याय में) शुद्धता होती है। ऐसा नहीं मानकर, अशुद्धता से शुद्धता होती है (यह विपरीत मान्यता है)। आहाहा ! व्यवहार करते - करते शुद्धता होती है (यह विपरीत मान्यता है)। आहाहा ! दरकार कहाँ है ? वैसे के वैसे ही जय नारायण (करते हैं)। रात्रि को नहीं कहा ? जैसा हम सुने ऐसा माने। बात

तो (तुम्हारी) सच्ची है परंतु (यथार्थ) निर्णय करना चाहिए न ?

यहाँ तो कहते हैं कि, प्रभु ! एक बार सुन तो सही नाथ ! तेरा आत्मा पवित्रता का भण्डार है। उसमें से तो पवित्रता की पर्याय आती है। द्रव्य में - शक्ति में कोई अशुद्धता नहीं है। मात्र पर्याय की योग्यता से एक समय के लिये विकृत अवस्था होती है। उसे यहाँ द्रव्यदृष्टि का विषय बताने में अशुद्ध अवस्था से (आत्मा) शून्य है, ऐसा बताना है।

अनंत शुद्ध शक्तिओं का शुद्ध परिणमन विद्यमान है, उसमें थोड़ी अशुद्धता २-४ या २१ गुण आदि में है। समझ में आया ? इससे यह शून्य है, आहाहा ! २१ गुण में अशुद्धता (है)। एक दिन सायला में कहा था। राजकोट पहले चातुर्मास में गये थे। उस समय की बात है। ९५ की (साल की) बात है। यहाँ तो कुछ लिखने की आदत नहीं है।

यहाँ कहते हैं कि, अनंत गुणों में से कोई गुण में (अशुद्धता होती है)। जैसे कि दर्शन गुण है, उसमें अशुद्धता होती है, चारित्र गुण में अशुद्धता होती है, आनंद गुण में अशुद्धता होती है। परंतु अस्तित्व, वस्तुत्व आदि गुण में अशुद्धता नहीं होती। अभवी को भी उन (गुणों में) अशुद्धता नहीं होती। समझ में आया ? समझ में आता है ? आहाहा ! अभी गुणों में अशुद्धता नहीं होती है। कोई-कोई गुणों में ही अशुद्धता होती है। बाकी अनंत-अनंत गुण तो शुद्ध है और उसकी पर्याय भी शुद्ध है, आहाहा !

आत्मा में एक अभाव शक्ति पड़ी है। उस अभाव शक्ति का जहाँ स्वीकार हुआ अर्थात् अभाव शक्ति को धरनेवाला भगवान उसका स्वीकार हुआ, तो पर्याय में अभाव शक्ति के कारण अशुद्धता का शून्यपने का परिणमन है, आहाहा ! अशुद्धता है, यह ज्ञान में ज्ञेय के रूप में - परज्ञेय के रूप में जानने में आती है। समझ में आया ? अपनी पर्याय में अशुद्धता (है), (इसलिये वह) स्वज्ञेय है, ऐसा नहीं। क्या कहा ? समझ में आया ? फिर से लेते हैं।

अपना द्रव्य है, वस्तु शुद्ध है, गुण शुद्ध है और पर्याय भी शुद्ध है। उसको ही यहाँ पर्याय कहते हैं। अब अशुद्धता जो थोड़े गुण की है, उसका भी यहाँ अभाव है, शून्य है। परंतु वह (अशुद्धता) है न ? तो (अशुद्धता) है तो (उसे) परज्ञेय के रूप में जानते हैं, आहाहा ! फुरसद कहाँ है ? बापू ! प्रभु का मार्ग तो यह है, भाई ! आहाहा ! अशुद्धता के कर्तव्य में लोगों को चढ़ा दिया है और शुद्धता का भण्डार (एक ओर) पड़ा रहा। क्या कहा ? अशुद्ध व्यवहार दया, दान के परिणाम में चढ़ा दिया। शुद्धता का भण्डार भगवान है उसको छोड़ दिया, समझ में आया ? (यह) अभाव शक्ति हुई। आज

भी ५५ मिनिट तो हो गई। भाव (शक्ति में) प्रत्येक शक्ति की पवित्र विद्यमान पर्याय गिनने में आयी। अभाव (शक्ति में) कोई भी अशुद्धता है, उसकी शून्यता गिनने में आयी है। भाव (शक्ति में) अशून्यता नाम पवित्र विद्यमान अवस्था गिनने में आयी और अभाव (शक्ति में) अपवित्रता की शून्य ता गिनने में आयी। समझ में आया ? इन शक्तिओं का पिंड भगवान या अनंत शक्ति का पिंड द्रव्य है। वह तो शुद्ध है। उसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया ? उसके बिना सम्यग्दर्शन - धर्म की पहली सीढ़ी - शुरूआत (नहीं होती), आहाहा ! वीतराग मार्ग तो देखो ! दो बोल हुए। तीसरा शुरू करते हैं, थोड़ा शुरू तो करें।

३५ (वीं शक्ति)। ``**भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के व्ययरूप भावाभावशक्ति।**'' क्या कहते हैं ? आत्मा में एक ऐसी शक्ति है, भाव अभाव (नाम की एक शक्ति है)। वर्तमान में जो पर्याय भावरूप है, उसका अभाव करे, ऐसी एक शक्ति है। वर्तमान निर्मल पर्याय की बात है, आहाहा !

भगवान आत्मा में भाव अभाव (नाम की), ऐसी एक शक्ति है, गुण है। भाव का अर्थ वर्तमान पवित्रता की विद्यमान अवस्था है, वह भाव अभाव शक्ति के कारण भाव का अभाव हो जाता है। वह भी अपनी शक्ति के कारण है। पर्याय का अभाव होना वह शक्ति के कारण है, आहाहा ! समझ में आया ?

शांति से सुनना, बापू ! यह तो (वीतराग) मार्ग है। तीनलोक के नाथ ! केवलज्ञानी ने निधान देखे हैं, ऐसा सम्यक्ज्ञान में भासित होवे, ऐसी यह चीज़ है। आहाहा ! कहते हैं, ``**भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय...**'' वर्तमान पर्याय की (बात है)। अनंत गुण की वर्तमान निर्मल पर्याय जो है, वह भवते (अर्थात्) होनेवाली है। `**भवते**' है न ? ``**भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के व्ययरूप...**'' उसके अभावरूप। (ऐसी) एक शक्ति है। भावअभाव (यानी) वर्तमान भाव है, उसका अभाव हो, ऐसी भावअभाव नाम की एक शक्ति है। उस पर्याय का मैं अभाव करूँ, ऐसी नहीं। यह शक्ति ही ऐसी है कि पर्याय का अभाव हो जाये। विद्यमान अवस्था का अभाव हो जाये, भाव का अभाव हो जाये, ऐसी यह शक्ति है। विशेष आयेगा...

प्रवचन नं. ३०
शक्ति-३५, ३६ दि. ०९-०९-१९७७
भवत्पर्यायव्ययरूपा भावाभावशक्तिः।।३५।।
अभवत्पर्यायोदयरूपा अभावभावशक्तिः।।३६।।

(समयसार), यह (परिशिष्ट) अधिकार में अनेकांत की विशेष चर्चा करते हैं। (इसका) अधिकार है। यह अधिकार अनेकांत को विशेष चर्चते हैं। (इस) अधिकार में यह आया है। क्यों ? क्योंकि (आचार्य भगवान ने) ज्ञानमात्र पर्याय वह आत्मा और ज्ञानमात्र पर्याय है, वह उसका धर्म, तो शिष्य ने प्रश्न किया कि उसमें एक ही धर्म आता है, (तो) एकांत हो जाता है। (तो आचार्य भगवान कहते हैं कि) एकांत नहीं है। ज्ञानमात्र चैतन्य स्वरूप, उसकी परिणति में ज्ञान पर्याय आती है, उसके साथ अनंत गुण की पर्याय उत्पन्न होती है। `ज्ञानमात्र' कहने से राग और पुण्य आदि नहीं; परंतु अनंत शक्ति नहीं, ऐसा नहीं (कहना चाहते। समझ में आया ?

दो पन्ना पहले (आ गया है)। ``**यहाँ आचार्यदेव अनेकांत के संबंध में विशेष चर्चा करते हैं**'' अपनी पर्याय में ज्ञान की दशा उत्पन्न होती है, यह भाव शक्ति में आया। परंतु उसमें राग का अभाव है, व्यवहार का अभाव है - यह अनेकांत है। ऐसा कहते हैं कि, व्यवहार से भी हो और निश्चय से (भी) हो, उसका नाम अनेकांत। (उस बात का) निषेध करने को यह चर्चा ली है। समझ में आया ? आहाहा ! उपादान से भी हो और निमित्त से भी हो, उसके निषेध के लिये यह अनेकांत लिया है, आहाहा !

पहले भावशक्ति आ गई न ? अपनी जितनी शक्ति है, इसमें भावशक्ति का रूप है। इस भाव शक्ति के कारण वर्तमान शुद्ध निर्मल पर्याय विद्यमान रहती है। समझ में आया ? यहाँ तो जिसे (स्वरूप की) दृष्टि हुई इसकी बात है। जिसे शक्ति और शक्तिवान

का भान नहीं, उसके (लिये) यहाँ अनेकांत की चर्चा नहीं करी है। समझ में आया ? वह तो व्यवहार - दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तपस्या, मुनिपना, बाह्य क्रियाकांड (यह सब करते-करते धर्म) होगा, (ऐसा माननेवाला) तो एकांत मिथ्यादृष्टि है।

यहाँ तो अनेकांत नाम अपनी (जो) अनंत पवित्र शक्ति हैं, उसमें वर्तमान भावशक्ति के कारण और शक्ति का रूप भी (अनंत) शक्ति में है, उस कारण से वर्तमान निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है, वह विद्यमान रहती है। उसका कभी अभाव नहीं होता। वर्तमान विद्यमान है (उसकी बात है)। इसमें राग आदि व्यवहार का अभाव (है), उसका नाम अनेकांत और स्याद्वाद है। आहाहा ! समझ में आया ?

जैन दर्शन वस्तु की स्थिति है। समझ में आया ? अपनी चीज़ पर की पर्याय करे, यह (बात) तीनकाल, तीनलोक में नहीं। पहले अकारणकार्य शक्ति आ गयी। अकारणकार्य शक्ति आ गई न ? कि अपने द्रव्य में जितनी शक्तियाँ हैं, सब की वर्तमान विद्यमान अवस्था रहती है। समझ में आया ? परंतु यह अवस्था पर का कारण हो या पर का कार्य हो, ऐसा नहीं है। ऐसा काम बाहर की धमाधम करे, यह किया और वह किया। रथयात्रा, वरघोडा, गजरथ चलाते हैं। कौन चलाये ? भाई ! तुझे खबर नहीं। आहाहा !

श्रोता : कौन चलता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जड़ की पर्याय जड़ से होती है। हाथी का चलना - बैठना उसकी पर्याय हाथी के शरीर से होती है, उसके आत्मा से नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? यह मंदिर बनाया तो किसने बनाया ?

श्रोता : आपने (बनाया)।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैंने तो कभी कहा ही नहीं। बहुत लोग कहते हैं कि, यहाँ जंगल था तो आपके कारण से यह करोड़ों रुपये का खर्चा हुआ न ? अरे प्रभु ! वह बात नहीं है। उस समय इस परमाणु की पर्याय होने का स्वकाल था। उससे हुई है। भारी कठिन काम !

श्रोता : सारी दुनिया कह रही है, (फिर) कैसे नहीं माने ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सारी दुनिया तो अज्ञान में पड़ी है, आहाहा !

यहाँ तो वस्तुस्थिति है वह बात होती है। यह पर का मैं कर दूं। यह शास्त्र लिख दूँ, अनुवाद करूँ, वह आत्मा की क्रिया नहीं। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बात, बापू ! सत्य बात ऐसी है।

अमृतचंद्राचार्य कहते हैं कि, यह टीका मैंने बनाई नहीं। मोह में मत पड़ो कि, मैंने बनाई है और तुमको उससे ज्ञान होता है, ऐसे (मोह में) मत पड़ो, भाई ! आहाहा !

यह शास्त्र श्रवण होता है तो अंदर ज्ञान होता है, ऐसा मत करो। मोह में नहीं नाचो, आहाहा ! समझ में आया ? यह शास्त्र - शब्द सामने पड़ा है तो शब्द के कारण यहाँ ज्ञान होता है, ऐसे मोह में न पड़ो ! आहाहा ! क्योंकि शब्द की पर्याय तो जड़ की है, पर है और ज्ञान की पर्याय अपने गुण के कारण, भाव शक्ति के कारण (उसकी) विद्यमान निर्मल अवस्था उत्पन्न होती ही है। ये कोई शब्द से, वाणी से,या भगवान की वाणी से भी (उत्पन्न) नहीं (होती)। ऐसी बात है ! आदमी को कठिन पड़े ! (लेकिन) क्या हो सकता है, भाई ! (वस्तु स्थिति ऐसी है), आहाहा !

सिद्ध भगवान देखते हैं, शास्त्र में नुकसान हो, शास्त्र में कोई लाभ हो, (उनको) कोई विकल्प आता है ? वे तो जानते हैं कि, 'है' (ऐसा) होता है। वे तो पहले से ही जानते हैं। केवलज्ञान पहले से ही जानते हैं। 'जे-जे देखी वीतराग ने, ते-ते होसी वीरा, अनहोनी कबहुं न होंसे, काहे होत अधिरा ?' आहाहा ! अभिमान छूटना कठिन (पड़े), भाई! समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि, भावशक्ति के कारण अनंत गुणों की वर्तमान विद्यमान अवस्था होती ही है, आहाहा ! दूसरा भी आत्मा है, वह भी सम्यक्दृष्टि है, तो सम्यक्दृष्टि भी (भगवान की वाणी) सुनने आते हैं। एकावतारी क्षायिक समकिती इन्द्र आदि भगवान की वाणी सुनने को आते हैं। परंतु उसको भी जो ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, (वह) ज्ञानगुण में भाव शक्ति है (अर्थात्) ज्ञानगुण में भावशक्ति का रूप है, उस कारण से विद्यमान निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है, आहाहा ! ऐसी बात है !

(लोग) ऐसा कहते हैं, (हम) बाहर थे तो हमें यह ज्ञान नहीं था और सुनने में (आया) तो नया ज्ञान आया। तो सुनने से (ज्ञान) आया कि नहीं ? आहाहा ! भाई ! ऐसा नहीं है। वह तो उस समय ज्ञान की पर्याय उस प्रकार की विद्यमान उत्पन्न होने के लायक थी तो उत्पन्न हुई है। शब्द से (और) पर से (उत्पन्न) नहीं (हुई)। आदमी को ऐसा कठिन पड़ता है। जैनदर्शन कोई अलौकिक चीज़ है। लौकिक के साथ कोई मिलान नहीं होता।

भाव(शक्ति) कही बाद में अभाव (शक्ति कहते हैं)। आत्मा में अभाव नाम की शक्ति है तो राग के अभावरूप परिणमन होना, यह अभाव शक्ति का कार्य है। राग - व्यवहार रत्नत्रय का जो विकल्प है, उससे अभावरूप परिणमन होना, यह अभावशक्ति का कार्य है। आहाहा ! समझ में आया ?

बाद में जो चलती है, ऐसी भावअभाव शक्ति। भावअभाव का अर्थ (क्या) ? ''**भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय...**'' अनंत गुण की वर्तमान प्रवर्तमान पर्याय (अर्थात्) ज्ञान की, दर्शन

की, चारित्र की, जीवतर की, कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, प्रभुत्व आदि की कोई भी वर्तमान पर्याय भवति - होती है, उसके व्ययरूप (अर्थात्) उसका दूसरे समय में व्यय होता है। परंतु वह व्यय होता है (यह) भावअभावशक्ति के कारण है। आहाहा ! ज्ञान, दर्शन, आनंद यह शक्तियाँ हैं, तो उसकी शक्ति में वर्तमान पर्याय विद्यमान है... विद्यमान है। अब इस पर्याय का अभाव कैसे होता है ? लोग कहते हैं न कि परिणमन में काल निमित्त है, तो काल से ऐसा परिणमन होता है। वह तो काल की सिद्धि करने को (ऐसा कहा) है। परिणमन तो अपने से (होता है)। पूर्व की पर्याय विद्यमान है, उसका अभाव करने की भावअभाव नाम की आत्मा में शक्ति है, आहाहा ! समझ में आया ?

निश्चय में तो वर्तमान केवलज्ञान की पर्याय जो है, उसका व्यय - अभाव (होना), 'है' उसका अभाव (होना) यह भावअभाव शक्ति के कारण से केवलज्ञान की पर्याय पलट जाती है, आहाहा ! बात तो ऐसी है। आहाहा ! मूल तत्त्व की स्थिति - मर्यादा क्या है ? वह दृष्टि में नहीं आये, तब तक विपरीतता टलती नहीं, आहाहा ! भावअभाव (अर्थात्) भाव जो है उसका अभाव (होना)। आया न ? "**भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के व्ययरूप भावअभाव-शक्ति।**" भावअभाव शक्ति का कार्य व्यक्त पर्याय उत्पन्न है, उसका अभाव (होना), आहाहा !

श्रोता : अगले समय जो उसका अभाव होता है, वह इस शक्ति के कारण होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस भावअभाव (शक्ति के कारण होता है)। वर्तमान पर्याय का अभाव होता है, यह भावअभावशक्ति के कारण से (होता) है। यहाँ निर्मल पर्याय की (बात) चलती है, विकारी (पर्याय की) बात नहीं। दूसरे तरीके से कहें तो, (वर्तमान) निर्मल पर्याय भविष्य की पर्याय का कारण है, ऐसा भी नहीं, आहाहा ! और भूतकाल की पर्याय का वर्तमान पर्याय कार्य है, ऐसा भी नहीं, आहाहा ! ऐसी बहुत सूक्ष्म बातें (हैं), बापू !

(यहाँ) कहते हैं, "**भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय...**" (कभी) पर्याय की बात सुनी न हो (और) द्रव्य, गुण और पर्याय क्या (है) ? (इसकी खबर नहीं)। आहाहा ! समझ में आया ? त्रिकाली शक्तियों का पिंड यह द्रव्य (है) और इसमें शक्ति - गुण है - यह शक्ति। (और) उसकी अवस्था बदलती है, वह पर्याय (है)। परंतु यहाँ तो कहते हैं कि, पर्याय का व्यय होना, (इसका) क्या कारण है ? इस भावअभाव शक्ति का कारण है। आहाहा ! समझ में आया ? कर्म का उदय आया और (जो) निर्मल पर्याय (है) वह मलिन हो गयी, ऐसा यहाँ है ही नहीं। यह बात यहाँ है ही नहीं। परंतु अपनी जो निर्मल पर्याय है उसका दूसरे समय में व्यय होता है, वह व्यय होने का कारण क्या ? (तो

कहते हैं कि), यह भावअभावशक्ति (कारण है), आहाहा ! समझ में आया ? यह भावअभावशक्ति का प्रत्येक गुण में रूप है। अनंत गुण में भावअभाव शक्ति का रूप है। समझ में आया ? आहाहा !

मोक्षमार्ग प्रकाशक में सातवें अधिकार में आ गया है न ? व्यवहारनय एक का कारण - कार्य भिन्न (द्रव्य में) बताता है। दूसरे कारण से दूसरा कार्य होता है और एक द्रव्य का कार्य दूसरे द्रव्य से होता है, ऐसा बताता है। इस व्यवहार की श्रद्धा करना यह मिथ्यात्व है, ऐसा बताया है। मोक्षमार्ग प्रकाशक में निश्चायाभास और व्यवहारभास का (स्वरूप बताया है, उसमें आया है)। यह क्लास में चल गया था।

वहाँ क्या कहते हैं ? कि वर्तमान जो निर्मल पर्याय है, वह कोई विकार के कारण से (उत्पन्न) हुई, ऐसा नहीं। समझ में आया ? और जितना व्यवहारनय का कथन है, वह सब, वैसे ही माने तो मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। वहाँ आया है ? व्यवहारनय एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में, एक गुण को दूसरे गुण में, एक पर्याय को दूसरी पर्याय में, एक कारण को दूसरे कार्य में मिलान करता है। वह मिथ्यात्व है। निश्चयनय यथास्थित जैसी पर्याय जिसकी है, (वह) अपने से हुई है, उसका निर्णय करता है, यह सत्य है - सत्यार्थ है। आहाहा ! सूक्ष्म बात (है)। वस्तु तो ऐसी है, आहाहा ! ऐसा (अपने) ज्ञान में उसको निर्धार करना चाहिए - निर्णय करना चाहिए। यहाँ तो (जिसने) निर्णय किया है, उसकी पर्याय की बात चलती है। समझ में आया ? आहाहा !

सुख शक्ति में भी वर्तमान आनंद की पर्याय विद्यमान है, उसका व्यय करते हैं (होता है)। यह सुख शक्ति में भावअभाव नाम की (शक्ति का) रूप है, उस कारण से होता है, आहाहा ! क्योंकि पर्याय की स्थिति एक समय की है। समझ में आया ? उस पर्याय की स्थिति एक समय की है तो उसका व्यय होता है। (पर्याय का) व्यय होकर जाती है कहाँ ? जल के तरंग जल में समाते हैं। जल का (एक) तरंग गया और दूसरा तरंग आया, तो (पहला तरंग) गया कहाँ ? जल में (गया)। जल का तरंग जल में डूबते है। यह समयसार नाटक में आता है। यहाँ भी आया है। (अध्यात्म) पंचसंग्रह में भी आया है। उसमें यह भावअभाव शक्ति का वर्णन आया है। वर्तमान जल की तरंग जो है उसके भाव का अभाव होता है। समझ में आया ? (जो) पर्याय व्यय हुई (वह) गई कहाँ ? पर्याय विद्यमान थी उसका अभाव हुआ तो वह पर्याय गई कहाँ ? कहाँ गई ? जल के तरंग अंदर जल में डूबते हैं।

यहाँ तो निर्मल पर्याय की बात चलती है। अशुद्ध पर्याय भी जो है, (उसमें) दूसरे समय में अशुद्ध होती है तो पहले समय की अशुद्धता का व्यय हुआ, वह सत् था, तो

कहाँ गया ? व्यय हुआ तो (कहाँ गया) ? (तो कहते हैं कि) (पर्याय व्यय होकर) अंदर में गई परंतु (अंदर में) अशुद्धता नहीं रही। क्या कहते हैं ? राग की पर्याय है, (तो) दूसरे समय में उस राग की पर्याय व्यय हुई। व्यय हुआ तो (पर्याय) गई कहाँ ? कि अंदर द्रव्य में गई। अंदर में गई तो वहाँ अशुद्धता रही है ? नहीं (अशुद्धाता नहीं रही)। वह अशुद्धता तो उदयभाव की पर्याय है और उसमें (द्रव्य में) गयी तब पारिणामिकभावरूप से हो गई। समझ में आया ? जो दया, दान, विकल्प आदि राग है, वह तो उदयभाव है और दूसरे समय में तो उसका व्यय होता है। व्यय होता है तो कहाँ गया ? अंदर द्रव्य में गया। परंतु वहाँ अशुद्धता गई ? (नहीं) उसकी योग्यता अंदर गई (है), आहाहा !

वर्तमान अशुद्धता जो है वह उदयभाव है। उदयभाव अंदर गया तो वहाँ अंदर पारिणामिकभाव में गया, तो (वहाँ) उदयभाव तो है नहीं।

श्रोता : शुद्धाशुद्ध पर्यायों का पिंड, वह द्रव्य ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो जो अशुद्धता को मानते नहीं है उस कारण से (ऐसा कहा)। मोक्षमार्ग प्रकाश में दो ठिकाने आया है। शुद्धाशुद्ध पर्याय का पिंड (वह द्रव्य)। वह तो भूतकाल में अशुद्धता गई, इसको मानते ही नहीं, उसको बताने को वह बात कही है। शुद्ध - अशुद्ध (पर्याय का पिण्ड वह द्रव्य। उसका मतलब यह नहीं है कि) अंदर में अशुद्धता है। इसकी बात तो यहाँ है ही नहीं। यहाँ तो विद्यमान निर्मल पर्याय जो भवती प्रवर्तमान, सम्यग्दर्शन की पर्याय, आनंद की पर्याय, शांति की पर्याय विद्यमान है उसका व्यय होता है। यह व्यय होता है, ये भावअभावशक्ति के कारण से व्यय होता है। और गई कहाँ ? कि अंदर में डूबी। यहाँ (जब) बाहर पर्याय थी तो वह उपशम, क्षयोपशम या क्षायिकभाव आदि की थी। निर्मल (पर्याय की) बात चलती है न ? सम्यग्दर्शन की पर्याय बाहर आयी वह, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव या क्षायिकभाव की थी परंतु उसका व्यय हुआ और (अंदर में) गई (तो) वहाँ अंदर में क्षयोपशम, क्षायिकभाव रहा नहीं, आहाहा ! ऐसी बातें (हैं) ! पारिणामिकभाव हो गया। आहाहा ! प्रभु का सत् का स्वरूप तो देखो ! प्रभु यानी तू हो ! आहाहा !

यहाँ तो ``**भवते हुए...**'' भवते नाम प्रवर्तमान - वर्तमान (पर्याय) उसका व्यय (नाम) अभाव। वर्तमान भाव - पर्याय थी उसका व्यय - यह अभाव। यह भावअभाव शक्ति के कारण से है। आहाहा ! इतने शब्द में तो कितना भर दिया है ! अरे...! प्रभुता नाम की शक्ति जो है इसमें भी भावअभाव पड़ा है. इस प्रभुता शक्ति की वर्तमान विद्यमान निर्मल पर्याय जो है, उसका व्यय होकर अंदर में चली जाती है और व्यय होकर भाव का अभाव हो जाता है। भाव है उसका अभाव हो जाता है। आहाहा ! ऐसा तत्त्व का

स्वरूप है। ऐसी दृष्टि नहीं हो और विपरीत दृष्टि हो तो (वह) मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! समझ में आया? आहाहा !

एक युवान भाई कहता था। दमोह के पास अधाना (गाँव) है, वहाँ से आया है. आज दोपहर को आया था। बहुत खुश हुआ था। कहता था, `मैं तो समवसरण में बैठा हूँ, ऐसा लगता है' आहाहा ! देखो ! जवान आदमी को भी (तत्त्व का) प्रेम हो जाता है। यह जवान अवस्था तो जड़ की है। आत्मा की जवान अवस्था तो सम्यग्दर्शन हुआ, यह जवान अवस्था है। राग को अपना मानना यह बाल अवस्था है। अज्ञान अवस्था है। शरीर की अवस्था तो बाहर में - जड़ में है, आत्मा में तो है नहीं, आहाहा !

यहाँ कहते हैं, ``**भवते हुए (प्रवर्तमान)...**'' अनंत गुण की वर्तमान निर्मल पर्याय जो है, उसका अभाव - व्यय किस कारण से होता है ? काल का निमित्त है तो होता है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? (मलिन पर्याय) व्यय होकर दूसरी मलिन पर्याय होती है, उसकी (बात) यहाँ नहीं है। यहाँ तो (पर्याय) व्यय होकर दूसरी निर्मल पर्याय ही होती है। बाद में भावभाव (शक्ति में) आयेगा। यहाँ तो भावअभाव की बात चलती है। भाई ! यह तो मंत्र है ! यह तो थोड़े शब्दों में मंत्र है ! आहाहा ! भगवान की दिव्यध्वनि में ऐसे मंत्र आये हैं। भगवान ! तेरे में तो अनंत पवित्र शक्तियाँ पड़ी हैं। उसकी दृष्टि होती है तब प्रत्येक गुण की पवित्र पर्याय प्रगट होती है। अकेली ज्ञान की (पर्याय) ही (प्रगट) होती है और अनंत आनंद की (पर्याय प्रगट) नहीं (होती), ऐसा नहीं। क्योंकि सुख नाम की जो शक्ति है, उसमें भी भावअभाव नाम की (शक्ति का) रूप है तो आनंद नाम की वर्तमान पर्याय है उसका व्यय हो जाता है। भावअभाव के कारण वर्तमान आनंद की पर्याय है उसका अभाव हो जाता है, आहाहा ! किस कारण से अभाव होता है ? कि भावअभावशक्ति के कारण से (अभाव होता है)। इसका मक्खन जो ख्याल में आ जाये तो उसमें सभी शक्तियाँ आ गयी। समझ में आया ? आहाहा ! भारी गज़ब है !

यह शक्ति का वर्णन पढ़कर, श्वेतांबर में एक साधु हुए हैं। (उनको) उनके संप्रदाय का वांचन भी बहुत था, और थोड़ा यह भी पढ़ा। तो वे उसकी नयी कल्पित शक्ति बनाते थे। आठ (शक्ति) बनाई, परंतु यह नहीं। इस स्थिति की नहीं। उसके पेपर में आठ शक्ति आयी थी। यह तो अलौकिक बातें (हैं), बापू ! दिगंबर धर्म यानी सनातन जैन वस्तु की स्थिति - सनातन वस्तु की स्थिति। ऐसी स्थिति में कहीं है नहीं। समझ में आया ? दिगंबर के संप्रदाय में जन्म हुआ, उस संप्रदायवालों को कुछ खबर नहीं। देवदर्शन करना, व्रत करना, अपवास करना, ब्रह्मचर्य पालना, यह हमारा धर्म है। (ऐसा

मानते थे)।

श्रोता : आपके प्रताप से सब शक्ति प्रकाश में आयी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट तो भगवान ने किया है। आचार्यों ने स्पष्ट कर दिया है। टीका तो देखो ! पाठ है न ? देखो ! क्या है ? आहाहा ! ``**शून्यावस्थत्वरूपा अभावशक्ति**' - आ गई। बाद में ``**भवत्पर्यायव्ययरूपा भावाभावशक्तिः**'' यह संस्कृत है। ``**भवत्पर्यायव्ययरूपा भावाभावशक्तिः**'' आहाहा ! इसमें तो अनंत पर्याय का स्पष्टीकरण कर दिया। जो कोई अनंत शक्ति है, सम्यक्दृष्टि को उसकी वर्तमान निर्मल पर्याय होती है। उस पर्याय का व्यय होना, भाव है उसका अभाव होना, यह भावअभाव शक्ति का कार्य है। उसे करना पड़ता नहीं कि, मैं इस पर्याय का (व्यय करूँ)। इस शक्ति का कार्य ही ऐसा है। समझ में आया? शक्तिवान को जहाँ दृष्टि में लिया तो शक्ति का कार्य जो वर्तमान पर्याय का (अभाव होना), उसका मैं अभाव करूँ, ऐसा विकल्प भी नहीं (है), आहाहा ! समझ में आया ? प्रभु ! समझ में आया उतना समझो, बापू ! यह तो गंभीर चीज़ है। पूरी-पूरी (बात) तो संतों कर सके। एक-एक शक्ति में अनंत शक्ति का रूप पड़ा है। अनंत शक्ति में एक शक्ति का रूप पड़ा है, आहाहा !

ज्ञान की पर्याय में, प्रभुत्व की पर्याय में वर्तमान विद्यमान जो भवती (पर्याय) है, प्रवर्तमान, उसका व्यय होना (यह भावअभावशक्ति के कारण से है)। वैसे तो उत्पाद - व्यय - ध्रुव नाम की १८ वीं शक्ति है। वह पहले कह गये। उत्पाद - व्यय - ध्रुव शक्ति के कारण से पर्याय उत्पन्न होती है, पूर्व की (पर्याय) व्यय होती है, और ध्रुव (कायम) रहता है। वह तो पहले आ गया है।

यहाँ तो वर्तमान पर्याय विद्यमान है। उसका अभाव (होता है, यह बात लेनी है)। आहाहा ! भाव संपन्न स्वरूप प्रभु ! उसमें - द्रव्य में भावअभाव शक्ति भी है। और गुण में भी एक-एक गुण में भावअभाव (शक्ति का) रूप है। आहाहा ! भाव शक्ति तो भावशक्ति में है। भाव का अभाव (होना, ऐसी) भावअभाव शक्ति तो भावअभावशक्ति में है। इस शक्ति के कारण, आहाहा ! वर्तमान निर्मल वीतरागी पर्याय उत्पन्न हुई, उसका व्यय होना, यह भावअभाव (शक्ति का) कार्य है। `मैं (पर्याय का) व्यय करूँ', ऐसा भी वहाँ नहीं है। वैसे ही मैं वर्तमान विद्यमान निर्मल पर्याय को प्रगट करूँ, (ऐसा भी नहीं है)। विद्यमान है, उसको करूँ क्या ? भावशक्ति के कारण विद्यमान (पर्याय) तो होती ही है। आहाहा ! समझ में आया ?

यह तो पुरुषार्थ का मार्ग है, बापू ! आहाहा ! उसमें भी अपने समझ में जिसका उल्लासित वीर्य आया, उसके लिये यह बात है, आहाहा ! उल्लासित वीर्य का अर्थ (क्या) ?

अपने स्वरूप की रचना में (जिसका) वीर्य उल्लासित है। वीर्यगुण का यह कार्य आया न ? आत्मस्वरूप की रचना करे वह वीर्य, आहाहा ! यहाँ तो पुण्य - पाप की रचना की बात ही नहीं है। प्रभु ! उसका नाम अनेकांत की चर्चा में आता है। क्या करें ? यह मिला नहीं, सुनने मिला नहीं। सत्य की स्थिति की मर्यादा सुनने मिले नहीं, तो मर्यादा में कहाँ से आये ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, सर्वदर्शी शक्ति में भी भावअभाव (शक्ति का रूप) पड़ा है। सर्वदर्शीपना प्रगट हुआ उसका भी भावअभाव के कारण, सर्वदर्शी शक्ति की विद्यमान पर्याय का अभाव होता है, आहाहा ! ऐसे सर्वज्ञ पर्याय जो उत्पन्न हुई, आहाहा ! उस पर्याय में एक तो अगुरुलघुगुण के कारण षट्‌गुणहानिवृद्धि होती है, वह दूसरी चीज़ (है)। केवलज्ञान की पर्याय में भी अगुरुलघु (गुण के कारण) एक समय में षट्‌गुणहानि (और उसी समय में) षट्‌गुणवृद्धि (होती है)। आहाहा ! यह तो गज़ब बात है ! केवलज्ञान की एक समय की पर्याय में अनंतगुणहानि, असंख्यगुण हानि, संख्यगुण हानि, अनंतभाग हानि, असंख्यभाग हानि, संख्यभाग हानि - यह हानि के छः बोल हैं। अनंत गुण वृद्धि, असंख्यगुण वृद्धि, संख्यगुण वृद्धि, अनंतभाग वृद्धि, असंख्यभाग वृद्धि, संख्यभाग वृद्धि, - यह छः वृद्धि के (बोल) हैं। आहाहा ! एक ही समय में इस छः प्रकार की (हानि - वृद्धि) है। यह तो वीतराग (केवलज्ञान) गम्य है। यह तो आत्मा के ज्ञान में आ सके ऐसी चीज़ है, समझ में आया ? आया न ?

भाव (अर्थात्) प्रवर्तमान वर्तमान विद्यमान वस्तु - उसका व्यय (होना), आहाहा ! क्षायिक समकित की सम्यक् पर्याय जो है, उसका भी दूसरे समय में व्यय होता है, आहाहा ! समझ में आया ? तो कहते हैं कि, क्या कारण से ऐसा होता है ? कि भावअभावशक्ति के कारण (होता है)। उसे द्रव्य पर नज़र करनी पड़ेगी। उसे गुण और पर्याय के भेद पर भी दृष्टि नहीं (करनी है), समझ में आया ? आहाहा !

यह तो अपना कार्य करना हो, उसकी बात है। दुनिया को समझाने आये न आये उसके साथ कोई संबंध नहीं है, आहाहा ! उसका विशेष अर्थ करने आये या नहीं आये, अनुवाद करने (आये या नहीं आये) उसके साथ कोई संबंध नहीं (है)। आहाहा ! यह तो शक्तिरूप जो वस्तु है, उसे पर्याय में प्रसिद्ध करना, यहाँ तो यह कार्य है। और पर्याय प्रसिद्ध हुई (उसका) दूसरे समय में व्यय होता है, वह भी उसकी शक्ति के कारण है, आहाहा ! समझ में आया ?

यह निर्मल पर्याय की बात चलती है। मलिन पर्याय है (और उसका) व्यय होता है, उसकी यहाँ बात नहीं है। क्योंकि मलिन पर्याय तो ज्ञाता की पर्याय का परज्ञेय है।

परज्ञेय की पर्याय का व्यय हो, वह भावअभाव है, यहाँ यह बात नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

अनंतधर्मत्व शक्ति आयी न ? अनंतधर्मत्वशक्ति आ गई। एक-एक धर्म विलक्षण है। कोई दूसरे धर्म के साथ लक्षण मिलता नहीं। आहाहा ! अनंतधर्म शक्ति में - अनंतधर्म माने गुण। प्रत्येक धर्म की विलक्षणता है। एक धर्म का लक्षण दूसरे धर्म के लक्षण में आता है, ऐसा नहीं। आहाहा ! ऐसा अनंतधर्मत्व शक्ति में भी एक समय में अनंत धर्म की पर्याय विद्यमान है, उसका व्यय हो, यह भावअभाव शक्ति के कारण (है), आहाहा ! शक्ति का व्यय नहीं (होता)। प्रवर्तमान पर्याय की बात (है)। शक्ति का व्यय होता नहीं। उत्पाद होता नहीं।

व्यापार के आड़े - पाप के आड़े फुरसद नहीं मिलती। आहाहा ! उसमें दो-पाँच करोड़ मिल जाये तो `हूँ पहोळो अने शेरी सांकडी' (ऐसी गुजराती में कहावत है) ऐसा हो जाता है। लड़के के लिये मकान बनाओ, इसके लिये यह करो, वह करो, अरेरे... प्रभु ! तुझे कहाँ जाना है ? सुनने के लिये निवृत्ति नहीं मिले और पुण्य भी नहीं हो तो धर्म तो कहाँ से आया ? सुनने के लिये - वांचन के लिये समय निकाले शुभभाव - पुण्य तो होता है। परंतु यहाँ उसकी बात है नहीं। यहाँ तो सम्यक्‌दृष्टि के आत्मा ने त्रिकाली का आश्रय लिया है तो जितनी शक्तियों का पिंड है, उन प्रत्येक शक्ति की वर्तमान निर्मल पर्याय की हयाती है, उस हयाती का व्यय होता है, ऐसी बात है। आहाहा !

भावअभावशक्ति उसका गुण है, ऐसा कहते हैं। भावअभाव नाम की शक्ति उसका अर्थ उसका गुण है, आहाहा ! आत्मा में भावअभाव नाम का एक गुण है, शक्ति (है)। शक्ति कहो कि गुण कहो (एक ही बात है)। इस गुण के कारण वर्तमान पर्याय का अभाव होता है, आहाहा ! निर्मल (पर्याय) हों ! क्योंकि पर्याय की स्थिति एक समय की है। पर्याय की स्थिति एक समय की है (और) द्रव्य - गुण की स्थिति त्रिकाल है। आहाहा ! समझ में आया ? दर्शन, ज्ञान, चारित्र, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शी, कर्ता, कर्म, करण, अकर्ता, अभोक्ता - ये नाम की शक्ति है तो पर्याय में अकर्तापने की निर्मल पर्याय विद्यमान है। परंतु इस अकर्तापने की शक्ति में भावअभाव शक्ति का रूप है, इस कारण से उस का भी वर्तमान पर्याय का व्यय होकर भावअभाव होता है। `है' उसका अभाव होता है, आहाहा !

अब अभावभाव शक्ति (लेते हैं)। इसमें पूरा तो कहाँ हो सकता है ? (अंदर से जितना सहज) आये तो आये। तैयार किया हुआ थोड़ा है ? आहाहा ! जीवतर शक्ति आयी न ? जीवतर शक्ति का लक्षण चिति है। दूसरी (शक्ति) उसका लक्षण है। सम्यक्‌दृष्टि

को चिति शक्ति और जीवतर शक्ति दोनों की वर्तमान पर्याय में निर्मलता शुद्धता की (पर्याय) विद्यमान है। विद्यमान शुद्धता का व्यय होता है, यह भावअभाव के कारण (होता है)। आहाहा ! समझ में आया ?

पर्याय में शक्ति नहीं आती। शक्ति का रूप है, यह ज्ञानपर्याय में जानने में आता है। क्या कहा ? ज्ञान की वर्तमान पर्याय विद्यमान है, इस पर्याय में शक्ति और द्रव्य का जानपना आता है, परंतु इस पर्याय में द्रव्य और शक्ति आती नहीं। इस वर्तमान विद्यमान पर्याय का अभाव (हुआ) तो इस अभाव में ज्ञान की पर्याय में भी अभाव (हुआ)। यह अभाव पर्याय में हुआ, शक्ति में अभाव नहीं (हुआ)। समझ में आया ? शक्ति तो जो है सो है। आहाहा ! ऐसा है। ऐसा आदमी ने सुना नहीं हो उसे एकांत लगे। इसमें तो निश्चय की ही बातें करते हैं। परंतु निश्चय यानी सत्य। व्यवहार यानी उपचार और आरोपित बात। आहाहा ! वह तो कथनमात्र (है, ऐसा) नहीं कहा था ? व्यवहार कथनमात्र है, आहाहा ! यह ३५ वीं शक्ति हुई।

अब ३६ (वीं शक्ति लेते हैं)। ``**नहीं भवते हुए...**'' (अर्थात्) नहीं होनेवाली पर्याय - मलिनता की नहीं होनेवाली पर्याय, आहाहा ! ``**...(अप्रवर्तमान) पर्याय के उदयरूप...**'' आहाहा ! पहले भावअभाव (शक्ति) आयी। अब अभावभाव (शक्ति है)। जो वर्तमान पर्याय में अभाव(रूप) है, उसका भाव होना। है ? ``**नहीं भवते हुए (अप्रवर्तमान) पर्याय के उदयरूप...**'' उदय (लिखा) है न ? (अर्थात्) प्रगट होना। आहाहा !

यह तो बहुत शांति से और धीरज से समझे तो (समझे में) आये ऐसी (बातें हैं)। बापू ! यह कोई कथा नहीं है, कहानी नहीं है। यह तो भागवत् कथा - भगवान की कथा है, भाई ! आहाहा ! उसने उल्लासित वीर्य से कभी सुनी नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

वहाँ पद्मनंदी पंचविंशती में कहा था न ? ``**तत्प्रतिप्रीतिचितेन येन वार्तापि हि श्रुता**'' जिसने प्रीति (प्रसन्न) चित्त से अध्यात्म की बात सुनी है, वह अवश्य मोक्ष का भाजन है, आहाहा ! पद्मनंदी पंचविंशती में है तो २६ अधिकार परंतु २५ अधिकार लिये हैं। आहाहा ! उसमें तो ऐसे एक अधिकार लिया है। ब्रह्मचर्य है। शरीर से शील (ब्रह्मचर्य) पालना यह कोई ब्रह्मचर्य नहीं, वह तो विकल्प - राग है। भगवान आत्मा ! आनंद स्वरूप में ब्रह्म नाम आनंद में लीन होना, यह ब्रह्मचर्य है। आचार्य बाद में कहते हैं, `अरे युवकों ! अरे युवानो ! मेरी यह ब्रह्मचर्य की बात सुनकर तुमको ठीक न लगे, (तो) क्षमा करना। मैं तो मुनि हूँ। (मुझे) क्षमा करना' आहाहा ! क्योंकि ये स्त्री के भोग में (लोग) लीन है। अरे भाई ! तुझे खबर नहीं, बापू ! ब्रह्म नाम आनंद स्वरूप भगवान में लीन होना,

यह ब्रह्मचर्य है। काया के द्वारा, मन के द्वारा (भोग) नहीं करना, ये (ब्रह्मचर्य) नहीं। अंदर में विकल्प से (भोग) नहीं करना (यह ब्रह्मचर्य है)। आहाहा ! निर्विकल्प ब्रह्मचर्य में लीन होना उसका नाम ब्रह्मचर्य है। यह (बात) गाथा में है। आचार्य महाराज ने फरमाया कि, 'हे युवकों ! हे युवानो ! तुम्हारी २५-३०-४० साल की युवान अवस्था है। खाने-पीने से तुंदरस्त जैसे लगते हो, पांच-दस लाख का मकान हो, आहाहा ! अरे प्रभु ! तुझे (यह बात) न रुचे तो कंटाला (आलस) नहीं करना। (हमको) क्षमा करना। क्योंकि हम मुनि हैं। हम क्या करें ? दूसरे क्या कहें ?' वैसे यहाँ आचार्य कहते हैं कि, हम तो समकिती है तो हम तो क्या कहें ? यह बात तुमको समझ में नहीं आये और कंटाला लगे तो हमको माफ करना। आहाहा ! अरे ! ऐसा उपदेश (सुनने) मिलना भी मुश्किल है। आहाहा ! ऐसी बात है। इसलिये लोगों को बेचारों को ऐसा लगता है। अरेरे...! यहाँ की दया खाते हैं। अरेरे...बापू ! भाई ! व्यवहार से मुक्ति नहीं मानते हो वे (लोग) नरक में और निगोद में (चले जायेंगे)। प्रभु ! सुन तो सही, आहाहा ! वह नरक और निगोद तो तत्त्वदृष्टि से विरुद्ध कहनेवालों को लागू पड़ती है, समझ में आया ?

समयसार में तत् - अतत्, एक-अनेक १४ बोल नहीं आये ? वहाँ पशु कहा है। जो एकांत मानते हैं कि, राग से लाभ होता है वह तो एकांत है। आहाहा ! इसको वहाँ पशु कहा है। पशु है। प्रभु ! वर्तमान में भी तुम 'पश्यति इति पशु', 'बद्धति इति पशु' (हो)। आहाहा ! संस्कृत में १४ बोल में पशु (कहा है)। उसका अर्थ क्या है ? पश्यति - पशु। पशु का अर्थ यह है कि, मिथ्यात्व में बंधता है इसलिये पशु (है)। और यह पशु का अर्थ वर्तमान में भी मिथ्यात्वरूपी पशु से बंधता है और इसके फल में भी निगोद गति है, प्रभु ! आहाहा ! वह (भी) पशु है, निगोद पशु है। समझ में आया ? आहाहा !

आचार्य महाराज तो यहाँ तक कहते हैं कि, एक वस्त्र का टुकड़ा रखकर 'हम मुनि हैं' ऐसा माने, मनावे (और ऐसी) मान्यतावालों का अनुमोदन करे, वह निगोद 'गच्छई' - (निगोद में जायेगा)। आहाहा ! ककड़ी के चोर को फांसी मिले ? आहाहा ! नहीं प्रभु ! तुमने बहुत बड़ा गुना किया है। एक वस्त्र का टुकड़ा रखकर तीनकाल में मुनिपना होता ही नहीं। वस्त्र के कारण (निगोद में) नहीं (जाता है)। परंतु उस ममता के कारण (निगोद में जाता है)। समझ में आया ? आहाहा ! जहाँ वस्त्र रखने का, ओढ़ने का भाव है वहाँ ममत्व है और (जहाँ) ममत्व हो वहाँ चारित्र नहीं है। उसको (मुनि) मानना वह मिथ्यात्वभाव है और मिथ्यात्व का फल निगोद है। आहाहा ! कोई शुभ परिणाम हो और स्वर्ग मिल जाये और अशुभ परिणाम हो तो नरक मिल जाये। परंतु वास्तव में तत्त्वदृष्टि से विरुद्ध

दृष्टि का फल तो यथार्थ निगोद है। और तत्त्वदृष्टि की आराधना का फल मुक्ति है, बस ! समझ में आया ? आहाहा ! वह तो बीच में थोड़ा शुभ भाव हो और स्वर्ग में जाये, अशुभ हो तो नरक में जाये; वह कोई चीज़ नहीं। मूल चीज़ तो मिथ्यात्व का फल निगोद और सम्यग्दर्शन का फल मुक्ति (है), आहाहा !

(यहाँ) क्या कहा ? नहीं प्रवर्तते पर्याय के उदयरूप (अर्थात्) भविष्य की जो पर्याय होनेवाली है, वह वर्तमान में नहीं है। दूसरे समय में जो पर्याय होनेवाली है वह वर्तमान में नहीं है। निर्मल (पर्याय की) बात चलती है। आहाहा ! नहीं प्रवर्तमान पर्याय के उदयरूप वर्तमान में (भविष्य की पर्याय) प्रवर्तमान नहीं है। भविष्य में (वह) भविष्य की (पर्याय) वर्तमान हो जायेगी। अभाव है उसका भाव हो जायेगा। अभाव है उसका भाव हो जायेगा। आहाहा ! समझ में आया ? भविष्य की केवलज्ञान आदि की पर्याय वर्तमान में नहीं है। समझ में आया ? आहाहा ! वर्तमान में नहीं प्रवर्तमान पर्याय में भविष्य की पर्याय प्रगट होगी, आहाहा ! क्या कहा ? वर्तमान में भविष्य की पर्याय का अभाव (है)। समझ में आया ? परंतु उस अभाव का भाव हो जायेगा। ऐसी अभावभावशक्ति है।

पहले में भावअभावशक्ति कहा था। (वर्तमान में) है उसका व्यय होगा। यहाँ तो कहते हैं कि, (वर्तमान में) नहीं है उसका उदय होगा। आहाहा ! इस शक्ति के कारण ऐसा होगा ही। आहाहा ! क्षयोपशम समकित में क्षायिक समकित का अभाव है, समझ में आया ? तो कहते हैं कि, भले (वर्तमान में) अभाव हो, परंतु (जो) अभाव (रूप है, उसका) भाव हो जायेगा। अभाव में ही भाव हो जायेगा। भगवान के समीप में क्षायिक समकित होता है, वह तो निमित्त का कथन है। भगवान तीर्थंकर या श्रुतकेवली के समीप में (क्षायिक समकित होता है)। ऐसा आता है न ? यहाँ तो दूसरे तरीके से कहते हैं कि, क्षयोपशम समकित है, इसमें क्षायिक का अभाव है। (वर्तमान में) उस क्षायिक का अभाव है। परंतु (भविष्य में) क्षायिक हो जायेगा। आहाहा ! अभाव का भाव हो जायेगा। आहाहा ! ऐसी अभावभाव नाम की शक्ति हो जायेगी। आहाहा !

शास्त्र में ऐसा चला है कि, क्षायिक समकित तो भगवान के समीप में ही होता है। परंतु समीप में (होता है) वह तो निमित्त का कथन है। उस समय पर्याय में क्षायिक समकित नहीं है, अभाव है - उसका भाव हो जायेगा, आहाहा ! वह अपनी अभावभाव (नाम की) शक्ति के कारण ऐसा होता है। भगवान के समीप में आया (तो) क्षायिक समकित हुआ, ऐसा नहीं (है), ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? अरे ! ऐसी बातें (हैं) ! लोग ऐसा कहते हैं कि, व्यवहार को उत्थापते हैं। बात तो सच्ची है, आहाहा !

अब यहाँ (एक ओर) कहते हैं कि, श्रुतकेवली और तीर्थंकर के समीप में क्षायिक

समकित होता है (और) यहाँ कहते हैं कि, (वर्तमान में) क्षयोपशम समकित में क्षायिक समकित का अभाव है। परंतु जिसका अभाव है वह भाव हो जायेगा। अभाव का भाव हो जायेगा। आहाहा ! अपनी शक्ति के कारण से हो जायेगा। भगवान के समीप है तो क्षायिक समकित हो जायेगा (ऐसा नहीं है)। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो एक लक्ष्य में ख्याल आ गया।

वर्तमान में स्वरूप आचरण चारित्र की पर्याय है, इसमें विशेष स्थिरता की पर्याय का अभाव है, परंतु वह अभाव है उसका भाव हो जायेगा। आहाहा ! अभाव का भाव हो जायेगा। अभाव है उसका भाव होगा। उदय शब्द इस्तमाल किया है न ?

श्रीमद् में भी ऐसी बात करते हैं। 'उदय थाय चारित्रनो' आत्मसिद्धि में ऐसा आता है। उदय नाम प्रगट होगा। वर्तमान में क्षयोपशम समकित है, उसमें क्षायिक का अभाव है। (परंतु) अभावभाव शक्ति है तो अभाव का भाव हो जायेगा। विशेष कहेंगे.....

ज्ञान का वीर्य ज्ञान में कार्यशील होकर उसीमें रमे - वही मेरा स्वरूप है। आत्मा का लक्षण ज्ञान है; उसे भूलकर रागादि में अटके तो वह बंध का लक्षण है।

(परमागमसार - ६६०)

प्रवचन नं. ३१
शक्ति-३६ दि. १०-०९-१९७७
अभवत्पर्यायोदयरूपा अभावभावशक्तिः ।।३६।।

समयसार शक्ति का अधिकार चलता है। शक्ति का अर्थ ध्रुव में जो सामर्थ्य है, गुण है, उसको यहाँ शक्ति कहते हैं। द्रव्य एक है, शक्ति अनंत है। अनंत शक्ति का एकरूप, यह द्रव्य है। शक्ति कहो कि गुण कहो, (एक ही बात है)। अनंत गुण का एकरूप यह द्रव्य है। उसमें यहाँ अपनी ३६ वीं (शक्ति) चलती है न ?

देखो ! इस शक्ति में गंभीरता है। क्या (गंभीरता है) ? कि, ``**नहीं भवते हुए (अप्रवर्तमान) पर्याय के उदयरूप...**'' क्या कहते हैं ? कि वर्तमान भाव में ज्ञान की कमी है और बाद में पीछे की पर्याय में वृद्धि होती है, (तो) वर्तमान में (जिसका) अभाव है, उसका भाव होता है, यह अभावभाव शक्ति के कारण से (होता है)। क्या कहा समझे ? चार (घाती) कर्म का नाश हुआ तो केवलज्ञान और केवलदर्शन हुआ, ऐसा तत्त्वार्थसूत्र में (आता) है। चार घाती (कर्म का) नाश होता है (तो केवलज्ञान होता है)। यह तो निमित्त का कथन है। आत्मा में ऐसा गुण है कि वर्तमान पर्याय (जो) नहीं (है)। अभाव (रूप है, और) पीछे की पर्याय जो उत्पन्न होनेवाली है, (उसमें) यहाँ (वर्तमान) भाव का अभाव करके, (भविष्य के) भाव का तो (वर्तमान में) अभाव है, (उस वर्तमान) भाव के अभाव में भाव होगा। (वर्तमान) भाव के अभाव में दूसरा भाव (होगा)।

अभावभाव शक्ति (अर्थात्) वर्तमान पर्याय में केवलज्ञान नहीं है, (उसका) अभाव है, बाद में केवलज्ञान होता है, (तो) वह किस कारण से (होता) है ? ज्ञानावरणीय (कर्म का) नाश हुआ वह कारण है ? (वह तो निमित्त से कथन है)। (आत्मा में) अभावभाव नाम की शक्ति है; (उस कारण से) वर्तमान में उसका जो भाव (प्रगट) नहीं है, उसका भाव

(प्रगट) होगा ही। पीछे की पर्याय में वह भाव (होगा ही)। वर्तमान में (उस भाव का) अभाव है। पीछे की पर्याय जो अभी अभावरूप है, वह आयेगी, यहाँ प्रगट होगी, वह अभावभाव शक्ति के कारण (प्रगट होगी)। समझ में आया ?

अभी निमित्त - नैमित्तिक का निषेध (बहुत) है। ये तकरार चली है। खाणिया चर्चा में सामनेवालों ने लिखा है कि, तत्त्वार्थ सूत्र में तो ऐसा चला है (कि), चार घाती (कर्म का) नाश होता है तो केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य प्रगट होता है। वहाँ (हमारे विद्वान ने) ज़वाब दिया कि, उस चार कर्म का नाश - व्यय हो, तो उसका अर्थ यह है कि, अकर्मरूप पर्याय होती है। कर्मरूप पर्याय का व्यय हुआ तो क्या हुआ ? कि अकर्मरूप पर्याय हुई। उससे केवलज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? यह निर्णय करना पड़ेगा। वैसे के वैसे ही सब चला है, (ऐसा नहीं चलेगा)। आहाहा !

अभावभाव शक्ति का कार्य क्या ? कि वर्तमान पर्याय में जिसका अभाव है, वहाँ पीछे की पर्याय होगी। अपनी अभावभाव शक्ति के कारण से होगी। कर्म के अभाव के कारण से होगी, ऐसा नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

कल एक क्षयोपशम समकित का दृष्टांत दिया था। वह लक्ष में आ गया था कि, गोमट्टसार शास्त्र में एक ऐसा लेख है कि, तीर्थंकर और श्रुतकेवली के समीप में यह क्षायिक समकित होता है। वह तो निमित्त का कथन है। यहाँ तो कहते हैं कि, उसमें अभावभाव शक्ति है तो (वर्तमान में) क्षयोपशम में क्षायिक का अभाव है, (तो) (क्षयोपशम का) अभाव (करके) क्षायिक करेगा। वह अभावभाव शक्ति के कारण से क्षायिक (समकित) होगा। भारी बातें, बापू ! आहाहा ! समझ में आया ? ज्ञान की पर्याय में जो चार ज्ञान है, उसका अभाव होकर केवलज्ञान होता है, तो कहते हैं कि (घाती कर्म का) अभाव होता है तो केवलज्ञान होता है, ऐसा नहीं। चार ज्ञान में केवलज्ञान का अभाव है, तो अभावभाव शक्ति से बाद में केवलज्ञान होगा। शक्ति से (केवलज्ञान) होगा। समझ में आता है ? इसमें निमित्त - नैमित्तिक संबंध उड़ा देते हैं। निमित्त हो परंतु उससे होता है, ऐसा कहीं नहीं है। समझ में आया ?

एक प्रश्न चला था। अभी कहा न ? हम जमशेदपुर गये थे, तो वहाँ इसरी में दो विद्वानों के बीच चर्चा चली थी। एक विद्वान ने कहा, कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं कि, ज्ञानावरणीय आदि कर्म कुछ नहीं करते हैं। आत्मा में कुछ नहीं करते हैं। अपनी योग्यता से ज्ञान में कमी - बेसी होती है। ज्ञान की पर्याय में कमी और वृद्धि (अपने से होती है)। समझ में आया ? अपनी ज्ञान की पर्याय में कमी होती है तो अपनी योग्यता

से (होती है)। ज्ञानावरणीय कर्म निमित्त हो, परंतु निमित्त आत्मा में कमी करता है, ऐसा नहीं है। और वृद्धि की (बात) तो यहाँ (चल) रही है। समझ में आया ?

ज्ञानगुण में अभावभाव नाम की (शक्ति का) रूप है। अभावभाव शक्ति है उसका रूप ज्ञानगुण में भी है। ज्ञानगुण के परिणमन में वर्तमान जो अल्पज्ञान है, उसके स्थान में केवलज्ञान (अभी) नहीं (है)। वर्तमान नहीं (है), वह विशेष वृद्धि पीछे होनेवाली है, वह अभावभाव शक्ति के कारण (होगी)। जो भाव नहीं (है), वह भाव आयेगा। कर्म के अभाव से (केवलज्ञान) आयेगा, वह प्रश्न यहाँ नहीं है। आहाहा ! ऐसी बात है। उसकी शक्ति - ताकत (ऐसी) है। `कर्म बिचारे कौन ? भूल मेरी अधिकाई' समझ में आया ?

यहाँ तो वह भी नहीं लेना है। यहाँ तो आत्मा में एक अभावभाव नाम का गुण है। भगवान आत्मा गुणी है। यहाँ (काठियावाड में) चावल और बाजरे की (गुणी को) गुणी कहते हैं। आपके (हिन्दी में) बोरी कहते हैं। यहाँ काठियावाड में गुणी कहते हैं। यहाँ तो गुणी का अर्थ इसमें अनंत गुण भरे हैं, ऐसा गुणी; तो अनंत गुण में एक ऐसा गुण है कि, वर्तमान पर्याय में विशेष ज्ञान का अभाव है, पीछे विशेष ज्ञान होने का भाव होगा, वह अभावभाव शक्ति के कारण से विशेष ज्ञान होगा। अभावभाव (अर्थात्) वर्तमान में विशेष ज्ञान का, केवलज्ञान का, अवधिज्ञान का इत्यादिक का अभाव है, उस ज्ञानगुण में ऐसा अभावभाव नाम का रूप है, उस कारण से अभावभाव नाम के गुण की शक्ति का रूप है, उस कारण से वर्तमान में ज्ञान की अल्पता है, इसमें विशेष ज्ञान का अभाव है तो अभावभाव शक्ति से यह वर्तमान जो अल्प ज्ञान है, उसके स्थान में विशेष ज्ञान होगा, वह अभावभाव शक्ति के कारण से होगा।

यह तो सिद्धांत है। आगम है, युक्ति है और अनुभव है। तीनों बोल से यह सिद्ध होता है। युक्ति से भी अपनी पर्याय परसे होती है, वह भी नहीं। क्योंकि निमित्त है। वह अपनी पर्याय करता है तो पर की पर्याय कहाँ से करे ? अत्यंत अभाव है।

यहाँ तो दूसरी बात कहनी है कि, वर्तमान में आनंद, ज्ञान (इत्यादि में से) यहाँ पहले ज्ञान लेना है। इस ज्ञान की अल्पता में विशेष ज्ञान का अभाव है, विशेष ज्ञान का अभाव है (तो) इस अभावभाव शक्ति से अभाव के स्थान में विशेष ज्ञान होगा। विशेष ज्ञान होगा वह शक्ति के कारण से होगा। कोई निमित्त से सुनना (हुआ) है, या गुरुगम मिला है, तो उस कारण से विशेष ज्ञान होगा, ऐसा नहीं है।

भगवान आत्मा में अनंत गुण में एक गुण ऐसा है कि, वर्तमान में गुण की विशेष वृद्धि नहीं है - अभाव है, वह अभावभाव शक्ति के कारण से पीछे वृद्धि होगी। उस अभाव में (भाव) आयेगा। (वह) अपने कारण से आयेगा। आहाहा ! समझ में आया ? इस अभावभाव

शक्ति के कारण वर्तमान में विशेष गुण नहीं है - अल्प है और विशेष (गुण) पीछे आयेगा, यह अभावभाव शक्ति के कारण से विशेष (भाव) आयेगा, आहाहा !

उसे करना तो क्या है ? कि, चिद्रूप जो भगवान आत्मा ! इसका स्वीकार करना। इसमें यह अभावभाव की शक्ति का भी स्वीकार आ गया। गुणी का स्वीकार हुआ तो उसमें गुण का भी स्वीकार हुआ। स्वीकार हुआ तो वर्तमान पर्याय में जो अल्पज्ञान है, ज्ञान गुण में अभावभाव का रूप है तो विशेष शक्ति का भाव, अभावभाव शक्ति के कारण से विशेष ज्ञान होगा। निमित्त से होगा, ज्ञानावरणीय (कर्म के) अभाव से होगा, यह बात नहीं है। बराबर है ? आहाहा !

ऐसे समकित में (लेना)। क्षयोपशम समकित के स्थान में क्षायिक समकित का अभाव है। क्षयोपशम समकित में क्षायिक (समकित का) अभाव है। यहाँ अभावभाव शक्ति के कारण अंदर में श्रद्धा गुण में भी अभावभाव नाम का रूप पड़ा है। श्रद्धा गुण है और समकित पर्याय है। परंतु श्रद्धागुण में अभावभाव नाम का रूप पड़ा है। उस कारण से श्रद्धागुण में अभावभाव शक्ति के कारण क्षयोपशम (समकित के) स्थान में क्षायिक (समकित) आयेगा। वह इस कारण से आयेगा। भगवान के समीप में गया तो (क्षायिक समकित) आयेगा। ऐसी बात नहीं है, आहाहा ! ऐसी बात है ! बात बैठती है ? बात तो ऐसी है।

यहाँ तो ज्ञान गुण में अभावभाव नाम का गुण अंदर नहीं (है) परंतु उसका रूप है। उस कारण से ज्ञान की वर्तमान पर्याय में विशेष का अभाव है, तो विशेष के अभाव में (भविष्य में) भाव हो जायेगा। अभावभाव शक्ति के कारण (भाव हो जायेगा)। आहाहा !

यह निमित्त का बड़ा गोटाला उड़ जाता है। गुरु से ज्ञान मिलता है, भगवान की वाणी सुनने से ज्ञान की वृद्धि होती है, यह सब उड़ जाता है। आत्मा में गुण ही ऐसा है। अभावभाव नाम की शक्ति - गुण ऐसा है कि, उस कारण से वर्तमान में विशेष (ज्ञान) न हो तो विशेष (ज्ञान) आयेगा। (वह) अभावभाव शक्ति के कारण से आयेगा। समझ में आया ? यह एक बोल भी यथार्थ समझे तो (निमित्त का झगड़ा) उड़ जाये। उपादान से होता है, निमित्त से नहीं, समझ में आया ? (निमित्त से होता है, यह) बड़ी गड़बड़ है।

एक विद्वान ने पंचाध्यायी की टीका में लिखा था कि, छट्ठे गुणस्थान में बुद्धिपूर्वक का राग है और अबुद्धिपूर्वक का (राग) सातवें (गुणस्थान में) है, ऐसा पंचाध्यायी में लिखा। हमने कहा, ऐसा नहीं (है)। छट्ठे गुणस्थान में बुद्धिपूर्वक और अबुद्धिपूर्वक दोनों प्रकार का राग है। और सातवें (गुणस्थान में) अबुद्धिपूर्वक एक (राग) है। बुद्धिपूर्वक का (राग) छट्ठे (गुणस्थान में) है और अबुद्धिपूर्वक का (राग) सातवें (गुणस्थान में) है, ऐसा नहीं है।

क्या समझ में आया ? चौथे (गुणस्थान में) भी है, उसकी यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो चौथे (गुणस्थान में) भी उपयोग में बुद्धिपूर्वक जो राग ख्याल में आता है, वह है और उपयोग काम नहीं करता, ऐसा अबुद्धिपूर्वक का (राग) चौथे (गुणस्थान में) भी है। चारित्रवंत है, तीन कषाय का अभाव है, (ऐसे) मुनि में ऐसी बात नहीं है। आहाहा ! ख्याल में नहीं आनेवाले राग को अबुद्धिपूर्वक का (राग) कहते हैं और नय से कहो तो असद्भुत अनउपचार कहने में आता है। ऐसी सूक्ष्म बातें हैं !

फिर से कहते हैं। एकदम जाने नहीं देंगे। तब तो बात पक्की सिद्ध होगी। क्या कहा ? इस आत्मा में चिद्घन का ज्ञान - भान हुआ, उसे भी राग तो है परंतु राग जितना ख्याल में आता है, इसको असद्भुत उपचार कहने में आता है। क्योंकि राग अपने में नहीं इसलिये असद्भुत और उपचार तो ख्याल में आता है, फिर भी राग कहना, वह उपचार (हुआ)। उस समय उपयोग सूक्ष्म नहीं है। (फिर भी) वहाँ अबुद्धिपूर्वक का राग है। अबुद्धिपूर्वक के राग को असद्भुत अनउपचार नय का विषय कहने में आया है। इतना सब (कैसे समझना) ? समझ में आया ? बुद्धिपूर्वक और अबुद्धिपूर्वक (राग) चौथे, पांचवे, छठ्ठे (गुणस्थान) तक होता है। सातवें (गुणस्थान में) अकेला अबुद्धिपूर्वक का (राग) होता है। (उस विद्वान को) भूल बतायी तो (उन्होंने कहा), हम सब पंडित लोगों ने निमित्त आधीन (दृष्टि से शास्त्र) पढ़ें हैं। हमारी सब वृत्ति निमित्ताधीन की है। यह पढ़ाई हमारे पास नहीं है। हम कहाँ से लावे ? ऐसा कहते थे।

यहाँ कहते हैं कि, चौथे गुणस्थान में आत्मज्ञान हुआ, फिर भी कषाय भाव है। कषाय में राग हो, द्वेष हो, क्रोध हो, क्रोध-मान को द्वेष कहते हैं, माया - लोभ को राग कहते हैं। उसमें से कोई राग का अंश हो वह अंश ख्याल में आता है, इतने राग को बुद्धिपूर्वक कहते हैं। ख्याल में नहीं आनेवाले (राग को) अबुद्धिपूर्वक का (राग कहते हैं)। असद्भुत कहने से आत्मा में दोनों (प्रकार के) राग का अभाव है। यहाँ (शक्ति के वर्णन में) यह बात लेनी ही नहीं है। उसे क्रोध है और क्रोध का अभाव (होगा), यहाँ ये प्रश्न ही नहीं है। यहाँ तो इसमें क्रोध है ही नहीं। शक्ति का वर्णन है तो शक्ति गुणरूप है। गुणरूप है तो उसका परिणमन निर्मल ही है। क्रमवर्ती निर्मल पर्याय और अक्रमवर्ती निर्मल गुण, उसका समुदाय वह आत्मा है। यहाँ विकारी बात नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? कितना याद रखना ? बनिये को व्यापार के आड़े फुरसद नहीं मिलती। आहाहा !

अरे भाई ! अनंतकाल में कभी यथार्थ निर्णय - अनुभव नहीं किया तो अनुभव के बिना जन्म-मरण नहीं मिटेगा, भाई ! तेरे व्रत, तप, भक्ति और पूजा लाख, करोड़

अनंत (बार) करे (तो भी) वह तो राग है, विकार है, क्लेश है, दुःख है। समझ में आया? करोड़ की पूंजी हो और (उसमें से) दस लाख, पच्चीस लाख खर्च कर दे (और माने कि) धर्म है। (लेकिन) तीनकाल में (धर्म) नहीं है, समझ में आया ? आहाहा !

रात्रि को दृष्टांत नहीं दिया था ? (कोई) गृहस्थ करोड़पति आदमी हो उसको (यह) सुनने से ऐसा हुआ कि, अरे...! मैं चला जाता हूँ। मेरे पास करोड़ (रुपया) है, तो मैं दस लाख देना चाहता हूँ। (लेकिन) अंतिम समय में भाषा बराबर बोल नहीं पाते थे)। दस...दस..लाख, (ऐसा बोलने लगे) तो (लड़के को ऐसा लगा) कि दो लाख का कुछ कहना चाहते हैं। इसलिये लड़के ने कहा कि, पिताजी ! इस समय में पैसे को याद नहीं करते। लड़के भी सब ऐसे धूर्त हैं, आहाहा ! नियमसार में (ऐसा) पाठ है। तुझे आजीविका के लिये धूर्त की टोली मिली है। स्त्री, पुत्र, पुत्री, बहु (ये) सब धूर्त की टोली है। तुझे लूंट लेंगे। मार डालेंगे। पर द्रव्य है, उसको मेरा मानना, मैं उसका रक्षण करूँ, (ऐसी मान्यता में) तू मर जायेगा। नियमसार में कलश है। आजीविका के लिये धूर्त की टोली (मिली है)। साड़ी लाओ, लड़के की शादी करो, लड़की बड़ी हो गई है... सब लूटेरे हैं।

यहाँ कहते हैं कि, आत्मा में जो कषाय होता है, यहाँ उसकी बात तो ली ही नहीं। क्योंकि यहाँ तो आत्मा और आत्मा की शक्ति दोनों निर्मल हैं। निर्मल स्वरूप की दृष्टि करने से पर्याय में निर्मलता ही उत्पन्न होती है। क्रमवर्ती निर्मल पर्याय और अक्रमवर्ती निर्मल शक्तियाँ, उसका समूह उसे आत्मा कहा है। यहाँ राग की बात नहीं है, समझ में आया ?

इसलिये यहाँ कहते हैं कि, ज्ञानगुण में एक अभावभाव नाम की शक्ति है। ऐसी श्रद्धागुण में अभावभाव नाम की शक्ति है। शक्ति माने उसका रूप। श्रद्धा जब क्षयोपशमरूप है तो उसके स्थान में क्षायिक (समकित) नहीं। क्षयोपशम में क्षायिक का अभाव है। परंतु इस अभावभाव शक्ति के कारण क्षयोपशम का अभाव होकर क्षायिक (समकित) होगी ही। क्षायिक होगा ही। क्षायिक होगा यह अभावभाव शक्ति के कारण होगा। भगवान के समीप में आया इसलिये (क्षायिक समकित) होगा, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? और चारित्रगुण में भी अभावभाव नाम की शक्ति का रूप है, तो चारित्रगुण जो थोड़ा निर्मल हुआ है और अभी विशेष निर्मल नहीं हुआ, विशेष निर्मलता का वर्तमान अल्प निर्मलता में अभाव है तो अभावभावशक्ति के कारण अल्प निर्मलता छूटकर चारित्र की विशेष निर्मलता होगी ही। वह अभावभाव शक्ति के कारण है। चारित्रमोह छूट जायेगा तो यहाँ वृद्धि होगी, ऐसी बात नहीं है, आहाहा ! ऐसा स्वरूप है, भाई ! लोग तकरार करते हैं। लोग कहते

हैं कि, निमित्त को मानते नहीं, व्यवहार से मानते नहीं। बापू ! यहाँ व्यवहार को तो गिनने में आया ही नहीं। यहाँ शक्ति के वर्णन में व्यवहार और निमित्त को गिनने में आया ही नहीं। क्योंकि अपने में व्यवहार का ज्ञान होता है, उस पर्याय को निर्मल गिनने में आया है। व्यवहार (गिनने में) नहीं (आया है)। क्या कहा ? समझ में आया ? राग आदि व्यवहार होता है परंतु यहाँ शक्ति के वर्णन में सब शक्तियाँ निर्मल हैं तो उनकी दृष्टि करने से निर्मल परिणति ही होगी। यहाँ मलिन परिणति की बात नहीं है। तो (कोई) कहे कि, थोड़ी मलिनता है न ? तो (उसका ज़वाब यह है कि) उस मलिनता का ज्ञान करते हैं, यह ज्ञान की पर्याय उसकी है। वह भी अपनी अभावभाव (शक्ति के) कारण से ज्ञान की पर्याय हुई है। आहाहा ! यह तो बहुत कठिन काम (है), बापू ! (धर्म की मान्यता में) बड़ा फ़र्क (है)। पूर्व - पश्चिम जितना अंतर है।

ऐसे (आत्मा में) आनंद गुण है। उसमें अभावभाव शक्ति का रूप है। (आनंद) शक्ति है उस कारण से और उसका (अभावभाव शक्ति का) रूप है उस कारण से, चौथे गुणस्थान में आनंद का जो अल्प वेदन - अनुभव में है और पांचवे (गुणस्थान में) विशेष है, छठ्ठे (गुणस्थान में उससे) विशेष, और सातवें (गुणस्थान में उससे भी) विशेष है। तो कहते हैं कि, वर्तमान में विशेष आनंद का अभाव है तो उस स्थान में अभावभाव शक्ति के कारण विशेष आनंद होगा ही। मोह कर्म का नाश होगा तो सुख वृद्धि होगी, ऐसा नहीं है। आहाहा ! एक-एक शक्ति ने (कोई) काम किया है ! गज़ब काम किया है ! ओहोहो ! दिगंबर संतों की धारावाही कथनी (है)। आहाहा ! ऐसी वस्तु की स्थिति है। यह तो वस्तु की मर्यादा ऐसी है।

यहाँ स्वरूपाचरण में चौथे गुणस्थान में चारित्र की निर्मलता अल्प है और पाँचवें (गुणस्थान में) चारित्र की विशेष (निर्मलता है)। क्योंकि दूसरे कषाय का अभाव हुआ न? अपने परिणाम की मलिनता का (अभाव हुआ)। दूसरी प्रकृति के अभाव की यहाँ बात नहीं है। दूसरे कषाय की मलिनता का अभाव होने से पंचम गुणस्थान में शांति और आनंद विशेष है तो भी कहते हैं कि, विशेष आनंद आया वह कषाय प्रकृति गयी इसलिये विशेष आनंद आया, ऐसा नहीं है। आहाहा ! उसमें जो अभावभाव नाम की शक्ति है तो आनंद में भी अभावभाव नाम का भाव (रूप) पड़ा है। आनंद में अभावभाव का भाव पड़ा है। (वर्तमान में) आनंद का जो अल्प वेदन है, विशेष आनंद का अभाव है तो अभावभाव के कारण विशेष आनंद आयेगा। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है !

(वर्तमान में) वीर्य कम है। चौथे - पाँचवें आदि (गुणस्थान में) पुरुषार्थ - वीर्य कम है। उस वीर्य की वृद्धि - स्वरूप रचना की वृद्धि, जो चौथे गुणस्थान में स्वरूप रचना

है, इससे पाँचवें, छट्ठे और सातवें (गुणस्थान में) विशेष स्वरूप रचना है। विशेष स्वरूप रचना का पहले अभाव है, उसमें इस अभावभाव शक्ति के कारण से विशेष स्वरूप की रचना होगी, आहाहा ! यह वीर्य अंतराय का क्षय, क्षयोपशम हुआ, इसलिये वृद्धि हुई, ऐसा नहीं है। वीर्यांतराय है न ? अंतराय की पाँच प्रकृति (है)। (उसमें) वीर्यांतराय का अभाव हुआ तो वीर्य की वृद्धि हुई, ऐसा नहीं, आहाहा ! गज़ब बात है !

संतों की शैली तो (देखो) ! शांति प्राप्त कराये उसे संत कहें। उनके दासानुदास बनकर रहें। आहाहा ! समझ में आया ? समकिती दास है न ? सबेरे कहा था न? जिनेश्वरदास है। आत्मा भगवान का दास है। (भविष्य में) उसमें जिनेश्वरपना आयेगा, दास में जिनेश्वरपना आयेगा। वह अभावभाव शक्ति के कारण से आयेगा। आहाहा ! समझना, समझ में आये ऐसा है। बात समझ में आयी ? भाषा तो सादी है। परंतु निमित्त और उपादान के झगड़े को (लोगों ने खड़ा किया)। हमारे सोनगढ़ के नाम से निमित्त - व्यवहार और क्रमबद्ध, ये तीन का विरोध करते हैं। अरे भगवान ! सुन तो सही नाथ !

यहाँ तो सम्यग्दर्शन से बात उठाई है न ? यहाँ अज्ञानी की बात नहीं है। अपना चिद्घन अनंत गुण संपन्न, अनंत शक्ति संपन्न, प्रभु ! उसका (जिसे स्वीकार हुआ है, उसकी बात है)। आत्मधर्म में अंत में आया है न ? `जिहीं देखो हम, अवर न देख्या' ऐसा शब्द पड़ा है। `जिहीं देख्यो, हम अवर न देखो' भजन में कहते हैं कि, `मैं मेरा आत्मा देखा (तो) अवर न देख्या' उस समय में मैंने पर को नहीं देखा। और `देख्या सो श्रद्धान्यो' जो देखने में आया वह पूर्णानंद का नाथ है, ऐसा देखने में आया उसका श्रद्धान किया। `जिहीं देख्यो हम, अवर न देख्यो' भगवान आनंद और अनंत गुण संपन्न प्रभु ! उसने अपनी पर्याय में देखा और `अवर न देख्या' पर को देखने का बंध हो गया और अपने को देखा। और `देख्या सो श्रद्धान्यो' भगवान पूर्णानंद का नाथ ! जैसा देखा ऐसा श्रद्धान हुआ। देखा ऐसा श्रद्धान हुआ। दर्शनमोह टला इसलिये श्रद्धान हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

मिथ्यात्व का काल में सम्यग्दर्शन का अभाव है। परंतु जिसने आत्मा को देखा तो उसमें अभावभाव शक्ति के कारण (क्षायिक) सम्यग्दर्शन की पर्याय नहीं है तो (क्षायिक) सम्यग्दर्शन होगा, आहाहा ! समझ में आया ? यह शब्द थोड़ा ख्याल में रह गया था। `जिहीं देख्या हम, अवर न देख्यो, देख्या सो श्रद्धान्या' मैंने देखा उसका श्रद्धान किया। समझ में आया ? देखे बिना श्रद्धान (किसका) ? जो चीज़ ज्ञान में आयी नहीं तो श्रद्धान किसका ? १७-१८ गाथा में यह दृष्टांत आया न ? खरगोश के सींग नहीं हो तो उसकी प्रतीत क्या ? `है' (ऐसा) देखने में आये तो उसकी प्रतीत (हो सकती है)। वैसे

भगवान आत्मा ! ज्ञान की पर्याय में जानने में आता है। श्रद्धा की पर्याय में श्रद्धान में आता है। जो देखा उसकी श्रद्धा है। जाना उसकी श्रद्धा है। आहाहा ! उस श्रद्धा की पर्याय में जो कमज़ोरी है - क्षयोपशम समकित (है और) क्षायिक (समकित का) अभाव है, परंतु अभावभाव शक्ति के कारण (क्षायिक समकित होगा ही)। आहाहा ! गज़ब काम करते हैं !

एक दूसरी बात यह भी है कि, समयसार की ३८ गाथा (और) प्रवचनसार की ९२ गाथा में आचार्य ऐसा कहते हैं, हमको आत्मज्ञान से मिथ्यात्व का नाश हुआ है। वह अब फिर नहीं आयेगा, आहाहा ! (ऐसा) कैसे कहा ? हमारे आत्मा में अभावभाव नाम का गुण है। उस गुण के कारण से मिथ्यात्व का अभाव हुआ, उस समय में समकित आदि वृद्धिगत नहीं था, वह (क्षायिक) समकित अभावभाव (शक्ति के) कारण से आयेगा ही। वह आया अब फिरेगा नहीं, आहाहा !

यहाँ तो यह कहा न ? कि जिसने दृष्टि में द्रव्य लिया, उसे शक्तियों की भी प्रतीति आयी। उसमें अभावभाव शक्ति नाम की शक्ति है, तो उसकी वर्तमान पर्याय अल्प है और विशेष नहीं, उस विशेष का अभाव (है तो भविष्य में) भाव आयेगा ही। उसमें विशेष का अभाव है (फिर भी) अभावभाव शक्ति के कारण विशेष आयेगी ही। (समकित से) गिर जायेगा, च्युत हो जायेगा, यहाँ ऐसी बात नहीं है। आहाहा ! भाई ! क्या कहा समझ में आया थोड़ा ?

सम्यग्दर्शन प्राप्त करे और बाद में गिर जायेगा, वह बात ही यहाँ नहीं है। आहाहा ! क्योंकि जिसे स्वानुभूति में द्रव्यस्वभाव, भगवान आत्मा की प्रतीति - अनुभव हुआ, (उसने साथ में) अभावभाव गुण को भी पकड़ लिया। उस कारण से वर्तमान में जो अभाव (रूप) है, उसका भाव होगा ही। भाव का अभाव होगा, ऐसा नहीं। अभाव है उसका भाव होगा, आहाहा ! समझ में आता है कुछ ?

जो भाव प्रगट हुआ है उसका अभाव होगा, किस अपेक्षा से (कहा) ? भाव का अभाव कहा तो (उसमें मात्र) पर्याय का अभाव (होगा) इतना (लेना)। परंतु पर्याय के अभाव में समकित का (भी) अभाव (होगा), ऐसी बात नहीं है।

पहले भावअभाव (शक्ति) आयी न ? तीसरी भावअभाव शक्ति (चल गई)। पहली भाव शक्ति के (कारण) वर्तमान में अनंत गुण की निर्मल पर्याय विद्यमान होती है और होती (ही) है। और अभावशक्ति के कारण पर के अभावरूप अपना सहज परिणमन है, रागरूप और पररूप नहीं परिणमन करना, ऐसा अभाव शक्ति के कारण से है। सब भावअभाव में - वर्तमान पर्याय - भाव है, उसका अभाव होगा। अभाव होगा का अर्थ - निर्मल पर्याय

है और उसका अभाव होकर दूसरी (निर्मल) पर्याय होगी, परंतु अभाव होकर मिथ्यात्व होगा, (ऐसा नहीं है)। आहाहा ! समझ में आया ? गज़ब काम किया है, प्रभु ! आहाहा ! शक्ति का वर्णन (गज़ब है) ! कोई विद्वान कहते हैं कि, (शक्ति का वर्णन) पूरा होगा या नहीं ? यह तो कहाँ (खत्म हो ऐसा है) ? चलते - चलते कहाँ निकले (क्या खबर) ? आहाहा ! समझ में आया ?

भाव का अभाव (होगा उसका) अर्थ यह नहीं है कि, निर्मल पर्याय भावरूप है, उसका अभाव होगा और मिथ्यात्व होगा, ऐसा नहीं है। यहाँ तो वर्तमान निर्मल पर्याय है, वह भावअभाव (शक्ति के) कारण उसका व्यय होकर दूसरी (निर्मल) पर्याय होगी। दूसरी (पर्याय) होगी वह निर्मल (पर्याय) ही होगी। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! खजाना खोल दिया है ! आहाहा ! भगवान तेरे पास एक अभावभाव नाम की शक्ति है न ? गुण है न ? इस गुण में अनंती ताकत है न ? और इस गुण की अनंती पर्याय हैं न ? आहाहा ! समझ में आया ? यह अभाव (भाव) नाम की शक्ति - गुण है उसकी अनंत (निर्मल पर्याय होगी ही होगी)। यहाँ निर्मल (पर्याय) की बात है। मलिन (पर्याय की) बात नहीं है। यह निर्मल पर्याय अभी अल्प है और विशेष का अभाव हो तो अभावभाव (शक्ति के) कारण विशेष पर्याय होगी ही होगी। आहाहा ! यहाँ नीचे गिर जाने की बात ही नहीं है। (यहाँ तो ऊपर - ऊपर) चढ़ने की (बात) है, आहाहा ! वस्तु यह है।

भगवान ! जिसने द्रव्य दृष्टि में लिया वह द्रव्य गिर जाये, द्रव्य का अभाव हो तो समकित का अभाव हो, आहाहा ! द्रव्य का जो अभाव हो तो समकित का अभाव हो, ऐसे यहाँ लिया है। द्रव्य और द्रव्य की शक्ति का तीनकाल में अभाव होता नहीं। आहाहा ! उसकी जिसने अनुभव में प्रतीति की, (उस पर्याय का) व्यय होगा लेकिन व्यय होकर दूसरी निर्मल पर्याय उत्पन्न होगी, उसका व्यय होकर मिथ्यात्व उत्पन्न होगा, ऐसा आत्मा में कोई गुण नहीं है, आहाहा ! समझ में आया ? आस्त्रव अधिकार में 'नय परिच्युता' लिया है। मूल में तो शुद्धनय को ही नय कहा है। वहाँ व्यवहारनय को नय ही नहीं गिना। 'नय परिहिणा' में शुद्धनय को ही नय गिना है। आहाहा ! समझ में आया ? जिसने अपने द्रव्य स्वभाव को प्रतीति - दृष्टि में लिया, वह (दृष्टि) जिसने छोड़ी वह नय से 'परिहिणा' हो गया। यहाँ तो छोड़ने की बात ही नहीं है। आहाहा ! ओहोहो ! गज़ब बात है ! अप्रतिहतभाव की बात करते हैं ! (वर्तमान में) चाहे तो क्षयोपशम समकित हो, परंतु (यहाँ तो) कहते हैं कि, दूसरे समय में क्षायिक (समकित) होनेवाला है तो उस भाव का अभाव होकर, अभाव का भाव हुआ। जो उसमें (वर्तमान में) नहीं है, वह अभावभाव शक्ति के कारण हुआ। द्रव्य की शक्ति ही ऐसी है। आहाहा ! द्रव्य का सामर्थ्य इतना

है कि वर्तमान में निर्मल पर्याय अल्प है उसका (अभाव होकर) विशेष (निर्मल पर्याय) होगी ही। आहाहा ! वहाँ निमित्त की अपेक्षा नहीं है। कर्म का अभाव होता है तो निर्मलता होती है (ऐसी निमित्त की अपेक्षा नहीं है)। आहाहा ! समझ में आया ? गज़ब काम किया है !

(ऐसे) वीर्य, ऐसे सुख, ऐसे कर्ता, कर्म आदि शक्ति है न ? (सभी में ऐसे ही लेना)। कर्ता (शक्ति) बाद में आयेगी। कर्ता शक्ति में भी अभावभाव नाम की शक्ति का रूप है। जो निर्मल परिणति का कर्ता होता है तो वह कर्ता की अल्प निर्मल परिणति है, (उसका) विशेष भाव होगा। अभावभाव शक्ति के कारण अनंत गुण की परिणति की अल्पता है, उसका विशेष कर्ता होगा। कर्ता गुण में भी अभावभाव नाम की शक्ति का रूप है। आहाहा ! गज़ब बात है ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा का दृष्टि में भेटा हुआ (उसकी पर्याय अब नीचे गिरेगी, ऐसा नहीं है)। आहाहा ! द्रव्य में अभावभाव नाम की शक्ति भी है तो द्रव्य की जहाँ प्रतीति हुई, अभावभाव नाम की शक्ति अंदर है तो यह प्रतीति गिर जायेगी, यहाँ वह बात नहीं है। सुख की, ज्ञान की, दर्शन की, चारित्र की, वीर्य की विशेष वृद्धि होगी, आहाहा ! अरे ! अनंत गुण की जो अल्प पर्याय है (उसका) विशेष होने का वर्तमान में अभाव है तो (भविष्य में विशेष) भाव होगा ही। आहाहा ! क्या कहा समझे ? भगवान में ऐसा अभावभाव नाम का गुण है। अभावभाव का गुण है तो वर्तमान में (विशेष भाव) नहीं है, उसका भाव आ जायेगा, आहाहा ! यहाँ निर्मल (पर्याय की) बात है। आहाहा !

निमित्त की चर्चा में यह तकरार ली है कि, ज्ञान वाणी का कर्ता है, ऐसा शब्द आता है। (ऐसा) निमित्त से कथन है। वाणी की पर्याय का कर्ता ज्ञान है, (ऐसा कथन आता है), आहाहा ! यहाँ तो ये बात नहीं है। वाणी का कर्ता तो नहीं परंतु अल्प ज्ञान का कर्तापना जो है, उसमें वर्तमान में विशेष ज्ञान का कर्तापने का अभाव है, (तो भविष्य में विशेष) भाव आयेगा। आहाहा ! गज़ब काम किया है न ! शब्द तो इतने है, ``**नहीं भवते हुए (अप्रवर्तमान) पर्याय के उदयरूप...**'' (वर्तमान में) नहीं होनेवाली पर्याय में, प्रगट पर्याय होने रूप - अभावभाव शक्ति का कार्य है, आहाहा ! गज़ब काम किया है न !

लोग स्वाध्याय करते नहीं। शास्त्र - आगम का क्या अभिप्राय है ? उसे अपनी दृष्टि में लेते नहीं और अपनी दृष्टि आगम की दृष्टि में लगा देते हैं (और कहते हैं) `इसमें कहा (है), ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञान की (आवरित) होता है' आहाहा ! वह तो निमित्त का कथन है। ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञान को आवरित करता है, वह तो निमित्त का कथन है और आवरण टलता है तो क्षयोपशम होता है, वह तो निमित्त का कथन है। यहाँ

तो अभावभाव शक्ति के कारण क्षयोपशम बढ़ जाता है। (वर्तमान में) अल्प (पर्याय में विशेष का) अभाव है, तो (भविष्य में) विशेष (भाव) हो जायेगा ही। कर्म के अभाव के कारण से नहीं, (परंतु अपनी शक्ति के कारण से होगा), आहाहा !

लोग ऐसा कहते हैं कि, हमें यह सुनने में आया वह ज्ञान पहले तो नहीं था, तो सुनने में आया तो सुनने से नया ज्ञान हुआ, उसका (यहाँ) निषेध करते हैं। तेरा ज्ञान का परिणमन पहले इस जात का (प्रकार का) नहीं था और बाद में इस जात का हुआ, वह तेरी अभावभाव शक्ति के कारण निर्मलता की वृद्धि हुई है। सुनने से वृद्धि हुई, ऐसा नहीं है। आहाहा ! गज़ब बात है !

श्रोता : फिर सुनना क्यों ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो विकल्प आता है, आये बिना रहता नहीं। विकल्प और सुनना, अंदर दोनों का निषेध है। समझ में आया ?

परमात्मप्रकाश में तो लिया है कि, भगवान की दिव्यध्वनि से भी अपना ज्ञान नहीं होता, आहाहा ! उसका विरोध करते हैं। अरेरे...! भगवान की वाणी से (ज्ञान नहीं होता, ऐसा कहते हैं) ! अरे भाई ! सुन तो सही ! यह परमात्मप्रकाश क्या पुकार करते हैं ? दिव्यध्वनि और मुनि के कहे हुए शास्त्रों से ज्ञान नहीं होता, आहाहा ! तेरी पर्याय में जो ज्ञान नहीं है, वह ज्ञान आता है, वह अभावभाव शक्ति के कारण से आता है, आहाहा ! ऐसी बात (है) ! यह शक्ति बहुत चली। पोना घंटा (हो गया)।

ऐसा अनंत गुण में लेना है। अभावभाव शक्ति अनंत गुण में लेनी। जितने गुण हैं इन सबमें अभावभाव शक्ति का रूप है, आहाहा ! अपना आत्मा का - स्वरूप का लाभ होता है, तो लाभांतराय के क्षयोपशम में स्वरूप का लाभ होता है, ऐसा नहीं। आहाहा ! लाभांतराय, वीर्यांतराय (ऐसे) पाँच आवरण हैं न ? आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि, अंतराय कर्म का नाश होता है तो तेरे स्वरूप का लाभ होता है, ऐसा नहीं है। स्वरूप का अल्प लाभ है इसमें विशेष लाभ होता है, वह अंतराय में लाभांतराय गया इसलिये नहीं, परंतु तेरे में एक अभावभाव नाम का गुण है, उस कारण से अल्प लाभ से विशेष लाभ होता है। उसमें अभावभाव (शक्ति) कारण है, आहाहा ! ऐसी बातें कहाँ (सुनने मिले) ?

भिंड से एक विद्वान आये थे। (दृष्टि में) बहुत फेरफार था। (वे कहते थे), `सम्यग्दर्शन होने के बाद गिरता ही नहीं' (हमने कहा), `ऐसा नहीं है। वह अपेक्षा अलग है।' वे ऐसा कहते थे कि, `(सम्यग्दर्शन) गिर जाये तो (भी) अंदर सम्यग्दर्शन का रस रहता है' हमने कहा, `ऐसा नहीं है। गिर जाने का अर्थ द्रव्य की जो शक्तियाँ हैं, उसकी प्रतीति चली जाये तो गिर जाता है। द्रव्य की प्रतीति रहे और गिर जाये, ऐसा तीनकाल में नहीं

होता।' समझ में आया ? आहाहा ! लोगों को अपनी कल्पना से शास्त्र का अर्थ बनाना है और अपनी कल्पना से चलाना, ऐसा नहीं चलता। यह तो तीनलोक के नाथ वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग है। गज़ब बात है, प्रभु !

तेरे में जितनी शक्तियाँ हैं, गुण कहो कि शक्ति कहो, उस एक-एक गुण में अभावभाव नाम की शक्ति का रूप पड़ा है, आहाहा ! सामान्यगुण भी अनंत है और विशेष गुण भी अनंत है। आचार्यों ने सामान्य गुण ६ लिये हैं। वह विशेष कथन नहीं कर सकते (इसलिये ६ कहे हैं)। बाकी (अनंत गुण हैं)। आत्मा में ज्ञान, दर्शन और आनंद ऐसे विशेष गुण भी अनंत हैं और अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रदेशत्व ऐसे भी अनंत गुण हैं। ऐसे सामान्य - विशेष अनंत गुण संख्या से है। उसका वर्तमान में द्रव्य की दृष्टि से स्वीकार होता है तो जो निर्मल पर्याय होती है, उसमें विशेष निर्मलता का अभाव है, उस अभाव का भाव होगा ही, आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बातें हैं ! अरे प्रभु ! किसके साथ वाद करें ? और वाद-विवाद कैसे करना ? आहाहा !

चिति, दशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व (इत्यादि अनंत शक्तियाँ हैं)। प्रभुत्व नाम की शक्ति है उसमें भी अभावभाव शक्ति का रूप है। जो पर्याय में अल्प ईश्वरता प्रगट हुई है, उस प्रभुत्व शक्ति में अभावभावशक्ति के रूप के कारण, अल्प प्रभुता में विशेष प्रभुता आयेगी ही। आहाहा ! अल्प ईश्वर दशा जो सम्यग्दर्शन में प्रगट हुई और वर्तमान में पर्याय में विशेष ईश्वरता का अभाव है तो अभावभाव (शक्ति के) कारण अल्पता में विशेष प्रभुता की शक्ति आयेगी ही। तेरी शक्ति के कारण से शक्ति आयेगी, आहाहा ! ईश्वर नाम सामर्थ्यता। प्रभुता की पर्याय में जो अल्प प्रभुता है, उसमें विशेष प्रभुता का अभाव है, परंतु अंदर अभावभाव शक्ति के कारण विशेष प्रभुता आयेगी, आहाहा ! ऐसी बात है, समझ में आया ?

(अब) स्वसंवेदन लेते हैं। आत्मा में जो अपना वेदन - अनुभव होता है, वह प्रकाशशक्ति के कारण - इस गुण के कारण (होता है)। स्वसंवेदन (अर्थात्) स्व (नाम) अपना और (संवेदन नाम) प्रत्यक्ष वेदन। चौथे गुणस्थान में जो स्वसंवेदन है, उससे मुनि को (अथवा पाँचवें (गुणस्थान में) स्वसंवेदन वृद्धि पाता है, तो यह कषाय के भाव का अभाव हुआ, उस कारण से नहीं। प्रकृति का अभाव हुआ उस कारण से तो नहीं परंतु अपने में मलिनता का अभाव हुआ, इसलिये शांति बढ़ गई, स्वसंवेदन बढ़ा, ऐसा (भी) नहीं, आहाहा ! स्वसंवेदन शक्ति में - प्रकाश शक्ति में भी अभावभाव का रूप पड़ा है। (वर्तमान में) स्वसंवेदन अल्प है, इसमें विशेष का अभाव है (तो भविष्य में) विशेष स्वसंवेदन आयेगा ही, आहाहा ! गज़ब बात करते हैं !

यह तो मुख्य - मुख्य गुणों की बात चलती है। आहाहा ! स्वसंवेदन - अपना स्व उसका वेदन। आनंद का, शांति का अनंत गुण की व्यक्त पर्याय का वेदन। चौथे गुणस्थान में भी `सर्व गुणांश ते समकित' (है)। जितनी संख्या में गुण है, उसका प्रत्येक का व्यक्त अंश प्रगट होता है। परंतु वह प्रगट होता है उसमें व्यक्त पर्याय में विशेष व्यक्तता का अभाव है, अभाव होने पर भी, अभावभावशक्ति के कारण विशेष भाव होगा ही, आहाहा ! स्वसंवेदन विशेष होगा ही, आहाहा ! ऐसी बातें पहली - पहली बार चल रही हैं। (किसी ने कहा कि) पहले जो शक्ति का वर्णन किया है, उसे नहीं छपवाना। अब नया ये हुआ उसे छपवाना। अधिक स्पष्टीकरण आया है न इसलिये ! आहाहा ! भगवान ! तेरा निधान तो देख ! तेरे निधान में एक अभावभाव नाम का गुण पड़ा है। उस कारण से (वर्तमान) पर्याय में अल्पता है (और) विशेष का अभाव है, वह विशेष (भाव) होगा ही। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा सब गुण में लेना।

अकारणकार्य शक्ति (है) उसमें भी अभावभाव (शक्ति का रूप है)। अकारणकार्य शक्ति है न ? यह शक्ति भिन्न है। (लेकिन) उसमें भी अभावभाव (शक्ति का) रूप है। अपना विशेष कारण और कार्य उसमें (वर्तमान में) अपना अल्प कारण और कार्य है, वह विशेष अकारणकार्य होगा। वह अपनी अभावभाव शक्ति के कारण होगा। आहाहा ! समझ में आया ?

श्रोता : ऐसा ४७ (शक्ति में) लगाना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ४७ में क्या अनंत (शक्ति में) लगाना। समझ में आया ? (सिर्फ) कहा उसीमें लगाना और नहीं कहा उसमें (भी) लगाना। आहाहा ! अहमदाबाद में माणेकवाडी में जवाहरात का धंधा है। वैसे इस माणेकचौक में (अर्थात्) आत्मा के चौक में जवाहरात का धंधा है।

(कोई) पंडित पूछ रहे थे, यह शक्ति कब पूरी होगी ? भाई ! इसमें क्या मालूम पड़े ? नहीं भवते हुए का भवना (अर्थात्) उदय होना (वह अभावभाव शक्ति के कारण होगा)। आहाहा ! जिसने द्रव्य का पता लिया आहाहा ! दृष्टि में द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई, उसकी पर्याय में कमी है और विशेष का अभाव है (फिर भी उन्हें विशेष) भाव होगा ही। वह अपनी अभावभाव शक्ति के कारण (होगा)। समझ में आया ? आहाहा ! ग़ज़ब बात है ! थोड़े शब्दों में सारा गंभीर (भाव) भर दिया है ! संतों की बलिहारी है ! आहाहा ! जिसमें यथार्थ धारा निकले उसे संत कहने में आता है, आहाहा ! विशेष कहेंगें....

प्रवचन नं. ३२

शक्ति-३३, ३४, ३५, ३६, ३७ दि. ११-०९-१९७७

भूतावस्थत्वरूपा भावशक्तिः ।।३३।।

शून्यावस्थत्वरूपा अभावशक्तिः ।।३४।।

भवत्पर्यायव्ययरूपा भावाभावशक्तिः ।।३५।।

अभवत्पर्यायोदयरूपा अभावभावशक्तिः ।।३६।।

भवत्पर्यायभवनरूपा भावभावशक्तिः ।।३७।।

समयसार शक्ति का अधिकार (चलता) है। प्रथम तो उसमें यह लिया है कि, जिसको सम्यग्दर्शन होता है तो (वह) कैसे हो ? तो कहते हैं कि, व्यवहार का जो विकल्प है; (विकल्प तो है) परंतु उस ओर की रुचि छोड़कर, (स्वरूप की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है)। शुभभाव चला जाता नहीं। शुभभाव तो पूर्ण शुद्ध उपयोग होता तब जायेगा। समझ में आया ? परंतु शुभराग है उसकी रुचि छोड़कर (यह) भूल है ऐसे (उसकी) रुचि छोड़कर; रुचि छोड़कर का अर्थ यह भूल है, इसलिये (उसकी) रुचि छोड़कर, ज्ञायकभाव चिदानंद अखण्ड आनंदकंद प्रभु ! उसकी दृष्टि करना - रुचि करना और अनुभूति करना, यह जीव की प्रथम कार्य सिद्धि है। समझ में आया ? आहाहा ! व्यवहार है इसलिये मिथ्यात्व है, ऐसे नहीं। परंतु व्यवहार में धर्म मानना, यह मिथ्यात्व है। शुभभाव छूट जाता है और एकदम शुद्ध हो जाता है, ऐसा नहीं। परंतु शुभभाव की रुचि छोड़कर स्वभाव का शुद्ध उपयोग होता है, यह सम्यग्दर्शन है। शुभभाव तो जब पूर्ण वीतरागी शुद्ध उपयोग होगा तब छूटेगा। परंतु पहले रुचि में से छूटता है, आहाहा ! समझ में आया ?

आहाहा !

अशुभभाव तो हेय है ही (परंतु) शुभ छोड़कर अशुभ में (जाना), यह तो कोई बात नहीं है। शुभ छोड़कर अशुभ होना, यह प्रश्न यहाँ नहीं है। शुभभाव की रुचि छोड़कर शुद्ध आनंदकंद की दृष्टि करना, उसका अनुभव करना, उसके लिये शुभ को रुचि में से छोड़ना। समझ में आया ? (शुभभाव का) आश्रय करने का छोड़ना। त्रिकाली स्वरूप आश्रय करने लायक है, उस और झुकने से शुभ का आश्रय छूट जाता है, आहाहा ! ऐसी बात (है) ! विशेष विचार क्यों आया ? कि इन छओं शक्तियों में पर्याय ली है, भाई ! क्या कहा ? देखो ! पहला बोल है न ? भावशक्ति है न ? पहले उसे राग की रुचि छोड़कर अंतर में आत्मा का (आश्रय करना) आहाहा ! भगवान आनंद स्वरूप, शुद्ध ज्ञानघन द्रव्य की दृष्टि करने से इसमें निर्विकल्प अनुभव होता है। समझ में आया ? बाद में शुभराग तो आता है परंतु वह हेयबुद्धि से आता है। उससे छोड़कर अशुभ करना, ऐसा कुछ नहीं है, समझ में आया ?

जब तक वीतरागता - पूर्ण दशा न हो, तब तक पर्याय में शुद्ध की दृष्टि और अनुभव होने पर भी शुभभाव आता है। क्षायिक समकिती मुनि को भी शुभभाव आता है। क्षायिक समकिती मुनि होते हैं कि नहीं ? आहाहा !

श्रेणिक राज क्षायिक समकिती (थे)। आहाहा ! फिर भी शुभभाव आया (तो) तीर्थंकर गोत्र बंध गया। भाव बंध का कारण है। शुभभाव पाप का कारण है, ऐसा भी नहीं और अबंध का कारण है, ऐसा भी नहीं। वह पुण्य बंध का कारण है, समझ में आया ?

यहाँ तो प्रथम जिसकी दृष्टि राग और पर्याय पर है उसे छुड़ाकर, प्रभु ! एकबार तेरा निधान (अंदर पड़ा है, उसे देख !) अंतर्मुख देख ! अंदर तेरे आत्मा में पूर्णानंद पड़ा है। बहिर्मुख देखने से तो तेरी पर्याय में राग लक्ष में आयेगा। अंतर्मुख देखने से निधान, चिदानंद सत् चिदानंद, प्रभु ! तेरी दृष्टि में देखने में आयेगा। ऐसी दृष्टि हुई, सम्यग्दर्शन हुआ बाद में, यह छः शक्ति का वर्णन लागू पड़ता है। समझ में आया ? क्यों ? कि, देखो ! पहले भावशक्ति ली है।

``**विद्यमान - अवस्थायुक्ततारूप भावशक्ति।**'' पर्याय से बात ली है। है ? पहली भावशक्ति। ``**विद्यमान - अवस्थायुक्ततारूप भावशक्ति।**'' उसका अर्थ जहाँ अंतर शुद्ध चैतन्यमूर्ति की दृष्टि - अनुभव हुआ तो उसकी भाव नाम शुद्ध पर्याय विद्यमान होती है। भावशक्ति के कारण उस समय में शुद्ध पर्याय की विद्यमानता होती है। रुचिमें से (अशुद्धता) छूट गई, इसलिये अशुद्धता तो है नहीं। (अशुद्धता) है तो भी उसका जाननेवाला रह गया। अपने में जानने की पर्याय है परंतु अशुद्धता अपने में है, यह बात तो छूट गई। समझ

में आया ? क्या शब्द है? यह तो पर्याय (शब्द लिया) है। छओं बोल में पर्याय ली है। (ऐसी) भाषा (है)। है शक्ति, परंतु पर्याय की प्रधानता से शक्ति का वर्णन किया है। अर्थात् अवस्था होती है (निर्मल) अवस्था होती (ही) है। भावशक्ति के कारण निर्मल अवस्था होती ही है। शक्ति तो ध्रुव है परंतु इस शक्ति का कार्य विद्यमान एक निर्मल अवस्था होती है। समझ में आया ? एक बोल (हुआ)।

(अब) दूसरा (बोल)। ``**शून्य (- अविद्यमान) अवस्थायुक्तारूप...**'' यह अभावशक्ति आयी। अभावशक्ति में भी अभावरूपी अवस्था सहित लेना है। राग का पुण्य आदि का अभाव स्वभावरूप, राग की शून्यता उसमें है। ऐसी अभाव (शक्ति की) पर्याय प्रगट होती है। (यहाँ) अकेला अभाव (लेना) है। राग का अभावरूप अस्तिरूप से विद्यमान निर्मल पर्याय भावशक्ति में (लिया)। अभावशक्ति में राग का अभावरूप परिणमन (होता है)। राग का मलिनपनारूप परिणमन नहीं, ऐसी अवस्था होती है। ऐसी बातें (हैं) !

बापू ! पहले मार्ग की सूक्ष्मता बहुत है। आहाहा ! पीछे तो रास्ता खुला हो जाता है। खजाना खुल गया। बाद में अंदर से कबाट खुल गया। राग की एकताबुद्धि छोड़कर त्रिकाली स्वभाव की एकताबुद्धि हुई (तो) खजाना खुल गया। राग की एकताबुद्धि में खजाने में ताला था। आहाहा ! समझ में आया ? राग की एकताबुद्धि छूट गई (और) स्वभाव की एकताबुद्धि हुई (तो) कुंजी से खजाना खुल गया। सम्यग्दर्शन की कुंजी से खजाना खुल गया, आहाहा ! उसमें विद्यमान भावशक्ति के कारण निर्मल पर्याय विद्यमान है और मलिन पर्याय का शून्यपना है। समझ में आया ? वहाँ मलिन पर्याय है, उसको यहाँ गिनने में नहीं आया है। उसका अभाव गिनने में आया (है)। समझ में आया ? इस अभाव (शक्ति में) पर्याय ली है। भाव (शक्ति में) भी पर्याय (ली) है। (और) अभाव में (भी) पर्याय (ली) है।

(अब तीसरा बोल)। ``**भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के व्ययरूप भावाभावशक्ति।**'' है? वर्तमान भाव के कारण जो निर्मल पर्याय विद्यमान है, उसमें भावअभावशक्ति (के कारण) विद्यमान (निर्मल पर्याय) है, उसका अभाव हो जायेगा। क्योंकि उसकी एक समय की मुदत है। पर्याय की शुद्धता की विद्यमानता की एक समय की मर्यादा है। इस भाव का व्यय होकर अभाव हो जायेगा। पर्याय का भाव है उसका अभाव हो जायेगा। यह भावअभाव शक्ति के कारण पर्याय ऐसे हुई, आहाहा ! समझ में आया ?

बाद में अभावभाव आया न ? ``**नहीं भवते हुए (अप्रवर्तमान) पर्याय के अभवनरूप अभावाभाव शक्ति।**'' आहाहा ! है ? बाद में ``**नहीं भवते हुए (अप्रवर्तमान) पर्याय के उदयरूप अभावभाव शक्ति।**'' वर्तमान में (विशेष भाव) नहीं है परंतु भविष्य की पर्याय प्रगट होगी

ही, ऐसा अभावभाव शक्ति का कार्य है। समझ में आया ? वर्तमान में अभाव है परंतु अभावभाव शक्ति के कारण वह भाव है, उसका अभाव हो जायेगा और जो अभाव है, इसका भाव हो जायेगा। वर्तमान में पीछे की निर्मल पर्याय का अभाव है, उसका भाव होगा और (वर्तमान में) निर्मल पर्याय है, इसका अभाव हो जायेगा, आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई !

अब, ``**भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के भवनरूप भावभावशक्ति।**'' आज अब भावभाव शक्ति (लेंगे)। कैसे (शक्ति) ली है ? ``**भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के भवनरूप भावभाव-शक्ति।**'' वर्तमान ज्ञान की पर्याय भवनरूप है, ऐसी की ऐसी ज्ञानरूप पर्याय भवनरूप होगी। जैसा (अभी) भाव है, ऐसा ही भाव रहेगा। प्रथम द्रव्य और गुण में जो ज्ञान भाव है, उस कारण से भी भावभावशक्ति गिनने में आती है और वर्तमान जो भावपर्याय है, वैसी की वैसी उसी जात की ज्ञान की पर्याय, ज्ञान की पर्याय रहेगी। दर्शन की, दर्शन की पर्याय रहेगी। चारित्र की, चारित्र पर्याय रहेगी। बाद में भविष्य में (ऐसी ही रहेगी)। (ऐसी) भावभाव शक्ति (है)। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

फिर से, क्या कहा ? देखो ! ``**भवते हुए...**'' है ? यह तो अकेले मंत्र है, भाई ! यह कोई कथा या कहानी नहीं है, आहाहा ! भगवान आत्मा में एक भावभावशक्ति है। अभावभाव की बात पहले चल गई। अब भावभाव नाम की एक शक्ति है, इस शक्ति में कार्य क्या हुआ ? कि जो ज्ञान की पर्याय विशेषरूप से सब पदार्थ को जानती थी ऐसी पर्याय बाद में होगी। भले (पर्याय) नहीं, परंतु वैसी की वैसी ज्ञान पर्याय होगी। यह भावभाव शक्ति का (कार्य) है, आहाहा !

फिर से, पक्का होना चाहिए न ? जो आत्मा में द्रव्य में और गुण में - भावरूप ज्ञान है, यह भावरूप (जो) है, वह द्रव्य में भाव है और गुण में भाव है, उस कारण से भावभाव शक्ति को कहने में आया। दूसरी बात कि, जो ज्ञान की पर्याय वर्तमान में है, वैसी की वैसी दूसरे समय में भी ज्ञान की जात रहेगी। ज्ञान की जात (रहेगी)।

श्रोता : पर्याय बदल जायेगी न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : (पर्याय तो बदल जायेगी) परंतु रहेगी ज्ञान की जात, आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! गज़ब काम किया है न !

``**भवते हुए पर्याय के...**'' `पर्याय के' (ऐसी) भाषा है। वर्तमान ज्ञान की पर्याय - यहाँ सम्यक्ज्ञान की पर्याय की बात चलती है। मतिश्रुत की जो ज्ञान पर्याय है, तो भावभाव शक्ति के कारण, वैसा का वैसा भाव...भाव... और निर्मल ज्ञान...ज्ञान...ज्ञान...ज्ञान... रहेगा। द्रव्य - गुण में तो (ज्ञान) रहेगा ही। द्रव्य और गुण में भी भाव...भाव...भाव... वह ज्ञान...

वही ज्ञान... वही ज्ञान... गुण में ज्ञान...ज्ञान... द्रव्य में ज्ञान... ज्ञान... तो रहेगा। परंतु पर्याय में भी जो सम्यक्‌ज्ञान की पर्याय हुई है, उस जात की बाद में भी ज्ञान की पर्याय रहेगी। यह भावभावशक्ति का कार्य है। आहाहा ! धीरे से कहते हैं, बापू ! यह विचार करके, ख्याल में लेना, ऐसी चीज़ है, समझ में आया ? उसका भाव का भासन होना चाहिए (कि यह भाव) क्या है ? भाषा भाषा में रही। ``**भवते हुए** (**प्रवर्तमान**) **पर्याय के** (**भवनरूप**)**...**'' प्रवर्तमान ज्ञान की पर्याय के ``**...भवनरूप...**'' (अर्थात्) दूसरे समय में, तीसरे समय में वैसी की वैसी ज्ञान की पर्याय होगी। द्रव्य - गुण में तो भाव...भाव...भाव..भाव... ध्रुवरूप है ही। परंतु पर्याय में ज्ञान की जात जो है, वही जात दूसरे समय में रहेगी।

ऐसे सम्यग्दर्शन की पर्याय है, वह वर्तमान पर्याय है ऐसी समकित पर्याय, समकित पर्यायरूप रहेगी।

द्रव्य - गुण में तो चारित्र त्रिकाल है, वह है। द्रव्य गुण में तो (चारित्र) ध्रुवरूप है। भाव...भाव...भाव...(रूप) है। द्रव्य में भाव, गुण में भाव इस प्रकार से भी भावभाव शक्ति है। परंतु पर्याय में भी उसी जात की पर्याय बाद में रहेगी। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी सूक्ष्म बातें (हैं) ! तत्त्व को समझे नहीं, पहचाने नहीं और उसे धर्म हो जाये (ऐसा नहीं हो सकता)। समझ में आया ?

श्रोता : तिर्यंच कहाँ ये सब समझता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तिर्यंच को भाव में भासन हो जाता है। नाम आता नहीं। समझ में आया ? मेरी जो जात वर्तती है, वैसी की वैसी ज्ञान की पर्याय होगी, ऐसा भावभासन है। शब्द याद नहीं होते। उससे क्या ? आहाहा ! भाई ! आता है न ? शिवभूति मुनि को गुरु ने कहा, `मा रुष, मा तुष' किसी के प्रति द्वेष नहीं और किसीके प्रति राग नहीं। इसका अर्थ कि, `(तू) वीतरागभावरूप रहे' ऐसा कहा। परंतु `मा तुष, मा रुष' ही याद नहीं रहा। परंतु एक बाई ने उडद की दाल भिगोई थी, उसके छिलके - तुष और दाल भिन्न कर रही थी। दूसरी बहन ने कहा, `बहन ! क्या करती हो ?' (तो उसने कहा) तुष-मास भिन्न करती हूँ। यह तुष-मास शब्द सुना तो राग तुष है और अंदर से स्वभाव - दाल भिन्न है। ये शब्द सुने वहाँ अंदर से राग आदि तो विकल्प-तुष है और मेरी ज्ञान शक्ति जो है, अखण्ड आनंदकंद प्रभु ! उस पर अंतर दृष्टि गयी और फिर केवलज्ञान हो गया। आहाहा ! सच्चे मुनि तो थे। अपनी घर की चीज़ है वहाँ जाना है - पर घर को अपना करना, परमाणु को अपना करना हो तो वह तीनकाल में नहीं बन सकता।

भगवान आत्मा को एक छोटे परमाणु को अपना करना हो तो तीनकाल में नहीं

बन सकता। समझ में आया ? अरे...! राग को भी अपने स्वभाव में एकता करनी हो तो वह भी तीनकाल में नहीं बनता। क्योंकि राग और स्वभाव वह तो भिन्न चीज़ (है)। दोनों के बीच में संधी - सांध है। परंतु अपना अपने में (स्वभाव में एकत्व) करना, वह तो अंतर की चीज़ है। समझ में आया ?

श्रीमद्‌जी एक ज़गह पत्र में ऐसा कहते हैं, सत् सरल है, सत् सर्वत्र है। समझ में आया ? सत् सरल है। सत् सर्वत्र है, ऐसा लिखा है। एक पत्र में लिखा है। सरल नाम वस्तु तो सत् है, आहाहा ! उसकी कबूलात (किये) बिना 'मैं सत् हूँ' उसकी कबूलात आयी नहीं। उसके ज्ञान में यह चीज़ आये बिना कबूलात आये नहीं, समझ में आया ? आहाहा ! ज्ञान की वर्तमान पर्याय में सत् त्रिकाली भगवान ज्ञेयरूप होकर जहाँ ज्ञान हुआ तो उस ज्ञान की पर्याय में यह त्रिकाली सत् आता नहीं। परंतु त्रिकाली संबंधी की ताकत जो अपनी है, इस संबंधी का ज्ञान पर्याय में आता है।

यहाँ कहते हैं कि, जो ज्ञान पर्याय भावरूप है, (वह) बाद में भी वही भावरूप ज्ञान...ज्ञान...ज्ञान...ज्ञान... रहेगा। इस ज्ञान का किसी दिन अज्ञान हो जाये कि, ज्ञान की पर्याय श्रद्धारूप हो जाये कि, श्रद्धा की पर्याय ज्ञानरूप हो जाये, (ऐसा नहीं बनता)। ऐसी बात है ! ओहोहो ! आचार्य ने तो इतने थोड़े शब्द में (कितना भर दिया है) ! कितने (शब्द है) ? ''**भवते हुए...**'' (अर्थात्) होनेरूप पर्याय के ''**...भवनरूप...**'' (अर्थात्) होनेरूप पर्याय का बाद में भी होनेरूप। आहाहा ! पीछे उसे करना नहीं पड़ता। वस्तु की दृष्टि हुई तो इसमें भावभाव नाम की शक्ति है तो जो ज्ञान की जात है, वह ज्ञान की जात ही (रहेगी)।ज्ञान...ज्ञान... भाव...भाव... ज्ञानभाव...ज्ञानभाव...ज्ञानभाव... रहेगा।

समकित की पर्याय...श्रद्धा की पर्याय...श्रद्धा की पर्याय...श्रद्धा की पर्याय...श्रद्धा की पर्याय... भाव...भाव... रहेगी। चारित्र की पर्याय है वह चारित्र की पर्याय भी चारित्ररूप, शांतिरूप, स्थिरतारूप शांति...शांति...शांति...शांति...शांति... यह भावभाव रहेगा।

आनंदरूप पर्याय है (वह आनंदरूप ही रहेगी)। द्रव्य गुण में तो यह भाव त्रिकाली है। परंतु यह आनंद की पर्याय है वह दूसरे समय में भी आनंद (रूप) रहेगी। आनंद की जात पलटकर दुःखरूप हो जाये, ऐसा नहीं। आनंद की पर्याय पलटकर श्रद्धारूप हो जाये, ऐसा नहीं, आहाहा ! गज़ब काम किया है न ! आहाहा ! क्या कहते हैं ?

भगवंत ! तेरी चीज़ का जो तुझे पता लग गया, अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन (हुआ), तो बाद में सम्यग्दर्शन की जो पर्याय दर्शनरूप है तो वह श्रद्धारूप (ही रहेगी)। श्रद्धारूप...श्रद्धारूप...श्रद्धारूप... भावभावरूप रहेगी। यह श्रद्धारूप पर्याय बदलकर आनंदरूप हो जाये कि श्रद्धारूप पर्याय बदलकर ज्ञानरूप हो जाये, ऐसा नहीं है। आहाहा ! समझ

में आया ? समझ में आया ? ऐसा कहने में आता है न ? (उसका अर्थ) ख्याल में - ज्ञान में भाव इस प्रकार से है, ऐसा अंदर आना चाहिए न ? वैसे के वैसे ही रट ले तो (उसका कोई मतलब नहीं है)। (वैसे) रट लेने में क्या है ? आहाहा !

अनंत गुण में भाव पड़ा है और एक गुण में अनंत गुण का भाव आया है, आहाहा ! भावशक्ति के कारण भावशक्ति का रूप अनंत गुण में और अनंती पर्याय में है। समझ में आया ? एक गुण में अनंत गुण का भाव है और अनंत गुण में एक भाव (शक्ति का) भाव है, आहाहा ! समझ में आया ?

जो अस्तित्व गुण है उसकी वर्तमान पर्याय अस्तिरूप है, वह भविष्य में भी अस्तिरूप...अस्तिरूप...अस्तिरूप... रहेगी। यह भावभाव है।

(वैसे) वस्तुत्व गुण है। सामान्य - विशेष जो जानने की चीज़ है, इसको सामान्य विशेषरूप पर्याय जानती है, वही सामान्य - विशेषरूप पर्याय रहेगी। भविष्य में भी भाव...भाव...भाव...भाव.. (रहेगा)। समझ में आया ? आहाहा !

(वैसे) प्रमेयत्वगुण है। उसमें भी भावभाव शक्ति है। प्रमेयत्व की पर्याय जो वर्तमान विद्यमान प्रमेयत्व (रूप) है, वैसी ही भविष्य में प्रमेयत्व की पर्याय प्रमेयत्वरूप रहेगी। यह भावभाव शक्ति का कार्य है। ऐसा है। अरे भगवान ! तेरी चीज़ तो बड़ी है। पहले उसको जानना तो चाहिए न ! विशेष बुद्धि न हो तो संक्षेप में भी उसका भान तो होना चाहिए न ? आहाहा !

``**भवते हुए पर्याय के...**'' भाषा में `पर्याय' लिया है। वर्णन शक्ति का करना है। शक्ति नाम त्रिकाली गुण। परंतु इस गुण का भाव जो वर्तमान में वर्तता है, वैसा भविष्य में भी ऐसा का ऐसा भाव रहेगा। ज्ञान का ज्ञानरूप भाव, दर्शन का दर्शनरूप भाव, चारित्र का चारित्ररूप भाव, आनंद का आनंदरूप भाव (रहेगा)। अनंत गुण की पर्याय जो-जो गुण की है वही गुणरूप भविष्य में भी रहेगी। आहाहा ! कितना भेद कर दिया है ! समझ में आया ?

``**भवते हुए (प्रवर्तमान)...**'' (अर्थात्) वैसी की वैसी पर्याय के भवनरूप। भविष्य में भी वैसी की वैसी पर्याय के भवनरूप - होनेरूप। `है' ऐसी पर्याय भवनरूप। `है' ऐसी होने लायक है, उसका नाम भावभाव शक्ति कहने में आता है। आहाहा ! समझ में आया ?

वेदांत में तो पर्याय मानी ही नहीं है। यहाँ तो छओं शब्द में पर्याय आया है। वस्तु का स्वरूप स्पष्ट करते हैं। वेदांत ने तो पर्याय को माना ही नहीं। वे तो आत्मा आनंदस्वरूप, अखण्ड, अभेद एकरूप सर्वव्यापक है, बस ! (ऐसा मानते हैं)। उसे तो पर्याय की भी खबर नहीं। पर्याय खबर करनेवाली तो पर्याय है। मैं अखण्ड अभेद व्यापक हूँ,

ऐसा निर्णय तो पर्याय में है। द्रव्य, गुण में तो निर्णय नहीं है। (जिसने) पर्याय मानी नहीं तो उसका निर्णय भी झूठा है और उसका विषय द्रव्य है, वह भी झूठा है। समझ में आया ? आहाहा ! कितनों को तो ऐसा लगता है कि, इस समयसार की शैली तो मानो वेदांत की है। ऐसा कहते हैं।

बंबई में एक विद्वान थे। वे ऐसा कहते थे कि, समयसार को कुंदकुंदाचार्य ने वेदांत के ढांचे में ढ़ाला है। अरे भगवान ! अरे प्रभु ! वेदांत के ढाँचे में ढ़ाला हो तो, वेदांत में पर्याय है ? आहाहा ! तुझे खबर नहीं, भगवान ! समयसार तो आत्मा का स्वरूप है, ऐसे ढाँचे में ढ़ाला है। समझ में आया ? कोई निश्चय की बात और शुद्ध की बात आये (या) अखण्ड, अभेद आनंदकंद (की बात आये) तो मानो कि वेदांत के साथ मिलता है, (ऐसा लगे)।

यहाँ एक विद्वान आये थे। पहले ८९-९० की साल में राजकोट में व्याख्यान में आते थे। वैष्णव थे। परमहंस हो गये थे। बाद में हमारे पास आये। (व्याख्यान सुनकर) कहा, `यह तो वेदांत की श्रद्धा है' हमने कहा, `देखो ! तुम ऐसा कहो कि, आत्मा सर्वव्यापक एक ही है। सर्वव्यापक एक है, ऐसा निर्णय किसने किया ?' (यह) एक बात। दूसरी बात यह है कि, अगर भूल अंदर न हो तो उपदेश किस कारण से दिया ? `सर्व दुःख से मुक्त होना' (ऐसा कहते हो)। (तो उसमें) भूल है वह तो पर्याय है। समझ में आया ? और भूल पर्याय है, उसका नाश करना वह भी पर्याय है। द्रव्य, गुण का तो नाश होता नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! हमारे पर प्रेम था। परंतु वैष्णव थे। व्याख्यान सुनते थे। राजकोट में ८९ की साल में तीन-तीन हज़ार आदमी (सुनने) आते थे। कितने वर्ष हुए ? ४४ वर्ष हुए। एक घंटे पहले व्याख्यान सुनने को तो बड़े गृहस्थों की, डॉक्टरों की गाड़ियाँ जम जाती थीं। उसमें वेदांतवाले भी कोई आते होंगे। ऐसी बात वहाँ हुई थी कि, इस आत्मा में पर्याय है कि नहीं ? अगर पर्याय न हो तो निर्णय करना है कि, यह अनेक नहीं है और एकरूप है। यह निर्णय किसने किया ? कि उसने (पर्याय ने निर्णय) किया। द्रव्य - गुण में (निर्णय आता) है ? द्रव्य - गुण तो ध्रुव है। समझ में आया ? और द्रव्य - गुण का स्वीकार भी पर्याय में होता है कि द्रव्य - गुण में होता है ? आहाहा ! श्रीमद् ने कहा है कि, वेदांत ने पर्याय को माना नहीं। (वह) निश्चायाभासी मिथ्यादृष्टि है। यह शब्द है।

यहाँ तो छओं (शक्तियों में) पर्याय से (बात उठाई) है। आहाहा ! क्योंकि कार्य तो पर्याय में होता है। द्रव्य, गुण में तो कार्य (होता नहीं)। वह तो त्रिकाली शक्ति है। कार्य है और कार्य का पलटा आता है, भूल थी और भूल का नाश हुआ, वह तो पर्याय

में होता है। व्यय का अभाव होकर उत्पाद होता है, वह तो पर्याय में (होता) है। भाव की विद्यमान पर्याय भी पर्याय में है। भाव का अभाव भी वर्तमान पर्याय का व्यय होकर अभाव हो जायेगा, वह भी पर्याय में है। समझ में आया ? और वर्तमान में (विशेष भाव का) अभाव है, वह भाव (भविष्य में) होगा, वह भी पर्याय में है। आहाहा ! भाव, अभाव, भावअभाव, अभावभाव यह चार बोल तो चल गये हैं। यहाँ तो पाँचवाँ बोल चलता है।

भावभाव में पर्याय शब्द लिया है। देखो ! ``**भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के भवनरूप...**'' आहाहा ! भगवान आत्मा में जो अनंत गुण है, जिस जाति के गुण है उस जात की पर्याय उस समय में और बाद में भी भावभाव उस जात का रहेगा। वह जात पलट जायेगी, ऐसा तीनकाल में नहीं है, आहाहा ! समझ में आया ?

भावभाव का एक अर्थ तो वह है कि, द्रव्य में भाव है, वही गुण में भाव है। गुण में भाव है वही द्रव्य में भाव है, तो यह भावभाव हो गया। परंतु यहाँ भावभाव वर्तमान पर्याय है, उसका भवन होकर वैसी की वैसी पर्याय होगी। भवनरूप (अर्थात्) वैसी की वैसी ज्ञान...ज्ञान...ज्ञान...ज्ञान... समकित...समकित...समकित...समकित... आनंद...आनंद...आनंद...आनंद... आनंद... स्वच्छता...स्वच्छता...स्वच्छता...स्वच्छता...स्वच्छता (वैसी की वैसी रहेगी)। समझ में आया ? आहाहा ! यह परमात्मा त्रिलोकनाथ का बाज़ार है। बापू ! यह तो कॉलेज है। परमात्मा ने कही हुई कॉलेज है। कुछ तो तैयारी उसकी होनी चाहिए। बाद में यह समझ में (आता है)।

``**भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के...**'' गुण की जो पर्याय जिस जात की है, वैसी की वैसी जाती की (पर्याय) भविष्य में (रहेगी)। अनंत गुण जो है उस-उस गुण की, उसी रूप की पर्याय रहेगी। आहाहा ! जिस जात की पर्याय है, वह दूसरी जात की पर्याय हो जाये, ऐसा नहीं है। आहाहा ! ज्ञान की पर्याय है वह श्रद्धारूपी पर्याय हो जाये और श्रद्धा की पर्याय है वह भविष्य में ज्ञानरूप पर्याय हो जाये, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

मोक्षमार्ग प्रकाशक में उपादान - निमित्त लिया है न ? शुभभाव में - शुद्धता का अंश है। लिया है ? शुभभाव में शुद्ध का अंश है। सुनो ! क्या कहना है ? कि शुभभाव में शुद्ध का अंश न हो तो ज्ञान की पर्याय ज्ञान से निर्मल होगी। परंतु (अगर) यह अशुद्ध पर्याय ही है, तो अशुद्ध से शुद्धता की पर्याय कहाँ से आयेगी ? क्या कहा ? (शुद्धता का) अंश जो न हो तो (शुद्धता कहाँ से आयेगी) ? ज्ञान निर्मल हुआ वह तो ज्ञान के कारण ज्ञान...ज्ञान...ज्ञान...ज्ञान...ज्ञान... हुआ। परंतु जो चारित्र पर्याय निर्मल हुई वह ज्ञान निर्मल हुआ इसलिये चारित्र की पर्याय निर्मल हुई ? शुभभाव में भी शुद्ध का

अंश है। परंतु यह अंश कार्य कब करे ? कि, ग्रंथीभेद हो तब। समझ में आया ? उसके कारण है कि जो ज्ञान की पर्याय ज्ञानरूप रहेगी, आनंद की पर्याय आनंदरूप रहेगी, वैसे यथाख्यात चारित्र की पर्याय में भी वर्तमान जो शुद्ध अंश है, वह शुद्ध...शुद्ध...शुद्ध...शुद्ध... ऐसे चारित्र में (शुद्धता) रहेगी। समझ में आया ? अशुद्ध है वह शुद्ध हो जायेगी, ऐसा नहीं। क्या कहा समझ में आया ? एक गुण की अपनी पर्याय में पूर्णता हुई तो दूसरे गुण की पूर्णता का कारण कौन ? कि ज्ञान पूर्ण हुआ इसलिये (चारित्र पूर्ण हुआ) ? समझ में आया ? उसमें बहुत सुंदर दृष्टांत दिया है। आहाहा ! अंदर में शुभभाव के अंश में भी शुद्धता का अंश है। ग्रंथीभेद होने के बाद यह शुद्धता बढ़ती (है), शुद्ध है...शुद्ध है...शुद्ध है... भविष्य में शुद्ध...शुद्ध...शुद्ध...शुद्ध होकर चारित्र (की पर्याय) भी (पूर्ण) शुद्ध हो जायेगी। चारित्र की शुद्धता बढ़कर चारित्र की शुद्धता हो गयी। उस जात की शुद्धता है तो उसी जाती की पूर्णता होगी, आहाहा ! नहीं समझ में आया ? ज्ञान पूर्ण हुआ (चारित्र में) शुद्धता बिलकुल न हो और (चारित्र) पूर्ण हो (जाये, ऐसा नहीं)। भविष्य में वह जात रहेगी तो कहाँ से रहेगी? समझ में आया ? आहाहा ! यह ग्रंथीभेद (होने के बाद) शुभ में शुद्ध का अंश है, यह अंश यथाख्यात (चारित्र का) अंकुर है। यथाख्यात चारित्र का अंकुर है परंतु यह अंकुर कब कार्य करे ? जब पूर्णानंद के नाथ की अनुभवदशा प्रतीत में आयी तब कार्य करे। ज्ञान जैसे अपनी पर्याय में निर्मल...निर्मल...निर्मल...निर्मल... ज्ञान...ज्ञान...ज्ञान...ज्ञान... (रहेगा)। ऐसे चारित्र की शुद्धता का अंश भी शुद्धता...शुद्धता...शुद्धता...शुद्धता भावभाव रहेगा, आहाहा ! उस समय के पंडित भी कहाँ से निकालते थे ! देखो न ! शुभ में से शुद्ध का अंश कहाँ से निकाला ? पाठ में कहीं ऐसा नहीं है। परंतु न्याय से निकाला कि अगर शुभ में शुद्ध का अंश न हो तो (क्या) अशुद्धता बढ़कर यथाख्यात चारित्र की (शुद्ध) पर्याय होगी ? समझ में आया ? उसकी जात की जो निर्मल पर्याय न हो तो वही जात...वही जात...वही जात... कहाँ से रहेगी ? आहाहा ! बनारसीदास ! (कोई कहता था) उन्होंने भांग पीकर अध्यात्म कहा है। अरे प्रभु ! क्या करता है ? भाई ! सत्य के शरण में जाना चाहिए। भगवान ! तू परमात्मा और ऐसी आड़ में तू क्यों पड़ा ? आहाहा !

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि, जिस भाव में चारित्र की शुद्धता का अंश है वह शुद्ध...शुद्ध...शुद्ध... भाव...भाव...भाव... रहेगा। शुद्ध भावभाव रहेगा। समझ में आया ? आहाहा ! बहुत संक्षिप्त कर दिया है। आचार्यों ने तो इतना (भर दिया है कि) उसमें पार नहीं है।

श्रोता : आपने यह सब कहाँ से निकाला ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उसमें है। न्याय है कि नहीं ? देखो न ! अगर शुद्धता का अंश चारित्र में न हो तो शुद्धता की वह जात...वह जात...वह जात... भाव...भाव... कहाँ से रहेगा ? आहाहा ! ओहोहो ! गज़ब काम किया है ! समकिती भले गृहस्थाश्रम में हो। सिद्ध के सम्यग्दर्शन और तिर्यंच के सम्यग्दर्शन में कोई फर्क है ?

यहाँ कहते हैं कि, (चारित्र की) निर्मल पर्याय हुई है (वह) स्वरूपाचरण चारित्र की पर्याय निर्मल है। यह स्वरूप आचरण चारित्र भाव है। वही भाव पीछे भी रहेगा। स्थिरता...स्थिरता...स्थिरता... यह भावभाव है। आहाहा ! थोड़ा कठिन पड़े परंतु मार्ग तो ऐसा है। अंदर से आये उसका क्या करना ? कोई रटके तैयार रखते हैं क्या ? आहाहा ! गज़ब बात कही है !

अगर वर्तमान में चारित्र की पर्याय का निर्मल अंश चौथे (गुणस्थान में) न हो तो यह भाव...भाव...भाव...भाव...भाव... (शक्ति) लागू नहीं पड़ती है। समझ में आया ? आहाहा ! जो शुद्ध चारित्र की अंश है, वर्तमान भवति पर्याय है, उसका भवन। बाद में भी वह जात वैसी ही रहेगी। वह जात ज्ञान में मिल जायेगी (ऐसा नहीं है)। चारित्र की पर्याय ज्ञान में मिल जाये, आनंद में मिल जाये, ऐसा नहीं है, आहाहा !

संप्रदाय में हमारे गुरुभाई थे। वे ऐसा कहते थे, कुछ खबर नहीं थी इसलिये ऐसा कहते ते कि, हम लोग जो बाहर के व्रत और चारित्र पालते हैं, उसका फल सिद्ध (गति में) यह ज्ञान और दर्शन दोनों आयेंगे। वे तो कहते थे, हम लोगों को तो सम्यग्दर्शन है ही । गौतम की श्रद्धा हमें स्थानकवासी में मिली है। अहिंसा किसको कहें ? भाई ! राग की, अनउत्पत्तिरूप (अर्थात्) उत्पत्ति नहीं होना, उसका नाम अहिंसा है। पर की दया का भाव - राग, वह तो हिंसा है। आहाहा ! वे ऐसा कहते थे, पर की दया वह अहिंसा है और यह अहिंसा हमें मिली है तो अपनी श्रद्धा तो बराबर यथार्थ है, आहाहा ! हमलोग यह व्रत और नियम पालते हैं बाद में उसका फल क्या रहेगा ? ज्ञान और दर्शन दोनों रहेंगे। बाद में उसमें चारित्र नहीं रहेगा।

तीन - चार साल पहले जैन संदेश में एक प्रश्न आया था कि, सिद्ध में चारित्र नहीं। यहाँ चारित्र हुआ (तो) सिद्ध में (भी इस भावभावशक्ति के कारण) चारित्र...चारित्र...चारित्र...चारित्र... भावभाव तो कायम रहेगा। समझ में आया ?

बहुत साल पहले चर्चा हुई थी। हमें तो कल (हुई हो) ऐसा लगता है। वे कहते थे। सिद्ध में चारित्र नहीं है। यहाँ कहते हैं कि, अगर सिद्ध में चारित्र कहाँ से आया ? चारित्र यहाँ है, वीतरागी पर्याय है - चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण चारित्र का अंश (है)। छट्ठे (गुणस्थान में) चारित्र का अंश, निर्मल वीतराग दशा (है) तो वीतराग दशा वह

चारित्र है। यह भावभाव - वीतराग...वीतराग...वीतराग पर्यायरूप रहेगा। समझ में आया? वह तो अंदर से जिस प्रकार से आये उस प्रकार से होता है, उसमें दूसरा क्या हो सकता है? ये कोई रट नहीं लिया था, तैयार नहीं किया था। आहाहा ! सूक्ष्म पड़े लेकिन उसको जानना चाहिए।

``**भवते हुए पर्याय के...**'' यहाँ अपने चारित्र की पर्याय ली है। चारित्र की पर्याय भवती है - वर्तमान है, तो यह चारित्र, चारित्ररूप भावभाव, इस जात का भावभाव कायम रहेगा। सिद्ध में भी चारित्र पर्याय रहेगी। समझ में आया ? संयम का पालन करना या इन्द्रियों से दमन करना - १२ प्रकार का संयम आता है न ? वह दूसरी चीज़ है। परंतु यह चारित्र तो अपनी स्वरूप स्थिरता की पर्याय का (है)। अंदर में चारित्र नाम का गुण है। आत्मा में जैसे ज्ञानगुण है, दर्शन गुण है, आनंद गुण है, वैसे चारित्र गुण है। अकषायभाव चारित्र गुण है। उसकी परिणति - पर्याय में भी स्थिरतारूप वीतराग पर्याय आती है और यह वीतराग पर्याय भी भाव...भाव...भाव...भाव...भाव... (रहेगी)। वीतराग पर्यायरूप से भाव...भाव...भाव...भाव... कायम रहेगा। आहाहा ! ऐसा है। ऐसा कभी सुना नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं कि, भगवान की पर्याय पर्याय में न हो तो भाव...भाव...भाव...भाव... कहाँ से रहेगा ? आहाहा ! समझ में आया ? चौथे गुणस्थान में भी प्रभुता की पर्याय है, यह प्रभुता की पर्याय है (वह) भगवान की पर्याय है। प्रभुता की पर्याय है यह प्रभुता...प्रभुता...प्रभुता की ही जात रहेगी। आहाहा ! गज़ब बात है !

अरे...! ऐसी बात कहाँ है ? बापू ! दिगंबर संतों के अलावा यह बात कहीं नहीं है। दूसरों को दुःख लगे तो क्या करें, भाई ? समझ में आया ? दिगंबर संत यानी नग्नपना नहीं। अंदर सम्यग्दर्शन, ज्ञान और वीतरागी पर्यायवाला यह सच्चा चारित्र (है)। यह वीतरागी पर्याय (छट्ठे गुणस्थान में) प्रगट हुई। आहाहा ! पहले स्वरूप की स्थिरता का भाव था। यह भावभाव (वृद्धि) होकर (उसकी) वृद्धि हो गयी और छट्ठे गुणस्थान में चारित्र पर्याय हुई तो बाद में चारित्र...चारित्र... वीतरागभाव...वीतरागभाव... रहेगा। यह भावभाव (शक्ति का) कार्य है।

आहाहा ! देखो तो सही ! सत् के खजाने में जिस जाति की जात है, वही जात भविष्य में रहेगी, ऐसा कहते हैं। गुण में तो (यह जात) रहेगी, यह दूसरी बात (है)। गुण में तो चारित्र है वह चारित्र ही रहेगा। श्रद्धा (है यह) श्रद्धा रहेगी। त्रिकाली की (बात है)। आनंद, आनंद रहेगा। द्रव्य और गुण में (वही जात) रहती है। यह भावभावशक्ति का कार्य है। परंतु यहाँ तो पर्याय में भी जो वर्तमान भाव है, वही जात भविष्य में रहेगी,

उसका नाम भावभाव शक्ति कहने में आता है। आहाहा !

जितना स्पष्टीकरण आज हुआ है, इतना स्पष्टीकरण पहले नहीं किया था। (हमको कहा था कि) क्लास में शक्ति पढ़ना। अलग - अलग गाँव से लोग आते हैं और ऐसी शक्ति (आयी), आहाहा ! आज तो शक्ति का ३२ दिन हुआ। दो दिन बाकी है। ३२ दिन में ३७ शक्ति हुई। और १० शक्ति बाकी है। यहाँ तो एक-एक भाव और एक-एक अभाव में घंटों के घंटों चले जाये तो भी खत्म हो ऐसा नहीं है, ऐसी चीज़ है, आहाहा! सारा भण्डार भरा है।

(यहाँ) कहते हैं कि, चाँदी की पर्याय है वह चाँदी की पर्याय चाँदीरूप रहेगी। वह लोहेरूप हो जाये, ऐसा नहीं बनता। आहाहा ! यह दृष्टांत दिया। उसमें तो (चाँदी की पर्याय) लोहेरूप हो जायेगी। चाँदी के परमाणु लोहेरूप हो जायेंगे। (लोहेरूप) पर्याय होगी। यह (शक्ति की पर्याय अन्यरूप) नहीं होगी, आहाहा !

यहाँ तो भगवान आत्मा ! चिदानंदस्वरूप की दृष्टि हुई, सम्यग्दर्शन हुआ तो जो सम्यग्दर्शन की पर्याय है, (वह) भले क्षयोपशम से क्षायिक (सम्यग्दर्शन) रूप हो, परंतु जात तो वही है। यह भावभाव (शक्ति का कार्य) है। समझ में आया ? क्षयोपशम से क्षायिक हो। पहले अभावभाव कहा था (उसका अर्थ) कि, क्षयोपशम(भाव में) क्षायिकभाव का अभाव है तो अभावभाव हो जायेगा। (अर्थात् क्षायिकभाव का) अभाव है उसमें (क्षायिक) भाव आ जायेगा। अब यहाँ कहते हैं कि, क्षयोपशमसमकित है, यह पर्यायभाव है और उसी पर्याय का भावभाव क्षायिक के समय भी भाव तो समकित का ही है। समझ में आया ? यह अपनी भावभाव (शक्ति के) कारण यह भावभावरूप रहा है। कोई वीतराग मिले और केवली (भगवान) मिले इसलिये भावभाव की क्षायिक समकित की पर्याय हुई, (ऐसा नहीं है)। आहाहा ! समझ में आया ?

सम्यग्दर्शन की पर्याय है यह भाव (है)। बाद में भले क्षयोपशम हो, वह कोई प्रश्न नहीं। अब यह भाव...भाव...भाव... रहेगा। सम्यग्दर्शन की पर्याय दर्शन...दर्शन...दर्शन..(रूप) रहेगी। क्षायिक में दर्शन - प्रतीति है कि नहीं ? उस जाति की है कि नहीं ? आहाहा ! ऐसी बात (है) ! कुंदकुंदाचार्य, अमृतचंद्राचार्य आहाहा ! जगत को निहाल कर दिया है ! आहाहा !

स्वामिनारायण के समय में अन्यमतियों को मांस और दारू तो छुड़ाते थे। तो उसे स्वामिनारायण न्यालकरण कहते थे। न्यालकरण यह है, न्याल कर दिया है ! तेरी जात तो जात रहेगी ही। यह जात - कजात कभी हो, पर के भाव की जात हो जाये, ऐसा नहीं है, आहाहा !

यहाँ भावभाव में तो यह कहा, कभी भाव का अभाव होकर मिथ्यात्व हो जाये कि, चारित्र की पर्याय का अभाव होकर अचारित्र हो जाये। ऐसा वस्तु में नहीं है। आहाहा ! समझ में आये उतना समझे, प्रभु ! यह तो भगवान की वाणी है ! आहाहा !

चौथे (गुणस्थान में) अल्प स्वसंवेदन है। स्वसंवेदन है यह स्वसंवेदन...स्वसंवेदन की जात का ही रहेगा। स्वसंवेदन मिटकर अव्रत हो जायेगा कि अस्वसंवेदन होगा, ऐसा वस्तु का स्वरूप ही नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

ओहोहो ! आचार्यों ने गज़ब काम किया है, प्रभु ! खजाना खोल दिया है, आहाहा ! जितनी संख्या में गुण है उतनी (एक) समय की पर्याय है और जो पर्याय की जात है, वह भाव है। यह भाव भविष्य में भी उसी जात (का) रहेगा, आहाहा ! (वह भाव) दूसरी पर्याय में मिल जाये, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? जैसे पर्याय ने द्रव्य का आश्रय लिया तो (पर्याय) द्रव्य में तन्मय हुई, ऐसा कहने में आता है। परंतु पर्याय द्रव्य में तन्मय होती ही नहीं। वह तो परसन्मुख थी वह स्वसन्मुख हुई, तो द्रव्य में तन्मय हुई, ऐसा कहने में आता है। पर्याय तो पर्याय में रहकर द्रव्य का ज्ञान करती है। समझ में आया ?

श्रद्धा की पर्याय श्रद्धा में रहकर द्रव्य की श्रद्धा करती है। (द्रव्य का) द्रव्यपना श्रद्धा में आ जाता है, ऐसा नहीं। आहाहा ! चैतन्य जात है तो चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... जात रहेगी। कभी चैतन्य जात की अचैतन्य जात हो जाये, ऐसा बनता नहीं। आहाहा ! ऐसे जो गुण की निर्मल पर्याय है वह निर्मल पर्याय उस भाव... उस भाव... उस भाव... (रूप) रहेगी। उसमें कभी मलिनता आ जाये, ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। समझ में आया ? आहाहा ! आस्रव (अधिकार में) `नयपरिहीणा' आया न ? वह बात यहाँ नहीं है। जिसने शक्ति का पिंड प्रभु ज्ञान में ज्ञेय बनाकर प्रतीत किया तो यह प्रतीति की पर्याय, प्रतीति... प्रतीति... प्रतीतिरूप रहेगी। मिथ्यारूप हो जाये, ऐसा तीनकाल में बनता नहीं। आहाहा ! ऐसी बातें हैं !

अरे बापू ! किसका विरोध करता है ? भाई ! तुझे खबर नहीं। यह जिनेश्वर परमात्मा की वाणी है। उसका यह भाव है। समझ में आया ? वीतराग का मार्ग यह है। उसे तुम राग के मार्ग में ठहरा दो, प्रभु ! (यह विपरीतता है)। राग से-व्यवहार से लाभ होगा, भाई ! यह वीतराग मार्ग नहीं। आहाहा ! तेरी श्रद्धा में पहले तो ऐसा पक्का आना चाहिये कि, वीतरागभाव से ही आत्मा का कल्याण होगा, राग से कल्याण होगा नहीं। वीतरागभाव कायम रहेगा। (वीतरागता) करते... करते... करते... पूर्ण वीतराग हो जायेगा। परंतु सर्वज्ञ परमात्मा की (जो) जात है, (वही) जात वहाँ रहेगी। आहाहा !

अल्प मतिश्रुतज्ञान है, वह ज्ञान की जात है। परंतु ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... होकर सर्वज्ञ हो जायेगा। सब (पर्याय) पूर्ण हो जायेगी। वह जात स्वयं पूर्णता (रूप) हो जायेगी। दूसरी पर्याय के कारण नहीं, दूसरे गुण के कारण नहीं। उसका नाम भावभाव शक्ति है। देखो ! यह लगभग एक घंटा तो हो गया। विशेष कहेंगे...

आत्मा का बल अर्थात् वीर्य इसमें ऐसी शक्ति है कि वह आत्मस्वरूप की रचना करता है, और वही उसका स्वभाव है। विकार की रचना करे अथवा पर की रचना करे - ऐसा उस वीर्य का स्वरूप ही नहीं है।

परमज्ञानी आत्मा की दिव्य शक्तियों का वर्णन करते हुए बतलाते हैं कि आत्मा में द्रव्य - गुण - पर्याय की रचना की सामर्थ्यरूप एक वीर्य शक्ति है और शक्तिवान ऐसे आत्मद्रव्य पर दृष्टि जाते ही, द्रव्य - गुण - पर्याय - इन तीनों में (उसकी) व्याप्ति हो जाती है। (परमागमसार - १०)

प्रवचन नं. ३३
शक्ति-३८ दि. १२-०९-१९७७
अभवत्पर्यायाभवनरूपा अभावाभावशक्ति: ।।३८।।

समयसार, शक्ति का अधिकार (चलता है)। ३७ (शक्ति हुयी)। यह आत्मा जो वस्तु है, उसमें संख्या से अनंत शक्तियाँ हैं। (आत्मा) अनंतकाल रहेगा यह काल की (अपेक्षा से) है। परंतु संख्या से अनंत शक्तियाँ हैं। एक साथ व्यापक अनंत शक्तियाँ एक समय में हैं। कथन क्रम से होता है। समझ में आया ?

ऐसा चैतन्य भगवान ! गुणी जो स्वभाववान उसकी अनंत शक्ति-जिस का स्वभाव (यानी) अपना भाव, उसकी जिसे दृष्टि हुई (कि), मैं चैतन्य ज्ञायकभाव हूँ, ऐसी दृष्टि में अनंत शक्ति का अंदर संग्रह पड़ा है, उसका भी आदर हो गया। समझ में आया ? उस में आज यहाँ भावभाव में से अंतिम शक्ति है। वैसे तो अभी दूसरी (शक्तियाँ बाकी) हैं। आहाहा !

पहले तो यह कहा था कि, भाव शक्ति के कारण वर्तमान पर्याय में निर्मलता विद्यमान होती ही है। अभाव शक्ति के कारण राग के अभावरूप परिणमन होता ही है। आहाहा ! भावअभाव शक्ति के कारण वर्तमान निर्मल पर्याय का उत्पाद है, उसका व्यय होकर भाव का अभाव हो जाये। अभावभाव (शक्ति के) कारण वर्तमान पर्याय में जो विशेष निर्मल पर्याय नहीं थी, इसका अभाव है, उसका भाव हो जायेगा, आहाहा !

बहुत शक्तियाँ तो लगभग एक-एक घंटा चली। आहाहा ! भावभावशक्ति के कारण प्रत्येक गुण की वर्तमान पर्याय भावरूप है, यह भावरूप, भावरूप ही रहेगी। जो निर्मल सम्यग्दर्शन आदि पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसा भावभाव (अर्थात्) ऐसी सम्यग्दर्शन पर्याय, सम्यक्ज्ञान

आनंद की पर्याय भावरूप भाव है, वही भाव (भविष्य में) रहेगा। समझ में आया ? ये पाँच बातें चली हैं। आज तो उसमें से अभावअभाव (नाम की) छट्ठी (शक्ति) है न ? आहाहा ! (उसे लेते हैं)।

भगवान ! तेरे में एक अभावअभाव नाम की शक्ति है, गुण है कि, जिस गुण के कारण वर्तमान विकार का अभाव स्वभावरूप तेरा परिणमन है, व्यवहार रत्नत्रय विकार है, इसके अभावरूप तेरा परिणमन है, आहाहा ! यह व्यवहार की बड़ी तकरार (चलती है). व्यवहार से (धर्म) होता है, शुभभाव से (धर्म) होता है। अरे प्रभु ! सुन तो सही। वर्तमान में शुभभाव का अभावरूप परिणमन है, ऐसा ही शुभ का अभावरूप परिणमन अभावअभाव (शक्ति के) कारण (भविष्य में भी) अभावरूप ही रहेगा, आहाहा ! क्या कहा ?

वर्तमान भगवान आत्मा ! शुद्ध चैतन्यघन, उसमें अनंती शक्तियों में एक अभावअभाव (नाम की) शक्ति ऐसी है कि, जिसने द्रव्यस्वभाव को दृष्टि में लिया, उसके वर्तमान (परिणमन में) जो विकार का अभावरूप परिणमन है (वह भविष्य में भी अभावरूप ही रहेगा)। आहाहा ! व्यवहार रत्नत्रय शुभराग है। यहाँ शक्ति का ऐसा गुण है कि, राग का अभावरूप परिणमन अभावअभाव के कारण है। पहले तो अभाव के कारण था। व्यवहार रत्नत्रय का अभावरूप परिणमन यह अभाव शक्ति (है)। अब वर्तमान व्यवहार रत्नत्रय का - राग का अभावरूप परिणमन है, ऐसा ही अभावरूप (परिणमन भविष्य में) रहेगा, आहाहा ! भविष्य में भी ऐसा रहेगा।

उसका अर्थ यह है कि, जिस ने भगवान आत्मा चैतन्यघन उसका अवलंबन-आश्रय लिया, उसमें अभावअभाव नाम की शक्ति का भी आश्रय आ गया। तो इस अभावअभाव शक्ति का परिणमन राग के अभावरूप है, (तो) अब राग का अभावरूप ही (परिणमन) रहेगा। कभी राग का सद्भाव हो जाये (ऐसा नहीं बनेगा)। अभावअभाव शक्ति के कारण (ऐसा) कभी नहीं (बनेगा)। आहाहा ! समझ में आता है ? दूसरी भाषा से कहें तो, उदयभाव का वर्तमान पर्याय में अभाव है। (पर्याय में) है ही नहीं। अभाव के कारण पर्याय में नहीं है। उसमें है वह तो परज्ञेय के रूप में हुआ। समझ में आाया ?

श्रोता :- अभी तक तो द्रव्य में नहीं है, ऐसा कहते थे। अब पर्याय में नहीं है, ऐसा कहते हो !

पूज्य गुरुदेवश्री :- पर्याय में नहीं है, आहाहा ! द्रव्य-गुण में तो नहीं है परंतु यहाँ तो अभावअभाव शक्ति का वर्णन (चल रहा है) तो अभावअभाव शक्ति है, उसका प्रत्येक गुण में रूप है, तो कोई भी गुण रागरूप परिणमन करे या मिथ्याश्रद्धारूप परिणमन करे, ऐसी शक्ति ही नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो भगवान का दरबार

है, उस में अनंती-अनंती प्रजा-शक्ति पड़ी है। आहाहा ! चारित्र के परिणमन में निर्मल परिणति ही है। अचारित्र के परिणमन का तो अभाव है। शांति से समझने की चीज़ है, भाई ! आहाहा ! यह तो तीनलोक के नाथ को जगाने की बात है।

भगवान तीनोंकाल अभावअभाव शक्ति से भरा है। आहाहा ! पूर्व में (राग) था तो पर्यायबुद्धि के कारण राग था। वह तो पर्यायबुद्धि को लेकर राग था, ऐसा माना था। परंतु द्रव्यबुद्धि जहाँ हुई तो, वर्तमान में राग का अभावरूप परिणमन है, ऐसा विकार का अभावरूप परिणमन कायम रहेगा। आहाहा ! समझ में आया ? मार्ग बापू ! (सूक्ष्म है)। सूक्ष्म बात है, भाई !

यह तो तीनलोक का नाथ भगवान आत्मा ! आहाहा ! 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' आता है न ? 'चेतन रूप अनुप अमुरत', 'चेतन रूप अनुप अमुरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो; मोह महातम आतम अंग कियो परसंग न आतम भेरो' वस्तु में (राग) नहीं परंतु मैंने राग का संग किया। मोह महातम घेरा बनाया, ऐसा कहा। उसने महातम का घेरा बनाया है। वस्तु में (मोह) नहीं है, समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ तो परमात्मा, परमात्मा की शक्तिओं का वर्णन करते हैं, आहाहा ! प्रभु ! तेरी शक्ति में अनंत शक्ति संख्या से है। उसमें एक अनंत...अनंत... अभावअभाव नाम की शक्ति है। आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ तो ४७ शक्तिओं का वर्णन है। विशेष शक्ति का वर्णन (और भी) लिया है।

दूसरी ३७ शक्ति उतारी हैं। दूसरे शास्त्रों में से - अनुभव प्रकाश, तत्त्वार्थ राजवार्तिक, पद्मनंदी पंचविंशती, पद्मपुराण सब देखा है न ! सब देखा है तो उसमें से निकालकर (बनाई है)। (अध्यात्म) पंचसंग्रह में परमात्मपुराण है। इसमें शक्ति बहुत भरी है। इसमें से निकालकर लगभग ३७ (शक्तियाँ) बनायी हैं। बाकी तो अनंत हैं। हमको ज्यादा खबर नहीं, समझ में आया ? जितना ख्याल में आया इतना (कहा)। (एक) कागज़ में लिखा था। आहाहा !

भगवान आत्मा ! जिसको सम्यग्दर्शन है अर्थात् जिसको द्रव्यस्वभाव की दृष्टि है, जिसमें पर्यायबुद्धि छूट गयी है, आहाहा ! उसके द्रव्य में अभावभाव नाम का एक गुण है। शक्ति कहो, गुण कहो, द्रव्य का स्वभाव कहो, सत् का सत्त्व कहो, माल (कहो), सत् द्रव्य है उसका माल है - कस है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा अंदर में माल पड़ा है (उसमें) एक अभावअभाव नाम का गुण (है)। आहाहा !

बहुत दिन पहले (३७ शक्ति) लिखी है। उसमें सुख शक्ति आयी है। समकित और चारित्र (शक्ति) नहीं आयी है। तो पहले यह लिया है। समकित, चारित्र, स्वयंसिद्धत्व,

अज (यानी) जन्म नहीं लेना। अखण्डता, विमल, भेद, अभेद नास्ति, साकार - अकार तो ज्ञान - दर्शन में आ गया। वस्तुत्व, अचल, उर्ध्वगमनत्व, सत्, असत्, सूक्ष्म, स्थूल, अप्रेयत्व, अन्यत्व, अनंत गुरुलघुत्व, एक शक्ति (है)। अगुरुलघु शक्ति आ गयी है। परंतु उसके अविभाग प्रतिच्छेद अनंत है। अनंत अगुरुलघु क्यों (कहा) ? क्योंकि प्रत्येक गुण में अगुरुलघुपना है, आहाहा ! भव्य, अभव्य, यह नहीं लिया है। पर्याय है न ! भव्य - अभव्य शक्ति पर्याय में है, अंदर गुण में नहीं। क्योंकि गुण हो तो भव्यपना सिद्ध में (भी) रहना चाहिए। परंतु भव्यपना तो सिद्ध में नहीं है। क्योंकि भव्यत्व की योग्यता की पर्याय थी, उस पर्याय का अभाव हो गया। पूर्ण भव्यता प्रगट हो गयी। सर्वगतत्व, द्रव्यत्व, अवगाहन, अव्याबाध यह प्रतिजीव गुण (है)। विभाग, योग, अवगाहन, क्रियावर्ती, भोक्तृत्व, असर्वगत। प्रवचनसार पृष्ठ - १५०, अनुभव प्रकाश पृष्ठ - ६, राजवार्तिक पृष्ठ - ५५९, पद्मनंदी पंचविंशती पृष्ठ - १११ के आधार से (बनायी है)। इन शास्त्रों के आधार से बनायी है। परमात्मपुराण में से नित्य, पर प्रभाव, निज धर्मभाव, ध्रुवभाव, केवलभाव, शाश्वतभाव, अतुलभाव, अछेद्यभाव, अनित्यभाव, प्रकाशभाव, अपार महिमाभाव, अपरमभाव अक्रमभाव, अघटभाव, अखेदभाव, निसंसारभाव, कल्याणभाव, ओहोहो ! इसमें ५४ हो गयी। ३८ चली थी बाद में परमात्मगुण में से ली। १०१ हो गयी। ५४ और ४७, (ऐसे) १०१ (हो गयी)। आहाहा ! पहले से उतारी थी। आहाहा ! यहाँ तो अभावअभाव शक्ति का वर्णन संतों ने कहा। दूसरे संतोंने भिन्न-भिन्न शास्त्रों में (कहा) था (तो उसका) मिलान करके लिख लिया था, आहाहा !

सबेरे सूक्ष्म द्रव्यदृष्टि आया था न ? आहाहा ! पुण्य - पाप स्थूल है और स्थूल का वर्तमान परिणमन में अभाव है। द्रव्यदृष्टि की संभाल करने से जो शुभभाव है, उसका भी वर्तमान में तो अभाव है। आहाहा ! और बाद में भी अभाव रहेगा, उसका नाम अभावअभाव शक्ति कहने में आता है, आहाहा ! जैसे कि, समकित पर्याय है तो उसमें मिथ्या पर्याय का अभाव है। अभावरूप परिणमन है। पीछे भी समकित पर्याय में (मिथ्या पर्याय का) अभावरूप परिणमन रहेगा। मिथ्यात्व का परिणमन कभी आयेगा नहीं, आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसे चारित्र का जो निर्मल परिणाम हुआ, उसमें वर्तमान में अचारित्र के परिणाम का अभाव है। ऐसे अचारित्र का परिणाम कायम अभावरूप रहेगा। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बात है ! भण्डार खोला है ! खजाना खोल दिया ! ओहोहो ! ऐसी वस्तु है ! पर से उदास है, पर का अभाव स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। पर शब्द का (अर्थ) शरीर, वाणी तो कहीं दूर रह गया, वह तो अभाव शक्ति में आया था। पांच शरीर, आठ कर्म, और भावकर्म (इन तीनों का) आत्मा में अभाव है। अभावशक्ति में तीनों का

अभावरूप परिणमन है, आहाहा ! अभाव में आया था। यहाँ तो तीनों का अभावरूप परिणमन है, यह पर्याय अपनी है। और इन तीनों का अभावरूप परिणमन है, ऐसा भविष्य में भी समय - समय में (रहेगा)।

पाँच शरीर, शरीर यानी नोकर्म, आठ कर्म और भावकर्म - दया, दान, व्रत, पुण्य - पाप शुभाशुभभाव आदि उसका अभाव शक्ति के कारण वर्तमान में अभाव है। ऐसा (भविष्य में भी) अभावअभाव रहेगा। ये अभावअभाव शक्ति के कारण है। आहाहा !

अरे...! प्रभु का बड़ा खजाना पड़ा है ! उसका विश्वास नहीं, उसकी प्रतीति नहीं और राग की प्रतीति (है)। मैं शुभ राग करता हूँ, उसका विश्वास (है)। जो विकार है, जो स्वभाव में नहीं है, उसका विश्वास (है) कि, मेरा शुभभाव से कल्याण होगा, आहाहा ! समझ में आया ? दृष्टि में बड़ी विपरीतता है।

यहाँ तो कहते हैं कि, स्वभाव के आश्रय से जहाँ दृष्टि पलट गयी, तो इसमें वर्तमान में भी मिथ्याश्रद्धा का अभावरूप परिणमन है। ऐसा ही अभावरूप परिणमन कायम रहेगा। आहाहा ! सादी अनंत (ऐसा ही परिणमन रहेगा)। आहाहा ! समझ में आया ? क्या कहा ?

``**नहीं भवते...**'' (अर्थात्) वर्तमान में नहीं है। ``(**अप्रवर्तमान**)...'' (अर्थात्) वर्तमान में राग आदि का परिणाम नहीं है। राग का प्रवर्तन नहीं है, आहाहा ! धर्मी जीव को द्रव्यदृष्टि होने से वर्तमान में राग का प्रवर्तन नहीं है, आहाहा ! यहाँ तो व्यवहार रत्नत्रय का प्रवर्तन करे तो निश्चय रत्नत्रय होगा, (ऐसा लोग मानते हैं)। यहाँ तो प्रभु ना कहते हैं। समकिती को, धर्मी को, द्रव्यदृष्टिवान को राग का अप्रवर्तन है। कहो, समझ में आया ? भाई ! ऐसी बात बाहर में आयी तो लोगों को (बैठी नहीं)। (परंतु) भाई ! तेरे घर की बात है, प्रभु ! आहाहा !

भजन में नहीं आता है ? `अब हम कबहु न निज घर आये, पर घर भ्रमत अनेक नाम धराये' (रागादि भाव) वस्तु का स्वरूप नहीं। मैं रागी हूँ, मैं क्रोधी हूँ, मैं मानी हूँ, मैं व्यवहार करनेवाला, यह वस्तु का स्वरूप नहीं। निज घर में आये तो इसमें विकार का अभाव दिखता है। आहाहा ! विकार का अभाव यह इसका स्वभाव ही है। द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में (यह स्वभाव) व्यापक है, आहाहा ! द्रव्य, गुण में तो (राग का) अभाव है ही (परंतु) पर्याय में भी राग का अभाव है। ज्ञानी को विकार दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम होता है फिर भी उसकी पर्याय में उसका अभावरूप परिणमन है, आहाहा ! (रागादि) है उसको जाननेवाली ज्ञान की पर्याय उसकी उसमें है। राग है उसको जानने की पर्याय उसमें है। परंतु राग के स्वभाव का अभावरूप परिणमन है। आहाहा ! समझ

में आया ? क्या कहते हैं ?

आहाहा ! गज़ब बात है ! अमृतचंद्र आचार्य ने समयसार ९६ गाथा में कहा है न ? अरे ! अमृत का सागर इस मृतक कलेवर - इस मुर्दे में मुर्छाया (है)। यह मुर्दा - मृतक कलेवर परमाणु है। आहाहा ! क्या कहा ? मूढ़ ने मुर्दे से सगाई मानी (है)। मानता है कि, मैंने सगाई की है और शादी करूँगा। अरे प्रभु ! मुर्दे से सगाई (कहाँ से मानी) ! आहाहा ! मोक्षमार्ग प्रकाश में यह दृष्टांत आया है। आहाहा ! राग के साथ सगाई की और राग के साथ एकाकार हो जायेगा, आहाहा ! प्रभु ! यह तेरी चीज़ नहीं। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि, जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बंधे उस भाव का भी अभाव स्वभावरूप परिणमन है। आहाहा ! (लोग) उसमें राजी-राजी हो जाये कि, आहाहा ! षोडशकारण भावना भाये, क्या कहते हैं ? `दर्शन विशुद्धि भावना भाये सोलह तीर्थंकर पद पाय,' आहाहा ! यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं और ऐसा है कि, जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बंधे उस भाव का धर्मी को तो अभाव स्वभावरूप परिणमन है, आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसे वीर्य में भी अभावअभाव नाम का रूप है। वीर्य जो निर्मल स्वरूप की रचना करता है, उस वीर्य में मलिनता की रचना का तो अभाव है। आहाहा ! यह जीव पुरुषार्थ करता है तो जीव का पुरुषार्थ तो निर्मल परिणति होती है, वह पुरुषार्थ है। मलिन पर्याय का तो उसमें अभाव है। आत्मा के वीर्य से - बल से पुरुषार्थ से मलिन पर्याय की रचना होती नहीं। आहाहा ! गज़ब काम किया है न ! प्रभु ! आत्मा तो ऐसा है। प्रभु ! तेरी चीज़ यह है। आहाहा !

एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का अभाव है, अत्यंत अभाव है। तो दूसरा द्रव्य क्या करे ? ऐसे राग का तो स्वभाव में अत्यंत अभाव है। यह अध्यात्म का अत्यंत अभाव है। जो दूसरे चार (अभाव) है, प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव, इसमें यह नहीं आता। यहाँ तो कर्ता - कर्म अधिकार की ७३ गाथा में कहा कि, जितना दया, दान, व्रत आदि का विकल्प है, आहाहा ! समझ में आया ? उसका आत्मा की पर्याय में अत्यंत अभाव है। समझ में आया ? आहाहा ! वह तो कहा परंतु पर्याय में भी षट्कारक रूप निर्मल परिणमन है, वह यहाँ लेना है। निर्मल परिणमन षट्कारक से होता है वह तो पर्याय में है, परंतु मलिन परिणाम के षट्कारक का तो उसमें अभाव है, ओहोहो ! गज़ब काम किया है न !

यहाँ तो पर्याय बुद्धिवाले को, पर्याय में षट्काररूप विकृत परिणमन होता है, समझ में आया ? विकृत पर्याय द्रव्य, गुण में तो है नहीं। क्योंकि विकाररूप परिणमन करे,

ऐसी कोई शक्ति नहीं है। यहाँ तो पर्यायबुद्धि में पर्याय में राग कर्ता, राग कर्म, राग करण, राग अपादान, राग संप्रदान, राग आधार (है)। आहाहा ! वह भी पर्याय में है। (परंतु) जहाँ द्रव्यबुद्धि हुई तो (फिर राग के) षट्कारक के परिणमन का अभाव है। समझ में आया ? यह बाद में लेंगे। आहाहा ! यहाँ तो अभावअभाव सिद्ध करना है न ?

धर्मी को और द्रव्यदृष्टि के दृष्टिवान को इस षट्कारक का जो विकृत परिणमन है, उसका तो पर्याय में अभावरूप (परिणमन) है, आहाहा ! मिथ्यादृष्टि को दृष्टि पर्याय पर थी तब तक पर्याय में भाव है, समझ में आया ? आहाहा ! सम्यक्दृष्टि को (अर्थात्) धर्म की पहली सीढ़ीवाले को पर्याय में षट्कारक रूप विकृत अवस्था जो है (वह), कर्म से नहीं, (बल्कि) अपनी पर्याय से विकृत अवस्था है, वह कोई शक्ति का कार्य नहीं। पर्याय में अद्धर से (विकृत अवस्था उठी है) और उठावगीर (है)। उठावगीर समझते हो ? विकृत अवस्था उठावगीर है, वस्तु में नहीं है, आहाहा !

छः कारक के परिणमन का द्रव्यदृष्टिवंत को - धर्मी को विकार का अभावरूप ही परिणमन है। आहाहा ! (राग का) परिणमन है ना ? नय में तो ऐसा कहा है। वह तो ज्ञान कराया है। समझ में आया ? यहाँ तो द्रव्यदृष्टि की प्रधानता से शक्ति का कथन है। उसमें तो षट्कारक से विकृत पर्याय है। उसका तो पर्याय में अभाव है। द्रव्य, गुण में तो अभाव है ही, (परंतु पर्याय में भी अभाव है)। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसे अभावरूप परिणमन है, आहाहा ! धर्मी को व्यवहार रत्नत्रय का अभावरूप परिणमन है, आहाहा ! और व्यवहार रत्नत्रय का अभावरूप परिणमन कायम रहेगा, यह अभावअभाव शक्ति का कार्य है। आहाहा ! ऐसी गज़ब बात (है) ! समझ में आया ? बात तो ऐसी है ! आहाहा !

भाई ! तेरी चीज़ ऐसी है। तेरा स्वरूप ऐसा है, आहाहा ! कि, विकाररूप नहीं परिणमन करना, यह तेरी चीज़ है। विकाररूप परिणमन करना ये कोई तेरी शक्ति नहीं या कोई गुण नहीं, आहाहा ! तेरी शक्ति में तो अभावअभाव नाम का गुण पड़ा है। इस गुण के कारण वर्तमान में भी ज्ञान की पर्याय में विपरीतता का तो अभाव है और ऐसा विपरीतता का अभाव, यह विपरीतता का अभाव कायम रहेगा, आहाहा ! और ज्ञान की पर्याय जो निर्मल भावरूप है, (उसका) वैसा का वैसा ही भाव (भविष्य में) रहेगा और विकार से अभावरूप है तो कायम अभावरूप ही रहेगा, आहाहा !

यहाँ तो ऐसा लिया है कि, जिसको द्रव्यदृष्टि हुई उसको गिर जाना है कि, पीछे हट जाना है, यह बात है ही नहीं। द्रव्यदृष्टि छोड़ दे तो गिर जाये। समझ में आया ? वस्तु जो भगवान ज्ञायकभाव, अनंत शक्ति का पिंड प्रभु, ऐसे द्रव्य की प्रतीति

और पर्याय में द्रव्य का ज्ञान हुआ, यह ज्ञान पीछे हठ जाये ऐसी तो द्रव्य, गुण में कोई शक्ति नहीं। द्रव्यदृष्टि की प्रतीति छोड़े तो हट जाये। (परंतु) द्रव्य में (ऐसा) कोई कारण नहीं है। समझ में आया ? आहाहा !

यह तो कुंजी है कुंजी ! ताला खोलने की कुंजी यह है। मैं तो भगवान आत्मा ! अभावअभाव शक्ति से - गुण से भरा हुआ हूँ। आहाहा ! अनंत गुण की, अनंत अनंत विकृत अवस्था हो, विपरीत (परिणमन) हो (ऐसे) २१ (गुण) निकाले हैं। अंदर में विचार करते-करते (निकाला है)। एकबार बाहरगाँव (गये थे), तो बहुत ही गुण का विपरीत (परिणमन) होगा परंतु २१ ख्याल में आता है। विपरीत का परिणमन धर्मी को द्रव्यदृष्टिवंत को अभाव (स्वरूप) है। आहाहा ! समझ में आया ?

निर्मल परिणति का सद्भाव है, मलिन परिणति का अभाव है। यह अस्ति - नास्ति हुई। निर्मल परिणति का भावभाव रहेगा, वह भावभाव शक्ति के कारण (रहेगा)। मलिन परिणति का अभाव है, वह अभावअभाव (रूप) रहेगा, वह अभावअभाव (शक्ति के) कारण रहेगा। आहाहा ! तेरी संपदा तो देख ! आहाहा ! भाई ! तूने तेरी चीज़ को देखा नहीं, आहाहा !

ज्ञायक स्वभाव में अभावअभाव नाम की शक्ति (है) तो अनंत गुण में अभावअभावपना है। अनंत गुण में अभावअभाव का रूप है। कोई गुण विपरीत रूप परिणमन नहीं करता और कोई गुण विपरीतरूप परिणमन करेगा, ऐसा वस्तु में नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो अंतर की चीज़ है, भगवान ! यह कोई बाह्य से मिले (ऐसा नहीं है)। पवित्रता अंदर में पड़ी है। इस पवित्रता के परिणमन में अपवित्रता का तो अभावरूप परिणमन है। आहाहा ! सम्यक्दृष्टि हुआ तब से (ऐसा परिणमन है)। द्रव्य में तो (पवित्रता) थी, गुण में तो (पवित्रता) थी परंतु दृष्टि हुए बिना (पवित्रता कैसी) ? पर्याय में दृष्टि है तो राग (रूप), विकाररूप और संसाररूप परिणमन करता है। यह कोई द्रव्य, गुण में नहीं है, पर्याय में (इस प्रकार) परिणमन करता है, समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ तो अभी तकरार उठाते हैं कि, कर्म से विकार होता है। अरे भगवान ! बाद में कहेंगे कि, विकार भी पर्याय में षट्कारकरूप से परिणमन करता है, यह अपने से है। परंतु उसका रहितपना आत्मा में है। समझ में आया ? ३८ (शक्ति के बाद ३९ (शक्ति में यह है)। है ? ``(**कर्ता, कर्म आदि**) **कारकों के अनुसार...**'' कर्म के अनुसार नहीं। पर्याय में भी विकृत अवस्था होती है वह कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान (आदि) छ कारकों से होती है, कर्म से नहीं। यह भी कर्ता आदि षट्कारक का परिणमन है, उसका स्वभाव में अभाव है। धर्मी को (इसका) अभाव है, ऐसा कहते हैं, आहाहा ! ऐसी बात

(है) ! ओहोहो ! ऐसी बात कहीं नहीं है, आहाहा !

भाई ! तू कौन है ? क्या है ? प्रभु ! तेरे में ऐसी शक्ति पड़ी है न नाथ ! तेरी चीज़ को संभालने से तेरी चीज़ में एक अभावअभाव नाम का गुण पड़ा है। ऐसा गुण है। इस गुण का कार्य विकाररूप नहीं परिणमन करना और ऐसा नहीं परिणमने का (कार्य) कायम रहना (यह है)। आहाहा ! ऐसी बात है। (लोगों को) लुखा लगे (परंतु) बापू ! यह तो वीतरागी वार्ता है। वीतरागी कथा है।

धर्मी को उपदेश का विकल्प आता है तो भी यहाँ तो कहते हैं कि, उसका तो विकल्प का अभावरूप परिणमन है, आहाहा !

श्रोता : विकल्प के काल में भी (ऐसा परिणमन है) ?

पूज्य गुरुदेवश्री : (हाँ), विकल्प के काल में भी (ऐसा परिणमन है)। समझ में आया ? आहाहा !

``**नहीं भवते...**'' (अर्थात्) नहीं प्रवर्तमान। वर्तमान में पर्याय में विकार का प्रवर्तन नहीं है. पहले अभाव लिया। है न ? ``**नहीं भवते हुए...**'' अर्थात् नहीं प्रवर्तमान । ``**...अप्रवर्तमान पर्याय के...**'' (ऐसे लिया है)। अपनी चीज़ क्या है ? उसके भान बिना, उसने राग में खेल खेला। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि, प्रभु ! एकबार तेरी दृष्टि द्रव्य पर हो और द्रव्य का स्वीकार हो तो रागरूप परिणमन करना, ऐसी तेरी कोई शक्ति द्रव्य में, गुण में (और) पर्याय में भी नहीं। क्योंकि अभावअभाव शक्ति द्रव्य में, गुण में और पर्याय में व्याप्त हुई है। द्रव्य, गुण, पर्याय में तीनों में व्याप्त है तो पर्याय में भी अभावअभावपना (है), आहाहा ! गज़ब काम किया (है), प्रभु ! आहाहा !

एक हज़ार वर्ष पहले अमृतचंद्र आचार्य दिगंबर संत (हुए)। उनकी वाणी तो देखिये ! केवली के केवलज्ञान के कबाट खोल दिये हैं। केवलज्ञानी ने जो कहा उसका कबाट खुला करके बताया कि, भाई ! भगवान ऐसा कहते हैं। तेरे भगवान में भी ऐसा है, ऐसा कहते हैं, आहाहा ! तेरे भगवान की तुझे खबर नहीं, प्रभु ! राग की प्रभुता में तेरा खेला हो गया है। यह तेरा खेल नहीं। यह तेरे ख्याल का खेल नहीं, आहाहा ! तेरे ख्याल का खेल तो रागरूप नहीं परिणमन करना, यह तेरा खेल है। रुपये में सूझ भी नहीं पड़ती है। (समयसार) ३२० (गाथा - जयसेनआचार्य की टीका और) शक्ति का वर्णन छपकर बाहर आयेगा। हिन्दी में बाद में गुजराती में दोनों में आयेगा, आहाहा !

(यहाँ) क्या कहते हैं ? नहीं प्रवर्तते ऐसे विकार का अभाव। वर्तमान में भी धर्मी को विकार का अभावरूप प्रवर्तन है। अप्रवर्तन (है, अर्थात्) विकार में प्रवर्तन है ही नहीं,

आहाहा ! सम्यग्दर्शन ऐसा उसका विषय, द्रव्य उसकी शक्तियों का वर्णन अलौकिक है !! आहाहा !

श्रोता : आपने उद्‌घाटन किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें भरा है न ? और जगत के भाग्य हो उस प्रकार से भाषा आती है। आहाहा ! कौन बोले ? कौन करे ? आहाहा ! बोले वह दूसरा, आत्मा नहीं आहाहा ! भाषा में भी स्वपर कहने की ताकत है। आत्मा में स्वपर जानने की ताकत है। स्वपर करने की ताकत - पर को (करने की ताकत) नहीं। स्व में भी क्या करता है ? स्व तो है। भाषा में अपने उपादान से स्वतंत्र स्व - पर कहने की ताकत है, आहाहा ! यहाँ कहते हैं कि, भाषा ऐसा कहती है कि, तेरे भाव में निश्चय से तो संसार - उदयभाव जो है उसका तो तेरी पर्याय में अभाव है, भगवान ! तेरी चीज़ - पर्याय ऐसी ही है। द्रव्य ऐसा है, गुण ऐसा है और पर्याय ऐसी है। ऐसे द्रव्य, गुण, पर्याय की प्रतीति यथार्थ हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया ? यह ज्ञानप्रधान कथन में - सर्वविशुद्ध (अधिकार में आया है)। ज्ञेय और ज्ञायक की यथार्थ प्रतीति (उसका नाम सम्यग्दर्शन है), ऐसा आया है। दर्शन प्रधान (कथन में) अकेले भूतार्थ की श्रद्धा (आती है)। समझ में आया ? (श्रद्धाप्रधान कथन में) त्रिकाल ज्ञायक की श्रद्धा (आती है और) ज्ञानप्रधान (कथन में) ज्ञेय और ज्ञायक दोनों की यथार्थ प्रतीति (आती है), आहाहा !

द्रव्य की दृष्टिवंत को अपनी पर्याय में विकार के अभावरूप परिणमन है, तो वहाँ विकार है उसका परज्ञेय के रूप में ज्ञान करते हैं और ज्ञान करते हैं इस ज्ञान की पर्याय में विद्यमानता है। परंतु विकार की पर्याय का तो ज्ञान की पर्याय में अभाव है, आहाहा ! ऐसे प्रत्येक गुण में लेना। समझ में आया ?

वीर्य गुण पहले कहा न ? वीर्यांतराय का नाश हुआ तो वीर्य प्रगट हुआ, यहाँ ऐसा नहीं है। उसमें वीर्य शक्ति है उस द्रव्य का स्वीकार हुआ तो वीर्य शक्ति का निर्मल परिणमन होता है। अंतराय (कर्म) गया तो निर्मल (परिणमन) होता है, ऐसा नहीं है। अपने गुण के कारण निर्मल (परिणमन) होता है, ऐसा स्वभाव है। समझ में आया ? आहाहा !

क्या कहा ? कि वीर्य नाम का गुण है, उसमें भी अभावअभाव नाम की (शक्ति का) रूप है। वीर्य स्वरूप की रचना करता है। अपनी पर्याय में भी शक्ति तो है न ? वीर्य जो गुण है वह गुण तो गुण में है। परंतु वीर्य का रूप अनंत गुण में है। वीर्य शक्ति का रूप अनंत गुण में (है), ऐसी शक्ति है, आहाहा ! अनंत शक्ति का जो वीर्य है तो इस वीर्य के परिणमन में विकार के अभावरूप परिणमन है, आहाहा ! यह अभावरूप परिणमन है (उसमें) स्वरूप की रचना का भावभाव है और पर की रचना का अभावअभाव

है, आहाहा !

यहाँ तो (लोग) कहते हैं कि, परद्रव्य की क्रिया करता है। इन्दौर में एक बार ऐसी बात चली थी। ५० पंडित लोग इकट्ठे होकर रात्रि को बोले थे कि, `पर द्रव्य का कर्ता न माने तो वह दिगंबर जैन नहीं' अरे प्रभु ! क्या करता है ? भाई ! भगवान तू ज्ञानस्वरूप है न ! तेरे में तो राग का अभावस्वभाव है न ! तो राग का कर्तापना ही तेरे स्वभाव में नहीं है न ! तेरी पर्याय में भी राग का कर्ता स्वभाव नहीं। द्रव्य, गुण की तो बात ही कहाँ है ? वे लोग तो ऐसा कहते हैं कि, परद्रव्य का कर्ता न माने तो दिगंबर नहीं। उन लोगों को यहाँ के दिगंबर को उड़ाने थे न ! अरे प्रभु ! क्या करता है, भाई ? आहाहा ! परद्रव्य की पर्याय कर (सकता) नहीं, आहाहा ! अरे...प्रभु ! दिगंबर किसे कहें ? अरे बापू ! भगवान ! आत्मा का विकल्प रहित स्वरूप है, यह दिगंबर है। दृष्टि में दिगंबरपना कब हुआ ? कि विकल्प का अभावरूप परिणमन हुआ और स्वभाव का शुद्धरूप परिणमन हुआ, तब दिगंबर समकिती हुआ और दिगंबर मुनियों को (अंदर में) तीन कषाय का अभाव और बाहर में कपड़े का अभाव (होता है), आहाहा !

श्रोता : कपड़ा तो परद्रव्य है, (वह) रहे तो भी क्या हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य (है), उसकी कौन ना कहता है ? पर द्रव्य का स्वभाव में अभाव है। परद्रव्य नुकसान करता नहीं परंतु उसकी ममता (नुकसान करती है)। मैं कपड़ा रखुँ, ऐसी ममता नुकसान करनेवाली है, आहाहा !

यहाँ एक श्वेतांबर के साधु आये थे। साड़े चार महिने यहाँ रहे होंगे, हमेशा सुबह को और दोपहर को सुनते थे। (एकबार) अंदर आकर कहा, `स्वामीजी ! मार्ग तो तुम कहते हो यह सत्य है। हमें क्या करना ?' (हमने कहा), हम तो किसको कहते नहीं कि तुम संप्रदाय छोड़ो। (उनको मन में ऐसा था कि) आप कहो तो हम संप्रदाय छोड़ दे। बाद में हमारे खाने-पीने की जिम्मेदारी आपकी। समझ में आया ? यहाँ बापू ! कुछ नहीं है। अपने कारण से यहाँ रहते है, किसी के कारण से कोई यहाँ नहीं है। तो उन्होंने कहा, `बात तो सच्ची है' हमने कहा, `देखो ! कपड़े नड़ते नहीं, (लेकिन) कपड़े का राग है, यह नुकसान करता है। और कपड़े का राग जब तक है, तब तक मुनिपना नहीं होता ' समझ में आया ? तब यहाँ तो कबूल किया। (हमें) क्या करना ? ऐसा पूछा। तो (हमने कहा), भाई ! हम तो किसीको कहते नहीं कि क्या करना ? क्या नहीं करना ? हम तो मार्ग कहते हैं। हमारे पर तो कोई जवाबदारी नहीं है, समझ में आया ?

एकबार श्वेतांबर के दूसरे चार साधु आये थे। उन्होंने कहा, `आप कपड़े का निषेध करते हो, परद्रव्य नुकसान करता है क्या ?' (हमने कहा), `हमने कभी कहा ही नहीं

कि कपड़ा नुकसान करता है' हम तो किसीको यहाँ रखते नहीं। जिसकी जवाबदारी हो, वह रहो। आओ या नहीं आओ, हम तो किसीको कहते नहीं। हम तो तत्त्व की बात करते हैं। ठीक पड़े (उसे) जचे। जचो तो जचो। अंत में ऐसा बोले, `एक ओर निर्विकल्प की बात करते हैं, एक ओर ऐसा कहते हैं कि, कपड़ा हो तो मुनिपना नहीं', परंतु कपड़े के कारण मुनिपना नहीं, उसका कहाँ प्रश्न है ? कपड़े का विकल्प है तब कपड़े का संयोग होता है। और कपड़े के संयोग में धर्म मानना और चारित्र मानना, उसमें तो नौ तत्त्व की भूल है। आहाहा ! समझ में आया ? क्योंकि कपड़े का राग है। वहाँ जीव का इतना आश्रय नहीं हुआ कि, तीन कषाय के अभाव में जीव का तीव्र आश्रय लेना चाहिए। आश्रय हुआ नहीं और राग का भाव है तो मुनिपना में राग होता नहीं तो इतना आस्रव होता नहीं। मुनिपना की दशा में कपड़े के राग का आस्रव होता ही नहीं। यह आस्रव की भूल है। जीव के आश्रय की भूल है। राग की भूल और संवर, निर्जरा की भूल जहाँ कपड़े आदि का राग है वहाँ मुनिपना (योग्य) ऐसी संवर, निर्जरा होती नहीं।

(लोग) कहते हैं न ? भाई ! कुंदकुंद आचार्य ने इतना क्यों लिखा ? कि कपड़े का टुकड़ा रखे और मुनिपना माने तो `निगोद गच्छई' सूत्रपाहुड में आता है। `निगोद गच्छई' इतना क्यों कहते हैं ? बापू ! उसमें तो नौ तत्त्व की भूल है, इसलिये कहते हैं, आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो छट्ठे गुणस्थान में विकल्प तो है नहीं। राग के अभावरूप परिणमन है। पंच महाव्रत का विकल्प है, उसका भी अभावरूप परिणमन है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा अभावअभावरूप परिणमन कायम रहेगा, आहाहा ! अभावअभाव शक्ति के कारण (कायम रहेगा)। गुण अपने गुण के कारण है। आहाहा ! यह गुण ऐसा कार्य करता है कि, विकार के अभावरूप परिणमन वर्तमान में (है) और ऐसा का ऐसा (परिणमन) भविष्य में रहेगा। यह (अभावअभाव) गुण का कार्य है। आहाहा ! ऐसी बात है ! क्या करें ? प्रभु ! आहाहा ! लगभग ५० मिनट तो हो गई। एक-एक गुण में उतारने जाये तो बहुत समय लगे।

दूसरे प्रकार से कहें तो अभावअभाव शक्ति जो है न ? उसमें दो उपादान (हैं)। एक ध्रुव उपादान और एक क्षणिक उपादान। कायम चीज़ - शक्ति पड़ी है, यह ध्रुव उपादान है और वर्तमान में जो क्षणिक राग रहित परिणमन है, यह क्षणिक उपादान है। पर्याय में क्षणिक उपादान (है और) ध्रुव में नित्य उपादान (है)। यह शक्ति के दो रूप है, आहाहा ! समझ में आया ? यह शक्ति अनंत गुण में व्याप्त हुई है। एक शक्ति अनंत

गुण में निमित्त है, आहाहा ! त्रिकाली शक्ति जो है, यह पारिणामिकभावस्वरूप है। परंतु रागरूप नहीं परिणमन करना, ऐसी जो निर्मल पर्याय है, यह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव (स्वरूप) है। यहाँ उदयभाव को तो लिया ही नहीं। उसका उदयभाव से अभावरूप परिणमन है। उसका नाम अभावअभाव शक्ति कहने में आता है। उसका नाम द्रव्य कहने में आता है, आहाहा ! समझ में आया ?

अरे ! चीज़ की खबर नहीं। वस्तु की शक्ति - गुण की ताकत कितनी है ! उसकी खबर नहीं)। उसमें अभावअभाव गुण की इतनी ताकत है कि, राग (व्यवहार) रत्नत्रयरूप नहीं परिणमन करना, ऐसी एक ताकत है, आहाहा ! समझ में आया ? यह सब कहाँ सुना है ? शेत्रुंजय की यात्रा कर ले तो हो गया कल्याण ! (ऐसा ही अभी तक सुना है)। दूसरे काम में - पाप में रुक गया। थोड़ा यहाँ कुछ करने जाये तो (मानो) हो गया धर्म ! जाओ ! अरे भाई ! पर की यात्रा में तो राग है। (अभी) आया नहीं ? अभावअभाव कहा न ? यात्रा के राग का तो स्वरूप में - पर्याय में अभावअभावरूप परिणमन है। समझ में आया ?

पर्याय में जो राग का अभावअभावरूप परिणति हुई यह परिणति उपशम, क्षयोपशम (और) क्षायिकभावरूप से है। उपशम तो अल्प काल रहता है; बाकी वास्तव में तो क्षयोपशम और क्षायिकभावरूप परिणति है। और जब अंतर में पर्याय चली जाती है, तब पारिणामिकभावरूप हो जाती है। आहाहा ! क्योंकि वर्तमान तो एक समय की अवस्था है। एक समय की अवस्था व्यय हो जाती है। यह तो भावअभाव में आ गया। (वर्तमान) भाव का अभाव हो जाता है। अभाव हो जाता है परंतु पर्याय जाती तो अंदर है। जल की तरंग जल में डूबती है। वैसे अपनी पर्याय का व्यय होकर अंदर में जाती है। अंदर में गयी तो पारिणामिकभाव हो गई। बाहर में थी तो क्षयोपशम और क्षायिकभावरूप मुख्य थी। कहो समझ में आया ? बहुत लिया है। जन्मक्षण है वह नाशक्षण है। अभावअभाव शक्ति की पर्याय जो उत्पन्न हुई, वह जन्मक्षण था, वह उत्पत्ति का काल था। समझ में आया ? अपना स्वकाल ऐसा था। अभावअभाव शक्ति का परिणमन राग बिना होना, यह जन्मक्षण है। और जो जन्मक्षण है वही व्यय का क्षण है। और उसी समय में निर्मल पर्याय की काल लब्धि थी। तब (वह पर्याय) आयी है। आहाहा ! और वही पूर्व और पश्चिम जो अवसर है, वह अपने अवसर में रागरूप परिणमन हुआ, यह अपने अवसर में हुआ है। यह क्रमबद्ध में आता है, आहाहा ! क्रमबद्ध है। शक्ति का भेद भी दृष्टि का विषय नहीं। शक्ति और शक्तिवान, ऐसा भेद दृष्टि का (विषय) नहीं। अभावअभाव शक्ति और अभावअभाव शक्ति का धारण करनेवाला द्रव्य, ऐसा (भेद) दृष्टि का विषय नहीं। दृष्टि का विषय तो अभेद है, आहाहा !

अभेद दृष्टि होने से पर्याय में अभावअभाव नाम की निर्मल परिणति, विकार रहित होती है और यह अकार्यकारण में है, आहाहा ! यह परिणति राग का कार्य नहीं और अभावअभाव की परिणति राग का कारण नहीं, आहाहा !

यहाँ तो विशेष लिया था कि, क्रमवर्ती ज्ञान पर्याय क्रम से अभावअभावरूप हुई। वह पर को जानती है, ऐसा (कहना) भी व्यवहार है। वह राग को जानती है, ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। अभावअभाव (शक्ति के) कारण व्यवहार - राग उसमें तो है नहीं परंतु राग को जानना कहना, यह व्यवहार है। वास्तव में तो अपनी पर्याय को जानते हैं। राग संबंधी ज्ञान और ज्ञान की पर्याय ज्ञान, यह अपने को जानती है।

जाननेवाला जाननेवाले का है, उस स्वामी अंश से भी क्या साध्य है ? क्या कहते हैं ? `मैं जाननेवाला जाननेवाले का हूँ। राग का जाननेवाला मैं हूँ' - ऐसे भेद से तुझे क्या साध्य है ? आहाहा ! राग का जानना तो है नहीं परंतु मैं जाननेवाला जाननेवाले का हूँ - जाननेवाले को मैं जाननेवाला हूँ, तुझे ऐसा भेद से क्या काम है ? उसमें क्या साध्य (होता) है ? आहाहा ! शक्ति के पिंड पर दृष्टि देने से सब कार्य हो जाता है। भेद पर दृष्टि देने से तो दृष्टि सम्यक् नहीं होती, आहाहा ! विशेष कहेंगे.....

जिसे दुनिया की बातों में रस हो, उसे यह बात जचना कठिन है; व जिसे इस विषय का रस लग जाता है उसे अन्य कहीं भी रस नहीं आता। इस प्रकार जिसे इन्द्रियज्ञान का रस चढ़ा है उसे अतीन्द्रिय-ज्ञान प्रकट नहीं होता। जैसे राग व्यभिचार है, वैसे ही इन्द्रियज्ञान का रस भी व्यभिचार है। (परमागमसार - ५०३)

प्रवचन नं. ३४
शक्ति-३९, ४० दि. १३-०९-१९७७
कारकानुगतक्रियानिष्क्रान्तभवनमात्रमयी भावशक्तिः।।३९।।
कारकानुगतभवत्तारूपभावमयी क्रियाशक्तिः।।४०।।

समयसार शक्ति का अधिकार (चलता है)। ३८ वीं अभावअभाव (शक्ति) हो गयी न ? आहाहा ! जिसकी दृष्टि द्रव्य पर है, उसके द्रव्य में अभावअभाव नाम का एक गुण है, आहाहा ! उस कारण से वर्तमान में विकार का अभाव है - अभावरूप परिणमन (है)। ऐसा अभावरूप (परिणमन) भविष्य में भी रहेगा। ऐसा अभावअभाव नाम का गुण का कार्य है। कल एक घंटा चला न ? समझ में आया ? अब आज तो ३९ (शक्ति) लेनी है।

यहाँ तो बात ऐसी है कि, जिसको द्रव्य - वस्तु जो ज्ञायकभाव, इसकी ओर दृष्टि है उसमें अनंत शक्तियाँ पड़ी हैं, उसकी भी प्रतीति है; तो ऐसे धर्मी जीव को अथवा सम्यक्दृष्टि को अर्थात् द्रव्यस्वभाव की प्रतीतिवाले को, ``(**कर्ता, कर्म आदि**)...'' क्या कहते हैं ? देखो ! कि धर्मी को एक समय की पर्याय में राग आदि, विकल्प आदि का कर्तापना होता है, पर्याय में कर्म - कार्य भी होता है। पर्याय में कर्ता - कर्म (आदि) षट्कारक (होते हैं), आहाहा ! एक समय की पर्याय में शुभ - अशुभ राग की पर्याय कर्ता है, पर्याय कर्म है, पर्याय करण - साधन है, पर्याय ने विकार करके अपने में रखा, पर्याय से पर्याय हुई और पर्याय के आधार से पर्याय हुई। समझ में आया ? थोड़ी सूक्ष्म बात है।

एक समय की पर्याय में विकृत अवस्था का षट्कारकरूप परिणमन है। यहाँ कहते

हैं कि, ``**कारकों के अनुसार जो क्रिया...**'' आहाहा ! पर्याय में षट्कारक के अनुसार विकार (अर्थात्) पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत आदि का विकल्प उसकी षट्कारकरूप परिणमनरूप क्रिया होती है। आहाहा ! है ? ``**...उससे रहित...**'' द्रव्यदृष्टिवंत को, समकिती को, ज्ञानी को, धर्मी को पर्याय में षट्कारकरूप विकृत अवस्था है। इसमें तो इतना भी सिद्ध किया कि, पर्याय में षट्कारक से विकृति है, यह कर्म से नहीं और अपने गुण से नहीं, जो शक्ति है उससे नहीं। शक्ति में भावशक्ति तो ऐसी है कि, पर्याय में षट्कारकरूप विकृत अवस्था स्वतंत्र - स्वयं होती है, उससे रहित भावशक्ति के कारण से, उससे रहित परिणमना, यह उसका स्वभाव है, आहाहा ! समझ में आया ? ओहोहो ! शक्ति का वर्णन गज़ब किया है ! निधान खोल दिया है निधान ! संतों ने जगत को (निहाल कर दिया है)। प्रभु ! तेरी चीज़ तो अखण्ड वस्तु है न ? आहाहा ! इस अखण्ड पर दृष्टि देने से तेरी पर्याय में षट्कारक की विकृत अवस्था हो, परंतु उससे रहितपना तेरा स्वभाव है, आहाहा ! समझ में आया ?

दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा ऐसा विकल्प तो ज्ञानी को भी होता है; षट्कारक यानी कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण उससे पर्याय में (परिणमन) होता है। परंतु उसकी भाव - स्वभाव की शक्ति और गुण ऐसा है कि, उससे रहित परिणमन करना, यह भाव शक्ति का कार्य है। समझ में आया ? आहाहा !

द्रव्य जो ज्ञायक, चैतन्य भगवान, अनंत आनंदकंद प्रभु ! है, उसकी पर्याय में षट्कारक से विकृत अवस्था होती है। फिर भी ज्ञानी को - धर्मी को उस षट्कारक की क्रिया जो विकृत अवस्था है, उससे रहित अपनी दशा है, ऐसा जानते हैं। सूक्ष्म बातें हैं, बापू ! आहाहा !

इसमें दो बात सिद्ध हुई। एक तो पर्याय में पर्याय दृष्टिवंत को षट्कारक का विकृत (भाव) होता है और द्रव्यदृष्टिवंत को भी पर्याय में विकृत स्वभाव की पर्याय षट्कारक से होती है। फिर भी भाव शक्ति के कारण उसका स्वभाव है, भाव (शक्ति का) गुण ऐसा है कि, विकार से रहित परिणमन करना, यह उसका स्वभाव है, आहाहा ! ऐसा है। पर्यायदृष्टि छूट गई न ? आहाहा ! द्रव्यदृष्टि हुई (अर्थात्) ज्ञायकभाव भान हुआ, ज्ञायक भाव में तो भावशक्ति नाम की एक शक्ति - गुण भी है। यह सब शक्ति एक साथ में है तो क्रम से वर्णन चलता है। आहाहा ! ऐसा जैन दर्शन (है) ! आहाहा !

(यहाँ) कहते हैं कि, पर्याय में - एक समय की अवस्था में राग, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का (भाव है, उसका) पर्याय कर्ता, पर्याय कार्य (है)। (यह सब पर्याय में है) द्रव्य - गुण में नहीं। पर में नहीं (और) पर के कारण नहीं। समझ में आया ?

विकृत अवस्था जो (होती) है, उसमें आत्मा का गुण ऐसा है कि, विकृत अवस्था रहित परिणमन करना, ऐसा गुण है। विकृतरूप से परिणमन करना ऐसा उसका गुण नहीं है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई ! आहाहा !

चैतन्य ज्ञायकस्वरूप भगवान ! पूर्ण अनंत शक्ति का संग्रहालय ! संग्रह का स्थान भगवान ! उसमें भाव नाम का एक गुण है। जिसने गुणी की दृष्टि की, उसको इस गुण के कारण विकृत भाव से अभावरूप परिणमन होता है। यह (भावशक्ति का) कार्य है। यह विकृत अवस्था परज्ञेय में जाती है। क्या समझ में आया ? यह तो सूक्ष्म अधिकार है।

बड़ी बात है, भगवान ! सुन तो सही, प्रभु ! आहाहा ! तेरी प्रभुता में भाव नाम की प्रभुता पड़ी है। प्रभुत्व शक्ति आ गयी न ? तो प्रभुत्व शक्ति में भी भाव नाम का रूप है। भावशक्ति है यह भिन्न है। प्रभुत्व में (भावशक्ति का) रूप है। पर्याय में जो पामरतारूप से षट्कारकरूप से परिणमता है, उससे रहित होना, यह तेरा स्वभाव है, समझ में आया ?

जिसकी पर्यायदृष्टि है, उसको तो षट्कारक का परिणमन उसके अस्तित्व में है और वह विकृत है, ऐसा उसने माना है। परंतु जिसकी द्रव्यदृष्टि है, धर्मी की - सम्यक्दृष्टि की द्रव्य सामान्य स्वरूप जो त्रिकाल (स्वरूप उस पर दृष्टि है)। उसका अर्थ (यह है कि, उसकी) वर्तमान पर्याय में विकृत अवस्था होने पर भी उस समय में जो निर्विकल्प अवस्था (है), वह द्रव्य की ओर झुकी है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बात है ! यहाँ तो धर्म कैसे होता है ? इसकी बात है। धर्मी को धर्म कैसा होता है ? कि, धर्मी (माने) द्रव्य और उसका धर्म (माने) वर्तमान पर्याय। यह वर्तमान धर्म नाम वीतरागी पर्याय कैसे होती है ? (इसकी बात चलती है)। सूक्ष्म बात है, भगवान ! अरेरे...! यहाँ तो अभी शुभभाव से धर्म - मोक्षमार्ग मानते हैं। अरे प्रभु ! यहाँ तो पर्याय में शुभभाव, विकृत अवस्था षट्कारक से होती है। उसकी अभी कबूलात नहीं (और विकृत अवस्था) पर से होती है, (ऐसी) कबूलात (है)। पर्याय में विकृत (अवस्था) अपने से होती है। उसमें भी भूल। और यह विकृत अवस्था है तो द्रव्य का भाव गुण ऐसा है कि, विकृत रहित परिणमना, यह गुण का गुण है। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो बहुत ध्यान रखे तो पकड़ में आये ऐसी बात है, बापू ! चैतन्य रत्नाकर भगवान परमात्मस्वरूप ! ऐसे परमात्मस्वरूप पर जिसकी दृष्टि हुई, उसको पर्याय में विकृत अवस्था होने पर भी उससे रहित परिणमना (यह) उसका स्वभाव है।

यह तो ऐसा कहा कि, पर्याय में रागादि व्यवहार हो, व्यवहार रत्नत्रय, देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, नौ तत्त्व के भेद की श्रद्धा का विकल्प, शास्त्र का पढ़ना,

पर की ओर का लक्षवाला विकल्प और पंच महाव्रत का विकल्प (हो), तीनों एक समय में विकृत अवस्थारूप से पर्याय में होता हो, फिर भी आत्मा में गुण ऐसा है कि, जिसने गुणी की (द्रव्य की) दृष्टि की (है), उसका गुण ऐसा है कि, विकाररूप (नहीं परिणमना)। आया ? क्या आया ? ``**कारकों के अनुसार जो क्रिया...**'' (अर्थात्) वर्तमान विकृत अवस्था। ``**...उससे रहित...**'' जो क्रिया की (अर्थात्) दया, दान, व्रत, भक्ति आदि पर्याय की विकृत अवस्था (यह) क्रिया (है), ``**...उससे रहित भवनमात्रमयी...**'' (अर्थात्) उससे रहित होनेरूप। राग से सहित होनेरूप नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बातें हैं ! ओहोहो ! संतों ने थोड़े शब्दों में रामबाण बातें कही हैं ! आतमराम अपने स्वरूप में रमे। (यहाँ) कहते हैं कि, (आतमराम) विकृत अवस्था से रहित रमते हैं। विकृत अवस्था में नहीं खेलता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! पर का तो उसमें अभाव है। पर में तो अपनी पर्याय घुसती नहीं परंतु पर्याय में जो विकृत अवस्था है, यह द्रव्य - गुण में घुसती नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

हमें यह सब (बाहर में अनुकूलता) है, ऐसा मानकर बैठे हैं और जिंदगी चली जाती है। यात्रा करें, इसलिये मानो जैसे हो गया धर्म ! शेत्रुंजय शाश्वत तीर्थ है, ऐसा कोई कल पूछता था न ? अरे भगवान ! शेत्रुंजय तो यह भगवान आत्मा है। विपरीत राग यह शत्रु है, अनिष्ट है, इसकी परिणति से रहित होना, यह आत्मा का गुण है, आहाहा ! समझ में आया ? आज की बात समझने की चीज़ है।

यहाँ तो अंदर परमात्मा चिदानंद का फोटो लेना है। पर्याय में द्रव्यदृष्टि होने से परमात्मा का फोटो पर्याय में आता है। इस परमात्मा की पर्याय में विकृत अवस्था का अभावरूप परिणमन करना, यह भाव नाम के गुण का कार्य (है)। यह द्रव्य का स्वभाव है। आहाहा ! बहुत कठिन काम !

यहाँ तो अभी व्यवहार से निश्चय होता है, व्रत, तप, भक्ति, पूजा के शुभभाव खूब करें, तो निश्चय होता है, (ऐसा मानते हैं)। अरे भगवान ! यहाँ तो व्यवहार की क्रिया पर्याय में हो परंतु ज्ञानी का परिणमन तो उससे रहित परिणमन है। विकार परिणाम यह तो परज्ञेय में जाता है, भाई ! आहाहा ! (विकार परिणाम) है सही, परंतु उस विकृत अवस्था का ज्ञान होता है और विकृत (अवस्था से) रहित भवन होना, यह उसका गुण है। विकृत सहित होना, ऐसा आत्मा में कोई गुण नहीं है, आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बात है। क्या कहा ?

आत्मा में एक गुण ऐसा है, गुण ऐसा है, - गुण कहो कि शक्ति कहो (दोनों एकार्थ है), - कि, जिसने आत्म द्रव्य की दृष्टि की तो आत्मा में ऐसा एक गुण है

कि, पर्याय में विकृत अवस्था होने पर भी उससे रहित परिणमना, यह भावश्रुत का कार्य है। विकार (सहित) परिणमना, यह आत्मा का गुण नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? क्या कहा ?

``**कारकों के अनुसार...**'' छ कारक आया। १३ की साल में एक बड़े विद्वान के साथ पर्याय की चर्चा हुई थी। पंचास्तिकाय की ६२ गाथा (का आधार दिया था)। २० वर्ष हुए। फागुन मास था। वहाँ कहा था, पर्याय में विकृत अवस्था स्वतंत्र पर के कारक की अपेक्षा बिना, विकृत होती है। दया, दान, व्रत, भक्ति का, क्रोध का भाव पर्याय में षट्कारक से पर निमित्त के कारक की अपेक्षा बिना अपने में होती है। यह बात तो सिद्ध रखी। पर्याय में तो सिद्ध रखी, भाई ! अब यहाँ तो द्रव्यदृष्टि जहाँ हुई (तो) पर्याय में षट्कारक की विकृत अवस्था तो सिद्ध रखी। परंतु वह ज्ञेय में गया। द्रव्य स्वभाव का जहाँ भान हुआ तो भावशक्ति का ऐसा गुण है कि, विकृत अवस्था से रहित परिणमन करना। है ? ``**...उससे रहित भवनमात्रमयी...**'' भवन (माने) पर्याय में परिणमन होना, ऐसा कहते हैं। राग जो व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प है, उससे रहित होना, यह उसका गुण है। राग सहित होना ऐसा आत्मा में कोई गुण है ही नहीं। आहाहा ! अरे...! प्रभु का जैन धर्म, अलौकिक पंथ है, बापू ! आहाहा !

भगवान गुणी जो इन गुणों को धरनेवाला, गुण का आश्रय द्रव्य है। गुण का आश्रय गुण नहीं। भावशक्ति का आश्रय तो द्रव्य है। आहाहा ! भाव (शक्ति का) आश्रय कोई दूसरा गुण है, ऐसा नहीं। जो भाव गुण है, उसका आश्रय तो द्रव्य है, तो जिसने द्रव्य का आश्रय लिया, गुण का (और) द्रव्य के भेद का (आश्रय) भी नहीं, आहाहा ! जिसे द्रव्य का, त्रिकाली ज्ञायकभाव का लक्ष हो गया, लक्ष कहो, आश्रय कहो कि सन्मुखता कहो (एक ही बात है)। ऐसे सम्यक्दृष्टि जीव को पर्याय में विकृत अवस्था होती है, फिर भी उसकी पर्याय पर दृष्टि नहीं। उसकी दृष्टि द्रव्यस्वभाव पर है। इस कारण से धर्मी को विकृत अवस्था से रहित भवनमात्र - विकृत अवस्था से रहित भवन, विकृत अवस्था से रहित होना, विकृत अवस्था से रहित होना, यह उसका गुण है, आहाहा ! समझ में आता है न ?

सुनो भगवान ! आहाहा ! यहाँ तो पर्याय में षट्कारक से विकृत अवस्था स्वयंसिद्ध, स्वतंत्र निमित्त की अपेक्षा बिना, अपने से होती है। (विकृत अवस्था) हो, परंतु आत्मा का एक गुण ऐसा है कि, उससे रहित होना यह उसका गुण है । आहाहा ! ऐसी बात कहाँ (सुनने मिले) ? ये सब सेठ लोग पैसे में घुस गये हैं। पाँच - पच्चीस लाख रुपये हो और दो-पाँच-दस लाख का खर्च करे (तो मान ले कि) धर्म हो गया ! धूल में

भी धर्म नहीं है, सुन तो सही !

यहाँ तो पुण्य परिणाम का जो विकल्प है, दान आदि का विकल्प है, उस विकल्प की पर्याय भले हो, परंतु भगवान का स्वभाव विकृत अवस्था से रहित होना, विकृत अवस्था से रहित भवन होना, यह उसका गुण है, आहाहा ! गज़ब बात कही है न !

व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान है, यह बात भी इस तरह मिल जाती है, आहाहा ! शैली तो कोई शैली है ! ११ गाथा में कहा न ? कि, भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। त्रिकाल ज्ञायकभाव सत्यार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, आहाहा ! यह तो निश्चय हुआ। बाद में उसको व्यवहार है कि नहीं ? तो १२ वीं गाथा में कहा कि, राग आदि होता है, उसको जानना यह व्यवहारनय का विषय है। (मात्र) जानना। राग मेरा है, ऐसा करना यह कोई स्वरूप में नहीं है, आहाहा ! गज़ब बात है, प्रभु ! समयसार आहाहा ! केवलज्ञानी का विरह भूला दे ऐसी बात है ! आहाहा !

क्या कहते हैं ? देखो ! इतने शब्दों में सब पड़ा है ! ``**कारकों के अनुसार...**'' कर्म के अनुसार ऐसा नहीं लिया। क्या कहा ? कर्म के अनुसार ऐसा नहीं लिया। एक बात तो यह हुई। आहाहा ! प्रभु ! तेरी पर्याय में षट्कारक के अनुसार विकृत अवस्था होती है, परंतु प्रभु ! तेरा गुण ऐसा है कि, विकृत अवस्था रहित भवन होना, यह तेरा गुण है। आहाहा ! समझ में आया ? `थोडुं लख्युं घणुं करी ने जाणजो' (यह एक गुजराती कहावत है)। यह ऐसी बात है। `थोड़ा कहा बहुत करके जानना' अरेरे...! उसने आत्मा की कभी दरकार नहीं की।

यहाँ तो प्रभु कहते हैं कि, प्रभु ! तेरे स्वभाव में गुण ऐसा है कि, विकृत अवस्था से रहित होना, भवन होना - यह तेरा गुण है। विकृत (अवस्था) सहित होना, ऐसा कोई तेरे में (गुण) है ही नहीं। वह तो पर्याय में खड़ा किया है। पर्याय में षट्कारक के परिणमन से विकृत (भाव का विकल्प) खड़ा किया है। व्यवहार रत्नत्रय भी पर्याय में खड़ा किया है। आहाहा ! वह भी कारक के अनुसार (खड़ा है)। पर के अनुसार नहीं, समझ में आये उतना समझना, प्रभु ! यह तो अंदर में भगवान बिराजमान हैं वह कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

आहाहा ! प्रभु ! तू एकबार सुन तो सही, नाथ ! तेरी शक्ति में ऐसी एक प्रभुता है और प्रभुत्व (शक्ति में) भाव नाम का एक रूप ऐसा है कि, तेरी पर्याय में विकृत अवस्था होने पर भी, उससे रहित भवन होना, यह तेरा स्वभाव है, आहाहा !

श्रोता : प्रतिज्ञा को कैसे निभाना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने प्रतिज्ञा की है ? राग करना यह प्रतिज्ञा है ? राग

से रहित होना, यह (वास्तव में) प्रतिज्ञा है, आहाहा ! पंच महाव्रत की प्रतिज्ञा करते हैं (न) ? ऐसा समझने के लिये पूछते हैं। आहाहा ! निश्चय प्रत्याख्यान तो यह है कि, ज्ञान - आनंद में रहे, रागरूप न हो उसका नाम प्रत्याख्यान है। यह तो (समयसार में) ३४ गाथा में आ गया है, आहाहा ! चारों ओर देखो तो एक धारा बहती है !

तेरी चीज़ प्रभु ! वीतराग स्वभाव से भरी है न ? नाथ ! और इस स्वभाववान की जो तुझे दृष्टि हुई तो विकाररूप परिणमन करना, यह तेरा स्वभाव नहीं है, पर्याय का स्वभाव है। तेरा गुण और द्रव्य का (स्वभाव) नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? विकाररूप परिणमन करता नहीं। उससे रहित परिणमन (ऐसा स्वभाव है)। रहित परिणमना (ऐसा स्वभाव नहीं)। आहाहा !

इसका एक गुण ऐसा है, शक्ति ऐसी है। द्रव्य की एक शक्ति ऐसी है, तो प्रत्येक गुण में इस शक्ति का रूप है। चारित्र गुण की विपरीत पर्याय परिणमन करती हो लेकिन चारित्र गुण में इस भाव नाम की (शक्ति का) रूप है, इस कारण से विकार से रहित होना, यह तेरा गुण है। आहाहा ! कभी सुना भी नहीं हो, क्या करे ? जैन नाम धराते हैं। (एक कहता है) हम दिगंबर हैं, वे कहते हैं, हम श्वेतांबर हैं। आहाहा ! भाई ! तेरी चीज़ क्या है ? उसको ले न ! दिगंबर - श्वेतांबर के नाम से क्या (मतलब) है तुझे ?

वस्तु भगवान आत्मा ! एक समय में पूर्णानंद का नाथ प्रभु ! (उसे) त्रिकाल कहना, यह भी अभी तो व्यवहार है। यहाँ तो वर्तमान में त्रिकाली चीज़ ही पड़ी है। समझ में आया ? और इस त्रिकाली चीज़ में त्रिकाली शक्तियाँ पड़ी हैं, उसमें भाव नाम का गुण - शक्ति (है)। उसके कारण प्रत्येक गुण में वर्तमान में कोई विकृत अवस्था हो, फिर भी प्रत्येक गुण का गुण ऐसा है कि, विकृत (अवस्था) रहित भवन होना, यह तेरा गुण है। आहाहा !

कितने लोगों को तो पहली बार सुनने मिला हो, ऐसा लगे। आहाहा ! प्रभु ! तुम कहाँ हो ? क्या तुम शरीर में हो ? पर में हो ? क्या तुम राग में हो ? आहाहा ! तुम राग में भी नहीं (हो)। आहाहा ! तुम तो पवित्र शक्ति का पिंड हो, उसमें तुम हो। उसमें रहनेवाले को पर्याय में राग(रूपी) षट्कारक से परिणमन होने पर भी, इस गुण के कारण उससे (विकार से) रहित होना यह उसका गुण है। राग सहित होना, ऐसा कोई गुण नहीं, आहाहा !

दूसरी बात (यह है) कि, व्यवहार रत्नत्रय से सहित होना, ऐसा कोई गुण नहीं, भाई ! आहाहा !

श्रोता : नयी शैली से बात आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें है न ? पर्याय में षट्कारक से विकृत पर्याय कर्ता (है)। द्रव्य - गुण कर्ता नहीं, वैसे पर (भी) कर्ता नहीं, आहाहा ! एक समय की दशा में कुछ एक गुण की विपरीत अवस्थारूप पर्याय में होना, यह कोई उसका स्वरूप नहीं। उससे रहित भवन होना, यह तेरा स्वरूप है। आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ तो अभी व्यवहार है तो उससे निश्चय होगा और व्यवहार भी मोक्षमार्ग (है, ऐसा मानते हैं)। प्रभु ! बहुत फ़र्क है, नाथ ! तेरी चीज़ में तो अंदर डुबकी मारनी चाहिए, उसके बदले में तूने राग में डुबकी मारी है, आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! बात ऐसी (है), भगवान !

प्रभु ! तू पवित्र है न ? तेरा द्रव्य पवित्र है, तेरा गुण पवित्र है, प्रभु ! आहाहा ! तो भी परिणमन में पवित्रता आती है कि अपवित्रता आती है ? ऐसा कहते हैं, आहाहा ! यह तो अपवित्रता पर्याय में हो परंतु उससे रहित पवित्रता का परिणमन होना, यह तेरा गुण है। आहाहा ! अरे...! एक भाव भी (जो) यथार्थ समझे तो सर्व भाव समझ में आता है। एक भाव भी - कोई भी एक भाव यथार्थ समझ में आता है तो सारी वस्तु की यथार्थ स्थिति (समझ में) आ जाती है, आहाहा !

अरे...! जगत अनादि से विकल्प की जाल में अपनत्व मानकर चार गति में घूम रहा है। जहाँ द्रव्य और गुण पवित्र है, वहाँ अपना अपनत्व माना नहीं और विकृत अवस्था शरीर, वाणी, मन, स्त्री, पुत्र, कुटुंब तो पर रहे, उसकी बात तो यहाँ है ही नहीं। उसका द्रव्य उसके कारण से परिणमन कर रहा है, तेरे कारण से नहीं। उसको पर्याय उसको होती है, तेरे से नहीं, आहाहा ! उसके कारण से रहा है, उसके कारण से आया है (और) उसके कारण से वह चला जायेगा। तेरे कारण से आया है और तेरे कारण से चला जायेगा, ऐसा नहीं है, आहाहा ! यहाँ तो तेरे कारण से पर्यायबुद्धि में विकृत अवस्था (होती है)। आहाहा !

``(**कर्ता - कर्म आदि**)...'' यानी छ (कारको के) बोल लेना। कारको यानी यहाँ पर्याय की बात है। छओं कारक पर्याय में होते हैं। द्रव्य, गुण में षट्कारक तो ध्रुवरूप है। द्रव्य और गुण में जो षट्कारक है, वह तो ध्रुवरूप है। आहाहा ! पर्याय में षट्कारक के अनुसार, आहाहा ! गज़ब बात करते हैं न !

अरे...! अमृतचंद्राचार्य प्रभु ! तूने तो केवलज्ञान का काम किया है ! आहाहा ! एक हज़ार वर्ष पहले मुनि हुए। यह उसकी बात है। पंचमकाल के मुनि (हैं), आहाहा ! वे परमेश्वर पद में थे। `णमो लोए सव्व आयरियाणं' परमेष्ठीपद में है न ? ऐसा टीका का विकल्प आया। टीका (अर्थात्) इन शब्दों की रचना तो जड़ पर्याय से हुई, जड़

से हुई। परंतु (यहाँ) कहते हैं कि, (टीका का) विकल्प जो आया, इससे रहित मेरा परिणमन है, वह मैं हूँ, आहाहा ! राग सहित हूँ, यह मैं नहीं। आहाहा ! कहीं मिले ऐसा नहीं है।

अभी तो कोई कहते हैं कि, चर्चा करो ! प्रभु ! क्या (चर्चा) करनी ? कि कर्म से विकार होता है, कर्म से विकार होता है, अरे प्रभु ! तेरी पर्याय में परलक्ष से षट्कारक के अनुसार तेरे में (विकार) होता है। वह भी तेरा कोई गुण ऐसा नहीं कि, विकार सहित परिणमन करना, आहाहा ! पर्याय की विकृत अवस्था स्वतंत्ररूप से हुई, फिर भी तेरे में ऐसी ताकत है, गुण की ताकत है, भाव नाम के गुण की ताकत है, अरे...! अनंत गुण में भाव नाम का गुण है तो अनंत गुण की ताकत है कि, विकाररूप नहीं परिणमना, यह तेरी ताकत है। आहाहा !

श्रोता : आधी पंक्ति में इतना भरा है, यह कौन बतायेगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : है न अंदर ? देखो ! आहाहा ! हमको अभी बाहर की बात तो याद नहीं रहती (है)। अंतर की - ज्ञायक की (बात) विशेष याद रहती है। बाहर में कभी भूल भी हो जाये, समझ में आया ? पार नहीं है, इतनी गंभीरता एक शक्ति में है ! भावशक्ति का जो रागरहित क्रमवर्ती परिणमन होता है, यह क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती गुण और द्रव्य, यह तीनों मिलाकर आत्मा है। राग का परिणमन होना, उसके सहित आत्मा नहीं। आहाहा ! क्या कहा ?

आत्मा आनंदस्वरूप प्रभु ! यह तो पवित्रता का पिंड प्रभु है। यह तो वीतरागस्वभाव से भरा हुआ भगवान आत्मा (है)। (यहाँ) कहते हैं कि, वीतरागस्वभाव में एक वीतरागी भाव नाम का गुण ऐसा है, आहाहा ! (कि) वीतराग भावरूप परिणमना, रागरूप नहीं परिणमना, यह तेरा गुण है, प्रभु ! आहाहा ! समझ में आया ? अरे प्रभु ! तू किसकी तकरार करता है ? भाई ! अरे प्रभु ! तेरे हित की बात है न ? विकार सहित परिणमना, यह तो मिथ्यादृष्टि को है, ऐसा कहते हैं।

पर्याय में व्यवहार रत्नत्रय का राग स्वतंत्र षट्कारक से होता है, आहाहा ! तो भी उसका गुण ऐसा है और प्रत्येक गुण में भाव नाम की (शक्ति का) रूप नाम स्वरूप भी ऐसा है कि, विकृत अवस्था से (परिणमन) नहीं होना - उससे रहित होना। सहित नहीं होना बल्कि रहित होना (ऐसा उसका स्वरूप है)। आहाहा ! है ?

``**कारकों के अनुसार...**'' भाषा कारकों अनुसार (ऐसे ली है)। कर्म के अनुसार, ऐसे नहीं लिया। आहाहा ! पर्याय में राग की विकृत अवस्था, पर में सुखबुद्धि - ऐसी मिथ्यात्व की बुद्धि, इसकी तो बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो ज्ञानी की पर्याय में आसक्ति

का परिणाम जो आता है, (उसकी बात चलती है)। समझ में आया ? मिथ्यात्व की पर्याय में विकृत अवस्था हो तो - तो उसका अभावरूप परिणमन उसे होता ही नहीं। क्योंकि वहाँ द्रव्यदृष्टि नहीं है। समझ में आया ? आहाहा !

मुनियों ने तो गज़ब काम किया है ! अर्थ करते - करते उसमें से निकलना (मुश्किल है)। इतनी गंभीरता ! इतनी गंभीरता ! आहाहा ! अमृत के तीर मारे हैं, प्रभु ! तेरे (अनंत) गुणों में एक गुण ऐसा है कि, अमृतरूप से परिणमना, यह तेरा गुण है। रागरूप - जहररूप परिणमना, यह कोई तेरा गुण नहीं है। आहाहा ! मैं पर का (कुछ) कर दूँ। पर से मेरे में कुछ होता है (ऐसी मान्यता) यह तो बड़ी भूल (है)। यहाँ तो पर्याय में अपने से होता है, (और) उसरूप नहीं परिणमना, यह तेरा गुण है, आहाहा ! समझ में आया ? इसमें पुनरूक्ति (दोष) नहीं लगता। आहाहा !

तेरे में एक चारित्र नाम का गुण है, वीतरागभाव स्वभाव (है)। और उसके साथ यह भाव नाम का गुण है। ४७ शक्ति में सुख शक्ति आयी थी न ? सुख शक्ति में समकित और चारित्र साथ में मिलाया है। हमने अलग किया है। कल ५४ शक्ति आयी थी न ? ५४ (शक्ति) बताई थी। उसमें समकित - चारित्र (लिया है)। इसमें नाम नहीं आया है। परंतु (उसमें) भिन्न कर दी थी। यहाँ कहते हैं, समकिती जीव को द्रव्य और गुण की प्रतीत हुई है। द्रव्य और गुण के भेद से भी (प्रतीत) नहीं (हुई), आहाहा ! द्रव्य की प्रतीति ज्ञायकभाव, यह चैतन्यस्वभाव पवित्रता का पिंड प्रभु ! ऐसा ज्ञान करके प्रतीति हुई है, और धर्मी को पर्याय में विकृत अवस्था होने पर भी (उस रूप भवन नहीं होना, ऐसा गुण है)। यहाँ पर के संबंध की (तो) बात छोड़ दी है। अपनी पर्याय में कारक अनुसार - कर्ता - कर्म के अनुसार विकृत (अवस्था) होने पर भी, उस रूप भवन - नहीं होना, यह तेरा गुण है, आहाहा ! उसका अर्थ (जो) राग होता है, उसका जानन...जाननरूप रहना, यह तेरा गुण है। आहाहा ! ऐसा मार्ग (है) ! समझ में आया ?

``**कारकों के अनुसार जो क्रिया...**'' (अर्थात्) वर्तमान पर्याय में विकृत क्रिया। क्रिया कहते हैं कि नहीं ? ये हमारी क्रियाकांड को उथापते हैं। परंतु यह क्रिया कारकों के अनुसार पर्याय में होती है, यह विकृत (अवस्था) है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! तू परमात्मस्वरूप प्रभु ! है न ? बाह्य परमात्मा की हाजरी नहीं, तेरा प्रभु तो तेरे पास है न ? अरे ! तेरा प्रभु तू ही है। ऐसी प्रभुत्व शक्ति एक-एक शक्ति में पड़ी है और एक-एक शक्ति में भावशक्ति नाम का रूप पड़ा है, आहाहा ! प्रभुता की शक्ति के कारण पर्याय में प्रभुतारूप परिणमन होता है। और यहाँ भावशक्ति के कारण विकार से रहित भवनरूप परिणमन होता है। इतनी बात (है)। समझ में आया ?

अब इसमें व्यवहार से निश्चय होता है और व्यवहार निमित्त है तो निमित्त है तो निश्चय होता है, बापू ! (वह सब मान्यता) कहीं दूर रह गयी, भाई ! निमित्त हो, परंतु निमित्त के (स्वरूप) नहीं होना, यह तेरा गुण है, आहाहा ! निश्चय में व्यवहार रत्नत्रय का निमित्त कहो परंतु निश्चय में निमित्त से परिणमना यह है नहीं, उससे रहित परिणमना, यह तेरा गुण है, आहाहा ! निमित्त से नहीं परिणमना, निमित्तरूप भाव से नहीं परिणमना, ऐसा तेरा गुण है, आहाहा ! समझ में आया ? यह तो भगवान की वाणी है, प्रभु ! यह तो महान गंभीर है ! उसका पार तो संतों कर सके, केवली कर सके ! आहाहा ! तू चैतन्य भगवान परमात्मा स्वरूप है न, नाथ ! तेरे नाथ का अर्थ क्या ? जो शुद्ध परिणति हुई है उसकी तो रक्षा करता है (और) विशेष (शुद्धता) नहीं हुई है, उससे मिलाते हैं (- प्रगट करता है)। राग को मिलाते हैं और राग को करते हैं, यह बात तो तेरे में है ही नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? नाथ किसको कहते हैं ? ये पत्नी का पति - नाथ कहते हैं न ? तो पत्नी के पास जो चीज़ है उसकी रक्षा करे और नहीं मिली हो (उसे) मिला दे। घर में पाँच हज़ार की ऊँची साड़ी नहीं है और अपने पास २५-५० लाख रुपिया हो गया है तो एक पाँच हज़ार की साड़ी, तीन लड़के की (बहू के) लिये चाहिए। पहले (जो साड़ी आदि) है उसकी रक्षा करते हैं, (और) नहीं है उसे मिलाते हैं।

यहाँ परमात्मा कहते हैं कि, अपनी पर्याय में जितनी निर्मलता है, उसकी तो भावशक्ति के कारण रक्षा करते हैं। परंतु भावभाव शक्ति के कारण (भविष्य में विशेष निर्मलता प्रगट करते हैं), इस भाव शक्ति में भावभाव शक्ति का रूप है तो निर्मल परिणती - राग रहित परिणमन होना, यह तेरा गुण है और ऐसा भावभाव सदा निरंतर रहे, यह तेरा गुण है। और राग का अभावरूप परिणमन है, ऐसा अभावअभाव (भविष्य में) रहता है, यह तेरा गुण है। यह शक्ति तो पहले आ गयी। समझ में आया ? आहाहा ! एक बात भी यथार्थरूप से भाव में भासन हो तो सब भाव का भासन यथार्थ हो जाता है, समझ में आया ? उसको विशेष ज्ञान करने की जरूर नहीं पड़ती। आहाहा ! समझ में आया ?

टीकाकार कहते हैं कि, आहाहा ! पर्याय में विकल्प का षट्कारक (रूप) परिणमन हो परंतु उससे मेरा परिणमन रहित है, आहाहा ! टीका के विकल्प (रूप) परिणमन - सहित मैं हूँ, ऐसा नहीं (है)। आहाहा ! समझ में आया ? पर्याय में पंचमहाव्रत का विकल्प ऊठता है, वह पर्याय के षट्कारक अनुसार (ऊठता है)। फिर भी मेरा गुण ऐसा है कि, षट्कारकरूप भवन नहीं (होना)। नहीं भवन, है ? आहाहा ! ``**...उससे रहित भवनमात्रमयी...**'' भवनमात्रमयी (यानी) अभेद। समझ में आया ? यह तो एक-एक अक्षर में बड़ा (भाव भरा

है), आहाहा ! भवन होने मात्रमयी (अर्थात्) राग के व्यवहार के विकल्प की पर्याय हो परंतु उससे रहितपना होनेमात्र उसका गुण है, आहाहा ! व्यवहारपने होना यह उसका गुण नहीं। आहाहा !

यहाँ तो अभी व्यवहार का कोई ठिकाना नहीं होता और कहते हैं कि, व्यवहार करते हैं (तो) आगे निश्चय होगा, समकित होगा, धर्म होगा ! अरे प्रभु ! (ऐसा मानना यह) बड़ा शल्य है। तेरे गुण और द्रव्य की शक्ति की तुझे प्रतीति नहीं। तेरे द्रव्य और गुण में ताकत कितनी है, उसकी तुझे प्रतीति नहीं। (इसलिये) तुझे व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसी तेरी प्रतीति (वही) मिथ्या शल्य तुझे हो गया। बराबर है ? आहाहा !

भावशक्ति (- उसमें) द्रव्य को भी कहते हैं, गुण को भी भाव कहते हैं, निर्मल पर्याय को भी भाव कहते हैं और राग को भी भाव कहते हैं। परंतु रागरूप नहीं होना, ऐसा भाव का तेरा स्वभाव है, आहाहा ! ऐसी बातें हैं !

`प्रभु नो मारग छे शूरानो, नहि कायरना काम' आहाहा ! आता है न ? `हरिनो मारग छे शूरानो, नहीं कायरना काम जो ने; परथम पहेलुं मस्तक मूकी, पछी लेवुं हरिनुं नाम जो ने' हरि यानी यह भगवान आत्मा हों ! विकार को हरे, अज्ञान को हरे, ऐसा भगवान (आत्मा) हरि (है)। विकार करे वह हरि नहीं। (वह) आत्मा (नहीं)। आहाहा ! समझ में आया ? विकार को हरे वह भी एक निमित्त का कथन है। बाकी विकार का ज्ञान करे, वह भी व्यवहार का कथन है। अपनी विकार रहित ज्ञान की, श्रद्धा की, आनंद की परिणति में उसका ज्ञान आ जाता है। अपने स्वपर प्रकाशक ज्ञान के कारण उसका ज्ञान आ जाता है। उसका ज्ञान, ऐसा कहना यह व्यवहार है, आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसा धर्म किस जात का ? साधारण मनुष्य को, नया हो उसे तो पकड़ में भी नहीं आये। क्या कहते हैं यह ? (ऐसा लगे)। वहाँ क्या सुनकर आये ऐसा कोई पूछे तो कहे) महाराज ऐसा कहते थे कि, ऐसा है और वैसा है। कुछ समझ में नहीं आता था, अरे भगवान ! नहीं समझ में आये ऐसी चीज़ है ? यह समझवाले को समझाते हैं न ? कि रागवाले को समझाते हैं ? राग को समझाते हैं ? शरीर को समझाते हैं ? आहाहा ! यहाँ तो क्षयोपशमज्ञान की पर्याय होती है, उसको कहते हैं, प्रभु ! तेरे क्षयोपशमज्ञान में निर्मल परिणति होती है, यह तेरे गुण के कारण है। ज्ञान की शुद्धि की वृद्धि हो, वह ज्ञानावरणीय कर्म खिसकते हैं तो शुद्धि की वृद्धि होती है, ऐसा नहीं है, आहाहा ! शुद्धि की वृद्धि होती है, यह तेरे भाव नाम के गुण के कारण (होती) है। और भाव नाम के गुण के कारण वर्तमान राग से रहित होना, यह तेरे गुण का कार्य है। समझ में आया ? इतनी शक्तियाँ हुई। अब दूसरी (लेते हैं)।

``**कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति**'' अब देखो ! पहले कारक अनुसार रहित होने की (बात कही) थी। अब कारक के अनुसार (यानि) निर्मल कारक के अनुसार (कहते हैं)। समझ में आया ? पहले पर्याय में विकृत कारक के अनुसार से रहित होना (ऐसा लिया था)। और यहाँ निर्मल कारक से सहित होना (ऐसा लिया है)। निर्मल षट्कारक की पर्याय के निर्मल षट्कारक अंदर पड़े हैं, उसके षट्कारक के अनुसार निर्मल परिणति होना, यह उसका गुण है। इसके पहले तो रहितपना होना, इतना गुण कहा था। अब यहाँ सहितपना होना, यह गुण है, (ऐसा कहते हैं). समझ में आया ?

``**कारकों के अनुसार...**'' उसमें भी कारकों के अनुसार था। परंतु वह विकृत अवस्था की क्रिया थी। इस कारकों अनुसार जो अविकृत कारक अंदर है (उसकी बात है)। आहाहा ! कर्ता, कार्य, जिसका कार्य हो, कर्ता हो, करण हो - साधन हो, संप्रदान - रखकर अपने में रहो, अपने से हो और अपने आधार से हो, (ऐसे छः कारक हैं)। समझ में आया ? आहाहा ! ``**कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति**'' यह क्रियाशक्ति। ``**कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति।**'' देखो ! क्रियाशक्ति का यह अर्थ है। क्रिया उसे कहते हैं कि, क्रिया शक्ति अंदर (उसको कहते हैं कि) जो निर्मल षट्कारक है उनके अनुसार परिणति करे, यह क्रियाशक्ति। यहाँ राग की क्रिया की बात नहीं है, समझ में आया ? आहाहा !

``**कारकों के अनुसार...**'' (यहाँ) निर्मल कारक की (बात है)। उससे ``**...परिणमित होनेरूप भावमयी...**'' ऐसी अवस्थारूप ``**...क्रियाशक्ति**'' उसकी अवस्था भी ऐसी होती है। निर्मल षट्कारक जो पड़े हैं, उसके अनुसार निर्मल परिणति होती है, उसको यहाँ क्रियाशक्ति कहते हैं। आहाहा ! यहाँ राग की क्रिया की बात नहीं है। आहाहा ! अपने में एक भावमयी क्रियाशक्ति ऐसी है कि, जो निर्मल षट्कारक भगवान आत्मा में पड़े हैं, उसके अनुसार निर्मल परिणति हो, उसका नाम क्रियाशक्ति कहने में आता है। आहाहा ! राग की क्रिया और ज्ञान की क्रिया, दोनों होकर मोक्षमार्ग (है), ऐसा नहीं है, समझ में आया ?

(हम) संप्रदाय में (थे तब) एक प्रश्न उठा था। ९० की साल में चोटिला में एक साधु मिले थे। हम (कोई) साधु के साथ नहीं ठहरते थे। संप्रदाय में (थे तब भी) हम तो पहले से किसी को साधु नहीं मानते थे। (उस समय एक) प्रश्न चला कि, शास्त्र में `ज्ञानक्रियाभ्याम मोक्ष' कहा है न ? तो वह कौन सा ज्ञान ? ज्ञान (माने) अपना वेदन और क्रिया (माने) राग रहित क्रिया। वह `ज्ञानक्रियाभ्याम मोक्ष' है, अपना ज्ञान और राग की क्रिया दोनों से मोक्ष है, ऐसी बात है ही नहीं। तो (उन्होंने) कहा, बात तो सच्ची

लगती है। बात तो सच्ची है। अभी तो (सब) दूसरी (बात) चलती है। ५५ साल की तो दीक्षा थी। (हमने कहा), बापू ! मार्ग तो यह है।

भावमयी नाम शुद्ध निर्मल परिणतिमयी शक्ति, वह मोक्ष का कारण है। समझ में आया ? उस परिणति की यहाँ क्रियाशक्ति कहते हैं। विशेष आयेगा......

जो अपने में है उसे अपना न मानना तथा जो अपने में नहीं है उसे अपना मानना - यही दुःख का कारण है। (परमागमसार - ६२७)

जाननक्रिया तो निजस्वरूप है, कारण कि उसीसे आत्मा जाना जाता है; अतः आत्मा उसीके आधार से अवस्थित है।
(परमागमसार - ६१२)

भगवान जिसके हृदय में बिराजते हैं, उसका चैतन्यशरीर राग - द्वेष रूपी जंग से रहित हो जाता है।
(परमागमसार - ३२५)

प्रवचन नं. ३५
शक्ति-३९, ४०, ४१ दि. १४-०९-१९७७

कारकानुगतक्रियानिष्क्रान्तभवनमात्रमयी भावशक्तिः।।३९।।

कारकानुगतभवत्तारूपभावमयी क्रियाशक्तिः।।४०।।

प्राप्यमाणसिद्धरूपभावमयी कर्मशक्तिः।।४१।।

समयसार शक्ति का अधिकार चलता है। शक्ति का एकरूप जो द्रव्य है, इस द्रव्य के परिणमन से गुण का परिणमन साथ में होता है। यह पहली बार चिद्विलास में कह गये हैं। समझ में आया ? उसमें रहस्य है। गुण पर दृष्टि देने से गुण का परिणमन नहीं होगा। समझ में आया ? परंतु गुण का जो आश्रय द्रव्य है, आहाहा ! उसके आश्रय से द्रव्य का परिणमन होता है। उसमें गुण का परिणमन आ जाता है। यह न्याय समझे ? चिद्विलास में ऐसा है। एकबार कहा था न ? (गुणों का) परिणमन सीधा नहीं होता, उसमें ऐसा (लिया) है। उसका कारण है कि, वस्तु जो पूरी है, यह परिणमती है तब गुण का परिणमन साथ में होता है, परंतु गुण का स्वतंत्र परिणमन है और द्रव्य नहीं परिणमे और (मात्र) गुण परिणमे, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? न्याय समझे ?

उसका आशय भी ऐसा है कि, गुण के भेद की दृष्टि नहीं करनी है। क्योंकि गुण का परिणमन गुण के लक्ष से नहीं होता। भले एक ठिकाने प्रवचनसार में आया है - `असाधारण ज्ञान के कारण से' (ऐसा आया है)। परंतु ज्ञान शब्द (माने) आत्मा। समझ में आया ? आहाहा ! यह तो शांति की बात है, भगवान ! अंदर की बातें हैं। शक्ति के वर्णन में शक्ति - गुण है, तो गुण का सीधा परिणमन नहीं आता। द्रव्य परिणमता

है तो अनंत गुण का परिणमन साथ में है। ऐसी सूक्ष्म बातें हैं। समझ में आया ?

अपने तो यहाँ शक्ति के वर्णन में ३९-४० (शक्ति) थोड़ी फिर से लेनी है। आहाहा ! क्यों (फिर से लेना है) ? (क्योंकि) कारण है। ``(**कर्ता, कर्म आदि**) **कारकों के अनुसार जो क्रिया...**'' यहाँ मलिन पर्याय की बात है। पर्याय में मलिनता होती है, उसको यहाँ क्रिया कहते हैं। समझ में आया ? ``**कारकों के अनुसार क्रिया...**'' ऐसा कहकर यह सिद्ध किया कि, पर्याय में षट्कारक के अनुसार जो मलिन क्रिया होती है, (उससे रहित भवनमात्र भावशक्ति है)।

(अपनी चिद्विलास की चलती हुई बात में), चिद्विलास में ३१ पन्ने पर परिणमनशक्ति में आया है। आधार दे न ? कोर्ट में कायदे का आधार देते हैं। यह शास्त्र का आधार (है)। यह परिणमन शक्ति द्रव्यते उठे हैं। इतना गृहस्थ समकिती काम करते हैं। है ? यह परिणमन शक्ति द्रव्य में है। मथाळा यह है। परिणमन शक्ति द्रव्य में है। परिणमन शक्ति स्वतंत्र परिणमन करती है, ऐसा नहीं है। आहाहा ! ऐसी तो अनंत शक्तियाँ हैं तो द्रव्य परिणमता है तो (साथ में) गुण परिणमते हैं, आहाहा ! उसका अर्थ भी यह है कि, द्रव्य पर दृष्टि देने से सारा द्रव्य शुद्धरूप से परिणमता है। आहाहा ! ऐसी वस्तु है। आहाहा ! यहाँ का सबूत - तत्त्वार्थसूत्र का सूत्र है, `द्रव्यश्रया निर्गुणा गुणा' ऐसा कहा है। द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा (यानी) गुण के आश्रय से गुण नहीं परंतु द्रव्य के आश्रय से गुण है। समझ में आया ? थोड़ी ऐसी बातें हैं। आहाहा ! गज़ब बात है ! कितना सिद्ध किया है ! कि ये शक्तियों का वर्णन करते हैं, परंतु यह शक्ति - गुण है वह, गुण स्वयं उठते हैं - परिणमन करते हैं, ऐसा नहीं। आहाहा ! द्रव्य के परिणमन में गुण की परिणति उठती है। समझ में आया ? ऐसा कहकर गुण और और गुणी के भेद की दृष्टि को छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा !

अनंत शक्ति का भण्डार भगवान परमात्मा ! अनंत आनंद, अनंत आनंद का सागर उछल रहा है। आहाहा ! अनंत ज्ञान, अनंत स्वच्छता, अनंत प्रभुता, अनंती ईश्वरता, एक-एक शक्ति में अनंत ईश्वरता है। ऐसी अनंत ईश्वरता स्वयं परिणमन नहीं करती हैं। अनंत ईश्वर का धरनेवाला द्रव्य, अनंत ईश्वरता का आश्रय द्रव्य - इस द्रव्य के परिणमन से सब गुण का परिणमन होता है - दशा होती है। आहाहा ! ऐसा कहकर यह भी सिद्ध किया कि, गुण पर दृष्टि नहीं देना। गुण का ज्ञान करना (परंतु) गुण के भेद पर दृष्टि नहीं देना)। जहाँ सारा गुण का गट्ठा (पिंड) पड़ा है, आहाहा ! अनंत शक्ति का गट्ठा द्रव्य पड़ा है, उस पर दृष्टि दे ! (तो) तुझे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और केवलज्ञान आदि होगा, आहाहा ! समझ में आया ?

पहले में आया है। द्रव्य में परिणमन शक्ति है, यह बात दूसरी और बाद में परिणमन शक्ति का वर्णन (है), दूसरी (बात है)। शक्ति तो यह (है)। दो बार वर्णन (किया है)। यहाँ परिणमन शक्ति द्रव्य में है, ऐसा करके विस्तार किया और बाद में परिणमन शक्ति का वर्णन आता है न ? वस्तु विषे परिणमन शक्ति का वर्णन, यह दूसरी बार है। पहले ऐसे लिया कि, परिणमन शक्ति द्रव्य में है, भाई ! आहाहा ! द्रव्य में है इसलिये द्रव्य के परिणमन से परिणमनशक्ति का परिणमन होता है। बाद में वस्तु विषे परिणाम शक्ति का वर्णन (लेते हैं)। बाद में तो वस्तु की यह शक्ति है, उसका वर्णन है।

अब, यहाँ तो आज दो बातें कहनी हैं। जो ३९ वीं शक्ति है, इसमें क्रिया शब्द इस्तेमाल किया है। `पर्याय में' (ऐसा कहा है)। द्रव्य, गुण में तो षट्कारक है परंतु पर्याय में (भी षट्कारक है)। पंचास्तिकाय में जो ६२ गाथा कही, भाई ! वहाँ इसरी में चर्चा चली थी कि, पर्याय में पर्याय के षट्कारक परिणमन से विकार होता है, (उसमें) पर की अपेक्षा नहीं, द्रव्य, गुण की (अपेक्षा) नहीं। ऐसा सूक्ष्म (है), प्रभु ! क्या करें ? (वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है)।

एक समय की पर्याय में पर्याय राग का कर्ता, पर्याय कार्य, पर्याय करण - साधन, पर्याय अपादान, पर्याय संप्रदान (और) पर्याय अधिकरण (है)। एक ही पर्याय में - विकृत अवस्था में षट्कारक है। यहाँ ये सिद्ध करना है कि, पर्याय में षट्कारक की विकृत अवस्था है परंतु वस्तु का गुण ऐसा है कि, उससे रहित परिणमन हो। यह उसका स्वभाव है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! क्या कहा समझ में आया ?

कारकों के अनुसार क्रिया (अर्थात्) पर्याय। पर्याय में षट्कारकरूप से कर्ता, कर्म आदि (षट्कारक है, उसकी बात है)। पर्याय में कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान (रूप) षट्कारक क्रिया उससे रहित, आहाहा ! यह परिणमन क्रिया मलिन पर्याय है, परंतु उससे रहित (अर्थात्) उसको तो ज्ञेय बना दिया है। आहाहा ! जैसे परद्रव्य ज्ञेय है, वैसे षट्कारक पर्याय में विकृत अवस्था है, उससे रहित भवनमात्र भावशक्ति है, आहाहा ! बहुत सूक्ष्म (है), बापू !

`प्रभु नो मारग छे शूरानो' आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ तो क्रिया और भाव ऐसे शब्द क्यों कहे ? पहले पर्याय में षट्कारक के परिणमन को क्रिया कहा, मलिन पर्याय में षट्कारकरूप परिणमन को क्रिया कहा। भावशक्ति का कार्य क्या है ? उसमें भाव नाम का गुण है। एक भाव नाम का गुण ऐसा था कि, (जिसके कारण) विद्यमान निर्मल पर्याय हो, वह भावशक्ति. यह दूसरी भावशक्ति (है)। इस भावशक्ति का गुण ऐसा है कि, पर्याय में षट्कारक विकृत अवस्था है, उससे रहित होना। (यह उसका कार्य

है)। समझ में आया ? आहाहा ! यह तो सूक्ष्म बातें हैं, भाई ! (लोगों का) बहुत विरोध आया है न ! उसका विशेष स्पष्टीकरण हो रहा है।

यहाँ तो पर्याय में षट्कारकरूप राग का - व्यवहार रत्नत्रय का परिणमन हो ! समझ में आया ? राग पर्याय में है न ? तो (राग) षट्कारकरूप स्वतंत्र परिणमन करता है। (उसके परिणमन में) कर्म की अपेक्षा नहीं और द्रव्य - गुण का कारण नहीं। द्रव्य - गुण तो पवित्र है। अपवित्रता हो ऐसी कोई शक्ति नहीं। वैसे ही अपवित्रता में पर (पदार्थ) कारण है, इसलिये अपवित्रता होती है, ऐसा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? इसको यहाँ कहा कि, छ कारक के अनुसार पर्याय की क्रिया। उससे रहित मलिन पर्याय... (मलिन पर्याय को यहाँ) क्रिया कहा। उससे रहित भवन मात्र... आहाहा ! व्यवहार रत्नत्रय (रूप) राग का परिणमन पर्याय में षट्कारकरूप से हो, परंतु उससे रहित - भावशक्ति के कारण उससे रहित उसका परिणमन है। आहाहा ! समझ में आया ?

श्रोता : एक समय में उससे रहित परिणमन करे, वही स्वभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वही उसका गुण है। वह गुण है। आहाहा ! कोई गुण ऐसा नहीं है कि, विकृतरूप से परिणमन करे। ऐसा कोई गुण नहीं है। (फिर भी) विकृति होती है। विकार (होता) है, (कोई विकार) नहीं है, (ऐसा) नहीं (है), आहाहा ! तो कहते हैं कि, विकृत अवस्था षट्कारकरूप से स्वतंत्र पर्याय में होने पर भी भाव नाम की शक्ति नाम गुण के कारण उस मलिन पर्याय से रहित परिणमन है, यह उसका (कार्य) है। आहाहा ! यह शक्ति है।

श्रोता : विकार करना ऐसी शक्ति नहीं है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी शक्ति नहीं है। फिर भी पर्याय में (विकार) होता है। आहाहा ! समझ में आया ?

अहो बापू ! वीतराग मार्ग बहुत गंभीर (है), भाई ! एक-एक शक्ति में भी उसका वर्णन इतना (किया है) ! पर्याय में षट्कारक विकृत अवस्था सिद्ध करनी है परंतु पर्यायदृष्टिवाले को उसका सहितपना है। लेकिन द्रव्यदृष्टिवाले को द्रव्य में भाव नाम का गुण है, उस कारण से व्यवहार रत्नत्रय की षट्कारक की विकृत अवस्था है, उससे रहित भावगुण के स्वभाव के कारण परिणमन होता है, आहाहा ! समझ में आया ?

अब, दूसरी बात। ३९ (शक्ति) तो हो गयी थी। ४० (शक्ति) बाद में थोड़ी चली थी। (अब) ४० (शक्ति लेते हैं)। ``**कारकों के अनुसार...**'' अब यह कारक निर्मल लेना। पहले जो कारके थे वह पर्याय के (कारक) थे, अब यह द्रव्य - गुण के कारक है, भाई ! क्या कहते हैं ? समझो ! पहले (३९ वीं शक्ति में) पर्याय में विकृत (अवस्था

का) षट्कारक का परिणमन था। अब यह गुण का जो पवित्र षट्कारक (है, उसकी बात है), आहाहा ! बाद में एक-एक को भिन्न करके कहेंगे। पहले एक साथ कर्ता, कर्म, करण, अपादान आदि जो शक्तियाँ - गुण हैं, उन छ शक्तियों को धरनेवाला भगवान ! उसके आश्रय से जो परिणमन होता है, (उसकी यहाँ बात है)। देखो !

``**कारकों के अनुसार...**'' उसमें भी कारकों के अनुसार क्रिया थी। वह पर्याय की बात थी। और यह कारकों अनुसार (है, यह) कारकों त्रिकाली शुद्ध है उसके अनुसार। पर्याय के कारक पर्याय में रह गये। समझ में आया ? तेरा पर के साथ क्या संबंध है ? पर है, वह तो उसके कारण से है। तेरी पर्याय में विकृत अवस्था, पर्याय के कारण से षट्कारक का विकृत परिणमन हो, परंतु उसके भाव नाम के गुण के कारण, गुण ऐसा है और अनंत गुण ऐसे हैं कि, कोई विकृतरूप से परिणमन करे, ऐसा कोई गुण ही नहीं। आहाहा ! गज़ब बात करते हैं ! भाव नाम का गुण है, उस कारण से मलिन क्रिया जो पर्याय में षट्कारक से हुई, उससे रहित परिणमन होना, यह भाव नाम के गुण का (कार्य) है। बनिये को फुरसद नहीं मिलती और धर्म ऐसा सूक्ष्म ! (इसके लिये) निवृत्ति (चाहिए), बापू ! मार्ग (कोई) दूसरा है, भाई ! सम्यग्दर्शन की शुद्धि - दर्शन विशुद्धि - दर्शन शुद्धि की बात अलौकिक है ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि, पहले कारक अनुसार कहा वह पर्याय के (कारक कहे थे)। एक समय के कारक अनुसार (कहा था)। अब जो कहा वह त्रिकाली पवित्र कारक के अनुसार (कहा है)। कारक आश्रय द्रव्य है परंतु कारक के अनुसार में द्रव्य का आश्रय हुआ है। समझ में आया ? आहाहा ! अब लोग यहाँ चिल्लाते हैं कि, व्यवहार मोक्ष का मार्ग (है)। शुभ भाव मोक्ष का (मार्ग है)। अरे प्रभु ! सुन तो सही प्रभु ! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा (आदि) शुभभाव यह मोक्ष का मार्ग (है) अथवा शुभभाव शुद्धता का कारण है, (लोग) ऐसा कहते हैं। यहाँ तो ना कहते हैं कि, अशुद्धता है, उसके अभावरूप (परिणमन) हो, उसका नाम भावशक्ति - गुण कहने में आता है। आहाहा ! समझ में आता है कुछ ? पैसे (कमाने में) जल्दी समझ में आता है, यह कठिन (पड़ता है), भारी बात ! अमृतचंद्राचार्य ने बहुत खजाना खोल दिया है ! ओहोहो ! इन दोनों कारकों पर से बहुत विचार आये थे कि, इन दोनों कारकों में (इसमें भी) कारकों के अनुसार (लिया है) और (दूसरे में भी) कारकों के अनुसार (कहा है), यह दो (चीज़) क्या (है) ? एक समय की पर्याय में पर्याय के कारको के अनुसार (कहना है)। तो उससे रहितपना (होना), भाव नाम का गुण है तो उससे रहितपना होना, विकार से रहितपने होना, यह भाव नाम का गुण का (कार्य) है। आहाहा ! समझ में आया ?

४० (वीं शक्ति में) यह कहा कि, ``**कारकों के अनुसार परिणमति होनेरूप...**'' यह निर्मल त्रिकाली द्रव्य, गुण में जो कारक है (उसकी बात है)। शक्ति समझ में आयी? आहाहा ! पहले में अकेले पर्याय के स्वतंत्र षट्कारक लिये थे। यहाँ त्रिकाली द्रव्य में जो षट्कारक पड़े हैं, उस कारक के अनुसार (की बात है)। आहाहा ! कारकों के अनुसार - उसमें भी था। परंतु उस ``**कारकों के अनुसार...**'' (कहा उसमें) पर्याय की क्रिया की (बात थी)। यहाँ ``**कारकों के अनुसार...**'' (कहा उसमें) द्रव्य के कारकों के अनुसार (की बात है)। समझ में आया ?

भगवान ! मार्ग ऐसा है, भाई ! सर्वज्ञ की आज्ञा यह है। जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ ! जिनेन्द्रदेव का यह फरमान है। प्रभु ! तेरी पर्याय में द्रव्य - गुण के आश्रय बिना और पर के आश्रय बिना (स्वतंत्ररूप से विकार होता है)। आहाहा ! उसके लिये भी तकरार। (ऐसा कहते हैं), कर्म के कारण से विकार होता है। उसका यहाँ निषेध करते हैं और शुभभाव से धर्म होता है उसका भी यहाँ तो निषेध करते हैं। समझ में आया ? कर्म के कारण से विकार (होता है), यह बात नहीं है। यह तो पर्याय में पर्याय का षट्कारक (रूप) परिणमन है, उस कारण से मलिन पर्याय उत्पन्न होती है। कर्म से नहीं और द्रव्य - गुण से नहीं। आहाहा ! ऐसा स्वरूप (है), भगवान ! यह भाव नाम के गुण का कार्य (है)। इसका गुण ही ऐसा है कि, मलिन परिणाम से रहित होना, ऐसा गुण है। मलिन परिणाम से सहित होना, ऐसा कोई गुण नहीं है, आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि, जो द्रव्य पर दृष्टि देते हैं, उनको मलिन परिणाम से रहित परिणमन होता है, आहाहा ! उसका नाम भाव शक्ति का कार्य (है)। भाव नाम का गुण है उसका यह कार्य (है)। आहाहा ! समझ में आया ? भगवान आत्मा में भाव नाम का गुण है, शक्ति सत्त्व है, उसका पर्याय में कार्य क्या ? कि पर्याय में मलिन षट्कारक के परिणाम हैं, उससे रहित परिणमन करना, यह भाव गुण का कार्य है, आहाहा !

बहुत सूक्ष्म है। बाप-दादा ने कभी सुना नहीं होगा ! सेठ कहते हैं न ? जैसा सुना था, वैसा माना था। सेठ को जब ऐसा कहते हैं कि, अभी तक कोई सच्चा निर्णय ही नहीं किया। (इसलिये ऐसा कहते हैं कि), हमने जैसा सुना था, वैसा माना था। आहाहा ! पंडित कहना किसको ? आहाहा ! `पंडया, पंडया, फोतरा खंडया' फोतरा समझे ? तुष। मोक्षमार्ग प्रकाशक में आता है, आहाहा ! तूने विकृत अवस्था के षट्कारक के परिणमन से धर्म माना है तो तूने फोतरा - तुष खंडया है। समझ में आया ?

ऐसा भी कहते हैं न ? `विद्वजन भूतार्थ त्यजी, व्यवहारमां वर्तन करे', परंतु निश्चय के आश्रित निर्वाण को प्राप्त करते हैं। आहाहा ! विद्वान का नाम धराकर, षट्कारक

का परिणमन विकृत अवस्था है, उस व्यवहार में वर्तन करते हैं। परंतु निश्चय जो द्रव्य, गुण, पर्याय है, उसका तो आश्रय करते नहीं - वर्तन करते नहीं। आहाहा ! चारों ओर देखो तो सत्य सिद्धांत खड़ा होता है। समझ में आया ?

यहाँ अपनी ४० वीं (शक्ति) चलती है। पहले ३९ (शक्ति में जो) कारक थे, वह पर्याय के कारक थे। और यह कारक अब द्रव्य के - गुण के कारक है, आहाहा ! समझ में आया ? गज़ब बात कही है ! एक-एक शक्ति में कितना (भरा है) ! आहाहा ! अरे ऐसे शास्त्र ! मुश्किल से बाहर आये (तो लोग कहने लगे) जिनवाणीमें से निकाल दो ! अरे प्रभु ! क्या करते हो ? बापू ! भाई ! इस समय में कोई मिलता नहीं है, केवलज्ञानी नहीं, अवधिज्ञानी, मनःपर्याय(ज्ञानी) नहीं और यह अन्याय करते हो, भाई ! 'करुणा उपजे जोई' बापू ! तेरा क्या होगा, भाई ? बापू ! तुझे दुःख होगा, प्रभु ! सहन नहीं कर पायेगा, ऐसे दुःख होंगे, भाई ! तू सत् का अनादर कर रहा है। इसलिये कोई पर (जीव) दुःखी हो, वह कोई प्रशंसा करने लायक (बात) है ? आहाहा !

यहाँ ४० शक्ति में कहते हैं। कारक अनुसार दोनों (शक्ति में) आया तो यह है क्या ? (ऐसा विचार चला था)। पहले (३९ शक्ति में) कारक अनुसार में (ऐसा कहना है कि), पर्याय में विकार अवस्था स्वतंत्र होती है, परंतु इसका भाव नाम का गुण है, इस गुण के कारण विकृत (अवस्था से) रहितपने परिणमन होना, यह गुण का कार्य है। धर्मी को विकार से रहित परिणमन होता है, यह आत्मा का कार्य है, ऐसा कहते हैं, आहाहा ! समझ में आया ?

इसका रस लो, बापू ! संप्रदाय में तो इस समय में पंडित के नाम पर बहुत गड़बड़ चली है। बापू ! क्या कहें, भाई ? आहाहा !

पहले 'कारक के अनुसार' था, वह पर्याय के (षट्कारक) थे। यह 'कारक के अनुसार' है, यह गुण के (षट्कारक) है। (यहाँ) भले कारक के अनुसार लिया, परंतु वास्तव में तो कारक जिसके आश्रय में पड़े हैं, ऐसे द्रव्य का आश्रय लेने से कारक के अनुसार पवित्र (परिणमन) होता है, समझ में आया ? जो षट्कारक शक्ति पवित्र है, उसका आश्रय द्रव्य है। इस द्रव्य की दृष्टि से षट्कारक निर्मल परिणमन - सम्यग्दर्शन, ज्ञान की पर्याय का परिणमन होता है। समझ में आया ? (कोई) गुण का सीधा परिणमन नहीं (होता)। परंतु द्रव्य के परिणमन के साथ में गुण का पवित्र परिणमन होता है, आहाहा ! ऐसी बातें (हैं) ! उसमें तो दया पालो, व्रत करना, अपवास करना, २-५ लाख का मंदिर बना देना, (उसमें बात सरल हो जाती थी)। (लेकिन) यह मंदिर बनाने के जो भाव हैं, यह शुभभाव हैं और धर्मी की दृष्टि शुभ (भाव के) परिणमन से रहित है। गज़ब बात

है ! समझ में आया ? शुभभाव का परिणमन पर्याय में षट्कारक से होता है। मंदिर, पूजा, भक्ति, बड़ी रथयात्रा आदि शुभभाव हो तो (पुण्य बंधे)। मात्र पाप के लिये (अर्थात्) बाहर में दिखावे के लिये, दुनिया मुझे मान दे, दुनिया मेरी गिनती करे, तो-तो वह अशुभभाव है। आहाहा ! परंतु शुभभाव हो तो (भी) यहाँ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि, शुभभाव की जो विकृत क्रिया है, उससे रहित तेरा गुण ऐसा है कि, उससे रहित परिणमन हो, यह तेरा गुण है। मलिनरूप से परिणमन करना, ऐसा तेरा कोई गुण है ही नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

इस ४० (शक्ति) में यह आया, `कारक अनुसार'। (३९ शक्ति में) कारक अनुसार था। (वह) पर्याय के कारक (थे)। यह कारक अनुसार (है) - यह द्रव्य का कारक (है)। समझ में आया ? आहाहा ! शक्ति का वर्णन करके अमृतचंद्राचार्य ने तो गज़ब काम किया है ! गज़ब काम किया ! आहाहा ! सारा निर्मल मार्ग कैसा होता है, उसकी सिद्धि कर दी है। (पर्याय में) मलिन परिणाम हो, फिर भी ज्ञानी की परिणति में मलिनता से रहित परिणति (होती है)। वह ज्ञानी की परिणति है। आहाहा ! धर्मी जीव की परिणति, सम्यक्दृष्टि जीव की परिणति नाम पर्याय में - विकृत अवस्था होती है, परंतु उसका (परिणाम) तो भावशक्ति के कारण - गुण के कारण (उससे रहित परिणमन है)। भाव शक्ति गुण है, तो प्रत्येक गुण में भाव (शक्ति का) रूप है, तो प्रत्येक गुण पवित्रता से परिणमे ऐसा उसका गुण है, आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

सूक्ष्म पड़े, प्रभु ! (लेकिन) क्या हो सकता है ? मार्ग ऐसा है। आहाहा ! कभी परिचय नहीं किया, सुनने में आया नहीं। बाहर में और बाहर में गोथे खाये, आहाहा ! चीज़ बाहर में नहीं है। शुभभाव में चीज़ आयी नहीं।

श्रोता : बाहर की चीज़ आकर्षक लगती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी आकर्षक नहीं है। अज्ञानी (आकर्षक) मानता है। आहाहा ! पर्याय में विकृति होना, यह बाह्य कारण से नहीं। ऐसा यहाँ पहले सिद्ध करना है। समझ में आया ? बाहर के कारण से (विकृति) नहीं (होती)। भगवान के कारण से यह शुभभाव हुआ। ऐसा नहीं। आहाहा ! शुभभाव की पर्याय में परिणति हुई, फिर भी द्रव्य की दृष्टिवंत गुणी को (ज्ञानी को) प्रत्येक गुण में ऐसी शक्ति है कि, विकार से रहित होना, यह तेरी शक्ति का कार्य है। आहाहा ! समझ में आता है कुछ ? (इसमें) पुनरूक्ति (दोष) नहीं है। बारंबार (बात) आये (लेकिन) अधिक स्पष्ट (होता है)।

षट्कारक के अनुसार आनंद की पर्याय प्रगट हो, शांति की पर्याय प्रगट हो, वीतरागता की पर्याय प्रगट हो, राग से रहित प्रभुता की पर्याय प्रगट हो, आहाहा ! यह

चौथे गुणस्थान की (बात है)। 'सर्व गुणांश ते समकित' कहा है न ? उसका अर्थ यह है कि, द्रव्य में निर्मल कारक जो पड़े हैं, इन गुणों का आश्रय तो द्रव्य है, तो द्रव्य पर दृष्टि करने से) द्रव्य के परिणमन में कारकों के अनुसार निर्मल परिणमन होता है।

``**कारकों के अनुसार जो क्रिया...**'' देखो ! समझ में आया कुछ ? (४० वीं शक्ति में) ``**कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप भावमयी...**'' (ऐसा कहा)। (३९ वीं शक्ति में) पर्याय की बात में क्रिया थी और यहाँ लिया, ``**कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप भावमयी क्रिया शक्ति**'' भावमयी क्रियाशक्ति... आहाहा ! समझ में आया ? ``**कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति**'' वहाँ क्रिया शब्द था। वह मलिन पर्याय की परिणति को क्रिया कहा था और उससे रहित होना, यह उसका गुण है। और यहाँ कहते हैं कि, ``**कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति**'' आहाहा ! पहले में भी भावशक्ति ली और यहाँ भावमयी क्रियाशक्ति ली। दोनों में फ़र्क है। उसमें तो क्रिया शक्ति ली थी। पर्याय में विकृत अवस्था से रहित भाव। अब यहाँ तो भावमयी क्रियाशक्ति (लेना है)। आहाहा !

अनंत गुण का भण्डार भगवान ! उसके षट्कारक का आश्रय द्रव्य है तो द्रव्य के आश्रय से उसकी शुद्ध परिणति होती है, यह भावमयी क्रियाशक्ति है। आहाहा ! शक्ति का नाम क्रिया है। और शक्ति का नाम क्रिया है तो परिणति में जो निर्मलता है, उसकी क्रिया शक्ति का यह कार्य है, आहाहा ! क्या कहा ? पहले जो कहा था वह, पर्याय की क्रिया - एक समय की पर्याय की मलिन क्रिया उससे रहित, ऐसा कहा था। और यहाँ तो कहा कि, यह क्रिया शक्ति त्रिकाली है। त्रिकाल गुणों में एक क्रिया नाम की शक्ति है, आहाहा ! क्या कहते हैं ? देखो ! भावमयी क्रियाशक्ति। ``**कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति**'' आहाहा ! द्रव्य के अनुसार होनेवाली क्रियाशक्ति का नाम निर्मल परिणति, यह क्रियाशक्ति का कार्य है। समझ में आया ?

(लोगों को ऐसा सामान्य लगता है) यह ४७ शक्ति है, उसको कहते हैं। बापू ! शक्ति का अर्थ प्रभु है - प्रभुता है। एक-एक शक्ति प्रभुता से भरी पड़ी है। आहाहा ! पहले क्रिया कहा वह तो मलिन पर्याय को क्रिया कहकर, उससे रहितपनामयी भावशक्ति। यहाँ कारकों के अनुसार भावमयी क्रियाशक्ति है। त्रिकाली में (ऐसा) गुण है। पहले पर्याय की क्रिया थी। यहाँ गुण की क्रिया है। समझ में आया ? आहाहा ! कितनी धीरज चाहिए, बापू !

भगवान आत्मा में एक क्रियाशक्ति है। ऐसी क्रिया शक्ति का रूप प्रत्येक गुण में है। आहाहा ! गुण के अनुसार अथवा गुण का आश्रय द्रव्य है, (ऐसे) द्रव्य के अनुसार

क्रियाशक्ति का कार्य क्या है ? कि, निर्मल परिणमन होना, भावमयी निर्मल (परिणमन) होना। यह क्रियाशक्ति का कार्य है। आहाहा ! (पहले में) मलिन क्रिया थी। यह क्रिया शक्ति का परिणमन निर्मल है। समझ में आया ? भाषा क्रियाशक्ति रखी, भावमयी क्रियाशक्ति (कहा)। मूल तो क्रियाशक्ति है। अंदर स्वभावमयी क्रियाशक्ति (है)। भावशक्ति तो पहली ३९ में आ गयी। यह तो भावमयी क्रियाशक्ति - गुणमयी क्रियाशक्ति (कहा)। समझ में आया ?

``**कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप...**'' आहाहा ! देखो ! यहाँ तो कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप (ऐसे लिया है)। इसलिये तो कहा कि, एक-एक गुण परिणमन नहीं करते। कारक के अनुसार में (षट्कारकों को) द्रव्य का आश्रय है। समझ में आया ? जिसकी खान में षट्कारक पड़े हैं, भगवान (आत्म) द्रव्य की खान में छ कारक पड़े हैं। आहाहा ! द्रव्य के आश्रय से परिणमन होनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति, आहाहा ! ऐसा अंदर में भावमयी क्रियाशक्ति - गुण है। इस गुण के कारण षट्कारक का अनुसरण करके निर्मल पर्याय हो, यह गुण का कार्य है, आहाहा ! यह क्रिया शक्ति तो प्रत्येक गुण में है। समझ में आया ? २२ बोल को एक-एक (शक्ति में) उतारे तो पार नहीं आये, आहाहा !

भावमयी क्रियाशक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्यापती है। क्रियाशक्ति का परिणमन निर्मल है, आहाहा ! यह निर्मल परिणमन वही स्व - अपना है, मलिन परिणाम अपना नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? वह आखिर में स्वस्वामित्वसंबंध शक्ति में लेंगे। उसका यह अर्थ है कि, भगवान आत्मा ! अंतर शक्तियों (और) पवित्रता का पिंड है, उसका आश्रय करने से, द्रव्य का परिणमन जो होता है, यह तद्दन शुद्ध होता है। शुद्ध परिणमन, शुद्ध शक्ति और शुद्ध द्रव्य - यह अपना स्व और उसका आत्मा स्वामी, ऐसी स्वस्वामित्वसंबंधशक्ति उसमें है। आत्मा राग का स्वामी नहीं। आहाहा ! गज़ब बात है ! व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प उठता है, उस क्रिया से रहित तो कहा, परंतु उसका स्वामीपना से रहित है। आहाहा ! ४७ (शक्ति में) अंतिम शक्ति में लेंगे। समझे ?

``**कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप...**'' देखा ? ३९ शक्ति में कारकों के अनुसार क्रिया उससे रहित, ऐसा कहा था। और (यहाँ) कारकों अनुसार परिणमित, (ऐसा कहा)। निर्मल जो छ कारक के गुण पड़े हैं, उस गुण का आश्रय जो द्रव्य, उसके आश्रय से होनेवाला - परिणमन होनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति, यह भावमयी क्रियाशक्ति है - स्वभावमयी क्रियाशक्ति। आहाहा ! क्यों भाव के साथ लिया ? (३९ शक्ति में) पर्याय में क्रिया तो कही थी। वहाँ भावमयी क्रिया, यह नहीं (लेना है)। वह तो मलिन परिणामरूप

क्रिया थी। आहाहा ! समझ में आया ?

यह तो संतों की वाणी है। वीतरागी मुनियों हैं। आहाहा ! बापू ! मुनि किसे कहें ? अभी जिसको प्रचुर स्वसंवेदन की दृष्टि ही प्रगट नहीं हुई है, वहाँ यह बात (कहाँ से हो सकती है) ? मुनिपना तो प्रचुर स्वसंवेदन है। क्योंकि कारक अनुसार जो भाव - गुण है, उसके अनुसार सम्यग्दर्शन होता है और उसके अनुसार चारित्र होता है। कोई पंच महाव्रत या राग के आश्रय से चारित्र होता है, ऐसा नहीं है, आहाहा ! भारी कठिन (काम है), इसलिये लोग ऐसा कहते हैं कि, निश्चय...निश्चय... (है)। बापू ! निश्चय यानी सत्य। आहाहा ! सत्य का साहेबा भगवान आत्मा ! उसका सत् स्वरूप ऐसा है कि, सत्य के आश्रय जो परिणमन होता है, भावमयी क्रिया (होती है), यह उसका गुण है। निर्मलरूप से परिणमना ऐसा उसका गुण है। मलिनरूप से परिणमना, ऐसी कोई शक्ति - गुण नहीं है। आहाहा ! ऐसी बात (है) !

(बाह्य व्यवहार में) तो (लोग) बेचारे सामायिक, पोसा करे और प्रतिक्रमण (करे), और मान ले कि, हो गया धर्म ! अरे ! बापू ! वह क्या है ? भाई ! तुझे (मालूम नहीं है)। वह तो विकल्प - राग है। उसकी पर्याय में षट्कारक का परिणमन है, परंतु धर्मी जीव का परिणमन उससे रहित है, आहाहा ! समझ में आया ? उसे ऐसा मार्ग सुनने मिलता नहीं। यह तो परम सत्य ! सर्वज्ञ की श्री वाणी ! श्री वाणी - दिव्यध्वनि, उससे आया (हुआ) मार्ग यह है। आहाहा !

एक-एक शक्ति में बहुत भरा है। एक भावमयी क्रियाशक्ति है। समझ में आया ? और यह भावमयी (क्रियाशक्ति) अनंत गुण में निमित्त है। पहले जो भावमयी (कहा) था, वह भी अनंत गुण में निमित्त है और यह भावमयी पवित्र क्रिया है वह भी अनंत गुण में निमित्त है, वह भी पवित्र थी। भावमयी शक्ति (कही, उसमें विकृत) परिणमन से रहित होना, वह भी भावमयी निर्मल (पर्याय) थी। निर्मल शक्ति की परिणमन दशा अनंत गुणों में निमित्त है और पर्याय जो निर्मल हुई, उसमें इस शक्ति का परिणमन भी निमित्त है। आहाहा ! समझ में आया ?

``**कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप...**'' देखा ! आहाहा ! राग सहित होनेरूप परिणमन, यह बात धर्मी को नहीं। द्रव्यदृष्टिवंत को नहीं, ऐसा कहते हैं। द्रव्यदृष्टिवंत का अर्थ कि, जिसकी सम्यक्दृष्टि हुई, वस्तु अखण्ड अभेद त्रिकाल आनंदकंद प्रभु ! ऐसी दृष्टि में - सम्यग्दर्शन में सारा द्रव्य का आश्रय आया (उसे सम्यक्दृष्टि कहते हैं)। अंदर भावमयी क्रियाशक्ति - गुण है (तो) श्रद्धा गुण में भी उसका रूप है। श्रद्धागुण समकितरूप परिणमित होता है, यह भावमयीक्रियाशक्ति का ही कार्य है, आहाहा ! समझ

में आया ?

(लोग) कहते हैं न ? कि, चार कर्म के नाश से केवलज्ञान होता है। तत्त्वार्थसूत्र में (ऐसा) है। यह चर्चा बहुत चली है। खाणिया चर्चा में है कि, चार कर्म के नाश से केवलज्ञान पर्याय होती है। तत्त्वार्थसूत्र में है। यहाँ कहा कि, सुन तो सही नाथ ! तेरे में एक भावमयी क्रिया शक्ति है, उस कारण से केवलज्ञान की परिणति होती है। समझ में आया ? विकृत अवस्था है, उससे भी नहीं और पूर्व में जो केवलज्ञान के पहले मोक्ष का मार्ग था, उससे भी यह परिणमन नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? पूर्व में मोक्षमार्ग था तो उससे मोक्ष नाम केवलज्ञान की पर्याय हुई, ऐसा नहीं। त्रिकाली शुद्ध कारक है, उसके अनुसार केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई है, आहाहा ! पर से तो नहीं (हुई) परंतु अपनी पूर्व पर्याय से (भी) नहीं (हुई है)। उससे तो नहीं लेकिन अपने गुण की दूसरी पर्याय से भी यह पर्याय नहीं (हुई)। आहाहा ! समझ में आया ?

प्रत्येक गुण में ऐसा रूप है कि, द्रव्य का आश्रय करने से प्रत्येक गुण की पर्याय स्वतंत्र अपने से निर्मल परिणमन (रूप) होती है, दूसरी पर्याय से नहीं, आहाहा ! कर्म का अभाव हुआ तो (भी) नहीं। मोक्ष का मार्ग हुआ तो केवलज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं। आहाहा ! लोगों को ऐसा सुनने मिले तो कठिन पड़ता है। दूसरे विपरीत रास्ते (पर) चढ़ा दिया है। यह ४० (शक्ति) हुई। यहाँ पांच मिनट बाकी रही।

अब ४१ वीं शक्ति (लेते हैं)। ऐसा मार्ग, बापू ! आहाहा ! सत् का पोकार है। अंदर से पोकार होकर सत् खड़ा होता है। आहाहा ! उसे असत्य - विकार के शरण की कोई ज़रूरत नहीं है। व्यवहार रत्नत्रय के कारण की उसे ज़रूरत नहीं है। आहाहा !

अपने में भावमयी शक्ति अथवा तो भावमयी क्रियाशक्ति (है)। उसके कारण से केवलज्ञान की, सम्यग्दर्शन की, सम्यक्ज्ञान की, सम्यक्चारित्र की निर्मल परिणति (होती है)। आहाहा ! पंचमहाव्रत का परिणाम - द्रव्य चारित्र है तो उससे भावचारित्र होता है, ऐसा यहाँ नहीं है। वस्तु में ऐसा नहीं है। समझ में आया ? उसमें भी बड़ा फ़र्क है, प्रभु ! क्या करें ? आहाहा ! एक में फ़र्क (आये इसलिये) सबमें फ़र्क आयेगा। आहाहा !

अब ४१ (शक्ति)। ``**प्राप्त किया जाता जो सिद्धरूप भाव...**'' क्या कहते हैं ? कर्म लेना है न कर्म ? ``**प्राप्त किया जाता जो सिद्धरूप भाव...**'' सिद्ध यानी पवित्र पर्याय। सिद्ध पर्याय यहाँ नहीं लेना है। यहाँ सिद्ध यानी निर्मल पर्यायरूप जो भाव प्रगट होता है, (उसकी बात है)। समझ में आया ? ``**प्राप्त**'' ऐसा है कि नहीं ? ``**प्राप्त किया जाता...**'' है। सम्यग्दर्शन की पर्याय, सम्यक्ज्ञान की पर्याय, सम्यक्चारित्र की पर्याय, केवलज्ञान की पर्याय, ऐसे प्रत्येक पर्याय लेनी।

प्राप्त किया जाता है जो सिद्धरूपभाव, जिस समय उत्पन्न होनेवाली है वह पर्याय सिद्ध (अर्थात्) चोक्कस (निश्चित) है। यह सिद्धरूपभाव (माने) सिद्ध भगवान की बात नहीं। उस समय में जो पर्याय उत्पन्न होती है, उसको सिद्धरूप भाव कहते हैं। वही पर्याय चोक्कसरूप से उत्पन्न होनेवाली, उसको सिद्धभाव कहते हैं। आहाहा ! भाषा क्या है ? ``**प्राप्त किया जाता...**'' (ऐसा कहा) है। पुरुषार्थ से (प्राप्त किया जाता है), आहाहा !

अनंत गुण का - शक्ति का आश्रय द्रव्य और द्रव्य के आश्रय से - पुरुषार्थ से प्राप्त किया जाता है, आहाहा ! सम्यग्दर्शनरूपी पर्याय यह कार्य (है)। यह कर्म का कार्य है। कर्म शक्ति का यह कार्य है। कर्म नाम कार्य। कर्म शक्ति है न ? कर्म नाम की शक्ति है, कार्य शक्ति (है)। उसका कार्य वर्तमान निर्मल पर्याय की प्राप्ति, यह (कर्म शक्ति का) कार्य है। आहाहा ! समझ में आया ? यह कार्य व्यवहार रत्नत्रय का नहीं, यह कार्य पूर्व की पर्याय का नहीं, आहाहा ! कितना सिद्ध किया है !

प्राप्त किया जाता है। प्राप्त यानी वर्तमान पर्याय में कार्यरूप प्राप्त किया जाता है, ऐसा चोक्कसरूप भाव, ``**...उसमयी कर्मशक्ति।**'' अंदर एक कर्म नाम की शक्ति है, जिस में कार्य प्राप्त होता है। निर्मल पर्याय की प्राप्ति होती है। इस कार्य का कारण कर्म शक्ति है। विशेष कहेंगे...

❖ ❖ ❖

ज्ञानद्वार में, स्वरूप - शक्ति को जानना। ज्ञान लक्षण व लक्ष्यरूप आत्मा अपने ज्ञान में भासित होते हैं, तब सहज आनंदधारा बहती है - वही अनुभव है। (परमागमसार - ७१०)

प्रवचन नं. ३६
शक्ति-४१ दि. १५-०९-१९७७
प्राप्यमाणसिद्धरूपभावमयी कर्मशक्तिः।।४१।।

समयसार, शक्ति का अधिकार है। ४० (शक्ति) तो हो गयी न ? (अब) ४१ (वीं शक्ति लेते हैं)। शक्ति का अर्थ क्या है ? कि, आत्मा जो गुणी है - वस्तु, उसमें यह गुण है। गुण का परिणमन होना, वह पर्याय है। यहाँ निर्मल पर्याय की बात है, मलिन पर्याय की बात नहीं है। जो गुण है, यह पवित्र है और द्रव्य पवित्र है। शुद्ध कहो कि पवित्र कहो (एक ही बात है)। उसकी पर्याय भी शुद्ध है। क्रमवर्ती शुद्ध पर्याय और गुण का अक्रमरूप होना (इन) दोनों का समुदाय यह आत्मा है। राग की पर्याय सहित आत्मा को (यहाँ) आत्मा गिनने में आया ही नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

(आत्मा) शरीर सहित तो नहीं (है)। यह तो जड़ - मिट्टी - धूल है। परंतु दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव (रूप) राग सहित आत्मा को यहाँ (आत्मा) गिनने में आया ही नहीं। मात्र राग होता है, पर्याय में षट्कारक से एक समय की दशा में विकृत अवस्था है। परंतु यहाँ तो विकृत अवस्था से रहित (परिणमन होना, इसकी बात है)। वह अपने आ गयी न ? भाव शक्ति (चल गयी)। ``(**कर्ता, कर्म आदि**) **कारकों के अनुसार जो क्रिया उससे रहित भवनमात्रमयी** (**- होनेमात्रमयी**) **भावशक्ति।**'' है। आहाहा ! एक भावशक्ति गुण उसको कहते हैं कि, जिसके कारण वर्तमान में निर्मल पर्याय की विद्यमानता हो, यह भावशक्ति गुण का स्वरूप है। और एक भावशक्ति यह है कि, एक समय की मलिन पर्याय द्रव्य - गुण में नहीं, द्रव्य - गुण के कारण नहीं, पर के कारण नहीं, एक समय की पर्याय में विकृत अवस्था चाहे तो अशुभभाव हो कि शुभ (भाव), इसका वर्तमान में षट्कारक से परिणमन होकर, उससे रहितपने (परिणमन होना) यह आत्मा की पर्याय है।

समझ में आया ?

यहाँ तो अपनी ४१ वीं (शक्ति) चलती है। ``**प्राप्त किया जाता...**'' (अर्थात्) वर्तमान पर्याय में प्राप्त कराता हुआ, प्राप्त करता हुआ। वर्तमान पर्याय में निर्मल पर्याय प्राप्त करता हुआ। सम्यग्दर्शन की, सम्यक्ज्ञान की सम्यक्चारित्र की, आनंद की, वीतरागता की, पर्याय को प्राप्त कराता हुआ, ``**जो सिद्धरुप...**'' (अर्थात्) चोक्कसरूप। ``**...भाव, उसमयी कर्मशक्ति** ''

यहाँ कर्म तो चार प्रकार के कहने में आते हैं। एक जड़ की कर्म अवस्था को भी कर्म कहने में आता है। वह तो भिन्न (है)। एक भावकर्म को कर्म कहने में आता है। उससे भी भिन्न (है)। एक निर्मल परिणति को भी भावकर्म कहने में आता है। और यहाँ जो कर्म शक्ति है, वह तो गुणरूप कर्म शक्ति है। आहाहा ! भारी सूक्ष्म (है), भाई !

जड़ कर्म की अवस्था - कर्म, वह चीज़ तो भिन्न रही। और दया, दान, व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प जो राग वही भी भिन्न रहा और निर्मल पर्याय में कर्म नाम कार्य होता है, वह निर्मल कर्म शक्ति का कार्य है। कर्म शक्ति का कर्म (कार्य) है। शांति से विचार करना। समझ में आया ?

आत्मा में कर्म नाम कार्य नाम का एक गुण है। कर्म नाम का यानी कार्य नाम का एक गुण है। जिस गुण के कारण वर्तमान पर्याय में प्राप्त जो पर्याय होती है, वह कर्म का कार्य है। वह कर्म गुण का कार्य है। आहाहा ! गज़ब (बात) है ! समझ में आया ?

श्रोता : यह समझकर क्या करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझकर द्रव्य पर दृष्टि देकर, गुण के कारण से पर्याय में, वर्तमान में सम्यग्दर्शन आदि पर्याय का कार्य होता है, ऐसा निर्णय करना। कोई व्यवहार रत्नत्रय के राग से सम्यग्दर्शन की पर्याय का कार्य होता है, ऐसा नहीं। और देव, गुरु, शास्त्र के निमित्त से कार्य होता है, यहाँ यह (भी) नहीं है। यहाँ तो निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वीतरागी मोक्षमार्ग की पर्याय को प्राप्त कराता, उस कार्य का कारण कर्म शक्ति है। अरे...! ऐसी बात कभी सुनी न हो। ध्रुव में ऐसी शक्ति है। ध्रुव में कर्म नाम की एक शक्ति है कि, जिससे वर्तमान कार्य सुधरता है। धीरे से सुनो ! यह तो पैसे की (जात से) दूसरी जात है। आहाहा ! सुन तो सही, प्रभु !

तेरे में आत्मद्रव्य जो है - गुणी, उसमें एक कर्म नाम का गुण है। कर्म नाम कार्य होने का एक गुण है। इस कर्म गुण के कारण वीतरागी पर्याय, ज्ञान की पर्याय, दर्शन की पर्याय, चारित्र की पर्याय, स्वच्छता की पर्याय, यह कर्म (शक्ति के) कारण से (ऐसा) शुद्ध (कार्य) आता है। जड़ कर्म नहीं, भावकर्म नहीं। निर्मल परिणति में जो

कार्य होता है, यह कर्म नाम के गुण के कारण से कार्य सुधरता है, आहाहा ! कभी बाप-दादा ने सुना भी नहीं है। आहाहा ! (सेठ लोग कहते हैं) हमने जैसा सुना था वैसा माना था। बात तो सच्ची है। आहाहा ! ऐसा द्रव्य का मार्ग (कोई अलौकिक है) !

भगवान आत्मा ! द्रव्य जो वस्तु (है), इसमें कर्म नाम का एक गुण है। आत्म द्रव्य में जैसे ज्ञान नाम का गुण है, श्रद्धा नाम का गुण है, आनंद नाम का गुण है - ऐसे कर्म नाम का एक गुण है। आहाहा ! कर्म नाम कार्य सुधरने का कारणरूप कार्य। अंदर में कार्य होने की एक शक्ति है। आहाहा ! ऐसी बातें (हैं)।

आत्मा में एक ऐसी शक्ति है - गुण है, जिसका सामर्थ्य है, इस द्रव्य में गुण का इतना सामर्थ्य है कि, कर्म नाम के गुण के कारण निर्मल पर्यायरूप कार्य होता है, आहाहा ! समझ में आया ?

ज्ञान (एक) गुण है। द्रव्य गुणी है (और) ज्ञान गुण है। उसमें भी कर्म (शक्ति का) रूप है। उस कारण से अंदर ज्ञान की निर्मल पर्यायरूपी कार्य (होता है)। आहाहा ! ज्ञानावरणीय कर्म खिसक गये तो ज्ञान की पर्याय हुई, ऐसा नहीं। ऐसे ही पूर्व की पर्याय निर्मल थी इसलिये वर्तमान निर्मल (पर्याय) हुई, ऐसा भी नहीं। आहाहा ! ऐसी बात कभी सुनने मिलती नहीं। समझ में आया ?

भगवान आत्मा ! परमात्मस्वरूपे बिराजमान (है)। उसमें जीवतर शक्ति से लेकर कर्म शक्ति तक आयी हैं। पहले एक अकार्यकारण शक्ति आ गयी। आत्मा में ऐसा एक अकार्यकारण (नाम का) गुण है कि, जिसके कारण आत्मा में (निर्मल पर्याय) राग का कार्य नहीं और निर्मल पर्याय राग का कारण नहीं। समझ में आया ? यहाँ तो अब मात्र कार्य होता है, यह प्राप्त कार्य क्या होता है ? तो राग का कार्य नहीं और राग का कारण नहीं। समझ में आया ?

वस्तु जो भगवान आत्मा ! इसमें एक अकार्यकारण नाम की शक्ति है, गुण है, सत्त्व है, भाव है, स्वभाव है। आहाहा ! अरे भगवान ! आत्मा अनंत-अनंत शक्तियों का भण्डार है। समझ में आया ? तो कहते हैं कि, जीवतरशक्ति में भी जो ज्ञान, दर्शन, आनंद और सत्ता की पर्याय प्राप्त होती है, (तो) अंदर जीवतर शक्ति में कर्म नाम की (शक्ति का) रूप है, उस कारण से (निर्मल) पर्याय की प्राप्ति होती है। आहाहा ! यह जीव का जीवन है। शरीर से जीव का जीवन, यह जीवन नहीं और अंदर भाव इन्द्रिय, मन, वचन, काया और दस भावप्राण से जीवन, यह जीव का जीवन नहीं, आहाहा !

जीव का जीवन तो उसको कहते हैं कि, जड़ कर्म के जीवन से भिन्न और अंदर में भावइन्द्रिय आदि का कार्य उससे भी भिन्न (यह तेरा जीवन है)। आहाहा ! गज़ब (बात)

है न ! प्रभु ! तेरे जीव का जीव (तो) वह है कि, खण्ड - खण्ड इन्द्रिय से रहित, जो भावइन्द्रिय (है, उससे) भी रहित ऐसा ज्ञान का परिणमन होना - अतीन्द्रिय ज्ञान का परिणमन होना, यह जीव का जीवन है, आहाहा ! भारी बातें ! पैसे और जवाहरात में कभी सुना भी नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि, तेरे कार्य में उतारना यह क्या है ? तेरा कार्य में जो सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, अतीन्द्रिय आनंद की पर्यायरूपी (कार्य हुआ, उस) कार्य का कारण कौन ? कि तेरे में एक कर्म नाम का गुण है, (उसके कारण से यह पर्याय हुई है)। आहाहा ! कहाँ जड़ कर्म, कहाँ पुण्य - पाप, दया, दान भाव कर्म, कहाँ निर्मल परिणति - वर्तमान पर्यायरूपी कर्म ! और यह कर्म गुणरूपी कर्म ! आहाहा ! समझ में आया ? परंतु इस गुणरूपी कार्य का (कर्म का) कार्य क्या ? कि निर्मल शुद्ध पर्यायरूपी सुधरना, यह कर्म नाम के गुण का कार्य है। कभी सुना नहीं हो, ऐसा सब है। बाप-दादा ने तो सुना भी नहीं था।

चैतन्य खजाने में एक कर्म नाम का गुण पड़ा है न ? ऐसा कहते हैं। आहाहा ! कर्म नाम की शक्ति पड़ी है न ? जड़ कर्म नहीं, भावकर्म नहीं, उसमें पर्यायरूप कार्य आता है (वह) एक कर्म नाम की शक्ति (है, उस) कारण से (आता) है। आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि, व्यवहार रत्नत्रय कारण और निश्चय कार्य, यह बात उड़ जाती है, ऐसा नहीं है। समझ में आता है ? भैया ! भाषा तो बहुत सादी है। आहाहा ! क्या कहा ? कि, सम्यग्दर्शनरूपी पर्यायरूप कार्य (है), यह कार्य है। पर्याय कार्य है और व्यवहार से द्रव्य, गुण कारण है। अब जो सम्यग्दर्शन की पर्याय (है), निश्चय से वीतरागी श्रद्धा (जो होती है), उस श्रद्धा का प्राप्त करना उसका कारण कौन ? तो कहते हैं कि, कर्म नाम का गुण है, (यह कारण) है। आहाहा ! उस कारण से समकित रूपी कार्य सुधरता है, आहाहा ! गज़ब बात है ! समझ में आया ? एक-एक शक्ति में कितना संग्रह है !

यह कर्म शक्ति ध्रुव उपादान है और उसका निर्मल परिणमनरूपी कार्य (है), यह क्षणिक उपादान है, आहाहा ! कर्म शक्ति जो त्रिकाल ध्रुव है, यह पारिणामिकभाव से है और उसका सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के परिणाम की प्राप्ति (है), वह उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभावस्वरूप है। आहाहा ! कहते हैं कि, कर्म का उपशम हो तो यहाँ उपशमभाव हुआ, ऐसा नहीं है। कर्म नाम का गुण है, उसके कारण उपशमभाव की पर्यायरूपी कार्य सुधरा। कभी, कहीं सुना नहीं है। यह जैन दर्शन (है) ! आहाहा ! अभी तो दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो, पूजा करो (ऐसा सब चलता है). ये सेठ (लोगों को) फुरसद मिलती

नहीं और दो घडी - चार घड़ी वैसा (सब) कर आये, (तो मान लेते हैं कि) हो गया धर्म ! अरे भगवान ! (कोई कहता है) निर्विकल्प सम्यग्दर्शन तो सातवें (गुणस्थान की) बात है। यहाँ तो चौथे (गुणस्थान की) वीतरागदशा की बात है।

ऐसी चर्चा हुई थी, भाई ! (कोई वर्तमान के दिगंबर मुनि ऐसा भी मानते हैं, उसे पूछा गया) कि, समकित किसे कहते हैं ? (तो कहा), देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा यह समकित, बस ! चौथे गुणस्थान में व्यवहार समकित होता है, आहाहा ! अरे प्रभु ! सुन तो सही नाथ ! चौथे गुणस्थान में व्यवहार समकित है (और) आगे वीतराग समकित होता है, (ऐसा कहते हैं), अरेरे...!

यहाँ तो कहते हैं कि, सुन तो सही, नाथ ! तेरे में एक वीतरागभाव स्वरूप कर्म नाम का गुण है। यह वीतरागभावस्वरूप है। कर्म गुण यह वीतराग भावस्वरूप है। उसका कार्य सम्यग्दर्शन की वीतरागी पर्याय हुई, यह वीतराग स्वरूप कर्म गुण (है, उसका) कार्य है। चौथे गुणस्थान से उसका कार्य है, आहाहा ! समझ में आया ?

यह शक्ति का वर्णन करके अमृतचंद्राचार्य ने खजाना खोल दिया है ! ओहोहो ! कर्म शब्द भले हो परंतु कर्म शब्द का (अर्थ) आत्मा में कार्य होने की शक्ति है। पर्याय में सम्यग्दर्शन का, सम्यक्ज्ञान का, सम्यक्चारित्र का, आनंद की पर्याय का, वीर्य की - स्वरूप की रचना का कार्य (होता है), (तो) प्रत्येक गुण में कर्म (शक्ति का) रूप है, उस कारण से उसमें निर्मल कार्य होता है। आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि, भगवान की यात्रा करने से निर्मल कार्य नहीं होता है, ऐसा कहते हैं।

यह तो शांति से समझने की चीज़ है। यह मार्ग तो वर्तमान में विच्छेद हो गया है। समझ में आया ? संप्रदाय में तो यह बात विच्छेद हो गयी है। बापू ! प्रभु ! तू भगवान है न ! भग नाम ज्ञान - आनंद की लक्ष्मी, इस कर्म शक्ति का भी तुम लक्ष्मीवान हो। आहाहा ! तेरी पर्याय में सम्यक्दर्शन और धर्म की पर्याय (रूपी) कार्य, (होता है, तो) तेरे में कर्म नाम की गुण लक्ष्मी पड़ी है, उससे कार्य होता है, आहाहा ! ऐसा बहुत सूक्ष्म मार्ग (है), बापू ! आहाहा !

एक-एक शक्ति में इस कर्म नाम के (गुण का) रूप है। जैसे ज्ञानस्वभाव है न ? ज्ञान गुण है न ? तो एक अस्तित्व भी गुण है। ज्ञानगुण में अस्तित्व गुण नहीं (है) परंतु गुण 'है', गुण अपने से है, ऐसा अस्तित्व का रूप अपने से है। न्याय समझ में आया ? आहाहा ! भगवान आत्मा में ज्ञान गुण है, अस्तित्व गुण है, कर्म गुण है, श्रद्धा गुण है, आनंद गुण है, तो यहाँ कहते हैं कि, ज्ञान में यह अस्तित्व गुण (गुण का रूप) हो, परंतु ज्ञान में अस्तित्व गुण नहीं आया। परंतु ज्ञान 'है' ऐसा अस्तित्व गुण का रूप आया।

ज्ञान `है' वह अपने से है। अस्तित्व गुण के कारण से नहीं, आहाहा ! ऐसी बातें ! समझ में आया ?

ऐसे अंदर में त्रिकाली श्रद्धा गुण है। तो अस्तित्व गुण के कारण से श्रद्धा गुण `है', ऐसा नहीं, आहाहा ! ऐसा मार्ग (है) ! शक्ति का वर्णन (ऐसा है) !

मुझे विचार तो आया था कि, चलता विषय साधारण है। ये लोग जो बाहर गाँव से आये हैं उनके लिये कुछ विशेषता चाहिए। शक्ति आदि का (वर्णन करने का) लक्ष में आया था, तो चलता विषय छोड़कर शक्ति का वर्णन लिया है। आज तो शक्ति का ३६ वाँ दिन है। गुजराती लोग तो हिन्दी समझ सकते हैं। हिन्दी भाषा सादी है (इसलिये हिन्दी में चलता है)। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, प्रभु ! तू एक तो यह सिद्ध कर कि, मैं तो द्रव्य हूँ और मैं ज्ञायक हूँ, आहाहा ! मैं पर्याय नहीं, गुण भेद भी नहीं, राग भी नहीं, निमित्त भी नहीं, ऐसे ज्ञायकभाव का जब तुझे निर्णय हो, तो (इस) निर्णय का कार्य (ऐसा आयेगा कि) ज्ञानगुण में कर्म नाम की (शक्ति का) रूप है, उस कारण से ज्ञान की - ज्ञायक की निर्मल पर्याय हुई है, आहाहा !

अब यहाँ तो (लोग) यह कहते हैं कि, कर्म का क्षयोपशम हो तो ज्ञान की निर्मल पर्याय हो ! आहाहा ! बड़ी चर्चा हुई थी न ? यह बात थी ही नहीं। हिन्दुस्तान में (कहीं) नहीं थी। निमित्त से होता है, (ऐसी सब बातें) थी। (एक) पंडित ने कबूल किया था कि, हम सब पंडितों की पढ़ाई निमित्त आधीन की है। आप कहते हो, निमित्त से कुछ नहीं होता, यह पढ़ाई हमारी तो है नहीं।

यहाँ कहते हैं, सुन तो (सही) नाथ ! आहाहा ! कहते हैं कि, व्यवहार समकित यह समकित ही नहीं। व्यवहार समकित तो विकल्प - राग है। वह तो निश्चय सम्यग्दर्शन (रूपी) अपना कार्य, कर्म शक्ति के कारण अथवा श्रद्धा गुण में भी कर्म का रूप है, उस कारण द्रव्यदृष्टि जहाँ हुई तो श्रद्धा गुण का कार्य समकित पर्याय होती है। इसमें कितनी शर्तें हैं ? समझ में आया ?समकित की पर्याय के साथ राग है तो आरोप से कथन कहने में आता है कि, यह व्यवहार समकित है (लेकिन वह) है तो राग। वह समकित की पर्याय है ही नहीं। परंतु यहाँ तो जो राग की पर्याय है, वह अपना कार्य तो नहीं, लेकिन निर्मल पर्याय हुई, वह उसका (राग का) कार्य नहीं। आहाहा ! आत्मा में श्रद्धा नाम की त्रिकाली शक्ति है, गुण है। उसमें कर्म शक्ति का रूप है, उस कारण से श्रद्धा का कार्य (आता है)। श्रद्धा गुण में कर्म नाम का रूप है, उस कारण से श्रद्धा की समकित पर्याय सुधरती है। श्रद्धा गुण में कर्मरूप कार्य (होता है, वह उसके) कारण

से सुधरती है। मिथ्यात्व टल गया तो (कार्य सुधरा), व्यय हुआ तो (कार्य सुधरा), यहाँ तो वह भी नहीं है। आहाहा ! गज़ब बात है ! कर्म का अभाव हुआ तो (कार्य) सुधरा वह तो है नहीं परंतु मिथ्यात्व का व्यय हुआ तो काम सुधरा, ऐसा भी नहीं।

यहाँ तो सम्यग्दर्शन का उत्पाद जब हुआ, जहाँ चैतन्य भगवान पूर्णानंद की दृष्टि हुई, तो उसमें (कर्म नाम का) गुण है (उस कारण से श्रद्धा का कार्य सुधरता है)। ज्ञान में, श्रद्धागुण में, चारित्रगुण में, आनंदगुण में कर्म की शक्ति का रूप है, तो उस कारण से अंदर ज्ञान की पर्याय का कार्य कर्म के कारण से (अर्थात्) कर्म (शक्ति के) रूप के कारण से सम्यक्ज्ञान सुधरता है, आहाहा ! वाणी से (कार्य) सुधरता नहीं, ऐसा कहते हैं। शास्त्र वाचन से यह कार्य सुधरता नहीं, ऐसा कहते हैं।

यह सब नया है। स्वाध्याय करता है वह विकल्प है। मार्ग ऐसा है, भाई ! उससे ज्ञान सुधरता नहीं, ऐसा कहते हैं। ज्ञान का सुधरना - सम्यक्ज्ञान का होना, यह ज्ञानगुण में कर्म शक्ति का - गुण का रूप है, उस कारण से ज्ञान सुधरता है, आहाहा ! ऐसा स्वरूप है।

अब अंदर आत्मा में एक चारित्र नाम का गुण है। आत्मा में वीतराग भावरूपी चारित्र गुण अनादि से है। इस गुण में भी कर्म (शक्ति का) रूप है। उस कारण से चारित्र गुण की निर्मल पर्याय का कार्य (कर्म गुण के) कारण से होता है, आहाहा ! चारित्रगुण का कार्य पंचमहाव्रत का विकल्प है, उससे चारित्रगुण का कार्य होता है, ऐसा नहीं है, आहाहा ! अभी सत् की (किसी को) खबर नहीं।

यहाँ तो (लोग) कहते हैं कि, पंचमहाव्रत पालो, व्रत पालो उससे निश्चय (धर्म) हो जायेगा। वह तो कहते हैं, चौथे गुणस्थान में तो व्यवहार ही होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! (सातवें गुणस्थान में) निश्चय (सम्यग्दर्शन) होता है, (ऐसा मानते हैं)। आहाहा ! (वर्तमान के एक दिगंबर मुनि और लिखकर गये हैं)। वीतराग समकिती - निश्चय समकिती तो सातवें निर्विकल्प (गुणस्थान में) होते हैं। अरे भगवान ! तेरे में श्रद्धा गुण की शक्ति त्रिकाल है कि नहीं ? श्रद्धागुण में कर्म का गुण है कि नहीं ? कर्म शक्ति का - गुण का रूप है कि नहीं ? श्रद्धागुण के कारण वीतरागी पर्याय प्रगट होती है, यह चौथे (गुणस्थान का) कार्य है, आहाहा ! निश्चय सम्यग्दर्शन - वीतरागी पर्याय का कार्य तो श्रद्धा गुण में कर्म का रूप है, उस कारण से वीतरागी पर्याय का कार्य सुधरता है, आहाहा !

व्यवहार समकित में शम, संवेग, निर्वेग, अनुकंपा और आस्था (होती है, ऐसा) कहते हैं न ? उन सब विकल्प से रहित कर्म गुण के कारण से अपने में कार्य आता है।

आहाहा ! और इस कार्य की सिद्धि यह अपना कार्य है, बाकी कोई राग की सिद्धि, पुण्यभाव और बाहर की अनुकूलता - पैसा, स्त्री, कुटुंब, परिवार का कार्य हो गया, (उसमें) धूल में भी तेरी कार्य सिद्धि नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? पाँच - पच्चीस लाख मिल गया तो अपनी कार्यसिद्धि हो गयी, (लेकिन) धूल में भी (कार्य सिद्धि) नहीं।

श्रोता : भगवान की दया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ कहाँ भगवान की दया आयी ? (लोगों को ऐसा लगता है कि) प्रभु की कृपा से अपने को पैसा मिलता है तो खर्च करे। धूल में भी नहीं है, सुन न ! अभी कुछ एक तो ऐसा कहते हैं, महाराज की यह लकड़ी फिरती है इसलिये (पैसा मिलता है)। धूल भी नहीं है लकड़ी में ! यह तो हाथ में पसीना हो तो पसीना शास्त्र को छुए तो अशातना होती है। उस कारण से हाथ में लकड़ी (रखते) हैं। लकड़ी में कुछ नहीं है। यह तो जड़ है, आहाहा ! उस प्रकार के पूर्व के पुण्य हो तो (पैसा) आ जाता है। उसमें तेरा कार्य क्या है ? यहाँ तो उसमें राग हो वह भी तेरा कार्य नही, (ऐसा कहना है)। आहाहा !

भगवान ! तेरा कार्य तो निर्मल पर्याय - वीतरागी कार्य होना, यह तेरा कार्य है। आहाहा ! (लोग) पूजा, भक्ति और १० दिन के अपवास करे (लेकिन) कि, यह राग का कार्य तेरा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा !

ज्ञानगुण में, दर्शनगुण में, चारित्रगुण में, आनंद में (इत्यादि सभी गुणों में कर्म शक्ति का रूप है)। आत्मा में आनंद गुण है। अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप प्रभु ! अतीन्द्रिय आनंद का प्रभु आत्मा सागर है, तो उसमें भी कर्म नाम के गुण का रूप है। उस कारण से पर्याय में अतीन्द्रिय आनंद का प्रगट होना, आनंद की पर्याय सुधरनी, (यह) अतीन्द्रिय आनंद में कर्म नाम के (गुण का) रूप होने के कारण सुधरता है, दूसरे गुण के कारण से नहीं, आहाहा ! क्या कहा ? यह क्या आया ? ऐसा कहते हैं कि, आत्मा में जो आनंद की पर्याय प्रगट होती है, वह आनंद गुण में कर्म का रूप है, उस कारण से आनंद पर्याय सुधरती है, दूसरे गुण के कारण से नहीं, दूसरी पर्याय के कारण से नहीं, राग से नहीं (और) निमित्त से नहीं, आहाहा ! ऐसा मार्ग (है) ! वीतराग मार्ग यह है। आहाहा ! समझ में आया ? क्या चलता है ? ४१ वीं शक्ति चलती है।

शक्ति का अर्थ गुण। आत्मा में कर्म नाम का एक गुण (है)। उस गुण को कर्म कहा। परंतु कर्म का अर्थ (आत्म में एक) अरूपी गुण है। कर्म नाम का एक अरूपी गुण है कि, जिस गुण के कारण वर्तमान में निर्मल पर्याय का सुधरना, निर्मल पर्याय का कार्य होना, यह कर्म गुण का कार्य है। निर्मल...निर्मल...निर्मल...निर्मल... क्रमवर्ती पर्याय

का कारण कर्म नाम का गुण है। आहाहा ! समझ में आया ?

पहले अल्प पर्याय थी और बाद में शुद्ध हुई, विशेष शुद्धि की वृद्धि हुई। संवर में से निर्जरा की शुद्धि विशेष (हुई)। निर्जरा के तीन प्रकार हैं। एक जड़ कर्म की निर्जरा (होना)। वह तो जड़ (का कार्य) हुआ। एक अशुद्धता का जरना, उसका व्यय हो गया परंतु शुद्धि की वृद्धि हुई, उसको भी निर्जरा कहते हैं। (यहाँ) कहते हैं कि, शुद्धि की वृद्धि का कार्य यह कर्म नाम की शक्ति है, (उसके कारण से होता है)। राग की निर्जरा, अशुद्धता की निर्जरा (होकर) उसमें जो (विशेष) शुद्धि की वृद्धि हुई, यह कर्म नाम के गुण के कारण से है, आहाहा ! पूर्व में निर्मल पर्याय थी, इसलिये दूसरे समय में वृद्धि हुई, ऐसा भी नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? पूर्व में मोक्षमार्ग की पर्याय थी तो वहाँ मोक्ष नाम केवलज्ञान की पर्याय का स्वतंत्र कार्य (होता है)। केवलज्ञान का कार्य सुधरता है। आहाहा ! अपनी पर्याय सुधरती है तो (उसमें कर्म शक्ति) कारण है। (यह बात) कहीं है ही नहीं। श्वेतांबर में तो नाम भी नहीं है। धीरे...धीरे तो कहते हैं, भाई !

श्रोता : आप तो गहराई में ले जाते हो !

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मार्ग गहरा है न ! आहाहा !

भगवान ध्रुवस्वरूप है, उसमें यह कर्म नाम का गुण (है) वह भी ध्रुवस्वरूप (है)। परंतु इस कर्म नाम के गुण का कार्य क्या ? यह कर्म नाम कार्य गुण है, उसका पर्याय में कार्य क्या ? आहाहा ! निर्मल सम्यग्दर्शन, निर्मल सम्यक्ज्ञान, अतीन्द्रिय आनंद का वेदन, यह सब निर्मल (कार्य) कर्म नाम की शक्ति के कारण है, आहाहा ! बहुत बातें समा दी हैं !

नियमसार में जो ३८ गाथा में लिया है। वहाँ तो पर्याय बिना का त्रिकाली आत्मा को आत्मा कहा है। परंतु त्रिकाली आत्मा को आत्मा कहा तो त्रिकाली (आत्मा) जानने में आया, उसको त्रिकाली (आत्मा) है। परिणमन के साथ लेना है। आहाहा ! क्या कहा ? नियमसार ३८ गाथा में त्रिकाली द्रव्य स्वभाव को त्रिकाली आत्मा कहा।

यहाँ तो त्रिकाली स्वरूप है - इस स्वरूप की अस्ति का स्वीकार निर्मल पर्याय में हुआ तो, इस निर्मल पर्याय सहित और गुण सहित को आत्मा कहते हैं। मात्र `है'... `है'... (ऐसी ऊपर-ऊपर की बात में आत्मा की प्रतीति नहीं होती)। पर्याय में उसकी कबूलात आयी और पर्याय में निर्मलता हुई, (तो) यह निर्मलता की क्रमवर्ती पर्याय और अक्रम गुण एक साथ दोनों का समुदाय, यह आत्मा है। ऐसी बातें (हैं) !

लोग कहते हैं कि, व्रत करो, अपवास करो, तपस्या करो, दया पालो (तो हो गया धर्म) ! आहाहा ! (यह) सब करके मर गया, सुन न ! वह तो राग की क्रिया

है। जो उसके गुण में भी नहीं है और उसकी पर्याय में भी नहीं है। राग की क्रिया तो उसकी पर्याय में भी नहीं है। उसको द्रव्य की पर्याय कहते हैं, आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! फिर लोग तो ऐसा कहते हैं कि, ये सोनगढ़वालों ने नया धर्म (निकाला) ! परंतु यहाँ क्या कहते हैं ? ये कहाँ सोनगढ़ का पुस्तक है ? एक-एक शक्ति में कितना भरा है ! आहाहा ! समझ में आया ?

प्राप्त करता हुआ - प्राप्त करता हुआ - कार्य को प्राप्त करता हुआ जो सिद्धरूप भाव (अर्थात्) चोक्कसरूप भाव, उसमयी कर्मशक्ति। आहाहा ! अपने आप ही पढ़े तो कुछ समझ में नहीं आये ऐसा है। इतने शब्द में इतना सारा भरा है ! कितना भरा है ! सब खोलने जाये तो घंटों के घंटो चले जाये, आहाहा ! समझ में आया ?

एक-एक शक्ति पारिणामिकभावस्वरूप है और उसका कार्य जो है, यह उपशम, क्षयोपशम (और) क्षायिकभाव स्वरूप है। आहाहा ! और यह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक भाव (है, उसमें) उदयभाव भी नहीं। आहाहा ! द्रव्य और द्रव्य का गुण, उसका जो कार्य है वह तो निर्मल है। उदयभाव उसका कार्य है ही नहीं। आहाहा ! वह तो पर्याय की योग्यता से उदय है। यहाँ तो द्रव्यदृष्टि में कर्म नाम के गुण के कारण अथवा षट्कारक की निर्मल पर्याय की भावरूप भावमयी शक्ति के कारण निर्मल पर्याय उसका कार्य है, आहाहा ! व्यवहार रत्नत्रय का कार्य (उसका) नहीं। क्योंकि व्यवहार रत्नत्रय में यह कर्म नाम का गुण नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! पूर्व पर्याय निर्मल थी तो विशेष पर्याय (हुई), शुद्धि की वृद्धि (हुई), ऐसा भी नहीं, आहाहा ! समझ में आया ?

अनजाने को तो (ऐसा लगे कि) यह क्या कहते हैं ? धर्म की कुछ खबर नहीं। संसार की मजदूरी कर-करके मर गया। उसमें दो-पांच करोड़ रुपया मिल जाये तो ओहोहो...! (हो जाता है)। धूल में भी कुछ नहीं है, सुन न ! तेरी बादशाही अंदर पड़ी है उस बादशाही की खबर नहीं, भिखारी ! (अंतर के) आनंद को नहीं देखता है (और) यहाँ से (सुख) मिलेगा, इससे (सुख) मिलेगा, (इस प्रकार) भिखारी (बन गया है)। चक्रवर्ती भिखारी बनकर धूम रहा है ! चैतन्य चक्रवर्ती जिसमें अनंत गुण के चक्र पड़े हैं, आहाहा ! निर्विकारी (चक्र पड़े हैं)। विकारी पर्याय का भिखारी हुआ। भिक्षा माँगता है। मुझे ऐसे पैसे में सुख मिलेगा, धूल में सुख मिलेगा, स्त्री में सुख मिलेगा, अच्छा होशियार लड़का (पैसा कमानेवाले में सुख मिलेगा), (लेकिन वहाँ) धूल में भी (सुख) नहीं है। भिखारी ! भिखारा है ! रांक है ! आहाहा ! बादशाह तो भगवान अंदर बिराजते हैं। उसमें बादशाही शक्ति पड़ी है। शक्ति का परिणमन हो, यह बादशाही है। समझ में आया ? है उसमें से प्राप्त होता है, यह बादशाही है। ऐसी (कोई) चीज़ राग में है ? सुख की पर्याय,

ज्ञान की (पर्याय), आनंद की (पर्याय) राग में है ? कि उसमें से प्राप्त हो ? (राग में तो) आकुलता है। दया, दान, भक्ति, पूजा आदि के भाव में आकुलता है, भाई ! आकुलता में कर्म नाम का गुण नहीं है और कर्म नाम की पर्याय भी नहीं, आहाहा ! वह तो पर्याय में अद्धर से उत्पन्न हुआ विकृत भाव है और उससे रहित होना, यह भावमयी शक्ति है। उसका गुण ऐसा है। आत्मा का गुण ऐसा है कि, विकार के भाव से रहित होना, यह इसका गुण है। विकार करना ऐसा कोई गुण आत्मा में त्रिकाल में नहीं है। समझ में आया ? आहाहा ! देखो ! यह बात !

समयसार - आत्मा का सार। समयसार का अर्थ यह है कि, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म रहित यह समयसार (है)। आहाहा ! यह समयसार कैसे प्रगट हो ? आहाहा ! कि, अपने में सार - कस शक्ति पड़ी है, उस शक्ति को धरनेवाला आत्मा उसकी दृष्टि करने से शक्ति का कार्य सुधरता है। अनादिकाल से पर्याय में बिगाड़ते आया है, आहाहा ! राग, विकल्प, शुभ (भाव करके पर्याय को बिगाड़ता आया है)। आहाहा ! यह तेरा कार्य नहीं, प्रभु ! यह द्रव्य, गुण का कार्य नहीं, आहाहा ! रागादि शुभभाव यह कोई तेरे द्रव्य, गुण का कार्य नहीं। गज़ब बात है !

जैसे पुद्गल में आठ कर्म की पर्याय होती है तो पुद्गल में कोई गुण नहीं कि, जो आठ कर्म की पर्यायरूप परिणमे। (ऐसा) कोई गुण नहीं। समझ में आया ? पुद्गल में कोई ऐसा गुण नहीं कि, (कर्मरूप) पर्याय होती है, इसलिये (यह कोई) गुण की पर्याय है, (ऐसा नहीं है), आहाहा ! परमाणु में भी कर्मरूपी पर्याय होने का कोई गुण नहीं। पर्याय में अद्धर से मलिनता - विभाव उत्पन्न होती है। आहाहा ! ऐसे भगवान में (अर्थात्) भगवान आत्मा में विकार होना, विकार करना, ऐसी कोई शक्ति या गुण नहीं। आहाहा ! उसका गुण तो विभावरूप नहीं परिणमना ऐसा उसका गुण है, आहाहा !

अरे...! अभी तत्त्व क्या है ? तत्त्व की शक्ति क्या है ? और शक्ति की पर्याय - कार्य कैसे होता है ? इसकी खबर नहीं और उसका धर्म हो जाये (यह कैसे हो सकता है) ? पैसे से धर्म नहीं होता है। शुभभाव है (उस रूप) नहीं परिणमना, ऐसा उसका गुण है। आहाहा ! व्रत का, तप का, भक्ति का, पूजा का, पडिमा का जो विकल्प है, यह विकार है। उस रूप नहीं परिणमना, (ऐसा) उसका गुण है। विकाररूप परिणमन ऐसा तेरे में कोई गुण नहीं है, प्रभु ! आहाहा ! अरेरे...! घर की खबर नहीं है और पर घर के आचरण में स्व घर का आचरण मान लेता है, आहाहा !

आत्मा में वीर्य नाम का गुण है तो उसमें भी कर्म नाम के गुण का रूप है - तो वीर्य की पर्याय निर्मल हो - निर्मल पुरुषार्थ हो, यह वीर्य का कार्य है और दूसरे

तरीके से कहें तो वीर्य का कार्य स्वरूप की रचना करना (है)। मूल (शक्ति में) आया था। आत्मा में एक बल है, वीर्य बल है। उसका कार्य स्वरूप की रचना करना। वीतरागी आनंद और ज्ञान आदि की रचना करना, यह वीर्य का कार्य है। राग की - व्यवहार की रचना करना, यह वीर्य का कार्य है ही नहीं। आहाहा ! बड़ा फ़र्क है, भाई ! अभी खबर नहीं है कि, कैसी श्रद्धा को श्रद्धा कहना ? कौन से ज्ञान को ज्ञान कहना ? इसकी खबर नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

(वर्तमान कोई दिगंबर मुनि के) साथ (किसी की) चर्चा हुई थी। (वे कहते हैं), व्यवहार समकित है, यह समकित है। आहाहा ! मूल में (बात यह है कि) इस बात की किसी को खबर नहीं।

भगवान तीनलोक का नाथ, आनंदकंद प्रभु ! उसमें ऐसी शक्ति है कि, विकाररूप नहीं होना परंतु विकार है, उससे रहित होना, ऐसा उसमें गुण है। उसके बदले (ऐसा मानते हैं कि), अकेले व्रत, तप, भक्ति और पडिमा लेकर हमें धर्म हो जायेगा। (ऐसी मान्यता) मिथ्या शल्य है। मिथ्यादृष्टि है - झूठी दृष्टि है। आहाहा !

श्रोता : झूठी दृष्टि कहो तब तक तो ठीक है, लेकिन मिथ्यादृष्टि (क्यों कहते हो) ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्या कहो कि झूठी कहो, (एक ही बात है)। सम्यग्दर्शन कहो कि सत्य कहो, सत्यदृष्टि कहो, (एक ही बात है)। (इसी प्रकार) मिथ्यादृष्टि कहो कि झूठी दृष्टि कहो, (एक ही बात है)। आहाहा ! समझ में आया ?

हज़ारों रुपये का पगार बुद्धि के कारण से मिलता होगा ? उसको लेकर सुखी है ? धूल को लेकर सुखी नहीं है। आठ हज़ार मिला, ऐसा विकल्प उठा, यह दुःखरूप है। सब आकुलता है। ऐसा करूँ... ऐसे काम करूँ... ऐसा करूँ... बड़े लोग कहते हैं, वैसे काम करना। आहाहा ! (सब) आकुलता की पींजणी है। पींजणी समझते हो ? रूई को पींजते हैं न ? एक पुणी खतम होती है बाद में दूसरी पुणी सांधते हैं। पुणी होती है न रूई की ? एक पूरी करके दूसरी पुणी सांध देते हैं। वैसे, एक आकुलता पूरी हो उतने में दूसरी आकुलता, दूसरी (आकुलता) पूरी हो उतने में, तीसरी आकुलता (शुरू हो जाती है)। (इस तरह) आकुलता की पींजणी करता है। यह कोई आत्मा का गुण नहीं, आहाहा ! समझ में आया ?

ओहो ! बहुत है, बहुत भरा है ! एक (बात) तो यह है कि, कर्म नाम के गुण के कारण अपना निर्मल कार्य सुधरता है, वह भी उसकी (उस) समय की उत्पत्ति का जन्म काल है, आहाहा ! शुद्ध समकित - सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान आदि उत्पन्न हुआ,

उसका वह जन्मक्षण था. उत्पत्ति का वह काल था। उस गुण के कारण (हुआ, यह) कहना व्यवहार है। आहाहा ! गुण कारण और पर्याय कार्य, यह भी व्यवहार का उपचार कथन है। आहाहा ! ऐसी बात (है) ! अभी तो इसको व्यवहार कहते हैं। वहाँ लोग राग को व्यवहार कहकर (उससे) निश्चय होता है, (ऐसा कहते हैं। इसमें कहाँ कोई बात का मेल है ?) प्रभु ! बापू ! (ऐसी मान्यता में) तेरे रखड़ने के रास्ते बंध नहीं होंगे, आहाहा ! अरे...! नरक और निगोद में जाकर बसा। आहाहा !

श्रोता : यह रहस्य आपके सिवा कौन खोले ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तुस्थिति ऐसी है। भाई ! निगोद में जायेगा। एक शरीर में अनंत आत्मा, अनंत (जीव का) एक श्वास साथ में, आयुष्य साथ में, आहाहा ! वस्तु अलग, उसकी पर्याय अलग, आहाहा ! अरे...! वहाँ रहकर तेरा अनंत काल गया, प्रभु ! आहाहा ! प्रभु तो ऐसा कहते हैं न ? प्रभु ! माता के पेट में १२-१२ साल रहा। साधारणरूप से तो सवा नव महीने में जन्म होता है। परंतु शास्त्र तो ऐसा कहते हैं कि, कोई-कोई स्त्री के पेट में (गर्भ) रह जाये (तो) १२ साल तक (गर्भ) रह सकता है। बारह साल के बाद जन्म होता है, आहाहा ! उलटे माथे, श्वास ले सके नहीं, चारों ओर कफ (पड़ा हो), आहाहा ! यहाँ थोड़ा (श्वास नहीं ले सके और खिड़की बंध हो तो कहता है), खिड़की खोल दो, खिड़की खोल दो... (अरे...) वहाँ (गर्भ में) कहाँ खुला है ? आहाहा ! भाई ! तूने १२-१२ साल माता के पेट में (निकाले हैं)। और दूसरी बात तो यह कहते हैं कि, प्रभु ! कदाचित् वह बारह साल के बाद जन्म (भी) ले (तो, मरकर) फिर से वहाँ बारह साल रहता है। उसकी माता के पेट में से (निकलने के बाद) दूसरी माता के पेट में (जाये)। (इस प्रकार) एक साथ कुल २४ वर्ष हुए। गर्भ की (उत्कृष्ट) कायस्थिति २४ साल की है। आहाहा ! ऐसे २४ वर्ष की कायस्थिति एक साथ में बितायी है। ऐसी अनंतबार बितायी है, नाथ ! आहाहा ! इस दुःख से मुक्त होना हो तो तेरे द्रव्य स्वभाव में शक्ति पड़ी है, उसकी संभाल कर। समझ में आया ? दूसरी संभाल रखता है, उसके बदले शक्ति की संभाल कर ! तेरी शक्ति है उसकी रक्षा कर ! आहाहा ! द्रव्य की रक्षा कर, मेरा द्रव्य शुद्ध चिदानंद ज्ञायक है, आहाहा ! मैं तो अतीन्द्रिय आनंद का सागर हूँ। ऐसा (स्वरूप) 'है', ऐसी प्रतीति करी (तो) रक्षा की, (ऐसा कहा जाये)। 'है' ऐसा नहीं मानना (उसने स्वरूप की) हिंसा की। समझ में आया ? आहाहा ! बहुत भरा है ! बापू !

'**प्राप्त किया जाता...**' आहाहा ! निर्मल भाव प्राप्त होता है। सिद्धरूप - चोक्कसरूप भाव उसमयी कर्मशक्ति है। कहाँ जड़ कर्म और (कहाँ) कर्म शक्ति - गुण ! (यह गुण

तो) छओं द्रव्यों में है, प्रत्येक में है। आहाहा ! उस कारण से निर्मल पर्यायरूपी कार्य (होता है)। तेरी (पर्याय में) सुधार करना हो तो द्रव्य पर दृष्टि देने से, द्रव्य में यह कर्म नाम का गुण है, इस कारण से तेरी पर्याय सुधरेगी। तब तुम सुधारक हुआ, नहीं तो बिगाडनेवाला है। आहाहा ! विशेष कहेंगे....

निरपेक्ष-स्वभाव के भान-बिना, निमित्त का यथार्थ ज्ञान नहीं होता। स्वभाव स्व-परप्रकाशक है; उसमें स्व के ज्ञान-बिना, पर का भी ज्ञान नहीं होता। उपादान की स्वतंत्रता के ज्ञान बिना, निमित्त का ज्ञान नहीं होता; निश्चय-बिना व्यवहार का ज्ञान नहीं होता। जैसे त्रिकाली-द्रव्य स्वतंत्र, निरपेक्ष है; वैसे ही उसकी समय-समय की पर्याय भी निरपेक्ष व स्वतंत्र है। समय-समय की पर्याय अपने कारण से ही होती है।

(परमागमसार - ७६५)

आत्मा में, अर्थात् अनंत शक्ति सम्पन्न द्रव्य में, अनंत शक्ति के स्वसंवेदनरूप से अर्थात् निज-भाव से राग के अभावरूप स्वयं के स्वभाव का प्रत्यक्ष वेदन होना, वह अनंत गुणोंमें से एक ऐसी स्वसंवेदनशक्ति को बतलाता है। (परमागमसार - १४)

प्रवचन नं. ३७
शक्ति-४१, ४२ दि. १६-०९-१९७७
प्राप्यमाणसिद्धरूपभावमयी कर्मशक्तिः।।४१।।
भवत्तारूपसिद्धरूपभावभावकत्वमयी कर्तृशक्तिः।।४२।।

(समयसार, शक्ति का अधिकार चलता है)। (४१ वीं शक्ति) ``**प्राप्त किया जाता...**'' यह तो गंभीर मंत्र है। वर्तमान पर्याय में निर्मल पर्याय प्राप्त होती है, प्राप्त की जाती है, वह ``**सिद्धरूप भाव...**'' वर्तमान जो निर्मल परिणति है, उसरूप भाव। सिद्धरूप भाव यानी परिणतिरूप भाव। सबेरे का विषय सूक्ष्म है। सिद्ध यानी सिद्ध (परमात्मा) नहीं। भविष्य में होनेवाले को सिद्ध कहते हैं। वर्तमान जो होनेवाला भाव उसका नाम सिद्ध। सिद्ध यानी सिद्ध पर्याय नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

प्राप्त किया जाता है जो सिद्धरूप भाव (अर्थात्) सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, आनंद आदि अनंत गुण की निर्विकारी निर्मल पर्याय प्राप्त की जाती है, ऐसा जो भाव उसमयी कर्म शक्ति। इस कर्म शक्ति के कारण और अनंत गुण में कर्म शक्ति का रूप (होने के) कारण (अनंत गुण अपनी निर्मल पर्याय को प्राप्त करता है)। एक-एक गुण अपनी निर्मल पर्याय को प्राप्त करे, यह कर्म (गुण का) स्वरूप है। और कर्म शक्ति का स्वरूप निर्मल पर्याय प्राप्त करे, यह कर्म शक्ति का स्वयं कार्य है। आहाहा ! ऐसी बात है ! कल एक घंटा तो चल गई है। आज तो अपनी कर्तृत्व शक्ति लेनी है। समझ में आया ?

ज्ञायकरूप भाव उसमें कर्तृत्व नाम का एक गुण है, शक्ति है, आहाहा ! कर्तृत्व गुण का कारण वर्तमान में भावकपनामयी भाव... है ? ``**होनेपनरूप और सिद्धरूप भाव...**'' यानी वर्तमान चोक्कस भाव। ``**...भावके भावकत्वमयी...**'' भाव के करनेरूपमयी। भाव का `क' यानी करनेरूपमयी कर्तृत्वशक्ति। इतना तो शब्दार्थ हुआ। समझ में आया ?

यह शक्ति द्रव्य स्वभाव में पड़ी है। द्रव्य स्वभाव को जिसने दृष्टि में लिया, उसको स्वरूप कर्तृत्वशक्ति के कारण, कर्तृत्व शक्ति सीधी परिणमती नहीं (लेकिन) कर्तृत्व शक्ति का आश्रय द्रव्य, इस द्रव्य का परिणमन होता है तो (कर्तृत्वशक्ति का परिणमन होता है)। वर्तमान जो सिद्ध - चोक्कसरूप निर्मल पर्याय - भाव, उस-उस समय की निर्मल पर्याय - वीतरागी सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि परिणमनरूपी भाव में (कर्तृत्वशक्ति नहीं, परंतु) कर्तृत्व शक्ति का रूप होने से, ज्ञान की वर्तमान निर्मल पर्याय का भाव का कर्तृत्व, ऐसा ज्ञानगुण में कर्तृत्व का रूप पड़ा है, आहाहा ! समझ में आया ? भाषा कितनी भी सादी करे, लेकिन वस्तु तो जो है वह (आती है), आहाहा !

``**होनेपनरूप...**'' वर्तमान में वीतरागी पर्याय, गुण की निर्मल पर्याय होनेरूप।``**सिद्धरूप...**'' (यानी) जो होनेवाली है यह चोक्कस है। वह पर्याय उस समय में होनेवाली सिद्धरूप (है)। ``**भावके भावकत्वमयी...**'' (अर्थात्) ऐसा जो वर्तमान भाव उसका भावकमयी - उस भाव का कर्तृत्वमयी, उस भाव के कर्तापनामयी कर्तृत्वशक्ति है। आहाहा ! वर्तमान पर्यायरूप - वर्तमान जो निर्मल पर्याय होनेरूप, इस भाव के भावकत्वमयी (यानी) भाव को करनेवाली कर्तृत्व शक्ति है। सिद्ध शब्द का अर्थ सिद्ध पर्याय नहीं लेना। सिद्ध (यानी) चोक्कस पर्याय लेना। कल भी कर्म शक्ति में, ``**प्राप्त किया जाता सिद्धरूप भाव**'' कहा था। सिद्ध यानी सिद्ध पर्याय नहीं लेना। सिद्ध पर्याय भी आ जाती है परंतु अकेली सिद्ध पर्याय नहीं (लेनी है)।

वर्तमान में होनेरूप - सिद्धरूप अर्थात् जो निर्मल पर्याय उस काल में होनेवाली चोक्कसरूप उस भाव का भावकपनामयी (यानी) भाव का करनेपनामयी (कर्तृत्वशक्ति)। आहाहा ! ऐसी बात है ! समझ में आया ? आहाहा !

एक सादी भाषा बहिनश्री के (वचनामृत में आ गयी)। बहुत सादी भाषा है। गुजराती है, हिन्दी में समझ लेना। ``**जागतो जीव ऊभो छे ने...**'' ऐसा कहा है। ``**जरूर प्राप्त थाय...**'' क्या कहा ? जागतो यानी ज्ञायकभाव। यह ज्ञायकभाव - त्रिकाली जागतो यानी ज्ञायकभाव। जागतो जीव ऊभो छे ने ! ध्रुव छे ने ! यह भाषा (है)। आहाहा ! क्या कहा ? समझ में आया ? ज्ञायक...ज्ञायक... जागृत स्वभावभाव, त्रिकाली ज्ञायक जागृत स्वभावभाव, ऐसा जागता - जागृत स्वभावमयी जीव ऊभो छे ने ? ऊभो यानी है न ! है न ! त्रिकाल है कि नहीं ? समझ में आया ? बहुत सादी भाषा है। इस पुस्तक की तो बहुत प्रकार की पुस्तकें होंगी, ऐसा लगता है। मराठी होगी, कन्नड होगी, हिन्दी हो रही है। अरे...! सुने तो सही !

क्या कहा है ? है ? १६ वां पन्ना है। जागतो जीव ऊभो छे ने ! अर्थात् ज्ञायकभाव

टिकता हुआ भाव है न ! आहाहा ! समझ में आया ? जाणक स्वभाव भाव ऊभो छे ने ! ऊभो यानी ध्रुव है न ! तो उस ओर नज़र करने पर जरूर प्राप्त होगा, आहाहा ! समझ में आयी कि नहीं भाषा ? जागृत स्वभाव यानी यह ज्ञायकभाव।

जागृतभाव नाम ज्ञानभाव - ज्ञायकभाव - स्वभाव भाव - त्रिकाली ज्ञायकभाव - जागतो भाव। यह जीव (यानी) जागृत भावरूपी जीव ऊभो छे ने ! त्रिकाली टिकता हुआ तत्त्व है न ? समझ में आया ? जागृत स्वभाव यानी ज्ञायक स्वभावमयी, आहाहा ! जिसे छट्ठी गाथा में ज्ञायक कहा, ``**णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।**'' ज्ञायकभाव, प्रज्ञान ब्रह्म स्वरूप भगवान ! जागृत स्वभाव का शक्तिवान। `है' ऊभो नाम `है' आहाहा ! `है' जागृत स्वभावरूपी भाव कायमी है। उस पर दृष्टि देने से जरूर प्राप्त होगा। ये शुद्धरूप भाव - वस्तु में जो शक्तियाँ हैं, जागृत स्वभावरूपी ज्ञायकभाव, उसमें कर्तृत्व शक्ति है। वह भी ध्रुव है। ज्ञायकभाव - जागृत स्वभाव ऐसा जीव जो ध्रुव है, उसमें कर्तृत्व शक्ति भी ध्रुवरूप पड़ी है, समझ में आया ? इस ज्ञायकभाव की दृष्टि करने से, कर्तृत्व शक्ति का भी प्रत्येक गुण में रूप होने से, वर्तमान में निर्मल पर्याय - भाव का कर्तृत्वशक्ति के कारण, वर्तमान निर्मल भाव होगा।

ज्ञान के निर्मल भाव में ज्ञान कर्ता है। ज्ञायक त्रिकाल है। परंतु जो ज्ञान गुण है, उसमें कर्तृत्व (शक्ति का) रूप है। यह ज्ञान गुण कर्तृत्व गुण सहित होने से कर्तृत्व गुण का सीधा परिणमन नहीं (होता)। परंतु इस कर्तृत्व को धारण करनेवाला ज्ञायकभाव है, ऐसा ज्ञायकभाव का परिणमन होने से, कर्तृत्व शक्ति का भी साथ में परिणमन होता है। तो क्या होता है ? निर्मल आत्मधर्म - शांति, वीतरागता, स्वच्छता, ज्ञान में ज्ञान के निर्मल परिणाम कर्तृत्व शक्ति के कारण निर्मल परिणाम का कार्य होता है, आहाहा ! बहुत ध्यान रखने जैसा है। बापू ! यह गंभीर शक्ति (है)। ओहोहो ! गज़ब काम किया (है) !

ज्ञायकभाव - जागृत स्वभावभाव, ऐसा जीव प्रभु ! उसमें कर्तृत्व नाम की शक्ति नाम गुण है। ज्ञायकभाव में कर्तृत्व गुण भी ध्रुव है। परंतु ज्ञायकभाव की प्रतीति हुई तो पर्याय में ज्ञानगुण के निर्मल भाव का कर्ता कर्तृत्वशक्ति है, उस कारण से निर्मल पर्याय प्रगट होती है। कोई कर्म का अभाव हुआ तो निर्मल पर्याय प्राप्त होती है, कि पूर्व में पर्याय थी तो निर्मल पर्याय वर्तमान में (प्राप्त हुई, ऐसा नहीं है)। इसलिये सिद्ध कहा। अंदर निर्मल कर्तृत्व शक्ति के कारण ज्ञान के वर्तमान निर्मल परिणाम की प्राप्ति (होती है)। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल(ज्ञान) प्राप्ति का कारण कर्तृत्व शक्ति है, आहाहा ! ऐसी बातें कभी सुनी न हो और ध्यान दे नहीं (तो कैसे समझ में आये) ?

जागृत ज्योत जो भगवान आत्मा ! ज्ञायकभाव से भरा पड़ा (है), आहाहा ! पुण्य और पाप आदि तो अँधेरा है। यह अँधेरा स्वभाव में नहीं। इस स्वभाव में कर्तृत्व नाम की एक शक्ति नाम गुण है। जिस गुण के कारण ज्ञान की वर्तमान निर्मल पर्याय जो सिद्ध नाम होनेवाली है, उसका कर्ता कर्तृत्व शक्ति है। समझ में आया ? निश्चय से कर्तृत्व शक्ति न लो तो इस निर्मल पर्याय का कर्ता द्रव्य है। आहाहा !

यह सब झगड़े है न ! व्यवहार से होता है, निमित्त से होता है, आहाहा ! (उसका समाधान है)। पूर्व में निर्मल पर्याय थी तो पीछे निर्मल पर्याय होगी, यह (बात) यहाँ निकाल देते हैं। यहाँ तो वर्तमान ज्ञान की जो सम्यक्ज्ञान की पर्याय, मति - श्रुतज्ञान की पर्याय या केवलज्ञान की पर्याय उस-उस काल में होनेरूप पर्याय है, उस-उस पर्यायरूपी भाव का भावकपनमयी (यानी) उस भाव का भावक कर्तापनामयी, आत्मा में कर्तृत्व शक्ति है। थोड़े शब्द में इतना भरा है ! आहाहा !

प्रभु ! तेरी ऋद्धि तो देख ! तेरी समृद्धि की संपदा तो देख ! आहाहा ! तेरे में कर्तृत्व नाम की एक शक्ति - संपदा पड़ी है। उस कारण से ज्ञान गुण की वर्तमान निर्मल पर्याय श्रुतज्ञान है, तो उसकी प्राप्ति भी भाव की भावकमयी कर्तृत्व शक्ति के कारण है। और बाद में केवलज्ञान होता है, वह भी कर्तृत्वशक्ति के कारण (होता है)। वर्तमान केवलज्ञान की पर्याय सिद्धरूप जो चोक्कस होनेवाली है, उसका कर्तृत्व शक्ति कारण है। आहाहा ! भारी कठिन काम, भाई ! बनिये को बहुत आता नहीं।

तीनलोक का नाथ अंदर जागृत स्वभाव से भरा हुआ ध्रुवरूप से परमात्मा बिराजमान है, आहाहा ! उसमें कर्तृत्व नाम का एक गुण है। गुणी में गुण है, परंतु दृष्टि में गुणी और गुण का भेद भी नहीं। आहाहा ! दृष्टि में त्रिकाली ज्ञायक गुणी जागृत ज्योति चैतन्य प्रकाश की मूर्ति (है)। समझ में आया ? उस पर दृष्टि करने से, कर्तृत्व शक्ति के कारण, द्रव्य के गुण के कारण, वर्तमान ज्ञान की निर्मल पर्याय का कर्ता, यह गुण है अथवा यह द्रव्य है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

ऐसे दर्शन गुण (में लेना)। दर्शन गुण जो वर्तमान में है, चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन की निर्मल पर्याय जो वर्तमान सिद्ध वही होनेवाली है, ऐसे भाव के भावकमयी (यानी) उस भाव के कर्तामयी कर्तृत्व शक्ति है। आहाहा ! समझ में आया ? इसमें इतना समा दिया है कि, कोई कर्म का क्षयोपशम हुआ तो यहाँ ज्ञान की पर्याय प्राप्त हुई, ऐसा नहीं। चक्षु दर्शन या अवधि दर्शनावरणी के अभाव से दर्शन की पर्याय प्राप्त हुई, ऐसा भी नहीं। केवलदर्शनावरणीय के अभाव के कारण केवलदर्शन प्राप्त हुआ, ऐसा भी नहीं। आहाहा !

खाणिया चर्चा में यह बड़ी तकरार थी न ? तत्त्वार्थसूत्र में लिखा है, चार कर्म

का नाश होने से केवलज्ञान होता है। परंतु उसका अर्थ क्या ? उस समय में कर्म का क्षय उसके कारण से होता है। परंतु उस कारण से यहाँ केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, ऐसा नहीं। केवलज्ञान की पर्याय उस समय में सिद्धरूप होनेवाली पर्याय का भाव का - केवलज्ञानरूपी भाव का भावकमयी - उस भाव की कर्तामयी कर्तृत्व शक्ति है, आहाहा ! ऐसी बाते (हैं) !

भगवान तेरे में (एक) दशि शक्ति है। दशि शक्ति में भी कर्तृत्व शक्ति का रूप है। तो दशि शक्ति की वर्तमान रूप दर्शन पर्याय प्राप्त हो, उसमें कर्तृत्व (शक्ति का) रूप है, यह (शक्ति) उसकी कर्ता है। और कर्म शक्ति में भी अपनी कर्म शक्ति की जो निर्मल पर्याय होती है, उसका भावक का भावमयी कर्तृत्व शक्ति कारण है। आहाहा ! प्रत्येक गुण की वर्तमान निर्मल प्राप्त होती है, उसमें कर्तृत्व शक्ति का रूप है, उस कारण से वह कर्तारूप से उत्पन्न होती है, आहाहा ! सत्य की स्थिति ही ऐसी है, समझ में आया ?

ऐसे चारित्र गुण (में लेना)। आत्मा में एक अकषाय भाव नाम का, चारित्र नाम का गुण है। इस गुण में भी कर्तापना का रूप है। कर्तृत्व गुण भिन्न है, परंतु कर्तृत्व का उसमें रूप है, उस कारण से वर्तमान में निर्मल वीतरागी पर्याय सिद्धरूप से - चोक्कसरूप से प्राप्त होनेवाली है, उसका कर्ता यह कर्तृत्व का रूप है। चारित्रगुण में कर्तृत्व (शक्ति का) रूप है। उसका कर्ता वह है, आहाहा ! चारित्रगुण की वीतरागी पर्याय प्राप्त हो, उसमें ज्ञान - दर्शन में कर्तृत्व है, यह काम नहीं करता है, ऐसा कहते हैं, वह तो चारित्र में कर्तृत्व का रूप है, उस कारण से चारित्र की पर्याय प्राप्त होती है, आहाहा ! ऐसा सूक्ष्म है, बापू !

आत्मा में आनंद नाम की शक्ति है। सुखस्वरूप (शक्ति है)। भगवान आत्मा में एक सुख स्वभाव है। सुख स्वभाव का धरनेवाला द्रव्य है। सुख शक्ति में कर्तृत्व शक्ति का रूप है। इस कारण से सुख प्राप्ति, वर्तमान में आनंद की (प्राप्ति) होती है, यह सुख गुण में कर्तृत्व का रूप है, इस कारण से होती है। आहाहा ! इसमें कितना याद रखना ? संसार की सभी बातें याद रखता है। जिसमें रुचि होती है, वह याद रहता है, आहाहा ! वीतराग मार्ग अलौकिक है, बापू ! उसे समझना यह कोई साधारण बात नहीं है, आहाहा !

अंदर एक वीर्य नाम की शक्ति है। वीर्य नाम के गुण में भी कर्तृत्व का रूप है, आहाहा ! तो अनंत वीर्य जो भगवान को प्रगट होता है, उस सिद्धरूप पर्याय - भाव का करनेवाला कर्तृत्व (शक्ति का) रूप है, वह उसका कर्ता है, आहाहा ! समझ में आया उतना समझे, बापू ! यह तो कह सके नहीं इतनी बातें है।

एक-एक गुण में अनंत गुण का रूप और अनंत गुण में एक-एक गुण का रूप (है), आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ तो द्रव्य, गुण, पर्याय तीन (है)। उसमें भी, निर्मल पर्याय की बात है। यहाँ मलिनता की बात नहीं है। मलिनता का अभाव और निर्मल वीतरागी धर्मरूपी पर्याय का सद्भाव, उसका कर्ता कौन ? कि, पूर्व पर्याय भी (उसकी कर्ता) नहीं। समझ में आया ? कर्म का अभाव भी कारण नहीं, आहाहा ! चारित्र में सम्यग्दर्शन की पर्यायरूपी भाव का भावक, उस भाव का भाव करनेवाला और श्रद्धा और चारित्र में भावरूपी रूप है, उस कारण से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र प्राप्त होता है, आहाहा !

'सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्राणी मोक्षमार्ग' तत्त्वार्थसूत्र में सूत्र है ? (यहाँ) कहते हैं कि, सम्यग्दर्शन की पर्याय जिस समय में प्राप्त होती (है), वह प्राप्त होने का काल है, तो (वह) सिद्धरूप - चोक्कसरूप वही भाव है। उस भाव का कर्ता कौन ? कि श्रद्धागुण में कर्तृत्व का रूप है, उस कारण से भावमयी कर्तृत्व से उत्पन्न होती है। आहाहा ! बहुत गंभीरता (है) ! ओहोहो ! दिगंबर संतों की वाणी है ! एक-एक शक्ति में १२ अंग का सार भर दिया है। आहाहा !

जागृत स्वरूप प्रभु नित्य है। उसमें एक कर्तृत्व शक्ति भी नित्य है। एक-एक गुण में कर्तृत्व का रूप भी नित्य है, आहाहा ! समझ में आया ? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की निर्मल पर्याय जिस समय में (यह) भाव होनेवाला है, उस भाव का भावकपनामयी - उस भाव का कर्तापनामयी - भावक शब्द पड़ा है न ? भाव का भावकपनामयी। उस भाव का कर्तापनामयी। उस-उस गुण में इसका रूप है, वह कर्ता है, आहाहा ! दूसरा गुण का कर्तृत्व दूसरे गुण में कारण है, ऐसा भी यहाँ तो नहीं, समझ में आया ?

ऐसा मार्ग (है) ! लोगों ने बाहर से (धर्म) मना दिया है। यह व्रत करो, उपवास करो, तपस्या करो, दसलक्षणी पर्व में १० उपवास करे इसलिये ओहोहो ! (हो जाता है)। (उसमें) तूने क्या किया ? वह तो अपवास है - खराब वास है। उपवास तो उसे कहते हैं कि, ज्ञायकभाव के समीप जाकर, वर्तमान में उसकी परिणति हो, उसका नाम उपवास है। समझ में आया ? यहाँ तो बात - बात में फ़र्क (है)। इसका मेल कहाँ करना ? आहाहा !

अंदर में स्वच्छत्व नाम की शक्ति है, आहाहा ! उसकी वर्तमान पर्याय में स्वच्छता प्रगट होती है, इस भाव में भावकपनामयी कर्तृत्व का रूप है। यहाँ कर्तृत्व शक्ति है तो इस कर्तृत्व शक्ति का रूप प्रत्येक गुण में है, आहाहा ! समझ में आया ? अलग जात की बात है, आहाहा !

ऐसे आत्मा में प्रभुत्व नाम की शक्ति है। भगवान आत्मा ! प्रभुत्व शक्ति का आश्रय करनेवाला यानी कि द्रव्य के आश्रय से प्रभुत्व शक्ति है। प्रभुत्व शक्ति का आश्रय द्रव्य है। परंतु प्रभुत्व शक्ति में वर्तमान में प्रभुता की पर्याय - प्रगट कार्य होनेवाला, भाव का कर्ता (ऐसा) प्रभुत्वशक्ति में कर्तृत्व शक्ति का रूप है, इस कारण से वर्तमान में प्रभुता की पर्याय भाव की - भावकपनामयी होती है, आहाहा ! ऐसी बात है ! आहाहा !

आत्मा में एक अकार्यकारण नाम का गुण है कि, जिस कारण से वर्तमान निर्मल पर्याय होती है, यह निर्मल पर्याय राग का कारणरूप कार्य नहीं, वैसे निर्मल पर्याय राग का कारण नहीं। अकार्यकारण की परिणति जो हुई, उस समय में होनेवाली पर्याय, राग का कारण नहीं और राग का कार्य नहीं। ऐसे निर्मल पर्याय भावरूप, भावकपनामयी - कर्तापनामयी शक्ति से है। (इस शक्ति के कारण) यह पर्याय उत्पन्न हुई है। आहाहा ! समझ में आया ?

सर्व गुण असहायक - (कोई) गुण को किसी की सहाय नहीं। एक गुण में दूसरे गुण का निमित्तपना है अथवा एक गुण व्यापक है वहाँ (दूसरा गुण) व्यापक है। परंतु एक गुण दूसरे गुण की सहाय से रहता है और एक गुण की पर्याय दूसरे गुण की पर्याय की सहाय से होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा ! एक भाव भी यथार्थ समझे तो सब खुलासा हो जाये। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

आत्मा में एक प्रमेयत्व नाम का गुण है। अपने गुण का प्रमाण करना और दूसरे के परिणाम में अपना प्रमेय होना। (ऐसा इस गुण के कारण से होता है) आहाहा ! प्रमेयगुण - परिणम्यपरिणामकत्व (शक्ति) आ गयी है। अपने ज्ञान में प्रमाणरूप होना और दूसरे ज्ञान में प्रमेयरूप होना। इस गुण की वर्तमान पर्याय जो सिद्ध नाम जो होनेवाली है, इसमें उस भाव के भावकपनामयी (अर्थात्) परिणम्यपरिणामकत्व शक्ति में कर्तृत्व (शक्ति का) रूप है, इस कारण से होती है। आहाहा ! भाषा (सादी है, परंतु) गंभीर भाव भरा है !

एक-एक गुण में अनंत गुण का रूप और एक गुण में अनंत का रूप, आहाहा ! और एक गुण में इस रूप की अनंती शक्तियाँ और एक-एक गुण की अनंती निर्मल पर्याय ! यहाँ मलिन (पर्याय की) बात नहीं है, आहाहा ! प्रत्येक गुण की निर्मल पर्याय - भावरूप, सिद्धरूप - उस समय में होनेवाली है, उसरूप जो चोक्कस भाव, आहाहा ! (यहाँ) क्रमबद्ध सिद्ध किया। (उसमें) उसका कर्तापना भी सिद्ध किया। समझ में आया ? थोड़ा सूक्ष्म है लेकिन उसे समझना तो पड़ेगा कि नहीं ? भाई ! आहाहा !

यह तो बहिन की सादी भाषा है। सादी-सादी (भाषा है), आहाहा ! ``**जागतो जीव ऊभो छे ने, प्रभु ?**'' ऐसे है न ? समझ में आया ? ऐसी इस शक्ति की गंभीरता है।

भगवान ! सादी भाषा है। (बहिनश्री चंपाबहिन के) जीवन में बहुत निवृत्ति। बहुत संक्षिप्त भाषा में पुस्तक का सार आ गया है। यह पुस्तक तो मेरे हिसाब से सभी ज़गह वांचन में चलेगी। समझ में आया ? वांचन करने जैसा है। बहुत लंबा-लंबा नहीं समझ में आये लेकिन यह संक्षिप्त में समझ में आये, (ऐसा है)। यहाँ तो भाषा कोई भी प्रकार की हो परंतु वस्तुस्थिति सिद्ध करती हो तो भाषा कोई भी हो, (उससे कोई मतलब नहीं)। समझ में आया ? हिन्दी में ही सिद्ध होता है और गुजराती में (सिद्ध) नहीं होता, ऐसा नहीं है, आहाहा !

प्रभु ! तू जागती ज्योत (स्वरूप) खड़ा है न ? ऊभा नाम खड़ा (है)। तुम जागती चैतन्य ज्योतमयी ध्रुव है। जागती ज्योत का स्थंभ है, ध्रुव स्थंभ है। उस पर नज़र करना, यह तेरा कार्य है। कोई बड़ा आदमी आया हो तो उसके साथ बातचीत करता है कि नहीं ? या, बातचीत बालक के साथ करे और उसके साथ नहीं करे ? (ऐसा करे तो) उसको ऐसा लगे कि, यहाँ आये उसका कोई फायदा नहीं है। कोई करोड़पति - अबजोपति आपके यहाँ आये (और) वे १५ मिनट ही बैठनेवाले हो, उसमें वह बालक के साथ खेलने लगे तो सेठ उठकर चला जायेगा। वैसे भगवान महा प्रभु ! तेरे पास ध्रुव खड़ा है न ? आहाहा ! उस पर नज़र नहीं करके राग और पुण्य पर नज़र (है, तो) तेरी नज़र बालक की है। इसलिये तेरे लिये (ध्रुवस्वरूप) नहीं है, ऐसा हो गया। समझ में आया ? आहाहा ! तेरा पुण्य-पाप के विकल्प में रुकना तो बालबुद्धि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा !

भगवान आत्मा चैतन्य ज्योति पड़ा है न ! और उसमें उसका कर्तृत्व नाम का गुण है न ? यहाँ तो क्या कहा ? जीव का कोई ईश्वर कर्ता नहीं। जीव को जीव का कोई ईश्वर कर्ता नहीं। जीव की पर्याय का कोई ईश्वर कर्ता नहीं। जीव की जो गुण की पर्याय है उसका दूसरा गुण और दूसरी पर्याय कर्ता नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी कर्तृत्व (शक्ति) और करण शक्ति का वर्णन वीतराग संतों के अलावा कहीं नहीं है। कठिन बात है, बापू ! मार्ग किसी ने देखा नहीं है न ! आहाहा ! यह तो भगवान के पास से आया है न ? कहते हैं कि, तू यह शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप के भाव का लक्ष छोड़ दे, उसमें आत्मा नहीं है। और एक समय की पर्याय का लक्ष भी छोड़ दे, उसमें पूरा आत्मा नहीं है।

भगवान ! सारा आत्मा तो ध्रुव स्वरूप जागृतभाव खड़ा है। उसमें यह कर्तृत्व नाम की शक्ति पड़ी है। इस ध्रुव पर ज़ोर करने से, ध्रुव का ध्यान करने से, ध्रुव का आश्रय लेने से, जो पर्याय प्रगट होती है, उस समय में वह होनेवाली है। उसका गुण जो है यह उसका कर्ता है। एक-एक गुण में षट्कारक का परिणमन अपने से है, ऐसा कहते

हैं। यह तो करणशक्ति उतारी है। बाकी एक ज्ञानगुण की पर्याय (में) ज्ञान स्वयं कर्ता, कर्म वह ज्ञान की पर्याय, करण वह ज्ञान की पर्याय, संप्रदान अपनी पर्याय रखी, (अपादान) अपनी ज्ञान की पर्याय से ज्ञान की पर्याय हुई, ज्ञान की पर्याय का आधार ज्ञान पर्याय है। ऐसी बातें (हैं) ! (लोगों को) कहीं फुरसद नहीं मिलती। आहाहा !

अपनी संपदा कितनी है ? (उसकी खबर नहीं)। ज्ञान गुण की एक पर्याय में षट्कारक का निर्मल परिणमन (अपने से है)। आहाहा ! वास्तव में तो वह पर्याय ही पर्याय की कर्ता है। परंतु यहाँ गुण है उसको लेना है। कर्तृत्व शक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्याप्त होती है। कर्तृत्व शक्ति है, (यह) द्रव्य में है और गुण में है। परंतु जहाँ उसका स्वीकार हुआ, धर्मी की दृष्टि हुई, तो कर्तृत्वशक्ति के परिणमन में निर्मल पर्याय का कर्ता इस पर्याय में आ गया। आहाहा ! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं। मार्ग तो ऐसा है, भाई ! वीतराग मार्ग गंभीर मार्ग (है), आहाहा !

यहाँ तो (लोग) कहते हैं कि, चौथे गुणस्थान में व्यवहार समकित होता है। अरे प्रभु ! तू क्या कर रहा है ? सम्यग्दर्शन में तो सारा आत्मा प्रतीत में आ गया। सम्यक् (अर्थात्) सत्य दर्शन - सत्य का दर्शन हुआ। आहाहा ! देखनेवाले को देखा, जाननेवाले को जाना। ऐसी प्रतीत है यह तो वीतरागी प्रतीत है। वहाँ सराग (पना) नहीं है। आहाहा ! सरागपना का उसमें अभाव है, यह अनेकांत है। सराग समकित का वीतरागी पर्याय के कारण (उसमें) अभाव है। उसका नाम अनेकांत और स्याद्वाद है, आहाहा ! समझ में आया ?

यह कर्तृत्व शक्ति जो है, कर्म शक्ति में भी कर्तृत्वशक्ति का रूप है। क्या कहा ? बहुत गंभीर है। इसमें शब्दों का इतना संग्रह है ! भाव का इतना संग्रह है ! अनंत...अनंत... भाव समा दिये हैं ! एक-एक वाक्य में अनंत-अनंत भाव का समावेश कर दिया है। आहाहा ! कर्म नाम की जो शक्ति है, इसमें भी कर्ता नाम का रूप है। आहाहा ! और कर्ता नाम की शक्ति है उसमें कर्म (शक्ति का) रूप है। आहाहा ! अपने आप (पढ़े तो) कुछ हाथ में आये ऐसा नहीं है। कॉलेज में पढ़ने जाना पड़ता है कि नहीं ? वैसे जहाँ (उसकी पढ़ाई) होती हो वहाँ जाना पड़ता है कि नहीं ? आहाहा ! यह तो जीव के जीवन की बात है, भाई ! जीव का जीवन जो ज्ञान, दर्शन, और आनंद की पर्याय से जीए, यह जीवन का जीवन है। शरीर से जीए यह जीव का जीवन है ही नहीं। और दया, दान के विकल्प से जीए, यह जीव का जीवन नहीं, आहाहा ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा जीव (है), उसमें अनंत शक्तियाँ हैं और जीवपना भी है और उसकी पर्याय है, वह भी जीवपना है। निर्मल पर्याय है यह जीवपना है। आहाहा ! दया, दान

और व्रत, यह जीवपना है ही नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? यह तो भगवान की पेढ़ी है, आहाहा !

भगवान परमात्मा ! अपने स्वरूप में अनंत शक्तियाँ अर्थात् अनंत गुण बसे हैं। इन गुणों का कार्य क्या ? आहाहा ! ज्ञानगुण का कार्य निर्मल (ज्ञान) पर्याय होना, श्रद्धागुण का (कार्य) समकित की पर्याय होना, चारित्र गुण की पर्याय में वीतरागीदशा उत्पन्न होना, आहाहा ! सुख गुण में आनंद का वेदन आना, आहाहा ! और कर्म गुण का वर्तमान में जो कार्य है, यह कर्म (गुण का) कार्य है और कर्ता (गुण की पर्याय हुई) उसका कर्ता भी कर्ता गुण है। आहाहा !

सम्यग्दर्शनरूपी धर्म पर्याय, उसमें भी कर्म (शक्ति का) रूप है तो उसके कारण सम्यग्दर्शन की सिद्ध पर्याय - उस समय में होनेवाली हुई है। उस भाव का कर्ता (यह) कर्म (शक्ति) है और उसमें कर्तृत्व शक्ति का रूप भी है। आहाहा ! उस कारण से सम्यग्दर्शन की पर्याय (रूप) भाव - उसका भावकपनामयी कर्तृत्वशक्ति का रूप है। बहुत समावेश किया है !

दीपचंदजी ने अध्यात्म पंचसंग्रह में सवैया में (बहुत) समा दिया है। इतना लिखा है कि, जल्दी पकड़ में नहीं आये। इतना सत् का विस्तार किया है। समझ में आया ? आहाहा ! उसमें वस्तु की स्थिति ऐसी है उसका वर्णन किया है। (ऐसे ही कोई लिखा दिया है, ऐसा नहीं है)।

``**होनेपनरूप...**'' होनेपनरूप यानी वर्तमान अवस्था। ``**सिद्धरूप...**'' यानी जो होनेवाली है वह होती है। उसके भाव के भावक। उस ``**...भावके भावकत्वमयी (कर्तृत्वशक्ति)।**'' आहाहा ! कितना समा दिया है ! संतों ने गज़ब काम किया है ! आहाहा ! दिगंबर संतों ने जैन धर्म और केवलज्ञान के सब `कक्के' का घुटन किया है। आहाहा ! `कक्का' माने केवलज्ञान ले ! `खख्खा' माने तेरी खबर ले ! आहाहा ! समझ में आया ? थोड़ा भी (हो लेकिन) सत्य समझना चाहिए। सत्य कहाँ है (और) सत्य का स्वरूप कैसे है ? इतना समझना तो चाहिए। दूसरा विशेष ज्ञान (भले ही) न हो, लेकिन सत्य जैसे है (ऐसे) उसका ज्ञान होना चाहिए और भाव के भासन में यह चीज़ होनी चाहिए। आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसे ``**होनेपनरूप और सिद्धरूप...**'' ओहोहो ! गज़ब काम किया है ! सिद्धरूप यानी उस समय की अवस्था (प्राप्त) है। (समयसार) ७६, ७७, ७८ (गाथा में) प्राप्य, विकार्य, निवर्त्य आता है न ? प्राप्य यानी उस समय में जो पर्याय होनेवाली है, उसको प्राप्त करते हैं, यह प्राप्य है। ओहोहो ! समझ में आया ? धीरे-धीरे विचार करना, भगवान ! तेरी संपदा बड़ी है, आहाहा ! अनंत गुण (है)। एक-एक गुण में अनंत रूप ! एक-

एक गुण में अनंत रूप, अनंत गुण में अनंत रूप, ऐसी अनंती पर्याय में अनंता रूप ! अनंती पर्याय में अनंती पर्याय जो भिन्न है, उसका रूप ! आहाहा ! (व्यवहार से समकित होता है) ऐसा अभी तो चलता है, बापू ! भगवान (आत्मा) एक ओर पड़ा रहा। जिसमें विभाव नहीं है, उस रास्ते पर चढ़ा दिया है। अरे प्रभु ! वीतराग का विरह है (और लोगों को) राग के रास्ते पर (चढ़ा दिया)।

एक-एक गुण में कर्तृत्व नाम की (शक्ति का) रूप है, आहाहा ! उस कारण से जिस समय में उस गुण की जो पर्याय होनेवाली है, उसका कार्य वह गुण है। दूसरा गुण भी कर्ता नहीं। आनंद की पर्याय (होने में), कर्तृत्व पर्याय जो हुई, वह कर्तृत्व की पर्याय भी इस आनंद गुण की पर्याय नहीं करता। आहाहा ! ऐसी बात है ! याद रहना मुश्किल है। ऐसा मार्ग है। कभी सुना भी नहीं और ऐसा माने कि, हम स्थानकवासी हैं, श्वेतांबर हैं, हम दिगंबर हैं, आहाहा !

एक-एक पर्याय में पर्याय का गुण कर्ता और एक-एक पर्याय में पर्याय खुद कर्ता, आहाहा ! एक समकित की पर्याय (हुई, उस पर्याय में) समकित की पर्याय की कर्ता पर्याय, कर्म पर्याय, साधन पर्याय, करण वह पर्याय, संप्रदान (यानी) हुई उसे रखी और पर्याय में से पर्याय हुई और पर्याय के आधार से पर्याय हुई, आहाहा ! ऐसे एक-एक गुण की एक-एक पर्याय में षट्कारक लगाना, आहाहा ! समझ में आया ? एक-एक पर्याय में पर से पर्याय नहीं, ऐसी अनंती पर्याय की सप्तभंगी लगाना। अपनी पर्याय से पर्याय है - दूसरी अनंती पर्याय से नहीं। ऐसी सप्तभंगी लगाना, आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा मार्ग (है) ! (फिर भी) कोई विरोध करे, प्रभु ! एकबार सुन तो सही, नाथ ! एकबार तेरी बात तो सुन ! फिर तुझे विरोध करने का रहेगा नहीं, भाई ! प्रभु ! तेरे घर की बात है, आहाहा !

वर्तमान में लोग चिल्लाते हैं कि, 'सोनगढ़वाले निश्चय से (धर्म) होता है, (ऐसी) बात करते हैं, व्यवहार से (धर्म) नहीं होता है, (ऐसा कहते हैं) तो (यह) एकांत है।' अरे प्रभु ! सुन तो सही, बापू ! भगवान ! यह सम्यक् एकांत है। एकांत में भी सम्यक् एकांत और मिथ्या एकांत दो (प्रकार) होते हैं। अनेकांत में भी सम्यक् अनेकांत और मिथ्या अनेकांत, दो प्रकार होते हैं। अपनी पर्याय अपने से हो और राग से भी हो, यह मिथ्या अनेकांत है। अपनी पर्याय अपने से है, पर से नहीं, यह सम्यक् अनेकांत है, आहाहा !

अरे...! जिंदगी चली जा रही है, बापू ! उसका जिस समय में जो कार्य (आत्महित) करना हो वह नहीं करे, करने योग्य कर्तृत्व है उसे न करे और नहीं करने योग्य (कार्य में) रुक जाये, आहाहा ! सारी दुनिया उस रास्ते पर है इसलिये उसे देखकर खुद

भी उस रास्ते पर चला जाता है। लेकिन दुनिया दुःखी हो रही है तब तू (भी) उस दुःख में जा रहा है ? तेरे दुःख में तू है और उसके दुःख में वह है। आहाहा ! अकेला दुःखी होकर रुदन करे - मुझ से सहन नहीं होता है।

एक श्वेतांबर साधु थे। ८८ की साल की बात है। जामनगर में सब साधु हमारे पास आते थे। हमारा नाम बड़ा था। एक (साधु) बिमार थे इसलिये हम वहाँ गये थे। वे कहते थे, `महाराज ! अब मुझसे सहन नहीं होता है' देह की ५५-६० वर्ष की उम्र होगी। बापू ! (शरीर) तो जड़ की पर्याय है, भाई ! कहते थे, `मुझसे सहन नहीं होता है। अब यह जिंदगी कैसे निकालनी ?' भाई ! क्या हो सकता है ? बापू ! आत्मा को सहन करना पड़े। आहाहा ! (जो) होता है, उसे ज्ञाता - दृष्टारूप से जानना, यह आत्मा का कार्य है। समझ में आया ? आहाहा ! अपने पर जब आता है तब कठिन लगता है।

यहाँ तो कहते हैं, सुन तो सही नाथ ! तेरे में एक कर्तृत्व नाम का गुण है (जो) निर्मल पर्याय को करे - मलिन पर्याय को करे नहीं, ऐसा तेरे में गुण है। विकारभाव का करनेवाला आत्मा नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात और ऐसा धर्म का स्वरूप, लेकिन इसमें करना क्या ? करना यह कि, द्रव्य स्वभाव है, उसमें अनंत शक्ति है, इस शक्ति को धरनेवाले भगवान की दृष्टि करना और उसका ज्ञान करना। जागृत ज्ञायकभाव है उसका ज्ञान, उसकी श्रद्धा और उसमें लीनता, यह करना है। लीनता में तो अनंत गुण की पर्याय उसमें लीन होती है, आहाहा ! समझ में आया ? यह ४२ (शक्ति समाप्त) हुई।

अब ४३ (शक्ति) थोड़ी शुरू करे हैं फिर कल (लेंगे)। ``**भवते हुए (प्रवर्तमान) भावके भवन के (- होने के)...**'' आहाहा ! अमृतचंद्र आचार्य ने समयसार में शिरोमणि शक्ति निकाली है। आहाहा ! करण शक्ति का वर्णन (है)। करण नाम कारण शक्ति अंदर है। वर्तमान पर्याय में करण शक्ति के कारण कार्य होता है, आहाहा ! क्या कहते हैं ? देखो !

``**भवते हुए...**'' (यानी) होनेवाली। ``**प्रवर्तमान**'' (यानी) वर्तमान भाव। उसके ``**...भवनके होनेके...**'' (अर्थात्) उसके होने में। ``**...होनेके साधकतमपनेमयी...**'' साधकतम (माने) उत्कृष्ट साधकपना, आहाहा ! जो करण नाम की शक्ति है, यह निर्मल पर्याय की साधकतम कारण है। यह कारण है। राग आदि कारण नहीं है। निमित्त कारण नहीं है, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? विशेष कहेंगे....

प्रवचन नं. ३८
शक्ति-४३ दि. १७-०९-१९७७
भवद्भावभवनसाधकतमत्वमयी करणशक्तिः ।।४३।।

समयसार, शक्तियों का अधिकार (चलता है)। शक्ति यानी आत्मा का गुण जो है, आत्मा जो गुणी है - स्वभाववान है, उसके गुण को शक्ति कहते हैं। शक्ति कहो कि गुण कहो (दोनों एक ही बात है)। उसमें अनंत शक्ति है। वस्तु आत्मा एक - दृष्टि करने लायक एक परंतु उसमें अनंत शक्तियाँ हैं। (वह) भेदरूप है। शक्ति पर लक्ष करना, ऐसा नहीं। शक्तिवान जो अभेद - एकरूप आत्मा है, उस पर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। वहाँ से धर्म की शुरूआत होती है, आहाहा ! कोई दया, दान, व्रत, भक्ति, उपवास, २-५-२५ लाख के मंदिर बनाये - उससे धर्म नहीं होता, आहाहा ! ऐसी बात है ! वह (राग भाव) धर्म की शुरूआत का कारण नहीं। धर्म की शुरूआत का कारण (करण शक्ति है)। करण शक्ति आज चलेगी न ? करण शक्ति कहो या कारण शक्ति कहो (एक ही बात है)। आहाहा !

भगवान आत्मा में एक कारण नाम की शक्ति है। यहाँ करण कहेंगे। करण कहो - कारण कहो (एक ही बात है)। आत्मा में साधन - साधक नाम की एक शक्ति है। आहाहा ! कहीं सुना न हो इसलिये आदमी को मुश्किल पड़ता है। (उसे ऐसा लगे कि), यह कैसा धर्म निकाला ? हम तो व्रत पालने, भक्ति करनी, पूजा करनी, यात्रा करनी - यह सब (धर्म मानते हैं)। अरे भगवान ! भाई ! तुझे खबर नहीं, बापू ! वीतराग धर्म तो इसे कहते हैं कि, राग से रहित अपनी चीज़ है, उसकी शक्तियों का भेद भी लक्ष में नहीं लेना, आहाहा ! शक्तिवान जो भगवान आत्मा है, अखण्ड अभेद, एकरूप उसकी दृष्टि करने से धर्म की प्रथम शुरूआत - सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है। बाकी सब थोथा (बेकार) है। आहाहा ! समझ में आया ? आज तो यहाँ अभी (करण) शक्ति का वर्णन है।

कितने नंबर की हुई ? ४३ (हुई)। ४७ शक्ति के वर्णन में आज ४३ नंबर की (शक्ति) आयी। आहाहा ! क्या कहते हैं ? ``**भवते हुए...**'' थोड़ा सूक्ष्म है। बहुत ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसी बात है। यह कोई कथा - वार्ता नहीं। यह तो भगवान आत्मा की भगवत् स्वरूप कथा है।

सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव, परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ इस आत्मा की कथा करते हैं। दिव्यध्वनि में आया कि, प्रभु ! एकबार सुन तो सही ! आहाहा ! तेरी चीज़ में जो वर्तमान ``**भवते हुए (प्रवर्तमान...)**'' (अर्थात्) वर्तमान जो परिणाम (यानी) सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि का निर्मल वर्तमान प्रवर्तमान परिणाम। प्रत्येक में ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है। एक शब्द इधर-उधर हो जाये तो कुछ समझ में आये ऐसा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि, आत्मा जो पदार्थ वस्तु है, उसमें एक शक्ति ऐसी है कि, वर्तमान निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि निर्मल परिणाम का (माने) भवते हुए भाव का - होनेवाला भाव का भवते हुए का अर्थ (हुआ)। आहाहा ! ऐसे ``**भवते हुए (प्रवर्तमान) भावके भवनके (- होनेके)...**'' धर्म की वीतरागी पर्याय - सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, प्रभुता, स्वच्छता आदि अनंत गुण की वर्तमान निर्मल पर्याय - प्रवर्तमान का भाव उसके होने में कारण, अंदर में करण शक्ति है, यह कारण है। आहाहा ! समझ में आया ?

दुनिया ऐसा कहती है कि, व्रत करो, उपवास करो, भक्ति करो, पूजा करो यह सब (धर्म के) साधन हैं। भगवान तो (यहाँ) ना कहते हैं। समझ में आया ? इसे साधन कहा है न ? भिन्न साध्य-साधन शास्त्र में आता है। वह भिन्न साधन - साध्य कहा, वह तो निमित्त का ज्ञान कराने को कहा है। पंचास्तिकाय में भिन्न साधन - भिन्न साध्य (है)। राग की क्रिया की मंदता वह भिन्न साधन और निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि साध्य - वह तो व्यवहार ज्ञान कराने को कहा है और वह आरोपित कथन है, आहाहा ! निश्चय में - वास्तविकता में - यथार्थ में भगवान आत्मा में करण नाम का गुण है (यह कारण है)। भगवान आत्मा गुणी (है) और उसमें करण नाम का एक गुण है। करण कहो कि कारण कहो (दोनों एकार्थ हैं)। जिस करण नाम के गुण के कारण वर्तमान निर्मल पर्याय के साधनरूपी करण को प्राप्त होता है, आहाहा !

यह तो वीतराग मार्ग (है) ! भाई ! अनंतकाल में समझ नहीं है। अनंतबार जैनदर्शन - संप्रदाय में जन्म हुआ और साक्षात तीनलोक के नाथ तीर्थंकर महाविदेह में बिराजते हैं, वहाँ भी अनंतबार जन्म हुआ है। समवसरण में भी अनंतबार गया है और भगवान की वाणी भी सुनी है, आहाहा ! लेकिन उन्होंने जो कहा कि, तेरी चीज़ में कारण नाम

का एक गुण है, उससे तेरी पर्याय में कार्य होता है। मोक्ष का मार्ग - `सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्राणी मोक्षमार्ग' इस कार्य का कारण तेरे में करण नाम की शक्ति है, इस कारण से यह कार्य होता है। आहाहा ! समझ में आया ? फिर भी करण शक्ति पर लक्ष नहीं करना है। लक्ष तो करण का धरनेवाला द्रव्य जो है, उस पर दृष्टि देने से पर्याय में कार्य होता है। आहाहा ! पर्याय कहो कि कार्य कहो (एकार्थ है)।

``**भवते हुए...**'' कहा न ? ``**भवते हुए (प्रवर्तमान) भाव...**'' (अर्थात्) वर्तमान भाव। आहाहा ! यहाँ तो (लोग) कहते हैं कि, दया पालो, व्रत करो। उपवास करो, चोवियार करो, कंदमूल नहीं खाओ, भगवान के दो-पाँच मंदिर बनाकर पूजा करो, इसलिये धर्म हो जायेगा। अरे प्रभु ! सुन तो सही, भाई ! वह तो शुभ भाव किया हो तो कदाचित् पुण्य है, धर्म नहीं। आहाहा ! धर्म तो वीतरागी स्वरूप भगवान (आत्मा) उसमें करण नाम का धर्म पड़ा है, गुण पड़ा है, शक्ति पड़ी है तो उस कारण से धर्मी ऐसे आत्मा पर दृष्टि करने से, साधक नाम की एक शक्ति है, उसका निर्मल परिणाम का कारण यह साधकपना है। सम्यग्दर्शन की पर्याय का कारण साधक नाम की शक्ति है, उसके कारण यह परिणाम होता है, आहाहा ! धीरे-धीरे आता है। अंदर से आये ऐसे हो न ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, जो चीज़ पड़ी है, ध्रुव भगवान आत्मा ! वर्तमान पर्याय में उत्पाद - व्यय है परंतु वह एक समय की मुद्दतवाली चीज़ है, परंतु चीज़ जो ध्रुव है, वह तो त्रिकाली मुद्दतवाली चीज़ है, आहाहा ! त्रिकाली जिसकी मुद्दत है, ऐसा ध्रुव, उस पर दृष्टि करने से उसकी पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि का परिणाम हो, उसका कारण द्रव्य है अथवा द्रव्य में रही हुई साधक नाम का एक गुण - शक्ति है, (यह कारण है)। निर्मल पर्याय का कारण यह (गुण) है। आहाहा !

कभी सुना भी नहीं। ऐसे ही जिंदगी माथाकूट में चली गई। आहाहा ! हम जैन है और हम धर्म करते (हैं), ऐसे बफम में जिंदगी चली जाती है। बापू ! आहाहा ! भव के अभाव के कारणरूप जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान की निर्मल पर्याय उसका साधक नाम की शक्ति है, उस कारण से पर्याय में कार्य होता है। आहाहा ! व्यवहार रत्नत्रय का बीच में आता है लेकिन वह कारण नहीं, आहाहा ! वह तो हेय है। समझ में आया ? उपादेय तो भगवान आत्मा ! जिसमें साधक नाम का, करण नाम का गुण पड़ा है, इस गुण का धरनेवाला गुणी, आहाहा ! पंचम पारिणामिक स्वभावभाव, नित्यानंद नाथ प्रभु ! उसका आश्रय करने से उसमें साधक नाम की शक्ति - गुण है, उस कारण से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का परिणाम - प्रवर्तमान भाव प्रगट होता है, आहाहा ! ऐसा सुनना मुश्किल पड़े।

श्रोता : साधक और करण एक ही बात है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : साधक कहो, करण कहो या कारण कहो एक ही बात है। तीन शब्द लिये न ? समझ में आया ? आहाहा ! धीरे से समझे, प्रभु ! यहाँ तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव परमेश्वर का हुकम - आज्ञा में यह आया है, आहाहा ! कि, प्रभु ! तेरे धर्म का जो कार्य है, यह धर्म का कार्य तो वीतरागी पर्याय है। दया, दान, व्रत, यह कोई धर्म का कार्य है ही नहीं। आहाहा ! वह तो बंध का कारण है, आहाहा ! कठिन बात (है) !

कभी चैतन्य भगवान अंदर महा माहात्म्यवाली चीज़ हे, (उसकी महिमा नहीं आयी)। जिसकी महिमा पूर्ण सर्वज्ञ परमेश्वर भी वाणी द्वारा कह सके नहीं, ऐसी यह चीज़ अंदर भगवान सच्चिदानंद प्रभु आत्मा है। सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा (उसकी बात है)। अज्ञानी आत्मा.. आत्मा करते हैं, उसकी यह बात नहीं है, आहाहा !

सर्वज्ञ परमेश्वर ने अपने आत्मा को ऐसा देखा, ``प्रभु तुम जाणग रीति, सौ जग देखता हो लाल'' हे नाथ ! आप सर्वज्ञ परमेश्वर तीनकाल तीनलोक के द्रव्य, गुण, पर्याय को एक समय में जानते हो। `प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल, निज सत्ताए सुद्ध अपने पेखता हो लाल' प्रभु ! आप अपने सर्वज्ञपने में हमारी निज सत्ता - निज हयाती पवित्र है, (ऐसा) आप आत्मा को देखते हो। पुण्य, पाप और शरीर को तो तुम पर देखते हो, आहाहा ! भगवान शरीर, वाणी, मन, कर्म को अजीवरूप से देखते हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग वासना को भगवान पापरूप देखते हैं। और दया, दान, व्रत, शील, ब्रह्मचर्य आदि के भाव को भगवान पुण्यरूप देखते हैं, आहाहा ! `निज सत्ताए...' निज हयाती - स्वयं का है - पना, वह तो प्रभु आप शुद्ध है, ऐसा देखते हैं। शुद्ध नाम द्रव्य, गुण दोनों पूर्ण शुद्ध है, इसको आत्मा कहते हैं। इस आत्मा में एक करण नाम की शक्ति है। गुण है, साधकपना का एक गुण है। साधकपना जो अंदर प्रगट होता है, उसका (कारण) साधक नाम की शक्ति है, आहाहा ! जवाहरात के (धंधे में) कभी सुना नहीं और माथाकूट करके जिंदगी चली गई, आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! सारी जिंदगी पैसा...पैसा..., धूल...धूल...धूल में (गई)।

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं, जो कोई पर चीज़ को माँगता है, वह बड़ा रांका - भिखारी है। अपनी चीज़ आनंद का नाथ भगवान, अनंत शक्ति संपन्न (वस्तु) पड़ी है, उसके पास (सुख) माँगता नहीं है और पर के पास (सुख) माँगता है कि, इसमें से (सुख) लाओ, पैसे में सुख है, स्त्री में सुख है, दो-पाँच-पच्चीस लाख का मकान बनाकर वास्तु ले और पाँच-पचास हज़ार-लाख - दो लाख खर्च करे, (तो मान ले कि हम) सुखी हैं।

धूल में भी (सुखी) नहीं है, सुन न ! दुःखी आकुलता के भण्डार में पड़ा है। सुख तो भगवान आत्मा में पड़ा है। सुख शक्ति आत्मा में है और उसके साथ साधन शक्ति भी है। सुख का साधन करके आत्मा में सुख की प्राप्ति करनी, इस सुख की प्राप्ति का कार्य का कारण, यह साधक नाम की शक्ति है, आहाहा !

एक सुख नाम का गुण है, उसमें साधक नाम के गुण का रूप है। रूप यानी स्वरूप। जो आत्मा है इसमें आनंद नाम की शक्ति - गुण है। (उसके साथ) एक साधक नाम की, करण नाम की शक्ति है। आनंद गुण में करण शक्ति) नहीं, लेकिन आनंद गुण में साधकपना की शक्ति का स्वरूप है। आनंद में साधकपना की शक्ति का स्वरूप है। (किसी को ऐसा लगे) क्या कहते हैं ? कुछ मेल खाता नहीं, आहाहा ! आत्मा में आनंद नाम का गुण है। उसमें साधक नाम की शक्ति का स्वरूप है। साधक नाम की शक्ति आनंदगुण में नहीं। आहाहा ! भारी बातें (हैं) बापू ! निज घर में क्या है ? इसकी खबर नहीं और परघर में ढूँढने जाता है। बड़ा मूर्ख है। अबजोपति सब पर में (सुख) ढूँढते हैं, वे सब मूर्ख हैं। यहाँ तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, आत्मा में ज्ञान गुण है। उसके साथ एक कारण नाम साधक नाम की शक्ति है। यह शक्ति ज्ञानगुण में नहीं। ज्ञानगुण में इस शक्ति का स्वरूप है। यह क्या ? अभी रूप के बदले में स्वरूप कहा। समझ में आया ? दूसरे प्रकार से कहें तो, अंदर ज्ञानगुण में यह साधक नाम की शक्ति का भाव है। यह शक्ति वहाँ (ज्ञानगुण में) नहीं। ऐसी बातें हैं !

अरे...! उसके घर में (क्या है, यह) कभी सुना नहीं। मेरे घर में क्या है ? और मैं कहाँ रखड़ता हूँ ? भटकता हूँ ? आहाहा ! चौरासी (लाख योनी के) अवतार में अनंत बार तो निगोद में अवतार लिया। अनंत बार अबजोपति राजा (हुआ)। एक दिन की अबज (रुपये की) कमाई करनेवाला) ऐसा राजा अनंत बार हुआ। धूल का धणी मरकर नरक में गया। आहाहा ! समझ में आया ? परंतु आत्मा की शक्ति और आत्मा क्या है ? इसकी कभी खोज नहीं की। आहाहा ! समझ में आया ? जिंदगी में कहीं सुनने मिले ऐसा नहीं है। आहाहा ! यह बात, बापू ! क्या कहें ? इस समय में यह बात बहुत लोप हो गई है। साधु नाम धरानेवाले भी व्रत करो, उपवास करो, मंदिर करो, यात्रा करो उससे तुझे धर्म है, (ऐसा कहते हैं)। ऐसी प्ररूपणा मिथ्यादृष्टि की है। समझ में आया ? वह मिथ्यादृष्टि है, साधु नहीं, आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि, प्रभु ! एक बार सुन तो सही ! तेरी चीज़ में अनंत शक्तियाँ एक साथ ऐसे विस्तार से पड़ी हैं। और उसकी पर्याय है, वह क्रमसर आयत होती है।

एक के बाद एक (होती है)। यहाँ निर्मल (पर्याय की) बात है, मलिन (पर्याय की) बात नहीं है। अनंत शक्तियाँ हैं, भगवान आत्मा वस्तु है उसमें अनंत शक्ति नाम गुण है। एक साथ ऐसे विस्तार प्राप्त है। ऐसे विस्तार प्राप्त है और उसकी जो निर्मल पर्याय है, वह क्रमसर ऐसे आयत प्राप्त है। एक के बाद एक, एक के बाद एक, गुण एक के बाद एक है, ऐसा नहीं है। गुण तो एक साथ अनंत है, आहाहा ! परंतु पर्याय है, वह अनंत गुण की एक समय में एक ही होती है।

अब यहाँ तो कहते हैं कि, पर्याय में जो निर्मल कार्य (प्रगट होता है), धर्म स्वभाव जो पर्याय में प्रगट होता है, वीतरागी भाव जो प्रगट होता है, `सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्राणी मोक्षमार्ग' जो पर्याय में प्रगट होता है, उसका कारण कौन ? उसका करण कौन ? उसका साधन कौन ? आहाहा !

ऐसे ही मर गया। बाहर में बड़ी पंडिताई की, लाखो आदमियों के बीच बड़े भाषण किये और राजी-राजी हो (गया)। वहाँ लोग भी ऐसे ही होते हैं, आहाहा ! व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। दया, दान, व्रत, शुभभाव से शुद्धता होगी। ऐसी प्ररूपणा मिथ्यादृष्टि की है, आहाहा ! (किसी को) धर्म का भान ही कहाँ है ? तीनलोक का नाथ जागृत स्वभाव से भरा पड़ा है, आहाहा ! अरे भाई ! तुझे खबर नहीं है। तेरे घर में तुझे वास्तु लेना हो, (तो तुझे द्रव्य पर दृष्टि करनी होगी)। पर घर में तुझे वास्तु लेना हो तो बड़ा महोत्सव करता है। पाँच-पच्चीस हज़ार का खर्च करो और ऐसा (फर्नीचर) करो और वैसा करो, आहाहा ! यहाँ तुझे (आत्मा में) वास्तु लेना है तो, भगवान (आत्मा में) इतनी शक्ति है कि, (उसमें) एक साधक नाम का गुण पड़ा है। इन गुणों को धरनेवाला भगवान उसमें तुझे वास्तु लेना हो, तो द्रव्य पर दृष्टि करनी पड़ेगी। पर्याय पर (दृष्टि) नहीं, राग पर नहीं (और) गुण के भेद पर (भी) नहीं, आहाहा !

ऐसा कहीं सुनने नहीं मिलता। बेचारे जिंदगी (ऐसे ही निकाल देते हैं)। पैसे कमाने हो तो सारा दिन पैसा...पैसा... (करे)। स्त्री-पुत्र को राजी रखने के पाप में २०-२२ घंटे चले जाये, आहाहा ! एक-दो घंटा (कुछ) सुनने को मिले तो कुगुरु उसे लूट लेते हैं। तुमको व्रत करने से धर्म होगा, उपवास करने से धर्म होगा (ऐसा कहकर)। कुगुरु उसे लूट लेते हैं। आहाहा ! बनिये तो कैसे फँसे हैं ! बनिये बाहर में कभी फँसते नहीं, (यहाँ) धर्म में फँस जाते हैं। यहाँ तो कहते हैं कि, दया पालो, व्रत करो, उपवास करो, आठ उपवास करो, २-५-२५-५० लाख खर्च करके मंदिर बनाओ, (इसलिये) बनिये मान ले कि, आहाहा ! (यह) धर्म है। अरे ! फँस गया। शुभभाव में (कभी) धर्म नहीं।

श्रोता : बनिये को सभी चीज़ सस्ती चाहिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सस्ती लेने गया उसमें महँगी पड़ गयी। आहाहा ! एक बार दृष्टांत दिया था। हमारे यहाँ गुजराती में काछिया होते हैं। (वह) सब्जी बेचते हैं। हमारे पालेज में माल लेने आये तब २०-४० किलो ले जाते हैं। फिर बेचने आते हैं। बेचते-बेचते १० शेर छिद्रवाली सब्जी बच गयी हो। तब कंजूस - लोभी बनिये को कहे, 'यह १० शेर बच गया है, इसे उठाकर वापस गाँव में कहाँ ले जायेंगे ? अभी तक ८ आना शेर में बेचा है, तुमको ४ आना शेर में (दे देंगे)। थोड़ा छिद्र है (तो) तुमको चार आना शेर में दे देंगे।' (अरे...ऐसा लेगा तो) एक टुकड़ा भी काम में नहीं आयेगा। ऐसी बनिये की बुद्धि ! ऐसे धर्म के नाम पर फँस गया। इस साल में दो-चार शेत्रुंजय की यात्रा करो - कार्तिक सुदी - १५, चैत सुदी - १३ (के दिन यात्रा करो), जाओ ! तुम्हारा कल्याण (हो गया) ! मर जायेगा ! फँस जायेगा। वहाँ कल्याण नहीं है, सुन तो सही ! समझ में आया ?

(यहाँ दिगंबरों में) सम्मेदशिखर की (बात करते हैं)। 'एकबार वंदे जो कोई, नरक-पशु न होय' नरक-पशु न हो तो उसमें क्या हुआ ? पहले पशु होकर फिर नरक में जायेगा, आहाहा ! भाई ! वह तो एकबार ऐसा शुभभाव हुआ तो मरकर तिर्यंच में नहीं जायेगा। लेकिन मनुष्य होकर फिर तिर्यंच में जाकर निगोद में जायेगा। जब तक आत्मा का ज्ञान नहीं है, आत्मा क्या चीज़ है ? उसकी प्रतीति का - विश्वास का भान नहीं, जिसका विश्वास करना है, उस चीज़ का तो भान नहीं, आहाहा ! ऐसे भान बिना उस क्रियाकांड (और) राग से तो पुण्य बंध होगा। उससे एकबार स्वर्ग मिला (तो) वहाँ से तिर्यंच होकर नरक में - निगोद में जायेगा। उससे भव का अभाव नहीं होगा। समझ में आया ? कड़क पड़े लेकिन क्या करें ? वीतराग का मार्ग तो यह है, आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, ``**भवते हुए...**'' (अर्थात्) वर्तमान होनेवाली पर्याय का कार्यरूप भाव। उसके ``**भावके भवनके...**'' (अर्थात्) निर्मल वीतरागी भाव के होने के कारणरूप। ``**साधकतमपनेमयी...**'' आहाहा ! उत्कृष्ट साधक तनमयी। उसमें किसी ने निकाला कि, जघन्य साधक कोई है या नहीं है ? वह तो जघन्य साधन का आरोप (किया) है। उत्कृष्ट साधनमयी - वास्तविक साधन तो अंदर में साधक नाम की शक्ति - गुण है। उसके कारण निर्मल पर्याय का साधकपना है। निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान धर्म का भाव और भव का छेद का भाव (का कारण, यह करण शक्ति है)। आहाहा !

यहाँ के बड़ा अबजोपति गृहस्थ हो और मरकर नरक में जाये, आहाहा ! पहली नरक है उसकी कम से कम १० हज़ार वर्ष की स्थिति है। नारकी की कम से कम दस हज़ार वर्ष की स्थिति (है)। विशेष स्थिति तो ३३ सागरोपम (है)। (यहाँ) पाप करके

दस हज़ार वर्ष की स्थिति में जाये। आहाहा ! उसकी इतनी वेदना है कि, अबजोपति का लड़का हो, शादी का दिन हो, करोड़ों रुपये शादी में खर्च किये हो, और २५ साल की जवान अवस्था हो, राज की लड़की लाया हो और (वह लड़की भी) दहेज में करोड़ो रुपये लायी हो और उसी लड़के को (शादी की) पहली रात को जमशेदपुर की भट्ठी में सीधा डाल दे (और) उसको जो वेदना (होती) है, उससे अनंत गुनी वेदना पहली नरक की स्थिति में है, आहाहा ! अरे भाई ! तूने सुना नहीं, भाई ! तूने अनंतकाल मिथ्यादृष्टि में व्यतीत किया है। तो कोईबार शुभभाव से स्वर्गादि मिला तो धूल का सेठ बना। फिर मरकर चार गति में रखड़ने जायेगा... आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि, तुझे परिभ्रमण मिटाना हो अर्थात् यह दुःख मिटाने हो तो सुख का साधनरूपी कार्य, इसका साधन क्या ? आहाहा ! भगवान (आत्मा में) एक करण नाम की शक्ति पड़ी है, यह सुख का साधन है। दया, दान, व्रत यह कोई सुख का साधन नहीं है, आहाहा ! ऐसी बातें हैं !

पर्युषण के दिन हो (तब) लोगों को कहेंगे, उपवास करो, ऐसा करो, वैसा करो, वर्षीतप करो, वर्षीतप करता है न ? एक दिन खाना और (एक) दिन, लांघण। आत्मा का भान नहीं (वहाँ) तेरे उपवास कहाँ से आये ? उपवास माने खराब वास। राग की मंदता में तेरा वास उसको उपवास कहते हैं। सच्चा उपवास तो यह है कि, आनंद का नाथ उप नाम समीप में जाकर बसना, उसका नाम सच्चा उपवास है। यह तो सुना ही नहीं, भान ही नहीं है, आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, बहुत थोड़े शब्दों में तो कितना भरा है ! आत्मा में अंदर चारित्र नाम का गुण है। आत्मा गुणी (अर्थात्) स्वभाव का (और) चारित्र (उसका) स्वभाव (है)। चारित्र स्वभाव में भी करण नाम की शक्ति का स्वरूप है। करण नाम की शक्ति चारित्र गुण में नहीं लेकिन करण नाम की शक्ति - साधक नाम की शक्ति का चारित्र गुण में स्वरूप है। और इस स्वरूप के कारण वीतरागी पर्याय का कारण यह चारित्रगुण होता है।

संतों - सच्चे मुनि जिसको कहें, आहाहा ! इनकी दशा में तो प्रचुर आनंद का वेदन होता है। आहाहा ! प्रचुर क्यों कहा ?कि सम्यग्दर्शन में आनंद का वेदन है लेकिन प्रचुर (वेदन) नहीं है। और जो सच्चे मुनि हैं (उन्हें प्रचुर वेदन है)। सच्चे मुनि की (बात है)। ये नग्न होकर घूमते हैं इसलिये साधु हो गये, यह कोई साधु नहीं है। समझ में आया ? क्योंकि साधक नाम की शक्ति का साधन किया नहीं, तो वह साधु नहीं है, आहाहा ! उसने तो राग का - दया, दान, व्रत का साधन किया। वह तो बंध का कारण है।

वह साधन नहीं है (और) वह साधु (भी) नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बातें कठिन पड़ती हैं, (लेकिन) क्या हो सकता है ? (वस्तुस्थिति ऐसी है)।

यहाँ तीनलोक का नाथ वर्णन करते हैं। संतों केवली परमात्मा ने कही हुई बात आढ़तिया होकर जाहिर करते हैं। (बहुत लोग) ऐसा सुने बिना भाषण करे। गप-गोले चलाये (लोगों को ऐसा लगे कि) इसे तो भाषण करना आता है ! भगवान की भक्ति करे और व्रत पाले तो धर्म होता है, (ऐसा माने)। बहुत लोग ऐसा ही करते हैं न ? आहाहा ! प्रभु ! बहुत कठिन बातें, बापू ! जन्म-मरण मिटने की - सम्यग्दर्शन चीज़ उसकी महिमा अपार है और सम्यग्दर्शन का आश्रय जो (द्रव्य) है, उस चीज़ की तो अपार महिमा है ! आहाहा !

ऐसी चीज़ में चारित्र की पर्याय जिसमें होती है, उसको बाहर में नग्न दशा हो जाती है और उसके अंतर में कोई पंच महाव्रत का विकल्प आता है, वह चारित्र नहीं। चारित्र तो अंदर में वीतरागी आनंद की रमणता (होना) उसका नाम चारित्र है, आहाहा ! इस चारित्र का कारण कौन ? पंच महाव्रत, समिति, आदि कारण हैं ? ना। (तो फिर) कारण कौन ? चारित्र गुण में कारण शक्ति का रूप - स्वरूप पड़ा है, उस कारण से चारित्र की वीतराग की पर्याय का भवन होना, उसका (कारण) साधकतम कारण शक्ति है। समझ में आया ? बात में बहुत फ़र्क है।

स्त्री का शरीर और चुरमे के लड्डु का भोक्ता आत्मा नहीं। उस समय में उसको राग होता है कि, मैं स्त्री का भोग लेता हूँ और वह राजी होती है और मैं भी राजी होता हूँ। यह राग का भोग है, दुःख का भोग है, आकुलता का भोग है, आहाहा ! परंतु जिसको अनाकुलता का भोग लेना हो तो (उसका) साधक - कारण कौन ? समझ में आया ? अनाकुल आनंद का भोग लेना हो, इस धर्म का अनुभव करना हो तो उसका कारण कौन ? उसका कारण खोजने से वह कार्य होगा, आहाहा ! भगवान आत्मा में एक साधक नाम की शक्ति पड़ी है। उस शक्तिवान को खोजने से, शक्ति के कारण से अनाकुल आनंद का भोग होता है। समझ में आया ? अनाकुल आनंद का वेदन धर्म है। भारी कठिन बात ! समझ में आया ?

यह एक-एक गुण अनंत शक्ति में व्यापक है। आत्मा में अनंत अपरिमित शक्तियाँ हैं। अनंत शक्ति कहो या गुण कहो (एक ही बात है)। प्रत्येक गुण में यह साधक नाम की शक्ति व्यापी है अथवा साधक नाम की शक्ति का प्रत्येक गुण में स्वरूप है अथवा साधक नाम की शक्ति ने अपने द्रव्यस्वभाव का आश्रय किया तो जो निर्मल पर्याय का कार्य हुआ, उसका यह कारण है, समझ में आया ? साधकतम कारण से निर्मल कार्य

होता है, आहाहा !

दूसरे प्रकार से कहें तो, सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, आनंद का भोग बारंबार उस आनंद का भोग वह धर्म (है), तो उसका कारण कौन ? आहाहा ! कि आनंद स्वरूप भगवान उसमें करण नाम की शक्ति का रूप है। उस कारण से पर्याय में आनंद का भोग होता है। समझ में आया ?

अरे... ! यह शब्द भी सुने हो और (माने कि) हम जैन है। `णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं....' (बोले)। आहाहा ! ऐसे `णमो अरिहंताणं' अनंत बार किये। पंच परमेष्ठीपद को नमस्कार और भक्ति अनंत बार किये, वह तो शुभ राग है। वहाँ कहाँ धर्म आया ? समझ में आया ? अपनी धर्म दशा में कारणरूप कारण नाम की शक्ति है, यह कारणरूप से कार्य में आती है, आहाहा ! अरे... ऐसी भाषा ! कभी सुना भी न हो। बनिये के पास सब सुना हो, यह अंदर से सुना नहीं। सारा दिन धंधा करो-ये करो, आहाहा ! जो धंधे में रुकते हैं वह तो अकेले पाप है। यहाँ तो कहते हैं कि, धर्म श्रवण में आया और श्रवण किया, दो-दो घंटे, चार-चार घंटे, वह भी विकल्प और शुभराग है, वह भी धर्म नहीं। धर्म तो राग रहित भगवान आत्मा उस में साधक नाम का गुण पड़ा है, (इस) गुणी के अवलंबन से, गुण के कारण (जो पर्याय प्रगट होती है, यह धर्म है)। (कोई एक गुण अकेला) परिणमन नहीं करता। द्रव्य के साथ (गुण) परिणमता है। सारा द्रव्य एक साथ परिणमता है। साधक नाम की शक्ति अकेली भिन्न होकर परिणमती है, ऐसा नहीं। क्या कहते हैं ? इस में एक-एक बात में फर्क है। आहाहा !

यह चिद्विलास की बात तो पहले कही थी। (अकेला) गुण परिणमन नहीं करता। द्रव्य परिणमता है, उस में साथ में गुण का परिणमन हो जाता है। यह एकबार कहा था। समझ में आया ? गुण परिणमन और द्रव्य परिणमन, (ऐसी-ऐसी) भाषा है ! बनिये की हिसाब की किताब में (ऐसा कुछ) आता नहीं। मंदिर में और (और कहीं जगह) सुनने मिले नहीं, आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, एकबार सुन तो सही, आहाहा ! तेरा स्वभाव ही ऐसा है, यानी तेरा गुण ऐसा है कि, धर्म की पर्याय का कार्य जो हुआ; पर्याय कहो कि कार्य कहो (एक ही बात है), इस कार्य के प्रवर्तन में कारणरूप तो अंदर साधक नाम का गुण है। प्रत्येक गुण में अंदर साधक नाम का गुण का (रूप) है। प्रत्येक गुण अपनी पर्याय का कारण है। प्रत्येक गुण का कार्य का कारण प्रत्येक गुण है। दूसरा गुण का कार्य का कारण दूसरा गुण है, ऐसा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? एक-एक

बात कितनी याद रखनी ? पहले आयी हो उससे अलग प्रकार की (बातें आती हैं)। आहाहा !

(आत्मा में) अनंत गुण हैं। प्रत्येक गुण में साधक नाम की शक्ति का स्वरूप है। तो प्रत्येक गुण के कार्यरूप में साधक नाम का स्वरूप है, वह कारण होता है, आहाहा ! अंदर श्रद्धा नाम का गुण है। उसमें कारण नाम का स्वरूप है। उसके कारण सम्यग्दर्शन की पर्याय का कार्य होता है। सम्यग्दर्शन की पर्याय का कारण अंदर करण (शक्ति का) रूप है। ऐसे सम्यग्दर्शन में सम्यग्दर्शन का रूप है, वह कार्य नहीं करता। (लेकिन) सम्यक्ज्ञान में - जो ज्ञानगुण है, उसमें करण नाम की (शक्ति का) स्वरूप है, उस कारण से सम्यक्ज्ञान की पर्याय का कारण (वह करण गुण) होता है, आहाहा ! बहुत सूक्ष्म, बापू !

यह तो वीतराग जिनेन्द्रदेव तीनलोक के नाथ ! एक समय में जिन्होंने तीनकाल तीनलोक देखे। पर्याय को देखा उसमें तीनलोक को देखा, ऐसा कहने में आता है। उस भगवान की वाणी में ऐसा कहते हैं, भाई ! तूने सुना नहीं। तेरे घर में क्या पूंजी है ? क्या लक्ष्मी है ? इसे तूने सुना नहीं, नाथ ! आहाहा ! तेरी लक्ष्मी में-तेरी पूंजी में एक करण नाम का गुण है। आहाहा ! अनंतगुण में इस करणगुण का स्वरूप है, आहाहा ! प्रत्येक गुण का जो निर्मल कार्य है, उसका कारण (करण गुण का) स्वरूप है, यह कारण है। आहाहा ! दूसरे गुण का स्वरूप है, यह गुण के कार्य का कारण नहीं, तो फिर दया, दान, व्रत का (शुभभाव) उसका कारण है, (वह तो बहुत दूर है)। उसका (स्वरूप में) अभाव है, यह स्याद्वाद है। व्यवहार का अभाव कारण है, व्यवहार का सद्भाव कारण नहीं। अथवा सद्भाव कारण है और उसका अभाव कारण है। आहाहा ! उसका नाम अनेकांत और उसका नाम स्याद्वाद है। उसको अनेकांत कहा। (लोग तो) अनेकांत (किसे कहते हैं ? कि) अपने से भी (कार्य) होता है और व्यवहार से भी होता है, ऐसा अनेकांत करो। वह अनेकांत नहीं वह तो फुदड़ीवाद है। टेढ़ी-मेढ़ी फुदडी घूमता है, वह फुदड़ीवाद है।

भगवान का अनेकांत मार्ग तो यह है कि, अपने गुण में-शक्ति में करण नाम की शक्ति है, तो प्रत्येक गुण का भवन नाम प्रवर्तमान जो कार्य उसका कारण यह स्वरूप है। आहाहा ! समझ में आया ? प्रत्येक (शक्ति के) एक-एक शब्द में फर्क है। वही के वही शब्द नहीं है। यहाँ (प्रत्येक) शब्द में भिन्न-भिन्न वाच्य है। प्रत्येक शब्द में भिन्न वाच्य है, आहाहा ! समझ में आया ? यहाँ (कोई) कहे कि भिन्न साध्य-साधन कहा है न ? ऐसा सब कहते हैं। वह तो आरोपित कथन है। निमित्त का ज्ञान कराने को वह बात कही है। मोक्षमार्ग प्रकाशक में सातवें अध्याय में आता है। निश्चयाभास और व्यवहाराभास

में (आता है) व्यवहार हेय है। और ग्रहण करने लायक है, ऐसा कहा है न ? ग्रहण करने लायक का अर्थ यह है कि, 'है' उसको जानना। उसका नाम ग्रहण है। व्यवहार है उसको जानना और निश्चय है, उसे उपादेय करना, आहाहा ! इसका नाम निश्चय-व्यवहार का सच्चा ज्ञान है। (इसमें भी) तकरार, आहाहा !

कोई तो ऐसा कहते हैं कि, सोनगढ़ ने नया (धर्म) निकाला। यह सोनगढ़ का है ? अभी तक तो संप्रदाय में (ऐसी) बात नहीं थी। यह नया निकाला। (हम तो अभी तक) भक्ति करते थे, शेत्रुंजय की यात्रा करते थे। कार्तिक सुदी-१५ के दिन दस-दस हजार, पंद्रह-पंद्रह हजार आदमी (इकट्ठे होते हैं)।

श्रोता :- सब बंद करा दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री :- कौन (बंद) कराये ? शुभभाव आता है और होगा, परंतु वह धर्म नहीं। वह तो अशुभ से बचने को बीच में शुभभाव आता है लेकिन धर्मी उसको हेय जानते हैं। अज्ञानी उसको उपादेय मानते हैं, इतना फर्क है। ऐसी बातें (हैं) ! बहुत भरा है ! ओहोहो...!

अनंत गुण में कारण नाम का रूप है। अपना निर्मल कार्य का वह कारण है। यह सम्यग्दर्शन आदि की जो पर्याय उत्पन्न होती है, यह सम्यग्दर्शन की पर्याय में भी कारण शक्ति की पर्याय का अंश है, आहाहा ! कारण का अंश इस सम्यग्दर्शन में भी है। षट्कारक है न ? तो सम्यग्दर्शन की पर्याय का कर्ता सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन की पर्याय का कर्म सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन का साधन (वह) पर्याय (स्वयं) साधन, पर्याय को साधन (कहा)। गुण को साधन तो पहले कहा। सम्यग्दर्शन की पर्याय का आधार वह पर्याय, सम्यग्दर्शन का अपादान-क्षणिक उपादान अपना अपने से हुआ वह (अपादान) और समकित जो हुआ उसे रखा (वह) संप्रदान। अपनी पर्याय से संप्रदान है। गुण के कारण से भी नहीं। आहाहा ! अरेरे... भाई ! तूने भगवान का मार्ग सुना नहीं, भाई ! अनंतकाल से मर गया, आहाहा !

अनंत बार साधु हुआ। 'मुनिव्रत धार अनंत बैर, ग्रैवेयक उपजायो, आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो' उसका अर्थ क्या हुआ ? कि, पंचमहाव्रत, समिति और गुप्ति का राग यह दुःख है, आकुलता है, आहाहा ! 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो' इसका (अर्थ) क्या हुआ ? पंचमहाव्रत लिया वह सुख तो नहीं (लेकिन) दुःख है। यह गजब बात है ! दुःख को चारित्र का साधन बनाना (इससे सुख कहाँ से होगा) ? चारित्र तो अंदर आनंद की लहर है। आनंद की लहर उठती है उसका नाम चारित्र है। उस चारित्र का कारण इस दुःख को बनाना ? महाव्रत कारण है और चारित्र कार्य है, (ऐसा

नहीं है), आहाहा ! यहाँ तो वीतरागी पर्याय चारित्र (है)। आहाहा ! उसके चारित्र गुण में करण नाम का स्वरूप है, रूप है, भाव है। यह भाव कारण होता है। वीतरागी पर्याय का कारण चारित्र गुण में करण नाम का भाव है, यह कारण होता है। कभी बाप-दादा ने भी सुना नहीं। ऐसी बात है, वस्तु ऐसी है।

श्रोता :- कोई बतानेवाला नहीं मिला।

पूज्य गुरुदेवश्री :- पात्र हो तो बतानेवाला मिले बिना रहे ही नहीं। पात्र की खामी है। अपनी योग्यता की कमी है। इस कारण से नहीं मिला, ऐसे लो। (बतानेवाले) मिले तो अनंत बार है। प्रभु के पास सुना है (फिर भी) क्यों नहीं पाया ? अपनी पात्रता नहीं थी (इसलिये नहीं पाया)। आहाहा ! समझ में आया ? यह पात्रता अपने से प्रगट होती है। पर के कारण से नहीं, आहाहा ! सम्यग्दर्शन को ही पात्रता कहा है। जिसमें सिद्धपद रहता है, सिद्धपद प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शन ही पात्रता है। आहाहा ! जो सम्यग्दर्शन के कारण केवलज्ञान प्राप्त होगा ही। बीज (दूज) उगी वह पूनम होगी ही। सम्यग्दर्शन में आत्मा के आनंद का अनुभव हुआ उसको केवलज्ञान प्राप्त होगा ही। वह केवलज्ञान लेने को पात्र हुआ। समझ में आया ? आहाहा !

शास्त्र में भिन्न कारण और भिन्न कार्य आता है। (लोग बात को) वहाँ ले जाते हैं। (कहते हैं) देखो ! साधन-साध्य भिन्न कहा है, बापू ! वह भिन्न साधन कहा (है)। वह साधन का आरोप देकर कहा है। बाकी वास्तविक साधन तो अंतर निर्मल वीतरागी दशा हो, यह साधन (है)। लेकिन उसका कारण यह साधक नाम की शक्ति (है)। समझ में आया ? और उसका मूल कारण तो द्रव्य (है)। शक्ति का धरनेवाला भगवान आत्मा उसका आश्रय करने से धर्म की वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है। ऐसा है, भाई !

अभी तो जिसको सच्चा ज्ञान भी नहीं है - समझने का सच्चा ज्ञान-बुद्धि नहीं, उसको तो अंदर प्रयोग किये बिना धर्म कैसे होगा ? आहाहा ! अरे... दुःखी है, भाई ! आहाहा ! आज का करोड़पति, अरबपति सेठ हो (उसका) देह छूटने के (बाद) नरक में जाये, आहाहा ! बापू ! ऐसे भव तूने अनंतबार किये हैं, भाई ! तेरे दुःख को देखनेवाले को रोना आया है, आहाहा ! तूने इतने दुःख सहन किये हैं, आहाहा ! अरे...! समुद्र भर जाये (उतनी माताएँ रोयी हैं)। लड़का मर जाये और माता को आँसू आये उस आँसू के मेरु (पर्वत) जितने समुद्र भर जाये, इतने तो आँसू (बहाये हैं)। आहाहा ! इतनी बार (तेरे) मरण से तेरी माता को दुःख हुआ, आहाहा !

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि, जब सम्यग्दर्शन होता है, अपने स्वरूप के अनुभव में सम्यग्दर्शन हुआ, बाद में जब स्वरूप की रमणता (प्रगट करने को) जंगल में जाने

का चारित्र प्रगट करते हैं (तब) अकेला जंगल में जाता है, कोई साथ में नहीं (होता)। कोई आहार देनेवाला नहीं, शरीर की रक्षा करनेवाला नहीं, कोई वैद्य नहीं, आहाहा ! मुनि अपने आनंद की मौज करने को जंगल में चले जाते हैं, आहाहा ! (ऐसे मुनि को) माता इजाजत नहीं दे (और) रोती है। (तब कहते हैं), `माता ! एक बार रोना हो तो रो ले, मा ! लेकिन मैं आत्मा का साधन करने को जंगल में चला जाता हूँ और माता ! मैं कोल-करार करता हूँ, (अब आगे) दूसरी माता नहीं करूँगा, माँ ! मैं तो मेरा चारित्र का साधन करूँगा। (अब) दूसरी माता नहीं करूँगा।' आहाहा !

उत्तराध्ययन के चौदहवें अध्ययन में है। माता ! मैं आज ही चारित्र को-आनंद की दशा को अंगीकार करना चाहता हूँ। माता ! मैं चारित्र अंगीकार करने, आनंद का रमण करने जाता हूँ। जिससे मैं दुबारा दूसरा भव नहीं करूँगा। मैं इस भव में शरीर रहित सिद्ध हो जाऊँगा। ऐसी चारित्र दशा (होती है)। आहाहा ! अरे...! इस समय में उसे सुनने मिले नहीं। (यह) वस्तु तो (कहीं) है नहीं। समझ में आया ? (आगे कहते हैं) माता ! जगत में नहीं प्राप्त हुई ऐसी कौन सी चीज रह गई है ? सब पाया है। अनंत बार लक्ष्मी मिली, स्त्री-कुटुम्ब मिला, धूल मिली, बंगला मिला, माता ! नहीं प्राप्त हुई ऐसे आनंद के नाथ की (मूल) चीज रह गई है। समझ में आया ?

जन्म-मरण का रोग मिटाने की दवा, आत्मा का आनंद का आश्रय लेना यह है। `आत्मभ्रांति सम रोग नहि' आत्मभ्रांति सम रोग नहीं, यह (बाहर का) रोग नहीं, नाथ ! राग से मुझे धर्म होगा और राग मेरी चीज है, यह भ्रांति है। इसके जैसा कोई रोग नहीं। `आत्मभ्रांति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजाण, गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं' पथ्य का पालन करते हैं न ? `औषध विचार ध्यान' भ्रांति सम रोग नहीं, नाथ ! पुण्य में धर्म है, राग की क्रिया करते-करते धर्म हो जायेगा ! यह भ्रांति है, प्रभु ! तुझे बड़ा रोग हो गया। मिथ्यात्व का बड़ा रोग हो गया। तुझे क्षय रोग लागू हुआ है। आहाहा ! समझ में आया ? `सद्गुरु वैद्य सुजाण' सच्चे धर्मात्मा ! सत्य के जाननेवाले यह सद्गुरु (है)। उनकी आज्ञान है कि, आत्मा का आश्रय करने से तुझे धर्म होगा। यह आज्ञा है। आहाहा ! `औषध विचार ध्यान' विचार करना और ध्यान लगाना, यह औषध है। स्वरूप का ध्यान लगाना और स्वरूप की ओर झुकना, यह औषध है। ये (बाहर के) औषध तो अनंत बार किये। ४३ (शक्ति) हुई। ४७ शक्तिमें से ४३ (शक्ति) हुई। ४४ वीं (शक्ति) विशेष कहेंगे....

प्रवचन नं. ३९
शक्ति-४४ दि. १८-०९-१९७७
स्वयं दीयमानभावोपेयत्वमयी सम्प्रदानशक्तिः ।।४४।।

समयसार शक्ति का अधिकार चलता है। भगवान आत्मा अनंत शक्ति का भण्डार है। शक्तियों के रत्नों का भण्डार भरा है। (लेकिन) खबर नहीं है। बाहर ढूँढने जाते हैं (लेकिन) आत्मा वहाँ नहीं है। दया में, दान में, भक्ति में, काम में, विषय वासना में ढूँढने जाता है। (लेकिन) वहाँ तो आत्मा नहीं है, आहाहा ! वहाँ तो दुःख है। शुभभाव में ढूँढने जाये तो शुभभाव में तो दुःख है। वहाँ कहाँ आत्मा है ? आहाहा ! यहाँ तो आत्मा ज्ञायक स्वभाव का सामान्य स्थिति में वर्णन किया और इस ज्ञायकभाव में अनंत गुणरूपी शक्ति पड़ी है। ४३ (शक्ति) चली न ?

आज ४४ (शक्ति लेते हैं)। क्या कहते हैं ? आत्मा में (एक) संप्रदान नाम का गुण है। इस गुण का कार्य क्या ? राग, दया, दान के विकल्प से रहित भगवान, निर्विकल्प चैतन्यमूर्ति प्रभु ! इसका दृष्टि में स्वीकार करने से जो अनुभव होता है, (इस) अनुभव में प्रतीति और ज्ञान दोनों आते हैं, आहाहा ! इस अनुभव में जो आत्मा जानने में आया, वह राग से, दया, दान से, या व्यवहार से जानने में नहीं आता। क्योंकि विकल्प राग है और स्वरूप में राग नहीं है। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बात है। इसलिये आदमी को कठिन पड़ता है न ?

भगवान (आत्मा में) संप्रदान नाम का गुण है। जैसे ज्ञान गुण है (तो) ज्ञानगुण तो अनंती शक्ति का पिटारा है। क्योंकि केवलज्ञान आदि पर्याय प्रगट होती है। एक...एक...एक... ऐसी अनंत (पर्याय प्रगट होती है), फिर भी ज्ञान गुण में कम नहीं होती। आहाहा ! ऐसी अनंत शक्तियाँ हैं। इसमें (एक) संप्रदान नाम की शक्ति है। इसका कार्य

क्या ? जिसने द्रव्य स्वभाव की दृष्टि की हो, निमित्त पर से दृष्टि उठाकर शुभराग - विकल्प जो है, उस पर से भी दृष्टि उठाकर, एक समय की वर्तमान प्रगट पर्याय है, उस पर से भी दृष्टि हटाकर, अखण्डानंद प्रभु आत्मा उसमें दृष्टि लगाना। आहाहा ! जहाँ प्रभु बिराजता है, उसका भेटा करना। इसका नाम सम्यग्दर्शन है, आहाहा ! धर्म की पहली सीढ़ी है।

यहाँ तो संप्रदान (शक्ति में) क्या है ? जब स्वरूप चिदानंद आनंदकंद का अनुभव हुआ तो राग से और व्यवहार रत्नत्रय से भी भिन्न (अनुभव हुआ)। आहाहा ! वह तो साधक (शक्ति में) कहा। व्यवहार रत्नत्रय साधक नहीं। आदमी को यह कठिन पड़ता है। अंतर में साधक नाम की शक्ति है, करण नाम की शक्ति है, करण नाम की शक्ति कहो, करण कहो कि साधक कहो (सब एकार्थ है)। ऐसा ही आत्मा में गुण है। ऐसे गुण और गुणी के भेद का लक्ष छोड़कर, एक गुणी पर दृष्टि देने से ज्ञान की पर्याय जो प्रगट होती है, वह धर्म सम्यक्ज्ञान है।

इस ज्ञान की पर्याय में संप्रदान (शक्ति का) स्वरूप है। यह संप्रदान शक्ति जो है, उसका ज्ञान गुण में स्वरूप है। उस कारण से अपनी वर्तमान निर्मल पर्याय की पात्रता और निर्मल पर्याय का अपने से लेना (ऐसा कार्य होता है)। आत्मा दाता (है) और आत्मा पात्र (है), आहाहा ! लक्ष्मी देनेवाला दाता और लेनेवाला गरीब आदि अथवा कोई मंदिर आदि में दे (लेकिन) वह चीज़ आत्मा की नहीं, आहाहा ! आत्मा की चीज़ में तो अपना ज्ञानस्वरूप प्रथम तो ज्ञायकभाव लेने में आया न ? तो इस ज्ञायकभाव में संप्रदान नाम का एक रूप है। संप्रदान शक्ति इससे भिन्न है परंतु ज्ञायकभाव में - ज्ञान भाव में संप्रदान (शक्ति) स्वरूप है। यह तो अजब - गज़ब की बातें हैं, बापू ! आहाहा ! ऐसी बात है, भाई ! आहाहा ! समझ में आया ?

धर्मी को धर्म करने में क्या होता है ? (ऐसा) कहते हैं, स्वरूप की दृष्टि होनेसे ज्ञान की एक समय की जो निर्मल पर्याय है, वह संप्रदान के स्वरूप के कारण निर्मल आत्मा अपना दाता और अपनी पर्याय दे नाम पात्रता - (दोनों) एक समय में है। सम्यक्ज्ञान का दाता अपनी पर्याय है, आहाहा ! वीतराग की वाणी भी सम्यक्ज्ञान की दाता नहीं, आहाहा ! ऐसी बहुत कठिन बातें हैं, बापू !

सम्यक्ज्ञान की पर्याय का दाता कौन ? (ऐसा) कहते हैं। और लेने की पात्रता किसकी ? कि, सम्यक्ज्ञानमय भगवान (आत्मा) इसमें एक संप्रदान का स्वरूप है, उस कारण से उसकी निर्मल पर्याय हुई, वह निर्मल (पर्याय) दाता और उसी समय में लेने की योग्यता वह पात्रता (है)। समझ में आया ?

तीर्थंकर तीनलोक के नाथ छद्मस्थ हो और आहार देने का भाव (आये) वह स्वभाव नहीं। वह तो शुभभाव है। अंदर शुभभाव की कोई शक्ति - गुण नहीं है कि अपना शुभभाव दे और ले, आहाहा ! पैसा लेना - देना ऐसी तो आत्मा में कोई शक्ति है ही नहीं। लेकिन शुभभाव बने और शुभभाव ले और शुभ भाव रखे, आत्मा में ऐसी कोई शक्ति नहीं, आहाहा ! परंतु ज्ञान की पर्याय में जो निर्मल ज्ञान की पर्याय शांति के साथ उत्पन्न होती है, वह दान देनेवाली पर्याय और लेनेवाली भी वही पर्याय (है)। आहाहा ! पात्र भी वही, (और) दाता भी वही और दे भी वही, आहाहा ! समझ में आया ?

संप्रदान (शक्ति) है न ? क्या कहते हैं ? देखो ! ``**अपने द्वारा दिया जाता...**'' सूक्ष्म है, भाई ! यह हिसाब की बातें बहुत सूक्ष्म हैं ! यहाँ कहते हैं, ``**अपने द्वारा दिया जाता...**'' कौन ? वर्तमान ज्ञान की पर्याय, आनंद की पर्याय, शांति की पर्याय, सम्यक् वीर्य की पर्याय, (यह सब) निर्मल पर्याय अपने से दी जाती है। है ? ``**अपने द्वारा दिया जाता...**'' आहाहा ! जगत को यह बात पकड़नी कठिन (पड़ती है)।

``**अपने द्वारा दिया जाता जो भाव...**'' (अर्थात्) वर्तमान निर्मल भाव, वर्तमान वीतरागी पर्याय, आनंद की पर्याय, ज्ञान की पर्याय, समकित की पर्याय, अकारणकार्य नाम के गुण की पर्याय, यह अपने द्वारा दिया जाता है। आत्मा अपने को अपनी पर्याय देता है और अपनी पर्याय उस समय लेता है, एक ही समय में दाता और (लेनेवाला) एक है, आहाहा ! समझ में आया ? सम्यक्दृष्टि और सम्यग्दर्शन का विषय अनंत शक्ति का भण्डार भगवान यह विषय जहाँ दृष्टि में आया, ध्येय (स्वरूप) जो पूर्णानंद का नाथ आत्मा ज्ञान में जब आया, तो कहते हैं कि, जो निर्मल सम्यक्ज्ञान की पर्याय प्रगट हुई, वह किसने दी ? वह अपने द्वारा दी (गई), आहाहा !

त्रिकाली श्रद्धा गुण है उसमें संप्रदान का स्वरूप है। संप्रदान शक्ति भिन्न है। (लेकिन श्रद्धा में) संप्रदान का स्वरूप है। उस कारण से श्रद्धा शक्ति वर्तमान सम्यग्दर्शन रूपी पर्याय का परिणमन करके दाता (होकर) पर्याय दी और वही पर्याय स्वयं ने ली।

(कोई) कहते हैं कि, गुरु समकित को देते हैं। (उसको) यहाँ ना कहते हैं। आहाहा ! भाई ! तेरी चीज़ में क्या कमी है ? कि, दूसरे के पास से तुझे लेना है ? तेरी पूर्णता में कहाँ अपूर्णता है ? कि पर से पूर्णता लेना है ? आहाहा ! केवलज्ञान की पर्याय भी (अपने से उत्पन्न होती है)। ज्ञान में संप्रदान का रूप होने से केवलज्ञान की पर्याय देनेवाला आत्मा (है)। अपने द्वारा दी है - राग द्वारा नहीं, निमित्त द्वारा नहीं, श्रवण द्वारा नहीं। आहाहा ! (लोगों को) फुरसद नहीं है। रखड़ने की फुरसद (है)।

अरेरे...! अनंत काल में शुभभाव और अशुभभाव अनंत बार किये। वह विभाव है।

विभाव होने की कोई शक्ति नहीं, आहाहा ! (आत्मा में) कोई गुण नहीं कि विभाव हो, आहाहा ! विभाव की पर्याय पर्यायदृष्टि करने से अपने से षट्कारक से विकार की परिणति उत्पन्न होती है। परंतु वह पर्याय के षट्कारक से विकृत अवस्था उठती है; गुण के बिना, द्रव्य के बिना, पर के संयोग बिना, पर के कारक के कारण बिना (स्वयं के षट्कारक से पर्याय उत्पन्न होती है)।

यहाँ तो कहते हैं कि, षट्कारकरूप विभाव का परिणमन लेना या देना, ऐसा तेरा कोई गुण है ही नहीं, आहाहा ! गज़ब बात करते हैं ! समझ में आया ? शुभभाव होना और शुभभाव रखना, और कोई तेरे में गुण नहीं है। आहाहा ! ऐसी बातें हैं ! तेरे खजाने में कोई कमी नहीं, नाथ ! तेरे खजाने में तो अनंत शक्तियाँ पड़ी हैं न, नाथ ! तू कहाँ ढूँढ़ने जाता है ? जहाँ बाहर में भटकना है वहाँ तो संसार है। चाहे तो शुभ (भाव) हो या अशुभ (भाव) हो, (दोनों संसार है), आहाहा ! अरे...! यह चीज़ क्या है ? भाई ! (तुझे खबर नहीं)। आहाहा !

स्फटिकमणि चैतनरत्न भगवान ! इसमें एक संप्रदान नाम का गुण है। इस गुण का भण्डार है। आहाहा ! इस गुण का स्वरूप तो अपने में है और आनंद के गुण में भी (संप्रदान का) स्वरूप है। (संप्रदान) शक्ति उसमें नहीं लेकिन आनंद नाम के गुण में संप्रदान का स्वरूप है। उस कारण से आनंद की पर्याय प्रगट होती है, वह अपने द्वारा आनंद की पर्याय प्रगट हुई है और आनंद की पर्याय अपनी पात्रता से ले ली है। अपनी योग्यता से ले ली है, आहाहा !

यहाँ तो आपने पैसों के दान की बात तो उड़ गई। पैसे तो ठीक लेकिन यहाँ तो शुभभाव की बात भी उड़ गई। तेरे में (विभाव करने का) कोई गुण नहीं। तेरे में गुण तो (ऐसा है कि) आनंद की पवित्र पर्याय प्रगट हो और एक समय में आनंद की पर्याय लेने की तेरी पात्रता है, आहाहा ! दाता (भी) तू और पात्र भी तू, आहाहा ! ऐसी बातें हैं, भाई ! लोगों को कठिन पड़ता है, (लेकिन) क्या हो सकता है ? (वस्तु स्थिति ऐसी है)। अरे...! अंदर चीज़ पड़ी है, महाप्रभु ! समझ में आता है कुछ ? भगवान होकर भीख माँगता है। भगवान होकर पैसे के लिये भीख माँगता है। आहाहा नाथ ! तू भगवान है न प्रभु ! तू भगवान होकर राग की भीख माँगे कि, मुझे पुण्य हो तो ठीक, मुझे कोई मान का सुख दे (तो ठीक)। स्त्री से सुख मिले, पैसे से सुख मिले, भिखारी ! भिखारा ! तूने बादशाही को भूल के भिखारीपना लिया है। आहाहा !

संप्रदान के कारण अपने में अपने द्वारा लेने में आया और अपने द्वारा देने में आया। आहाहा ! समझ में आया ? मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भगवान ! स्वयं अरूपी आनंद

का नाथ परमात्मा (है)। आहाहा ! अरे...! मुझे कहीं से सुख मिल जाये, कहीं से सुख मिल जाये (ऐसी आशा रखकर) रांक भिखारी होकर (घूमता है)। चक्रवर्ती के घर वाघरण हो, वाघरण समझते हो ? वाघरी दातून बेचते हैं (उसकी पत्नी, उसे वाघरण कहते हैं)। वह वाघरण चक्रवर्ती के घर रहती हो तो वह उसकी आदत नहीं छोड़ती। दो-चार रोटी हाथ में लेकर उसे एक गोखला (गोख) होता है उसमें रखती है। बाद में कहती है, `महाराज ! दातून लो और रोटी दो' बाद में वहाँ दातून रखे और रोटी ले, तब उसे हर्ष होता है। चक्रवर्ती के घर की वाघरण (ऐसा करती है) ! वैसे तेरा आत्मा चक्रवर्ती (है)। तू चैतन्य चक्रवर्ती है। यह शुभ और अशुभ भाव करके वाघरण की भाँति मुझे (उसमें से) सुख मिले (ऐसा करता है)। आहाहा ! शुभ करने से अशुभ करने से मुझे लाभ मिले, भिखारी ! रांका ! तेरी बादशाही को तूने गुलाम बना दिया है। समझ में आया ? आहाहा ! उसे अपनी महत्ता की महिमा आयी नहीं और शुभभाव की महत्ता और महिमा आयी, वह भिखारी है, आहाहा !

यहाँ तो परमात्मा जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं। संतों उसके आढ़तिया होकर बात करते हैं। माल तो सर्वज्ञ के घर का है। जिनेन्द्रदेव का पूर्ण माल तो वहाँ है न ? मुनि आदि साधक हैं लेकिन (वे) साधक हैं, पर्याय में पूर्णता प्रगट नहीं हुई है। आहाहा ! पूर्णानंद के नाथ को निहारा (है) लेकिन अभी निधान में से पर्याय में पूर्णता नहीं आयी। आहाहा ! ऐसे मुनिराज ऐसा कहते हैं कि, सर्वज्ञ तो ऐसा कहते हैं न प्रभु ! तुम मतिज्ञान में ऐसा मानते हो कि, सर्वज्ञ की पर्याय बाहर से आयेगी, वाचन करने से आयेगी, राग करने से आयेगी, वह मिथ्या भ्रम है। मतिज्ञान के काल में भी मतिज्ञान की निर्मल पर्याय जो प्रगट होती है, वह अपने द्वारा प्रगट हुई है। है ? ``**अपने द्वारा दिया जाता...**'' (अर्थात्) अपने द्वारा देने में आता है। कौन (देने में आता है) ? जो भाव है न ? ``**अपने द्वारा दिया जाता जो भाव...**'' आहाहा ! अपनी वीतरागी निर्मल पर्याय अपने द्वारा दी जाती है, वह निर्मल पर्याय भाव (है)। आहाहा !

अमृतचंद्राचार्य ने तो गज़ब काम किया है ! आहाहा ! श्वेतांबर के (आगम) पढ़-पढ़कर पढ़े तो भी एक पंक्ति ऐसी नहीं मिलेगी। कुछ हाथ नहीं आता। आहाहा ! दूसरे को दुःख लगे (लेकिन) क्या हो सकता है ? भाई ! भगवान चैतन्य को दुःख लगे (लेकिन) तुम भी परमात्मा हो, प्रभु ! तुझे दुःख नहीं (हो)। परंतु तेरी चीज़ की विपरीत दृष्टि से आत्मा का लाभ होगा, यह (वस्तु स्थिति) नहीं है।

जिसने अपने स्वभाव की सम्यक्‌दृष्टि की, तो कहते हैं कि, उसे सुख का गुण है उसमें अपने द्वारा दी हुई (अर्थात्) सुख की पर्याय अपने द्वारा आयी। अंतर में से

सुखरूपी भण्डार में से, संप्रदान के स्वरूप के कारण, अंदर आत्मा में आनंद की जो झलक उठी वह दाता। अपने द्वारा दिया और अपने द्वारा लिया। कभी (ऐसी बात) सुनी नहीं। सब ज़गह बहुत गड़बड़ है, बापू ! क्या कहें ? आहाहा ! भगवान की पेढ़ी की दुकान कोई अलग प्रकार की है। आहाहा !

तीनलोक का नाथ जिनेन्द्रदेव, सर्वज्ञ परमात्मा ! उसकी पेढ़ी का मुनिम बनके रहना, यह बहुत अलौकिक बातें हैं। संतों मुनिम बनकर (भगवान की) पेढ़ी को चलाते हैं, आहाहा ! भगवान ! भगवान कहकर ही बुलाते हैं। ७३ गाथा में आ गया न ? भगवान आत्मा ! आहाहा ! अरे संतों ! तुम कहाँ हो ? (आप तो) आनंद की दशा में लीन होनेवाले ! अरे...! पामर को तुम भगवान कहकर संबोधन करते हो, नाथ ! पामर पर्याय में है - वस्तु में पामरता नहीं है। वस्तु में सब प्रभुता से भरी शक्ति है। एक-एक शक्ति प्रभुता से पूर्ण भरी है।

ज्ञानशक्ति में पूर्ण प्रभुता पड़ी है, वह अपने द्वारा ज्ञान की पर्याय अपने से उत्पन्न होती है, उसे अपने द्वारा दिया और अपने द्वारा लिया, आहाहा ! समझ में आया ? समय एक (परंतु) पात्र खुद - देनेवाला (भी) खुद और लेनेवाला (भी) खुद (है)। खुद है न ? स्वयं कहते हैं न ? समझ में आया ? वह कहा न ? देखो !

``**अपने द्वारा दिया जाता...**'' आहाहा ! गज़ब बात है ! ``**जो भाव...**'' (अर्थात्) निर्मल पर्यायरूपी भाव - वह अपने द्वारा दिया जाता है। आहाहा ! समझ में आया ? गुरु, शास्त्र, भगवान तो निमित्त है, आहाहा ! उन्होंने कहा कि, प्रभु ! तेरी शक्ति में तो भण्डार पड़ा है न ! वहाँ नज़र कर ! तेरी निर्मल पर्याय का दाता तुम हो। अपने द्वारा (निर्मल पर्याय) प्रगट होती है। गुरु द्वारा, शास्त्र द्वारा निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती। आहाहा ! समझ में आया ?

``**अपने द्वारा दिया जाता जो भाव...**'' निर्मल वीतरागी पर्याय, धर्म पर्याय, दर्शन, ज्ञान, चारित्र आनंद की पर्याय आहाहा ! (यह भाव है)। पर्याय यानी अवस्था - भाव। वह भाव ``**अपने द्वारा दिया जाता...**'' आहाहा ! व्यवहार द्वारा दिया जाता है, ऐसा नहीं। अरे...! एक-एक शक्ति के वर्णन में व्यवहार से दिया जाता नहीं, ऐसा अनेकांत सिद्ध किया है। अपने द्वारा वीतरागी दशा दी जाती है। आहाहा ! समझ में आया ?

शक्ति के भण्डार को राग की एकताबुद्धि में ताला (मार) दिया है। दया, दान का विकल्प जो शुभराग है, यह मेरी चीज़ है, ऐसी एकताबुद्धि में सारा खजाने को ताला (मार) दिया है। उस राग की एकता तोड़कर भेदज्ञान हुआ, वह कुंजी लगी तो (खजाना) खुल गया, खजाना खुल गया ! समझ में आया ? इस खजाने में एक संप्रदान नाम

का गुण है - रत्न है, आहाहा ! समझ में आया ? संप्रदान नाम का एक गुणरूपी रत्न (है)। अंदर कमरा है। समझ में आया ? आहाहा ! उस कारण से वर्तमान ज्ञान की, दर्शन की, आनंद की, वीर्य की, प्रभुता की स्वच्छता की पर्याय - निर्मलभाव अपने द्वारा दिया है। पूर्व की पर्याय द्वारा नहीं, निमित्त द्वारा नहीं, आहाहा ! गज़ब बात है ! अंदर गहराई से विचार करे तो मालूम पड़े कि यह क्या है ? पूर्व की पर्याय थी, निर्मल पर्याय थी तो पीछे की निर्मल पर्याय आयी, पूर्व की पर्याय दाता और लेनेवाली (बाद की) पर्याय - ऐसा नहीं है, आहाहा ! समझ में आया ?

``**अपने द्वारा दिया जाता...**'' गुजराती में शब्द है न ? ``**पोताथी देवामां आवतो...**'' अपनी गुजराती में ऐसा (लिखा) है। ``**पोताथी देवामां आवतो...**'' (अर्थात्) अपने द्वारा देने में आया। आहाहा ! आत्म द्वारा (अर्थात्) आत्मा की शक्ति द्वारा निर्मल पर्याय देने में आयी, ऐसा जो निर्मल भाव, धर्म भाव। यह धर्म भाव अपने से दिया जानेवाला धर्मभाव है, आहाहा ! कितनी बात करते हैं ! व्यवहार रत्नत्रय से धर्म पर्याय होती है, उसका नकार किया है। यह तकरार बहुत (चलती है)। भगवान ! आहाहा ! प्रभु ! तेरी चीज़ की तुझे खबर नहीं। (तेरे में) अनंत शक्तियों का भण्डार पड़ा है न ? एक-एक शक्ति में अनंती प्रभुता की ताकत है। प्रभुता की शक्ति के कारण अपनी पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की प्रभुता प्रगट हुई, वह अपने द्वारा हुई है। गुरु द्वारा नहीं, शास्त्र द्वारा नहीं, व्यवहार द्वारा नहीं और पूर्व की पर्याय द्वारा नहीं और एक-एक गुण की पर्याय दूसरे गुण द्वारा नहीं, आहाहा ! ऐसी बातें हैं ! सत्य तो ऐसा है।

``**अपने द्वारा दिया जाता जो भाव...**'' (अर्थात्) वर्तमान निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय अथवा अनंत गुण की प्रगट व्यक्त निर्मल पर्याय, अनंत गुण की व्यक्त निर्मल पर्याय। यहाँ उसको भाव कहा। ``**अपने द्वारा दिया जाता जो भाव उसके उपेयत्वमय (- उसे प्राप्त करने के योग्यतामय,...)**'' पर्याय में प्राप्त करने की अपनी योग्यता है, आहाहा ! समझ में आया ? `**योग्यतामय**' उसका अर्थ क्या किया ? ``(**...उसे लेनेके पात्रपनामय...**) '' आहाहा !

अपने में अपने से निर्मल पर्याय दी। (जिसने) दिया वह दाता और अपनी योग्यता से - पात्रता से लिया। एक ही समय में दो भाव हैं। आहाहा ! कहते हैं न ? दाता, देय और दान। दान निर्दोष होना चाहिए। दाता भी निर्दोष भाव से - शुभभाव से देते हैं और लेनेवाले पात्र - तीर्थंकर जैसे, मुनि जैसे पात्र, समकिती को आहार देना, परंतु वह तो बाहर का पात्र - शुभभाव की बात है, आहाहा ! जो आत्मा में कोई गुण नहीं, ऐसी विकृत अवस्था का यह कार्य है। यहाँ तो गुण का कार्य यह है कि, निर्मल अवस्था

अपने से अपने में दी (और) अपने में ली। एक समय में यह स्थिति !

संस्कृत में है, देखो ! ``**स्वयं दीयमानभावोपेयत्वमयी संप्रदानशक्ति**'' ``**स्वयं दीयमानभाव...**'' अपने से देनेवाली निर्मल पर्याय (भाव)। आहाहा ! गज़ब बात है ! यह तकरार करते हैं कि, व्यवहार से होता है, वह बात उड़ जाती है। व्रत, तप, भक्ति, पूजा करो, मंदिर बनाओ, रथयात्रा निकालो, गजरथ निकालो और पाँच-दस लाख खर्च करो तो तुम्हें धर्म होगा। यहाँ तो कहते हैं कि उससे तीनकाल में (धर्म) नहीं होता, आहाहा !

वह शुभ भाव है। वह अपने गुण की विपरीत अवस्था है। गुण की अविपरीत अवस्था तो अपनी अपने से निर्मल (अवस्था) लेते है, वह अवस्था है। आहाहा ! समझ में आया? शुभभाव देना और लेना यह कुपात्र है। अररर...! आहाहा ! शुभभाव करना और लेना - रखना, वह तो कुपात्र की बात है, आहाहा !

प्रभु ! तेरी शक्ति के भण्डार में से मोक्षमार्ग रूपी धर्म की, पर्याय, उस पर्याय का भाव यहाँ पर्याय को भाव कहा, अपने से दिया है। कोई (अन्य) से नहीं। पर्याय से नहीं, निमित्त से नहीं, राग से नहीं, आहाहा ! अरे...! विचार तो करे कि, यह चीज़ क्या है ? अरे...! सुनने मिले नहीं। (कोई ऐसा माने कि) गुरु की भक्ति करते-करते कल्याण हो जायेगा, गुरु की कृपा है तो समकित हो जायेगा। लेकिन गुरु की कृपा कैसी ? सुन तो सही ! तेरी शक्ति की कृपा हो जाये (तो) उससे निर्मल पर्याय प्रगट होती है, आहाहा ! ऐसा धर्म ! सबेरे की बात थोड़ी समझ में ऐसी स्थूल है। यह सूक्ष्म है।

यहाँ तो एक-एक शक्ति में अनंत-अनंत शक्ति का रूप पड़ा है अथवा अनंत शक्ति का एक शक्ति में स्वरूप और एक शक्ति में अनंत शक्ति का स्वरूप पड़ा है, आहाहा ! समझ में आया ? (आत्मा में) अकारणकार्य नाम की शक्ति है। इस गुण की पर्याय राग का कारण नहीं और राग का कार्य नहीं। व्यवहार है तो सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ, ऐसा कोई कार्य नहीं, आहाहा ! पर का कारण और कार्य नहीं। ऐसी अकारणकार्य शक्ति में संप्रदान (शक्ति का) रूप है। अपने में वीतरागी पर्याय पर का कारण नहीं और पर का कार्य नहीं। ऐसी (पर्याय की) उत्पत्ति, उसे देनेवाला आत्मा और लेनेवाला आत्मा (है)। एक समय में दो (भाव हैं)। आहाहा ! अरे...! एक समय में छ (भाव हैं)। संप्रदान की पर्याय का कर्ता आत्मा, कार्य उसका, संप्रदान अपना, पर्याय का साधकपना (अपना), और अपादान - ध्रुव उपादान से होना, वह भी व्यवहार है। क्षणिक उपादान से निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई और अपने में अपनी पर्याय का पर्याय आधार। आहाहा ! ऐसा अनंत गुण में लगाना। यहाँ पर्याय के षट्कारक की (बात है)। बहुत सूक्ष्म बात, बापू ! यहाँ तो

अभी लिया जाता है, ऐसे भेद से बात करते हैं। परंतु निर्मल पर्याय जो सम्यग्दर्शन की, ज्ञान की होती है, वह षट्कारक से अपने से उत्पन्न होती है, आहाहा ! गुण के षट्कारक तो ध्रुव है। यह तो परिणति के षट्कारक है, आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बातें (हैं)।

तेरा भगवान अंदर प्रगट है, प्रभु ! भग नाम अनंत ज्ञान आदि लक्ष्मी उसका वान है - उसका स्वरूप है। भगवान आत्मा ! तेरा स्वरूप है न ! आहाहा ! यह स्त्री, पुरुष और नपुंसक का शरीर तेरी चीज़ नहीं। वह तो पर चीज़ (है), जड़ की चीज़ है, आहाहा ! इन्द्रिय का, स्त्री का, पुरुष का और शरीर का आकार, प्रभु ! वह तो जड़ - मिट्टी - धूल का आकार है। वह तेरी पर्याय में नहीं, तेरे में नहीं और तेरे से हुई नहीं, आहाहा !

यहाँ तो शुभभाव भी तेरे से हुआ नहीं। यह तो पर्यायबुद्धि से विकार होता है, कमज़ोरी से उत्पन्न होता है। यह तो गुण का कार्य जो है (उसमें) विकार (होना) उसके गुण के कारण से होता नहीं। जिसका गुण और गुण की अभेद दृष्टि हुई, उसमें विकार कार्य होता ही नहीं, आहाहा ! उसका कार्य शुद्ध परिणति का है। अपने द्वारा वह परिणति उत्पन्न हुई है। आहाहा ! इसमें तकरार करते हैं। (लोग कहते हैं) एकांत है... एकांत है... प्रभु ! सुन तो सही ! नाथ ! तेरे घर की स्वतंत्रता की बातें (हैं)। आहाहा ! किसका विरोध करना ? आहाहा !

जिसकी एक-एक शक्ति में अनंत स्वरूप ! एक-एक शक्ति में अनंत शक्ति और अनंत गुण, आहाहा ! यह (सब) शक्ति प्रभुत्व शक्ति से भरी पड़ी है। अपनी प्रभुत्व शक्ति में भी संप्रदान का रूप है और संप्रदान शक्ति में प्रभुता का रूप है। समझ में आया ? प्रभुत्व नाम की एक शक्ति है - ईश्वर होने की (शक्ति है)। इसमें संप्रदान का स्वरूप है और संप्रदान में प्रभुत्व शक्ति का स्वरूप है। आहाहा ! प्रभुत्व शक्ति भले संप्रदान शक्ति में न हो, लेकिन अंदर संप्रदान शक्ति में प्रभुत्व शक्ति भरी है। उसका स्वरूप (भरा है)। आहाहा ! कितना विस्तार ! गज़ब बात है, भाई !

अरे...! निवृत्ति बिना, (पर की) चिंता छोड़े बिना, यह (वस्तु) प्राप्त नहीं होगी, आहाहा ! समझ में आया ? शुभभाव से मोक्षमार्ग है, अरे प्रभु ! गज़ब बात है ! जैनदर्शन में यह चीज़ नहीं है। जैन दर्शन यह वीतराग दर्शन है। उसमें राग (से धर्म होता है), यह जैन दर्शन ही नहीं। - यह जैन धर्म नहीं। आहाहा ! जैन दर्शन और जैन धर्म जो वीतरागी पर्याय वह अपने से प्रगट होती है, जो अपने से दिया है। आहाहा !

राग की बहुत मंदता - शुक्ल लेश्या जैसी मंदता, ९ वीं ग्रैवेयक गया, वह शुक्ल लेश्या से गया (उससे कल्याण नहीं हुआ)। शुक्ल लेश्या की (बात है)। शुक्ल ध्यान नहीं।

शुक्ल ध्यान दूसरी चीज़ है, शुक्ल लेश्या दूसरी चीज़ है। शुक्ल लेश्या अभवी को भी होती है और शुक्ल ध्यान तो ८ वां गुणस्थान चढ़े तब ध्यान होता है। शुक्ल लेश्या तो अभवी को भी होती है, आहाहा ! और ऐसी शुक्ल लेश्या तो अनंत बार हो गयी (है)। आहाहा ! क्योंकि शास्त्र में - भगवान के आगम में ऐसा लिखा है कि, मनुष्य भव (उसके सामने) असंख्य नरक (का भव)। एक मनुष्य (भव और सामने) असंख्य नरक का (भव)। ऐसा असंख्य गुना अनंत (भव किया)। और ऐसे एक नरक का (भव और सामने) असंख्य (भव) देव का (किया)। असंख्य गुना अनंता भव स्वर्ग का किया। स्वर्ग का (भव) किया तो शुभभाव से (स्वर्ग) होता है कि पाप से होता है ? समझ में आया ? मनुष्य से ज्यादा नरक का अनंत भव और स्वर्ग का भव नरक के भव से अनंत गुना भव (किया)। असंख्य गुना अनंत (किये)। आहाहा ! वह सब तिर्यंच में से जाते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच की संख्या बहुत है। क्योंकि मनुष्य अल्प है और उससे असंख्य गुना नरक और उससे असंख्यगुना देव, तो (सब) कहाँ से गये ? समझ में आया ? पशु - तिर्यंच की संख्या बहुत है, आहाहा ! उसमें ऐसी कोई शुक्ल लेश्या आ जाये तो सातवें, स्वर्ग में चला जाये। समझ में आया ? ऐसे नरक के भव से असंख्य गुना अनंता भव स्वर्ग के किये। अनंत भव किये तो शुभभाव कितनी बार किये ? आहाहा ! अशुभ भाव से ज्यादा असंख्य गुना अनंता शुभभाव किये। अरेरेरे...! समझ में आया ? यह कोई तेरी चीज़ नहीं, आहाहा ! कोई शुभभाव हुआ हो तो शुभभाव से जड़ परमाणु बनते हैं। उसमें तेरी पर्याय में क्या आया ? तेरी पर्याय में मलिनता छूटकर निर्मलता कहाँ आयी ? आहाहा ! समझ में आया ?

(यहाँ) कहते हैं कि, निर्मलता की - धर्म की पर्याय का दाता अपने द्वारा देता है। अपने गुण और गुण के द्वारा वह निर्मल पर्याय का दाता है। निश्चय से तो पर्याय दाता और पर्याय पात्र (है)। समझ में आया ? परंतु व्यवहार से उसमें संप्रदान का गुण है तो गुण का परिणमन द्वारा (परिणमन हुआ, ऐसा कहने में आता है)। परिणमन तो पर्याय में हुआ (है)। गुण परिणमता नहीं। समझ में आया ? संप्रदान शक्ति तो ध्रुव है। उसकी परिणति - पर्याय होती है इसमें - परिणति में पर्याय आती है। वास्तव में तो - निश्चय से तो अपनी निर्मल परिणति दाता और देय - लेनेवाली परिणति एक ही समय की है। आहाहा ! जिसको द्रव्यदृष्टि हुई इसको (यह बात है)। जिसको पर्यायदृष्टि है उसके पास संप्रदान शक्ति की प्रतीति नहीं। आहाहा ! अरे...! इसमें वाद-विवाद करने से कहाँ पार आ सकता है ?

समयसार ११ वीं गाथा के भावार्थ में कहा है कि, भगवान ने हस्तावलंब तुल्य

जानकर निमित्त का - व्यवहार का बहुत कथन किया है। एक तो अनादि का व्यवहार का तुझे पक्ष है। और परस्पर तुम व्यवहार की चर्चा करते हो और व्यवहार का कथन भी जैन दर्शन में बहुत आया है, लेकिन तीनों का फल संसार है। उसमें लिखा है। देखो ! क्या कहते हैं ?

``**भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से ही है...**'' हिन्दी पुस्तक में २४ नंबर के पन्ने पर पहली पंक्ति। ``**प्राणीयों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से ही है।**'' एक बात। ``**ऐसा इसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं।**'' व्यवहार से होता है, व्यवहार से होता है (ऐसा उपदेश) परस्पर प्राणी करते हैं। (उसमें) सुननेवाले राजी होते हैं। समझ में आया ? दो बातें हुई। ``**और जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलंबन (सहायक) जानकर बहुत किया है।**'' लोग आधार देते हैं परंतु वह तो निमित्त को देखकर कहा है। समझ में आया ? जिनवाणी में भेद के - निमित्त के लक्ष से हस्तावलंबन जानकर जिनवाणी में कथन बहुत आया है। ``**किन्तु उसका फल संसार ही है।**'' समझ में आया ?

यहाँ तो उसे निकाल देना है। अपने स्वरूप में व्यवहार भाव का लेना-देना (हो) ऐसा स्वरूप में कोई गुण ही नहीं है। आहाहा ! तेरा यह गुण नहीं। तेरे गुण में तो ऐसा है कि, निर्मल पर्याय देना और लेना। तुम ही दाता और तुम ही पात्र, योग्यता भी तेरी और लेनेवाला भी तू, आहाहा !

यहाँ तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान की पर्यायवाले को पात्र कहा। सम्यग्दर्शन को पानेवाला पात्र कौन है ? यह बात यहाँ नहीं ली है। समझ में आया ? क्या कहा ? कि अपने में जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय उत्पन्न होती है, वह अपने द्वारा दी जाती है और अपने द्वारा योग्यता से ली जाती है। उसका नाम योग्यता - उसका नाम पात्रता। श्रीमद् ने कहा है, सम्यक्दृष्टि ही धर्म का पात्र है, ऐसा लिखा है। वह पात्रता में आगे बढ़ गया है और केवलज्ञान होगा। वह पात्र में होगा। आहाहा ! समझ में आया ?

श्रोता : पात्र विना वस्तु न रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दूसरी चीज़ है। यह चीज़ दूसरी है। दूसरे ठिकाने उन्होंने समकिती को पात्र कहा। इसमें आया न, भाई ! भगवान आत्मा ! पूर्णानंद का नाथ, अनंत शक्ति का सागर इसकी जिसने दृष्टि की, यह सम्यक्दृष्टि योग्य - पात्र है। और लेने की अवस्था का दाता भी वह है, आहाहा ! अरे...! ऐसी बात सुनने मिले नहीं। बाहर में ही भटक-भटककर मर गया। प्रभु ! तेरी महत्ता की तुझे खबर नहीं। आहाहा ! कितना भरा है ! (इसका तो) कोई पार नहीं ! (इतना भरा है)।

एक संप्रदान शक्ति अनंत गुण में व्याप्त है। और यह संप्रदान शक्ति अनंत गुण में निमित्त है। और यह संप्रदान शक्ति ध्रुव (उपादान) और क्षणिक उपादान से पड़ी है। संप्रदान शक्ति ध्रुव है। और निर्मल पर्याय अपने में दिया - लिया वह क्षणिक उपादान है। आहाहा ! अरे...! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव के श्रीमुख से दिव्यध्वनि में तो यह आया है। समझ में आया ? आहाहा ! आत्मा में अकर्तागुण है। आ गया न ? अकर्तागुण है। अकर्तागुण में भी संप्रदान का स्वरूप है। उस कारण से अकर्ता गुण की जो पर्याय है वह अकर्तागुण दाता और अकर्तागुण की जो पर्याय है, वह लेनेवाला पात्र। आहाहा ! पात्र - लेने की पर्याय और पात्र - देने का दान, एक समय में (है)। आहाहा !

ऐसा मार्ग ! वीतराग मार्ग ! भाग्यवान को कान में सुनने मिले, भाई ! लोगों को ऐसा लगे कि, एकांत है... एकांत है। सोनगढ़वाले एकांत कहते हैं। अरे...! प्रभु ! इस प्रकार आलोचना मत कर ! नाथ ! तुझे यह शोभा नहीं देता। तेरे गुण में ऐसा कोई गुण नहीं कि, व्यवहार से लाभ हो। ऐसा कोई गुण नहीं। वह तो पर्यायदृष्टि में माननेवाला है।

दो शब्द लिये। ``**अपने द्वारा दिया जाता...**'' (अर्थात्) पर्याय। ``**उसके उपेयत्वमय...**'' (अर्थात्) उसे लेनेवाला - उसे प्राप्त करने के योग्य - लेने के योग्य अथवा लेने के पात्रपनामय। योग्यता कहो कि पात्रता कहो (एक ही बात है)। यहाँ तो दो (बातें) लेनी है कि, निर्मल पर्याय की योग्यता लेनेवाली सम्यग्दर्शन की पर्याय। आहाहा ! धर्म की पर्याय वही योग्यता से लेनेवाली है और वही पर्याय देनेवाली पर्याय है, आहाहा ! समझ में आया ? दूसरे गुण की पर्याय - योग्यता और लेनेवाली (है), वह (बात) यहाँ नहीं। यहाँ तो एक-एक गुण की जो अपने में निर्मल पर्याय होती है, वह दाता और वही पर्याय की योग्यता - पात्रता है। आहाहा ! समझ में आया ?

श्रीमद् में `इच्छे छे जोगीजन' (काव्य में) आता है न ? जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट तीन (पात्र की बात आती है)। यहाँ तो इस प्रकार की पात्रता ली है। समझ में आया ? मध्यपात्र महाभाग्य और बाद में उत्कृष्ट पात्र की बात (कही है)। वह (बात यहाँ) नहीं है। यहाँ तो निर्मल सम्यग्दर्शन की होने के लायक कौन ? ये बात यहाँ नहीं। समझ में आया ? जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट (ऐसे) तीन बोल लिये हैं। `इच्छे छे जे जोगीजन' (काव्य में) अंत में है।

``**जिन प्रवचन दुर्गम्यता, थाके अति मतिमान,**
अवलंबन श्री सद्गुरु, सुगम और सुखखाण
- परिणामनी विषमता, तेने योग अयोग,

मंद विषय ने सरळता, सह आज्ञा सुविचार
करूणा कोमळतादि गुण, प्रथम भूमिका धार,
रोक्या शब्दादिक विषय, संयम साधन राग
जगत इष्ट नहि आत्मथी, मध्यपात्र महाभाग्य,
नहीं तृष्णा जीव्या तणी, मरण योग नहीं क्षोभ,
महापात्र ते मार्ग ना, परम योग जितलोभ।"

यहाँ तो कहते हैं कि, सम्यक्दृष्टि जीव ने अपने द्रव्यस्वभाव का आश्रय लिया है, तो वह सम्यग्दर्शन की पर्याय है वही लेने योग्य और वही देने योग्य है। पात्रता ही वह है। समझ में आया ? विशेष कहेंगे...

जीव, अर्थ है तथा ज्ञायकता उसका भाव है। अजीव, भी अर्थ है और अचेतनता-जड़ता उसका भाव है। संवर-निर्जरा, अर्थ है व वीतरागता उसका भाव है।आस्रव-बंध, अर्थ है और मलिनता उसका भाव है। केवलज्ञान-पर्याय भी अर्थ है व तीनकाल-तीनलोकको एक समयमें जानना उसका भाव है। इस प्रकार अर्थ व उसके तत्त्वको जानें तो यथार्थ श्रद्धा हो। इसलिये तत्त्वार्थ-श्रद्धानको सम्यग्दर्शनका लक्षण कहा है। ९६३

कदाचित् लाखों मनुष्य उपदेशके निमित्तसे समझे, परन्तु उपदेशकको लाभ नहीं है। वाणीका परिणमन आत्माके अधीन नहीं है। परद्रव्यका परिणमन भिन्न है। जीव-अजीवका श्रद्धान कर निज-हितार्थ परसे उदासीन होनेका शास्त्र निर्देश है। परन्तु मैं परके निमित्तसे उदासीन होऊँ - ऐसा नहीं कहा है। ९६४

प्रवचन नं. ४०
शक्ति-४५ दि. १९-०९-१९७७
उत्पादव्ययालिङ्गितभावापायनिरपायध्रुवत्वमयी अपादानशक्तिः ।।४५।।

समयसार, शक्ति का अधिकार चलता है। शक्ति नाम गुण। गुणी ऐसा जो आत्मा उसमें गुण की संख्या अनंत हैं, द्रव्य एक (है) लेकिन उसकी शक्तियाँ-गुण अनंत हैं। यहाँ तो ४७ का वर्णन किया है। शक्ति का गुण जो है, उसका कार्य क्या ? तो कहते हैं कि, जो व्यवहार-राग की उत्पत्ति होती है वह व्यवहार निश्चय शक्ति का कार्य ही नहीं, आहाहा ! अपनी शक्ति में से निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय होती है। उससे व्यवहार उत्पन्न नहीं होता। उसमें तो व्यवहार का अभाव उत्पन्न होता है, आहाहा !

यहाँ तो पहले ऐसा कहते थे कि, वर्तमान (साधु) हैं, ये सब भावलिंगी (साधु) हैं। भावलिंगी का अभी अर्थ किया कि, वर्तमान (साधु हैं) ये सब सराग चारित्र हैं। वह सराग भाव है। आहाहा ! अरे बापू ! भावलिंग किसे कहें ? भाई !

आज यहाँ ४५ वीं शक्ति चलती है। ४४ (शक्ति) हो गई। `**उत्पादव्यय से आलिंगित भाव...**' यह प्रधान शक्ति है। दीपचंदजी ने पंचसंग्रह में-ज्ञान दर्पण में इस शक्ति की बहुत प्रशंसा की है। क्योंकि ध्रुव उपादान और क्षणिक उपादान दोनों उसमें से उत्पन्न होता है। उससे सिद्धि होती है। क्या ? जो त्रिकाली गुण है, वह ध्रुव उपादान है और वर्तमान जो यह कहा, `**उत्पादव्यय से आलिंगित....**' (अर्थात्) वर्तमान पर्याय यह क्षणिक उपादान है। आहाहा ! क्षणिक उपादान और ध्रुव उपादान, (ऐसे शब्द) कभी तुम्हारी हिसाब की किताब में भी नहीं मिलेगा।

चिद्विलास में अष्टसहस्री का आधार देकर, त्यक्त-अत्यक्त कहा है। जो वर्तमान निर्मल परिणाम है, उसको त्यक्त (कहते हैं)। वह परिणाम छूट जायेगा और नया परिणाम

होगा। यह क्षणिक उपादान है। वह अपने से आलिंगित स्पर्श करनेवाला निर्मल परिणाम-पर्याय यह क्षणिक रहता है और दूसरा परिणाम भिन्न होता है। इस क्षणिक उपादान में त्यक्त (अर्थात्) वर्तमान निर्मल परिणाम (कहना है)। यहाँ मलिन (पर्याय की) बात है ही नहीं। मलिनता कोई चारित्र नहीं। मलिनता कोई सुख शक्ति का कार्य नहीं, आहाहा ! मलिनता है, वह हेय में जाती है। क्षणिक उपादान में भी नहीं (है)। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म है, भाई ! दिगंबर संतों की अंतर में जाने की शैली अलौकिक है ! आहाहा !

जहाँ आनंद का नाथ भगवान बिराजता है, वहाँ समीप में जा ! समीप में जाने की पर्याय वर्तमान है। समझ में आया ? यह त्यक्त है। यह परिणाम छूट जाता है (और) नया परिणाम आता है। ध्रुव अत्यक्त है। ध्रुव उपादान है वह कभी छूटता नहीं - बदलता नहीं। वह तो जो है सो है, आहाहा !

उपादान - निमित्त का बड़ा झगड़ा है न ? (लोग कहते हैं कि), निमित्त से होता है, निमित्त से होता है, लेकिन यहाँ तो ना कहते हैं। सुन तो सही ! ``**उत्पादव्यय से आलिंगित...**'' कौन ? वर्तमान पर्याय। वर्तमान सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि अनंत गुण की वर्तमान परिणित का भाव, वह उत्पादव्यय से स्पर्शित (आलिंगित) भाव (है)। आहाहा ! यह तो बड़े मंत्र हैं ! वर्तमान सम्यक्दृष्टि का जो निर्मल परिणाम उत्पाद् - व्यय (रूप) होता है, ऐसा जो भाव, उससे आलिंगित पर्याय है। उत्पाद - व्यय की पर्याय आलिंगित है। पर्याय आलिंगित है। ``**उत्पादव्यय से आलिंगितभाव...**'' आहाहा ! बहुत संक्षिप्त में (समा दिया है)।

जो वर्तमान सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि की वीतरागी पर्याय उत्पाद - व्ययरूप होती है, उसको स्पर्शित भाव (अर्थात्) वर्तमान पर्याय। उत्पाद - व्यय को स्पर्शित वर्तमान पर्याय, ध्रुव नहीं, आहाहा ! ``**उत्पादव्यय से आलिंगित (भाव)...**'' (अर्थात्) स्पर्शित भाव। भाव नाम वर्तमान पर्याय। ``**...अपाय...**'' (अर्थात्) उस पर्याय का नाश होने पर भी। निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि अनंत गुण की क्षणिक (पर्याय का नाश होने पर भी)। सम्यग्दर्शन अर्थात् `सर्व गुणांश ते समकित' सर्व गुणांश ते समकित (अर्थात्) जितनी संख्या में गुण है उतनी अनंत गुण की व्यक्त निर्मल पर्याय सम्यग्दर्शन में होती है। यह सम्यग्दर्शन की पर्याय भी उत्पाद - व्ययवाली है और अनंत गुण की पर्याय व्यक्त होती है, वह भी उत्पाद - व्ययवाली है. समझ में आया ? थोड़ा ध्यान रखे तो पकड़ में आये ऐसा है, बापू ! यह कोई कथा - वार्ता नहीं है। यह तो वीतराग के पेट खोलकर संतों ने बात कही है। आहाहा ! समझ में आया ?

(यहाँ) कहते हैं कि, उत्पादव्यय से स्पर्शित (अर्थात्) अनंत गुण जो है, उसमें यह

एक शक्ति ऐसी है कि, अनंत गुण में यह एक (अपादान) शक्ति का स्वरूप है। ज्ञान, दर्शन, आनंद, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अनंतधर्मत्व (सभी में अपादान का स्वरूप है)। समझ में आया ? यहाँ कहते हैं कि, आत्मा में जितनी संख्या में अनंत गुण - शक्ति है, उन प्रत्येक गुण में यह अपादान नाम की शक्ति का स्वरूप है। आहाहा ! कि, जिस कारण से जो ज्ञान गुण है, यह ध्रुव है और उसकी पर्याय है यह उत्पाद-व्यय से आलिंगित क्षणिक है। (यहाँ) ध्रुव उपादान और क्षणिक उपादान, ऐसे उपादान के भेद है। त्रिकाली ध्रुव उपादान और क्षणिक पर्याय (इस प्रकार) अपादान में से दो उपादान निकलते हैं।

ज्ञान त्रिकाल है, यह ध्रुव उपादान है और उसमें अपाय नाम की शक्ति के कारण, यह ध्रुव उपादान कायम रहकर, वर्तमान सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि की सम्यक् पर्याय उत्पन्न होती है, यह पर्याय उत्पाद - व्यय से स्पर्शित है। ध्रुव को स्पर्शित नहीं। आहाहा ! ऐसी बातें हैं ! बहुत भरा है ! शक्ति में तो इतना भण्डार है ! इतना भरा है ! ओहोहो...! सारा समयसार कहकर बाद में ऊपर कलश चढ़ाया है। आहाहा ! मंदिर में जैसे ऊपर कलश होता है न ? (ऐसे यह कलश चढ़ाया है)। आहाहा ! ऐसी बात (है)। वाचक शब्द है कि, उत्पादव्यय से स्पर्शित (अर्थात्) ज्ञान की वर्तमान निर्मल पर्याय उत्पादव्यय से स्पर्शित (है), फिर भी उत्पादव्यय का नाश होने पर भी ध्रुव उपादान कायम रहता है। अरे...! ऐसी बातें हैं !

अरे...! उपादान - निमित्त के झघड़े, व्यवहार - निश्चय के झघड़े और क्रमबद्ध का झघड़ा। ये पाँच झगड़े सोनगढ़ के सामने आते हैं। अरे भगवान ! बापू ! सुन तो सही नाथ ! आहाहा !

तेरी पर्याय में ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, उसमें अपादान नाम की शक्ति का रूप है, उस कारण से ज्ञान की निर्मल पर्याय उत्पन्न हो, वह उत्पादव्यय से आलिंगित है। और उस पर्याय का अभाव होने पर भी ध्रुव उपादान कायम रहता है। समझ में आया ? यह एक गुण पर लगाया।

``**उत्पाद्व्यय से आलिंगित...**'' (अर्थात्) ज्ञान गुण की स्पर्शित पर्याय। पर्याय उत्पाद - व्यय से सहित है, ऐसे भाव की हानि - अपाय होने पर भी, पर्याय का अभाव होने पर भी, पर्याय का नाश होने पर भी, हानि को प्राप्त न होने से। ``**...अपाय (- हानि, नाश) होनेसे हानि को प्राप्त न होनेवाले...**'' क्योंकि अंदर ध्रुवत्वमयी अपादान शक्ति है। पर्याय की हानि हुई तो ध्रुव में हानि नहीं (हुई) है। आहाहा ! समझ में आया ?

वर्तमान निर्मल पर्याय जो उत्पन्न हुई है, वह व्यवहार से (उत्पन्न) नहीं (हुई)। निमित्त से (उत्पन्न) नहीं (हुई)। वह ध्रुव उपादान से उत्पन्न हुई (है)। वह उत्पन्न हुई और उसका

नाश होने पर भी ध्रुव उपादान कायम है। ऐसी बातें (हैं)। समझ में आया ? इस तत्त्व की स्थिति ऐसी है। वस्तु की शक्ति और परिणति वस्तु की मर्यादा है। आहाहा ! तत्त्वज्ञान की जिसको खबर नहीं, उसको धर्म कैसे हो ? आहाहा ! समझ में आया ?

(यहाँ) तो कहते हैं कि, ज्ञानगुण में भी अपादान नाम का रूप होनेसे ज्ञानगुण की वर्तमान पर्याय उत्पाद - व्यय से आलिंगित है और उस पर्याय का तो अभाव - नाश होता है। (पर्याय का) नाश होने पर भी, है ? हानि को प्राप्त न होने से। पर्याय नाश हुई लेकिन हानि को प्राप्त नहीं हुई। त्रिकाल ध्रुवत्वमयी है, आहाहा !

दूसरे तरीके से कहें तो, उस पर्याय का अभाव होता है और पर्याय का उत्पाद होता है (तो) ध्रुव में कोई फेरफार नहीं (होता) है, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि पर्याय (है, उसमें) यहाँ पहले ज्ञान की पर्याय ली। उसका अभाव होने पर भी, ध्रुव तो ध्रुव एक सरीखा पड़ा है। पर्याय उत्पन्न हुई तो भी ध्रुव तो जो है सो है। और उत्पन्न (पर्याय का) अभाव हुआ तो भी ध्रुव तो ध्रुव ही है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी सूक्ष्म बातें पकड़नी कठिन (पड़े), तत्त्वज्ञानी को यह वस्तु जाननी पड़ेगी। समझ में आया ? यह दृष्टि बिना, ज्ञान बिना की दृष्टि निर्मल नहीं होगी, आहाहा ! समझ में आया ?

दूसरे प्रकार से कहें तो वर्तमान ज्ञान पर्याय की हानि होने पर भी, दृष्टि तो ध्रुव पर है। ध्रुव में हानि नहीं होती। आहाहा ! समझ में आया ? दृष्टि तो शाश्वत उपादान जो ध्रुव है, उस पर है। आहाहा ! समझ में आया ? अधिकार सूक्ष्म है। पर्युषण के मौके पर शक्ति का वर्णन आ गया है। आहाहा ! भगवान ! तेरी सम्यक्ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हो, वह क्षणिक उपादान के कारण अपने से है। ज्ञानावरणीय का अभाव हुआ कि, शास्त्र के शुभ विकल्प से पढ़ाई करी तो इस विकल्प के कारण यहाँ निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं (है), आहाहा ! ११ अंग - ९ पूर्व के शास्त्र पढ़े हो तो यह पर्याय तो परसत्ता अवलंबी है, आहाहा ! यह (पर्याय) तो अपनी सत्ता का अवलंबन होकर उत्पाद - व्यय को आलिंगित होती है। उसका भाव शास्त्र ज्ञान की पर्याय से नहीं होता, आहाहा ! उसकी अपादान नाम की शक्ति है, उससे उत्पन्न होता है। अरे...! ऐसी बात (बैठनी मुश्किल पड़े)।

निमित्त से होता है... निमित्त से होता है... व्यवहार से निश्चय होता है। सब मिथ्या भ्रम है। समझ में आया ? भगवान आत्मा अनंत शक्ति - गुण का भण्डार, ऐसे स्वभाव का धरनेवाला (ऐसी) स्वाभाविक चीज़ पर जिसकी दृष्टि गयी और उसका अनुभव में स्वीकार आया, पर्याय में आनंद की वेदन दशा हुई, तो यहाँ कहते हैं कि, यह आनंद की दशा एक समय रहती है। उत्पाद - व्यय से आलिंगित यह दशा है। उसका अभाव होने

पर भी आनंद नाम का ध्रुव गुण तो कायम रहता है। आहाहा ! समझ में आया ? पर्याय नाश हुई तो ध्रुव में कुछ फेरफार हुआ है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा ! समझ में आया ? नये आदमी को (ऐसा लगे) ऐसा कहाँ समझना ? फुरसद नहीं मिलती। चौबीस घंटे पाप का धंधा. अकेला पाप (बांधता है)। धर्म तो नहीं लेकिन पुण्य भी नहीं, आहाहा ! कौन धंधा करे ? कौन कर सकता है ? (मात्र) भाव करे। पाप के - राग के भाव करे। धंधा कौन कर सकता है ? (पर की) क्रिया कौन कर सकता है ? यहाँ तो अपनी पर्याय में विकृत अवस्था उत्पन्न होती है, उसका भी यहाँ निषेध किया। विकृत (अवस्था है) उसका ज्ञान करते हैं। यह ज्ञान की पर्याय जो उत्पन्न हुई वह उत्पाद् - व्यय से आलिंगित पर्याय है, उसका अभाव होने पर (भी) ध्रुव में अभाव नहीं (होता)। ध्रुव में कोई हानि नहीं होती, आहाहा ! ऐसी बातें (हैं)।

ऐसे सम्यग्दर्शन में (लेना)। अंदर में त्रिकाल श्रद्धा गुण जो है, उसमें अपादान शक्ति का स्वरूप - रूप है, स्वरूप है। उस कारण से सम्यग्दर्शन की जो पर्याय उत्पन्न हुई, वह उत्पाद् - व्ययवाली पर्याय, पर्याय को स्पर्श करती है, ध्रुव को (स्पर्श) नहीं (करती)। इस निर्मल पर्याय का दूसरे समय में अभाव होता है, हानि होती है। हानि होने पर भी वस्तु में हानि नहीं होती। परिणाम त्यक्त हुआ (और) ध्रुव अत्यक्त - कायम रहता है। क्षणिक उपादान समय - समय में पलटता है। यहाँ निर्मल (पर्याय की) बात है। फिर भी ध्रुप उपादान शाश्वत कायम है। समझ में आता है कुछ ? भाई तेरी चीज़ तो ध्रुव और क्षणिक (है)। (उसमें) क्षणिक पर्याय में निर्मलता होती है, वह अपने उपादान से (होती) है। अपादान शक्ति का दूसरा अर्थ उपादान है।

पंचसंग्रह में तो (दीपचंदजी ने शक्तियों का) बहुत वर्णन किया है, भाई ! यह प्रधान शक्ति (है)। सबमें मुख्य - प्रधान शक्ति है। क्योंकि सर्व गुण की चीज़ उसमें है। समझ में आया ? अध्यात्म पंचसंग्रह में - ज्ञानदर्पण में है। ``**अपना अखण्डपद सहज सुथिर महा**'' यह अपादान शक्ति का वर्णन है, आहाहा ! व्याकरण में छ बोल आते हैं। कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान (अधिकरण)। ``**अपनो अखण्डपद सहज सुथर महा, करे आप आप हि तैं यहे अपादान है**'' शाश्वत उपादान है, उसमें क्षणिक उपादान... ``**करे आप आप हि तैं यहे अपादान है**'' निर्मल सम्यग्दर्शन आदि की पर्याय, निर्मल आनंद की पर्याय अपने आपसे होती है। आहाहा ! ``**सासतो खिणक उपादान करे आप हि तैं।**'' शाश्वत और क्षणिक उपादान ``**आप हि तैं**'' - (अपने से ही है)। पर से नहीं, व्यवहार से नहीं, निमित्त से नहीं, आहाहा ! यह शक्ति का - गुण का स्वरूप है। ``**सासतो खिणक उपादान करे आपहीतैं, आप हवैं अनंत अविनाशी सुखथान है, याहीं तैं अनूप चिद्रूप**

रूप पाईयतु" आहाहा ! अपादान शक्ति के कारण अंदर चिद्रूप की प्राप्ति पर्याय में होती है, ऐसा कहते हैं, आहाहा !

निर्मल धर्म की पर्याय अपादान शक्ति के कारण वर्तमान में प्राप्त होती है, आहाहा ! कोई व्यवहार के कारण से, निमित्त के कारण से या कर्म के अभाव के कारण से प्राप्त नहीं होती। आहाहा ! पीछे कहते हैं, ``**याही तैं अनूप चिद्रूप रूप पाईयतु**" उससे चिद्रूप - ज्ञान स्वरूप की पर्याय में प्राप्ति होती है। ``**याही तैं अनूप चिद्रूप रूप पाईयतु, यातैं सब सकतिमें परम प्रधान है**" अपादान शक्ति परम प्रधान है। क्योंकि उपादान आया न ? ध्रुव उपादान और क्षणिक निर्मल उपादान। आहाहा ! और इस शक्ति का प्रत्येक गुण में स्वरूप है, इस कारण से सभी शक्ति में परम प्रधान है।

चिद्विलास में तो ऐसा लिखा है कि, जैसे-जैसे निर्मल गुण का भेद (और) पर्याय का भेद समझ में आता हैं, वैसे-वैसे शिष्यको आनंद आता है, भाई ! ऐसा आया है। आहाहा ! जैसे-जैसे एक-एक गुण और उसकी पर्याय का वर्णन भेद करके समझते हैं, तब शिष्य को (यह) सुनने से आनंद आता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? चिद्विलास में दीपचंदजी का (लिखा) हुआ है। ``**द्रव्य का जो त्यक्तस्वभाव (पर्याय रूप) है, उसे परिणाम कहते हैं। और वह व्यतिरेक स्वभाव है**" चिद्विलास में ३७ नंबर के पन्ने पर अष्टसहस्री का दृष्टांत दिया है। (लोग तो ऐसा मानते हैं कि), व्यवहार - सराग क्रिया से निश्चय चारित्र होता है। अरेरेरे...! (ऐसा मानना वह तो) मिथ्यात्व का महा शल्य है। समझ में आया ? तेरे गुण और तेरी पर्याय की शक्ति की ताकत (महान है)। (उसमें) पर के कारण से (चारित्र धर्म) उत्पन्न हो, (ऐसा मानना) बड़ा शल्य है। उस कारण से यहाँ कहा, अत्यक्तभाव गुणरूप है। त्यक्तरूप भाव पर्याय है। अन्वय स्वभाव है। (अर्थात्) गुण अन्वय स्वभाव है और पर्याय व्यतिरेक - अभाव स्वभाव है। क्षण-क्षण में अभाव होता है। वह गुण तो पूर्व में थे वही रहते हैं। परिणाम अपूर्व - अपूर्व होते हैं। यह द्रव्य का उपादान है वह परिणाम को तो त्याग करता है लेकिन गुण को सर्वथा त्याग नहीं करता। आहाहा ! दीपचंदजी ने (ग़ज़ब) काम किया है ! कोई कहता है, `आचार्य का कहा हुआ लाइये, पंडितों का नहीं चलेगा' अरे ! पंडितों ने स्पष्ट किया है। समझ में आया ? ``**इसलिये परिणाम क्षणिक उपादान है और गुण शाश्वत उपादान है। वस्तु उपादान से सिद्ध है।**" निर्मल पर्याय अपने उपादान से प्रगट होती है। राग, दया, दान, व्रत और व्यवहार रत्नत्रय किया तो (निर्मल) उपादान होता है, तीनकाल में ऐसी शक्ति नहीं है। समझ में आया ? आहाहा ! सूक्ष्म अधिकार है।

(दूसरी जगह ऐसा लिया है) जैसे-जैसे धर्मात्मा द्रव्य, गुण और पर्याय का भेदरूप

(वर्णन करके कहते हैं और) एक-एक शक्ति का भिन्न-भिन्न वर्णन (करते हैं), वैसे-वैसे शिष्य को आनंद की पर्याय प्राप्त होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! दीपचंदजी ने तो (जैसा) शक्ति का वर्णन किया है, वैसा किसी ने किया नहीं है। आचार्य ने शक्ति का नाम दिया, भाई ! (और) काम किया इसने। लेकिन उसका विशेष स्पष्टीकरण दीपचंदजी ने यहाँ पंचसंग्रह में और चिद्विलास में जो स्पष्टीकरण है, ऐसा स्पष्टीकरण किसी आचार्य ने नहीं किया। कोई गृहस्थ ने नहीं किया। स्वतंत्र खुद ने लिया है। निवृत्ति बहुत (थी), (और) पंडित ने (इतना स्पष्टीकरण किया है)।

वहाँ खाणिया में चर्चा हुई न ? वहाँ सामनेवाले ने कहा, पंडित का (आधार) नहीं लेना, आचार्य का लेना, यहाँ के विद्वान ने कहा, पंडितों, आचार्यों सब का (आधार) लेना। आहाहा !

यहाँ तो मुझे यह कहना है कि, ``**यातैं सब सकति में परम प्रधान है।**'' अपादान शक्ति परम प्रधान (है), आहाहा ! भगवान ध्रुव में दृष्टि देने से, शक्ति का स्वीकार करने से अपादान के कारण क्षणिक पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की, आनंद की निर्मलता उत्पन्न होती है। आहाहा ! व्यवहार से, निमित्त से और शास्त्र बहुत पढ़े, इसलिये जानपना हो गया, लोगों को समझते हैं इसलिये गुण की परिणति विशेष प्रगट होती है, ऐसा नहीं है।

यहाँ तो पंडित दीपचंदजी ऐसा कहते हैं कि, यह अपादान शक्ति सर्व शक्ति में प्रधान है, क्योंकि परिणति में उत्पाद् - व्यय की पर्याय होती है, वह ध्रुव उपादान से उत्पन्न होती है, ऐसा कहना भी व्यवहार है। यह परिणति अपने कारण से उत्पाद् - व्यय (रूप) उत्पन्न होती है। निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि की (बात है)। यह परिणति उत्पन्न होती है, वह अपने से स्वतंत्र (उत्पन्न होती है)। व्यवहार के कारण नहीं और द्रव्य, गुण के कारण भी नहीं, आहाहा ! समझ में आया ? यह चिद्विलास में है। चिद्विलास में ९५ पन्ने पर है कि, पर्याय का कारण पर्याय है, पर्याय का वीर्य पर्याय है, पर्याय का क्षेत्र पर्याय है। द्रव्य - गुण (के कारण) बिना पर्याय अपने से होती है। समझ में आया ? जैसे - जैसे गुरु द्रव्य, गुण, पर्याय की भेदता समझते हैं, वैसे-वैसे श्रोता को आनंद आता है, ऐसा लिखा है। ऐसा नहीं है कि, भेद को समझाते हैं इसलिये दुःख होता है, आहाहा !

यहाँ कहते हैं, ऐसे आत्मा में चारित्र गुण है, सुनो ! आत्मा में चारित्र गुण ध्रुवरूप है। वह ध्रुवरूप है। वर्तमान चारित्र की जो वीतरागी पर्याय उत्पन्न हुई, वह उत्पाद् - व्यय से आलिंगित है। यह (पर्याय) उत्पाद् - व्यय से आलिंगित है, राग से आलिंगित

नहीं, निमित्त से आलिंगित नहीं, आहाहा !

चिद्विलास पन्ना ३५। ``**सामान्यता से निर्विकल्प है। विशेषता से शिष्य को प्रतिबोध किया (समझाया) जाता है, तब ज्यों-ज्यों शिष्य गुरु द्वारा प्रतिबोध किये जानेसे गुण का स्वरूप जान-जानकर विशेष भेदी (भेदविज्ञानी, विवेकी) होता जाता है, त्यों-त्यों उस शिष्य को आनंद की तरंगे ऊठती है**'' (शिष्य को) ऐसा नहीं होता है कि, इतने सारे भेद समझाये इसलिये दुःख होता) है, (ऐसा नहीं है)। (इसमें तो) खजाना खुलता है। समझ में आया? अंदर में बराबर कान देकर गुण भेद को सुने तो पर्याय में धन के (निर्मल पर्याय के) ढ़गले होते हैं।

(दूसरी बात) ८९ पन्ने पर है, देखो ! गुण के बिना ही (अर्थात् गुण की अपेक्षा बिना ही) ``**पर्याय की सत्ता, गुण के बिना ही पर्याय का कारण है।**'' क्या कहते हैं ? पर्याय की सत्ता - (वही बात यहाँ कही न) ? ``**उत्पाद्व्ययसे आलिंगित (भाव)...**'' भाव यानी पर्याय। वह पर्याय स्वतंत्र (उत्पन्न होती है)। गुण बिना पर्याय, पर्याय का कारण है। ध्रुव गुण बिना पर्याय का कारण पर्याय है। आहाहा ! देखो ! ``**पर्याय की सत्ता गुण के बिना ही, सत्ता पर्याय का कारण है।**'' आहाहा ! गुण बिना ही पर्याय का कारण पर्याय है। पर्याय की सत्ता - वर्तमान सम्यग्दर्शन आदि निर्मल पर्याय की सत्ता, गुण बिना ही, अपने से सिद्ध होती है, आहाहा ! समझ में आया ? व्याख्यान में यह तो बहुत बार बताया है।

``**पर्याय का सूक्ष्मत्व पर्याय का कारण है।**'' गुण-द्रव्य (सूक्ष्मत्व का कारण) नहीं। पर्याय का सूक्ष्मत्व ही पर्याय का कारण है। आहाहा ! ``**पर्याय का वीर्य पर्याय का कारण है।**'' पर्याय में जो वीर्य शक्ति पड़ी है, वह पर्याय का कारण है। द्रव्य - गुण (कारण) नहीं (और) व्यवहार कारण नहीं। आहाहा ! अरे ! ऐसी बात (है) ! यह तो समकिती गृहस्थ है। समकिती गृहस्थ है उन्होंने इतना स्पष्ट किया है, आहाहा !

(लोगों को) पढ़ना नहीं है और अपनी बात छोड़नी नहीं है। (कोई) ऐसा कहता है कि, सोनगढ़ की बात तो सच्ची है, लेकिन हम अगर कबूल करने जायें तो सोनगढ़ की प्रसिद्धि हो जाये ! लोग वहाँ चले जाये और हमको कोई माने नहीं। अरे...! भगवान ! ऐसे मानने नहीं मानने की बात यहाँ नहीं है। चीज़ जैसी है ऐसा भगवान ने फरमाया है। सबेरे नहीं आया था ? कि, अनादि परंपरा का उपदेश है। आहाहा ! निर्मल पर्याय अपने से उत्पन्न होती है, राग और पर से नहीं। व्यवहार राग से निश्चय चारित्र और निश्चय समकित होता है, ऐसा कभी नहीं। ऐसा अनादि परंपरा से यह उपदेश चला आया है। समझ में आया? आहाहा ! यह सोगनढ़ का नया नहीं है। आहाहा ! (दीपचंदजी

साहब ने) लिखा है न? कि, अभी तो किसी की आगम के अनुसार श्रद्धा दिखती नहीं और वक्ता भी यथार्थ श्रद्धावाले नहीं दिखते हैं। उस समय २०० वर्ष पहले लिखा है और मुख से हम कहें तो (कोई) सुनता नहीं। अभी तो सुननेवाले निकले हैं। मुखसे कहे तो सुनने नहीं तो हम लिखकर जाते हैं कि, मार्ग ऐसा है, दूसरे कहते हैं ऐसा मार्ग नहीं है। भावदीपिका में है। आहाहा !

``**पर्याय का प्रदेशत्व पर्याय का कारण है।**'' आहाहा ! सम्यग्दर्शन आदि धर्म की निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई, उसका प्रदेश भिन्न है। असंख्य प्रदेश में ध्रुव का प्रदेश भिन्न (और) पर्याय का प्रदेश भिन्न (है), आहाहा ! जितने क्षेत्र में से निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है, इतने प्रदेश भिन्न गिनने में आये (हैं)। पर्याय का कारण वह प्रदेश है, ध्रुव प्रदेश (पर्याय का कारण) नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? ध्रुव का प्रदेश सूक्ष्म है। पर्याय की उत्पत्ति में ध्रुव का क्षेत्र कारण नहीं। पर्याय का क्षेत्र पर्याय का कारण है, आहाहा ! गज़ब बात करते हैं न ! यह गृहस्थ पंडित का लिखा हुआ है। आहाहा !

``**अथवा उत्पाद् - व्यय कारण है। क्योंकि उत्पाद् - व्यय से पर्याय जनाने में आती है। अतः ये पर्याय के कारण है और पर्याय कार्य है।**'' ध्रुव कारण नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? बहुत गंभीरता ! बहुत गंभीरता ! आहाहा !

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो मोक्ष का मार्ग है, इस पर्याय का उत्पाद् - व्यय होता है। यह उत्पाद् - व्यय भी अपने क्षणिक उपादान में स्वतंत्र कारण से उत्पन्न होता है। ध्रुव उपादान है तो उससे उत्पन्न हुआ है, ऐसा भी नहीं। आहाहा ! क्योंकि ध्रुव उपादान तो एकरूप त्रिकाल रहता है। पर्याय में केवलज्ञान हो तो भी ज्ञान की ध्रुवता में कोई कमी हो गई (ऐसा नहीं है) समझ में आया ? बहुत पर्याय बाहर आ गयी इसलिये कमी हो गयी, ऐसा भी नहीं। और निगोद के शरीर में एक जीव को अक्षर के अनंतवें भाग में पर्याय में विकास है तो अंदर गुण में पुष्टि हो गयी है, बाहर थोड़ा विकार है तो अंदर बहुत गुण है, ऐसा नहीं है। आहाहा !

ये (बात) यहाँ कहते हैं। ध्रुव उपादान तो कायम जैसा है ऐसा है। समझ में आया? चाहे तो सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न हो कि चाहे तो केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न हो, ध्रुव तो ध्रुव है वह है। जैसा है) ऐसा है। आहाहा ! अकबंध (अखण्डित) है। बहुत लिखा है।

``**अतः ये पर्याय के कारण हैं और पर्याय कार्य है।**'' पर्याय कारण और पर्याय कार्य है। निमित्त से तो नहीं लेकिन द्रव्य - गुण से (भी पर्याय) नहीं, आहाहा ! २०० वर्ष पहले दिगंबर पंडितों भी बहुत काम कर गये हैं। भागचंदजी, बनारसीदासजी, टोडरमल्लजी

(हो गये)।

यहाँ कहते हैं आत्म में प्रभुत्व नाम की शक्ति है। उसमें यह अपादान की शक्ति का स्वरूप है। उस कारण से प्रभुता की उत्पाद् - व्यय पर्याय जो उत्पन्न होती है, वह उत्पाद् - व्यय को स्पर्शित होती है और उसका अभाव होने पर भी ध्रुव में हानि नहीं होती। ध्रुव तो ऐसे का ऐसा रहता है, आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो यह बताना है कि, पर्याय क्षणिक पलटती है, फिर भी ध्रुव तो ऐसे का ऐसा रहता है। उसको ऐसा कहना है कि, जिसने द्रव्य की शक्ति दृष्टि में ली और अनंत शक्ति का भेद भी लक्ष में लिया, उसकी पर्याय बाद में हठती है और गिर जायेगी, पर्याय से गिर जायेगा और मिथ्यात्व हो जाये, ऐसी बात नहीं है। आहाहा ! क्योंकि निर्मल पर्याय स्वतंत्र उत्पन्न हुई है। लेकिन उसका व्यवहार कारण जो ध्रुव है, तो जिसकी दृष्टि ध्रुव पर है उसकी निर्मल पर्याय उत्पन्न हुआ ही करती है। उसकी निर्मल पर्याय से हटकर मिथ्यात्व आ जाये, ऐसा कोई गुण नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? आये उतना आये। आये उतना समझना। बाकी क्या हो सकता है। बहुत भरा है। एक-एक शक्ति में तो इतना (भर दिया है)। यह तो परम प्रधान शक्ति है। दीपचंदजी ने ऐसा कहा है। क्योंकि प्रत्येक शक्ति में क्षणिक उपादान और ध्रुव (उपादान है)। यह क्षणिक उपादान पलटता होने पर भी ध्रुव उपादान तो वैसा का वैसा है - हानि को प्राप्त नहीं होता, आहाहा !

एक दूसरी बात (है) कि, सम्यग्दर्शन आदि की निर्मल पर्याय जो है, वह अल्प हो। उसकी हानि - नाश होने पर भी यह पर्याय द्रव्य में गई है। द्रव्य में - ध्रुव में गयी है। वहाँ अल्पज्ञता रहती है, ऐसा नहीं। वह तो पारिणामिकभाव हो गया। आहाहा ! यहाँ कहते हैं न कि, ध्रुव ऐसा का ऐसा रहा ? पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है, इस पर्याय का अभाव हुआ। अभाव हुआ लेकिन (पर्याय) गई कहाँ ? `जल का तरंग जल में डूबत है' जल का तरंग जल में जाते हैं। ऐसे सम्यग्दर्शन आदि की निर्मल पर्याय का अभाव हुआ। (वह) कहाँ गयी ? और वर्तमान पर्याय में क्षायिक, क्षयोपशमभाव था। वह ध्रुव में गया तो पारिणामिकभाव से हो गया। आहाहा ! (पर्याय) ध्रुव में गयी वहाँ पारिणामिकभाव से हो गयी, आहाहा !

अभी तक सब जिंदगी फोगट (व्यर्थ) गयी। आहाहा ! बापू ! मार्ग ऐसा है, भाई ! और जिसे अभी राग से भिन्न मेरी चीज़ - शक्ति ध्रुव उपादान और क्षणिक (उपादान) स्वतंत्र है, ऐसी (राग से) एकताबुद्धि तोड़कर भान नहीं हुआ। प्रभु ! मरण के समय दब जायेगा, प्रभु ! आहाहा ! राग से निश्चयधर्म होता है, ऐसी एकता बुद्धिवाला मृत्युकाल

में (दब जायेगा)। एक तो मृत्यु का काल, एक तो (शारीरिक वेदना)। आहाहा ! और शरीर मेरा ऐसी बुद्धि सारी जिंदगी रखी हो, मेरा भगवान मेरा है, ऐसा तो भान हुआ नहीं, आहाहा ! मरण के समय (जैसे) घाणी में पिल जाता है वैसे पिलकर देह छूटेगा। आहाहा ! और वह देह छोड़कर चार गति में चला जायेगा ! आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो पवित्रता की पर्याय और पवित्र गुण, उसकी बात है, आहाहा ! यह अपादान नाम की शक्ति है। इसमें निर्मल पर्याय जो हुई, वह क्रमसर क्रमवर्ती होती है। पर्याय क्रमवर्ती होती है और गुण अक्रम साथ में है। यह क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती गुण का समुदाय यह आत्मा है। राग साथ में होता है तो राग सहित आत्मा है, ऐसा है नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

मोक्षमार्ग प्रकाशक में तो दो ठिकाने ऐसा कहा है कि, शुद्धाशुद्ध पर्याय का पिंड द्रव्य है, ऐसा कहा है। वह दूसरी बात है। वहाँ तो पूर्व में अशुद्धता थी, यह नहीं मानता है, उसको यह बताया है। समझ में आया ? लेकिन अशुद्धता थी उसे मानता है, तो वह पर्याय गई कहाँ ? वह अंदर में गयी तो अंदर में अशुद्धता नहीं गयी है, आहाहा ! अंदर में तो योग्यता रह गयी है और वह पारिणामिकभावरूप हो गयी। आहाहा ! भगवान में मिल गयी वह भगवानरूप हो गयी। परम पारिणामिकभाव है न ? आहाहा ! ऐसा मार्ग (है) ! ऐसा धर्म का उपदेश (है) ! हमें क्या करना ? यह करना नहीं है ? वस्तु का स्वभाव है, उस ओर तेरा झुकाव कर, प्रभु ! ध्रुव को ध्यान में ले। ध्रुव को ध्येय - सेठ बना। पर्याय का सेठ ध्रुव को बना। प्रह्लाद प्रजा है न ? उसका पिता ध्रुव है, आहाहा ! समझ में आया ?

(ऐसे) अनंत गुण में लेना और अपादान शक्ति का अनंत गुण में स्वरूप है। और एक शक्ति में अनंत गुण का स्वरूप इस और (अपादान शक्ति में) है। आहाहा ! अपादान शक्ति में भी ज्ञान, आनंद शक्ति का रूप है। बहुत सूक्ष्म ! बहुत सूक्ष्म ! ओहोहो ! समझ में आया ? व्यवहार और निमित्त को उड़ाकर बात करते हैं। अपने नित्य ध्रुव शुद्ध उपादान और पर्याय का क्षणिक उपादान (दोनों) स्वतंत्र हैं। आहाहा ! यह व्रत आदि सराग चारित्र पालते हैं तो पीछे निश्चय चारित्र होता है, यह वस्तु की शक्ति में और गुण में नहीं है। वह तो अज्ञानी ने अद्धर से उत्पन्न किया है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है ! भगवान का दरबार खुला है। आहाहा !

प्रभु ! तेरी शक्ति में इतनी संपदा है कि, अनंत शक्ति में अपनी ध्रुवता (है) और पर्याय जो क्षणिक उपादान (है, वह) अपने से उत्पन्न होता है, आहाहा ! नाश भी अपने कारण से (होता है) और उत्पाद् भी अपने कारण से (होता है)। आहाहा ! दूसरे तरीके

से लें तो यह उत्पाद् - व्ययवाली जो पर्याय है, यह उत्पाद् का क्षण है। उस क्षण में उस समय की स्थिति है, इसलिये उत्पन्न होता है, आहाहा ! उत्पाद् - व्यय की निर्मल पर्याय है और ध्रुव कायम है। उसमें एक भाव नाम की शक्ति है। (छ प्रकार की) शक्ति आ गयी है। भाव, अभाव, भावअभाव, अभावभाव, भावभाव, अभावअभाव। (उसमें) भाव शक्ति का रूप है कि, वर्तमान विद्यमान निर्मल पर्याय होवे ही। आहाहा ! इस गुण का कारण है। ऐसी बात है।

छः बोल में भाव आ गया न ? भाव नाम की शक्ति है कि, जिसके कारण प्रत्येक गुण की पर्याय निर्मलरूप से उत्पन्न रहना, यह भावशक्ति के कारण से है, आहाहा ! समझ में आया ? व्यवहार का अभाव होता है, इसलिये भावशक्ति का निर्मल (कार्य) होता है, ऐसा भी नहीं। समझ में आया ? भावशक्ति के कारण वर्तमान निर्मल अवस्था की हयाती होती है। प्रत्येक गुण की भाव शक्ति के कारण और उस गुण में भाव शक्ति का रूप होने के कारण, वर्तमान निर्मल अवस्था की हयाती होती है। वह उत्पाद् - व्ययवाली क्षणिक पर्याय है। आहाहा ! इसमें क्या समझना ? कुछ करना था वह सरल था। व्रत करो, उपवास करो, यात्रा करो, भक्ति करो, दो-पाँच लाख का दान करो (यह सब सरल था)। दस लाख क्या करोड़ रुपये दे दे न ! उसमें कहाँ धर्म था ?

पहले संप्रदान (शक्ति) आ गयी। अपने में अपनी पर्याय दाता - देती है। लेनेवाला भी आत्मा और देनेवाला भी आत्मा। आहाहा ! संप्रदान नाम की शक्ति का कार्य ऐसा है। निर्मल पर्याय दाता और निर्मल पर्याय पात्र। एक समय में पात्र और दाता, वह पर्याय है, आहाहा ! पर को देना यह क्रिया आत्मा में नहीं है। और दान में शुभराग होता है, वह भी आत्मा में नहीं है। समझ में आया ? आहाहा ! और शुभभाव से तीर्थंकर गोत्र बंधे (वह भी तेरी चीज़ में नहीं है)। (यहाँ) कहते हैं कि, शुभभाव और बंधन तेरी चीज़ में है नहीं न ! आहाहा ! तेरी कोई शक्ति ऐसी नहीं है कि, तीर्थंकर गोत्र का भाव - कारण उत्पन्न करे, आहाहा ! गज़ब बात है ! तेरी कोई शक्ति - गुण और तेरी निर्मल उत्पाद् - व्ययवाली पर्याय (उसमें) कोई (शक्ति) नहीं है कि शुभभाव को उत्पन्न करे। आहाहा ! तीर्थंकर गोत्र बांधे उसमें राजी होना (वह बात तो दूर रह गई)। आहाहा ! समझ में आया ?

पाँच पांडव। भावलिंगी वीतरागी संत थे। पाँचों ने ध्यान लगा दिया और तीन तो अंतर के ध्यान के कारण केवलज्ञान पाकर शेत्रुंजय से मुक्ति गये। सहदेव और नकुल भावलिंगी संत, मुनि, सहोदर (थे)। बड़े भाई को लोहे का मुगट, लोहे का कड़ा (पहनाया था)। (ऐसे) संत - साधर्मी का विकल्प आया। वह विकल्प तो शुभ है। समझ में आया ?

(ऐसे) शुभभाव में केवलज्ञान रुक गया। सर्वार्थसिद्ध में ३३ सागर की (आयु स्थिति में) जाना पड़ा। और वहाँ से भी मनुष्य होकर तुरंत मोक्ष नहीं जायेंगे, ८ वर्ष के बाद केवलज्ञान होगा। आहाहा ! आठ वर्ष पहले तो होगी ही नहीं। ऐसे विकल्प में यह बंध पड़ गया। समझ में आया ? ऐसा शुभ विकल्प (आया कि) संतों को कैसा होगा ? आहाहा ! प्रवचन होल में (चित्रपट है न) ? लोहे के धगधगते कड़े (पहनाये हैं)। (विकल्प आया कि) भाई को कैसा होगा ? ऐसा विकल्प आया, यह कोई शक्ति का कार्य नहीं। समझ में आया ? वह तो अद्धर से - ऊपर से उत्पन्न हुआ है। आहाहा ! ज्ञानी राग की अपने में खतवणी नहीं करते। लेकिन ऐसा फल आ गया (कि) बंधन हो गया। ज्ञानी बंधन और राग को अपने में मिलाते नहीं। वे तो निर्मल पर्याय और निर्मल गुण को अपने में मिलाते हैं। समझ में आया ? आहाहा !

कभी सुना नहीं। ऐसी बात (है), प्रभु ! भाग्यशाली जीव को पुण्य हो तो कान में सुनने मिले। भगवान का प्रवाह है। भगवान के श्रीमुख से निकला हुआ प्रवाह है, आहाहा !

``**उत्पाद्व्यय से आलिंगित...**'' (अर्थात्) पर्याय, पर्याय से स्पर्शित है। ध्रुव को स्पर्शित नहीं है। ``**उत्पाद्व्यय से आलिंगित भाव...**'' (भाव यानी) वर्तमान पर्याय। ``**...अपाय (- हानि, नाश) होनेसे हानिको प्राप्त न होनेवाले...**'' वह (तो) ध्रुव है। दूसरी पर्याय अंदर तैयार है। आहाहा ! समझ में आया ? पर्याय गयी इसलिये हानि हो गयी (ऐसा नहीं है)। आहाहा ! ध्रुव उपादान पड़ा है तो क्षणिक उपादान की दूसरी निर्मल पर्याय होगी, होगी और होगी। भावशक्ति के कारण और अपादान क्षणिक उपादान के कारण (निर्मल पर्याय होगी)। समझ में आया ? निर्मल पर्याय गयी - नाश हुई तो दूसरी निर्मल पर्याय की विद्यमानता प्रगट होगी। (पर्याय के) अभाव में (ध्रुव का) अभाव हो जाये, ऐसा नहीं है, आहाहा ! ऐसी बात है ! आहाहा !

(बाहर में) बहुत फेरफार (हो गया), आहाहा ! फिर (लोगों ने) निश्चय है... निश्चय है... ऐसा कहकर निकाल दिया। निश्चय है यानी सत्य है, यह सत्य है। व्यवहार से निश्चय कभी नहीं होता। निमित्त से उपादान में कार्य नहीं होता और क्रमबद्ध पर्याय अपने काल में होती है (उसमें कोई) फेरफार नहीं होता। समझ में आया ? आहाहा ! ``**...हानि को प्राप्त न होनेवाले ध्रुवत्वमयी अपादान शक्ति है।**'' आहाहा !

दूसरा ऐसा कहना है कि, केवलज्ञान की पर्याय है, (वह) तो एक समय की है। (और वह) पर्याय को आलिंगित है। एक समय की पर्याय का तो अभाव होगा। अभाव होने पर भी ध्रुवत्व है। दूसरी केवलज्ञान की पर्याय विद्यमान उत्पन्न होगी, होगी और होगी। (पर्याय का) अभाव हुआ तो (ध्रुवत्व का) व्यय हो गया (और) दूसरी पर्याय उत्पन्न

नहीं होगी, ऐसा नहीं है, आहाहा ! समझ में आया ?

क्षयोपशम समकित से क्षायिक समकित होता है। वह कोई भगवान के समीपता इसलिये हुआ, ऐसा नहीं है। लेकिन उसकी ध्रुव शक्ति में ताकत पड़ी है कि, जो क्षयोपशम समकित की पर्याय थी, उसका व्यय हुआ (और) क्षायिक का जन्म हुआ, ऐसी पर्याय उत्पन्न होती है। भगवान के समीप है, इसलिये क्षायिक समकित उत्पन्न हुआ, ऐसा नहीं है, आहाहा ! समझ में आया ?

क्षयोपशम (समकित का) व्यय हुआ तो ध्रुव (तो) पड़ा है। उसके आश्रय से, उसमें एक भाव नाम का गुण है तो वर्तमान विद्यमान अवस्था बिना वह रहे नहीं, आहाहा ! नयी निर्मल विद्यमान अवस्था उत्पन्न होगी, होगी और होगी। ऐसा यह अपादान शक्ति का गुण है। विशेष कहेंगे......

❖ ❖ ❖

``अशरीरी - सिद्ध की ही जाति का मैं हूँ'' - उस एक का ही आदर करने की मेरी दृढ़ टेक है; अतः स्वप्ने में भी पुण्य - पाप - संसार की बातों का आदर नहीं करता। जो सिद्ध, चिदानंद पूर्ण हुए हैं, उनके कुल का मैं भी उत्तराधिकारी हूँ। चार-गति में घूमने का राग कलंक है। अतीन्द्रिय - सिद्ध - परमात्मदशा की महिमा द्वारा सर्व कलंक दूरकर, वीतरागी होनेवाला हूँ - इस प्रकार धर्मी, गृहस्थदशा में प्रतिज्ञा कर दृढ़ व्रती होता है। (परमागमसार - ७९६)

प्रवचन नं. ४१
शक्ति-४६ दि. २०-०९-१९७७
भाव्यमानभावाधारत्वमयी अधिकरणशक्तिः।।४६।।

समयसार, गुण का अधिकार चलता है। गुण कहो कि शक्ति कहो (एकार्थ है)। आतम पदार्थ द्रव्य की अपेक्षा से एक है। लेकिन गुण की अपेक्षा से इसमें अनंत गुण हैं। इस गुणों में एक आधार नाम की शक्ति है. आज ४६ वीं शक्ति लेनी है। (आत्मा में) अनंत शक्तियाँ हैं, उसमें जब द्रव्य स्वभाव का आश्रय लेते हैं तो सम्यक्ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है। उसके साथ अनंत शक्ति की पर्याय उत्पन्न होती है। `उछलती है' ऐसा पाठ है।

जैसे पाताल में पानी होता है न ? ऊपर की शिला अगर टूट जाये तो अंदर से पानी की धार निकलती है। पाताल में इतना पानी भरा है कि, ऊपर का पाताल जब टूटे, (तो अंदर से पानी की धार निकलती है)। अभी ऐसा बना था। एक गाँव में कुआँ खोदा लेकिन पानी नहीं निकला। बहुत गहरा खोदने के बाद भी पानी नहीं निकला। बहुत गहरा खोदने के बाद एक पथ्थर का पड़ रह गया था। तो किसीने आकर ऊपर से अंदर में बड़ा पथ्थर ड़ाला तो पथ्थर तूट गया। एक पथ्थर की शिला (बाकी) रह गयी थी तो उसमें जब बड़ा पथ्थर ड़ाला तो एकदम पानी उछला।

ऐसा भगवान आत्मा ! राग की एकताबुद्धि है तब तक पानी निकलता नहीं। पाताल में पानी है। अनंत आनंद, अनंत ज्ञान, अनंत शांति पड़ी है। आहाहा ! राग की एकता तोड़कर, अपने शुद्ध स्वभाव का अनुभव करता है, तब अंदर पाताल में द्रव्य की शक्ति है, वह परिणतिरूप से पर्याय में बाहर आती है। शक्ति तो शक्ति है।

संवर अधिकार में तो ऐसा लिया है कि, आत्मा जो ज्ञानस्वरूप है, उसमें जो

पर्याय में जाननक्रिया होती है - स्व को जानने की जानन क्रिया (होती है) उस जाननक्रिया के आधार पर आत्मा है। यह शक्ति का वर्णन भिन्न है, यह वस्तु का स्वरूप दूसरे तरीके से (कहा है)। आत्मा में अनंत शक्ति का पिंड है। उसका जब ज्ञान होता है, स्वसन्मुख होकर ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है तो उस जानन क्रिया के आधार से आत्मा जानने में आता है। संवर अधिकार की बात है। संवर कैसे होता है ? धर्म की पर्याय - संवर कैसे होती है ? कि, `उपयोग में उपयोग है' आहाहा ! यह संवर (अधिकार की) गाथा है। उपयोग में उपयोग है, उसका अर्थ क्या है ? कि, अपना भगवान जो उपयोग (अर्थात्) त्रिकाली शुद्ध स्वरूप है, उस उपयोग में उपयोग है। वर्तमान जानना क्रिया का स्वसन्मुख उपयोग हुआ, इसमें आत्मा जानने में आया है। उस कारण से उपयोग में उपयोग है। जानन क्रिया के बाद में आत्मा जानने में आया। उस कारण से उपयोग में उपयोग है। जानन क्रिया के भाव में आत्मा जानने में आता है, आहाहा ! संवर अधिकार बहुत चल गया है।

वस्तु तो है। (वस्तु में) अनंत शक्तियाँ पड़ी हैं। गुणरूप से - स्वभावरूप से - ध्रुवरूप से - नित्यरूप से - सत् के स्वरूप से - कस स्वरूप में, सत्य का जो कस है - माल है (उस रूप अनंत शक्तियाँ पड़ी हैं)। लेकिन उसका ज्ञान कब होता है ? आहाहा ! संवर कैसे होता है ? धर्म की शुरूआत (कैसे होती है) ? (ज्ञान को) राग से भिन्न करके, अपनी जानन क्रियारूपी परिणति - पर्याय, उस उपयोग में उपयोग आता है। जानन क्रिया में आत्मा जानने में आता है, आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है।

यहाँ (चलते) अधिकार में अधिकरण शक्ति लेंगे। इस अधिकरण (शक्ति का) आश्रय आत्मा है। इस शक्ति का आश्रय - आधार आत्मा है। आहाहा ! और वहाँ (संवर अधिकार में) ऐसा लेना है (कि) राग से भिन्न भेदज्ञान जब किया, अपना शक्तिवंत परमात्मा उसका अंतर में स्वसन्मुख होकर, वर्तमान उपयोग में जानन क्रिया हुई, उस जानन क्रिया के आधार पर उपयोग नाम आत्मा है। क्योंकि जानन क्रिया के आधार से (आत्मा) जानने में आया, आहाहा ! सूक्ष्म बात है।

अभी याद आया। वहाँ अंदर (स्वाध्याय करते समय) दूसरा लिया था। समझ में आया ? वहाँ अभी वाचन करते (वक्त) ऐसा विचार आया था कि, प्रवचनसार में आता है न ? कर्ता, करण और अधिकरण, तीन बोल आते हैं, भाई ! बड़ी सूक्ष्म बात है। वहाँ तो ऐसे लिया है कि, अपना आत्मा जो शुद्ध चैतन्यघन है, उसका गुण और पर्याय के आधार से द्रव्य सिद्ध होता है। निर्मल गुण और पर्याय की (बात है)। उसके आधार से द्रव्य सिद्ध होता है और द्रव्य के आधार से गुण - पर्याय सिद्ध होते हैं। आहाहा !

समझ में आया ?

द्रव्य में अधिकरण नाम की शक्ति पड़ी है। तो द्रव्य के आधार से गुण - पर्याय प्रगट होते हैं और गुण - पर्याय के आधार से द्रव्य प्रगट होता है, आहाहा ! गुण - पर्याय के आधार से द्रव्य ख्याल में आता है। (ऐसा) सिद्ध करना है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई ! तत्त्वज्ञान (बहुत) सूक्ष्म (है)। वर्तमान में सब फेरफार (बदलाव) हो गया, आहाहा ! ऐसा प्रभु है न !

(यहाँ) कहते हैं कि, यह द्रव्य - शक्तिवान (है), शक्ति - गुण (है और) निर्मल पर्याय (है)। (दूसरी ज़गह तो) मलिन (पर्याय) सहित की साधारण बात ली है। जो (यह) त्रिकाली गुण है, यह अधिकरण आदि शक्ति कही न ? यह गुण और गुण का परिणमन (उसमें) वहाँ परिणमन में निर्मल और अनिर्मल (पर्याय) दोनों लिये हैं, भाई ! ज़रा शांति से समझना। क्योंकि वहाँ तो विकारी पर्याय के आधार से द्रव्य है, ऐसा लेना है। क्योंकि उससे सिद्ध होता है। यह विकार अवस्था है, यह किसकी (है) ? कि द्रव्य की (है)। विकारी पर्याय के आधार से द्रव्य की सिद्धि होती है। (द्रव्य) साबित होता है, आहाहा ! और द्रव्य के आधार से गुण - पर्याय साबित होता है। वहाँ तो विकारी पर्याय द्रव्य के आधार से साबित होती है, ऐसा कहा है, आहाहा ! समझ में आया ? अनंत गुण और अनंती पर्याय - वर्तमान एक समय में एक-एक गुण की ऐसी अनंती पर्याय, उस पर्याय और गुण के आधार से द्रव्य की सिद्धि - साबिती होती है और द्रव्य के आधार से गुण और पर्याय साबित होती है। वहाँ तो मलिन पर्याय का भी लक्षण लिया है।

पंचास्तिकाय में लिया है। मलिन पर्याय हो तो भी वह द्रव्य का लक्षण है। आहाहा ! वैसे तो आत्मा का ज्ञान लक्षण कहा, वह तो स्वभाव का भान कराने को (कहा)। लेकिन पर्याय में विकृत अवस्था है, वह भी उसकी है, उस लक्ष से `यह आत्मा है' ऐसा सिद्ध होता है, उस कारण से विकृत अवस्था को भी आत्मा का उत्पाद् लक्षण बनाकर (द्रव्य को सिद्ध किया है)। ऐसी बातें (हैं) ! आहाहा ! विकार की पर्याय को लक्षण बनाकर `यह द्रव्य है' ऐसा लक्षण सिद्ध करते हैं।

संवर अधिकार में तो जानन क्रिया में निर्मल परिणति है, उसके आधार से आत्मा जानने में आता है, तो द्रव्य का आधार पर्याय है, (ऐसा कहा)। आहाहा ! कहाँ समझने की फुरसद है ? आहाहा ! अरे भाई ! तू क्यों रखड़ता है ? उसकी सिद्धि करते हैं, आहाहा !

यहाँ प्रवचनसार में १० वीं गाथा में तो यह लिया है न ? अशुद्ध परिणाम का आश्रय भी द्रव्य है। यहाँ बहुत सारी बातें हो गयी हैं। विकारी पर्याय का आश्रय भी

द्रव्य है। क्योंकि पर्याय द्रव्य की है तो द्रव्य के आश्रय से हुई। उसका अर्थ द्रव्य में हुई तो द्रव्य के आश्रय से हुई, ऐसा कहने में आया। आहाहा ! यहाँ तीसरी रीत है। गुण - पर्याय आधार और द्रव्य आधेय, द्रव्य आधेय और गुण - पर्याय आधार, यह तो ज्ञान कराने को बात कही।

यहाँ जो आधार है, यह आत्मा में एक आधार नाम की शक्ति है। आहाहा ! समझ में आया ? है ? ``**भाव्यमान (अर्थात् भावनेमें आते हुए)...**'' भाव जो निर्मल पर्याय होती है, सम्यग्दर्शन की, सम्यक्ज्ञान की, सम्यक्चारित्र की, आनंद की ऐसा जो भाव - निर्मल पर्याय भावने में आता है, उस ``**...भाव के आधारत्वमयी...**'' (अर्थात्) निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो भावमय पर्याय उसका आधार आधारमयी (अधिकरण शक्ति है)। आधारमयी (लिया है)। आधारवाली ऐसा भी नहीं (कहा है)। आहाहा ! ``**...आधारत्वमयी अधिकरण शक्ति**'' क्या कहते हैं ? सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट हुई वह भाव लिया। भाव्यमान भाव (है)। (अर्थात्) भावने लायक भाव (है)। वह भाव - सम्यग्दर्शन की पर्याय (रूप)। ``**...भावके आधारत्वमयी...**'' उस भाव का आधार कौन ? कि अंदर अधिकरण शक्ति है, उस भाव के आधार से सम्यग्दर्शन पर्याय उत्पन्न हुई है, आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, बापू ! यह शक्ति का वर्णन (सूक्ष्म है)।

सम्यग्दर्शन की पर्याय - यह भाव्यमान भाव (है)। सम्यक्चारित्र की पर्याय भाव्यमान भाव (है)। वर्तमान अतीन्द्रिय आनंद की पर्याय भाव्यमान भाव (है)। उसके आधारत्वमयी (अर्थात्) सम्यग्दर्शन की पर्याय का आधार आधारत्वमयी अधिकरण शक्ति है। उसके आधार से सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न हुई है। आहाहा !

यह बड़ा झगड़ा अभी (चल रहा है न) ? व्यवहार से निश्चय होता है। अरे भाई ! प्रभु ! सुन तो सही। तूने तत्त्व को सुना नहीं। यहाँ व्यवहार की बात ही नहीं है। यहाँ तो व्यवहार का लक्ष छोड़कर, द्रव्य का लक्ष बनाया, तब जो सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई, उसका आधारमयी (अधिकरण) शक्ति है। उससे (पर्याय) हुई है, आहाहा ! सूक्ष्म बात (है), बापू ! (लेकिन) समझ में आये ऐसी है। भाषा तो सादी है। भाव तो बहुत ऊँचे भरे (हैं)। शक्तियाँ गज़ब हैं !

``**भाव्यमान...**'' (अर्थात्) वर्तमान मति-श्रुत आदि सम्यक्ज्ञान की पर्याय (यह) भाव्यमान भाव (है)। यह मति-श्रुत ज्ञान की सम्यक् पर्याय भाव्यमान भाव (है)। उसका आधार, ज्ञान गुण में अधिकरण शक्ति का स्वरूप है, उस कारण से भाव्यमान भाव का आधार, ज्ञान में अधिकरण नाम का रूप है, यह उसका आधार है। शास्त्र के आधार से ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसा नहीं (है)। सुनने से (ज्ञान की पर्याय) उत्पन्न हुई, यह (भी) ज्ञान

नहीं, आहाहा !

सम्यक्ज्ञान की पर्याय भाव्यमान भाव (है)। उसका आधार ज्ञानगुण में अधिकरण नाम का स्वरूप है, ज्ञान में अधिकरण नाम का एक भाव है, (यह है)। अधिकरण शक्ति भिन्न (है)। समझ में आया ? लेकिन ज्ञान गुण में अधिकरण नाम का एक स्वरूप है। अधिकरण शक्ति भिन्न है। लेकिन अधिकरण शक्ति का ज्ञानगुण में भाव है। इस भाव के कारण, भाव्यमान पर्याय उसके आधार से उत्पन्न होती है, आहाहा !

यहाँ तो यह कहना है कि, सम्यक्ज्ञान की पर्याय दर्शन के आधार से उत्पन्न हुई है, (ऐसा नहीं है)। अंदर सम्यक्श्रद्धा है तो श्रद्धा में भी अधिकरण नाम का स्वरूप है। लेकिन श्रद्धा में अधिकरण का रूप है, उससे सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है। लेकिन सम्यक्ज्ञान गुण में अधिकरण का रूप है, तो उससे सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! इतने शब्दों में तो बहुत भण्डार भरा है !

भगवान आत्मा में श्रद्धा गुण - शक्ति त्रिकाल है। यहाँ ४७ (शक्ति में श्रद्धा गुण) नहीं आया। परंतु सुख शक्ति में सम्यग्दर्शन और चारित्र (शक्ति) समा दी है। पहली सुख शक्ति आयी न ? सुख शक्ति में सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र समा दिया है। कहते हैं कि, सम्यग्दर्शन की जो पर्याय उत्पन्न हुई, उसका आधार कौन ? किसके आधार से उत्पन्न हुई ? कि श्रद्धा गुण में अधिकरण नाम का स्वरूप है, उसके आधार से सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न हुई, आहाहा ! गज़ब बात है ! देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा से भी सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न नहीं होती, आहाहा ! श्रद्धा गुण में अधिकरण नाम का स्वरूप है, उस कारण से सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा !

आचार्यों ने गज़ब काम किया है ! आहाहा ! दिगंबर मुनियों ने तो जगत को केवलज्ञान बताया है ! समझ में आया ? यह अतिशयोक्ति नहीं है, वस्तु का स्वरूप है। भगवान ! तेरे में तो अनंत ज्ञान, आनंद आदि की लक्ष्मी पड़ी है और जो सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है, वह किस कारण से (उत्पन्न होती है) ? इसका आधार कौन ? व्यवहार रत्नत्रय आधार (है) ? देव, गुरु, शास्त्र आधार (है) ? आहाहा ! प्रभु ! गज़ब बात तेरी !

अब चारित्र गुण लेते हैं। आत्मा में वीतरागी पर्याय, आस्रव रहित संवर की वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है, उसमें कारण कौन ? व्यवहार - पंचमहाव्रत का परिणाम, सराग संयम यह कारण है ? आहाहा ! वीतरागी चारित्र की पर्याय मोक्ष का कारण (है)। अंदर यह चारित्र नाम का गुण है, उसमें यह अधिकरण नाम का स्वरूप है, इस स्वरूप के

आधार से चारित्र की पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा ! गज़ब काम किया है न ! अब की बार शक्तियों का वर्णन अच्छा आया है। एक-एक शब्द के वाच्य में फ़र्क है, आहाहा !

वीतरागी (चारित्र की) दशा के साथ आनंद है उसे बाद में लो। मोक्ष का मार्ग सम्यक्‌दर्शन, ज्ञान, चारित्र। यह वीतरागी चारित्र की पर्याय हुई, उसका आधार कौन ? कि, अंदर त्रिकाली चारित्र गुण - शक्ति है। उसमें एक अधिकरण नाम का स्वरूप है। अधिकरण शक्ति उसमें नहीं (है)। इस स्वरूप के कारण चारित्र की पर्याय उसके आधार से उत्पन्न होती है, आहाहा ! व्यवहार क्रियाकांड से - सराग से उत्पन्न होती है, (ऐसा नहीं है), आहाहा ! गज़ब काम किया है, प्रभु !

अरे...! (नरकादि के दुःख की) वह पल कैसे गयी होगी ? उस पल में तो पल्योपम गये, पल्य में तो अनंतकाल गया। आहाहा ! प्रभु ! उस दुःख को मिटाने का उपाय तो यह एक है।

जिसे निर्विकारी पर्याय - मोक्षमार्ग प्रगट करना हो, उसे अंदर आधार नाम की शक्ति है, उससे (मोक्षमार्ग) उत्पन्न होगा, आहाहा ! उसका अर्थ ? कि, उसको द्रव्य पर दृष्टि देनी चाहिए। इसे द्रव्यदृष्टि (कहने में आती है), आहाहा ! समझ में आया ? प्रभु ! वीतराग मार्ग बहुत अलौकिक है ! जिसका फल भी अलौकिक है ! अनंत आनंद और अनंत केवलज्ञान प्रगट हो और सादि अनंत (काल) रहे, आहाहा ! सिद्ध पर्याय उत्पन्न हुई वह सादि अनंत रहे। अकेला अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव और भोगवटा, आहाहा ! उसका कारण जो मोक्ष का मार्ग वह कैसा होता है ? भाई ! उस कारण का आधार भी अंदर शक्ति है। उसके आधार से (मोक्षमार्ग उत्पन्न होता) है। आहाहा ! इस शक्ति का कितना माहात्म्य ! और यह शक्ति जिसके आश्रय से है, उस द्रव्य का माहात्म्य तो अलौकिक है !! समझ में आया ? आहाहा ! भगवान तू अनंत लक्ष्मी का भण्डार (है)। आहाहा !

गोदाम नहीं होता है ? १७-१८-१९ साल की छोटी उम्र की बात है। बंबई में गोदाम देखा था। एकबार दुकान पर से केसर लेने को पालेज से बंबई गये थे। तो सारा गोदाम केसर के डिब्बे से भरा था। बड़ा गोदाम (था)। केसर के डिब्बे की थप्पियाँ थीं। ऐसे यह भगवान तो अनंत गुणों का गोदाम है। यह आत्मा - गोदाम अलग जाति का है।

जिसमें अधिकरण नाम की शक्ति - गुणरूप पड़ी है, आहाहा ! तुझे वर्तमान सम्यग्दर्शन की, सम्यक्‌ज्ञान की, सम्यक्‌चारित्र की वीतरागी धर्मदशा अंतर अधिकरण नाम की शक्ति के आधार से उत्पन्न होती है, आहाहा ! यह अधिकरण शक्ति द्रव्य के आश्रय से रहती

है। आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसा उपदेश लोगों को ऐसा (कठिन) लगता है। सारा दिन निवृत्ति नहीं (और) जिंदगी ऐसे ही निकाल दी। उपदेश देनेवाले (भी) ऐसे मिले ! `जहलो जोगी ऐवी मालि मकवाणी' - हमारे गुजराती में कहावत है। `जहलो जोगी' यानी उसे कोई स्त्री नहीं देता था। और `मालि मकवाणी' (नाम की स्त्री को) कोई लेता नहीं था। ऐसी कोई खोड़वाली (विकलांग) बाई थी। दोनों का मेल हो गया ! ऐसे अज्ञानी को राग की रुचि (तो है ही) और राग से धर्म होता है, ऐसा उपदेश देनेवाले मिले, (दोनों का) मेल हो गया। आहाहा ! भगवान ! मार्ग तो यह (है)। यह तो वीतराग मार्ग है, प्रभु ! आहाहा !

अशुभ राग की बात क्या करना ? वह तो महा पाप (है)। और शुभ राग को भी अनुभवी (पुरुष) तो पाप कहते हैं। आहाहा ! इस पाप से आत्मा की निर्मल मोक्षमार्ग की पर्याय उत्पन्न हो ! प्रभु ! (यह मान्यता) मिथ्यात्व का बड़ा शल्य है।

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं, ``**भाव्यमान...**'' अपने भावने में आते (हुए), है ? ``...**(भावने में आते हुए) भाव के...**'' (अर्थात्) वर्तमान भावने में भावते हुए भाव। वीतरागी सम्यग्दर्शन, ज्ञान और आनंद। उसे भाव (कहा)। उस ``**...भावके - आधारत्वमयी...**'' आहाहा ! उसका आधार आधारत्वमयी (अधिकरण) शक्ति है। आधारत्वमयी कहा। द्रव्य के साथ यह शक्ति तन्मय है, आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसे अपने आनंद की पर्याय प्रगट हो, अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद (प्रगट हो)। सबेरे `आस्वादक' आया था न ? धर्मी जीव अतीन्द्रिय आनंद के स्वाद का करनेवाला है। `आस्वादक' (है)। आहाहा ! सम्यक्दृष्टि और धर्मी उसको कहते हैं कि, अपने आनंद का स्वाद का करनेवाला हो। आहाहा ! प्रभु ! तेरी बलिहारी है, नाथ ! इस आनंद के स्वाद को करनेवाला जीव को, इसका आनंद का स्वाद का आधार कौन ? क्या राग की मंदता (आधार है) ? देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति (आधार है) ? उसके आधार से (आनंद) उत्पन्न होता है ? आहाहा ! उसमें अधिकरण नाम की शक्ति है तो अनंत गुण का आधार अधिकरण शक्ति है, आहाहा ! और अंदर एक-एक गुण में अधिकरण का रूप है, यह गुण का आधार है और निर्मल पर्याय होती है। वह भी (इस) गुण के आधार से उत्पन्न होती है, आहाहा !

श्रोता : श्रद्धा गुण में भी इसका रूप पड़ा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सबका रूप पड़ा है, कहा न ? श्रद्धा गुण में रूप पड़ा है तो (इस) रूप से (श्रद्धा की पर्याय) उत्पन्न होती है। जैसे पहले ज्ञान गुण में कहा था। सब कह गये हैं। सब बात आ गयी हैं।

ज्ञान में भी ऐसा अधिकरण नाम का स्वरूप पड़ा है, उसके आधार से सम्यक्ज्ञान उत्पन्न होता है। आहाहा ! केवलज्ञान भी कैसे उत्पन्न होता है ? कि पूर्व में चार ज्ञान थे, उसका व्यय होकर (उसके) कारण से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ? (तो कहते हैं कि), नहीं, ज्ञान गुण में अधिकरण नाम का स्वरूप है, उसके कारण से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। यह भाव्यमान भाव (है)। भाव्यमान भाव (अर्थात्) भावने में आया ऐसा भाव। आहाहा !

वीतरागी कथा तो देखो ! आहाहा ! अरे...! (कोई तो) इसका मजाक करते हैं ! अरे प्रभु ! तू रहने दे नाथ ! तू भगवानस्वरूप है न ? प्रभु ! आहाहा ! तेरी विकार की दशा के आधार से तुझे गुण उत्पन्न हो, तो तुझे गुण और गुण के स्वरूप की शक्ति की प्रतीति नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! व्यवहार रत्नत्रय का राग से निश्चय रत्नत्रय होगा, ऐसा माननेवाले को द्रव्य और गुण की श्रद्धा का विश्वास नहीं है। बराबर है ? लोजीक से तो (बात करते हैं)। आहाहा ! न्याय से - लोजीक से तो (बात हैं)। आहाहा ! तीनलोक के नाथ का मार्ग न्याय से सिद्ध है। 'नि' धातु (है)। 'नि' नाम ज्ञान को अंतर में ले जाना। आहाहा ! उसका नाम न्याय कहने में आता है। समझ में आया ? आहाहा ! धन्य भाग ! ऐसी वीतरागी वाणी ! आहाहा ! समझ में आया ?

आज तो बहिन का पुस्तक (बहिनश्री के वचनामृत) पढ़कर एक मुमुक्षु ऐसे खुश हो गये, कहने लगे कि, यह जैन की गीता होगी। बात तो ऐसी आयी है ! इस (बहिनश्री के वचनामृत में) माल-माल आया है। जैन की गीता (अर्थात्) जैन के गाने, वीतरागता के गाने, उसे गीता कहते हैं। वीतराग के गाने उसे गीता कहे। यह गीता का अर्थ है। आत्मा के गुण के गाने गाना, उसका नाम गीता (है), आहाहा !

भगवान आत्मा अनंत गुण का सागर, गोदाम पड़ा है। उसके आधार से पर्याय उत्पन्न हो, उस गुण का गाना है। पर्याय का भी (गाना) नहीं। जिसमें निर्विकल्प गुण पड़ा है। वीतरागी स्वभाव पड़ा है। उसके आधार से तो पर्याय प्रगट होती है, प्रभु ! तू दूसरे का आधार मानता है, वह वस्तु की स्थिति (नहीं)। तेरे गुण के स्वभाव का अनादर करता है। समझ में आया ? व्यवहार करते-करते निश्चय होगा (इसमें तो) प्रभु तुम गुणी और गुण का अनादर करते हो। तेरे में गुण है। निर्मल पर्याय अपने आधार से उत्पन्न हो, ऐसा गुण का तुम अनादर करते हो। आहाहा !

यहाँ एक अधिकरण शक्ति में तो कितना भरा है ! अनंत गुण में अधिकरण का रूप है और अधिकरण के रूप में अनंत गुण का स्वरूप है, रूप है, आहाहा ! अधिकरण नाम की शक्ति है, उसमें अनंत गुण का स्वरूप - रूप पड़ा है और अधिकरण शक्ति का स्वरूप - रूप अनंत गुण में पड़ा है। आहाहा ! बड़ा समुद्र है ! ऐसी बातें हैं !

लोगों को व्यवहार के रसिक को यह बात एकांत लगे। (लेकिन) क्या करें, प्रभु ? महा समुद्र पड़ा है न ? प्रभु !

जल के तरंग जलमें से उत्पन्न होते हैं। शास्त्र में समुद्र का दृष्टांत कहा है न ? समुद्र में तरंग उठता है, वह हवा के कारण से नहीं (उठता)। हवा आयी तो तरंग उठता है, ऐसा नहीं। समुद्र के पर्याय का स्वभाव (ऐसा) है (तो) अपने कारण से तरंग उठता है और वह तरंग समाकर समुद्र में घुस जाता है, आहाहा ! समझ में आया ?

कपड़े की धजा जो होती है (वह) हिलती है तो हवा के कारण से (हिलती) नहीं, ऐसा कहते हैं। उसमें परिणमन करने की शक्ति है। क्रियावर्ती शक्ति के कारण उसका परिणमन ऐसा - ऐसा होता है, हवा के कारण से नहीं। ऐसी बातें हैं ! ९० की साल में एक पंडित ऐसा कहते थे, प्रत्यक्ष दिखता है, उसे तुम ना कह रहे हो ? पानी में उष्णता अग्नि से आती है और तुम कहते हो कि, अपने से (उष्ण) होता है। प्रत्यक्ष देखने में आता है। (हमने कहा) क्या प्रत्यक्ष देखते हो ? उसमें उष्ण नाम की शक्ति है, उसकी ठंडी पर्याय है, यह बदलकर उष्ण होती है। उष्ण गुण के कारण, स्पर्श गुण के कारण यह उष्णता हुई है. अग्नि के कारण से पानी उष्ण हुआ, यह तीन काल में नहीं। वे (विद्वान) आये थे, `दृष्टि इष्ट' ऐसा बोल रहे थे। `दिख रहा है, देखते हैं और आप ना कहते हो ?' बापू ! तुझे क्या दिखता है ? भाई ! आहाहा !

कुंदकुंदआचार्य ने ३७२ गाथा में तो ऐसा कहा कि, हम तो मिट्टी से घड़ा उत्पन्न होता है, (ऐसा) देखते हैं। कुंभार (कुम्हार) से घड़ा उत्पन्न होता (हुआ) हम तो देखते नहीं। आहाहा ! क्योंकि घड़े की पर्याय की कर्ता तो मिट्टी है। मिट्टी में करण नाम की शक्ति है। मिट्टी में एक अधिकरण नाम की शक्ति है, उसके आधार से घड़े की पर्याय उत्पन्न होती है। कुंभार के हाथ से घड़ा बनता नहीं। आहाहा ! द्रव्य की पर्याय की स्वतंत्रता तो देखो ! आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, अनंत गुण में अधिकरण नाम का रूप है। अंदर में प्रभुत्व नाम का गुण है। आहाहा ! प्रभुत्व नाम की शक्ति है। वह आ गयी है। अखण्डरूप से शोभायमान स्वतंत्रता से शोभायमान, प्रभुत्व शक्ति। ७ वीं (शक्ति) है न ? ``**जिसका प्रताप अखण्डित है अर्थात् किसीसे खण्डित की नहीं जा सकती ऐसे स्वातंत्र्य से (- स्वाधीनता से) शोभायमानपना जिसका लक्षण है ऐसी प्रभुत्वशक्ति।**'' आहाहा ! प्रभुत्व शक्ति में भी अधिकरण शक्ति का स्वरूप है, तो प्रभुत्व शक्ति के परिणमन में अखण्डरूप से - स्वतंत्ररूप से शोभायमान पर्याय होती है। इस पर्याय का खण्ड करने की जगत में किसी की ताकत नहीं है, आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! कर्म का उदय हुआ तो प्रभुता की पर्याय में खण्ड

हो गया, (ऐसा नहीं है)। प्रभु ! तुझे मालूम नहीं। आहाहा ! (तेरे में) प्रभुत्व शक्ति है, ईश्वर होने की शक्ति है, यह प्रभुता की शक्ति जो पड़ी है, उसकी पर्याय में प्रभुता प्रगट होती है, उसका आधार प्रभुत्व शक्ति में अधिकरण का स्वरूप है, उसके आधार से प्रभुता प्रगट होती है, आहाहा ! पामरतामें से प्रभुता आती नहीं, ऐसा कहते हैं. प्रभुत्व में से प्रभुता आती है। उसका अर्थ क्या किया ? कि, पहले पर्याय पामर है तो उसका व्यय होकर (विशेष पर्याय हुई) ऐसा भी नहीं। आहाहा !

यह प्रभुत्व नाम की शक्ति तो प्रत्येक गुण में है। ज्ञान में प्रभुत्व शक्ति का रूप, दर्शन में रूप, (ऐसे) अनंत गुण में रूप (है)। श्रद्धा गुण में भी प्रभुत्व नाम का स्वरूप-रूप है। आहाहा ! श्रद्धा में प्रभुत्व नाम की शक्ति का स्वरूप है। उस कारण से सम्यक्त्व की पर्याय प्रभुत्व स्वरूप के कारण से, प्रभुत्व की पर्याय की प्राप्ति होती है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा स्वरूप (है) !

एकबार मोरबी गये थे। मोरबी से शनाळा (गये थे)। वहाँ व्याख्यान हो गया बाद में शाम को आहार (लेने के बाद घूमते थे। वहाँ एक शक्ति का मंदिर था। देवी शक्ति का मंदिर था। वहाँ गये थे। (वहाँ एक) साधु बैठा था। (हम वहाँ गये तो कहने लगा), 'पधारो, पधारो। इस शक्ति के बिना ईश्वर नहीं चल सकता। शक्ति के बिना ईश्वर भी नहीं चल सकता' हमने कहा कि, 'लेकिन वह कौनसी शक्ति ? इस शक्ति के बिना ईश्वर - आत्मा नहीं रह सकता है' वह कहे, दैवी शक्ति। ईश्वर को भी दैवी शक्ति की जरूरत पड़ती है। वहाँ शनाळा में शक्ति का मंदिर है।

इस प्रभु को शक्ति के बिना एक क्षण भी नहीं चलता। गुण के बिना गुणी कैसे रहे ? शक्ति बिना शक्तिवान कैसे रहे ? और शक्तिवान के बिना उसकी पर्याय भी कैसे रहे ? आहाहा ! सभी ज़गह शून्य लगा दे (और) यह स्वभाव से भरा हुआ भगवान के उसके शरण में जा, उसका आश्रय ले। तुझे शांति होगी, सम्यग्दर्शन होगा, आनंद होगा, चारित्र की पर्याय भी तेरे द्रव्य के आश्रय से होगी। लाख - करोड़ बार तेरे व्यवहार चारित्र करे (तो भी वह) राग है। उसके कारण से (निश्चय) चारित्र होता है, सराग क्रिया से वीतराग चारित्र होता है, (ऐसा) तीन काल में नहीं। समझ में आया ?

(कोई) ऐसा कहते हैं कि, छठ्ठे गुणस्थानक तक सराग चारित्र है। फिर उसके कारण से सातवें (गुणस्थान में) वीतराग चारित्र होता है। परंतु अभी छठ्ठे गुणस्थान में सराग चारित्र किसको कहना इसकी मुझे खबर नहीं है। पहले तो स्वरूप का आश्रय होकर अनुभव हुआ हो, अनुभव में विशेष लीनता हुई हो, परंतु (सातवें गुणस्थान में) तद्दन वीतरागता - निर्विकल्पता न हो, तब तक राग को व्यवहार कहते हैं। उसका अभाव होकर

स्वरूप का उग्र आश्रय लेने से अंदर की शक्ति के आधार से वीतरागता उत्पन्न होती है। राग का व्यय हुआ तो वीतरागता उत्पन्न हुई। (ऐसा नहीं है)। आहाहा ! लोजीक से - न्याय से तो बात है। प्रभु ! तुझे तेरे न्याय की खबर नहीं। आहाहा ! यह प्रभुत्व शक्ति ली। ऐसे जीवतर शक्ति में (लेना)।

पहली जीवतर शक्ति (है)। समयसार की दूसरी गाथा में लिया है न ? ``**जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो**'' यहाँ से जीवत्वशक्ति निकाली है। ``**जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो**'' जीव अपने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थित (है)। जीव में दर्शन, ज्ञान, चारित्र स्थित (है), ऐसे नहीं लिया। जीव अपने दर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थित है, आहाहा ! राग में स्थित था वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान में स्थित हुआ। आहाहा ! समझ में आया ? स्थित होने की शक्ति अंदर में थी, आहाहा ! अंदर अधिकरण नाम का, आधार नाम का गुण है, स्वरूप है, आहाहा ! उसके आधार से भगवान अपने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय में आता है। इसको जीव कहे और कर्म पुद्‌गल के प्रदेश स्थितम् (अर्थात्) कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुआ राग वह तो कर्म है। उस कर्म प्रदेश में - अंश में स्थित है, वह आनात्मा है। ``**पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं**'' उसको परसमय जान, अनात्मा जान, वह आत्मा नहीं, आहाहा !

आत्मा के सम्यग्दर्शन की आश्रय बिना अथवा स्वभाव के आश्रय बिना, अकेला व्यवहार रत्नत्रय का राग आदि है, यह सब बंध का कारण है। अबंध का कारण बंध से उत्पन्न हो, ऐसा नहीं है।

अधिकरण शक्ति अबंधस्वरूप है। अधिकरण शक्ति पारिणामिकभाव से है। क्या कहा ? अधिकरण शक्ति पारिणामिकभाव से - सहज स्वभाव से है। उसके आश्रय से (प्रगट हुआ) भाव्यमान भाव। उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव से है - उदयभाव नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

भगवान आत्मा ! अनंत गुण में अधिकरण का स्वरूप और अधिकरण शक्ति (है)। आहाहा ! चैतन्य रत्नाकर पर्वत ! इसमें भाव्यमान वर्तमान दशा, मोक्षमार्ग की दशा या जीवतर शक्ति की दशा (अधिकरण शक्ति के आधार से उत्पन्न होती है)। जीवतर शक्ति का त्रिकाली है। लेकिन उसका कार्य क्या ? कि, ज्ञान, दर्शन, आनंद और सत्ता। ऐसे भावप्राणरूपी कार्य उसमें होता है। भावप्राण से आत्मा जीता है, यह जीवन है। शरीर से जीना वह (जीवन नहीं)।

लोग कहते हैं न ? यहाँ का विरोध करते हैं। `जीओ और जीने दो' कौन जीए और किसको जीने दे ? वह भगवान का वाक्य ही नहीं। वह तो अंग्रेजी का वाक्य है।

बाईबल का वाक्य है। (लोग) ऐसा बोले, `महावीर का संदेश, जीओ और जीने दो' अरेरे...! (कुछ) मालूम नहीं, प्रभु ! जीओ और जीने दो (यानी) ``**जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो**'' वह जीओ है। यह जीवन (बना) और दूसरे का जीवन भी ऐसा बना दे। यह (जीवन) बना दे तो (तू) जीवन जीता है। राग से जीना, शरीर से जीना, भाव इन्द्रिय अथवा अशुद्ध भावप्राण से जीना, वही जीव का जीवन नहीं। आहाहा ! यह जड़ के १० प्राण उससे जीवन वह तो आत्मा का जीवन है ही नहीं। तो `जीओ और जीने दो' को अज्ञान कहते हैं। अरे ! लाख बार अज्ञान (है), सुन न ! आहाहा ! प्रभु ! अंदर जीवत्व नाम की शक्ति है। उस में अधिकरण नाम का स्वरूप है तो वर्तमान में जो जीवन-ज्ञान, दर्शन और आनंद की पर्याय उत्पन्न हुई, उस जीवन से जीना उसका नाम जीव है। इस जीवन से जीए उसका नाम जीव है। राग और पुण्य-पाप से जीए, वह जीव नहीं, आहाहा ! ऐसी बातें हैं ! बात-बात में फर्क है।

कहते हैं न कि, `आनंद कहे परमानंदा माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मळे अने एक तांबियाना तेर' एक लाख इन्सान में भी नहीं मिले ऐसे मनुष्य होते हैं न ? और एक तांबियाना तेर। ऐसे प्रभु कहते हैं कि, तारे ने मारे वाते-वाते फेर। तेरी विपरीत दृष्टि के कारण से मेल नहीं खाता है, नाथ ! आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, जीवतर शक्ति में भी अधिकरण का रूप है और चिति शक्ति, दशि शक्ति, ज्ञान शक्ति उसमें भी (अधिकरण का रूप है)। आहाहा ! आत्मा में सर्वज्ञ शक्ति है, उसमें भी यह अधिकरण नाम का स्वरूप है। उसके आधार से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। मोक्षमार्ग की पर्याय थी (उसका) व्यय हुआ और मोक्ष की पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसा नहीं। अंदर में अधिकरण स्वरूप के कारण से मोक्ष की पर्याय उत्पन्न हुई है, आहाहा ! गजब बातें हैं ! समझ में आया ?

अंदर में यह चिति शक्ति, दशि (शक्ति है ऐसे) सर्वज्ञ शक्ति है। सर्वज्ञ शक्ति है, यह गुण है। उसमें अधिकरण नाम का स्वरूप है, उस के कारण से केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न (होती है)। यह भाव्यमान भाव (है)। भावनेवाला भाव का - सर्वज्ञ शक्ति का आधार अधिकरण (शक्ति का) स्वरूप है।

ऐसे सर्वदर्शी (शक्ति में लेना)। सर्वज्ञ हुआ उसके कारण से सर्वदर्शी नहीं (हुआ)। आहाहा ! अंदर में सर्वदर्शीशक्ति पड़ी है। उसमें यह अधिकरण का स्वरूप है, उस कारण से पर्याय में सर्वदर्शीपना प्रगट होता है। यह भाव्यमान भाव है। समझ में आया ? आहाहा ! गुजराती में जितना स्पष्ट आये (इतना) हिन्दी में नहीं आता। भाषा ढूँढ़नी पड़े न ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि, सर्वज्ञ, सर्वदर्शीपना प्रगट हुआ उसका आधार कौन ? अब

कोई ऐसा कहते हैं, वज्रनाराचसंहनन हो तो केवलज्ञान उत्पन्न होता है। अरे ! सुन न, प्रभु ! वज्रनाराचसंहनन तो कहीं दूर रह गया लेकिन पहले मोक्ष का मार्ग है, वह व्यय होकर उसके कारण से (केवलज्ञान) हुआ, ऐसा भी नहीं। अंदर में सर्वज्ञ और सर्वदर्शी शक्ति पड़ी है, उसमें अधिकरण नाम का स्वरूप है, उसके कारण सर्वज्ञ, सर्वदर्शी (वर्तमान पर्याय प्रगट होती है)। शक्ति में पड़ा है वह वर्तमान में प्रगट होता है, आहाहा ! समझ में आया ?

एक-एक पर्याय में षट्कारक है। यह अधिकरण शक्ति (प्रगट) हुई, (वह उसके) षट्कारक से उत्पन्न होती है।

पंचसंग्रह में ज्ञानदर्पण में लिया है, भाई ! समझ में आया ? १६६ नंबर का श्लोक है। '**किरिया करम सब संप्रदान आदिकको**' क्रिया शक्ति आयी है न भाई ? पहले क्रियाशक्ति आयी थी। देखो ! '**कारकोंके अनुसार परिणमित होनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति**' ४० (वीं शक्ति है न) ? '**कारकोंके अनुसार...**' देखो ! छः कारक अनुसार। '**...परिणमित होनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति।**' और उसके पहले (३९ शक्ति में) '(**कर्ताकर्म आदि**) **कारकों के अनुसार जो क्रिया...**' (अर्थात्) मलिन पर्याय। '**...उससे रहित भवनमात्रमयी भावशक्ति।**' आहाहा ! समझ में आया ? वही (बात) यहाँ कही है। देखो !

'**किरिया करम सब संप्रदान आदिकको**' क्रिया शक्ति, कर्म शक्ति, संप्रदान शक्ति, आदिक को '**परम आधार अधिकरण कहीजीये।**' परम आधार अधिकरण कहीजीये। सभी का परम आधार अधिकरण शक्ति (है)। '**दरसन, ज्ञान आदि वीरज अनंत गुण, वाहीके आधार यातैं वामें थिर हूजिये**' दर्शन, ज्ञान का आधार यह अधिकरण शक्ति है। आहाहा !

यह बात तो श्वेताम्बर, स्थानकवासी में तो है ही नहीं। अन्य मत में तो है ही नहीं। लेकिन यहाँ दिगंबर में है उसका अर्थ करने में भी बड़ा गोटा उठाया। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर का है। संतों वीतरागी मुनियों ने अंदर से रामबाण मारे हैं। आहाहा ! यहाँ कहते हैं, '**किरिया करम सब संप्रदान आदिकको, परम आधार अधिकरण कहीजिये, दरसन ज्ञान आदि वीरज अनंत गुण, वाही के आधार यातैं वामैं थिर हूजिये, याहीकी महतताई गाई सब ग्रंथनिमैं, सदा उपादेय सुद्ध आतम गहीजिये।**'

यह अधिकरण शक्ति का वर्णन है। अधिकरण शक्ति-गुण है तो गुणी को उपादेय करे तो तुझे शक्ति का परिणमन होगा, आहाहा ! गुण का परिणमन भिन्न नहीं रहेगा। अनंत शक्ति का समुदाय ऐसा द्रव्य स्वभाव को उपादेय करके और राग को हेय करके जो उत्पन्न होता है, (वह) वीतरागता उत्पन्न होती है, यह अधिकरण शक्ति के कारण (उत्पन्न होती है)। सबका आधार अधिकरण (शक्ति) है। विशेष कहेंगे....

प्रवचन नं. ४२
शक्ति-४७ दि. २१-०९-१९७७
स्वभावमात्रस्वस्वामित्वमयी सम्बन्धशक्तिः।।४७।।

समयसार शक्तियों का अधिकार है। शक्ति (अर्थात्) गुण है। आत्मा में अनंत गुण है और आत्मा में अनंत गुण होने पर भी एक-एक गुण का स्वरूप दूसरे गुण में है। आत्मा का स्वसंवेदन होता है, धर्मदशा (होती है)। स्वसंवेदन नाम की एक शक्ति है न? १२ वीं प्रकाश नाम की शक्ति है। प्रकाश शक्ति का कार्य क्या ? पर्याय में स्व - अपना, सं - प्रत्यक्ष वेदन होना, ये इस शक्ति का कार्य है।

सम्यग्दर्शन के काल में अपने स्वभाव का आश्रय होने पर भी, अपने में एक प्रकाश नाम का गुण है। उस कारण से स्वसंवेदन (अर्थात्) अपना आनंद का स्व-सं-प्रत्यक्ष वेदन (होता है)। इसमें यह अधिकरण नाम की शक्ति का रूप है, कि जो स्वसंवेदन प्रत्यक्ष सम्यग्दर्शन में - सम्यक्ज्ञान में होता है, उसमें कोई पर का अवलंबन नहीं (होता)। उसमें व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प का आधार नहीं, आहाहा ! समझ में आया ?

शुद्ध चैतन्यस्वरूप (आत्मा) इसमें अनंत शक्ति (है)। उसमें एक शक्ति ऐसी है कि, स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होना। अपना आनंद और अपनी ज्ञान पर्याय में प्रत्यक्ष होना, आहाहा ! इसमें अधिकरण शक्ति का स्वरूप है। उस कारण से यह शक्ति पर के आधार बिना, अपना स्वसंवेदनरूप से वेदन करती है, यह अपनी स्वयंसिद्ध दशा है। व्यवहार रत्नत्रय के कारण से स्वसंवेदन होता है, ऐसा नहीं है, आहाहा ! ऐसी बात है लेकिन लोगों ने गड़बड़ कर दी। अभी वे लोग ज़ोर देते हैं कि, चारित्र चाहिए, चारित्र चाहिए... ऐसा कहते हैं। परंतु चारित्र किसको कहें ? चौथे गुणस्थान में भी सर्वगुणांश ते समकित (होता है)। क्या कहते हैं ? जितनी शक्ति की संख्या है, उसका एक अंश चौथे (गुणस्थान

में) व्यक्त होता है, तो चारित्र गुण का भी एक अंश व्यक्त होता है, समझ में आया?

स्वरूप आचरण चारित्र जो है, यह सम्यग्दर्शन में स्वरूप आचरण चारित्र का अंश प्रगट होता है। चारित्र का अंश वहाँ से शुरू होता है। यह चारित्र जो पाँचवें और छट्ठे (गुणस्थान में) कहते हैं, वह चारित्र नहीं (होता)। लेकिन सम्यग्दर्शन में 'सर्व गुणांश ते समकित' यह श्रीमद् का वाक्य है।

यहाँ अपने ले तो, रहस्यपूर्ण चिट्ठी में (ऐसा लिखा है), 'ज्ञानादि एकदेश सर्व की व्यक्तता प्रगट होना, यह चौथे गुणस्थान में होता है' आहाहा ! जितनी संख्या में गुण है, इतनी संख्या में वर्तमान पर्याय में व्यक्त रूप अंश प्रगट होता है। समझ में आया? जैसे श्रद्धा नाम का गुण है तो उसकी सम्यग्दर्शन की पर्याय व्यक्त होती है। सम्यक्ज्ञान का गुण जो है, इसमें सम्यक्ज्ञान की वर्तमान मति-श्रुत आदि की पर्याय व्यक्त होती है, ऐसे चारित्र गुण जो है तो उसमें स्वरूप आचरण चारित्र का अंश भी साथ में प्रगट होता है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी स्थिति है, ऐसा पहले ज्ञान तो करे। ज्ञान करे बिना प्रयोग कैसे करेगा ? अंतर्मुख होने का प्रयोग तो पहले यथार्थ ज्ञान हो (तब होता है)। समझ में आया ? आहाहा ! बाद में अंतर में अनंत शक्ति से भरपूर भरा हुआ भगवान ! आहाहा ! अनंत गुण से भरपूर, गुणी - गुण से भरपूररूप से भरा है। भरपूर समझते हो ? (भरपूर माने) पूरा का पूरा। भगवान (आत्मा) अनंत गुणों से पूरापूरा भरा है। उसका जहाँ आश्रय लेते हैं तो उसमें से जितना भरपूर गुण है, उसका एक अंश चौथे गुणस्थान में व्यक्त - प्रगट होता है. आहाहा ! अनंत गुण का एक अंश व्यक्त (होता है)। अनंत गुणों में सब का (एक अंश व्यक्त होता है)। आहाहा ! कहा न ?

श्रद्धा गुण ने अखण्ड ज्ञायक स्वरूप द्रव्य को पकड़ा, जिसमें गुण और गुणी का भेद भी दृष्टि का विषय नहीं। यह शक्ति है और (यह) शक्तिवान है, ऐसा भेद भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं, आहाहा ! सम्यग्दर्शन का ध्येय और विषय अभेद अखण्ड ज्ञायकभाव है। इस ध्येय में एक श्रद्धा नाम की शक्ति पड़ी है, इस ध्येय के लक्ष से यह श्रद्धा नाम की शक्ति की भी सम्यग्दर्शनरूपी पर्याय की व्यक्तता होती है, आहाहा ! अरे...! ऐसी बातें (हैं)।

(बाहर में तो ऐसा कहते हैं कि), संयम लो, संयम लो... आज पेपर में बहुत आया है। ये लोग संयम की तो ना कहते हैं। परंतु किसको संयम - चारित्र कहें ? अभी सम्यग्दर्शन क्या है ? उसकी खबर बिना चारित्र आया कहाँ से ? समझ में आया?

सम्यग्दर्शन में तो सर्व गुणांश प्रगट होता है। इसमें आनंद की भी पर्याय व्यक्त होती है। वीर्य नाम का गुण है उसमें भी अनंत गुण की व्यक्त पर्याय की रचना करनेवाला

वीर्य का भी अंश प्रगट होता है। आहाहा ! मार्ग बहुत अलग है, बापू ! आहाहा ! समझ में आया ? जवाहरात के (धंधे में) कुछ हाथ आये, ऐसा नहीं है। आहाहा ! अरे...! यह चीज़ बाहर आने से लोगों को विरोध हो गया। बापू ! सत्य तो यह है, भाई !

तेरी शक्ति अनंत और यह शक्तिवान द्रव्य एक। उस पर दृष्टि देने से अनंत शक्ति में से अनंत अंश व्यक्त - प्रगट होता है। चौथे गुणस्थान में प्रगट होता है। आहाहा ! अरे...! अजोगपना की शक्ति है न ? निष्क्रियत्व शक्ति है। उसका निष्क्रियत्व का - अकंपपना का अंश भी चौथे गुणस्थान में प्रगट होता है, आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई !

एक द्रव्य - वस्तु अनंत शक्ति से पूरा भरा पड़ा है। उसकी दृष्टि करने से वह छलकता है। पानी का घड़ा भरा है न ? (वैसे यह) छलकता है। (हिन्दी में) छलकते को क्या कहते हैं ? उछलता है, आहाहा ! पहले आ गया है। पहली शक्ति में आ गया है कि, ज्ञानमय पर्याय की शक्ति प्रगट होने से दूसरी अनंत शक्ति साथ में उछलती है। देखा ? देखो ! ``**आत्मद्रव्य के कारणभूत...**'' आहाहा ! ``**आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भावका धारण जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है, ऐसी जीवत्व शक्ति। (आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्रभावरूपी भावप्राण का धारण करना जिसका लक्षण है, ऐसी जीवत्व नामक शक्ति ज्ञानमात्र भाव में - आत्मा में उछलती है।**'' समझ में आया ?

जैसे पानी होता है न ? नल को ऐसे खोलो तो पानी की धार होती है। ऐसे भगवान आत्मा ! आहाहा ! अनंत गुण के भण्डार पर दृष्टि देने से नलमें से जैसे पानी झरता है, वैसे आनंद, ज्ञान और शांति की पर्याय झरती है। आहाहा ! बापू ! धर्म बहुत अलौकिक चीज़ है !

लोगों ने बाहर से - चारित्र लो...चारित्र लो... (में धर्म मना लिया है)। बापू ! चारित्र किसे कहें ? प्रभु ! तेरे आत्मा के हित की बात है, प्रभु ! सम्यग्दर्शन बिना व्रत आदि अहितकर है, नुकसानकारी है, आहाहा ! उसको लाभदायी मानते हैं (लेकिन वह तो नुकसानकारी है)। स्वरूप की दृष्टि हो तब उसमें चारित्र का अंश भी (साथ में) आता है। वीर्य का अंश आता है। स्वरूप की अनंत गुण की रचना (होती है)। आत्मा में एक बल नाम की शक्ति है, उसके कारण अनंत गुण की स्वरूप की पर्याय की रचना होना, यह वीर्य का कार्य है। इस वीर्य के कार्य में यह अधिकरण के नाम का रूप है। यह वीर्य शक्ति अपने से स्वरूप की रचना करती है। उसका कोई (दूसरा) आधार नहीं है। समझ में आया ? ऐसा मार्ग (है) ! कहा न ?

आहाहा ! उछलती कहा न ? `उछलती है' पाठ में ऐसा है। देखो ! आहाहा ! जीवत्वशक्ति। संस्कृत में है, देखो ! ``**अत एवस्य ज्ञानमात्रैकभावांतःपातिन्योऽनंताः शक्तयः**

उत्प्लवंते" समझ में आया ? भगवान आत्मा ! आहाहा ! भगवान कहकर तो बुलाया है। इसमें अनंत शक्ति का - गुण का भण्डार भरपूर भरा है। इसकी दृष्टि करने से सम्यक्ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, वह शास्त्र से (नहीं होती)। अंतर से उछल के आती है। उसके साथ अनंत गुण की शक्ति एक समय में उछलती है अथवा प्रगट होती है। ऐसा कभी कहीं सुना नहीं। आहाहा !

उसमें स्वसंवेदन - प्रकाश नाम की एक शक्ति है। आहाहा ! स्वसंवेदन में स्व प्रकाश का वेदन, अपना स्व का प्रत्यक्ष वेदन आना, इसका अंश प्रगट होता है। यह प्रगट होता है, इसमें पर का कोई आधार नहीं। व्यवहार रत्नत्रय आदि विकल्प का, निमित्त का आधार नहीं, आहाहा ! क्योंकि स्वसंवेदन प्रकाशशक्ति में अधिकरण नाम का - आधार नाम का स्वरूप - रूप है। उस कारण से प्रकाश शक्ति अपने से अपने कारण से वेदन करती है। व्यवहार के कारण से नहीं, आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसे सम्यग्दर्शन होता है, द्रव्य की दृष्टि होती है (तब) अनंत गुण की पर्याय उछलती है, उसमें चौथे गुणस्थान में चारित्र की पर्याय भी आंशिक प्रगट होती है। चारित्र की व्याख्या (क्या) ? आहाहा ! स्वरूप में आचरण करना, यह चारित्र है। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ शक्तियों के वर्णन में आखिर में ४६ वीं शक्ति अधिकरण की शक्ति आ गयी। यह थोड़ा अधिकरण के (विषय में) लिया। प्रत्येक गुण में अपने आधार से अपनी निर्मल वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है, आहाहा ! १४ वें गुणस्थान में जो अकंपपना प्रगट होता है, वह अकंपपना तो अपनी शक्ति है। उसमें से पूर्ण अकंपपना उत्पन्न हुआ। लेकिन सम्यग्दर्शन के काल में भी, यह अकंप शक्ति का एक अंश - कंपन नहीं होना, ऐसी शक्ति की व्यक्तता होती है, आहाहा ! अजोगपना का अंश शुरू होता है। ऐसी बात है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात (है)। शक्ति का वर्णन (सूक्ष्म है)। आहाहा ! यह ४६ वीं शक्ति हुई।

आज आखिर की ४७ वीं (शक्ति लेते हैं)। पहले दिन कहा था कि, समयसार में ४७ शक्तियों का वर्णन है (और) प्रवचनसार में ४७ नय का अधिकार है। यह दृष्टि प्रधान अधिकार में शक्ति ली है। ज्ञान प्रधान अधिकार में वर्तमान में जो राग के कर्तृत्व की जो पर्याय होती है, वह भी एक नय जानना। ज्ञानी को पर्याय में राग का परिणमन है तो ज्ञानी ज्ञान में जानते हैं कि, मेरा राग का परिणमन है। यह ज्ञान की प्रधानता से कथन है। (ऐसे) ४७ नय हैं और ४७ उपादान - निमित्त का दोहा और चार कर्म की ४७ प्रकृति हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहिनी और अंतराय। चार घाती (कर्म

की) ४७ प्रकृति हैं। आहाहा ! ४७ शक्ति से यह ४७ प्रकृति का नाश होता है। नाश होता है, यह कहना भी उपचार - व्यवहार है, आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! गज़ब बात की है !

अमृतचंद्राचार्य ने यह शक्ति का वर्णन (जो किया है, ऐसा) कहीं नहीं है। श्वेतांबर में एक साधु हो गये। उन्होंने यह शक्ति का वर्णन पढ़ा। पढ़कर श्वेतांबर की शैली से शक्ति का वर्णन स्वतंत्र करने लगे। आठ शक्ति की, लेकिन ऐसी नहीं। समझ मे आया ? यहाँ तो जीव की जीवत्व शक्ति है, वहाँ से शुरू किया है। आहाहा ! यह शक्ति के बाद नहीं कर सके। अभी पेपर में आया है कि, (आगे वर्णन करना) छोड़ दिया है। ४७ (शक्ति का) वाचन किया न ? (तो ऐसा लगा कि) अपने में नहीं है तो अपने भी थोड़ा बनाओ। बनाने गये लेकिन ऐसा नहीं हुआ, दूसरे प्रकार का किया। यह तो संतों, वीतराग के केडायतों, केवलज्ञान के पंथ पर चलनेवाले, आहाहा ! और केवलज्ञान अल्पकाल में लेनेवाले, चलनेवाले और लेनेवाले, आहाहा ! इन संतों की यह वाणी, यह केवलज्ञान की दिव्यध्वनि का सार है। समझ में आया ?

(यहाँ) ४७ (शक्ति में) कहते हैं, ``**स्वभावमात्र...**'' स्वभावमात्र (अर्थात्) अपना आनंद, ज्ञान आदि स्वभाव। यह ``**स्वभावमात्र स्व...**'' उसका परिणमन भी स्वभावमात्र में आ जाता है। क्योंकि, स्वभाव, स्व - अभाव है, उसका परिणति में भान हुए बिना स्व स्वभाव है, ऐसा आया कहाँ से ? समझ में आया ? क्या कहना है ? कि, यहाँ तो ``**स्वभावमात्र स्व...**'' ऐसा लिया है। और बाद में स्वामित्व (लिया है)। (अर्थात्) स्व का स्वामित्व।

भगवान आत्मा ! अनंत गुणरूपी स्वभाव उसका स्व (है)। उसका स्वामित्व, कब होता है ? कि पर्याय में जब परिणमन होता है। तब उसको यह स्व स्वभाव पूर्ण है, ऐसा भान आया। इस पर्याय में भी स्व स्वामी संबंध की पर्याय का अंश प्रगट होता है। पीछे द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों में स्वभाव शक्ति का व्यापकपना है, आहाहा !

यहाँ स्वभावमात्र स्व कहा तो स्वभावमात्र में अकेले त्रिकाली को नहीं लेना। पर्याय में स्वभावमात्र का भान हुआ, तब यह स्वभावमात्र स्व, ऐसा भान हुआ है। निर्मल पर्याय, निर्मल गुण और निर्मल त्रिकाली द्रव्य, तीनों में स्वस्वामी संबंध शक्ति का व्याकपना है। आहाहा ! ऐसा धर्म (है), आहाहा !

यह समयसार मिथ्यादृष्टि के लिये, अप्रतिबुद्ध के लिये कहा है। पहले आया है। हम अप्रतिबुद्ध के लिये समयसार कहते हैं, आहाहा ! अरे प्रभु ! क्या करते हो तुम ? भाई ! ऐसे वीतराग मार्ग में बचाव नहीं होता, आहाहा ! समझ में आया ?

चौथे गुणस्थान में सिद्धपद की दशा का अंश प्रगट हो गया, आहाहा ! जितनी

सिद्ध की निर्मल पर्याय की संख्या है, वह निर्मल पर्याय पूर्ण है और चौथे गुणस्थान में उसके अंश की शुरूआत हो गयी। `सिद्ध समान पद मेरो', आहाहा ! `सिद्ध समान सदा पद मेरो' इसमें पर्याय की अपेक्षा से (बात) नहीं है, शक्ति की अपेक्षा से (बात) है। सिद्धपद स्वभाव है, ऐसा जहाँ भान हुआ तब स्वभाव है, ऐसी प्रतीति आयी। है तो है सही। है लेकिन उसकी प्रतीति में नहीं आये तो उसको है, कहाँ ? समझ में आया ?

जिसकी ज्ञान की पर्याय में यह ज्ञेय न हो तो यह ज्ञान हुआ, यह आया (कहाँसे) ? उसका ज्ञान कहाँ हुआ ? वह तो पर्याय का हुआ, राग का ज्ञान हुआ। वह उसके (स्वरूप का) ज्ञान नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? भगवान आत्मा ! चैतन लक्षण से लक्षित, चैतन्य स्वभाव से चेतन (लक्षित होता है)। वर्तमान में ज्ञान की पर्याय ज्ञेय - स्वज्ञेय को जानकर प्रगट हुई, उसमें आत्मा ज्ञेय है, ऐसा जानने में आया। वर्तमान पर्याय में स्वस्वामी संबंध शक्ति का भी अंश आया, उसके द्वारा स्वस्वामी (संबंध) शक्ति की प्रतीति आयी, आहाहा ! समझ में आया ?

एकबार प्रश्न हुआ था। एक मुमुक्षु थे उनको काठियावाड में पहला दिगंबर का अभ्यास था। उनके लड़के ने प्रश्न किया, `महाराज ! यह कारण परमात्मा, कारण परमात्मा (कहते हो) त्रिकाली वस्तु को तुम कारण परमात्मा कहते हो, कारण परमात्मा (है) तो कारण का कार्य तो आना चाहिए। कारण परमात्मा त्रिकाली अनंत गुण का कंद (है)। कारण जीव कहो कि कारण परमात्मा कहो (एक ही बात है)। आहाहा ! कारण हो तो कार्य तो आना ही चाहिए।' ऐसा प्रश्न किया। कारण परमात्मा (है लेकिन) कार्य तो है नहीं। कारण परमात्मा तो अनादि से है और कार्य तो है नहीं और सम्यग्दर्शन का कार्य तो है नहीं। तो उसे कारण परमात्मा कैसे कहना ?' (उसे) कहा, `भाई ! जिसकी प्रतीति में कारण परमात्मा आया उसके (लिये) कारण परमात्मा है', आहाहा ! जिसकी प्रतीति में आया नहीं उसको कारण परमात्मा कहाँ है ? समझ में आया ? आहाहा !

कारण परमात्मा त्रिकाली अनंत गुणस्वरूप भगवान (है)। परंतु यह कारण परमात्मा तो अनादि से है। लेकिन यह अनादि है (उसका) इसकी पर्याय में भास नहीं हुआ, पर्याय में भान नहीं हुआ, वहाँ तक इसको कारण परमात्मा कहाँ है ? मिथ्याश्रद्धावाले को कारण परमात्मा की श्रद्धा नहीं है। उसको कारण परमात्मा कहाँ है ? आहाहा ! मिथ्याश्रद्धावाले को तो राग और पर्याय की श्रद्धा है। उसके कारण पर्याय में राग है। सम्यक्‌दृष्टि को कारण परमात्मा की श्रद्धा है, आहाहा ! समझ में आया ? (सम्यक्‌दृष्टि को) `यह है', (ऐसा) सत्ता का स्वीकार (है)।

पहले कहा था। समयसार १७-१८ गाथा में ऐसा आया है। प्रत्येक अज्ञानी की

ज्ञान की पर्याय में भी पर्याय का स्वभाव स्वपरप्रकाशक होने से, अज्ञानी की ज्ञान की पर्याय में भी स्वज्ञेय जानने में आता है। आहाहा ! क्या कहा ? जीवराजा ज्ञान की एक समय की पर्याय में (जानने में आता है)। अज्ञान की पर्याय में भी जीवराजा ही ज्ञान में आता है। जीवराजा ही ज्ञान की पर्याय में जानने में आता है, लेकिन अज्ञानी की दृष्टि द्रव्य पर नहीं, इसलिये उसे ज्ञान में आने पर भी उसकी पर्याय में कारण परमात्मा आया नहीं। ज्ञान में द्रव्य आया फिर भी, द्रव्य पर दृष्टि नहीं है तो उस पर्याय में द्रव्य आया नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! वीतराग मार्ग बहुत अलौकिक, बापू ! आहाहा !

(लोगों को) सम्यग्दर्शन की खबर नहीं। सम्यग्दर्शन का विषय अभेद है और अनंती शक्ति का एक अंश सम्यग्दर्शन में प्रगट होता है, उसकी तो खबर नहीं और व्रत, तप और संयम लो (तो धर्म हो जायेगा), आहाहा ! (ऐसा मानते हैं)। (परंतु वह सब) `एकडा विनाना मिंडा छे।' (हिन्दी में) क्या कहते हैं ? एक बिना के शून्य हैं, आहाहा !

यहाँ कहते हैं, आहाहा ! गज़ब काम किया है ! `ग्रंथाधिराज तारा मां भावो ब्रह्मांड ना भर्या' यहाँ एक-एक शक्ति में ब्रह्मांड के भाव भरे हैं, आहाहा ! अरे ! लोगों को बेचारों को बाहर में खींच लिया है। अपने को राग और पर्याय जितना माना, वह तो बहिर्आत्मा है। क्योंकि पर्याय बहिर्तत्व है। वस्तु है यह अंतःतत्त्व है और एक समय की पर्याय भी बहिर्तत्त्व है। एक समय की पर्याय पर दृष्टि है और वहाँ रहा है, वह तो बहिर्आत्मा है। आहाहा ! बहिर्तत्त्व को अपना पूर्ण (स्वरूप) माना है, वह बहिर्आत्मा है, आहाहा ! समझ में आया ? अंतः आत्मा - अंतर आत्मा - अंतःतत्त्व जो ज्ञायक मूर्ति जो अनंत शक्ति का पिंड है, उसका जहाँ अंतर में स्वीकार किया, तब वह अंतर आत्मा होता है। आहाहा ! समझ में आया ? एक समय की पर्याय में अंतर सारी चीज़ अंदर में जानने में आती है, वह दृष्टि तो है नहीं और एक समय की पर्याय में रहा और उसके खेल में खेल किया। वह पर्याय बहिर्तत्त्व है। अंतःतत्त्व से (विरुद्ध) बहिर्तत्त्व है। नियमसार में शुद्ध भाव अधिकार में पहली गाथा (है)। ``**जीवादिबहित्तच्चं**'' पहली गाथा है। (क्रमसे) ३८ गाथा है। ``**जीवादिबहित्तच्चं**'' यहाँ जीवादि यानी जीव की पर्याय को जीव लेना। ``**जीवादिबहित्तच्चं हेय**'' वह हेय है। उपादेय, ``**अप्पणो अप्पा**'' आत्मा जो त्रिकाली ज्ञायकभाव वह आत्मा उपादेय है, समझ में आया ? आहाहा !

निर्मल पर्याय हो, उसको भी यहाँ बहिर्तत्त्व कहने में आया है। संवर, निर्जरा की पर्याय है, वह भी बहिर्तत्त्व है। पर्याय है न वह ? (इसलिये बहिर्तत्त्व कहा है)। आहाहा ! ``**जीवादिबहित्तच्चं हेय**'' वह हेय है। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ जीव की पर्याय को जीव कहा और संवर, निर्जरा को भी पर्याय कहा और

पुण्य, पाप, आस्रव को भी पर्याय कहा। नौ तत्त्व की पर्याय हेय है, आहाहा ! ``**उपादेय अप्पणो अप्पा**'' जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य है। गज़ब है ! यहाँ संवर, निर्जरा की पर्याय को भी परद्रव्य कहा है। (वह) अंतर तत्त्व नहीं। वह तो परद्रव्य है। अंतर तत्त्व स्वद्रव्य है तो पर्याय को परद्रव्य कहा, आहाहा ! समझ में आया ? इसमें कहाँ सीखने जाये ? फुरसद नहीं मिलती। मुश्किल से ५०-६० वर्ष की उम्र में फुरसद मिलती है, आहाहा ! भगवान का ऐसा स्वरूप ! अरे...! उसको सुनने नहीं मिले, तो ज्ञान (तो) कब हो ? और कैसे अंतर में उतरे ? आहाहा ! इसके बिना सब फोगट (व्यर्थ) है।

राग तो हेय है। दया, दान का विकल्प तो हेय है। परंतु स्वभाव के आश्रय से संवर, निर्जरा की (पर्याय) जो उत्पन्न हुई, वह भी हेय है। यह नियमसार भगवान कुंदकुंदाचार्य के सिद्धांत यह सब उत्कीर्ण किया है। समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड और नियमसार पाँच शास्त्र उत्कीर्ण किये हैं, आहाहा !

यहाँ कहते हैं, आहाहा ! गज़ब बात है ! जहाँ दया, दान, व्रत का विकल्प है वह तो हेय है। परंतु जहाँ द्रव्यदृष्टि करनी है, वहाँ संवर, निर्जरा की पर्याय भी हेय है। अरे...! चारित्र की पर्याय भी हेय है। संवर कहो कि चारित्र कहो (एक ही बात है)। आहाहा ! सम्यक्‌चारित्र (की बात है)। जो भगवान आनंदकंद में रमणता करता है, यह रमणता करने की चारित्र दशा (है)। पंचमहाव्रत, यह कोई चारित्र नहीं है, आहाहा ! यह (सम्यक्) चारित्र दशा भी हेय है। क्योंकि पर्याय के लक्ष से तो राग उत्पन्न होता है। चारित्र की दशा को भी (यहाँ हेय कहा है)। सम्यक्‌चारित्र दशा - सम्यग्दर्शन सहित स्वरूप की रमणता की दशा, उसको यहाँ पर द्रव्य कहा है। त्रिकाली स्व द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय को पर द्रव्य कहा है, आहाहा !

एक बार श्रीमद् राजचंद्र कहते थे। श्रीमद् राजचंद्र गृहस्थाश्रम में थे और तत्त्वदृष्टि हुई थी। वे बात करते थे कि, इस नाद को कौन सुनेगा ? कौन हाँ कहेगा ? त्रिकाली परमात्मा का यह नाद है। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ तो पर द्रव्य होने से वास्तव में उपादेय नहीं है। संस्कृत है, देखो ! ``**हेयौपादेयतत्त्वस्वरूपाख्यानमेतत्। जीवादिसप्ततत्त्वजातं परद्रव्यत्वान्न ह्युपादेयम्।**'' आहाहा ! अरे...! तत्त्व की दृष्टि की खबर नहीं। तत्त्वज्ञान क्या चीज़ है ? उसकी खबर नहीं और यह किया, व्रत लिया, यह किया और वह किया। संसार का नाश करने का यह उपाय नहीं, आहाहा !

यहाँ कहते हैं, ``**स्वभावमात्र...**'' जैसे कारण परमात्मा है, लेकिन उसकी प्रतीति और ज्ञान में आया उसके लिये (कारण परमात्मा) है। ऐसा स्वभाव त्रिकाली है, त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव

चिदानंद है, वह स्व है - लेकिन किसको ? आहाहा ! जिसका आश्रय करके जाने, उसे (त्रिकाल स्वभाव है), आहाहा ! ``**स्वभावमात्र स्व - स्वामित्वमयी...**'' सम्यग्दर्शन - ज्ञान में स्व का भान हुआ तब यह स्वभाव है, स्वभावमात्र शक्ति है, उसकी प्रतीत आयी। तो साथ में स्वभावमात्र शक्ति को धरनेवाले द्रव्य की प्रतीति आयी। वह प्रतीत की पर्याय में स्वपना आया। जो स्वभावमात्र स्व था, वह अंदर सम्यग्दर्शन, ज्ञान की पर्याय में भी स्व स्वभाव आया। क्योंकि स्वभावमात्र स्व - (ऐसा लिखा है)। स्वभावमात्र शक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्याप्त हुई। द्रव्य - गुण में तो थी लेकिन पर्याय में उसका आश्रय लिया और जब पर्याय प्रगट हुई तो स्व स्वामि अंश पर्याय में भी आया। समझ में आया ? जो त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव भगवान आत्मा ! स्व (है)। परंतु स्व का परिणमन में भान हुआ, उसमें स्व आया। तो स्व स्वामिसंबंध शक्ति का (परिणमन साथ में आया)। आहाहा ! बहुत समा दिया है ! कहते हैं कि, अंदर शुद्ध चैतन्यद्रव्य, शुद्ध गुण और उसकी शुद्ध परिणति हुई, वह अपना स्व और उसके साथ स्वामित्व (अर्थात्) उस स्व का स्वामीत्व धर्मी है। राग का, पुण्य का, व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प, यह स्व और इसका स्वामि ज्ञानी नहीं है। आहाहा !

दूसरी तरह से कहें तो, यह तो अलौकिक बातें हैं ! वहाँ दुकान में से कुछ मिले ऐसा नहीं है। सारा दिन पाप में और पाप में (जाये)। अरेरे...! जिंदगी चली जाती है। आहाहा ! खुद को क्या करना है ? (इसकी) खबर भी नहीं। अरेरे...! आहाहा !

यहाँ कहते हैं, भगवान ! सुन तो सही, प्रभु ! तेरी स्वभावमात्र जो चीज़ है, वह तेरा स्व (है)। उसके परिणमन में भी स्वभाव आदि आया तो, यह शुद्ध द्रव्य, गुण और पर्याय यह अपना स्व (है)। और उसके स्वामित्व (अर्थात्) स्वस्वामीत्व संबंध उसके साथ है। राग स्व नहीं, तो स्वामिपना भी नहीं, आहाहा ! भाषा कैसी है देखो ! ``**स्वभावमात्र स्व - स्वामित्वमयी संबंधशक्ति**'' ऐसे लिया है। ``**स्व-स्वामित्वमयी संबंध शक्ति**'' अपना ज्ञायकभाव जो अनंत शक्ति से भरपूर पड़ा है, ऐसा जहाँ अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ तो स्व आत्मा स्वभाव, उसके परिणमन में भी स्वभाव आया। यह स्वभाव शक्ति तीनों में व्यापी। द्रव्य में, गुण में तो थी। अनादि से द्रव्य में और गुण में तो स्वभाव शक्ति थी। लेकिन भान हुआ तब पर्याय में उसका अंश आया। आहाहा ! ऐसी बातें कहाँ हैं ? भाई ! आहाहा !

दिगंबर संतों के सिवा ऐसी वस्तु का स्वरूप कहीं नहीं है। आहाहा ! दिगंबर संतों ने करुणा करके जगत के पास सारे तत्त्व को ज़ाहिर किया, प्रभु ! वारसा रखकर गये लेकिन वारसा लेनेवाले रहे नहीं। बाहर का वारसा - राग, दया, व्रत को पालना, यह वारसा भगवान का नहीं। आहाहा !

श्रोता : बाहर में कोई दिखानेवाला तो चाहिए न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : लेकिन कब दरकार की ? समझ में आया ? बात तो सच्ची है, बापू ! लेकिन क्या हो सकता है ? भाई ! आहाहा ! किसी को ऐसा लगे कि, तुम्हारी दुकान सच्ची और हमारी सब दुकान गलत ? प्रभु ! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया ?

(यहाँ) क्या कहते हैं ? '**स्व-स्वामित्वसंबंध...**' शब्द पड़ा है। अपना द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है, गुण में स्वस्वामि शक्ति भी शुद्ध है और जब शक्ति का धरनेवाला द्रव्य का पर्याय में अनुभव हुआ तो स्वस्वामि शक्ति का परिणमन में अंश आया। तो द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों स्वभाव है। उसका स्व (माने) अपना है और उसका स्वामि आत्मा है। ऐसा स्वस्वामिसंबंध उसके साथ है।

'पत्नी का पति हूँ', ऐसा स्वामि संबंध आत्मा में नहीं है। कहते हैं न ? कि, मैं पत्नी का पति हूँ। धूल में भी (पति) नहीं है। यह नृपति कहते हैं न ? नृपति यानी राजा। नर यानी मनुष्य का पति। धूल में भी पति नहीं, आहाहा ! तेरे में स्व-स्वामि संबंध नाम का गुण है न ! प्रभु ! इस गुण का कार्य क्या ? निर्मल परिणति जो हुई (उसका वह स्वामि है)। स्वस्वामि संबंध में अधिकरण शक्ति का भी रूप है और उसमें ज्ञान, दर्शन, आनंद का भी रूप है। आहाहा ! गज़ब काम किया हैं ! शक्ति ने तो गज़ब काम किया है !

एकबार कहा था। रावण ने लक्ष्मण को शक्ति मारी। कथा में आता है न ? रामचंद्रजी, लक्ष्मण और सीता वनवास में गये। पिताजी की आज्ञा हुई। तेरी माता ने ऐसा कहा कि, मेरे पुत्र को राज मिलना चाहिए। अब सबेरे में तो (रामचंद्रजी को) राज देने का उसके गुरु ने - वसिष्ठ गुरु ने नक्की किया था। रामचंद्र को सबेरे गादी देनी। दुनिया की दरकार किये बिना राम, सीता और लक्ष्मण तीनों चल पड़े। ओरमान माता ने कहा हो लेकिन उस पर द्वेष नहीं, आहाहा ! ``रघुकुल ऐसी रीति चली आयी, प्राण जाये पर वचन न जाये'' आहाहा ! माता को (दिया हुआ) वचन था। पिताजी ने दिया हुआ वचन है। पिताजी ने बराबर किया है। हम तो वनवास में चले जायेगे, आहाहा !

ऐसे करते-करते लंका में रावण के पास गये तो लक्ष्मण पर बाहर की विद्या की शक्ति मारी। बड़े पंड़ाल (बांधे हुए थे)। पंड़ाल समझे ? तंबू। तंबू में १०-१० हज़ार, २०-२० हजार आदमी और लक्ष्मण (बेहोश) पड़े (हैं)। आहाहा ! (लक्ष्मणजी) गिरे तो कहा, हम दुकान पर (बैठते थे) तब गाते थे। ६५-६६ साल की बात है। 'आव्या हता त्यारे त्रण जणा अने जाशुं एकाएक ! माता जी खबरूँ पूछशे तेने शुं-शुं ज़वाब दईश ?

लक्ष्मण ! बंधव एकबार बोल न !' आहाहा ! बंधव बोल ने एकवार ! एकवार बोल ने भाई ! त्रण जण आव्या अने हुँ एकलो जईश। माता पूछशे के शुं थयुं ? सीताजी ने (रावण) लई गया। लक्ष्मण (इस प्रकार बेहोश हो गये), आहाहा !

किसी ने कहा कि, एक विशल्या नाम की कन्या है। बाल ब्रह्मचारी है, अभी शादि नहीं की और उसके पास एक शक्ति - सिद्धि है। परंतु वह आपके भरत के राज में रहा राजा है। भरत को हुकम करो कि, उस राजा की कन्या को यहाँ भेजे। आहाहा ! विशल्या तंबू में आती है। वहाँ घायल (सिपाही थे) वह अच्छे होने लगे। वैसे जहाँ लक्ष्मण के पास जाती है, वहाँ लक्ष्मण की शक्ति खुल जाती है। जागता है (और पूछता है) रावण कहाँ गया ? वह भाव (लेकर) सोया था न ? रावण कहाँ गया ? वह शक्ति उड़ गई, आहाहा ! यहाँ कहते हैं कि, विशल्या - आत्मा की पर्याय शल्य बिना की जागती है। आहाहा !

मिथ्यादर्शन के शल्य बिना की परिणति से जहाँ जगता है, वहाँ आत्मा जाग उठता है कि, `मैं तो आत्मा आनंद का कंद हूँ' आहाहा ! समझ में आया ? बहिन ने लिखा है न ? बहुत सादे शब्द में (लिखा है), मुझे तो उस शब्द से घाव लग गया। `जागतो जीव ऊभो छे ने ? ते क्यां जाय ?' आहाहा ! सादी भाषा ! एकदम बालक जैसी ! अंदर जागतो जीव ऊभो छे ने ? यानी ? जागृत ज्ञायक तत्त्व ध्रुवरूप में अंदर खड़ा है न ? वह ध्रुव कहाँ जाये ? ध्रुव कहाँ जाये ? पर्याय में आये ? राग में आये ? कहाँ जाये ? तेरी दृष्टि कर तो जरूर तुझे प्राप्त होगा। समझ में आया कुछ ? बहुत सादी बालक जैसी भाषा, कोई संस्कृत - व्याकरण की (कठिन भाषा नहीं है)।

जब आत्मा में विशल्या नाम की परिणति - शक्ति जागी, वह जागी (उसने) सारे आत्मा को जगा दिया, आहाहा ! (अभी तक) आत्मा राग की एकता में मूर्छा गया था। समझ में आया ? आहाहा ! राग के विकल्प की, दया, दान, आदि के विकल्प की एकता में मूर्छा गया था। अब उसकी शक्ति को जगाना है, आहाहा ! उसका (राग का) व्यय करके स्वस्वामि संबंध शक्ति की पर्याय प्रगट हुई (तो) निर्मल पर्याय, निर्मल गुण और निर्मल द्रव्य यह स्व (उसका) स्वामि (है)। (यह) स्व के साथ स्वामि का संबंध है। राग के साथ स्व और स्वामि का संबंध नहीं है। राग के साथ, व्यवहार रत्नत्रय के साथ ज्ञेय - ज्ञायक का संबंध व्यवहार मात्र है। आहाहा ! क्या कहा ? यह तो संबंध शब्द आया न ?

आत्मा में अंदर स्वस्वामि संबंध नाम का गुण है। उस गुण की परिणति कब होती है ? कि, द्रव्य पर दृष्टि होने से स्वस्वामि संबंध की परिणति में, विकार रहित निर्मल

दशा उत्पन्न हो, तो उसमें यह आत्मा स्व है, ऐसी परिणति आयी। तो गुण भी स्व है और परिणति भी स्व है. उसका स्वामि आया। उसके साथ स्वस्वामि संबंध है। लक्ष्मी के साथ, पैसे के साथ, लड़के के साथ, मकान के साथ, यह स्व है और मेरा है, (यह बात है ही नहीं)। आहाहा ! अरे...! यहाँ तो कहते हैं कि, व्यवहार रत्नत्रय का जो देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा और पंच महाव्रत का परिणाम - राग, उसके साथ स्वस्वामि संबंध नहीं। इसके साथ ज्ञेय - ज्ञायक संबंध है। आहाहा ! प्रभु ! यह पैसे तेरे कहाँ है ? वह तो जड़ के हैं।

अरे ! प्रभु ! अंदर दया, दान, व्रत का विकल्प उठे तो (भी) तेरी चीज़ में क्या है ? वह तो विकृत दशा है, पर है। आहाहा ! यहाँ जहाँ निर्मल पर्याय को पर द्रव्य कहा और हेय कहा तो मलिन पर्याय तो हेय...हेय...हेय लाख बार हेय है। हेय तीन बार कहा। दर्शन में हेय, ज्ञान में हेय और चारित्र में हेय। तीनों में हेय है। आहाहा ! समझ में आया ? शक्ति का वर्णन बहुत गज़ब है ! आहाहा !

अरेरे...! सत्य बात सुनने नहीं मिले और जिंदगी मजदूरी करके चली जाये, आहाहा ! राग - द्वेष की मजदूरी की (बात है)। क्रियाकांड की नहीं, बाहर की (मजदूरी) नहीं, पुण्य और पाप के विकल्प करके मजदूरी करता है, आहाहा !

भगवान ! एकबार सुन तो सही नाथ ! तेरे स्वरूप में अनंत शक्ति की संपदा पड़ी है। उसमें यह स्वस्वामि संबंध नाम का गुण पड़ा है। यह गुण का गोदाम भगवान है ! आहाहा ! अरेरे...! अंदर में उसका आधार स्वरूप है। वर्तमान स्वसंवेदन परिणति उत्पन्न होती है, यह स्वस्वामि संबंध की परिणति हुई, यह अपने से आधार से हुई है। स्वस्वामि संबंध अपना आधार में है। राग - व्यवहार रत्नत्रय स्व नहीं, वह तो पर है और उसके साथ स्वस्वामिपना का संबंध नहीं है। धर्मी को राग का स्वामीपना कभी नहीं होता। जिसको धर्मी कहें, समकिती कहें, वे दया, दान, व्रत के (और) व्यवहार रत्नत्रय के स्वामि तीन काल में नहीं है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात (है) !

``**स्वभावमात्र स्व - स्वामित्वमयी...**'' (अर्थात्) स्व का स्वामीपना। अपना स्व का स्वामि आत्मा है। अपना शुद्ध द्रव्य, गुण पर्याय स्व (है)। उसका स्वामि है - राग का स्वामि नहीं। राग का स्वामि हो वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा !

यहाँ तो (लोग ऐसा कहे) क्रिया करो, व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। अरे भगवान ! क्या करते हो प्रभु तुम ? अरे...! (इस) दुनिया में भगवान का विरह हो गया। केवलज्ञानी रहे नहीं और केवलज्ञान की उत्पत्ति का भी विरह पड़ गया, आहाहा ! समझ में आया ? ऐसे काल में तू क्या कर रहा है, प्रभु ? राग की क्रिया व्यवहार रत्नत्रय

से निश्चय होगा, सराग संयम है उससे वीतराग संयम होगा, अरेरे... ! ऐसी प्ररूपणा ! आहाहा ! स्वरूप का घात करने की बात है। समझ में आया ?

भगवान की वाणी तो ऐसी है, प्रभु ! जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ वीतराग (ऐसा कहते हैं कि) वीतराग की परिणति से धर्म उत्पन्न होता है-राग से नहीं। आहाहा ! स्वद्रव्य का आश्रय करते हैं तो वीतराग की परिणति उत्पन्न होती है। व्यवहार रत्नत्रय का आश्रय करते हैं तो वीतरागी परिणति उत्पन्न होती है, (ऐसा) तीनकाल, तीनलोक में नहीं। समझ में आया ?

स्वस्वामित्वमयी संबंध शक्ति। `(**अपना भाव अपना स्व...**)' (इसमें) द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों लेना। `(**अपना भाव अपना स्व है और स्वयं उसका स्वामि है**)' स्वयं अपना स्वामि-खुद स्वयं स्वामि-अपना स्वामि अपने को है। राग के साथ स्व स्वामि संबंध तीनकाल में नहीं है। सम्यक्दृष्टि को स्वस्वामि संबंध अपने स्वरूप में है। सम्यक्दृष्टि जीव को-धर्म की पहली सीढ़ीवाला, सम्यग्दर्शन, मोक्षमहल की पहली सीढ़ी (वाले को) सम्यग्दर्शन में राग का स्वामिपना और राग अपना (है, ऐसी मान्यता) नहीं है, आहाहा ! व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प उठता है-आता है, वह ज्ञेय-ज्ञायक संबंध में जाता है। वह पर ज्ञेय में (जाता है)। राग परज्ञेय (है)। स्वज्ञेय अपना द्रव्य, गुण, पर्याय तो भिन्न (है)। आहाहा ! राग परज्ञेय (और) भगवान (आत्मा) स्वज्ञेय। उसमें परज्ञेय का ज्ञाता और ज्ञेय इतना व्यवहार संबंध है। आहाहा ! समझ में आया ? उसके साथ दूसरा संबंध है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। व्यवहार रत्नत्रय के साथ धर्मी का दूसरा संबंध है ही नहीं। मीठो महेरामण अंदर झूले छे ने ? आहाहा ! उसमें राग का-ज़हर का तो अभाव है, आहाहा ! उसका स्वामिपना उसको नहीं है। विशेष कहेंगे......